वेदविज्ञान-आलोकः

(महर्षि ऐतरेय महीदास प्रणीत – ऐतरेय ब्राह्मण की वैज्ञानिक व्याख्या)

Cosmology Plasma Physics Astrophysics String Theory

Vaidic Rashmi Theory

Quantum Field Theory Particle Physics Nuclear Physics

A VAIDIC THEORY OF UNIVERSE

(A Big Challenge to Modern Theoretical Physics)

आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

महर्षि आद्य ब्रह्मा से लेकर..
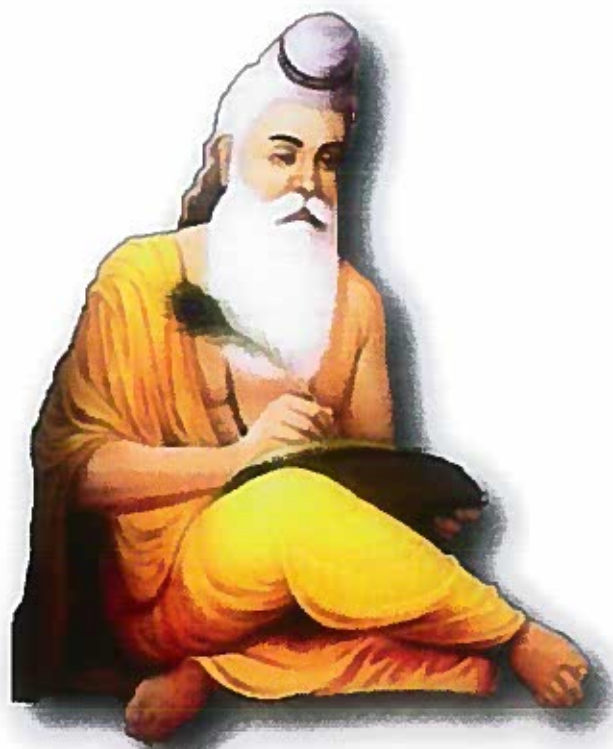
..दयानन्द पर्यन्त आर्ष परम्परा

ओ३म्

तिथि ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमी विक्रम सम्वत् २०७५, दिनांकः २०, जून २०१८
उपराष्ट्रपति आवास पर 'वेदविज्ञान-आलोकः' ग्रन्थ का विमोचन करते हुए
महामहिम उपराष्ट्रपति श्रीमान् एम. वेंकैया नायडू जी

चित्र में (बांए से दांए) - श्री जयसिंह गहलोत (जोधपुर), श्री अशोक सिसोदिया (भरतपुर), माता श्रीमती प्रकाश देवी (फरीदाबाद), श्री सतीश कौशिक (फरीदाबाद), श्री सुरेशचन्द्र आर्य (अहमदाबाद), श्री बलवीरसिंह मलिक (फरीदाबाद), महामहिम उपराष्ट्रपति जी, आचार्य श्री अग्निव्रत नैष्ठिक (भीनमाल), श्री विशाल आर्य (भीनमाल), श्री किशनलाल गहलोत (जोधपुर), श्री अभिषेक आर्य (डूंगराराम दर्जी) (भीनमाल)

।। ओ३म् ।।

भाग – ४

वेदविज्ञान-आलोकः™

(महर्षि ऐतरेय महीदास प्रणीत – ऐतरेय ब्राह्मण की वैज्ञानिक व्याख्या)

A VAIDIC THEORY OF UNIVERSE

(A Big Challenge to Modern Theoretical Physics)

व्याख्याता एवं पुरस्कर्त्ता

आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

(वैदिक वैज्ञानिक)

संपादक एवं डिज़ाइनर

विशाल आर्य (अग्नियश वेदार्थी)

(M.Sc., Theoretical Physics, University of Delhi)

प्रकाशक

श्री वैदिक स्वस्ति पन्था न्यास
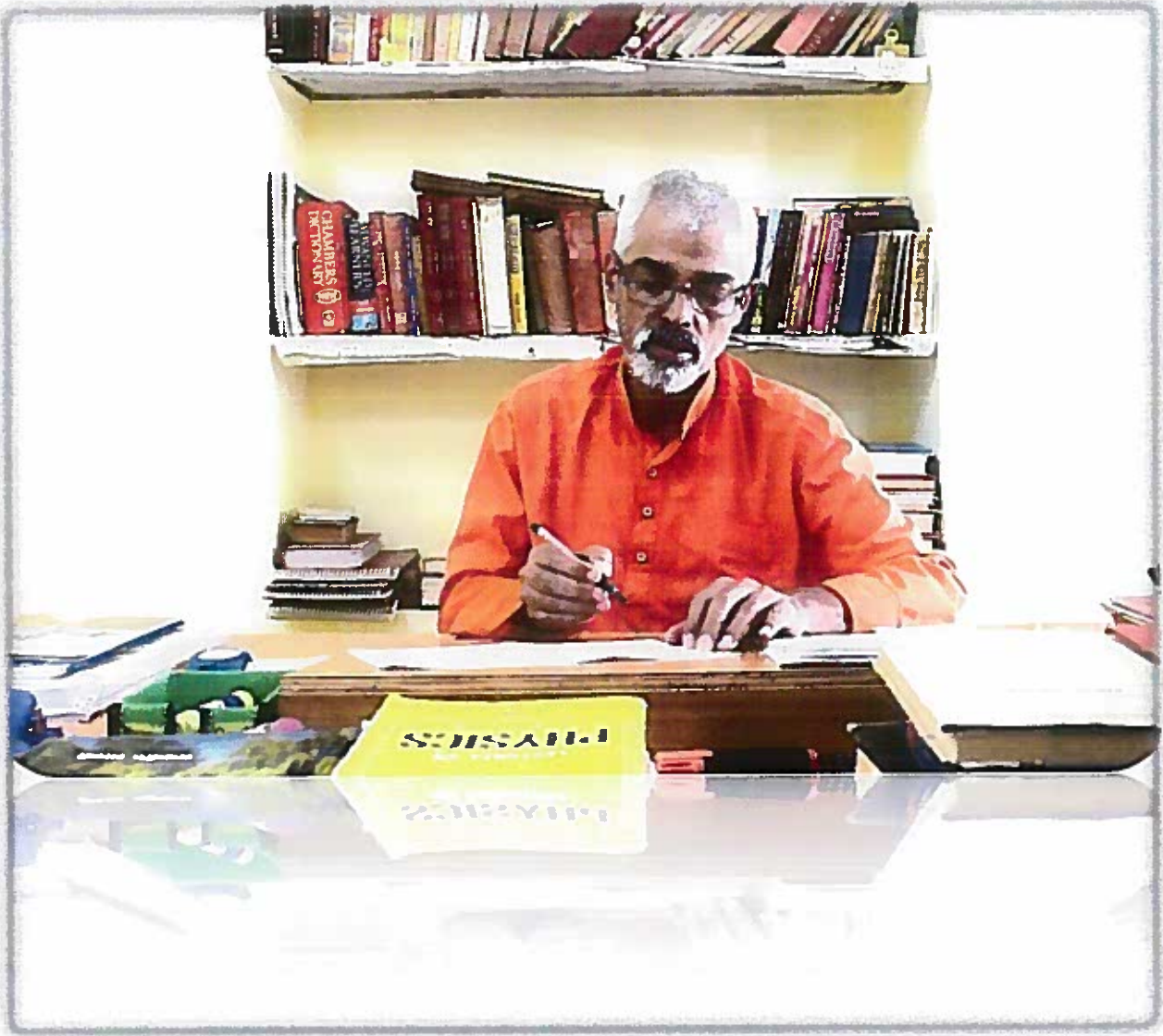
आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

(वैदिक वैज्ञानिक)

प्रमुख, श्री वैदिक स्वस्ति पन्था न्यास

आचार्य, वैदिक एवं आधुनिक भौतिक शोध संस्थान

समर्पणम्

मैं इस ग्रन्थ को विश्वभर के भौतिक वैज्ञानिकों, वेदानुसन्धानकर्त्ताओं, प्रबुद्ध व विचारशील धर्माचार्यों, मानव-एकता के स्वप्नद्रष्टाओं, सुविचारशील समाजशास्त्रियों, तर्कसम्मत पंथ निरपेक्षता के समर्थकों, वैज्ञानिक बुद्धि के धनी उद्योगपतियों, शिक्षा- शास्त्रियों, भारत के प्रतिभासम्पन्न राष्ट्रवादियों एवं सभी प्रबुद्ध युवा एवं युवतियों की सेवा में भारतवर्ष के प्राचीन वैज्ञानिक गौरव को पुनः प्राप्त कराने एवं सम्पूर्ण विश्व के कल्याण की भावना से सप्रेम समर्पित करता हूँ।

सावधानी

मैं इस ग्रन्थ के पाठकों को यह सावधानी वर्तने का भी परामर्श देता हूँ कि इसे किसी अन्य भाषा में अनूदित करके पढ़ने का प्रयास नहीं करें, अन्यथा मेरे भावों को यथार्थरूप में समझे बिना ग्रन्थ का अनुवाद त्रुटिपूर्ण होने की पूर्ण आशंका है।

–लेखक (व्याख्याता एवं पुरस्कर्त्ता)

सन्दर्भ ग्रन्थ संकेत सूची

क्र.सं.	ग्रन्थ नाम	संकेत
1.	अथर्ववेद संहिता	अथर्व.
2.	अनुभ्रमोच्छेदन	–
3.	अमरकोष	अ.को.
4.	अष्टाध्यायी भाष्य (आचार्य सुदर्शनदेव)	अष्टा.भा.
5.	आपस्तम्ब श्रौतसूत्र	आप.श्रौ.
6.	आप्टेकोश	आप्टेकोश
7.	आर्याभिविनय	–
8.	आर्योद्देश्यरत्नमाला	–
9.	आश्वलायन गृह्यसूत्रम्	आश्व.गृह्य.
10.	आश्वलायन श्रौतसूत्र	आश्व.श्रौ.
11.	उणादि कोश	उ.को.
12.	ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका	ऋ.भा.भू.
13.	ऋग्वेद महाभाष्य	–
14.	ऋग्वेद संहिता	ऋ.
15.	ऐतरेय आरण्यक	ऐ.आ.
16.	ऐतरेय ब्राह्मण	ऐ.
17.	कठोपनिषद्	कठ.उ.
18.	कपिष्ठल संहिता	क.
19.	काठक संकलन	काठ.संक.
20.	काठक संहिता	काठ.
21.	काण्व संहिता	का.सं.
22.	काण्वीय शतपथ	काश.
23.	कात्यायन श्रौतसूत्र	का.श्रौ.
24.	कौषीतकि ब्राह्मण	कौ.ब्रा.
25.	गीता	–
26.	गोकरुणानिधि	–
27.	गोपथ ब्राह्मण (पूर्वभाग/उत्तरभाग)	गो.पू./उ.
28.	छान्दोग्योपनिषद्	छां.उ.
29.	जैमिनीय ब्राह्मण	जै.ब्रा.
30.	जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण	जै.उ.
31.	ताण्ड्य महाब्राह्मण	तां.
32.	तैत्तिरीय आरण्यक	तै.आ.
33.	तैत्तिरीय उपनिषद्	तै.उ.
34.	तैत्तिरीय ब्राह्मण	तै.ब्रा.
35.	तैत्तिरीय संहिता	तै.सं.
36.	दैवत ब्राह्मण	दै.
37.	ध्यान-योग-प्रकाश	–
38.	नारदीय शिक्षा	ना.शि.
39.	निघण्टु	निघं.

40.	निघण्टु निर्वचनम्	निघं.नि.
41.	निरुक्तम्	नि.
42.	न्याय दर्शन	न्या.द.
43.	पाणिनीय अष्टाध्यायी	पा.अ.
44.	पिंगल छन्द शास्त्र	पिं.छ.शा.
45.	ब्रह्मसूत्र	ब्र.सू.
46.	ब्राह्मणोद्धार कोश	ब्रा.उ.को.
47.	मनुस्मृति	मनु.
48.	महर्षि दयानन्द ऋग्वेद भाष्य	म.द.ऋ.भा.
49.	महर्षि दयानन्द यजुर्वेद भाष्य	म.द.य.भा.
50.	महाभारत	महा.
51.	माण्डूक्य उपनिषद्	माण्डू.उ.
52.	मीमांसा दर्शन	मीमांसा
53.	मुण्डकोपनिषद्	मुण्ड.उ.
54.	मैत्रायणी संहिता	मै.
55.	यजुर्वेद संहिता	यजु.
56.	योगदर्शनम्	यो.द.
57.	वर्णोच्चारण शिक्षा	–
58.	वाक्यपदीयम्	–
59.	वाचस्पत्यम् कोश	–
60.	वाजसनेय संहिता	वा.सं.
61.	वैदिक इतिहासार्थ निर्णय	–
62.	वैदिक कोश (आचार्य राजवीर शास्त्री)	वै.को. – आ. राजवीर शास्त्री
63.	वैदिक वाङ्मय का इतिहास	–
64.	वैदिक सम्पत्ति	–
65.	वैशेषिक दर्शन	वै.द.
66.	व्यवहारभानु	
67.	व्याकरण महाभाष्य	महाभाष्य
68.	शतपथ ब्राह्मण	श.
69.	श्रौत-यज्ञ-मीमांसा	–
70.	शांखायन आरण्यक	शां.आ.
71.	श्वेताश्वर उपनिषद्	श्वेता.उ.
72.	सत्यार्थ प्रकाश	स.प्र.
73.	सन्मार्ग दर्शन	–
74.	संस्कार विधि	सं.वि.
75.	संस्कृत धातु कोश	सं.धा.को.
76.	सामविधान ब्राह्मण	सा.वि.ब्रा.
77.	सामवेद संहिता	साम.
78.	साम्वपञ्चाशिका	–
79.	सांख्य दर्शन	सां.द.
80.	सुश्रुत संहिता	सु.सं.
81.	स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	–
82.	षड्विंश ब्राह्मण	ष.

भाग (VOLUME)

6	षष्ठपञ्चिका	1693
7	सप्तमपञ्चिका	1975
8	अष्टमपञ्चिका	2163
	परिशिष्ट 1-3	2293

।। ओ३म् ।।

अथ षष्ठपञ्चिका

ओ३म्। भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।
ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव।।

२६. षड्विंशोऽध्यायः 1695

इसमें ग्रावस्तुत एवं सुब्रह्मण्या के रूप में कॉस्मिक मेघ का संघनन, डार्क एनर्जी की बाधा व उसका निराकरण, विभिन्न छन्द रश्मियों की उत्पत्ति व स्वरूप, 'ओम्' रश्मि व मन की सार्वत्रिक भूमिका आदि का विज्ञान वर्णित है।

२७. सप्तविंशोऽध्यायः 1717

इसमें होत्रक शस्त्र, अहीन याग, ऐकाहिक आदि के रूप में लोक निर्माण प्रक्रिया, आकाश तत्त्व का स्वरूप, कण व क्वाण्टा की द्वैत प्रकृति, कॉस्मिक मेघों का सम्पीडन, छन्द रश्मियों की सुरक्षा आदि का विज्ञान दर्शाया है।

२८. अष्टाविंशोऽध्यायः 1747

इसमें होत्रकों के विविध कार्य, आग्नीध्र, पोतृ, नेष्ट्र, मैत्रावरुण, अच्छावाक आदि के रूप में लोक निर्माण प्रक्रिया, लोकों का घूर्णन एवं उनके केन्द्रीय भागों का निर्माण, विद्युत्, कण व क्वाण्टाज् की उत्पत्ति, डार्क एनर्जी, नाभिकीय संलयन प्रक्रिया, लोकों का क्रमिक विकास एवं उनका सुदृढ़ीकरण आदि का विज्ञान वर्णित है।

२९. एकोनत्रिंशोऽध्यायः 1811

इसमें संपात सूक्त, वालखिल्य सूक्त, दूरोहण आदि के रूप में तारों व गेलेक्सियों के केन्द्र एवं उन लोकों की गतियां, उनकी कक्षाओं का निर्धारण, क्वाण्टा की ऊर्जा का संरक्षण, तरंगों, कणों एवं आकाश की उत्पत्ति व उसका क्रम, विभिन्न बलों की कार्य प्रणाली, क्वाण्टाज् व कणों का स्वरूप प्रेरित व प्रेरक पदार्थों का स्वरूप

आदि का विज्ञान वर्णित है।

30. त्रिंशोऽध्यायः 1901

इसमें तृतीय सवन के शिल्प शस्त्र, होता, मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी, अच्छावाक के नाभानेदिष्ठ, नाराशंस, वालखिल्य, सुकीर्ति, वृषाकपि, एवयामरुत् सूक्त। विश्वजित्, कुन्ताप सूक्त, देवनीथ, आदित्य एवं अंगिरस के रूप में कण, क्वाण्टा व तारों की उत्पत्ति, तारों के केन्द्रीय भाग, तारों के पांच भाग व उनका क्रमिक विकास, तारों की विकृति व उसका निवारण, डार्क एनर्जी, विभिन्न आकर्षण बल, ग्रहों की उत्पत्ति व परिक्रमण, तारों की संरचना व कक्षाएं, आदि की वैज्ञानिक विवेचना है।

षड्विंशोऽध्यायः

“

यह ब्रह्माण्ड सर्वज्ञ ईश्वर की अपेक्षा परिमित परन्तु अल्पज्ञ मानव की दृष्टि से अपरिमित ही है। **इस अपरिमित ब्रह्माण्ड की रचना में अपरिमित रश्मियां निरन्तर लगी रहती हैं।**

”

।। ओ३म् ।।

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व।।

अनुक्रमणिका

२६.१ अर्बुद काद्रवेय सर्प-ग्रावास्तुति। कॉस्मिक मेघ संघनन में बाधा-डार्क एनर्जी द्वारा, चौदह छन्द रश्मियों की उत्पत्ति व इनके द्वारा डार्क एनर्जी के नियन्त्रण का प्रयास व असफलता। अन्य छन्द रश्मि-उत्पत्ति। चौदह छन्द रश्मियों द्वारा कॉस्मिक मेघों में भारी विक्षोभ व शमन। 1698

२६.२ शतायु पुरुष, तेतीस देव, ग्रावास्तुति, अपरिमित प्रजापति। डार्क एनर्जी नियन्त्रण हेतु अपरिमित छन्द रश्मियां। इन छन्द रश्मियों की उत्पत्ति का स्वरूप व प्रक्रिया। त्रिष्टुप् द्वारा छन्द रश्मियों का प्रेरण, गायत्री व जगती का कार्य। 1705

२६.३ सुब्रह्मण्या-सोमोराजा। वाक् की मन में उत्पत्ति। 'ओम्' छन्द रश्मि द्वारा अन्य रश्मियों का प्रेरण। मन द्वारा 'ओम्' रश्मि का प्रेरण। 'ओम्' रश्मि के अतिरिक्त अन्य रश्मियों का विकारी होना। 'ओम्' व मन की सर्ग प्रक्रिया में परोक्ष व अनिवार्य भूमिका एवं इनका अन्योऽन्य आश्रय। पात्नीवत ग्रह-आग्नीध्र-नानुवषट्कार-नेष्टा। प्राण-वाक् तत्त्व का व्यवहार सतत एवं अव्यक्त। क्वाण्टाज् व मूल कण की उत्पत्ति के साथ वा पश्चात् ही गर्जन, विक्षोभ का उदय। 1710

ॐ अथ २६.१ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. देवा ह वै सर्वचरौ सत्रं निषेदुस्ते ह पाप्मानं नापजघ्निरे; तान् होवाचार्बुदः काद्रवेयः सर्प ऋषिर्मन्त्रकृदेका वै वो होत्राऽकृता, तां वोऽहं करवाण्यथ पाप्मानमपहनिष्यध्व इति; ते ह तथेत्यूचुस्तेषां ह स्म स मध्यंदिने मध्यंदिन एवोपोदासर्पद् ग्राव्णोऽभिष्टौति।।

{कद्रुः = इयं कद्रूः (श.३.६.२.२)। अर्बुदम् = वाग्वा अर्बुदम् (तै.ब्रा.३.८.१६.३), अम्बुदो मेघो भवति....स (मेघः) यथा महान् बहुर्भवति वर्षस्तदिवार्बुदम् (नि.३.१०)। सर्पाः = देवा वै सर्पाः। तेषामियं (पृथिवी) राज्ञी (तै.ब्रा.२.२.६.२), रज्जुरिव हि सर्पाः (श.४.४.५.३)। कद्रुः = कबतेऽसौ कद्रुः, वर्णभेदो वा। बस्य दः (उ.को.४.१०३), (कबृ वर्णे = स्तुति करना, रंगना - सं.धा.को. - पं.युधिष्ठिर मीमांसक)}

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि लोक निर्माण प्रक्रिया की प्रकारान्तर से चर्चा करते हुए एक घटनाविशेष का वर्णन करते हुए कहते हैं कि इस प्रक्रिया में जब वाक् एवं मनस्तत्त्व रूपी देव प्राणादि रश्मियों के माध्यम से सर्वचरु अर्थात् विभिन्न मेघरूप पदार्थों में लोक निर्माणार्थ नाना प्रकार की यजन क्रियाएं प्रारम्भ करते हैं, उस समय कभी-२ ऐसा भी होता है कि वे उस पदार्थ में व्याप्त यजन क्रिया को बार-२ पतित करने वाले असुर तत्त्व को दूर नहीं कर पाते हैं अर्थात् कभी-२ वह असुर तत्त्व इतना प्रबल होता है कि उन यजन प्रक्रियाओं को बाधित करता रहता है। सामान्य रूप से विद्यमान असुर तत्त्व विरोधी रश्मियां असुर तत्त्व को नियन्त्रित वा दूर करने में समर्थ नहीं होती हैं, इस कारण लोक निर्माण की प्रक्रिया अवरुद्ध होने लगती है। यहाँ 'पाप' शब्द से यह भी अभिप्राय हो सकता है कि विभिन्न प्रकाशित परमाणु आदि देव पदार्थ विभिन्न प्राण, मन एवं वाक् रश्मियों के द्वारा भी इतना सामर्थ्य प्राप्त नहीं कर पाते, जिससे कि वे सबल होकर संयोग और सम्पीडन की क्रिया को सम्पादित कर सकें। उस समय 'कद्रु' किंवा सृष्टि की सूक्ष्म प्रक्रियाओं में मन के सापेक्ष प्रत्यक्ष भूमिका निभाने वाली पृथिवी अर्थात् व्यापक वाग् रश्मियां, जो 'अर्बुद' अर्थात् वर्षणशील एवं रंगीन मेघों में व्याप्त होती हैं, वे उन मेघरूप पदार्थों में विद्यमान देव परमाणु आदि पदार्थों को प्रेरित करती हैं। ये वाग् रश्मियां ऋषि रूप होकर विभिन्न छन्द रश्मियों को उत्पन्न करने का सामर्थ्य रखती हैं। ये उस समय ऐसी छन्द रश्मियों को उत्पन्न करती हैं, जो उस समय तक उत्पन्न नहीं हुई होती हैं। यहाँ इन वाग् रश्मियों का देव परमाणुओं के साथ संवाद लेखक की अपनी एक शैली है। इससे वे बतलाना चाहते हैं कि इन छन्द रश्मियों के द्वारा बाधक असुर तत्त्व एवं तज्जन्य देव परमाणुओं की दुर्बलता दूर हो जाती है। वह काद्रवेय अर्बुद सर्प ऋषि रूप उपर्युक्त रश्मियां उन मेघ रूप पदार्थों में विद्यमान मध्यंदिन रूप विभिन्न त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के निकट बार-२ प्रकट होकर उन तथा अन्य रश्मियों एवं परमाणु आदि पदार्थों को प्रकाशित करती हैं। इस प्रकाशन के लिए उन ऋषि रश्मियों से ग्रावाणदेवताक ऋ.१०.९४ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) प्रैते वंदन्तु प्र वयं वंदाम ग्रावंभ्यो वाचं वदता वदंद्भ्यः।
यदंद्रयः पर्वताः साकमाशवः श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः।।१।।

इसका छन्द विराड्जगती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से वे देव परमाणु एवं विभिन्न छन्दादि रश्मियां स्वयं प्रकृष्ट रूप से गति और प्रकाश से युक्त होकर नाना प्रकार की रश्मियों को उत्सर्जित करके उनको

भी सक्रिय करती हैं। इससे वे मेघरूप पदार्थ विभिन्न आशुगामी सोम रश्मियों को नाना प्रकार की छन्दादि रश्मियों से युक्त करके इन्द्रतत्त्व को समृद्धता से प्राप्त करते हैं।

(२) एते वदन्ति शतवत्सहस्रवदभि क्रन्दन्ति हरितेभिरासभिः।
विष्ट्वी ग्रावाणः सुकृतः सुकृत्यया होतुश्चित्पूर्वे हविरद्यमाशत।।२।।

इसका छन्द जगती है। इसका छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् कम तेजयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न छन्द वा प्राणादि रश्मियां पूर्णता को प्राप्त करके सैकड़ों और हजारों प्रकार से प्रकाशित और गतियुक्त होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त होकर अपने तेजस्वी प्रक्षेपक और उत्तम क्रियाशील बलों के द्वारा उन्हें सब ओर से सक्रिय करती हैं। इसके कारण वे परमाणु आदि पदार्थ परस्पर संयोज्यता को प्राप्त करते हैं।

(३) एते वदन्त्यविदन्नना मधु न्यूङ्खयन्ते अधि पक्व आमिषि।
वृक्षस्य शाखामरुणस्य बप्सतस्ते सूभर्वा वृषभाः प्रेमराविषुः।।३।।

इसका छन्द विराड्जगती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {आमिषम् = अमन्ति गच्छन्ति येन तत् आमिषम् (उ.को.१.४६), (अम् = आक्रमण करना - आप्टेकोष)। सुभर्वाः = भर्वतिः अत्तिकर्मा (नि.६.२३)} विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ छेद्य मेघरूप पदार्थों की ऊष्णताजन्य परिपक्व अवस्था में गमन करने वा आक्रमण करने योग्य बलों को प्राप्त करते हैं। {अनः = यज्ञो वाऽअनः (श.१.१.२.७), अन्तरिक्षरूपमिव वा एतद् यदनः (काश.४.३.४.१ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत)} वे अन्तरिक्ष में अनेक न्यूङ्खित छन्द रश्मियों के द्वारा नाना प्रकार की गति और दीप्तियों को प्राप्त करते हैं। न्यूङ्ख विषय में खण्ड ५.३ दृष्टव्य है। इससे वे मेघ अरुण वर्ण की दीप्तियों से युक्त होकर विभिन्न संयोजक वर्षक बलों से युक्त नाना प्रकार की छन्दादि रश्मियां अनेक प्रकार की ध्वनियों को उत्पन्न करती हैं।

(४) बृहद्वदन्ति मदिरेण मन्दिनेन्द्रं क्रोशन्तोऽविदन्नना मधु।
संरभ्या धीराः स्वसृभिरनर्तिषुराघोषयन्तः पृथिवीमुपब्दिभिः।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {मन्दिना = (मन्दस्वः = मन्दस्व धीतिभिर्हित इति दीप्यस्व धीतिभिर्हित इत्येतत् - श.७.३.१.३१), मन्दतेः = मन्दतेः स्तुतिकर्मणः (नि.४.२४)} विभिन्न देव परमाणु अतिसक्रिय और प्रदीपक प्राण रश्मियों से संगत होकर इन्द्रतत्त्व को प्रकट करते हुए व्यापक क्षेत्र में गतिशील होते हैं। वे अन्तरिक्ष में विद्यमान विशेष रूप से प्रकाशित प्राणादि रश्मियों को प्राप्त करके अनेक धारक बलों से युक्त होकर सम्यक् क्रियाशील होते हुए सम्पूर्ण अन्तरिक्ष को नाना ध्वनियों से गुंजायमान करते हैं और विभिन्न शक्तिशालिनी किरणों के साथ संगत होकर सम्पूर्ण मेघ पदार्थ में नृत्य करने लगते हैं।

(५) सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्याखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः।
न्यङ्नि यन्त्युपरस्य निष्कृतं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्वितः।।५।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे सुन्दर मेघरूप पदार्थ आखर अर्थात् आकाश तत्त्व में देदीप्यमान होते हुए नाना प्रकार की वायु रश्मियों को प्रकट करते हैं। उनमें विभिन्न कमनीय, आकर्षक परमाणु आदि पदार्थ श्वेतवर्ण की रश्मियों से युक्त होकर इधर-उधर तीव्रता से विचरण करते हैं। वे निष्कासित असुर तत्त्व को दूर करके व्यापक तेज और उत्पादक बलों को धारण करते हैं।

(६) उग्राइव प्रवहन्तः समायमुः साकं युक्ता वृषणो बिभ्रतो धुरः।

यच्छ्वसन्तो जग्रसाना अराविषुः शृण्व एषां प्रोथथो अर्वतामिव।।६।।

इसका छन्द जगती है। इसका छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {प्रोथथः = (प्रोथृ पर्याप्ती-शक्तिमान् होना, पूर्ण होना, भरना - सं.धा.को. - पं. युधिष्ठिर मीमांसक)} वे मेघस्थ देव परमाणु तीव्र धारक बलों को धारण करके नाना प्रकार की तेजस्विनी वाहिका छन्दादि रश्मियों से युक्त होकर सम्यग् रूप से इधर-उधर विचरण करते हैं। वे विभिन्न प्राण रश्मियों से युक्त होकर एक-दूसरे का भक्षण करते हुए समर्थ और आशुगामी होकर घोर-गर्जना करते हैं।

(७) दशावनिभ्यो दशकक्ष्येभ्यो दशयोक्त्रेभ्यो दशयोजनेभ्यः।
दशाभीशुभ्यो अर्चताजरेभ्यो दश धुरो दश युक्ता वहद्भ्यः।।७।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {कक्ष्याः = कक्ष्याः प्रकाशयन्ति कर्माणि (नि.३.६)। अभीशुः = अभीशवोऽभ्यश्नुवते कर्माणि (नि.३.६)} वे देव परमाणु एवं उनमें व्याप्त विभिन्न छन्द रश्मियां दश प्राथमिक प्राण रश्मियों के द्वारा रक्षण, गति, प्रकाश, बन्धन बल, संयोजन बल और व्यापकता जैसे गुणों को प्राप्त करती हैं। वे दसों प्राण रश्मियां कभी जीर्ण न होती हुई सबको धारण और वहन करके सतत प्रकाशित करती हैं।

(८) ते अद्रयो दशयन्त्रास आशवस्तेषामाधानं पर्येति हर्यतम्।
त ऊं सुतस्य सोम्यस्यान्धसोऽशोः पीयूषं प्रथमस्य भेजिरे।।८।।

इसका छन्द आर्चीस्वराड्जगती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे मेघरूप पदार्थ दसों प्राण रश्मियों के द्वारा नियन्त्रित होकर अपने आकर्षण बलों के द्वारा आशुगति करते हुए सब ओर गमन करते हैं। वे सम्पीडित सोम रश्मियों के अवशोषणीय भाग को प्राथमिकता की दृष्टि से अवशोषित करने लगते हैं।

(९) ते सोमादो हरी इन्द्रस्य निंसतेऽशुं दुहन्तो अध्यासते गवि।
तेभिर्दुग्धं पपिवान्त्सोम्यं मध्विन्द्रो वर्धते प्रथते वृषायते।।९।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से सोम तत्त्व के भक्षक वे मेघरूप पदार्थ धारण और आकर्षण बलों से युक्त इन्द्रतत्त्व को प्राप्त करके अन्तरिक्ष में उन सोम रश्मियों का निरन्तर दोहन करते हुए स्थित होते हैं। वे सोम रश्मियां प्राण रश्मियों रूप मधु के साथ संगत होकर इन्द्रतत्त्व को समृद्ध, विस्तृत और बलवान् बनाती हैं।

(१०) वृषा वो अंशुर्न किला रिषाथनेळावन्तः सदमित्स्थनाशिताः।
रैवत्येव महसा चारवः स्थन यस्य ग्रावाणो अजुषध्वमध्वरम्।।१०।।

इसका छन्द विराड् जगती है। इसका छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे सोम रश्मियां उस इन्द्रतत्त्व को बलवान् बनाती हैं, जिससे वह कभी जीर्ण नहीं होता है। वह विभिन्न छन्द रश्मियों से युक्त होकर नाना संयोजक बलों के तेज से संगतीकरण की सुन्दर क्रियाओं को सम्पादित करता हुआ स्थित होता है। वे छन्दादि रश्मियां विभिन्न देव परमाणुओं के संगमन और सम्पीडन को निरापद बनाती हैं।

(११) तृदिला अतृदिलासो अद्रयोऽश्रमणा अशृथिता अमृत्यवः।
अनातुरा अजराः स्थामविष्णवः सुपीवसो अतृषिता अतृष्णजः।।११।।

इसका छन्द विराड् जगती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {तृदिलः = (तृदिर् हिंसायाम्)} वे पदार्थ दुर्बलता एवं निष्क्रियता से रहित इन्द्रतत्त्व के द्वारा सदैव प्राणवान्,

विकृति एवं जीर्णता से रहित व्यापक आक्रामक बल एवं गतियों से युक्त निरन्तर समृद्ध होते हुए अति विक्षुब्धता और किन्हीं भेदक बलों के प्रभाव से मुक्त होकर स्वयं छिन्न-भिन्न न होने वाले किन्तु असुर पदार्थ को छिन्न-भिन्न करने में सक्षम होते हैं।

(१२) ध्रुवा एव वः पितरो युगेयुगे क्षेमकामासः सदसो न युञ्जते।
अजुर्यासो हरिषाचो हरिद्रव आ द्यां रवेण पृथिवीमशुश्रवुः।।१२।।

इसका छन्द जगती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न संगमन कर्मों में वे पालक प्राण रश्मियां अटल नियमों के अनुसार विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में सतत विचरण करती रहती हैं। वे कभी एक स्थान पर स्थिर नहीं रहती। वे सदैव जीर्णतारहित होकर विभिन्न मास आदि रश्मियों को अपने साथ संगत करती हुई कमनीय बल और गति से युक्त होकर प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणुओं को गुंजायमान और गतिमान करती हैं।

(१३) तदिद्वदन्त्यद्रयो विमोचने यामन्नञ्जस्पाइव घेदुपब्दिभिः।
वपन्तो बीजमिव धान्याकृतः पृञ्चन्ति सोमं न मिनन्ति बप्सतः।।१३।।

इसका छन्द विराड् जगती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे मेघरूप पदार्थ असुर तत्त्व को मुक्त करने के लिए विभिन्न मार्गों में गर्जन करने वाले इन्द्रतत्त्व को शीघ्रता से प्राप्त करके प्रकाशित होते हैं। वे विभिन्न धारक बलों को बीजरूप में व्याप्त करते हुए सोम तत्त्व से परिपूर्ण होते हैं।

(१४) सुते अध्वरे अधि वाचमक्रता क्रीळयो न मातरं तुदन्तः।
वि षू मुञ्चा सुषुवुषो मनीषां वि वर्तन्तामद्रयश्चायमानाः।।१४।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {चायमानः = (चायृ = निरीक्षण करना, पूजा करना - आप्टेकोश)} वे मेघरूप पदार्थ मन व वाक् तत्त्व के द्वारा निरन्तर प्रेरित व ईक्षित होते हुए सर्गयज्ञ प्रक्रिया को निरापद बनाने हेतु आकाश तत्त्व एवं इसमें विद्यमान नाना रश्मि व परमाणु समूह के रूप में सम्पीडित अवस्था को प्राप्त करते हैं। उन मेघरूप पदार्थों में पदार्थ समूह नाना क्रीड़ा करता हुआ विभिन्न वागू रश्मियों को धारण वा उत्पन्न करके विशेष सम्पीडक इन्द्रतत्त्व को प्रकाशित करते हुए पुनः-२ आक्रमण करने वाले असुर तत्त्व को दूर करता रहता है।

ये सभी छन्द रश्मियां सभी मेघों को तीक्ष्ण तेज व बल से युक्त कर आसुर पदार्थ को दूर व नियन्त्रित करके पदार्थ को सम्पीडित करती हुई लोक निर्माण प्रक्रिया को समृद्ध करती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सृष्टि प्रक्रिया के अन्तराल में जब विभिन्न लोकों के निर्माण हेतु कॉस्मिक मेघों के सम्पीडन की क्रिया होती है, उस समय डार्क एनर्जी प्रबल होकर उस सम्पीडन व संघनन की क्रिया में बाधक बनने लगती है। हमारे मत में यह आशंका पूर्ववर्णित **पंचम अहन् अर्थात् व्यान प्राण** के उत्कर्ष काल में होती है। जब इस प्रकार की अवरोधक स्थिति उत्पन्न हो जाती है, तब उन मेघरूप पदार्थों में ११ विभिन्न जगती और ३ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां ऐसी उत्पन्न होती हैं, जो पूर्व में उत्पन्न नहीं हुई होती हैं। इनके कारण विभिन्न छन्दादि रश्मियों का व्यापक विस्तार और गमनागमन होने लगता है। वे तीव्र तेज और बल से युक्त होकर परस्पर तीव्रता से संगत होने लगती हैं। इन मेघों में विद्युत् चुम्बकीय बल और तरंगों की मात्रा और तीव्रता बढ़ने लगती है, जिसमें सभी प्रकार के कण तीव्र ऊर्जा से युक्त होकर परस्पर संयुक्त होने लगते हैं। गुरुत्व बल के कारण वे मेघ रूप पदार्थ संघनित होने लगते हैं और डार्क एनर्जी का प्रभाव कम होने लगता है। वे मेघरूप पदार्थ ऊष्णता को प्राप्त करते हुए लालिमायुक्त प्रकाश एवं अनेक प्रकार की तीव्र ध्वनियों से सम्पन्न होने लगते हैं। इस समय सभी प्राथमिक प्राण रश्मियां विशेष सक्रिय होकर विभिन्न परमाणु आदि कणों को तीव्र संयोजक बलों से युक्त करती हैं। उस समय विद्युत् चुम्बकीय धाराओं की प्रबलता और व्यापकता भी बढ़ने लगती है। विभिन्न छन्द व प्राण

रश्मियां एक कण से दूसरे कण तथा एक क्वान्टाज् से दूसरे क्वान्टाज् में सतत विचरण करती रहती हैं। इससे लोक बनने की अवरुद्ध हो चुकी प्रक्रिया पुनः सुचारु रूप से चलने लगती है।।

२. तस्मान्मध्यन्दिने मध्यन्दिन एव ग्राव्णोऽभिष्टुवन्ति तदनुकृति।।
स ह स्म येनोपोदासर्पत्तद्धाप्येतर्ह्यर्बुदोदासर्पणी नाम प्रपदस्ति।।
तान् ह राजा मदयाञ्चकार ते होचुराशीविषो वै नो राजानमवेक्षते,
हन्तास्योष्णीषेणाक्ष्यावपिनह्यामेति; तथेति; तस्य होष्णीषेणाक्ष्यावपिनह्यस्तस्मादुष्णीषमेव पर्यस्य ग्राव्णोऽभिष्टुवन्ति तदनुकृति।।
तान् ऽह राजा मदयामेव चकार, ते होचुः,-स्वेन वै नो मन्त्रेण ग्राव्णोऽभिष्टौति, हन्तास्यान्याभिर्ऋग्भिर्मन्त्रमापृणचामेति; तथेति; तस्य हन्याभिर्ऋग्भिर्मन्त्रमापपृचुस्ततो हैनान्न मदयांचकार; तद्यदस्यान्याभिर्ऋग्भिर्मन्त्रमापृञ्चन्ति शान्त्या एव।।
ते ह पाप्मानमपजघ्निरे, तेषामन्वपहतिं सर्पाः पाप्मानमपजघ्निरे, त एतेऽपहतपाप्मानो हित्वा पूर्वां जीर्णां त्वचं नवयैव प्रयन्ति।।
अप पाप्मानं हते य एवं वेद।।१।।

व्याख्यानम्- {ग्रावा = मेघनाम (निघं.१.१०)} लोक निर्माण प्रक्रिया के मध्यकाल तथा व्यान प्राण के उत्कर्ष काल में जिस प्रकार असुर तत्त्व की बाधा पूर्वोक्तानुसार उत्पन्न होती तथा उपर्युक्तानुसार छन्द रश्मियों के उत्पन्न होने से दूर भी हो जाती है, उसी प्रकार वर्तमान काल में भी इस ब्रह्माण्ड में यदि कहीं कुछ लोकों का निर्माण हो रहा होता है, तो उस प्रक्रिया के मध्य चरण में भी जब कभी असुर तत्त्व बाधा उत्पन्न करता है, तो पूर्ववत् १४ छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर सभी ग्रावा संज्ञक छन्द व प्राण रश्मियों को प्रकाशित और उत्तेजित करके सम्पूर्ण ग्रावा संज्ञक मेघ पदार्थ को प्रकाशित और सक्रिय करके आसुरी बाधा को दूर करती हैं। ऐसा ही अनुकरण इस सृष्टि में सर्वत्र होता रहता है।।

उपर्युक्त १४ छन्द रश्मियां जिस ऋषि प्राण से उत्पन्न होती हैं, उन रश्मियों के मार्ग निश्चित होते हैं, उन मार्गों को "अर्बुदोदासर्पणी" कहा जाता है। इस ऋषि प्राण के विषय में इस खण्ड की प्रथम कण्डिका द्रष्टव्य है। यहाँ महर्षि ने इन ऋषि प्राण रश्मियों के मार्ग का नामकरण किया है, इससे यह सिद्ध होता है कि इन रश्मियों का एक सुनिश्चित मार्ग ही होता है, जिससे केवल ये रश्मियां ही गमन करती हैं। ये ऋषि प्राण रश्मियां सर्प भी कहलाती हैं, इसका कारण यह है कि ये रश्मियां सर्पिलाकार मार्गों पर गति करती हैं।।

इस प्रकरण में १४ छन्द रश्मियों के द्वारा जो सोम रश्मियां सक्रिय होती हैं, वे ही विशेष दीप्त अवस्था में सोमराजा कहलाती हैं। वे प्रदीप्त सोम रश्मियां पूर्वोक्त अर्बुदकाद्रवेय ऋषि प्राण के साथ संगत होने से तेजस्विनी होकर सभी देव परमाणुओं को तीव्रता से सक्रिय करती हैं। यहाँ महर्षि ने उस ऋषि प्राण की "आशीविष" संज्ञा की है। "आशीविष" के विषय में महर्षि जैमिनी का कथन है-

"इन्द्रस्य त्रिदिवे सोम आस। तं हाग्नयो गन्धर्वा जुगुपुरेत एव धिष्ण्याः।
त उ एवाशीविषाः" (जै.ब्रा.१.२८७)।

इस कथन से यह सिद्ध होता है कि इन्द्रतत्त्व से युक्त तीनों प्रकार की अग्नियों के अन्दर जो सोम रश्मियां होती हैं, उनको धारण करने वाली वे अग्नियां उनको छुपा लेती हैं और वे छुपी हुई सोम रश्मियां ही 'आशीविष' कहलाती हैं। इससे ऐसा संकेत मिलता है कि सूक्ष्म सोम रश्मियां ही अर्बुद काद्रवेय सर्प रूप ऋषि प्राण रूप होती है। सोम को प्राण बतलाते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य लिखते हैं- "प्राणः सोमः" (श.७.३.१.२)। ये सूक्ष्म ऋषि रूप सोम रश्मियां ही देदीप्यमान सोम रश्मियों को अपनी ओर आकर्षित

करते हुए उत्तेजित करती हैं। यहाँ हमें 'आशीविष' शब्द से उपर्युक्त ऋषि प्राण रश्मियों का एक विशेष गुण यह भी प्रतीत होता है {आशी = आशीर्यते अनया (आप्टेकोश)। विषम् = (विष्+क - आप्टे कोश, विष् = घेरना, विस्तार करना, वियुक्त करना, छिड़कना - आप्टे कोश)} कि ये रश्मियां विभिन्न छन्दादि रश्मियों में फैलकर उन्हें आवेष्टित करके, उनमें अपने तीक्ष्ण बलों को प्रवाहित करके असुर तत्त्व को नष्ट करती हैं। इसके कारण कभी-२ असुर तत्त्व के साथ-२ दृश्य पदार्थ रूप विद्यमान छन्द रश्मियां एवं परमाणु आदि पदार्थ अतिसक्रिय होकर एक-दूसरे को भी विदीर्ण करने लगते हैं। यहाँ देवों का परस्पर संवाद लेखक की अपनी शैली मात्र है। इस प्रकरण में आचार्य सायण ने महर्षि आश्वलायन के जिन वचनों के प्रकाश में अपनी याज्ञिक पद्धति में कुछ व्याख्यान किया है। वे वचन इस प्रकार हैं-

"अथास्मा अध्वर्युरुष्णीषं प्रयच्छति।।"

"तदञ्जलिना प्रतिगृह्यं त्रिः प्रदक्षिणं शिरः संमुखं वेष्टयित्वा यदा सोमांशूनभिषवाय व्यपोहन्त्यथ ग्राव्णोऽभिष्टुयात्।।" (आश्व.श्रौ.५.१२.६-७)

इन वचनों के प्रकाश में ग्रन्थकार के वचनों पर विचार करने पर यह सिद्ध होता है कि जब उपर्युक्त प्रकार से अतितीक्ष्ण विक्षोभजन्य अनिष्ट स्थिति उत्पन्न हो जाती है, तब प्राणापान रूपी अध्वर्यु उन तीक्ष्ण ऋषि रश्मियों को आवेष्टित करने लगते हैं। {अंजलिः = दश वाऽअञ्जलेरंगुलयः (श.६.१.१.३६)} वे प्राणापान रश्मियां अन्य सभी प्राथमिक प्राण रश्मियों के साथ (हमारे मत में सूत्रात्मा वायु रश्मि भी इसमें सम्मिलित होती है) मिलकर उन तीक्ष्ण ऋषि प्राण रश्मियों को समुचित रूप से निगृहीत करके उसकी हिंसक शक्ति को अवरुद्ध करके देदीप्यमान सोम रश्मियों एवं विभिन्न छन्दादि रश्मियों को अनुकूलता से सम्पीडित करती हैं। वे प्राण रश्मियां उन हिंसक ऋषि रश्मियों को तीन घेरों में आवृत्त करती हैं। यहाँ उन ऋषि प्राण रश्मियों की अति तेजस्विता ही उनकी चक्षु कहलाती है, जिसे ये प्राथमिक प्राण रश्मियां तीक्ष्ण ऋषि रश्मियों को ढककर समुचित रूप से नियन्त्रित और अनुकूलित करने का प्रयास करती हैं। इसी प्रकार की क्रियाएं लोक निर्माण की वर्तमान में हो रही क्रियाओं के समय भी होती हैं।।

महर्षि पुनः कहते हैं कि प्राण रश्मियों से आवेष्टित होने पर भी वे ऋषि रश्मियां हिंसक तीक्ष्णता से पूर्णतया मुक्त नहीं होती, जिस कारण वे सोम रश्मियों एवं परमाणु आदि पदार्थों को अति तीक्ष्ण बनाये रखती हैं। वे पूर्वोक्त १४ छन्द रश्मियां अपनी तीक्ष्णता से असुर तत्त्व के साथ-२ देव पदार्थों को भी विक्षुब्ध और विदीर्ण किये रहती हैं, जिसके कारण लोक निर्माण की प्रक्रिया बाधित ही रहती है। यहाँ भी देवों का संवाद प्रतीकात्मक ही है। उस समय विभिन्न प्राण रश्मियों, विशेषकर धनंजय से ३ छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। यहाँ धनंजय प्राण का ग्रहण इस कारण किया है, क्योंकि इन छन्द रश्मियों का ऋषि 'रहूगण पुत्रो गोतम' बताया गया है, जिससे सोमोदेवताक ऋ.१.९१.१६-१८ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य संगथे।।१६।।

इसका छन्द पिपीलिकामध्या निचृद् गायत्री है। इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से सोम रश्मियां एवं विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ तीक्ष्ण तेज और बल से युक्त होते हैं। {पिपीलिका = पेलतेर्गतिकर्मणः (दै.३.६)} इसके साथ ही वे सम्पूर्ण मेघरूप पदार्थ में विशेषकर प्रवाहित होने लगते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे पदार्थ विभिन्न बलों को व्यापक एवं सम्यग् रूप से प्राप्त करके तृप्त होकर असुर तत्त्व के साथ संग्राम में समर्थ होते हैं।

(२) आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः। भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे।।१७।।

इसका छन्द परोष्णिक् है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से विभिन्न पदार्थ तीव्र उष्णता से युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे पदार्थ एवं सोम रश्मियां अति सक्रिय होते हुए भी उत्तम प्रकार के संयोजक बलों से युक्त होकर नाना संयोजन और सम्पीडन कर्मों को समृद्ध करती हैं। वे सभी प्रकार की प्रकाश किरणों के साथ अच्छी प्रकार संगत होकर लोक निर्माण प्रक्रिया को समृद्ध करती हैं।

(३) सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व।।१८।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से संयोजक बलों का तीव्र विस्तार होता है। इसके अन्य प्रभाव से वे सोम रश्मियां एवं अन्य परमाणु आदि पदार्थ बलवान् प्राण रश्मियों के साथ मिलकर असुर रश्मियों को नियन्त्रित करते हैं। वे अन्तरिक्ष में {अमृतम् = आदित्योऽमृतम् (श.१०.२.६.१६), अग्निरमृतम् (श.१०.२.६.१७)} अग्नि तत्त्व के संवर्धन एवं आदित्य लोकों के निर्माण के लिये उत्तम संयोजक बलों को धारण करते हैं।

जब इस तृच रूप रश्मिसमूह {हन्याभिः = ह+अन्याभिः - सायण भाष्य} के प्रभाव से सम्पूर्ण देव पदार्थ उपर्युक्त प्रकार से समुचित संयोजक बलों से युक्त हो जाता है, तब वह अति तीक्ष्ण और विक्षुब्ध नहीं होता। इसका तात्पर्य यह है कि ये तीनों छन्द रश्मियां तीक्ष्ण ऋषि प्राण रश्मियों को समुचित और नियन्त्रित अवस्था प्रदान करती हैं। ये छन्द रश्मियां सभी पूर्वोक्त १४ छन्द रश्मियों को सम्पृक्त करके उनकी तथा सम्पूर्ण पदार्थ की उग्रता को शान्त करती हैं।।

इस प्रकार उपर्युक्त कुल १७ छन्द रश्मियों के द्वारा वे मेघरूप देव पदार्थ वृत्र रूप आसुर आवरण को नष्ट वा नियन्त्रित करते हैं।{त्वक् = त्वक् सूददोहाः (श.८.१.४.५), सूददोहा = प्राणो वै सूददोहा (श.७.१.१.२६), आपो वै सूदोऽन्नं दोहः (श.८.७.३.२१)} इसके पश्चात् सभी सर्प संज्ञक ऋषि प्राण रश्मियां और सर्पणशील अन्य सभी लोक अपने-२ बाधक असुर तत्त्व को नष्ट वा नियन्त्रित करके अपनी गति व बल आदि गुणों को समुचित और सृजनशील रूप प्रदान करते हैं। उस समय वे सभी पदार्थ वा मेघ रूपी विशाल पदार्थ समूह वृत्र रूप आसुर, आवरक, जीर्ण हुए पदार्थ को त्याग कर अर्थात् दूर करके नवीन त्वग् रूपी आच्छादक प्राण रश्मियों, जो उन पदार्थों को संयुक्त करने में महती भूमिका निभाती हैं, से युक्त हो जाते हैं। जब कभी भी दो परमाणुओं वा रश्मि आदि पदार्थों में संयोग होता है, तब आसुर पदार्थ बीच में बाधा बन जाता है, जो इन उपर्युक्त छन्द रश्मियों के द्वारा हटा दिया जाता है, जिससे उनका संयोग सहज हो जाता है।।

ऐसी स्थिति बनने पर लोक निर्माण की प्रक्रिया में आसुर तत्त्व की बाधा सर्वथा निर्मूल हो जाती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- कभी-२ उपर्युक्त १४ छन्द रश्मियों के द्वारा डार्क एनर्जी के साथ संघर्ष करते समय दृश्य पदार्थ में भी भारी उथल-पुथल और तीक्ष्णता उत्पन्न हो जाती है, जिसके कारण वह पदार्थ संपीडित और संघनित होने के स्थान पर विखण्डित होने लगता है। इस प्रकार कॉस्मिक मेघों से लोकों के निर्माण की प्रक्रिया अवरुद्ध हो जाती है। उस समय प्राण एवं अपान रश्मियां उन तीक्ष्ण १४ छन्द रश्मियों को उत्पन्न करने वाली सूक्ष्म रश्मियों को तीन परतों में आच्छादित करके उनकी तथा उनके प्रभाव से सम्पूर्ण पदार्थ की उग्रता को दूर करने का प्रयास करती हैं। पुनरपि, पदार्थ की उग्रता दूर नहीं हो पाती। उस समय १ गायत्री, १ उष्णिक् और १ पंक्ति छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है। वे छन्द रश्मियां सभी छन्द रश्मियों, विशेषकर डार्क एनर्जी निरोधक १४ छन्द रश्मियों की उग्रता का शमन करती हैं। इस प्रकार डार्क एनर्जी का अवरोध भी दूर हो जाता है और पदार्थ का अनिष्ट विक्षोभ भी दूर होकर कॉस्मिक मेघों से लोक निर्माण की प्रक्रिया सुचारु रूप से चलने लगती है।।

इति २६.१ समाप्तः

ॐ अथ २६.२ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. तदाहुः कियतीभिरभिष्टुयादिति, शतेनेत्याहुः; शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्यः शतेन्द्रिय आयुष्येवैनं तद्वीर्य इन्द्रिये दधाति।।
त्रयस्त्रिंशत्या वेत्याहुस्त्रयस्त्रिंशतो वै स देवानां पाप्मनोऽपाहंस्त्रयस्त्रिंशद्वै तस्य देवा इति।।
अपरिमिताभिरभिष्टुयादपरिमितो वै प्रजापतिः; प्रजापतेर्वा एषा होत्रा यद् ग्रावस्तोत्रीया, तस्यां सर्वे कामा अवरुध्यन्ते; स यदपरिमिताभिरभिष्टौति, सर्वेषां कामानामवरुद्ध्यै।।
सर्वान् कामानवरुन्धे य एवं वेद।।
तस्मादपरिमिताभिरेवाभिष्टुयात्।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि उन मेघ रूप पदार्थों और उनके अन्दर विद्यमान विभिन्न छन्द रश्मियों को प्रकाशित, सक्रिय और असुर तत्त्व से मुक्त करने हेतु पूर्वोक्त कुल १७ छन्द रश्मियों की भाँति कितनी ऋचाओं का प्रकाशन होता है? इनमें से कुछ विद्वानों का मत है कि १०० ऋचाओं की उत्पत्ति होती है और ये ऋचाएं ही मेघरूप पदार्थों में विविध कर्मों का सम्पादन करती हैं। इस विषय में उनका तर्क यह है {इन्द्रियम् = प्राणा इन्द्रियाणि (तां.२.१४.२), धननाम (निघं.२.१०), इन्द्रस्य लिंगम् (म.द.ऋ.भा.१.१०३.१)} कि पुरुष शतायु होता है अर्थात् पुरुष रूपी संवत्सर लोकों में १०० प्रकार के प्राण विद्यमान होते हैं और उनके १०० प्रकार के ही पराक्रम और तेज विद्यमान होते हैं। इसके साथ ही उन १०० प्राण रश्मियों के १०० प्रकार के पृथक्-२ लिंग वा लक्षण होते हैं और वे १०० प्रकार से ही सर्ग प्रक्रिया को तृप्त करते हैं। इस प्रकार उन १०० प्रकार की प्राण रश्मियों से युक्त मेघरूप पदार्थों को प्राणवान्, तेजस्वी आदि लक्षणों वाला बनाये रखने तथा इनको असुर तत्त्व से मुक्त रखने के लिए १०० प्रकार की छन्द रश्मियों की ही आवश्यकता होनी चाहिए।।

अब अन्य विद्वानों का मत प्रस्तुत करते हुए पुनः कहते हैं कि उपर्युक्त कर्मों के लिए १०० छन्द रश्मियों की उत्पत्ति नहीं होती बल्कि ३३ ऋचाओं की उत्पत्ति होती है। इसका कारण बताते हुए वे कहते हैं कि पूर्वोक्त अर्बुदकाद्रवेय ऋषि प्राण कुल ३३ ऋचाओं के द्वारा ही पदार्थ के प्रकाशन और असुर तत्त्व के विनाशन का कार्य करते हैं और देवता स्वयं भी ३३ प्रकार के ही होते हैं। इस प्रकार ३३ छन्द रश्मियां ही उत्पन्न होनी चाहिए। इनके द्वारा ही असुर तत्त्व नष्ट वा नियन्त्रित होकर मेघरूप पदार्थ और उनमें विद्यमान विभिन्न रश्मियां वा परमाणु आदि पदार्थ प्रकाशित वा सक्रिय होकर निरापद रूप से लोक निर्माण की प्रक्रिया को सम्पन्न कर पाते हैं। यहाँ ३३ देवों से तात्पर्य विभिन्न प्रकार की छन्द रश्मियां ही हैं। इसके विशेष परिज्ञान के लिए २.३७.५ में "सा विराट् त्रयस्त्रिंशदक्षरा................" कण्डिका का व्याख्यान द्रष्टव्य है। यहाँ ३३ ऋग् रूप छन्द रश्मियों के द्वारा ऐसे ही देव रूप छन्दों को प्रकाशित व सक्रिय करके असुर तत्त्व के नष्ट वा नियंत्रित होने की चर्चा की गयी है।।

अब महर्षि इन दोनों मतों से अलग हटकर अपना मत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि १०० अथवा ३३ छन्द रश्मियां ही इस उपर्युक्त कार्य के लिए पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि अपरिमित छन्द रश्मियों की अनिवार्यता होती है। इसका हेतु बतलाते हुए ऋषि लिखते हैं कि प्रजापति भी अपरिमित है। इसका तात्पर्य यह है कि सर्ग यज्ञ रूपी प्रजापति अथवा मनस्तत्त्व रूपी प्रजापति दोनों ही अपरिमित होते हैं। मनस्तत्त्व के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है-

"अपरिमिततरमिव हि मनः" (श.१.४.४.७), "अनन्तं वै मनः" (श.१४.६.१.११)

इन दोनों के अतिरिक्त सृष्टि का मूल पदार्थ प्रकृति भी अपरिमित होता है। मानव की दृष्टि से यह ब्रह्माण्ड भी अपरिमित ही है। इस कारण अपरिमित संख्या में मेघरूप पदार्थ और उनमें विद्यमान अपरिमित परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को सक्रिय व सतेज करने के लिए और उन्हें असुर तत्त्व से मुक्त रखने के लिए अपरिमित छन्द रश्मियों की ही आवश्यकता होती है। इन अपरिमित छन्द रश्मियों से इस अपरिमित सृष्टि में विद्यमान सभी अपरिमित रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों में अपरिमित अर्थात् सभी प्रकार के कमनीय बल उत्पन्न हो जाते हैं। इस कारण जब इन अपरिमित छन्द रश्मियों के द्वारा विभिन्न मेघरूप पदार्थ प्रकाशित और सक्रिय होते हुए असुर रश्मियों को नियन्त्रित करने में समर्थ होते हैं, उस समय वे अपनी सभी प्रकार की क्रियाओं और बलों से युक्त होते हैं। इस प्रकार जब अपरिमित प्रकाशक छन्द रश्मियों की विद्यमानता हो जाती है, तब सृष्टि प्रक्रिया की सम्पूर्ण सफलता प्राप्त होती है। इस कारण अपरिमित छन्द रश्मियों की ही उत्पत्ति होती है।।+।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- कॉस्मिक मेघों में लोक निर्माण की प्रक्रिया सम्पन्न करने में अर्थात् विभिन्न तारे, ग्रह और उपग्रह आदि लोकों की उत्पत्ति में डार्क एनर्जी बार-२ दृश्य पदार्थ पर प्रहार करती है, जिससे वे कॉस्मिक मेघ बार-२ छिन्न-भिन्न होने लगते हैं। उस समय जो पूर्वोक्त छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर उस डार्क एनर्जी को नियन्त्रित करने का प्रयास करती हैं, वे कभी-२ असफल भी हो सकती हैं। इस कारण इस प्रक्रिया में निश्चित छन्द रश्मियां उत्पन्न न होकर अपरिमित मात्रा में छन्द रश्मियां उत्पन्न होती रहती हैं। वस्तुतः यह ब्रह्माण्ड सर्वज्ञ ईश्वर की अपेक्षा परिमित परन्तु अल्पज्ञ मानव की दृष्टि से अपरिमित ही है। इस अपरिमित ब्रह्माण्ड की रचना में अपरिमित रश्मियां निरन्तर लगी रहती हैं। उन रश्मियों को निरन्तर सक्रिय रखने के लिए तथा डार्क एनर्जी को सतत नियन्त्रित रखने के लिए अपरिमित मात्रा में ही छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जिनके कारण सृष्टि की सभी प्रक्रियाएं सुचारुरूप से चलती रहती हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग पठनीय है।।

२. तदाहुः कथमभिष्टुयादित्यक्षरशा३ः, चतुरक्षरशा३ः, पच्छा३ः, अर्धर्चशा३ः, ऋक्शा३ः, इति तद्यदृक्शो न तदवकल्पतेऽथ यत्पच्छो नो एव तदवकल्पतेऽथ यदक्षरशश्चतुरक्षरशो वि तथा छन्दांसि लुप्येरन्, बहूनि तथाऽक्षराणि हीयेरन्नर्धर्चश एवाभिष्टुयात् प्रतिष्ठाया एव।।
द्विप्रतिष्ठो वै पुरुषश्चतुष्पादाः पशवो यजमानमेव तद्द्विप्रतिष्ठं चतुष्पात्सु पशुषु प्रतिष्ठापयति; तस्मादर्धर्चश एवाभिष्टुयात्।।
तदाहुर्यन्मध्यंदिने मध्यंदिन एव ग्राव्णोऽभिष्टौति, कथमस्येतरयोः सवनयोरभिष्टुतं भवतीति; यदेव गायत्रीभिरभिष्टौति, गायत्रं वै प्रातःसवनं तेन प्रातःसवने, ऽथ यज्जगतीभिरभिष्टौति जागतं वै तृतीयसवनं तेन तृतीयसवने।।
एवमु हास्य मध्यंदिने मध्यंदिन एव ग्राव्णोऽभिष्टुवतः सर्वेषु सवनेष्वभिष्टुतं भवति य एवं वेद।।
तदाहुर्यदध्वर्युरिवान्यानृत्विजः संप्रेष्यत्यथ कस्मादेष एतामसंप्रेषितः प्रतिपद्यत इति; मनो वै ग्रावस्तोत्रीयाऽसंप्रेषितं वा इदं मनस्तस्मादेष एतामसंप्रेषितः प्रतिपद्यते।।२।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का प्रश्न उठाते हुए लिखते हैं कि वे अपरिमित छन्द रश्मियां, जो उन मेघरूप पदार्थों को प्रकाशित और सक्रिय करके सृजनशील बनाती हैं तथा असुर तत्त्व को नष्ट वा नियन्त्रित करने में वज्र रश्मियों का कार्य करती हैं, वे किस प्रकार प्रकाशित होती हैं? यहाँ उनके प्रकाशित होने के चार विकल्प दिये हैं-

(१) {अवकल्पते = अव+क्लृप् = सम्पन्न करना - आप्टेकोश} क्या ये छन्द रश्मियां अक्षरशः उत्पन्न

होती हैं अर्थात् क्या उनमें उत्पन्न होते समय प्रत्येक अक्षररूप अवयव के मध्य अवसान अर्थात् विराम होता है अथवा ये छन्द रश्मियां एकरस रूप उत्पन्न होती हैं? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए अथवा इस विकल्प का खण्डन करते हुए महर्षि कहते हैं कि ऐसा नहीं होता है, क्योंकि ऐसा होने से वे छन्द रश्मियां विखरकर अन्तरिक्ष में लुप्त ही हो जाएंगी और ऐसा करने में कई अक्षर कम हो जाएंगे। इस कमी का कारण यह प्रतीत होता है कि जिस प्रकार विभिन्न पदों की संधि होने पर कभी-२ कुछ अक्षरों का द्वित्व वा आगम आदि होता है, उनके संधिरहित होने पर इनका अभाव हो जाने से कई अक्षर कम हो जायेंगे। ऐसा ही ब्रह्माण्ड में उन ऋचाओं की उत्पत्ति यदि अक्षरशः अवसान के साथ होवे, तो वे अक्षर उत्पन्न ही नहीं होंगे। इसलिए अक्षर संख्या में न्यूनता हो जाने से छन्द यथावत् निर्मित नहीं हो पायेंगे। इस कारण उन रश्मियों की उत्पत्ति अक्षरशः अवसान के साथ नहीं होती।

(२) क्या उन छन्द रश्मियों की उत्पत्ति चतुरक्षरशः अर्थात् चार-२ अक्षरों के पश्चात् अवसान के रूप में नहीं होती? महर्षि इस प्रश्न का उत्तर देते हुए अथवा इस विकल्प का खण्डन करते हुए कहते हैं कि ऐसा भी नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसा होने पर भी वे छन्द रश्मियां विखर जायेंगी तथा पूर्ववत् अक्षरों की संख्या भी कम हो जायेगी। इसलिए चार अक्षरों के पश्चात् भी अवसान वा विराम नहीं होता।

(३) क्या पादशः अवसान अर्थात् एक-२ पाद के पश्चात् विराम के साथ छन्द रश्मियों की उत्पत्ति नहीं हो सकती? इस प्रश्न के उत्तर में अथवा इस विकल्प का खण्डन करते हुए महर्षि कहते हैं कि ऐसा होना भी संभव नहीं है, क्योंकि ऐसा होने से प्रत्येक पाद में दुर्वलता आ जायेगी, जिससे छन्द रश्मियों का वज्ररूप अर्थात् शक्तिशाली रूप में प्रकट होना सम्भव नहीं हो पायेगा। इसलिए पादशः अवसान की अवधारणा भी उचित नहीं है।

(४) क्या प्रत्येक ऋचा के पश्चात् अवसान के साथ इन ऋचाओं की उत्पत्ति नहीं होती? महर्षि इस प्रश्न के उत्तर में अर्थात् इसका खण्डन करते हुए कहते हैं कि ऐसा भी नहीं होता, क्योंकि ऐसा होने पर ये छन्द रश्मियां हीनबलता को प्राप्त हो जायेंगी। इस परिस्थिति में वे छन्द रश्मियां हीनवल क्यों हो जाती हैं? इस विषय में हमारा मत यह है कि ऋचा के अन्तिम अक्षर के साथ **'ओम्'** छन्द रश्मि तुरन्त संयुक्त होकर उसे अन्य छन्द रश्मि से संयुक्त करती है। यहाँ विराम होने से इस क्रिया में कुछ बाधा आ सकती है। इसके साथ ही दो छन्द रश्मियों के मध्य अनेकत्र **'हिम्'** छन्द रश्मि भी प्रकट होती है। इस कारण भी दो छन्द रश्मियों के मध्य विशेष अवसान सम्भव नहीं है।

(५) अब महर्षि अपना मत प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि उपर्युक्त चारों विकल्पों से सर्ग प्रक्रिया वाधित हो जायेगी, केवल आधी-२ छन्द रश्मियों के पश्चात् अवसान होने पर ही उन छन्द रश्मियों के प्रतिष्ठित और सबल होने पर उन मेघरूप पदार्थों अथवा सृष्टि की अन्य प्रक्रियाओं को सक्रिय और सतेज किया जाता है और असुर तत्त्व को नष्ट वा नियन्त्रित किया जाता है। इस विषय में खण्ड २.१८ भी द्रष्टव्य है। इस विषय में हमारा मत यह भी है कि उपर्युक्त ५ विकल्पों में से प्रथम चार विकल्पों में अवसान का निषेध किया गया है। उसे सर्वथा निरपेक्ष नहीं मानना चाहिये, क्योंकि कोई भी छन्द, पाद वा पद रूप छन्द रश्मियां सर्वथा एकरस कभी नहीं हो सकती, क्योंकि सर्वथा एकरस होने से उनका छन्द स्वरूप समाप्त हो जायेगा। अक्षर, पादों वा पदों के वीच कुछ भी विराम न होने से उनका वैशिष्ट्य समाप्त हो जायेगा, जो केवल महाप्रलय अथवा प्रकृति अवस्था में ही होता है, सृष्टि काल में कदापि नहीं।।

यहाँ उपर्युक्त प्रक्रिया का प्रभाव वतलाते हुए महर्षि लिखते हैं कि पुरुष रूपी यज्ञ के दो आधार होते हैं, वे आधार मुख्यतः हैं- मन-वाक् अथवा प्राण-अपान अथवा आकर्षण-धारण अथवा आकर्षण-प्रतिकर्षण बल आदि और पशु अर्थात् विभिन्न छन्द वा मरुद् रश्मियां चार पादों अथवा चार प्रकार की गतियों से युक्त होती हैं। जब उपर्युक्त वज्ररूप छन्द रश्मियां अपने आधे-२ भाग के पश्चात् अवसान के साथ स्पन्दित होती हैं, तव प्राणापान वा आकर्षण-धारण आदि युग्म उन पशुरूप छन्द वा मरुद् रश्मियों में प्रतिष्ठित होकर उन्हें सक्रिय और सतेज करते हुए असुरादि वाधक रश्मियों से मुक्त रखते हैं। इस कारण आधी-२ ऋचाओं के पश्चात् ही कुछ विराम उत्पन्न होता है। वस्तुतः इस प्रकार दो भागों में स्पन्दित छन्द रश्मियां ही पुरुष रूप होकर चतुष्पात् अन्य छन्द वा मरुद् रश्मियों के अन्दर प्रतिष्ठित होकर उन्हें सक्रिय, सतेज करके असुर तत्त्वों से मुक्त रखकर लोक निर्माण प्रक्रिया को निरापद बनाती हैं। इस विषय में खण्ड २.१८ भी द्रष्टव्य है।।

यहाँ महर्षि पुनः कुछ विद्वानों का प्रश्न उठाते हुए लिखते हैं कि मध्यन्दिन सवन अर्थात् लोक निर्माण प्रक्रिया के मध्यम चरण में उपर्युक्त ग्रावास्तवन की क्रिया सम्पन्न होती है अर्थात् यहाँ अन्तरिक्ष में त्रिष्टुप् आदि छन्द रश्मियों के द्वारा विभिन्न छन्द रश्मियां प्रकाशित हो उठती हैं। त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों का माध्यंदिनसवन से सम्बन्ध बतलाते हुए ऋषियों का कथन है-

"ऐन्द्रं हि त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सवनम्" (गो.उ.४.४)
"त्रैष्टुभं वै माध्यन्दिनं सवनम्" (ऐ.६.११)
"त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सवनम्" (ष.१.४)

त्रिष्टुप् का अन्तरिक्ष से सम्बन्ध बतलाते हुए ऋषियों का कथन है-

"त्रैष्टुभोऽन्तरिक्षलोकः" (कौ.ब्रा.८.६)
"त्रैष्टुभमन्तरिक्षम्" (श.८.३.४.११)
"अन्तरिक्षं त्रिष्टुप्" (जै.उ.१.१७.३.३)

इस कारण यहाँ प्रश्न यही उठाया गया है कि आकाश तत्त्व के अतिनिकट त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां सर्ग प्रक्रिया के मध्यम चरण में वज्र रश्मियों का कार्य करते हुए मेघरूप पदार्थों को पूर्ववत् प्रकाशित करती हैं। तब प्रश्न यह है कि अन्य सवनों अर्थात् प्रातःसवन एवं तृतीय सवन अर्थात् सृष्टि के प्रथम और अन्तिम चरण में कौनसी छन्द रश्मियां इस प्रकाशन कार्य को करती हैं। इसका उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि प्रातःसवन अर्थात् प्रारम्भिक स्थिति में गायत्री छन्द रश्मियां इस कार्य को करती हैं। गायत्री रश्मियों का प्रातःसवन से सम्बन्ध बतलाते हुए अन्य ऋषियों का भी कथन है-

"गायत्रं वै प्रातःसवनम्" (ष.१.४)
"गायत्रं प्रातःसवनम्" (जै.उ.४.२.१.२)

उस समय ये गायत्री छन्द रश्मियां, विशेषकर दैवी गायत्री रश्मियां प्राण रश्मियों को संगत वा प्रकाशित करने में विशेष उपयोगी होती हैं। गायत्री का प्राण से सम्बन्ध बतलाते हुए कहते हैं-

"प्राणो गायत्रं (साम)" (तां.७.१.६)
"तत्प्राणो वै गायत्रम्" (जै.उ.१.१२.३.७)
"गायत्रः प्राणः" (तै.ब्रा.३.३.५.३)

दैवी से भिन्न अन्य गायत्री छन्द रश्मियां अप्रकाशित कणों वा अग्नि के परमाणुओं को प्रकाशित व संगत करने में विशेष उपयोगी होती हैं, क्योंकि इस छन्द रश्मि का अग्नि और पृथिवी से विशेष सम्बन्ध होता है। इस विषय में कहा गया है-

"गायत्रच्छन्दा अग्निः" (तां.१६.५.१६)
"गायत्रोऽयं (भूलोकः)" (कौ.ब्रा.८.६)

इसके अनन्तर महर्षि लिखते हैं कि जगती छन्द रश्मियां तृतीय सवन अर्थात् तृतीय चरण में पदार्थों को प्रकाशित व सक्रिय करती हैं। इन रश्मियों का तृतीय सवन से सम्बन्ध बतलाते हुए अन्य ऋषियों का भी कथन है-

"जागतमु वै तृतीयसवनम्" (गो.उ.२.२२)
"जागतं हि तृतीयसवनम्" (कौ.ब्रा.१६.१)

ये जगती छन्द रश्मियां, विशेषकर आदित्य अर्थात् प्रकाशादि रश्मियों को विशेष प्रकाशित और बलवती बनाती हैं। इनका आदित्य लोकों से सम्बन्ध बतलाते हुए ऋषियों का कथन है-

"आदित्या जगतीं समभरन्" (जै.उ.१.४.४.६)
"जागतो वा आदित्यः" (तां.४.६.२३)
"बलं वै वीर्यं जगती" (कौ.ब्रा.११.२)

इस प्रकार पूर्व में उत्पन्न विभिन्न प्रकार की प्रकाशक छन्द रश्मियों में ये तीनों ही प्रकार की छन्द रश्मियां विद्यमान होने से सृष्टि के तीनों सवन अर्थात् चरण प्रकाशित और सक्रिय हो उठते हैं।।

इस प्रकार की स्थिति बनने पर मध्यम चरण में अन्तरिक्ष में त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के द्वारा वज्र रश्मियों का रूप धारण करने से ही अन्य दोनों सवनों में कार्य करने वाली गायत्री और जगती आदि छन्द रश्मियां भी प्रकाशित और सक्रिय होकर प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के परमाणुओं को आकाश तत्त्व के साथ संगत करके सक्रिय और सबल बनाकर असुर तत्त्व से मुक्त करती हैं। इस

प्रकार त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां ही मुख्यतः वज्ररूप रश्मियों का कार्य करती हैं।।

{अध्वरम् = अन्तरिक्षनाम (निघं.१.३)} यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि अध्वर्यु अर्थात् अन्तरिक्ष को चाहने = आकर्षित करने वाली पूर्वोक्त त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां जब अन्य ऋत्विज् रूप छन्द रश्मियों को सम्प्रेषित वा प्रेरित करती हैं, तब किस कारण से गायत्री आदि रश्मियां त्रिष्टुप् रश्मियों की उत्पत्ति के पूर्व ही अर्थात् उनसे सम्प्रेषित = प्रेरित हुए बिना कैसे उत्पन्न होती और कार्य करती हैं? इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि ग्रावा अर्थात् विभिन्न छन्द व प्राण रश्मियों को मूल रूप से प्रकाशित और सक्रिय करने वाला तत्त्व मनस्तत्त्व ही होता है और यह मनस्तत्त्व किसी भी छन्द वा प्राण रश्मि द्वारा प्रेरित वा प्रकाशित नहीं होता। इसलिए इसको असंप्रेरित कहा है। सबका प्रेरक होने से इसको सविता कहा गया है- "मन एव सविता" (गो.पू.१.३३; जै.उ.४.१२.१.१५)। इस कारण यह मनस्तत्त्व ही त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के अभाव में गायत्री आदि छन्द रश्मियों को प्रेरित करता है। पुनः त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के उत्पन्न होने पर ये छन्द रश्मियां मनस्तत्त्व से प्रेरित होकर अन्य रश्मियों को प्रेरित करने लगती हैं। त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों द्वारा अन्य छन्द रश्मियों पर नियंत्रण के विषय में महर्षि जैमिनी का कथन है-

"त्रिष्टुभं वै छन्दसां जयति" (जै.ब्रा.१.३५)।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- कॉस्मिक मेघों के अन्दर लोक-निर्माण की प्रक्रिया के अन्तर्गत डार्क एनर्जी का जो प्रहार होता है, उसको दूर करने के लिए जो विभिन्न छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, उन छन्द रश्मियों में से प्रत्येक छन्द रश्मि के मध्य भाग में कुछ विराम होता है। यद्यपि, सभी छन्द रश्मियों के सभी अक्षर और पादरूप अवयवों के मध्य भी बहुत सूक्ष्म विराम होता है। **महाप्रलय की अवस्था में प्रकृति रूप पदार्थ ही सर्वथा एकरस होता है।** इसके अतिरिक्त कोई भी जड़ पदार्थ पूर्णतः एकरस कभी नहीं होता। विभिन्न छन्द व मरुद् रश्मियां चार प्रकार की गतियों से युक्त होती हैं। त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों का आकाश तत्त्व के साथ विशेष सम्बन्ध होता है। यद्यपि मनस्तत्त्व सभी प्रकार की वाग् रश्मियों का प्रेरक और प्रकाशक होता है, तदपि उसके उपरान्त त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां ही अन्य सभी छन्द रश्मियों को उत्तेजित और नियन्त्रित करने में विशेष भूमिका निभाती हैं। गायत्री छन्द रश्मियों का विभिन्न मूलकणों से विशेष सम्बन्ध होता है, जबकि जगती छन्द रश्मियों का विशेष सम्बन्ध विद्युत् चुम्बकीय तरंगों से होता है।

ॐ इति २६.२ समाप्तः ॐ

ॐ अथ २६.३ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. वाग्वै सुब्रह्मण्या, तस्यै सोमो राजा वत्सः; सोमे राजनि क्रीते सुब्रह्मण्यामाह्वयन्ति, यथा धेनुमुपह्वयेत् तेन वत्सेन; यजमानाय सर्वान् कामान् दुहे।। सर्वान् हास्मै कामान् वाग्दुहे य एवं वेद।।
तदाहुः किं सुब्रह्मण्यायै सुब्रह्मण्यात्वमिति; वागेवेति ब्रूयाद्-वाग्वै ब्रह्म च सुब्रह्म चेति।।
तदाहुरथ कस्मादेनं पुमांसं सन्तं स्त्रीमिवाऽऽचक्षत इति? वाग्घि सुब्रह्मण्येति ब्रूयात्, तेनेति।।

व्याख्यानम्- वाक् तत्त्व सदैव ही व्यापक मनस्तत्त्व रूपी ब्रह्म में रमण करता है अर्थात् यह मनस्तत्त्व से कभी भी पृथक् नहीं रह सकता। वस्तुतः मनस्तत्त्व के अन्दर उत्पन्न होने वाले नाना प्रकार के स्पन्दन ही वाग् रश्मियों का रूप होते हैं। इस कारण वाक् को सुब्रह्मण्या भी कहा जाता है। इस सुब्रह्मण्या वाक् में सब प्रकार की छन्द रश्मियों का ग्रहण होता है। इसी कारण महर्षि जैमिनी ने कहा है-

"एतस्याम् (सुब्रह्मण्यायाम्) एवैतत्सर्वं यद् ऋक् साम यजुः।
तेनास्य सुब्रह्मण्या स्तोत्रवती शस्त्रवती भवति" (जै.ब्रा.२.८०)

इन सुब्रह्मण्या वाग् रश्मियों से ही सोम राजा अर्थात् प्रकाशित सोम रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इसी कारण महर्षि तित्तिर का कथन है-

"छन्दांसि खलु वै सोमस्य राज्ञः साम्राज्यो लोकः" (तै.सं.३.१.२.१)

इसी कारण यहाँ ग्रन्थकार ने सोम रश्मियों को वाक् तत्त्व का वत्स कहा है। सृष्टि प्रक्रिया के प्रारम्भिक काल में जब सोम अर्थात् मरुद् रश्मियां गन्धर्व अर्थात् मनस्तत्त्व वा सूत्रात्मा वायु के अधीन होती हैं। (इस विषय में खण्ड १.२७ द्रष्टव्य है) तब वे सोम रश्मियां विभिन्न प्राण रश्मियों के साथ संगत होने तथा गन्धर्व संज्ञक मनस्तत्त्व एवं सूत्रात्मा वायु के सर्वथा नियन्त्रण से मुक्त होने के लिए अपनी मातृरूप वाग् रश्मियों को निरन्तर आकृष्ट करती हैं। इसे ही यहाँ सोमराजा द्वारा वाग् रूप सुब्रह्मण्या का आवाहन करना कहा गया है। खण्ड १.२७ में भी वाक् तत्त्व द्वारा सोम अर्थात् मरुद् रश्मियों की मुक्ति की चर्चा की गयी है। यहाँ उपमा देते हुए महर्षि लिखते हैं कि जैसे कोई गाय का बछड़ा अपनी माँ से दूर होने पर उसे सतत पुकारता रहता है, वैसे ही सोम रश्मियां वाग् रश्मियों को आकर्षित करती रहती हैं। इस आकर्षण से सर्ग प्रक्रिया में आवश्यक सभी प्रकार के कमनीय बल उत्पन्न होकर नाना प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करते हैं। हम जानते हैं कि छन्द वा मरुद् रश्मियां प्राण रश्मियों के साथ संयुक्त होकर ही नाना प्रकार की क्रियाओं को सम्पादित करके नाना प्रकार के परमाणुओं एवं रश्मि आदि पदार्थों को उत्पन्न करती हैं। इस प्रकार सृष्टि की सभी वांछित क्रियाएं सुचारु रूप में चलती रहती हैं। इस प्रकार की स्थिति बनने पर अर्थात् सोम रश्मियों के वाग् रश्मियों के साथ परिपूर्ण होने पर सृष्टि प्रक्रिया वांछनीय ढंग से सम्पादित होती है।।+।।

इस विषय में कुछ विद्वान् प्रश्न करते हैं कि वाक् तत्त्व को सुब्रह्मण्या क्यों कहते हैं? इसका उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि वाक् को सुब्रह्मण्या इस कारण कहते हैं कि ब्रह्म अर्थात् सम्पूर्ण छन्द राशि रूपी वेद वाक् रूप ही है और मूल वाक् अर्थात् 'ओम्' छन्द रश्मि रूपी वाक् तत्त्व उस छन्द राशि रूपी वेद का सार रूप है। इसी कारण 'ओम्' के विषय में महर्षि जैमिनी का कथन है-

"रस ओमुकारः" (जै.ब्रा.२.७८ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत)

"एतद् (ओमिति) एवाक्षरं त्रयी विद्या" (जै.उ.१.४.४.१०)
"एतद्ध वा (ओमिति) अक्षरं वेदानां त्रिविष्टपम्" (जै.उ.३.४.५.७)
"एतद्ध (ओमिति) वा इदं सर्वमक्षरम्" (जै.ब्रा.२.१०)

इन सभी वचनों से यह सिद्ध होता है कि 'ओम्' छन्द रश्मि रूपी मूल वाक् वेद रूपी छन्द राशि में सदैव व्याप्त रहने वाली उसकी रस रूप रश्मि है। इसलिए इसे ही 'सुब्रह्म' कहते हैं और यह 'सुब्रह्म' शब्द ही सुब्रह्मण्या रूप से यहाँ प्रयुक्त है।।

इस पर पुनः एक प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि यह वाक् तत्त्व {पुमान् = वीर्यं पुमान् (श.२.५.२.३६), पुमान् पुरुमना भवति पुंसतेर्वा (नि.६.१५)} पुरुष के समान विभिन्न छन्दादि रश्मियों एवं परमाणु आदि पदार्थों में तेज और बल का बीजवपन करता है तथा मनस्तत्त्व से प्रचुर मात्रा में संसिक्त होकर प्रचुर तेज से परिपूर्ण होता है, फिर भी इसे स्त्री रूप से क्यों संबोधित करते हैं? इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि यह वाक् तत्त्व सुब्रह्मण्या रूप होता है अर्थात् उसमें मनस्तत्त्व ही बीज वपन करने वाला, पालक एवं आश्रयदाता होता है। इस कारण मनस्तत्त्व पुरुषरूप और इसमें आश्रित वाक् तत्त्व स्त्री रूप होता है, इसलिए इसे सुब्रह्मण्या (स्त्रीवाची) नाम से सम्बोधित करते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सभी वाग् रश्मियां मनस्तत्त्व के अन्दर स्पन्दन रूप में उत्पन्न होती हैं। ऋग्, यजु और साम सभी प्रकार की छन्द रश्मियां इसी रूप में उत्पन्न होती हैं। विभिन्न सोम अर्थात् मरुद् रश्मियां, जो स्वयं वाक् तत्त्व का ही रूप हैं, निरन्तर सूक्ष्मतम स्पन्दन रूप **'ओम्'** छन्द रश्मियों को अपनी ओर आकृष्ट करती रहती हैं। उनके आकर्षण से सोम अर्थात् मरुद् रश्मियां प्राण रश्मियों के साथ मिलकर सृष्टि की उत्पत्ति प्रक्रिया का सम्पादन करती हैं। **'ओम्'** वाग् रश्मि सभी छन्द रश्मियों और सम्पूर्ण मनस्तत्त्व में व्याप्त रहती है। मनस्तत्त्व इस छन्द रश्मि को निरन्तर तेज और बल से युक्त करता रहता है और यह छन्द रश्मि अन्य सभी छन्द रश्मियों की रसरूप होकर उनमें तेज और बल का संचरण करती रहती है।।

२. तदाहुर्यदन्तर्वेदीतर ऋत्विज आर्त्विज्यं कुर्वन्ति, बहिर्वेदि सुब्रह्मण्या; कथमस्यान्तर्वेद्यार्त्विज्यं कृतं भवतीति? वेदेर्वा उत्करमुत्किरन्ति, यदेवोत्करे तिष्ठन्नाह्वयतीति ब्रूयात्, तेनेति।।
तदाहुरथ कस्माद् उत्करे तिष्ठन् सुब्रह्मण्यामाह्वयतीत्यृषयो वै सत्रमासत, तेषां यो वर्षिष्ठ आसीत् तमब्रुवन् सुब्रह्मण्यामाह्वय त्वं नो नेदिष्ठाद् देवान् ह्वयिष्यसीति; वर्षिष्ठमेवैनं तत्कुर्वन्त्यथो वेदिमेव तत्सर्वां प्रीणाति।।
तदाहुः कस्मादस्मा ऋषभं दक्षिणामभ्याजन्तीति; वृषा वा ऋषभो योषा सुब्रह्मण्या, तन्मिथुनं, तस्य मिथुनस्य प्रजात्या इति।।

व्याख्यानम्- {उत्करः = एष वेद्या आत्मा यदुत्करः (जै.ब्रा.२.७८ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत), वाल्मीक उत्करः (मै.४.१.१३, काठ.३१.१२), (वाल्मीकः = सर्पाणां वल्मीको गृहाः - मै.४.१.१३; काठ.३१.१२)} प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए महर्षि कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि वाक् तत्त्व अर्थात् 'ओम्' छन्द रश्मि के अतिरिक्त सभी ऋत्विज् अर्थात् विभिन्न प्रकार की प्राणादि रश्मियां एवं परमाणु आदि पदार्थ सर्ग यज्ञ की वेदि के अन्दर अपना ऋत्विज् कर्म अर्थात् परस्पर संयोग-वियोगादि कर्म करते हुए उस वेदि के अन्दर ही विभिन्न प्रकार से रूपान्तरित होते रहते हैं। उधर, वाक् तत्त्व अर्थात् 'ओम्' छन्द रश्मि वेदि से बाहर रहकर ही अपना कर्म करती रहती है। इसका तात्पर्य यह है कि 'ओम्' छन्द रश्मियां इस सर्ग प्रक्रिया में केवल प्रेरक का कार्य करती हैं, न कि स्वयं रूपान्तरित होकर अन्य पदार्थों का निर्माण करती हैं। तब मुख्य प्रश्न यह है कि ऐसी स्थिति में 'ओम्' छन्द रश्मियां कैसे सर्ग प्रक्रिया के अन्दर अपनी प्रेरणा से कोई कार्य कर पाती हैं और कैसे इन रश्मियों को सर्ग प्रक्रिया का भाग माना

जाता है? इसका उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि ये रश्मियां सर्ग यज्ञ रूपी वेदि में 'उत्कर' अर्थात् विभिन्न सर्प रूपी प्राण वा छन्दादि रश्मियों एवं परमाणु आदि पदार्थों के सर्पिलाकार मार्गों को खोदती अर्थात् बनाती हैं। उन मार्गों में स्थित होकर ही सभी प्रकार की रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थ गमन करते हैं और गमन करते हुए वे तेज और बल प्राप्त करने के लिए 'ओम्' छन्द रश्मियों को निरन्तर आकर्षित करते रहते हैं। वे 'ओम्' छन्द रश्मियां भी उन मार्गों में गमन करती हुई उन परमाणु वा रश्मियों को उनके विविध कर्मों के लिए प्रेरित वा सक्रिय करती रहती हैं। बिना 'ओम्' रूपी वाक् तत्त्व के कोई भी रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थ कभी भी किसी क्रिया और बल को प्राप्त नहीं कर सकता। इस कारण यह सूक्ष्मतम वाक् तत्त्व सर्ग यज्ञ रूपी वेदि से बाहर रहने पर भी उसके मध्य स्थित ही माना जाता है अर्थात् उसकी भूमिका को स्पष्ट रूप से स्वीकारा जाता है।।

इस विषय में पुनः कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि विभिन्न प्राणादि रश्मियां एवं परमाणु आदि पदार्थ 'ओम्' छन्द रश्मियों द्वारा उत्कीर्ण मार्गों में स्थित होकर क्यों सुब्रह्मण्या संज्ञक 'ओम्' रश्मियों को आकर्षित करते रहते हैं? इसके साथ ही वे 'ओम्' छन्द रश्मियां कैसे सर्ग यज्ञ में प्रत्यक्ष भाग न लेते हुए भी विभिन्न मार्गों पर गमन करते हुए विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को प्रेरित और तेज-बल युक्त करती हैं? इसका उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि सृष्टि प्रक्रिया के इस चरण के पूर्व भी जब एक अत्यन्त सूक्ष्म यज्ञ प्रारम्भ होता है, तब विभिन्न ऋषि रूप प्राथमिक प्राण रश्मियों से संगम की क्रिया प्रारम्भ होती है। उस समय मनस्तत्त्व संज्ञक प्राण सबसे सूक्ष्म और वृद्ध होता है, जो सर्वोपरि प्राथमिक बलों को धारण करता है। इस मनस्तत्त्व को भरद्वाज नाम से भी सम्बोधित किया गया है जिसके विषय में ऋषियों का कथन है-

"भरद्वाजो ह वा ऋषीणामनूचानतमो दीर्घजीवितमस्तपस्वितम आस" (ऐ.आ.१.२.२)

"मनो वै भरद्वाज ऋषिरन्नं वाजो यो वै मनो बिभर्ति सोऽन्नं वाजं भरति तस्मान्मनो भरद्वाज ऋषिः" (श.८.१.१.६)।

इसका आशय यह है कि यह मनस्तत्त्व ही विभिन्न संयोजक बलों और संयोज्य परमाणुओं वा रश्मियों का भरण-पोषण करता है। जब प्रारम्भ में 'ओम्' छन्द रश्मि और प्राणापानादि एवं दैवी छन्द रश्मि आदि पदार्थ उत्पन्न हुए होते हैं, तब 'ओम्' छन्द रश्मि इन सभी रश्मि आदि पदार्थों के साथ संगत होती है। उस समय मनस्तत्त्व ही 'ओम्' छन्द रश्मि को आकर्षित करके अन्य रश्मियों के साथ संगत करता है। उसके पश्चात् ही 'ओम्' छन्द रश्मि सभी छन्दादि रश्मियों को संगत करने के लिए उपर्युक्त प्रकार से निरन्तर प्रेरित करने लगती है। जिस प्रकार 'ओम्' छन्द रश्मि बाहर से प्रेरित करती हुई समस्त रश्मि आदि पदार्थों को संगत करती है, उसी प्रकार मनस्तत्त्व भी परोक्ष रूप से 'ओम्' छन्द रश्मियों को आकर्षित और प्रेरित करके उन्हें अन्य प्राण वा छन्दादि रश्मियों के साथ निरन्तर संगत करता है। इस प्रकार सृष्टि यज्ञ की वेदि निर्विघ्न और अविराम रूप से संचालित होती रहती है और इसका मूल जड़ संचालक मनस्तत्त्व ही होता है। ध्यातव्य है कि यह **मनस्तत्त्व भी अपने कारणरूप जड़ पदार्थ प्रकृति में स्थित रहकर सबके आद्य प्रेरक चेतन ईश्वर तत्त्व से सदैव प्रेरित होता रहता है और यह चेतन ईश्वर तत्त्व 'ओम्' छन्द रश्मि के द्वारा ही सक्रिय व प्रेरित करता है, फिर यही उस 'ओम्' छन्द रश्मि को भी प्रेरित करता है।** इसी कारण महर्षि जैमिनी का कथन है-

"वागिति मनः" (जै.उ.४.११.१.११)

स्मरणीय है कि 'ओम्' रश्मि का परारूप मनस्तत्त्व का प्रेरक होता है, जबकि इसका पश्यन्ती रूप मनस्तत्त्व से प्रेरित होता है।।

इस प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए महर्षि पुनः कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि सुब्रह्मण्या वाक् तत्त्व के लिए {दक्षिणा = दक्षते वर्धते शीघ्रकारी भवति वा स दक्षिणः, सरलो अवामभागः परतन्त्राऽनुवर्त्तनश्च, स्त्रियां दक्षिणा दानं, प्रतिष्ठा वा (उ.को.२.५१)। ऋषभः = अतिश्रेष्ठः (तु.म.द.य.भा.२८.३४), वीर्यं वा ऋषभः (तां.१८.६.१४)} अतिश्रेष्ठ तेजस्वी आधार रूप मनस्तत्त्व क्यों प्रकट होता है? बिना मनस्तत्त्व के सुब्रह्मण्या 'ओम्' छन्द रश्मि क्यों अपना कार्य नहीं कर पाती है? वह मनस्तत्त्व 'ओम्' छन्द रश्मियों के क्यों सदैव ही निकट रहता है? इसका उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि सर्वश्रेष्ठ तत्त्व 'मन' वृषा रूप होता है और सुब्रह्मण्या 'ओम्' छन्द रश्मि योषा रूप होती है। यह मनस्तत्त्व योषा रूप

'ओम्' छन्द रश्मियों में निरन्तर बल और तेज का संचरण करता है। इस कारण इन दोनों ही पदार्थों का सदैव मिथुन रूप ही कार्यरत रहता है। इसी कारण ग्रन्थकार ने कहा है- "वाक् च वै मनश्च देवानां मिथुनम्" (ऐ.५.२३)। इनके मिथुन से ही आगे की सभी प्राण, छन्दादि रश्मियां और परमाणु आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं अर्थात् इनका मिथुन ही सर्ग यज्ञ का मूल आधार है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि प्रक्रिया में सभी प्राण एवं छन्द रश्मियां विकार भाव को प्राप्त होती हुई अर्थात् रूपान्तरित होती हुई नाना प्रकार के कणों और विकिरणों को उत्पन्न करती हैं अर्थात् वे स्वयं ही इन पदार्थों का रूप धारण करती हैं परन्तु सबसे सूक्ष्म **'ओम्'** छन्द रश्मि विकार को प्राप्त नहीं होती। ये **'ओम्'** छन्द रश्मियां सृष्टि प्रक्रिया में परोक्षरूप से भाग लेते हुए ही अन्य रश्मियों को बल और प्रेरणा प्रदान करती हैं। ये छन्द रश्मियां मनस्तत्त्व में आश्रित होकर उसके अन्दर ही अन्य रश्मियों के लिए मार्गों का निर्माण करती हैं। वे प्राण व छन्दादि रश्मियां भी बल और प्रेरणा प्राप्त करने के लिए निरन्तर **'ओम्'** छन्द रश्मियों को आकर्षित करती रहती हैं। इस प्रक्रिया से भी सूक्ष्म स्तर पर सबसे व्यापक उत्पन्न पदार्थ मनस्तत्त्व **'ओम्'** छन्द रश्मियों को परोक्षरूप से निरन्तर प्रेरित करते हुए उन्हें प्राण एवं छन्दादि रश्मियों को प्रेरित करने के लिए प्रेरित करता है। ध्यातव्य है कि **मनस्तत्त्व स्वयं भी ईश्वर तत्त्व द्वारा उत्पन्न परारूप 'ओम्' छन्द रश्मिरूप स्पन्दनों के द्वारा ही सक्रिय होता है।** इस कारण ये दोनों परस्पर एक-दूसरे को सक्रिय करते हैं और सृष्टि प्रक्रिया अविरामरूप से चलती रहती है। यह मनस्तत्त्व **'ओम्'** छन्द रश्मियों के साथ निरन्तर संगत रहता हुआ तेज और बल से युक्त करता रहता है। सृष्टि के सूक्ष्मतम स्तर पर मनस्तत्त्व पुरुषरूप और **'ओम्'** रश्मि स्त्रीरूप होकर नाना प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करते हैं।।

३. उपांशु पात्नीवतस्याऽऽग्नीध्रो यजति, रेतो वै पात्नीवत उपांश्विव वै रेतसः सिक्तिः।।
नानुवषट्करोति; संस्था वा एषा यदनुवषट्कारो नेद्रेतः संस्थापयानीत्यसंस्थितं वै रेतसः समृद्धं; तस्मान्नानुवषट्करोति।।
नेष्टुरुपस्थ आसीनो भक्षयति, पत्नीभाजनं वै नेष्टाऽग्निः पत्नीषु रेतो दधाति प्रजात्या अग्निनैव तत्पत्नीषु रेतो दधाति प्रजात्यै।।
प्र जायते प्रजया पशुभिर्य एवं वेद।।
दक्षिणा अनु सुब्रह्मण्या संतिष्ठते; वाग्वै सुब्रह्मण्याऽन्नं दक्षिणाऽन्नाद्य एव तद्वाचि यज्ञमन्ततः प्रतिष्ठापयन्ति, प्रतिष्ठापयन्ति।।३।।

व्याख्यानम्- {पात्नीवतः = रेतः सिक्तिर्वै पत्नीवतग्रहः (कौ.ब्रा.१६.६)। आग्नीध्रम् = अन्तरिक्षमाग्नीध्रम् (तै.ब्रा.२.१.५.१), त्रैष्टुभमाग्नीध्रम् (मै.३.४.४; काठ.२१.१२)} यहाँ पूर्व प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों से परिपूर्ण आकाश तत्त्व विभिन्न रक्षिका शक्तिरूप प्राण रश्मियों को अनिरुक्त भाव से संगत करता है। वह विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों में संयोग के समय बीज रूप प्राण व छन्दादि रश्मियों का संचरण इस मन्द व अव्यक्त गति से ही करता है कि उसकी प्रतीति ईश्वर के अतिरिक्त किसी को भी नहीं होती वा हो सकती। यह प्रक्रिया अन्यत्र भी इसी प्रकार होती है। मनस्तत्त्व द्वारा 'ओम्' छन्द रश्मियों में प्रेरणा, 'ओम्' रश्मियों द्वारा प्राणादि रश्मियों में प्रेरणा तथा प्राणादि रश्मियों वा व्याहृति रूप रश्मियों द्वारा विभिन्न छन्दादि रश्मियों में प्रेरणा व बल-तेज का संचरण भी विना किसी विक्षोभ के शनैः-२ अव्यक्त भाव से ही होता है।।

उपर्युक्त प्रक्रिया में अनुवषट्कार नहीं होता। अनुवषट्कार के विषय में महर्षि तित्तिर का कथन है-

"यदवस्फूर्जति सोऽनुवषट्कारः" (तै.आ.२.१४.१)

इसका तात्पर्य है कि उपर्युक्त रेतः सिंचन अर्थात् तेज, बल, प्रेरण आदि संचरण क्रिया में गम्भीर घोष नहीं होते और न तीक्ष्णता, विक्षुब्धता ही उस समय उत्पन्न होती है। जब गम्भीर घोष एवं विभिन्न बल व तेज आदि की तीक्ष्णता उत्पन्न होती है वा हो जाती है, उस समय उपर्युक्त प्रक्रियाओं में विराम आने लग जाते हैं, जबकि तेज, बल व प्रेरण के इस उपर्युक्त कार्य में निरन्तरता बनी रहनी चाहिए। इस विषय में अन्य ऋषियों का भी मत है- "संस्था अनुवषट्कारः" (कौ.ब्रा.१३.५; गो.उ.३.७) यह निरन्तरता ही तेज व बलों को समृद्ध करती है। इससे ही सर्ग प्रक्रिया की निरन्तरता व तीव्रता बनी रहती है। ये विराम न तो देशगत आने चाहिए और न कालगत। अतः उपर्युक्त प्रक्रिया में तीव्र घोष, तीक्ष्णता व विक्षुब्धता नहीं आती, बल्कि शनैः-२ यह प्रक्रिया सतत चलती रहती है। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"ऋतुयाजान्द्विदेवत्यान्यश्च पात्नीवतो ग्रहः। आदित्यग्रह सावित्री तान्स्म माऽनुवषट्कृथाः।।" (आश्व.श्रौ.५.५.२४)

इससे संकेत मिलता है कि विभिन्न ऋतु संज्ञक सूक्ष्म रश्मियों के यजन से प्राथमिक प्राण रश्मियों की उत्पत्ति के समय, दो प्राण रश्मियों के यजन, प्राण रश्मियों के बलों तथा छन्दादि रश्मियों के साथ प्राण रश्मियों अथवा मन व वाग् रूपी सविता के बल संचरण के समय अनुवषट्कार अर्थात् अति गम्भीर घोष, विक्षुब्धता व विराम उत्पन्न नहीं होते बल्कि ये सभी कर्म सतत व अव्यक्तभावेन होते हैं।।

{नेष्टा = नयतीति नेष्टा (उ.को.२.९७) (णिजिर् शौचपोषणयोः)} इस विषय में महर्षि आश्वलायन का भी कथन है- "नेष्टारं विसंस्थितसंचरेणानुप्रपद्य तस्योपस्थ उपविश्यमक्षयेत्।" (आश्व.श्रौ.५.१९.८)

इस सूत्र में भी इसी कथन की पुष्टि है। यहाँ महर्षि पूर्वोक्त पात्नीवत ग्रह अर्थात् बल, तेज व प्रेरण आदि का संचरण नेष्टा अर्थात् सभी बलों की वाहक, धारक, 'ओम्' छन्द रश्मियों के सानिध्य में ही होता है। इनके सानिध्य में ही {भक्षः = प्राणो वै भक्षः (श.४.२.१.२९)} विभिन्न देव पदार्थ प्राण रश्मियों का भक्षण करके प्राणवान् बनते हैं। ये प्राण रश्मियां मानो 'ओम्' छन्द रश्मियों पर सवार होकर संचरित होती हैं। यहाँ 'नेष्टा' का तात्पर्य मनस्तत्त्व भी हो सकता है, क्योंकि वह सभी छन्द रश्मियों का मूल वाहक है। वह मनस्तत्त्व व 'ओम्' छन्द रश्मियां ही विभिन्न बल व तेज रश्मियों के भाजन अर्थात् आधार रूप हैं। अग्नि अर्थात् उपर्युक्त आग्नीध्र रूपी त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां एवं प्राथमिक प्राण रश्मि रूपी अग्नि ही योषारूप विभिन्न छन्दादि रश्मियों वा परमाणु आदि पदार्थों में बल व प्रेरण को स्थापित करता है। इस प्रकार सर्ग यज्ञरूपी यजमान नाना प्रकार की क्रियाओं में, योषारूप पदार्थों में वृषा रूप अग्नि=प्राणतत्त्व ही बल व तेज का संचरण-संधारण करके सृजन प्रक्रियाओं को सम्पादित करता है। इसी कारण कहा है-

"वृषा अग्निः" (तै.सं.५.१.५.७)।

इस कारण इस प्रकार की परिस्थितियां उत्पन्न होने पर विभिन्न प्रजारूप मरुत्, छन्द व प्राणादि रश्मियों के द्वारा सर्ग प्रक्रिया प्रकृष्ट गति से समृद्ध होती है।।+।।

पूर्वोक्तानुसार 'ओम्' छन्द रश्मिरूप सुब्रह्मण्या बल व तेजरूप मनस्तत्त्व के अनुकूल संस्थित हो जाती है। इस विषय में इसी खण्ड की कण्डिका "तदाहुः कस्मादस्मा ऋषभं........." द्रष्टव्य है। इससे वाक् तत्त्व गति व बल से युक्त होकर पूर्ण हो जाता है। इसके साथ ही यह तत्त्व विभिन्न रश्मि आदि को संगत करने आदि कार्यों में दृढ़ता से डटा रहता है और उन्हें अपने नियंत्रण में करने में समर्थ होता है। **यह वाक् तत्त्व ही सुब्रह्मण्या है तथा मनस्तत्त्व के तेज व बल ही अन्न अर्थात् भक्षणरूप हैं।** इस प्रकार अन्ततः यह सर्गयज्ञ मनस्तत्त्व के अन्नरूप बल, तेज एवं वाक् तत्त्व ('ओम्' रश्मियों) में ही प्रतिष्ठित होकर इनके द्वारा इनके अनंतर उत्पन्न अन्य प्राण व छन्दादि रश्मियों में प्रतिष्ठित हो जाता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- मन द्वारा वाक् तत्त्व में तथा वाक् तत्त्व द्वारा विभिन्न प्राण व छन्दादि रश्मियों में तथा इनके द्वारा अन्य रश्मि आदि पदार्थों में बल व प्रेरणा का संचरण शान्ति के साथ अव्यक्त रूप से सातत्यता के साथ होता है। यह क्रिया भारी विक्षोभ तथा गम्भीर गर्जनाओं के साथ नहीं होती। अति

विक्षोभ से इस बल संचरण में देश व काल की दृष्टि से विराम आने लग जाते हैं, जबकि इस क्रिया में विराम नहीं आने चाहिए। इस प्रकार प्राण व छन्द रश्मियों का समस्त व्यापार अव्यक्त भाव से ही होता है। इसे किसी भौतिक तकनीक द्वारा कभी जाना वा व्यक्त नहीं किया जा सकता। इससे स्थूल क्रियाओं अर्थात् विद्युत् चुम्बकीय तरंगों, विभिन्न मूल कणों से प्रारम्भ होने वाली क्रियाओं के समय ही विक्षोभ वा गर्जन आदि तीव्र लक्षण उत्पन्न होते हैं। सभी प्रकार की रश्मियों के व्यवहार में उनसे सूक्ष्म प्राण वा वाग् आदि रश्मियों का सानिध्य-सहयोग-प्रेरण अनिवार्य होता है। उनकी अनुपस्थिति में सृष्टि का समस्त व्यवहार अवरुद्ध व बंद हो जाता है। **'ओम्'** छन्द रश्मि मनस्तत्त्व से, प्राथमिक प्राण रश्मियां **'ओम्'** छन्द रश्मि से, छन्द वा मरुद् रश्मियां प्राथमिक प्राण वा व्याहृति छन्द रश्मियों के द्वारा बल प्राप्त करके पूर्ण होती हैं। इनमें मन तथा **'ओम्'** छन्द रश्मि का पारस्परिक आश्रय (अन्योऽन्य आश्रय) आवश्यक है।।

꧁ इति २६.३ समाप्तः ꧂

꧁ इति षड्विंशोऽध्यायः समाप्तः ꧂

सप्तविंशोऽध्यायः

।। ओ३म् ।।
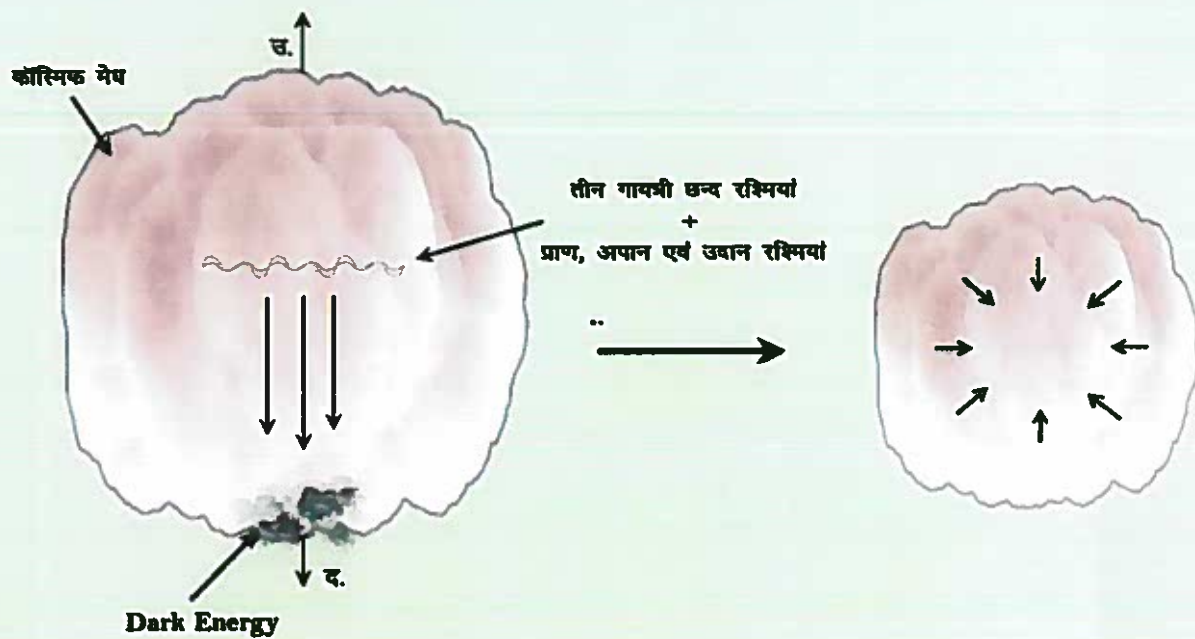
ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव।।

अनुक्रमणिका

२७.१ देवासुर संग्राम मैत्रावरुण शस्त्र। लोकों के निर्माण में असुर आक्रमण एवं निवारण। 1720

२७.२ स्तोत्रिय अनुरूप, विभिन्न सवन प्राण-अपान-व्यान का स्वरूप। लोक निर्माण प्रक्रिया, आकाश तत्त्व का स्वरूप एवं विज्ञान। क्वान्टाज् का स्वरूप और विज्ञान। सूक्ष्म कण और क्वान्टाज् की द्वैत प्रवृत्ति का विज्ञान। 1728

२७.३ मैत्रावरुण-ब्रह्मणाच्छंसी-अच्छावाक............। कॉस्मिक मेघों के सम्पीडन का विज्ञान। गायत्री छन्द रश्मियों की भूमिका, डार्क एनर्जी नियंत्रण। 1732

२७.४ डार्क एनर्जी नियंत्रण, छन्द रश्मियों की आच्छादिका रश्मियां, कॉस्मिक मेघ संपीडन। कॉस्मिक मेघों के बाहर डार्क एनर्जी और डार्क मैटर की विद्यमानता। कॉस्मिक मेघों से लोकों का निर्माण एवं विभिन्न छन्द रश्मियों की भूमिका, जगती द्वारा असुर पदार्थ का आच्छादन। 1735

२७.५ ऐकाहिक एवं अहीन रश्मियों के द्वारा विभिन्न छन्द रश्मियों की सुरक्षा। लोकों का निर्माण और उनके परिक्रमण में छन्द रश्मियों की भूमिका। तारों के निर्माण का विज्ञान। स्तोत्र एवं छन्द रश्मियों का स्वरूप एवं संगम। छन्द रश्मियों की अपेक्षा प्राण रश्मियों की व्यापकता। 1739

௵ अथ २७.१ प्रारभ्यते ௸

**** तमसो मा ज्योतिर्गमय ****

१. देवा वै यज्ञमतन्वत; तांस्तन्वानानसुरा अभ्यायन् यज्ञवेशसमेषां करिष्याम इति; तान् दक्षिणत उपायन्, यत एषां यज्ञस्य तनिष्ठममन्यन्त; ते देवाः प्रतिबुध्य मित्रावरुणौ दक्षिणतः पर्यौहंस्ते मित्रावरुणाभ्यामेव दक्षिणतः प्रातःसवनेऽसुररक्षांस्यपाघ्नत; तथैवैतद् यजमाना मित्रावरुणाभ्यामेव दक्षिणतः प्रातःसवनेऽसुररक्षांस्यपघ्नते; तस्मान् मैत्रावरुणं मैत्रावरुणः प्रातःसवने शंसति; मित्रावरुणाभ्यां हि देवा दक्षिणतः प्रातःसवनेऽसुररक्षांस्यपाघ्नते।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि पूर्वोक्त देवासुर संग्राम का अन्य प्रकार से वर्णन करते हुए कहते हैं कि मेघरूप पदार्थों से लोक निर्माण प्रक्रिया के समय असुर तत्त्व का आक्रमण उस समय होता है, जब उन मेघों में नाना प्रकार के देव पदार्थ लोक निर्माण यज्ञ का विस्तार करते हैं अर्थात् वे पदार्थ सम्पीडित और संघनित हो रहे होते हैं। उस समय उन मेघों के बाहर स्थित विशाल आच्छादक असुर पदार्थ उस सम्पीडन, संघनन और संगमन प्रक्रिया को नष्ट करने के लिए आक्रमण करता है। यहाँ ग्रन्थकार का मत है कि **सर्वप्रथम यह आक्रमण दक्षिण दिशा से होता है।** इसका कारण बताते हुए कहा है कि उस समय दक्षिण भाग में विभिन्न देव परमाणु अन्य भागों की अपेक्षा सर्वाधिक दुर्बल एवं विरल अवस्था में विद्यमान होते हैं। इस कारण उस भाग में सम्पीडन और संघनन की प्रक्रिया मन्द गति से हो रही होती है। अतः असुर पदार्थ का आक्रमण सब ओर होते हुए भी इसी भाग में सर्वाधिक प्रभावी हो उठता है। इस प्रभाव की प्रतिक्रियावश मन और वाक् तत्त्व रूपी देव पदार्थ ईश्वरीय प्रेरणा से सक्रिय हो उठते हैं और उस समय "विश्वामित्रो जमदग्निर्वा ऋषि" {(जमदग्निः = प्रजापतिर्वै जमदग्निः (श.१३.२.२.१४)} अर्थात् मन एवं वाक् तत्त्व के योग से मित्रावरुणौ-देवताक ऋ.३.६२.१६-१८ तृच की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) आ नो॑ मित्रावरुणा घृतैर्गव्यू॑तिमुक्षतम्। मध्वा॒ रजां॑सि सुक्रतू।।१६।।

इसका छन्द निचृद्गायत्री है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से प्राणापान एवं प्राणोदान रश्मियां सक्रिय होकर प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के परमाणुओं को सक्रिय करती हैं। मित्रावरुण रश्मियों का इन दोनों ही प्रकार के पदार्थों से सम्बन्ध बतलाते हुए एक ऋषि का कथन है- "द्यावापृथिवी वै मित्रावरुणयोः प्रियं धाम" (तां.१४.२.४)। इस कारण इन दोनों ही प्रकार के पदार्थों के बन्धक बलों में वृद्धि होती है। इसी को दृष्टिगत रखते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है- "बाहू वै मित्रावरुणौ" (श.५.४.१.१५)। इसके अन्य प्रभाव से शोभनकर्मा प्राणापान एवं प्राणोदान पदार्थ {गव्यूतिम् = मार्गम् (म.द.ऋ.भा.५.६६.३)} 'घृङ्' रश्मियों के साथ मिलकर विभिन्न कणों को सिंचित करते हुए प्रकाशित व सुरक्षित मार्ग प्रदान करते हैं।

(२) उ॒रु॒शंसा॑ नमो॒वृधा॑ म॒ह्ना दक्ष॑स्य राजथः। द्राघि॑ष्ठाभिः शुचिव्रता।।१७।।

इसका छन्द गायत्री है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से {द्राधिष्ठाभिः = अत्यन्तं दीर्घाभिः पुरुषार्थयुक्ताभिः क्रियाभिः (म.द.भा.)} व्यापक रूप से प्रकाशित और शुद्ध कर्मों से युक्त वे प्राणापान एवं प्राणोदान रश्मियां वज्र रश्मियों को बढ़ाती वा उत्पन्न करती हुई अपने महान् बल और क्रियाओं से सभी परमाणुओं को प्रकाशित व सक्रिय करती हैं।

(३) गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम्। पातं सोममृतावृधा।।१८।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे प्राणापान और प्राणोदान रश्मियां सक्रिय मनस्तत्त्व के द्वारा निरन्तर प्रकाशित और समृद्ध होती हुई विभिन्न उत्पन्न पदार्थों के मार्गों में व्याप्त होकर उनकी सम्पीडन और संघनन क्रियाओं की निरन्तर रक्षा करती हैं।

इस तृच रूप रश्मिसमूह के प्रभाव से कॉस्मिक मेघ रूप पदार्थों के दक्षिणी भाग में प्रातःसवन अर्थात् विभिन्न गायत्री छन्द रश्मियों की प्रधानता होने से पदार्थ में असुर तत्त्व का प्रभाव नष्ट होता है। इन गायत्री रश्मियों के प्रभाव से गायत्री छन्द रश्मियों की प्रधानता व तीव्रता होकर सूत्रात्मा वायु रश्मियां भी सक्रिय हो उठती है। अतः कहा है- गायत्रो वै बृहस्पतिः (जै.ब्रा.२.१३१)। इसी कारण यहाँ प्रातःसवन अवस्था का उत्पन्न होना बताया गया है। आचार्य सायण ने इन्हीं ऋचाओं का ग्रहण किया है। यह क्रिया लोक निर्माण प्रक्रिया के प्रारम्भिक काल में होती है। यहाँ महर्षि लिखते हैं कि जिस प्रकार उन मेघरूप पदार्थों में यह प्रक्रिया होती है, उसी प्रकार वर्तमान में भी ब्रह्माण्ड में कहीं भी लोक निर्माण की प्रक्रिया होने पर इन्हीं मैत्रावरुण छन्द रश्मियों के द्वारा असुर तत्त्व को नष्ट वा नियन्त्रित किया जाता है। इसके साथ ही विभिन्न परमाणुओं की संगतीकरण प्रक्रिया में सूक्ष्म स्तर पर बाधक बनने वाले असुर तत्त्व का भी नाश वा नियन्त्रण किया जाता है। इसी सूक्ष्म असुर तत्त्व को यहाँ 'राक्षस' कहा गया है। इस प्रक्रिया में भी इस असुर तत्त्व का प्रभाव सर्वप्रथम दक्षिण दिशा में ही होता है और उसी भाग में इस तृच रूप छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर संयोग प्रक्रिया को सम्पन्न करने में सहयोग करती हैं।

यहाँ इस उपर्युक्त तुलना से ऐसा प्रतीत होता है कि विभिन्न कणों के दक्षिण भाग में भी उनके उपादान भूत रश्मि आदि पदार्थों की विरलता होती है। इस कारण यहीं सर्वप्रथम असुर रश्मियों का प्रहार होता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- कॉस्मिक मेघों से लोक-निर्माण प्रक्रिया के अन्तर्गत जब पदार्थ का संघनन होता है, उस समय उन मेघों के दक्षिण भाग में पदार्थ की विरल अवस्था होती है, जिसके कारण उस भाग में गुरुत्व बल दुर्बल होता है और इसी कारण कॉस्मिक मेघों के बाहर से डार्क एनर्जी का प्रहार सर्वप्रथम इस दक्षिण क्षेत्र में ही होता है। वस्तुतः यह प्रहार तो सब ओर से होता है परन्तु यह भाग विरल और
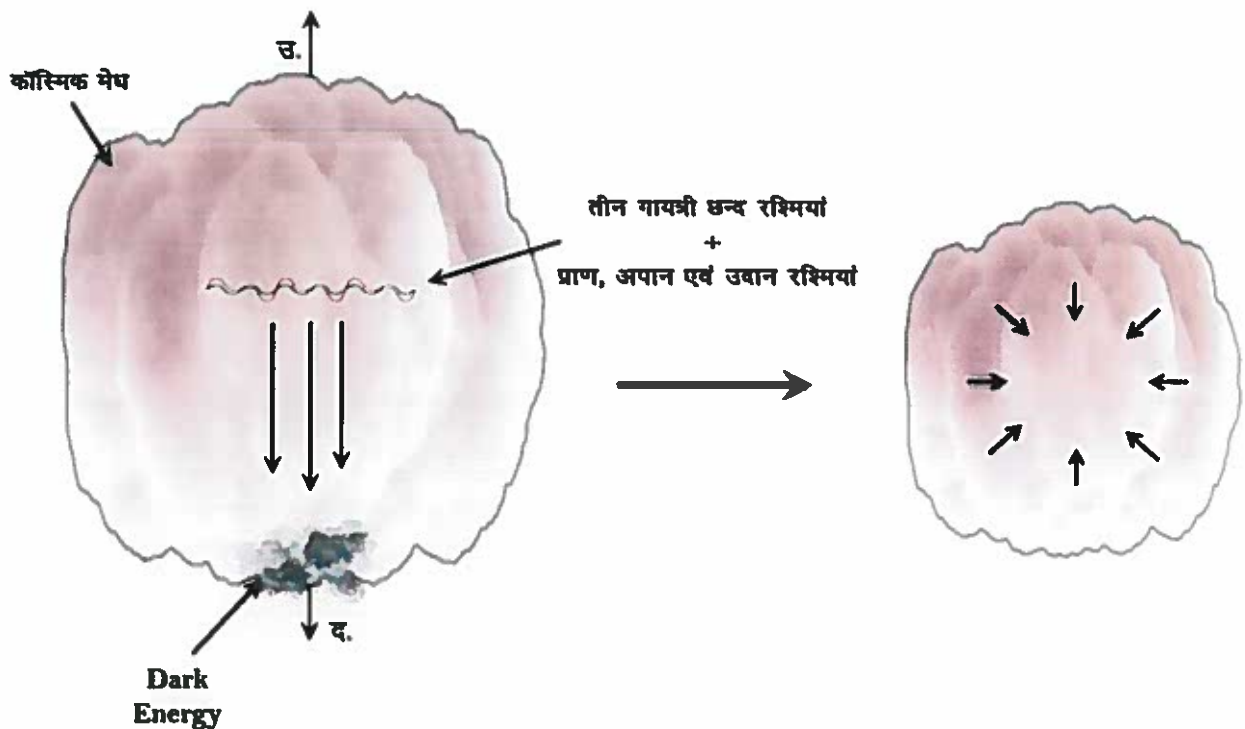
चित्र २७.१ कॉस्मिक मेघों से लोक-निर्माण की प्रक्रिया

दुर्बल होने के कारण सर्वप्रथम और सर्वाधिक प्रभावित होता है। इस प्रभाव को दूर करने के लिए तीन गायत्री छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है, जो
प्राण, अपान एवं उदान रश्मियों के साथ मिलकर दक्षिण भाग में स्थित विभिन्न पदार्थों के मध्य विद्यमान विभिन्न गायत्री आदि छन्द रश्मियों को सम्मिलित करके डार्क एनर्जी के प्रभाव को दूर करती हैं। इसके कारण गुरुत्व बल
प्रभावी होकर पदार्थ को संघनित करने लगता है। जब दो कणों के मध्य संयोग होता है, तब भी डार्क एनर्जी का सूक्ष्म स्वरूप वा अंश इसमें बाधक बनता है। उन संयोज्य कणों के दक्षिण भाग में विद्यमान रश्मि आदि पदार्थ भी
दुर्बल और विरल होते हैं। इसी कारण इसी भाग में ही इन कणों में भी डार्क एनर्जी का प्रहार सर्वप्रथम होता है, तब भी तीन गायत्री रश्मियां उत्पन्न होकर इस प्रभाव को नष्ट करके उन कणों का संयोग कराने में सहायता करती हैं।।
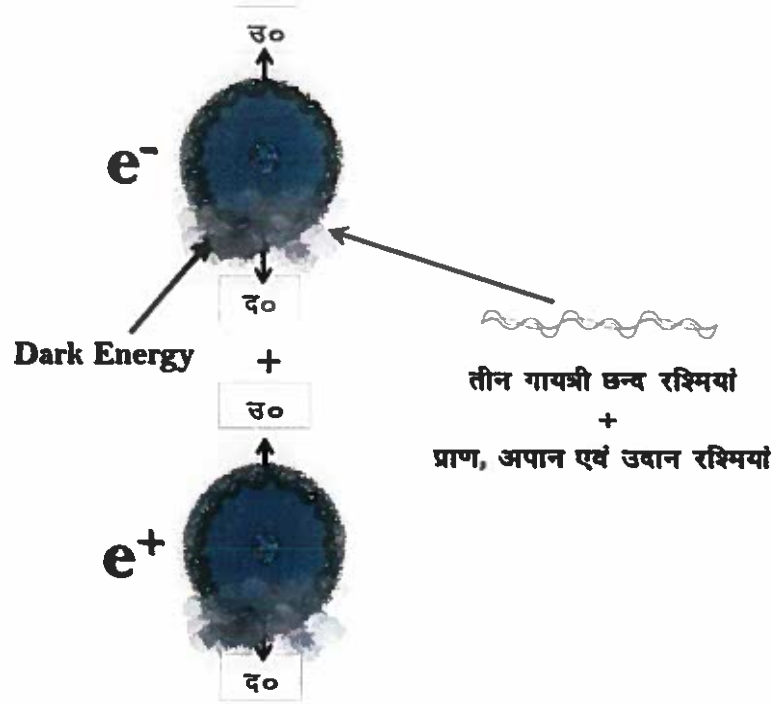
चित्र २७.२ दो कणों के संयोग की प्रक्रिया

२. ते वै दक्षिणतोऽपहता असुरा मध्यतो यज्ञं प्राविशंस्ते देवाः प्रतिबुध्येन्द्रं मध्यतोऽदधुस्त इन्द्रेणैव मध्यतः प्रातःसवनेऽसुररक्षांस्यपाघ्नत; तथैवैतद् यजमाना इन्द्रेणैव मध्यतः प्रातःसवनेऽसुररक्षांस्यपघ्नते; तस्मादैन्द्रं ब्राह्मणाच्छंसी प्रातःसवने शंसतीन्द्रेण हि देवा मध्यतः प्रातःसवनेऽसुररक्षांस्यपाघ्नत।।
ते वै मध्यतोऽपहता असुरा उत्तरतो यज्ञं प्राविशंस्ते देवाः प्रतिबुध्येन्द्राग्नी उत्तरतः पर्यौहंस्त इन्द्राग्निभ्यामेवोत्तरतः प्रातःसवनेऽसुररक्षांस्यपाघ्नत; तथैवैतद् यजमाना इन्द्राग्निभ्यामेवोत्तरतः प्रातःसवनेऽसुररक्षांस्यपघ्नते; तस्मादैन्द्राग्नमच्छावाकः प्रातःसवने शंसतीन्द्राग्निभ्यां हि देवा उत्तरतः प्रातःसवनेऽसुररक्षांस्यपाघ्नत।।
ते वा उत्तरतोऽपहता असुराः पुरस्तात् पर्यद्रवन्समनीकतस्ते देवाः प्रतिबुध्याग्निं पुरस्तात् प्रातःसवने पर्यौहंस्तेऽग्निनैव पुरस्तात् प्रातःसवनेऽसुररक्षांस्यपाघ्नत; तथै-

वैतद् यजमाना अग्निनैव पुरस्तात् प्रातःसवनेऽसुररक्षांस्यपघ्नते, तस्मादाग्नेयं प्रातःसवनम्।।
अप पाप्मानं हते य एवं वेद।।

व्याख्यानम्- जब उपर्युक्त प्रक्रियानुसार मेघरूप पदार्थों के दक्षिण भाग में असुर तत्त्व के प्रभाव को नियन्त्रित किया जाता है, तब वह असुर तत्त्व उन मेघों के मध्य भाग में सक्रिय होकर तीव्र प्रतिकर्षण वा विस्फोटक बल उत्पन्न कर देता है, जिससे वे मेघरूप पदार्थ अस्थिर हो उठते हैं तथा उनमें विस्फोट की आशंका उत्पन्न हो जाती है। उस समय इरिम्बिठिः काण्व ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न प्राण विशेष से इन्द्र-देवताक एवं गायत्री छन्दस्क ऋ.८.१७.१-३ तृच, जिसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्रतत्त्व तीव्र तेज और बल से युक्त होता है, की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्। एदं बर्हिः सदो मम।।१।।

इसके प्रभाव से मेघरूप पदार्थों के मध्य भाग में तीक्ष्ण इन्द्रतत्त्व प्रकट और व्याप्त होकर विभिन्न परमाणु समुदायों को संगत करने लगता है। वह विभिन्न छन्द रश्मियों में व्याप्त होता हुआ नाना प्रकार की सोम अर्थात् मरुद् रश्मियों को अवशोषित करता हुआ विभिन्न परमाणुओं रूप सोम को अपनी ओर आकृष्ट करने लगता है। इससे मेघों के संघनन और संपीडन की क्रिया तीव्र होने लगती है।

(२) आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना। उप ब्रह्माणि नः शृणु।।२।।

इसके प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व {केशाः = रश्मयः केशाः (तै.सं.७.५.२५.१)} प्राणापान की आकर्षण और धारण गुणों से युक्त रश्मियों के साथ विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को वहन करता हुआ उनमें व्यापक बलों को उत्पन्न करता है।

(३) ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः। सुतावन्तो हवामहे।।३।।

इसके प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियों एवं प्राणापान रश्मियों से युक्त इन्द्रतत्त्व नाना प्रकार की सम्पीडक क्रियाओं के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को संगत करता है।

यहाँ हम इरिम्बिठि ऋषि के स्वरूप पर विचार करते हैं। हमारे मत में यह समस्त पद इरिः+ बिठिः से मिलकर बना है, जिसमें मकार आगम के रूप में आया हुआ है। 'इरिः' शब्द मूलतः 'इलिः' का रूप है, जहां 'लकार' को रेफ प्रयोग छान्दस है। 'इलिः' = 'इल प्रेरणे' धातु से उणादि सूत्र "अर्चिशुचिहुसृपिछादिछर्दिभ्य इसिः" (उ.को.२.११०) से "इस्" प्रत्यय। बिठिः = 'बिल संवर्णे' के स्थान पर बहुल करके 'बिड संवर्णे' धातु से पूर्वोक्त 'इस्' प्रत्यय। इस प्रकार इरिम्बिठि सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न वह प्राण है, जो विभिन्न रश्मियों को आच्छादित करके परस्पर संगति के लिए प्रेरित करता है। इस प्राण से ही उपर्युक्त तृच की उत्पत्ति होती है।

इस तृच के द्वारा प्रातःसवनरूप 'गायत्र' अवस्था उत्पन्न हो जाती है, जिसके कारण मेघ रूप पदार्थों के मध्य भाग में तीव्र तेज और बल से युक्त इन्द्रतत्त्व प्रकट होकर असुर तत्त्व को पराभूत वा नष्ट करता है। जिस प्रकार यह प्रक्रिया इन विशाल मेघों में होती है, उसी प्रकार दो कणों वा कण समुदाय के बीच संयोग के समय राक्षस नामक सूक्ष्म असुर तत्त्व को नियंत्रित वा नष्ट करने के लिए होती है। वहाँ भी इसी ऋषि प्राण से ये उपर्युक्त तीन गायत्री रश्मियां उत्पन्न होती हैं और वे उस सूक्ष्म असुर तत्त्व को नियंत्रित करती हैं। इस कारण इन दोनों ही स्थितियों को प्राणापान वा प्राणोदान से प्रदीप्त या तेजस्वी हुआ इन्द्रतत्त्व, जिसे ब्राह्मणाच्छंसी कहा जाता है, प्रातःसवन की स्थिति उत्पन्न करके अर्थात् गायत्री रश्मियों को उत्पन्न और तीक्ष्ण करके निर्माणाधीन लोकों वा कणों के मध्य भाग से असुर तत्त्व को निराकृत करता है। यहाँ भी मुख्य प्रेरणा मन एवं वाक् तत्त्व की ही होती है। इन्द्र और ब्राह्मणाच्छंसी का उपर्युक्त सम्बन्ध महर्षि जैमिनी ने भी स्वीकार करते हुए लिखा है-

ऐन्द्रो वै ब्राह्मणाच्छंसी (जै.ब्रा.२.२०३)।

उपर्युक्त प्रकार से निर्माणाधीन लोकों वा संगमनीय कणों के दक्षिण और मध्य भाग से जब असुर तत्त्व नियंत्रित वा नष्ट हो जाता है और उपर्युक्तानुसार सम्पीडन और संगमन की क्रिया उन क्षेत्रों में प्रारम्भ हो जाती है, उस समय उन लोकों के उत्तरी भाग में असुर तत्त्व का प्रहार होता है, जिससे उस भाग में संघनन वा सम्पीडन का कार्य बाधित होने लगता है। तभी उत्तर भाग में विश्वामित्र ऋषि अर्थात् सूक्ष्म वाक् तत्त्व से इन्द्राग्नी-देवताक ऋ.३.१२.१-३ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) इन्द्रा॑ग्नी आ ग॑तं सु॒तं गी॒र्भिर्नभो॒ वरे॑ण्यम्। अ॒स्य पा॑तं धि॒येषि॒ता।।१।।

इसका छन्द निचृद्गायत्री है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र और अग्नि तत्त्व तीव्र भेदक तेज और बल से युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे इन्द्र और वायु तत्त्व विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को अपनी कमनीय रश्मियों के द्वारा आकर्षित करते हुए विभिन्न क्रियाओं के द्वारा आकाश तत्त्व को बांधते हुए सम्पीडित परमाणु आदि पदार्थों को व्याप्त और रक्षित करते हैं।

(२) इन्द्रा॑ग्नी जरि॒तुः सचा॑ य॒ज्ञो जि॑गाति॒ चेत॑नः। अ॒या पा॑तमि॒मं सु॒तम्।।२।।

इसका छन्द गायत्री है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से वे इन्द्र और अग्नि तत्त्व विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त होकर उनको संगत और संघनित करते हैं। वे विभिन्न प्रकाशित रश्मियों के साथ संगत होकर सम्पीडन और संयोजन कर्म की रक्षा करते हैं।

(३) इन्द्र॑म॒ग्निं क॑वि॒च्छदा॑ य॒ज्ञस्य॑ जू॒त्या वृ॑णे। ता सोम॑स्ये॒ह तृ॑म्पताम्।।३।।

इसका छन्द निचृद्गायत्री है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे इन्द्र और अग्नि तत्त्व क्रान्तदर्शी सूत्रात्मा वायु से आच्छादित होकर बड़े वेग के साथ विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को अपने साथ संगत करके उन मेघरूप पदार्थों में विद्यमान परमाणु आदि पदार्थों को तृप्त और संगत करते हैं।

इस प्रकार इस तृच रूप रश्मिसमूह के द्वारा उन मेघरूप पदार्थों के उत्तरी भाग में भी प्रातःसवन अर्थात् गायत्री छन्द रश्मि प्रधान अवस्था उत्पन्न हो जाती है, जिसके कारण विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ तीक्ष्ण बलों से युक्त होकर सूक्ष्म और विशाल स्तर पर विद्यमान असुर पदार्थ के प्रभाव को नियंत्रित वा नष्ट करते हैं। इसी प्रकार की प्रक्रिया दो कणों के परस्पर संगत होने पर भी होती है। वहाँ भी इसी प्रकार असुर वा राक्षस तत्त्व का प्रहार विभिन्न कणों के मध्य भाग में होता है, जिससे उन कणों के बिखरने वा टूटने की आशंका उत्पन्न हो जाती है। उस समय उपर्युक्त प्रकार से तीन गायत्री रश्मियां उत्पन्न होकर इन कणों में विद्यमान असुर पदार्थ को दूर करती हैं। यहाँ इस तृच रूप रश्मिसमूह को अच्छावाक भी कहते हैं। इन्द्र और अग्नि का अच्छावाक से सम्बन्ध बतलाते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य लिखते हैं- "ऐन्द्राग्नोऽच्छावाकः" (श.३.६.२.१३)। ये तृच रूप छन्द रश्मियां श्रेष्ठतापूर्वक असुर नियन्त्रण का कार्य करने से अच्छावाक कहलाती हैं।।

उपर्युक्त प्रकार से तीनों स्थानों में निष्कासित वा नियन्त्रित असुर तत्त्व उन मेघ पदार्थों की पूर्व दिशा में अपनी सेना सहित आक्रमण करता है अर्थात् इस दिशा में असुर तत्त्व का और भी तीव्र और सामूहिक प्रहार होता है। उस समय विभिन्न देव अर्थात् प्राण रश्मियां सक्रिय होकर अग्नि तत्त्व को उत्पन्न करती हैं। यहाँ प्रातःसवन के विषय में ऋषियों का कथन है- "अग्नेर्वै प्रातःसवनम्" (कौ.ब्रा.१२.६), "आग्नेयं वै प्रातस्सवनम्" (जै.उ.१.१२.३.२), "वज्रः प्रातःसवनम्" (तै.सं.६.६.११.३)। इन आर्ष वचनों से यह संकेत मिलता है कि प्राण रश्मियां तीक्ष्ण वज्र रूप धारण करके तीक्ष्ण अग्नि के द्वारा पूर्व दिशा में भी असुर तत्त्व का नाश वा नियन्त्रण करती हैं। यहाँ ऐसा भी प्रतीत होता है कि ये प्राण रश्मियां उत्तर भाग में उत्पन्न पूर्वोक्त ऐन्द्राग्नी-देवताक तीन गायत्री छन्द रश्मियों को इस प्रकार प्रभावित

करती हैं, कि अग्नि तत्त्व विशेष समृद्ध होता है और ये गायत्री रश्मियां ही पूर्व दिशा की ओर प्रवाहित होकर प्रातःसवन रूपी अग्नि तत्त्व को तीव्र करके असुर तत्त्व को नष्ट वा नियन्त्रित करती हैं। इसी प्रकार से संयोजनीय कणों के मध्य भी बाधक बने सूक्ष्म असुर तत्त्व को नष्ट करने के लिए इसी प्रकार की क्रिया होती है। इस प्रकार गायत्री छन्द प्रधान अवस्था प्रातःसवन अग्नि तत्त्व को ही समृद्ध करती है। इस प्रकार की स्थिति बनने पर इन उपर्युक्त सभी दिशाओं में से असुर तत्त्व निराकृत हो जाता है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्तानुसार जब कॉस्मिक मेघों के दक्षिणी भाग में डार्क एनर्जी को निष्प्रभावी कर दिया जाता है, तब डार्क एनर्जी कॉस्मिक मेघों के मध्य भाग में प्रकट होकर उन्हें विक्षुब्ध कर देती है, जिससे उन कॉस्मिक मेघों में विस्फोट की आशंका उत्पन्न हो जाती है। उस समय तीन गायत्री रश्मियां उत्पन्न होकर कॉस्मिक मेघों के मध्य भाग में विद्युत् चुम्बकीय बलों एवं गुरुत्वाकर्षण बल को तीव्र कर देती हैं, जिससे डार्क एनर्जी का प्रभाव समाप्त होकर पदार्थ सम्पीडित और संघनित होने लगता है। इस कार्य में सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न एक सूक्ष्म प्राण की भी विशेष भूमिका होती है। उधर जब दो एटम वा अणुओं के मध्य संयोग होता है, उस समय भी पूर्वोक्तानुसार दक्षिणी भाग में निराकृत डार्क एनर्जी एटम के मध्य भाग में प्रकट होकर उसे विक्षुब्ध करती है। उस समय भी ये तीन गायत्री रश्मियां उत्पन्न होकर एटम के नाभिक को संतुलित व सुरक्षित रखती हैं। **यह विशेष शोध का विषय है कि डार्क एनर्जी एटम के नाभिक के पास तक कैसे पहुंचती है अथवा वहीं उत्पन्न होती है, तो किस प्रकार उत्पन्न होती है? इस विषय में हमारा मत यह है कि डार्क एनर्जी प्रत्येक रिक्त स्थान में व्याप्त है।** जब दो एटम परस्पर संयुक्त होते हैं, तब डार्क एनर्जी दक्षिण भाग से निराकृत होने पर मध्य भाग में सहसा तीव्र हो उठती है। उस तीव्रता का ही शमन ये तीन गायत्री छन्द रश्मियां करती हैं। इसके पश्चात् वह डार्क एनर्जी कॉस्मिक मेघों के उत्तरी भाग में तीव्र हो उठती है, जिसके कारण वहाँ सम्पीडन और संघनन प्रक्रिया अवरुद्ध हो जाती है। ऐसी स्थिति में तीन गायत्री छन्द रश्मियां पुनः उत्पन्न होकर विद्युत् चुम्बकीय बलों तथा गुरुत्व बल को समृद्ध करती हैं। सूत्रात्मा वायु आकाश को तीव्रता से बांधने लगता है तथा विभिन्न विद्युदावेशित कण उच्च ऊर्जा के साथ तरंग रूप धारण करके डार्क एनर्जी पर प्रहार करते हैं, जिससे डार्क एनर्जी नियंत्रित हो जाती है और पदार्थ की संघनन और सम्पीडन की क्रिया तीव्र हो उठती है। इसी प्रकार दो एटम वा अणुओं के बीच संयोग के समय भी उत्तरी भाग में यही क्रिया होती है। इसके पश्चात् डार्क एनर्जी का प्रहार कॉस्मिक मेघों की पूर्वी दिशा में होता है। यह प्रहार पूर्व की अपेक्षा अधिक तीव्रता और व्यापकता के साथ होता है। उस समय विभिन्न प्राण रश्मियां उत्तर दिशा में उत्पन्न हुई गायत्री रश्मियों को अपनी ओर आकृष्ट करके तीव्र ऊष्मा और विद्युदावेशित कणों को उत्पन्न करती हैं। इनके प्रहार से डार्क एनर्जी वहाँ से दूर हो जाती है। इसी प्रकार की क्रिया एटम्स और अणुओं में भी होती है, जिसे विज्ञ पाठक यथावत् समझ सकते हैं।।

३. ते वै पुरस्तादपहता असुराः पश्चात् परीत्य प्राविशंस्ते देवाः प्रतिबुध्य विश्वान् देवानात्मानं पश्चात् तृतीयसवने पर्यौहंस्ते विश्वैरेव देवैरात्मभिः पश्चात् तृतीयसवनऽसुररक्षांस्यपाघ्नत; तथैवैतद् यजमाना विश्वैरेव देवैरात्मभिः पश्चात् तृतीयसवनेऽसुररक्षांस्यपघ्नते; तस्माद् वैश्वदेवं तृतीयसवनम्।।
अप पाप्मानं हते य एवं वेद।।
ते वै देवा असुरानेवमपाघ्नत सर्वस्मादेव यज्ञात्, ततो वै देवा अभवन् पराऽसुराः।।
भवत्यात्मना पराऽस्य द्विषन् पाप्मा भ्रातृव्यो भवति य एवं वेद।।
ते देवा एवं क्लृप्तेन यज्ञेनापासुरान् पाप्मानमघ्नताजयन् स्वर्गं लोकम्।।
अप ह वै द्विषन्तं पाप्मानं भ्रातृव्यं हते; जयति स्वर्गं लोकं य एवं वेद, यश्चैवं विद्वान् सवनानि कल्पयति।।१।।

व्याख्यानम्- {विश्वदेवः = पिशङ्गा वैश्वदेवाः (मै.३.१३.१२), यत्सधूमं ज्योतिस्तद्वैश्वदेवम् (मै.१.८.६)} पूर्वोक्त प्रकार से जब कई दिशाओं में मेघरूप पदार्थों से असुर तत्त्व को निराकृत करते हुए पूर्व दिशा से भी निराकृत किया जाता है, तब असुर तत्त्व उन मेघरूप पदार्थों के पश्चिमी भाग में आक्रमण करते हुए प्रविष्ट होता है, जिससे पश्चिमी भाग विक्षुब्ध होने की आशंका उत्पन्न हो जाती है। उस समय सभी प्रकार के देव अर्थात् प्राणादि रश्मियां तृतीय सवन अर्थात् लोक निर्माण प्रक्रिया के तृतीय चरण में जहाँ उस समय जगती छन्द रश्मियां प्रधानता से विद्यमान होती हैं, पश्चिमी दिशा में सूत्रात्मा वायु के साथ सब ओर से संगत होती हुई व्याप्त हो जाती हैं। इस प्रकार शक्तिशाली हुई ये सभी प्राण रश्मियां तृतीय सवन की अवस्था को प्राप्त पश्चिमी भाग से भी असुर रश्मियों को निराकृत कर देती हैं। उस समय उन मेघरूप पदार्थों में लालिमायुक्त तेजस्वी धूमयुक्त ज्वालाओं की उत्पत्ति होती है। इन ज्वालाओं से निकलने वाली तीव्र किरणें असुर तत्त्व को निराकृत करने में सहयोग करती हैं। इसी प्रकार दो संयोज्य परमाणुओं के पश्चिमी भाग में भी असुर रश्मियों का आक्रमण संयोग प्रक्रिया को बाधित करता है। उस समय भी सभी प्रकार की प्राण रश्मियां सूत्रात्मा वायु रश्मियों के साथ मिलकर असुर रश्मियों को निष्प्रभावी करती हैं, जिससे उनका संयोग यथावत् हो जाता है। इस कारण तृतीय सवन का सभी देवों अर्थात् प्राण रश्मियों से सम्बन्ध होता है। इस प्रकार की स्थिति बनने पर इस दिशा से भी असुर तत्त्व नष्ट वा नियन्त्रित हो जाता है।।+।।

इन सभी प्रक्रियाओं से कॉस्मिक मेघों एवं विभिन्न संयोज्य कणों की पूर्वोक्त क्रियाओं में बाधक बना असुर तत्त्व पूर्ण पराभव को प्राप्त होता है और देव पदार्थ अपनी लोक निर्माण की प्रक्रिया को निर्विघ्न जारी रखता है। इसी प्रकार विभिन्न संयोज्य कणों के मध्य संयोजन प्रक्रिया भी सुचारु रूप से चलने लगती है। इस प्रकार से वे सभी मेघ रूप पदार्थ स्वयं उत्कृष्टता को प्राप्त करते हुए नाना लोकों को उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं तथा उनमें बाधक बनने वाला सम्पूर्ण असुर तत्त्व नियंत्रित वा नष्ट हो जाता है।।+।।

इस प्रक्रिया का उपसंहार करते हुए महर्षि लिखते हैं कि इस उपर्युक्त सभी प्रक्रियाओं से सम्पूर्ण देव पदार्थ विभिन्न छन्द और प्राण रश्मियों की पूर्वोक्त भूमिका के द्वारा अर्थात् उनकी विविध संयोगादि प्रक्रियाओं के द्वारा समर्थ और सशक्त होकर असुर तत्त्व का निराकरण करते हुए स्वर्गलोक को प्राप्त करता है अर्थात् वे मेघरूप पदार्थ विभिन्न द्युलोकों के निर्माण की पूर्णता को प्राप्त करते हैं। इसके साथ ही विभिन्न संयोज्य परमाणु परस्पर संगत होने में समर्थ होते हैं। इसलिए ऋषियों ने कहा है- "स्वर्गो वै लोकः सूर्यो ज्योतिरुत्तमम्" (श.१२.९.२.८), "स्वर्गो वै लोको यज्ञः" (कौ.ब्रा.१४.१)।।

इस प्रकार की स्थितियां सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में उत्पन्न होने पर तीव्र प्रक्षेपक और प्रतिकर्षक बलों का उत्पादक सभी प्रकार का असुर तत्त्व नष्ट वा नियंत्रित होता है, जिसके कारण सभी कॉस्मिक मेघ और उनके अन्दर होने वाली विभिन्न संघनन, सम्पीडन और परमाणुओं के संयोजन की क्रियाएं पूर्ण होकर अनेकों द्युलोकों की उत्पत्ति होती है और इस प्रक्रिया में अनेक प्रकार के सवन अर्थात् संगमन क्रियाओं के नाना चरण पूर्णता को प्राप्त करते हैं। इस कारण द्युलोकों के अतिरिक्त अन्य पार्थिव और अन्तरिक्ष लोकों की भी उत्पत्ति निरापद रूप से हो पाती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त प्रकार से कॉस्मिक मेघों के अन्दर जब उपर्युक्त सभी दिशाओं में डार्क एनर्जी को नियन्त्रित वा नष्ट कर दिया जाता है, तब उनके पश्चिमी भाग में सबसे अन्त में प्रहार होता है, जिससे पश्चिमी भाग विक्षुब्ध होने लगते हैं। उस समय सभी प्राण रश्मियां सूत्रात्मा वायु के साथ दृढ़ता से संगत होकर पश्चिमी भाग में विद्यमान परमाणु आदि पदार्थ को तीव्र विद्युत् बल और गुरुत्व बल से संयुक्त करती हैं। इसके साथ ही उस भाग में लाल रंगयुक्त तेजस्वी ज्वालाएं उठने लगती हैं। इन ज्वालाओं में अति उष्ण विद्युत् कणों की धाराएं उत्पन्न होकर बाधक डार्क एनर्जी और डार्क मैटर को नियंत्रित करती हैं। इसके साथ ही कॉस्मिक मेघों के सभी भागों में से डार्क एनर्जी का प्रभाव नष्ट वा नियंत्रित हो जाता है। इससे विभिन्न प्रकार के लोक अर्थात् ग्रह आदि अप्रकाशित लोक और तारों की उत्पत्ति निर्बाध रूप से होने लगती है। इसी प्रकार विभिन्न atoms and molecules के संयोगों की

प्रक्रिया भी निर्बाधरूप से होने लगती है।।

ॐ इति २७.१ समाप्तः ॐ

अथ २७.२ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. स्तोत्रियं स्तोत्रियस्यानुरूपं कुर्वन्ति प्रातःसवने,ऽहरेवं तदह्नोऽनुरूपं कुर्वन्त्यवरेणैव तदह्ना परमहरभ्यारभन्ते।।
अथ तथा न मध्यंदिने, श्रीर्वै पृष्ठानि; तानि तस्मै न तत्स्थानानि, यत्स्तोत्रियं स्तोत्रियस्यानुरूपं कुर्युः।।
तयैव विभक्त्या तृतीयसवने न स्तोत्रियं स्तोत्रियस्यानुरूपं कुर्वन्ति।।२।।

व्याख्यानम्- {स्तोत्रियाऽनुरूपौ = मनो वै स्तोत्रियो वागनुरूपः (जै.ब्रा.३.२१)। प्राणो वै स्तोत्रियोऽपानोऽनुरूपः (जै.ब्रा.३.२१), साम वै स्तोत्रिय ऋगनुरूपः (जै.ब्रा.३.२१)} अब महर्षि सृष्टि प्रक्रिया के पूर्वोक्त अनेक स्तरों पर उत्पन्न होने वाले सवनों की प्रकारान्तर से चर्चा करते हुए कहते हैं कि प्रातःसवन नामक चरणों में विभिन्न प्रकाशिका छन्द रश्मियां अन्य ऐसी ही छन्द रश्मियों के अनुरूप उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार वे छन्द रश्मियां परस्पर एक-दूसरे को अनुकूलता से धारण करती हुई नाना प्रकार की क्रियाओं को सम्पादित करती हैं। इस समय प्राण नामक प्राण रश्मियां अन्य प्राण नामक प्राण रश्मियों और अपान रश्मियों के साथ कैसे संगत होती हैं, यह बतलाते हुए महर्षि कहते हैं कि स्तोत्रियरूप प्राण तत्त्व अन्य स्तोत्रियरूप प्राण तत्त्व के साथ संगत अनुरूपरूप अपान तत्त्व को धारण करता है। इस प्रकार जहाँ प्राण और अपान का स्वाभाविक संयोग सदैव होता है, वहाँ दो प्राण तत्त्व कैसे क्रमिक रूप से संगत हो जाते हैं, उसकी स्पष्टता यहाँ की गयी है।

अपान प्राण की अनुपस्थिति में केवल प्राण तत्त्व अन्य प्राण तत्त्व के साथ संगत नहीं हो सकता। इसी कारण ऋषियों ने कहा है-

"अपानेन वै प्राणो धृतः" (मै.४.५.६)

"अपानो वै यन्ताऽपानेन ह्ययं यतः प्राणो न पराङ् भवति" (ऐ.२.४०)

प्राण तत्त्व ही मुख्यतः अन्य प्राण रश्मियों को प्रकाशित करता है, इसलिए ही इसे स्तोत्रिय कहा जाता है। अन्यत्र भी कहा है- "प्राणा वै समिधः" (ऐ.२.४; श.१.५.४.१), "प्राणा वै स्तोमाः" (जै.ब्रा. २.१३३; श.८.४.१.३), "प्राणो वै विश्वज्योतिः" (श.७.४.२.२८)। यह भी ध्यातव्य है कि इन दोनों को परस्पर संगत करने वाला व्यान नामक तत्त्व होता है, इसलिए कहा गया है-

"अथ यः प्राणापानयोः सन्धिः, स व्यानः" (छां.उ.१.३.३)

प्राण प्रकाशरूप होता है और अपान अप्रकाशरूप वा प्रकाश्य होता है, इसलिए ग्रन्थकार ने अन्यत्र कहा है- "अहरेव प्राणो रात्रिरपानः" (ऐ.आ.२.१.५)। प्राण बलरूप होता है और अपान क्रियारूप। इसी कारण महर्षि तित्तिर का कथन है- "प्राणो वै दक्षोऽपानः क्रतुः" (तै.सं.२.५.२.४)।

प्राण, अपान की यह संगतीकरण की प्रक्रिया प्रातःसवन अर्थात् प्राथमिक स्तर वा गायत्री छन्द रश्मियों के स्तर पर होती है। प्राण तत्त्व का गायत्री छन्द से सम्बन्ध बताते हुए ऋषियों का कथन है- "प्राणो वै गायत्रम्" (जै.ब्रा.१.१११; तां.७.१.६)। जिस प्रकार स्तोत्रिय संज्ञक ऋचाएं अन्य स्तोत्रिय संज्ञक ऋचाओं के अनुरूप होकर परस्पर संगत होती हैं। जिस प्रकार प्राण रश्मियां अपान रश्मियों के माध्यम से अन्य प्राण रश्मियों के साथ अनुरूप होकर संगत होती हैं, उसी प्रकार एक अहन् दूसरे अहन् के अनुरूप होकर उसे अनुक्रमपूर्वक अनुकूलता से धारण करता है। यहाँ 'अहन्' शब्द का तात्पर्य यह है कि पूर्व में वर्णित लोक-निर्माण की प्रक्रिया, जो अध्याय २० से प्रारम्भ होकर अध्याय २४ तक वर्णित हुई है, उस प्रक्रिया के सभी नौ चरण, नौ अहन् के रूप में वर्णित किये गये हैं। उन सभी अहनों के प्रातःसवन अर्थात् प्रारम्भिक चरण एक-दूसरे के साथ अनुरूपता को प्राप्त करके परस्पर क्रमबद्ध धारण करते हैं किंवा सभी अहन् रूपी चरण सम्पूर्ण रूप से (न कि कोई एक सवन) एक-दूसरे के अनुरूप

होकर एक-दूसरे के साथ संगत वा समन्वित होते हैं। पूर्व अहन् और उसमें होने वाली विभिन्न क्रियाएं, वल एवं उत्पन्न सभी छन्द व प्राणादि रश्मियां आगामी अहन् और उनमें उत्पन्न विभिन्न क्रिया, वल और उनमें उत्पन्न होने वाली विभिन्न छन्द व प्राण रश्मियों की उत्पत्ति की अनुकूलता के अभिमुख होकर अर्थात् अनुकूलता हेतु वांछित परिस्थितियों को उत्पन्न करके उस अग्रिम अहन् को समन्वित रूप से प्रारम्भ करती हैं। इससे सभी अहनों का एक-दूसरे से पूर्ण संगम और समन्वय निरन्तरता के साथ वना रहता है। इसका एक अन्य रहस्य इस प्रकार भी है कि **गायत्री छन्द प्रधान लोक वा कणों के निर्माण में प्राणादि रश्मियों का इसी प्रकार का बन्धन होता है, इसी कारण उस बन्धन की दृढ़ता होकर वे पदार्थ ठोस रूप धारण कर पाते हैं। यदि यह बन्धन न हो तो इन पदार्थों में ऐसी दृढ़ता उत्पन्न नहीं हो सकती।** यहाँ प्रातःसवन के कारण गायत्री प्रधान अवस्था होने से पार्थिव लोकों वा कणों में ही इस प्रकार की स्थिति होती है।।

मध्यंदिन {माध्यंदिनं सवनम् = इदं (अन्तरिक्षं) माध्यंदिनं सवनम् (जै.ब्रा.३.५७), त्रैष्टुभवार्हतो वै माध्यन्दिनः (जै.ब्रा.२.३८३)} सवन अर्थात् आकाश तत्त्व की उत्पत्ति प्रक्रिया में प्राण एवं अपान आदि रश्मियों का उपर्युक्तानुसार संगम नहीं होता। इस तत्त्व की आधार रूप रश्मियां 'श्रीः' रूप होती हैं। इस अवस्था में त्रिष्टुप् और वृहती छन्द रश्मियों की प्रधानता होती है तथा सभी छन्द व प्राण रश्मियां अधिक सक्रिय अवस्था में होती हैं। 'श्रीः' पद के विषय में ऋषियों का कथन है-

"अथ यत् प्राणा अश्रयन्त तस्मादु प्राणाः श्रियः" (श.६.१.१.४)
"श्रीर्वै पशवः श्रीः शक्वर्यः" (तां.१३.२.२)
"श्रियै पाप्मा (निवर्त्तते)" (श.१०.२.६.१६)

पृष्ठ के विषय में ऋषियों का कथन है-

"ओजो वै वीर्यं पृष्ठानि" (तै.सं.७.३.५.३; जै.ब्रा.२.२६७)
"चक्रियौ वा एते यज्ञस्य यत् पृष्ठानि" (मै.४.७.३)
"पृष्ठैर्वै देवाः स्वर्गं लोकमस्पृक्षन्। (कौ.ब्रा.२४.८)
"पृष्ठं स्पृशतेः संस्पृष्टमङ्गैः" (नि.४.३)
"पर्षति सिञ्चति यो येन वा तत् पृष्ठम्" (उ.को.२.१२)
"सेचको भागः" (तु.म.द.य.भा.१५.११)

इन सभी वचनों से यह संकेत मिलता है कि **आकाश तत्त्व विभिन्न तेजस्वी प्राण एवं मरुद् रश्मियों से निर्मित होता है। ये रश्मियां अतिसक्रिय होती हैं। ये परस्पर पार्थिव लोक वा कणों में उपर्युक्त क्रमानुसार बन्धों के रूप में बन्धी हुई नहीं रहती हैं, बल्कि ये चक्रीय गति करती हुई एक दूसरे को स्पर्श वा सिंचित करती रहती हैं। ये अत्यन्त मुक्तावस्था में सर्वत्र विचरण करती हुई अन्य अर्थात् पार्थिव और आग्नेय लोक वा कणों को स्पर्श व सिंचित करती रहती हैं।** जव भी कोई परमाणु आदि पदार्थ परस्पर संयुक्त होते हैं, तब इन रश्मियों का मिश्रित रूप आकाश तत्त्व ही उन्हें स्पर्श व संयुक्त करता है। आकाश के संयोग के विना कोई भी कण वा रश्मि आदि पदार्थ परस्पर स्पर्श वा संगत नहीं हो सकते। इसलिए एक ऋषि का कथन है-

"पृष्ठानि वै यज्ञस्य दोहः" (काठ.३३.८)

इन रश्मियों की तीव्रता व चक्रण गति के कारण इन्हें असुर तत्त्व वाधित नहीं करता है। इस कारण ही विभिन्न प्राण रश्मियों का अन्य प्राणादि रश्मियों के साथ दृढ़ वन्धन का कोई अवकाश नहीं होता। इस सवन में त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की प्रधानता होती है और इन छन्द रश्मियों का विशेष सम्वन्ध वतलाते हुए ऋषियों का कथन है-

"त्रैष्टुभोऽन्तरिक्षलोकः" (कौ.ब्रा.८.६)
"त्रैष्टुभमन्तरिक्षम्" (श.८.३.४.११)
"अन्तरिक्षं त्रिष्टुप्" (जै.उ.१.५.३)

इस स्थिति में प्राणादि **रश्मियों के बन्धन विशेष न होने अर्थात् पूर्ण शैथिल्यता से आकाश में** विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों का प्रवेश, निष्क्रमण एवं वसना आदि सुगमता से सम्पन्न होता है। **आकाश तत्त्व किसी भी पदार्थ की गति में बाधक नहीं बनता।।**

अब तृतीय सवन {तृतीयसवनम् = द्यौर्वै तृतीयसवनम् (श.१२.८.२.१०)} अर्थात् द्युलोक वा आदित्य रश्मियों की चर्चा करते हुए कहते हैं कि इन पदार्थों के अन्दर भी प्रातःसवन अर्थात् पार्थिव लोक वा कणों के समान प्राण रश्मियों के बन्ध विद्यमान नहीं होते। इनमें जगती, त्रिष्टुप् एवं अनुष्टुप् छन्द रश्मियों की प्रधानता होती है। इस कारण कहा है-

"जागतं हि तृतीयसवनम्" (कौ.ब्रा.१६.१; तां.६.३.११; ष.१.४)

"जागतोऽसौ (द्यु) लोकः" (कौ.ब्रा.८.६)

"त्रैष्टुब्जागतो वा आदित्यः" (तां.४.६.२३)

"आनुष्टुभं हि तृतीयसवनम्" (जै.ब्रा.१.१८०)

द्युलोक के विषय में महर्षि जैमिनी का कथन है-

"असावेव (द्यु) लोको निधनं गतिः प्रतिष्ठा" (जै.ब्रा.१.३०७)

इन्हीं ऋषि के अनुसार 'निधन' शब्द का आशय इस प्रकार है-

"वज्रा एते यन् निधनानि" (जै.ब्रा.१.३२३)

"यज्ञायज्ञीयं निधनम्" (जै.ब्रा.१.२६२)

इसका तात्पर्य यह है कि इस परिस्थिति अर्थात् **अग्नि के परमाणुओं में विभिन्न प्राण रश्मियां न तो पार्थिव परमाणुओं की भाँति परस्पर सुदृढ़ बन्धनों में बंधी रहती हैं और न ही आकाश तत्त्व की भाँति चक्रीय और अति शिथिल गतियों के साथ सर्वत्र अति तीव्रता से विचरती रहती हैं, बल्कि यहाँ प्राण रश्मियां वज्ररूप तीक्ष्ण होकर संयोग और वियोग की प्रक्रिया को सतत बनाये रखती हैं।** इसका तात्पर्य यह है कि उनका कोई निश्चित बंध नहीं होता और न ही अति स्वतन्त्र अवस्था में रहती हैं। तीनों ही सवनों की तुलना करते हुए एक ऋषि ने कहा है-

"अनिरुक्तं प्रातःसवनं वाजवन् माध्यन्दिनःसवनञ्चित्रवत् तृतीयसवनम्" (तां.१८.६.७)

इस कथन से स्पष्ट होता है कि पार्थिव कणों में प्राण रश्मियां सुदृढ़ बन्धनों के साथ क्षीण गति वाली होकर अव्यक्त स्वरूप में विद्यमान होती हैं, जबकि आकाश तत्त्व में इनकी गति विशेष बलवती होकर विशेष स्वतन्त्रता से युक्त होती है। उधर द्युलोक अर्थात् अग्नि के परमाणुओं में प्राण रश्मियों के बन्धन विचित्र होते हैं, इस कारण वे परमाणु पार्थिव और आकाशीय दोनों ही से भिन्न वा दोनों के मिश्र और विचित्र रूप से युक्त होते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- लोक निर्माण की प्रक्रिया में उत्पन्न विभिन्न छन्द रश्मिसमूह अन्य छन्द रश्मिसमूहों के साथ संगत होने के लिए उनके अनुरूप बनने का प्रयत्न करते हैं। लोक निर्माण की प्रक्रिया के विभिन्न चरण भी परस्पर समन्वित और सम्बन्धित बने रहते हैं। इस ब्रह्माण्ड में कोई भी क्रिया वा पदार्थ अन्य किसी भी क्रिया और पदार्थ से सर्वथा स्वतन्त्र और अप्रभावित नहीं रह सकते। **सृष्टि के मूलकणों में विद्यमान प्राणादि रश्मियां परस्पर अति सुदृढ़ बन्धन में बंधी रहती हैं,** जिसके कारण ही वे कण अपनी कणीय अवस्था को प्राप्त करते हैं। यदि प्राण रश्मियों का इस प्रकार सुदृढ़ बन्धन नहीं होता, तो मूलकण वा किसी भी कण की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती थी।

आकाश तत्त्व भी सूक्ष्म प्राण और मरुद् रश्मियों का मिश्ररूप होता है। इसमें त्रिष्टुप् और बृहती छन्द रश्मियां भी प्रधानता से विद्यमान होती हैं, जबकि विभिन्न कणों के अन्दर गायत्री छन्द रश्मियों की प्रधानता होती है। **आकाश तत्त्व में विद्यमान प्राण रश्मियां अत्यन्त शिथिल अवस्था में सदैव चक्रीय गति से भ्रमण करती रहती हैं।** इनमें पारस्परिक बन्धन अतिन्यून होता है, इस कारण आकाश तत्त्व में विभिन्न कण वा विकिरण स्वच्छन्द और निरापदरूप से गति करते रहते हैं। आकाश तत्त्व की रश्मियां विभिन्न कणों के संयोग-वियोग में अति सूक्ष्म स्तर पर विभिन्न कणों को स्पर्श वा सिंचित करती रहती हैं परन्तु उनका स्वयं के आकर्षणादि बल नगण्य जैसे होते हैं।

उधर क्वान्टाज़ का स्वभाव और स्वरूप उपर्युक्त दोनों ही पदार्थों से विचित्र और दोनों का मिश्ररूप होता है। इनमें जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और बृहती छन्द रश्मियों की प्रधानता होती है। इनके अन्दर प्राण रश्मियां उपर्युक्त दोनों पदार्थों की अपेक्षा एक अन्य और विचित्र प्रकार से बंधी रहती हैं। वे प्राण रश्मियां तीक्ष्ण रूप से निरन्तर आपस में संयुक्त वियुक्त होती रहती हैं। इस कारण ही विद्युत् चुम्बकीय तरंगें कण और तरंग दोनों की भाँति ही व्यवहार करने में समर्थ होती हैं। इलेक्ट्रॉन जैसे कुछ सूक्ष्म मूलकण भी लगभग ऐसा ही व्यवहार कर सकते हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य

पढ़ें।।

ॐ इति २७.२ समाप्तः ॐ

ॐ अथ २७.३ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. अथात आरम्भणीया एव।।
ऋजुनीति नो वरुण इति मैत्रावरुणस्य, मित्रो नयतु विद्वानिति, प्रणेता वा एष होत्रकाणां यन्मैत्रावरुणस्तस्मादेषा प्रणेतृमती भवति।।
'इन्द्रं वो विश्वतस्परीति' ब्रह्मणाच्छंसिनो हवामहे जनेभ्य इतीन्द्रमेवैतयाऽहर-हर्निह्वयन्ते।।
न हैषां विहवेऽन्य इन्द्रं वृङ्क्ते, यत्रैवं विद्वान् ब्राह्मणाच्छंस्येतामहरहः शंसति।।
यत्सोम आ सुते नर इत्यच्छावाकस्येन्द्राग्नी अजोहवुरितीन्द्राग्नी एवैतयाऽहर-हर्निह्वयन्ते; न हैषां विहवेऽन्य इन्द्राग्नी वृङ्क्ते, यत्रैवं विद्वानच्छावाक एतामहरहः शंसति।।
ता व एता स्वर्गस्य लोकस्य नावः संपारिण्यः स्वर्गमेवैताभिर्लोकमभिसंतरन्ति।।३।।

व्याख्यानम्- इसके पश्चात् प्रथम खण्ड में वर्णित देवासुर संग्राम की पुनः चर्चा करते हुए कहते हैं कि इस संग्राम में उत्पन्न होने वाली विभिन्न तृच छन्द रश्मियों को आरम्भ करने वाली कुछ ऋचाएं पृथक्-२ रूप में उत्पन्न होती हैं। ये ऋचाएं उन मैत्रावरुण आदि तृच रश्मियों से पूर्व उत्पन्न होकर उन तृच रश्मियों की उत्पत्ति को प्रारम्भ करने के लिए अनुकूल परिस्थितियों को उत्पन्न करती हैं। इस कारण इन्हें आरम्भणीय ऋचाएं कहते हैं, जो पृथक्-२ तृच के लिए पृथक्-२ ही होती है।।

पूर्वोक्त मैत्रावरुण-देवताक ऋ.३.६२.१६-१८ तृच की उत्पत्ति से पूर्व रहूगण पुत्रो गोतम ऋषि अर्थात् धनंजय प्राण से विश्वेदेवादेवताक एवं पिपीलिकामध्या निचृद् गायत्री छन्दस्क-

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान्। अर्यमा देवैः सजोषाः।।१।। (ऋ.१.९०.१)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सभी देव पदार्थ तीव्र-तीक्ष्ण तेज व बल से युक्त होते हैं। अन्य प्रभाव से प्राण एवं अपान वा उदान {अर्य्यमा = सूत्रात्मा (म.द.य.भा.३४.५७)} सूत्रात्मा वायु के साथ समान रूप से संगत होकर सभी देव पदार्थों को व्याप्त करके वहन करते हुए परस्पर बांधते हैं। इस छन्द रश्मि का 'मित्रोनयतु विद्वान्' यह पाद अपने 'नयतु' पद के प्रभाव से विभिन्न होत्रक रूप {अङ्गानि होत्रकाः (ऐ.६.८; गो.उ.५.१४), (अङ्गानि = छन्दांऽस्यङ्गानि - मै.२.७.८; काठ. १६.८)} छन्द रश्मियों को प्रेरणा व बल प्रदान करता है। इस 'नयतु' पद के कारण ही यह छन्द रश्मि आगामी (पूर्वोक्त) उत्पन्न होने वाली मैत्रावरुणी तृच रूप छन्द रश्मियों की उत्पत्ति को प्रेरित करती है अर्थात् इस छन्द रश्मि के प्रभाव से मैत्रावरुणी तृच की कारणरूप विश्वामित्र जमदग्निर्वा ऋषि प्राण रश्मि प्रेरित होकर उस तृच को उत्पन्न करती है। इस कारण यह ऋचा मैत्रावरुणी तृच की आरम्भणीय ऋचा कहलाती है।।

अब पूर्वोक्त ब्राह्मणाच्छंसी इन्द्र-देवताक ऋ.८.१७.१-३ तृच की आरम्भणीय ऋचा का वर्णन करते हैं। यह आरम्भणीय ऋचा मधुच्छन्दा ऋषि अर्थात् प्राण रश्मियों को आच्छादित करने वाली एक सूक्ष्म प्राण रश्मि से इन्द्र-देवताक एवं पिपीलिकामध्या निचृद् गायत्री छन्दस्क-

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः। अस्माकमस्तु केवलः।।१०।। (ऋ.१.७.१०)

ऋचा उत्पन्न होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्रतत्त्व अति तीक्ष्ण होता है। अन्य प्रभाव से मेघरूप पदार्थों में विद्यमान विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ सब ओर से इन्द्रतत्त्व से युक्त होते हैं और वह इन्द्रतत्त्व उनको निरन्तर शक्ति प्रदान करता रहता है। वह छन्द रश्मि पूर्वोक्त ब्राह्मणाच्छंसी तृच रश्मियों के ठीक पूर्व उत्पन्न होती है। इस ऋचा में 'हवामहे जनेभ्यः' पदों के प्रभाव से मेघरूप पदार्थों में विद्यमान परमाणु आदि पदार्थ इन्द्रतत्त्व के द्वारा निरन्तर आकृष्ट होते रहते हैं और वह इन्द्रतत्त्व विभिन्न प्राण रश्मियों द्वारा आकृष्ट और समृद्ध होता रहता है। इस प्रकार विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ तीव्र संयोजक बलों से युक्त होकर संघनित और संपीडित होने लगते हैं। इसके साथ ही यह छन्द रश्मि इन्द्र-देवताक पूर्वोक्त ब्राह्मणाच्छंसी तृच की उत्पत्ति हेतु अनुकूल परिस्थितियों को उत्पन्न करती है।।

इस प्रकार इस इन्द्र-देवताक छन्द रश्मि के उत्पन्न होने पर जब ब्राह्मणाच्छंसी तृच, जो स्वयं इन्द्रदेवताक है, सतत उत्पन्न होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को इन्द्रतत्त्व से युक्त करती है, तब इस प्रकार की क्रिया विभिन्न अहनों अर्थात् देव परमाणुओं में सतत होते रहकर उन्हें तीव्र संयोजक बलों से युक्त करती रहती है।।

तदनन्तर पूर्वोक्त अच्छावाक संज्ञक एवं इन्द्राग्नी-देवताक ऋ.३.१२.१-३ तृच की आरम्भणीय ऋचा वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण से इन्द्राग्नी-देवताक एवं आर्षी निचृद् गायत्री छन्दस्क-

यत्सोम॒ आ सु॒ते नर॑ इन्द्रा॒ग्नी अजो॑हवुः। स॒प्तीव॑न्ता सप॒र्यवः॑।।१०।। (ऋ.७.९४.१०)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र और अग्नि तत्त्व तीक्ष्ण तेज और बल से युक्त होते हैं। {सपर्यति = परिचरणकर्मा (निघं.३.५)} अन्य प्रभाव से इन्द्र और अग्नि के सब ओर विचरने वाली मरुद् रश्मियां मेघरूप पदार्थों के अन्दर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के सम्पीडन के समय अनेक प्रकार के बलों एवं वेगों को उत्पन्न करती हैं। यह छन्द रश्मि पूर्वोक्त अच्छावाक संज्ञक तृच की आरम्भणीय ऋचा होने से उसकी उत्पत्ति के लिए अनुकूलता उत्पन्न करती है। इसमें विद्यमान इन्द्राग्नी 'अजोहवुः' पद पूर्वोक्त इन्द्राग्नी-देवताक ऋचाओं की मानो कामना करते हुए वाक् तत्त्वरूप विश्वामित्र ऋषि को अच्छावाक संज्ञक तृच को उत्पन्न करने के लिए प्रेरित करते हैं। इसके साथ ही ये पद इन्द्र और अग्नि तत्त्व को निरन्तर समृद्ध वा आकर्षित करते हैं। जब इस छन्द रश्मि के द्वारा इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है, तब पूर्वोक्त अच्छावाक संज्ञक तृच रश्मियां सभी अहन् अर्थात् देव परमाणुओं, विशेषकर अग्नि के परमाणुओं को तीव्र करती हैं, साथ ही अन्य सभी परमाणुओं को भी संयोज्यता आदि गुणों से समृद्ध करके संपीडन और संघनन की क्रिया को तीव्र करती हैं। इस समय अग्नि और इन्द्रतत्त्व के तीक्ष्ण होने के कारण असुर तत्त्व बाधक नहीं बन पाता, जिससे मेघरूपी पदार्थों में लोक निर्माण की प्रक्रिया निरन्तर समृद्ध होती है।।

ये उपर्युक्त तीनों छन्द रश्मियां आदित्य रूपी स्वर्गलोक के निर्माण वा प्राप्ति के लिए नौका के समान काम करती हैं। ये विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को असुर तत्त्व के दुष्प्रभाव से सुरक्षित रखती हुई संघनन और संपीडन के मार्ग पर अच्छी प्रकार तारती हैं, जिससे अन्ततः आदित्य लोकों का निर्माण हो जाता है। ध्यातव्य है कि इसी प्रकार से आदित्य लोकों से पूर्व पृथिवी आदि लोकों का भी निर्माण इन्हीं छन्द रश्मियों की सहायता से पूर्वोक्त तृच रश्मियों के द्वारा निरापद रूप से हो जाता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- कॉस्मिक मेघों से लोक निर्माण की प्रक्रिया में डार्क एनर्जी की बाधा, जिसके विषय में खण्ड ६.४ में वर्णन है, आती है, उस समय उस डार्क एनर्जी को नियंत्रित वा नष्ट करने के लिए जो छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, उनकी उत्पत्ति के ठीक पूर्व तीन पृथक्-२ गायत्री छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। ये तीनों छन्द रश्मियां क्रमशः पूर्वोक्त तीन-२ छन्द रश्मियों के समूह को उत्पन्न करने हेतु उनकी कारणभूत ऋषि प्राण रश्मियों को प्रेरित करती हैं। इनके कारण निर्माणाधीन लोकों में विद्युत् चुम्बकीय बल और गुरुत्वाकर्षण बल की वृद्धि के साथ-२ ऊर्जा की भी वृद्धि होने लगती है, जिसके कारण कॉस्मिक मेघ संपीडित और संघनित होकर विभिन्न लोकों को उत्पन्न करते हैं। इस

विषय में विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

इति २७.३ समाप्तः

अथ २७.४ प्रारभ्यते

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. अथातः परिधानीया एव।।
ते स्याम देव वरुणेति मैत्रावरुणस्येषं स्वश्च धीमहीत्ययं वै लोक इषमित्यसौ लोकः स्वरित्युभावेवैतया लोकावारभन्ते।।
व्यन्तरिक्षमतिरदिति ब्राह्मणाच्छंसिनो विवत्तृचं स्वर्गमेवैभ्य एतया लोकं विवृणोति।।
मदे सोमस्य रोचना, इन्द्रो यदभिनद्वलमिति।।
सिषासवो वा एते यद्दीक्षितास्तस्मादेषा वलवती भवति।।

व्याख्यानम्- आरम्भणीय ऋचाओं के पश्चात् परिधानीय ऋचाओं का वर्णन करते हैं। परिधानीय ऋचाओं के विषय में पूर्व में भी हम अनेकत्र लिख चुके हैं। ये ऋचाएं किन्हीं अन्य ऋचाओं को आच्छादित व धारण करके उन्हें सुरक्षित रखने का कार्य करती हैं। ये ऋचाएं खण्ड ६.४ में वर्णित असुर नियन्त्रिका छन्द रश्मियों को सब ओर से धारण व आच्छादित करने के कारण उनकी 'परिधानीय' कहलाती हैं।।

पूर्वोक्त मैत्रावरुण संज्ञक एवं मित्रावरुणौ-देवताक ऋ.३.६२.१६-१८ तृच की परिधानीय ऋचा के रूप में वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राण रश्मि से आदित्यादेवताक एवं निचृद् गायत्री छन्दस्क-

ते स्या॑म देव वरुण ते मि॑त्र सूरिभि॑ः सह। इषं॒ स्व॑श्च धीमहि।।६।। (ऋ.७.६६.६)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियां एवं उनके द्वारा प्रेरित आदित्य रश्मियां तीव्र तेज और बल से युक्त होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से प्राणापानोदान रश्मियां विशेष प्रकाशित होकर नाना प्रकार की तेजयुक्त छन्दादि रश्मियों के साथ संयोजक बलों एवं प्रकाश आदि को धारण करती हैं। यह छन्द रश्मि उस मैत्रावरुण तृच रूप रश्मिसमूह के उत्पन्न होने के पश्चात् उत्पन्न होकर उसे सब ओर से आच्छादित कर लेती है, जिसके कारण वह तृच रूप रश्मिसमूह सुरक्षित रूप से अपने कर्मों का सम्पादन करता है। इस परिधानीय छन्द रश्मि के अन्तिम पाद "इषं स्वश्च धीमहि" में 'इषम्' पद पार्थिव लोकों वा कणों को प्रभावित करके उन्हें संयोजक बलों से युक्त करता है और ऐसा करने के लिए वह उन्हें विभिन्न वाग् रश्मियों से युक्त करता है। इसमें "स्वः" पद आदित्य रश्मियों को प्रभावित करता है। वह आदित्य रश्मियों को 'स्वः' अर्थात् व्यान रश्मियों से विशेष युक्त करके विशेष सक्रिय और संयोजक बलों से युक्त करता है। इस प्रकार मेघरूप पदार्थों के अन्दर पार्थिव और आग्नेय दोनों प्रकार के परमाणु परस्पर संगत होते हुए दोनों लोकों का निर्माण करने में सक्षम होते हैं।।

तदुपरान्त पूर्वोक्त ब्राह्मणाच्छंसी संज्ञक इन्द्र-देवताक ऋ.८.१७.१-३ तृच की उत्पत्ति के पश्चात् गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ ऋषि {अश्वः = वज्रो वा ऽअश्वः (श.४.३.४.२७), वज्रो वा एषः यदश्वः (तै.ब्रा.१.१.५.५)। अन्नम् = अन्नमु गौः (श.७.५.२.१९), अन्नं वै गौः (तै.ब्रा.३.९.८.३)} अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न विभिन्न संयोज्य कणों और वज्ररूप रश्मियों को सतेज और सबल बनाने वाली सूक्ष्म ऋषि रूप रश्मियों से इन्द्र-देवताक और निचृद् गायत्री छन्दस्क-

व्य१न्तरिक्षमतिरन्मदे सोम॑स्य रोचना। इन्द्रो यदभि॑नद्वलम्।।७।। (ऋ.८.१४.७)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्रतत्त्व तीक्ष्ण तेज और बल से युक्त होता है।

इसके अन्य प्रभाव से {वलम् = वक्रगतिम् (म.द.ऋ.भा.४.५०.५), मेघनाम (निघं.१.१०), बलवान् शत्रुः (तु.म.द.ऋ.भा.१.५२.५)} इन्द्रतत्त्व वक्रगति से युक्त बलवान् बाधक आसुर मेघों को विदीर्ण करके समस्त देव पदार्थ को सक्रिय करते हुए आकाश तत्त्व को प्रकाशित करता है। यह उपर्युक्त ब्राह्मणाच्छंसी तृच रश्मियों की परिधानीय रश्मि होने से उन्हें सब ओर से आच्छादित करके सुरक्षित रखती है, जिससे वे अपने कर्मों को निरापद रूप से सम्पादित कर पाती हैं। इस ऋचा में 'वि' पद विद्यमान होने से इस छन्द रश्मि के प्रभाव से पृथिवी, द्यौ और अन्तरिक्ष तीनों ही लोकों का निर्माण मेघरूप पदार्थों के सम्पीडन से विशेष रूप से होने लगता है, मानो ये तीनों लोक पृथक्-२ व्यक्त होकर परस्पर दूर हटने लगते हैं। यहाँ "विवत्तृचं" से यह संकेत भी मिलता है कि परिधानीय के रूप में एक ऋचा नहीं बल्कि तृच की उत्पत्ति होती है। जिनमें से दो ऋचाओं को इसी खण्ड में आगे उद्धृत किया गया है।।

इस उपर्युक्त परिधानीय ऋचा के "मदे सोमस्य रोचना, इन्द्रो यदभिनद्वलम्" भाग के द्वारा मेघरूप देव पदार्थों के अन्दर विद्यमान सोम पदार्थ अर्थात् विभिन्न अप्रकाशित परमाणु आदि पदार्थ विशेष प्रकाशमान होते हैं। इसका कारण यह है कि इन्द्रतत्त्व तीक्ष्ण होकर आसुर पदार्थ की गति और बल दोनों को नियंत्रित वा नष्ट कर देता है, इस कारण देव पदार्थ संघनित होता हुआ निरन्तर अधिक प्रकाशयुक्त होने लगता है।।

{सिषासवः = सनितुं सम्भजितुमिच्छवः (म.द.ऋ.भा.१.१०२.६)। दीक्षा = प्राणा दीक्षा (श.१३.१.७.२; तै.ब्रा.३.८.१०.२), वाग्दीक्षा (तै.ब्रा.३.७.७.७), पृथिवी दीक्षा (तै.ब्रा.३.७.७.४), अन्तरिक्षं दीक्षा (तै.ब्रा.३.७.७.५), द्यौर्दीक्षा (तै.ब्रा.३.७.७.५)} इस उपर्युक्त परिधानीय ऋचा में "वलम्" शब्द विद्यमान है, इस कारण यह ऋचारूप रश्मि तीव्र बल से भी युक्त होती है और इसके प्रभाव से ही बलवान् आसुर मेघ को देव पदार्थों में से निराकृत करती है। जो देव पदार्थ विभिन्न वाग् एवं प्राण रश्मियों से युक्त होकर पृथिवी, द्यौ अथवा अन्तरिक्ष के रूप में प्रकट होने हेतु देव पदार्थ का सम्यग् विभाग करने के लिए प्रयत्नरत होते हैं, वे इस परिधानीय छन्द रश्मि के द्वारा उचित बल और गति प्राप्त करते हैं, इस कारण उनका मार्ग निरापद हो जाता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- कॉस्मिक मेघों से लोक निर्माण की पूर्वोक्त प्रक्रिया में डार्क एनर्जी को नियन्त्रित करने वाली तीन-२ छन्द रश्मियों के जो समूह (गायत्री छन्द रश्मिसमूह) उत्पन्न होते हैं, उनके उत्पन्न होने के तुरन्त पश्चात् एक-२ गायत्री छन्द रश्मि इस प्रकार उत्पन्न होती है कि वह उन छन्द रश्मिसमूहों को आच्छादित कर लेती है। इस आच्छादन के कारण वे छन्द रश्मियां विशेष बल और सुरक्षा को प्राप्त करके अपने-२ कार्यों को समुचित रूप से करने में समर्थ होती हैं। इनके कारण विभिन्न कण एवं क्वान्टाज् अधिक ऊर्जावान् हो उठते हैं। सभी प्रकार के बलों में भी भारी वृद्धि होती है और पदार्थ में विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्रों का निर्माण भी तीव्रता से होता है। विशेष जानकारी हेतु व्याख्यान भाग देखें।।

२. 'उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः, अर्वाञ्चं नुनुदे वलमिति' सनिमेवैभ्य एतयाऽवरुन्धे।।
इन्द्रेण रोचना दिव इति, स्वर्गो वै लोक इन्द्रेण रोचना दिवः।।
दृळ्हानि दृंहितानि च, स्थिराणि न पराणुद इति।।
स्वर्ग एवैतया लोकेऽहरहः प्रतितिष्ठन्तो यन्ति।।
आऽहं सरस्वतीवतोरित्यच्छावाकस्य; वाग्वै सरस्वती, वाग्वतोरिति हैतदाहेन्द्राग्न्योरवो वृणं इत्यैतद्ध वा इन्द्राग्न्योः प्रियं धाम यद्वागिति, प्रियेणैवैनौ तद्धाम्ना समर्धयति।।
प्रियेण धाम्ना समृध्यते य एवं वेद।।४।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर पूर्वोक्त ब्राह्मणाच्छंसी तृच की परिधानीय ऋचा के रूप में एक अन्य ऋचा भी

पूर्वोक्त ऋषि और देवता वाली गायत्री छन्दस्क-

उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः। अर्वाञ्चं नुनुदे वलम्॥८॥ (ऋ.८.१४.८)

की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से {अर्वाक् = अर्वाके अन्तिकनामसु पठितम् (निघं.२.१६)} इन्द्रतत्त्व वलवान् असुर तत्त्व को देव पदार्थों से निराकृत करके बाहर की ओर निकट ही धकेल देता है और अन्तरिक्ष में सती {सत् = प्राणा वै सत् (तै.सं.७.२.६.३)} अर्थात् विभिन्न प्राण रश्मियां प्रकट होती हुई सूत्रात्मा वायु रश्मियों के साथ मिलकर नाना प्रकार के परमाणुओं को उत्पन्न करती हैं। इस प्रकार इस छन्द रश्मि के द्वारा मेघरूप पदार्थों में विभिन्न पदार्थों का अनुकूलतापूर्वक विभाजन और अवरोध अर्थात् सम्पीडन होने लगता है। इस विषय में एक अन्य महर्षि का कथन है-

"असुराणां वै बलस्तमसा प्रावृतोऽश्मापिधानश्चासीत्" (तां.१६.७.१)

इस कथन से यह संकेत मिलता है कि मेघरूप देव पदार्थ जिस वलवान् आसुर मेघ पदार्थ से ढका रहता है एवं इसका देव पदार्थ पर प्रहार होता है, वह अन्धकार से पूरी तरह आवृत्त होता है। इसके साथ ही वह आसुर मेघपदार्थ 'अस्मा' से ढका हुआ होता है। 'अस्मा' के विषय में एक ऋषि का कथन है-

"अश्मा जागतम् (छन्दः)" (शां.आ.११.७)।

इससे यह सिद्ध होता है कि वह 'अस्मा' संज्ञक आसुर मेघ आसुरी जगती छन्द रश्मियों से आच्छादित होता है। इन्द्रतत्त्व इन सभी आच्छादनों को भेदकर असुर पदार्थ को नियन्त्रित वा निराकृत करता है॥

तदनन्तर पूर्वोक्त ब्राह्मणाच्छंसी तृच की परिधानीय रूप तीसरी ऋचा और उत्पन्न होती है। यह ऋचा भी पूर्वोक्त ऋषि, देवता और छन्द वाली होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। वह ऋचा इस प्रकार है-

इन्द्रेण रोचना दिवो दृळ्हानि दृंहितानि च। स्थिराणि न पराणुदे॥९॥ (ऋ.८.१४.९)

इस छन्द रश्मि का प्रथम पाद "इन्द्रेण रोचना दिवः" में 'दिवः' पद स्वर्गलोक का वाचक है। इससे संकेत मिलता है कि यह छन्द रश्मि ब्राह्मणाच्छंसी तृच के साथ मिलकर उसको सुरक्षित रखकर द्युलोकों के केन्द्रीय भाग के निर्माण तक सक्रिय रहती है और इस कार्य में इन्द्रतत्त्व का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान रहता है॥

इसी उपर्युक्त छन्द रश्मि के अन्य दो पाद "दृळ्हानि दृंहितानि च, स्थिराणि न पराणुदे" के प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व द्युलोकों एवं उनके केन्द्रीय भागों को निरन्तर दृढ़ और सघन बनाता जाता है, साथ ही आकार की दृष्टि से भी उनको समृद्ध करता जाता है। यह गायत्री छन्द रश्मि उन द्युलोकों को अपनी-२ कक्षाओं में स्थिर होने के लिए भी सहयोग करती है। इस विषय में खण्ड ४.१८ विशेष पठनीय है, जहाँ विभिन्न द्युलोकों को स्थिर करने के लिए उन द्युलोकों के एक महाकेन्द्रीय भाग के चारों ओर अनेक क्षेत्र दर्शाये गये हैं, जिनमें से एक क्षेत्र में गायत्री छन्द रश्मियों की प्रधानता ही होती है। इसका तात्पर्य यह है कि द्युलोकों की कक्षाओं के स्थिरीकरण में गायत्री छन्द रश्मियों की भी निश्चित भूमिका होती है। यह छन्द रश्मि भी गायत्री छन्दस्क है। इस कारण इसकी भी द्युलोकों को कक्षाओं में स्थायित्व प्रदान करने में भूमिका होती है। इसके प्रभाव से समृद्ध हुआ इन्द्रतत्त्व उन लोकों को अपनी कक्षाओं से भटकने नहीं देता॥

यह उपर्युक्त छन्द रश्मि प्रत्येक अहन् अर्थात् सभी देव परमाणुओं में व्याप्त होकर उनको स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित करने में सहायक होती है। इसका तात्पर्य यह है कि इस छन्द रश्मि से सुरक्षित ब्राह्मणाच्छंसी तृच रश्मियां द्युलोकों के केन्द्रीय भाग के निर्माण तथा उन लोकों के कक्षाओं में स्थापित होने तक सतत सक्रिय रहती हैं और सभी परमाणु आदि पदार्थों को निरन्तर सक्रिय रखती हैं॥

तदनन्तर पूर्वोक्त अच्छावाक संज्ञक ऋ.३.१२.१-३ तृच की परिधानीय रूप ऋचा का वर्णन करते हैं। यह ऋचा श्यावाश्व ऋषि अर्थात् विशेष गति और बल से युक्त सूक्ष्म प्राण विशेष से इन्द्राग्नी-देवताक एवं निचृद् गायत्री छन्दस्क-

आहं सर॑स्वतीवतोरिन्द्राग्न्योरवो वृणे। याभ्यां गायत्रमृच्यते॑।।१०।। (ऋ.८.३८.१०)

उत्पन्न होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र और अग्नि तत्त्व तीक्ष्ण तेज और बल से युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे इन्द्र और अग्नि तत्त्व विभिन्न गायत्री छन्द रश्मियों के द्वारा प्रकाशित होते हुए अपनी कारणरूप श्यावाश्व प्राण रश्मियों का वरण करके और अधिक वेग और बल से युक्त होते हैं। यहाँ महर्षि लिखते हैं कि वाक् तत्त्व ही सरस्वती रूप है। ग्रन्थकार ने अन्यत्र वाक् तत्त्व के सारस्वत रूप के विषय में लिखा है-

"अथ यत्स्फूर्जयन् वाचमिव वदन् दहति तदस्य सारस्वतं रूपम्" (ऐ.३.४)

इससे संकेत मिलता है कि इस समय इन्द्र और अग्नि तत्त्व इस अवस्था में होते हैं कि निर्माणाधीन लोकों में तीव्र घोष करती हुई ज्वालाएं उत्पन्न होने लगती हैं। ये ज्वालायुक्त इन्द्र और अग्नि तत्त्व इस गायत्री छन्द रश्मि के द्वारा ही निरन्तर आकृष्ट और सुरक्षित रहते हैं। तीव्र घोषयुक्त ज्वालाएं ही अग्नि और इन्द्रतत्त्व का प्रियधाम होती हैं किंवा वे ज्वालाएं इन्द्र और अग्नि तत्त्व के सम्मिलित प्रभाव के कारण ही उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार इस छन्द रश्मि के प्रभाव से वे इन्द्र और अग्नि तत्त्व सरस्वती वाग् रूप अर्थात् घोषयुक्त ज्वालाओं से समृद्ध लोकों को समृद्ध करते हैं। जब इस प्रकार की स्थिति मेघरूप पदार्थों में उत्पन्न होने लग जाती है, तब उनमें आदित्य लोक आदि धाम समृद्ध होने लगते हैं।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त प्रक्रिया में ही दो गायत्री छन्द रश्मियां और उत्पन्न होती हैं, जिनके कारण कॉस्मिक मेघों में डार्क एनर्जी के निराकरण और नियन्त्रण की प्रक्रिया तीव्र होती है। ध्यातव्य है कि कॉस्मिक मेघों के बाहर डार्क एनर्जी मिश्रित डार्क मैटर की विशाल मात्रा विद्यमान होती है, जो पूर्णतः प्रकाशरहित एवं आसुरी जगती रश्मियों से आच्छादित रहती है। यह पदार्थ ही कॉस्मिक मेघों पर प्रहार करके उन्हें छिन्न-भिन्न करने का प्रयत्न करता है, तब कॉस्मिक मेघों में विद्यमान तीव्र विद्युत् और ऊष्मा की तरंगें उस प्रभाव को निष्क्रिय करती हैं। इसके पश्चात् कॉस्मिक मेघ तीव्र गर्जना से युक्त अग्नि की बड़ी-२ ज्वालाओं से भर जाते हैं। पदार्थ का तीव्रता से संघनन भी होता है और ऊर्जा की भी भारी वृद्धि होने लगती है। इस प्रकार धीरे-२ तारों का जन्म होने लगता है। इनमें से कुछ गायत्री छन्द रश्मियां तारों को आकाशगंगा के चारों ओर तथा ग्रहों को अपने-२ तारों के चारों ओर परिक्रमण करने के लिए भी प्रेरित करते हुए उनकी कक्षाओं को स्थिरता प्रदान करने में भी सहयोग करती हैं। विशेष जानकारी हेतु व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

॥ इति २७.४ समाप्तः ॥

ॐ अथ २७.५ प्रारभ्यते ॐ

**** तमसो मा ज्योतिर्गमय ****

१. उभय्यः परिधानीया भवन्ति होत्रकाणां,-प्रातःसवने च माध्यंदिने चाहीनाश्चैकाहिकाश्च।।
तत ऐकाहिकाभिरेव मैत्रावरुणः परिदधाति; तेनास्माल्लोकान्न प्रच्यवते।।
अहीनाभिरच्छावाकः स्वर्गस्य लोकस्याऽऽप्त्यै।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त होत्रक अर्थात् मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी एवं अच्छावाक आदि तृच रश्मियों की परिधानीय अन्य भी दो प्रकार की रश्मियां होती हैं। ये दोनों प्रकार की रश्मियां प्रातःसवन एवं माध्यंदिन सवन में उत्पन्न होती हैं अर्थात् गायत्री और त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की प्रधानता में ये दोनों प्रकार की रश्मियां उत्पन्न होती हैं। हम खण्ड ६.४ में इन होत्रकों के विषय में पढ़ चुके हैं। वहाँ इन तीन होत्रकों में केवल प्रातःसवन की ही चर्चा है। मध्यंदिन सवन की चर्चा कहीं नहीं है। इससे संकेत मिलता है कि इस खण्ड में दर्शायी जाने वाली परिधानीय छन्द रश्मियां केवल इस अध्याय में वर्णित होत्रकों की ही परिधानीय रश्मियां नहीं होती, बल्कि सृष्टि प्रक्रिया में उत्पन्न एवं इस ग्रन्थ में अनेकत्र वर्णित प्रातःसवन एवं माध्यंदिन सवन में सक्रिय होत्रकों अर्थात् छन्द रश्मिसमूहों की भी परिधानीय होती हैं। अहीन परिधानीय छन्द रश्मियों के विषय में ग्रन्थकार का कथन है-

"अहीनानि ह वा एतान्यहानि न ह्येषु किंचन हीयते" (ऐ.६.१८)।

इसका आशय यह है कि ये वे रश्मियां हैं, जो अपने द्वारा आच्छादित किन्हीं भी छन्दादि रश्मियों को किंचिदपि क्षीण नहीं होने देती। यद्यपि, सभी प्रकार की परिधानीय रश्मियां अपने द्वारा आच्छादित विभिन्न रश्मियों को सुरक्षा प्रदान करती हैं, जिससे वे रश्मियां उस सुरक्षा कवच में रहकर अपने सभी कर्मों को अच्छी प्रकार सम्पादित कर सकें। पुनरपि, यहाँ ग्रन्थकार ने अहीन परिधानीय रश्मियों के इस गुण को दृढ़तापूर्वक बतलाया है। इन रश्मियों से आच्छादित छन्द रश्मियां किंचित् मात्रा में भी बाहर नहीं जा सकती और इस प्रकार बिना किसी क्षीणता के अपने वांछित कर्मों को सम्पादित करने में समर्थ होती हैं। इन अहीन रश्मियों के बिना लोक निर्माण और नियन्त्रण की प्रक्रिया पूर्ण नहीं हो सकती, इसी कारण महर्षि तित्तिर का कथन है-

"सर्वान् लोकानहीनेन (अभिजयति)" (तै.ब्रा.३.१२.५.७)।

उधर 'ऐकाहिक' परिधानीय छन्द रश्मियों के विषय में ग्रन्थकार का कथन है-

"एता वै शान्ताः क्लृप्ताः प्रतिष्ठिता होत्रा यदैकाहिका" (ऐ.८.४)।

इसका तात्पर्य यह है कि ये परिधानीय रश्मियां अपने द्वारा आच्छादित वा प्रतिष्ठित छन्द रश्मियों को नियंत्रित रखते हुए सामर्थ्यवान् भी बनाती हैं। 'एकाह' के विषय में कुछ ऋषियों का कथन है-

"ज्योतिर्वा एकाहः" (कौ.ब्रा.२५.३)

"प्रतिष्ठा वा एकाहः" (ऐ.६.८; कौ.ब्रा.२४.२; शां.आ.२.१६)

इससे सिद्ध होता है कि ये परिधानीय छन्द रश्मियां अपने द्वारा आच्छादित छन्द रश्मियों को नियन्त्रण में रखने के साथ-२ उन्हें अधिक ज्योतिर्मय करते हुए प्रतिष्ठा अर्थात् आधार भी प्रदान करती हैं। यद्यपि सभी परिधानीय रश्मियां आच्छादिका होने के कारण आधार रूप होती ही हैं, पुनरपि इन ऐकाहिक परिधानीय छन्द रश्मियों में यह गुण विशेषता से विद्यमान होता है। यहाँ इसका आशय यही है।।

अब ऋषि लिखते हैं कि पूर्वोक्त ऐकाहिक संज्ञक छन्द रश्मियां पूर्वोक्त मैत्रावरुण संज्ञक छन्द रश्मियों की परिधानीय अर्थात् आच्छादिका होती हैं।

सायण के भाष्य के आधार पर हम परिधानीय ऋचाओं (ऐकाहिक संज्ञक) पर अपनी शैली से वैज्ञानिक व्याख्यान लिखते हैं-

(१) ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह। इषं स्वश्च धीमहि।।६।। (ऋ.७.६६.६)

यह छन्द रश्मि ऐकाहिक परिधानीय कहलाती है। इसका वर्णन पूर्व खण्ड में भी किया गया है, जहाँ इसे मैत्रावरुण की परिधानीय ऋचा कहा गया है। यहाँ उसी कथन की पुष्टि करते हुए ऐकाहिक कहकर एक विशेषण प्रदान किया गया है। विशेष पूर्व खण्ड देखें। यह ऋचा प्रातःसवन अर्थात् गायत्री छन्द प्रधान चरण में ही परिधानीय रूप में उत्पन्न होती है, जो अपने अन्दर आच्छादित छन्द रश्मियों को आधार व नियन्त्रण प्रदान करती हुई अधिक तेजस्विता प्रदान करती है। इसका दूसरा आशय यह है कि यह छन्द रश्मि प्रातःसवन अर्थात् {अनिरुक्तं प्रातःसवनम् (तां.१८.६.७), अनिरुक्तं हि रेतः (काठ.२६.४)} अव्यक्त रूप से वीज रूप में शक्ति प्रदान करती है।

(२) नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः।।२१।। (ऋ.४.१६.२१)

यह छन्द रश्मि लोक निर्माण की प्रक्रिया में नवम अहन् अर्थात् धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल में भी अन्य अनेक छन्द रश्मियों के साथ उत्पन्न होती है। इस कारण इस छन्द रश्मि के प्रभाव और स्वरूप आदि के विषय में ५.२१.१ द्रष्टव्य है। यह छन्द रश्मि मैत्रावरुण संज्ञक छन्द रश्मियों के माध्यंदिन सवन अर्थात् त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की प्रधानता में परिधानीय ऋचा का काम करती है। इसके अतिरिक्त {वाजवन् माध्यंदिनं सवनम् (तां.१८.६.७)} यह तीव्र बल के साथ उत्पन्न होकर तीव्र बल और तेज प्रदान करती है। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"आ सत्यो यात्वित्यहीनसूक्तं द्वितीयं मैत्रावरुणः......" (आश्व.श्रौ.७.४.६) इससे सिद्ध है कि "आ सत्यो यातु.........." ऋ.४.१६ सूक्त की सभी २१ छन्द रश्मियां अहीन संज्ञक परिधानीय होती हैं। इस सूक्त के विषय में ५.२१.१ देखें। उनमें से अन्तिम अर्थात् यह छन्द रश्मि ऐकाहिक संज्ञक परिधानीय होती है। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"अन्त्ये च" (आश्व.श्रौ.७.२.६)।

इस पर टीकाकार आचार्य नारायण का कथन है-

"अन्त्ये चाहनि पूर्वयोर्विध्योः प्रवृत्यसंभवादैकाहिक एव भवति।"

इस प्रकार ये दोनों ही छन्द रश्मियां मैत्रावरुण संज्ञक छन्द रश्मियों की ऐकाहिक परिधानीय रूप होती हैं, जो विभिन्न लोकों {लोकाः = छन्दांसि वै सर्वे लोकाः (जै.ब्रा.१.३३२)} अर्थात् छन्द रश्मियों को तीव्र तेज एवं आधार प्रदान करके नियन्त्रित करती हुई उन्हें अपने कार्य और वलों से भ्रष्ट नहीं होने देती हैं अर्थात् उन्हें हर दृष्टि से स्थायी सामर्थ्य प्रदान करती हैं।।

पूर्वोक्त अच्छावाक संज्ञक छन्द रश्मियां अहीन संज्ञक परिधानीय छन्द रश्मियों के द्वारा आच्छादित व सुरक्षित होती हैं। आचार्य सायण भाष्य के अनुसार परिगणित अहीन छन्द रश्मियों पर हम क्रमशः विचार करते हैं।

(१) आहं सरस्वतीवतोरिन्द्राग्न्योरवो वृणे। याभ्यां गायत्रमृच्यते।।१०।। (ऋ.८.३८.१०)

इस छन्द रश्मि को पूर्व खण्ड में परिधानीय ऋचा के रूप में वर्णित किया गया है। इस कारण इसके विषय में पूर्व खण्ड द्रष्टव्य है। यहाँ केवल उस परिधानीय की अहीन संज्ञा की गयी है। यह छन्द रश्मि अच्छावाक रश्मियों के प्रातःसवन अर्थात् गायत्री छन्द प्रधान अवस्था में ही अहीन परिधानीय के रूप में प्रकट होती है। इसके साथ ही यह अव्यक्त भाव से वीज रूप में शक्ति प्रदान करती है।

(२) नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः।।२१।। (ऋ.२.११.२१)

इसकी उत्पत्ति गृत्समद ऋषि अर्थात् प्राणापान रश्मियों से होती है। इसका देवता इन्द्र और छन्द त्रिष्टुप् है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्रतत्त्व तीव्र तेज और वल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्रतत्त्व विभिन्न छन्द रश्मियों और उनके द्वारा विभिन्न परमाणुओं को तीव्र वल और तेज से युक्त तथा {वरः = वरो वरयितव्यो भवति (नि.१.७), वर इव वै स्वर्गो लोकः (जै.ब्रा.२.६६)} कमनीय वलों से सम्पन्न करके द्युलोकों के केन्द्रीय भागों के निर्माणार्थ प्रेरित करता है, साथ ही वह निर्माणाधीन केन्द्रीय भागों की ऊष्मा को भी नियन्त्रित करता हुआ विभिन्न प्राण रश्मियों के द्वारा नाना प्रकार के संग्राम व संघर्षणों को समृद्ध करके संयोग और संपीडन की क्रियाओं को व्यापक वनाता है। यह छन्द रश्मि त्रिष्टुप् छन्दस्क होने के कारण अन्य सभी छन्द रश्मियों को तीव्र संयोजक वलों से युक्त करती है।

इन दोनों अहीन संज्ञक परिधानीय रश्मियों के द्वारा आच्छादित व सुरक्षित छन्द रश्मियां कभी क्षीणता को प्राप्त नहीं होती और निरन्तर द्युलोकों के केन्द्रीय भागों के निर्माण के लिए सतत सक्रिय और सवल वनी रहती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- कॉस्मिक मेघों के संघनन से लोक निर्माण प्रक्रिया में बाधक बने डार्क मैटर और डार्क एनर्जी से जब कुछ पूर्वोक्त छन्द रश्मियों एवं उनसे उत्पन्न विद्युत् और ऊष्मा से युक्त कणों वा विकिरणों का संघर्ष होता है, तव उन छन्द रश्मियों को आच्छादित करने वाली दो प्रकार की छन्द रश्मियां और उत्पन्न होती हैं। इनमें से प्रथम छन्द रश्मियां वे होती हैं, जो अपने द्वारा आच्छादित छन्द रश्मियों के बल और मात्रा दोनों को ही यथावत् रखती हुई क्षीण नहीं होने देती हैं और दूसरी आच्छादिका छन्द रश्मियां वे होती हैं, जो अपने द्वारा आच्छादित छन्द रश्मियों के तेज और बल को न केवल सुरक्षित रखती हैं, अपितु उन्हें बढ़ाती व नियंत्रित भी रखती हैं। इसके साथ ही वे उन्हें एक सुरक्षित आधार भी प्रदान करती हैं। इस प्रकरण में ये दोनों ही प्रकार की छन्द रश्मियां संख्या में दो-२ होती हैं। इन दो-२ के जोड़े में भी एक गायत्री और एक त्रिष्टुप् रश्मि होती है। गायत्री छन्द रश्मि अपना प्रभाव बीजरूप में अव्यक्त भाव से परन्तु अपरिमित मात्रा में उत्पन्न करती है, जबकि त्रिष्टुप् छन्द रश्मि विभिन्न छन्द रश्मियों को तीव्र तेज और बल, विशेषकर संयोजक बल से युक्त करती है। ये छन्द रश्मियां कॉस्मिक मेघों के सम्पीडन से लेकर विभिन्न तारों एवं ग्रह आदि लोकों के केन्द्रीय भागों के निर्माण तक सतत सक्रिय रहती हैं। इसके पश्चात् भी दो छन्द रश्मियां इन लोकों के अपनी-२ कक्षाओं में स्थिर हो जाने तक अपनी भूमिका निभाती हैं।।

२. उभयीभिर्ब्राह्मणाच्छंसी; तेनो स उभौ व्यन्वारभमाण एतीमं चामुं च लोकमथो मैत्रावरुणं चाच्छावाकं चाथो अहीनं चैकाहं चाथो संवत्सरं चाग्निष्टोमं चैवमु स उभौ व्यन्वारभमाण एति।।
अथ तत ऐकाहिका एव तृतीयसवने होत्रकाणां परिधानीया भवन्ति, प्रतिष्ठा वा एकाहः, प्रतिष्ठायामेव तद्यज्ञमन्ततः प्रतिष्ठापयन्ति।।
अनवानं प्रातःसवने यजेत्।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त ब्राह्मणाच्छंसी छन्द रश्मियों की परिधानीय छन्द रश्मियों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि छन्द रश्मियों में दोनों प्रकार की अर्थात् अहीन और ऐकाहिक छन्द रश्मियां परिधानीय के रूप में उत्पन्न होती हैं। यहाँ आचार्य सायण भाष्य के अनुसार निम्न प्रकार छन्द रश्मियां परिधानीय के रूप में उत्पन्न होती हैं-

(१) स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद्गोमद्यवमत्। उरुधारेव दोहते।।३।। (ऋ.८.९३.३)

इसकी उत्पत्ति सुकक्ष ऋषि अर्थात् ताड़न आदि वलों से विशेष युक्त एक सूक्ष्म प्राण से होती है। इसका देवता इन्द्र और छन्द निचृद् गायत्री है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्रतत्त्व तीक्ष्ण तेज और वल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व विशेष संयोजक छन्द रश्मियों से युक्त होने के

कारण मेघरूप पदार्थों में कमनीय प्रकाश से युक्त व्यापक धाराओं को पूर्ण करता है।

इस छन्द रश्मि को आचार्य सायण ने प्रकृति रूप प्रातःसवन में परिधानीय बताया है। इससे हमें यह प्रतीत होता है कि यह छन्द रश्मि स्वाभाविक और प्राथमिक अवस्था में उत्पन्न होकर अव्यक्त भाव से बीजरूप तेज का संचरण करती है। यहाँ प्रकृति का अर्थ ऐकाहिक भी समझना चाहिये।

(२) इन्द्रेण रोचना दिवो दृळ्हानि दृंहितानि च। स्थिराणि न पराणुदे।।६।। (ऋ.८.१४.६)

इस छन्द रश्मि के विषय में पूर्वखण्ड द्रष्टव्य है। इसे आचार्य सायण ने विकृति अवस्था में उत्पन्न माना है। इससे यह प्रतीत होता है कि यह छन्द रश्मि प्रातःसवन की कुछ विकृत अवस्था के रूप में उत्पन्न होती है अर्थात् यह पूर्व छन्द रश्मि के पश्चात् उत्पन्न होती है। यहाँ विकृति का अर्थ अहीन भी समझना चाहिए।

(३) एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः।
स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।६।। (ऋ.७.२३.६)

इसकी उत्पत्ति वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण से होती है। इसका देवता इन्द्र तथा छन्द भुरिक् पंक्ति होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्रतत्त्व व्यापक और विशेष संयोजक बलों से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न तेजस्विनी प्राण रश्मियां {अर्कः = अर्कैरर्चनीयैः स्तोमैः (नि.६.२३)} बलवान् वज्ररूप रश्मियों से युक्त इन्द्रतत्त्व को सब ओर से प्रकाशित करती हैं। वह प्रकाशित इन्द्रतत्त्व विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों की रक्षा करता हुआ अनेक प्रकार की बलवती किरणों की भी सदैव रक्षा करता है। इस छन्द रश्मि को आचार्य सायण ने प्रातःसवन की प्रकृति और विकृति दोनों ही अवस्थाओं में परिधानीय माना है। इसका तात्पर्य यह है कि इस छन्द रश्मि में उपर्युक्त दोनों छन्द रश्मियों के गुण विद्यमान होते हैं अर्थात् इसका सक्रियता-काल दीर्घ होता है। ध्यातव्य है कि आचार्य सायण ने अपना भाष्य आधियाज्ञिक पद्धति में किया है। इस कारण उन्होंने प्रकृति और विकृति का जो भी स्वरूप माना हो, हम अपने आधिदैविक व्याख्यान में उपर्युक्तानुसार स्वरूप को स्वीकार करते हैं। ये छन्द रश्मियां अहीन एवं ऐकाहिक दोनों ही प्रकार का व्यवहार करती हैं। वे इस व्यवहार के कारण ही दोनों ही प्रकार के लोकों अर्थात् द्यु एवं पार्थिव को निर्मित करती हुई सतत सक्रिय रहती हैं। इन छन्द रश्मियों से आच्छादित ब्राह्मणाच्छंसी छन्द रश्मियां पूर्वोक्त मैत्रावरुण और अच्छावाक संज्ञक दोनों ही प्रकार की छन्द रश्मियों के साथ संगत होती हुई कॉस्मिक मेघों में निरन्तर संचरित होती रहती हैं। ये छन्द रश्मियां संवत्सर रूप लोकों तथा अग्निष्टोम लोकों दोनों के ही निर्माण में अपनी भूमिका निभाती हैं। यहाँ संवत्सर लोकों से तात्पर्य है, द्युलोकों का वह भाग, जो बाहर से दिखायी देता है तथा कहीं तेजस्वी तो कहीं कम तेजस्वी अर्थात् कृष्णवर्णीय होता है। इसकी पुष्टि महर्षि जैमिनी के "तस्य (आदित्यस्य) यद् भाति तत् संवद्, यन्मध्ये कृष्णं मण्डलं तत् सर इत्यधिदेवतम्" (जै.ब्रा.२.२८) कथन से भी होती है। इसके अतिरिक्त महर्षि तित्तिर के कथन "गौसत्रं वै संवत्सरः" (तै.सं.७.५.१.१-२) से यह भी संकेत मिलता है कि सभी पृथिवी आदि लोक भी संवत्सर कहलाते हैं। उधर, अग्निष्टोम के विषय में ऋषियों का कथन है-

"अग्निप्रतिष्ठानो ह्यग्निष्टोमः" (काठ.१४.६)
"अग्निष्टोमो विषुवान्" (जै.ब्रा.२.५०)
"ज्योतिर्वा अग्निष्टोमः" (कौ.ब्रा.२५.६)

इससे स्पष्ट होता है कि सभी प्रकार के लोकों के केन्द्रीय भाग, जो अग्नि के महान् प्रतिष्ठान होते हैं, अग्निष्टोम कहलाते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त छन्द रश्मियों की भूमिका दोनों ही प्रकार के लोकों के पूर्ण निर्माण होने तक बनी रहती है।।

अब तृतीय सवन अर्थात् जागत अवस्था की चर्चा करते हुए कहते हैं कि इस अवस्था में पूर्वोक्त होत्रकों अर्थात् मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी एवं अच्छावाक आदि तृच रश्मियों की परिधानीय केवल ऐकाहिक संज्ञक छन्द रश्मियां ही होती हैं, न कि अहीन संज्ञक भी। आचार्य सायण के भाष्यानुसार ये ऐकाहिक अर्थात् प्रकृति रूपी परिधानीय छन्द रश्मियां निम्नानुसार हैं-

(१) आ वां राजानावध्वरे ववृत्यां हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः।
प्र वां घृताची बाह्वोर्दधाना परि त्मना विषुरूपा जिगाति।।१।। (ऋ.७.८४.१)

इसकी उत्पत्ति वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राण रश्मियों से होती है। इसका देवता इन्द्रावरुण एवं छन्द निचृत्त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से वायु और विद्युत् दोनों ही तीक्ष्ण तेज और वल से युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे इन्द्र और वरुण अर्थात् वायु और विद्युत् प्रकाशित वा सक्रिय होते हुए असुर तत्त्व के साथ संग्राम में अपनी हविरूप वज्र रश्मियों के साथ व्याप्त होते हैं। {घृताची = वाग्वै धीर्घृताची (ऐ.आ.१.१.४)} वे विभिन्न वाग् रश्मियों को धारण करते हुए सूत्रात्मा वायु से सब ओर से व्याप्त होकर अपने वलों को तीव्र वनाये रखते हैं।

(२) "अच्छाम इन्द्रमिति नित्यमैकाहिकम्।" (आश्व.श्रौ.८.३.३४)

इस वचन के अनुसार कृष्ण आङ्गिरसः ऋषि अर्थात् विशेष आकर्षण वलयुक्त सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न एक प्राण विशेष से निचृज्जगती छन्दस्क इन्द्रदेवताक, जिसके दैवत और छान्दस प्रभाव से इन्द्रतत्त्व तीक्ष्णता से व्याप्त होता हुआ संयोग-वियोग का गुण दर्शाता है,

अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये।।१।। (ऋ.१०.४३.१)

की उत्पत्ति होती है। इसके प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व सभी प्रकाशित और परस्पर संगत वाग् रश्मियों के द्वारा कमनीय रूप धारण करता हुआ अच्छी प्रकार प्रकाशित होता है। वह इन्द्रतत्त्व पुरुष रूप से व्यवहार करता हुआ योषा रूप वाग् रश्मियों के साथ सदैव संगत रहता है।

(३) सं वां कर्मणा समिषा हिनोमीन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य।
जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्तमरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता।।१।। (ऋ.६.६९.१)

इसकी उत्पत्ति भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न विभिन्न वलों की धारिका एक प्राण रश्मि विशेष से होती है। इसका देवता इन्द्राविष्णू तथा छन्द निचृद् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से विद्युत् और वायु तीक्ष्ण तेज और वल से युक्त होते हैं। इसके साथ ही अन्य प्रभाव से विद्युत् और वायु तीक्ष्ण तेज और वल से युक्त होकर अग्नि और विद्युत् के परमाणुओं को विशेष रूप से समृद्ध करते हैं। ये विभिन्न परमाणुओं को अनेकविध संयोजक वल प्रदान करके नाना आसुरी वाधाओं से पार करते हुए संगत और धारण करते हैं।

इस प्रकार ये तीनों छन्द रश्मियां प्रकृतिरूप ऐकाहिक परिधानीय अर्थात् आच्छादिका होकर अपने द्वारा आच्छादित सभी छन्द रश्मियों को आधार प्रदान करती हैं। इस प्रकार ये आधाररूप वनकर अन्ततः सर्ग यज्ञ रूपी सभी क्रियाओं और लोकों को प्रतिष्ठित करती हैं। ये सभी छन्द रश्मियां त्रिष्टुप् अथवा जगती रूप होने से भी तृतीय सवन का व्यवहार करती हैं। यद्यपि तृतीय सवन जगती प्रधान होता है परन्तु महर्षि जैमिनी के अनुसार "आनुष्टुभं हि तृतीयसवनम्" (जै.ब्रा.१.१८०)। वस्तुतः "चित्रवत् तृतीयसवनम्" (तां.१८.६.७) के अनुसार तृतीय सवन विचित्र व्यवहार से युक्त होता है। इस कारण इसमें सभी छन्द रश्मियां विद्यमान होती हैं और इसलिए ही द्युलोक को भी तृतीय सवन कहते हैं। हमारे इस कथन की पुष्टि निम्नलिखित दो प्रमाणों से होती है-

"अथैतन्मिश्रं यत् तृतीयसवनम्" (काश.५.४.४.२ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत)
"अदस् (द्युलोकः) तृतीयसवन्" (जै.ब्रा.३.५७)

यहाँ हमने तृतीयसवन में त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों का जो ग्रहण किया है, उसकी पुष्टि द्युलोक अर्थात् आदित्य के निम्नलिखित स्वरूप से भी होती है- "त्रैष्टुभो वा एष य एष (आदित्यः) तपति" (कौ.ब्रा. २५.४), "त्रैष्टुब्जागतो वा आदित्यः" (तां.४.६.२३)।।

पूर्वोक्त प्रातःसवन, जिसके विषय में हम इस प्रकरण में चर्चा कर रहे हैं, उस समय जो भी

परिधानीय अर्थात् आच्छादिका छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, वे अनवान रूप से होती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि उन छन्द रश्मियों के तेज रूप बलों का बीज रूप संचरण बिना किसी विराम के सतत होता है अर्थात् उसमें बीच में कोई व्यवधान नहीं आता।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- लोक निर्माण प्रक्रिया के समय कॉस्मिक मेघों में डार्क एनर्जी और डार्क मैटर के दुष्प्रभाव को दूर करने के लिए जो छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, उनको आच्छादित करने वाली ६ छन्द रश्मियां और उत्पन्न होती हैं, जिनमें से दो गायत्री, दो त्रिष्टुप्, एक पंक्ति और एक जगती होती है। इस समय निर्माणाधीन लोकों में विद्युत् कणों एवं विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की तीव्रता विशेष बढ़ने लगती है, जिसके कारण डार्क एनर्जी और डार्क मैटर का इन पर दुष्प्रभाव नहीं होता। विद्युत् चुम्बकीय एवं गुरुत्वाकर्षण बल दोनों ही तीव्र होने लगते हैं, जिसके कारण विभिन्न कणों का पारस्परिक संयोग एवं सम्पूर्ण पदार्थ का तेजी से सम्पीडन होने लगता है। ये छन्द रश्मियां विभिन्न ग्रहों, तारों एवं अन्य लोकों के पूर्ण निर्मित होने तक सक्रिय रहती हैं। इस समय विभिन्न प्राण रश्मियां भी विशेष सक्रिय रहती हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पठनीय है।।

३. एकां द्वे न स्तोममतिशंसेत्, तद्यथाऽभिहेषते पिपासते क्षिप्रं प्रयच्छेत् तादृक्तदथो क्षिप्रं देवेभ्योऽन्नाद्यं सोमपीथं प्रयच्छानीति, क्षिप्रं हास्मिँल्लोके प्रतितिष्ठति।। अपरिमिताभिरुत्तरयोः सवनयोरपरिमितो वै स्वर्गो लोकः स्वर्गस्य लोकस्याप्त्यै।। कामं तद्धोता शंसेद्यद्धोत्रकाः पूर्वेद्युः शंसेयुर्यद्वा होता तद्धोत्रकाः, प्राणो वै होताऽङ्गानि होत्रकाः, समानो वा अयं प्राणोऽङ्गान्यनुसंचरति; तस्मात् तत्कामं होता शंसेद्यद्धोत्रकाः पूर्वेद्युः शंसेयुर्यद्वा होता तद्धोत्रकाः।।
सूक्तान्तैर्होता परिदधदेत्यथ समान्य एव तृतीयसवने होत्रकाणां परिधानीया भवन्त्यात्मा वै होताऽङ्गानि होत्रकाः समाना वा इमेऽङ्गानामन्तास्तस्मात् समान्य एव तृतीयसवने होत्रकाणां परिधानीया भवन्ति, भवन्ति।।५।।

व्याख्यानम्- उपर्युक्त परिधानीय छन्द रश्मियों द्वारा विभिन्न लोकों के निर्माण और स्थायित्व की प्रक्रिया के प्रसंग में कुछ अन्य विषयों को उठाते हुए ग्रन्थकार का कथन है कि लोकों के स्थिरीकरण के समय अनेक स्तोम रूप रश्मिसमूह उत्पन्न होते हैं, जिनकी चर्चा खण्ड ४.१६ में विस्तार से की गयी है। ये स्तोमरूप रश्मिसमूह त्रिवृत्, पंचदश, सप्तदश, एकविंश आदि हैं। सभी स्तोमरूप रश्मिसमूह तीव्र सक्रिय होने के लिए शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मियों के साथ संगत होते हैं। पहले स्तोम रश्मियां उत्पन्न होती हैं, फिर शस्त्र रश्मियां। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है- "स्तोत्रमग्रे शस्त्रात्।" (आश्व.श्रौ.५.१०.१) इस सम्बन्ध में यहाँ एक नियम प्रकाशित किया गया है कि लोकों के स्थायित्व की प्रक्रिया में जब स्तोम संज्ञक छन्द रश्मिसमूहों से शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मिसमूह संगत होकर उन्हें तीक्ष्ण बनाते हैं, तब एक या दो से अधिक स्तोम रश्मिसमूहों का अतिक्रमण नहीं होता अर्थात् इससे अधिक स्तोम रश्मिसमूहों का अतिक्रमण हुए बिना शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मिसमूह उत्पन्न होकर उनसे संगत होने लग जाते हैं। इस अध्याय के प्रथम खण्ड में वर्णित मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी एवं अच्छावाक आदि तृच रश्मियां ही शस्त्र कहलाती हैं, जो स्तोम रश्मिसमूहों के साथ संगत होकर उन्हें तीक्ष्ण बनाती और असुर तत्त्व से उनकी एवं समस्त देव पदार्थ की पूर्वोक्तानुसार रक्षा करती हैं। यहाँ दर्शाये हुए नियम से यह संकेत मिलता है कि स्तोम रूप रश्मिसमूहों का प्रत्येक समूह शस्त्र संज्ञक रश्मिसमूहों के साथ संगत होना अनिवार्य नहीं है लेकिन इनके बीच अधिक व्यवधान भी इनकी शक्ति को क्षीण कर देता है। इसलिए एक अथवा दो स्तोम रश्मिसमूहों के पश्चात् शस्त्र रश्मिसमूह का उत्पन्न होना अनिवार्य होता है। इस कारण त्वरित गति से इन दोनों समूहों का संगम होकर सभी देव परमाणुओं {सोमपीथः = इन्द्रियं वै सोमपीथः (तै.ब्रा.१.३.१०.२)} को सोमपानरूपी अन्न प्रदान करके बलवान् बनाया जाता है। यह कार्य अतिशीघ्रता से होता

है, जिससे विभिन्न लोकों को अपनी कक्षाओं में स्थापित वा प्रतिष्ठित करने में शीघ्रता व सरलता होती है। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है- "एकया द्वाभ्यां वा प्रातःसवने" (आश्व.श्रौ.७.१२.४)। इससे संकेत मिलता है कि पूर्वोक्त प्रातःसवन के समय एक अथवा दो शस्त्र संज्ञक रश्मिसमूह के द्वारा स्तोम रश्मिसमूहों को उत्तेजित किया जाता है। यह प्रक्रिया अतिशीघ्रता से होती है, प्रातःसवन का यहाँ यह भी संकेत है। यहाँ महर्षि ऐतरेय महीदास एक उदाहरण के द्वारा समझाते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार कोई भूखा-प्यासा अश्व चारे-पानी के लिए हिनहिनाता है, उस अश्व को शीघ्र ही चारा-पानी दिया जाता है, उसी प्रकार विना शस्त्र संज्ञक रश्मियों के स्तोम रश्मिसमूह वल और तेज की तीव्र आकांक्षा रखते हैं, तव तत्काल ही शस्त्र रश्मियां उत्पन्न व संगत होकर उन्हें तीव्र तेज और वल प्रदान करती हैं। आचार्य सायण के भाष्य से भी संकेत मिलता है कि यहाँ **स्तोम रश्मियों को ही स्तोत्र माना गया है**।।

इस विषय में महर्षि आश्वलायन का भी कथन है- "अपरिमिताभिरुत्तरयोः सवनयोः" (आश्व.श्रौ.७.१२.५)। इसका तात्पर्य यह है कि प्रातःसवन की उत्तर अवस्थाओं माध्यंदिन और तृतीय सवन में स्तोम रश्मिसमूह मैत्रावरुण आदि शस्त्र रश्मिसमूहों के द्वारा अपरिमित वार उत्तेजित वा तेजस्वी होता है अर्थात् ये शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मियां स्तोम संज्ञक छन्द रश्मियों के ऊपर वार-२ अपरिमित रूप से प्रक्षिप्त होती हैं। स्वर्गलोक भी अपरिमित ही होता है। इसका तात्पर्य यह है कि **द्युलोकों के केन्द्रीय भागों में अपरिमित संख्या में छन्द रश्मियां विद्यमान होती हैं**। इस कारण उन सवको सक्रिय और उत्तेजित करने के लिए अपरिमित वार ही शस्त्र संज्ञक रश्मियां उत्पन्न होकर उन केन्द्रीय भागों को व्याप्त करती हैं।।

{पूर्वेद्युः = ब्रह्म वै पूर्वमहः (तां.११.११.६)} मन एवं वाक् तत्त्व किंवा प्राणापान आदि रश्मियों के द्वारा जो छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, उन्हें ही होत्रक संज्ञक मैत्रावरुणादि शस्त्र रश्मियां विशेष प्रकाशित व सक्रिय करती हैं। इसके साथ ही जिन स्तोम रश्मियों को शस्त्र रश्मियों के द्वारा पूर्व में सक्रिय किया जा चुका होता है, उन्हीं स्तोम रश्मियों को होतारूप मन एवं वाक् अथवा प्राणापानादि रश्मियां पुनः उत्पन्न करती हैं। यह दोनों ही प्रकार की परिस्थिति लोक निर्माण प्रक्रिया में उत्पन्न होती रहती है। यहाँ 'कामम्' पद से यह संकेत मिलता है कि ये **दोनों ही विकल्प ईश्वर तत्त्व द्वारा प्रयोजनानुसार समय-२ पर प्रस्तुत वा उत्पन्न किये जाते हैं** और इस प्रक्रिया में मनस्तत्त्व की माध्यमिक भूमिका अनिवार्य होती है। इसलिए ग्रन्थकार ने अन्यत्र कहा है-

"मनसि वै सर्वे कामाः श्रिताः" (ऐ.आ.१.३.२)। यहाँ महर्षि ने प्राण रश्मियों को होता और उनके अंगरूप वा प्रजारूप मैत्रावरुण आदि शस्त्र रश्मिसमूहों को होत्रक कहा है। यहाँ 'अंग' शव्द यही दर्शाता है कि यहाँ होत्रक का अर्थ पूर्वोक्त मैत्रावरुण आदि छन्द रश्मियां ही हैं। इसलिए कहा है- "छन्दांस्यङ्गानि" (मै.२.७.८; काठ.१६.८)। यहाँ 'अंगानि' शव्द से यह भी संकेत मिलता है कि ये छन्द रश्मियां विशेष आशुगामिनी होती हैं क्योंकि महर्षि यास्क का कथन है-

"अङ्गेति क्षिप्रनाम, अङ्क्तमेवाञ्चितं भवति" (नि.५.१७)

होतारूप प्राण रश्मियां सभी अंगरूप होत्रकों अर्थात् मैत्रावरुण आदि शस्त्र रश्मियों के अन्दर समान रूप से सतत विचरती रहती हैं। इस कारण ये प्राण रश्मियां उपर्युक्त दोनों ही विकल्परूप परिस्थितियों में ईश्वरीय प्रयोजनानुसार क्रियाओं को करने में अपनी भूमिका निभाती हैं। ये प्राण रश्मियां सभी छन्द रश्मियों में समान रूप से संचरित होने के कारण उन सवको लयवद्ध करती हुई सतत क्रियाशील भी रखती हैं।।

यहाँ महर्षि आच्छादिका छन्द रश्मियों का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि **किसी भी सूक्तरूप छन्द रश्मिसमूह की अन्तिम छन्द रश्मि उस सूक्तरूप रश्मिसमूह की परिधानीय रूप होती है** अर्थात् वह उस सूक्त की अन्य सभी छन्द रश्मियों को चारों ओर से आच्छादित कर धारण व संरक्षित रखती है। तृतीय सवन की अवस्था में मैत्रावरुणादि होत्रकरूप रश्मिसमूहों की परिधानीय रश्मियां समान ही होती हैं, जैसा कि हम पूर्व में भी कह चुके हैं कि तृतीय सवन में ऐकाहिकरूप रश्मियां ही परिधानीय अर्थात् आच्छादिका होती हैं। होतारूप प्राण रश्मियां आत्मा के समान होती हैं। यहाँ 'आत्मा' शव्द के दो अर्थ हैं, जिसमें एक अर्थ है- "शरीर में निवास करने वाला आत्मा", जो जन्म-जन्मान्तर एक से दूसरे शरीर में निरन्तर विचरण करता रहता है। इसी प्रकार प्राण रश्मियां भी विभिन्न छन्द

रश्मियों में सतत विचरण करती रहती हैं। इसके अतिरिक्त **'आत्मा'** शब्द का दूसरा अर्थ करते हुए **महर्षि याज्ञवल्क्य** का कथन है- **"आत्मा वै तनूः"** (श.६.७.२.६)। इसका आशय यह है कि विविध प्राण रश्मियां शरीर रूप हैं और विभिन्न होत्रकरूप छन्द रश्मियां इन प्राण रश्मियों के अंग रूप हैं। इससे सिद्ध होता है कि **प्राण रश्मियां अधिक व्यापक हैं, जो विभिन्न छन्द रश्मियों के बाहर-भीतर सदैव विचरण करती रहती हैं।** इसके साथ ही ये सभी छन्द रश्मियां प्राण रश्मियों से ही उत्पन्न होती हैं। यहाँ अंगरूप होत्रक छन्द रश्मियों का अन्त समान बतलाना यही संकेत देता है कि {अन्तः = असौ वा आदित्योऽन्तः (काठ.११.४), अन्तोऽर्कः (मै.२.२.६), अन्तो राजन्यः (मै.४.४.३)} ये सभी होत्रक अर्थात् मैत्रावरुणादि शस्त्र रश्मियां आदित्य लोकों के निर्माण तक सतत सक्रिय रहती हैं। इस बात को हम पूर्व में भी लिख चुके हैं। हम यह भी अनेकत्र लिख चुके हैं कि आदित्य लोकों के निर्माण की पूर्णता तृतीय सवन में ही होती है अर्थात् सर्ग प्रक्रिया के अन्तिम चरण में ही आदित्य लोक पूर्ण विकसित होते हैं। इस कारण ही सभी होत्रक शस्त्र रश्मियों को समान अन्त वाला कहा है और इसी कारण ही इन होत्रक रश्मिसमूहों की परिधानीय छन्द रश्मियां भी समान अर्थात् ऐकाहिक ही होती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में मुख्यरूप से दो प्रकार की छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं- **१. स्तोत्र (स्तोम) २. शस्त्र।** इनमें से स्तोम (स्तोत्र) छन्द रश्मियां पहले उत्पन्न होती हैं और शस्त्र रश्मियां बाद में उत्पन्न होती हैं। ये शस्त्र रश्मियां अपने से पूर्व उत्पन्न स्तोत्र रश्मियों को विशेष उत्तेजित करके समस्त कॉस्मिक पदार्थ को तीव्र बल और ऊर्जा से युक्त करती हैं। इनके कारण ही डार्क एनर्जी और डार्क मैटर के बाधक प्रहार को रोका वा नियंत्रित किया जाता है। इन दोनों प्रकार की छन्द रश्मियों का पारस्परिक संगम अति तीव्र गति से और निरन्तरता के साथ होता है। इसके साथ ही इन दोनों की भूमिका विभिन्न तारों एवं ग्रह आदि लोकों को अपनी-२ कक्षाओं में स्थापित करने में भी होती है। शस्त्र संज्ञक रश्मियां स्तोम रश्मियों को तत्काल बल प्रदान करती हैं। तारों के केन्द्रीय भागों के निर्माण के समय इन दोनों प्रकार की छन्द रश्मियों की संगति अपरिमित मात्रा में होती है, जहाँ शस्त्र रश्मियां बार-२ प्रकट होकर स्तोत्र रश्मियों पर प्रहार करती हैं और उन्हें निरन्तर तीव्र से तीव्रतर बनाती हैं। सभी प्रकार की छन्द रश्मियों में प्राण रश्मियां समान रूप से सतत विचरण करती रहती हैं और ये प्राण रश्मियां ही सभी छन्द रश्मियों को उत्पन्न, प्रेरित और बलवती भी करती हैं। विशेषकर शस्त्र संज्ञक रश्मियों में प्राण रश्मियों का ही तेज और बल विद्यमान होता है। प्राण रश्मियों का विस्तार छन्द रश्मियों की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पठनीय है।।

ॐ इति २७.५ समाप्तः ॐ

ॐ इति सप्तविंशोऽध्यायः समाप्तः ॐ

अष्टाविंशोऽध्यायः

।। ओ३म् ।।
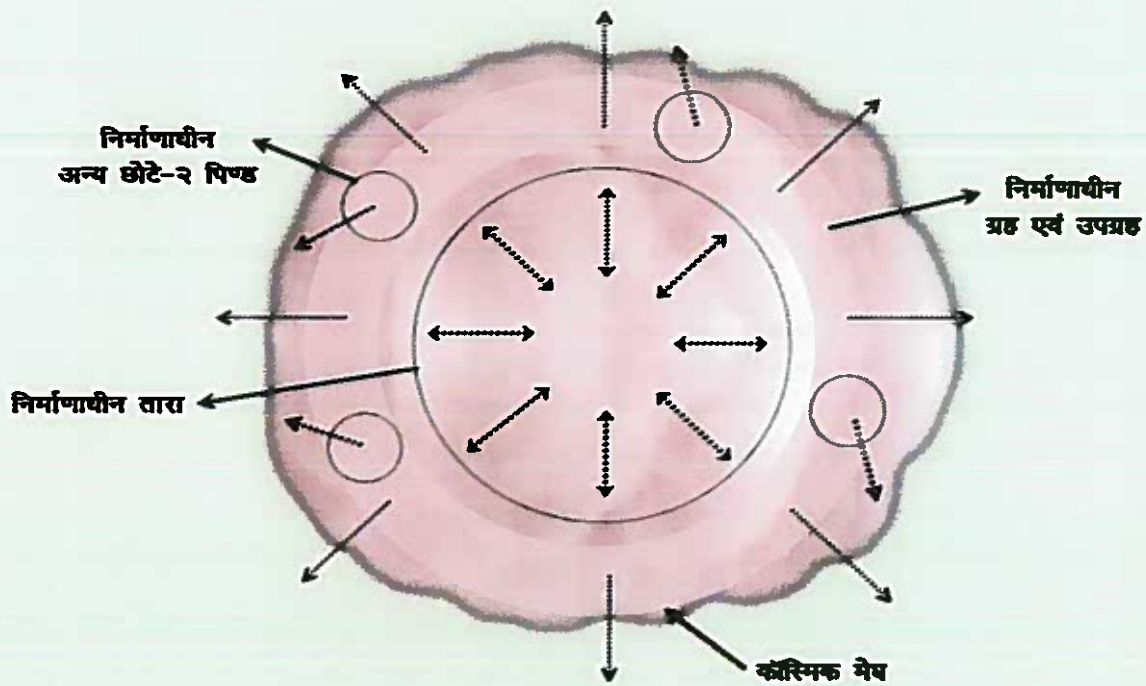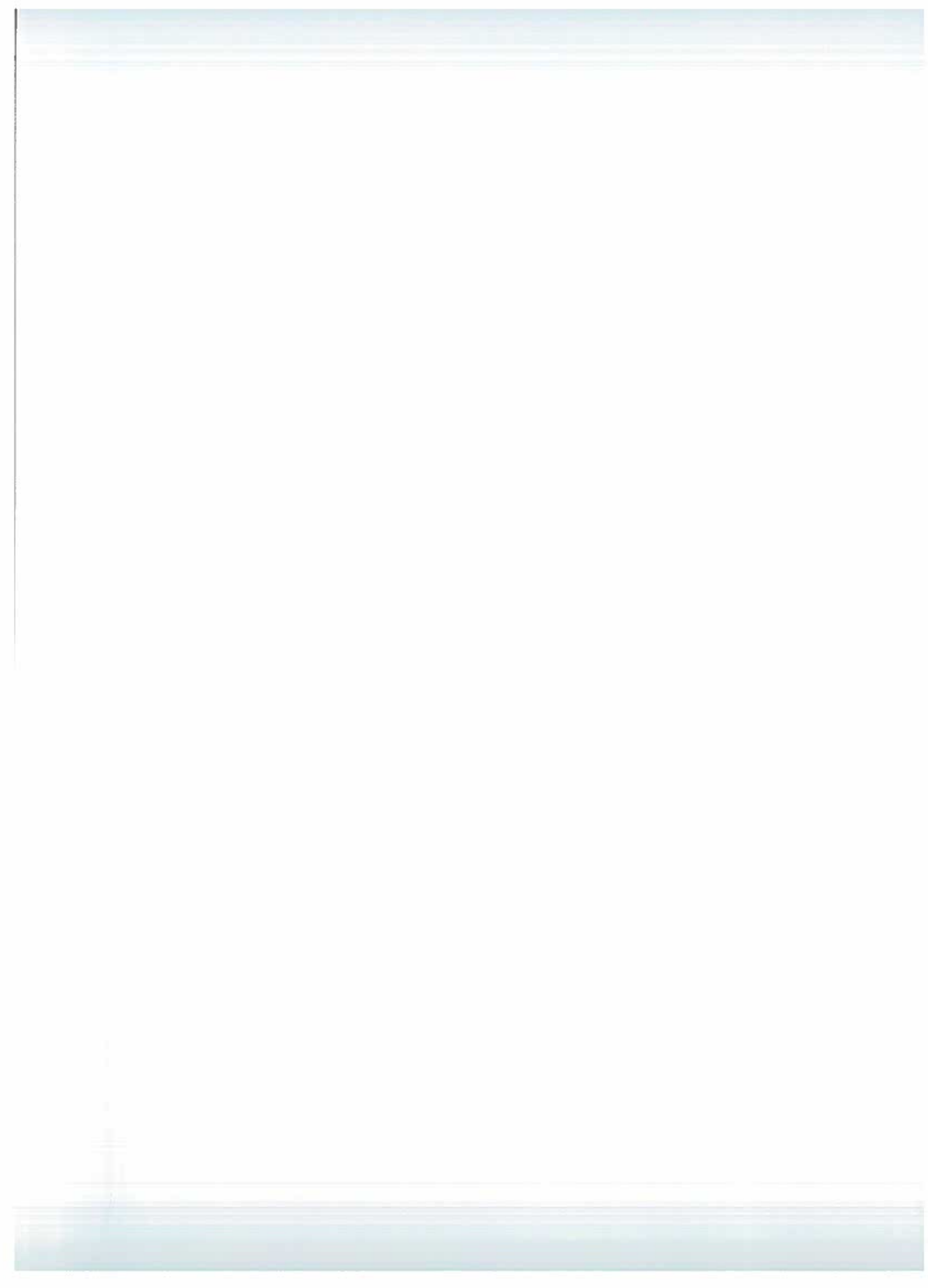
ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व।।

अनुक्रमणिका

२८.१	होत्रकों के उन्नीयमान सूक्त। विद्युत् और गुरुत्व बल में वृद्धि। डार्क एनर्जी नियंत्रण, तीन सवन। लोक निर्माण प्रक्रिया की तीव्रता। तीन सवन। सात प्रकार के ऋत्विज् (होत्रक)। लोक निर्माण प्रक्रिया।	1750
२८.२	लोक निर्माण प्रक्रिया में विद्युत्, ऊष्मा और छन्दादि रश्मियों की भूमिका। प्रस्थित याज्या।	1760
२८.३	उन्नीयमान सूक्त। लोक निर्माण प्रक्रिया। प्रस्थित याज्या, वि.चु. बल और गुरुत्वाकर्षण बल की तीव्रता। लोकों का अक्ष पर घूर्णन।	1764
२८.४	उन्नीयमान सूक्त। तारों के केन्द्रीय भाग का निर्माण। त्रिष्टुप् द्वारा जगती छन्द रश्मियों की तीक्ष्णता में वृद्धि। याज्या रश्मियां। लोक निर्माण प्रक्रिया। विद्युदावेशित कण और मरुद् रश्मियां।	1769
२८.५	उक्थ्य और अनुक्थ्य रश्मियां। लोक निर्माण प्रक्रिया। विद्युत् चुम्बकीय बल एवं गुरुत्व वल की तीव्रता। लोकों के बीच बढ़ती दूरी। डार्क एनर्जी नियंत्रण। डार्क मैटर। विद्युत् की भूमिका।	1776
२८.६	उक्थ और अनुक्थ रश्मियां। गायत्री द्वारा सोम आहरण। प्राण और छन्द रश्मियों का पारस्परिक सशक्तिकरण। क्वाण्टाज् एवं कणों की उत्पत्ति। प्रैष रश्मियां। प्राण व छन्द रश्मियों की सार्वत्रिक भूमिका। स्त्रोत्रिय एवं अनुरूप। डार्क एनर्जी, डार्क मैटर नियंत्रण। विद्युत् आवेश और ऊष्मा की महत्ता।	1789
२८.७	तृतीय सवन। इन्द्र देवता। विद्युत् की महत्ता। डार्क एनर्जी एवं डार्क मैटर नियंत्रण। जगती छन्द रश्मियों के कारण अन्य छन्द रश्मियों का जागत स्वरूप। ऊर्जा वृद्धि में धनंजय रश्मि की भूमिका। परिधानीय रश्मियां। तारों में नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया। इन्द्र और विष्णु। विष्णु के तीन पग। अग्निष्टाम अतिरात्र, षोडशी। तारों के निर्माण की प्रक्रिया। धनंजय एवं व्यान रश्मियों द्वारा डार्क एनर्जी नियंत्रण के तीन चरण। ब्रह्माण्ड की व्यापकता।	1799
२८.८	अच्छावाक, नाराशंस, शिल्प। विभिन्न लोकों का क्रमिक विकास। लोकों का दृढ़ीकरण। इसमें धनंजय, व्यान एवं सूत्रात्मा वायु की भूमिका।	1808

ॐ अथ २८.१ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. 'आ त्वा वहन्तु हरय इति प्रातःसवन उन्नीयमानेभ्योऽन्वाह; वृषण्वतीः पीतवतीः सुतवतीर्मद्वती रूपसमृद्धाः।।
ऐन्द्रीरन्वाहैन्द्रो वै यज्ञः।।
गायत्रीरन्वाह; गायत्रं वै प्रातःसवनम्।।
नव न्यूनाः प्रातःसवनेऽन्वाह, न्यूने वै रेतः सिच्यते।।

व्याख्यानम्- इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"उन्नीयमानेभ्योऽन्वाहाऽऽत्वा वहन्त्वसाविदेवमिहोपयातेत्यनुसवनम्" (आश्व.श्रौ.५.५.१४)

इस कथन के प्रकाश में इस खण्ड में महर्षि यह प्रकरण प्रारम्भ करते हुए कहते हैं कि पूर्वोक्त तीनों सवनों के उत्कर्ष की अवस्था को प्राप्त कराने के लिए कुछ अन्य सूक्तरूप रश्मिसमूह क्रमशः उत्पन्न होते हैं। इनमें से प्रथम पूर्वोक्त प्रातःसवन के उत्कर्ष होने की स्थिति में किंवा इस स्थिति को उत्कृष्ट बनाने के लिए "काण्वो मेधातिथि ऋषि" अर्थात् सूत्रात्मा वायु से अथवा सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न एक सूक्ष्म प्राण विशेष से इन्द्र-देवताक ऋ.१.१६ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये। इन्द्रं त्वा सूरचक्षसः।।१।।

इसका छन्द गायत्री है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व सब ओर से सोम रश्मियों का पान करके बलवती तेजस्विनी प्रेरक रश्मियों को विशेष रूप से प्राप्त करता है।

(२) इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षतः। इन्द्रं सुखतमे रथे।।२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {धाना = धीयन्ते यासु ता दीप्तयः (म.द.भा)} वह इन्द्रतत्त्व धारक और आकर्षक तेजस्विनी रश्मियों से युक्त होकर उनका संचरण करता हुआ प्रातःसवन में विद्यमान पदार्थों को सहजता से रमणीय वहन शक्तियां प्राप्त कराता है।

(३) इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे। इन्द्रं सोमस्य पीतये।।३।।

इसका छन्द पिपीलिकामध्यानिचृद् गायत्री है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व शीघ्रतापूर्वक प्रकट होता हुआ सोम पदार्थ को अवशोषित करते हुए नाना प्रकार की संयोगादि प्रक्रियाओं में क्रियाशील होता है।

(४) उप नः सुतमा गहि हरिभिरिन्द्र केशिभिः। सुते हि त्वा हवामहे।।४।।

इसका छन्द गायत्री है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व हरणीय रश्मियों के द्वारा संपीडित वा उत्पन्न पदार्थ को निकटता से प्राप्त करता है। इससे वह पदार्थ आकर्षक और प्रतिकर्षक बलों से युक्त होता है।

(५) सेमं नः स्तोममा गह्युपेदं सवनं सुतम्। गौरो न तृषितः पिब॥५॥

इसका छन्द पिपीलिकामध्यानिचृद् गायत्री है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {गौरः = गवतेऽव्यक्तं शब्दयतीति (उ.को.२.२६)} वह इन्द्रतत्त्व अव्यक्त शब्द करता एवं तीव्र आकर्षक वल से युक्त होकर सोम रश्मियों का पान करता हुआ नाना प्रकार की संयोजक रश्मियों को निकटता से प्राप्त होता अथवा उनसे युक्त होता है।

(६) इमे सोमास इन्दवः सुतासो अधि बर्हिषि। ताँ इन्द्र सहसे पिब॥६॥

इसका छन्द गायत्री है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व विभिन्न छन्द रश्मियों में वर्तमान होकर प्रेरक सोम रश्मियों को अवशोषित करके नाना प्रकार के वलों से युक्त होता है।

(७) अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शन्तमः। अथा सोमं सुतं पिब॥७॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {हृदयम् = प्राणो वै हृदयम् (श.३.८.३.१५), आत्मा वै मनो हृदयम् (श.३.८.३.८)} वह इन्द्रतत्त्व मन, सूत्रात्मा वायु और प्राण रश्मियों से युक्त हुआ सम्पीडित सोम रश्मियों का पान करके अग्रणी एवं तेजस्विनी रश्मियों के रूप में प्रकाशित होता है।

(८) विश्वमित्सवनं सुतमिन्द्रो मदाय गच्छति। वृत्रहा सोमपीतये॥८॥

इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व सोम रश्मियों का पान करता हुआ आवरक आसुर मेघों को नष्ट करके सम्पूर्ण उत्पन्न पदार्थों में व्याप्त होकर विभिन्न संयोगादि क्रियाओं को सम्पादित करता है।

(९) सेमं नः काममा पृण गोभिरश्वैः शतक्रतो। स्तवाम त्वा स्वाध्यः॥९॥

इसका छन्द विराड्गायत्री है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से अच्छी प्रकार प्रकाशित और असंख्यकर्मा इन्द्रतत्त्व विभिन्न प्राणादि रश्मियों के द्वारा और भी अधिक प्रकाशित होता हुआ अपनी आशुगामिनी किरणों के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को नाना प्रकार के कमनीय वलों से पूर्ण करता है।

उपर्युक्त सभी ९ छन्द रश्मियां गायत्री छन्दस्क होने के कारण मेघरूप पदार्थों में प्रातःसवन की स्थिति को उत्कृष्टता प्रदान करती हैं। ये छन्द रश्मियां पूर्व अध्याय में वर्णित मैत्रावरुण संज्ञक गायत्र तृच छन्द रश्मियों का अनुगमन करती हुई उत्पन्न होती हैं। ये रश्मियां 'वृषन्', 'सुतम्', 'पिब्' धातु और 'मद्' धातु से युक्त होती हैं, इस कारण ये विभिन्न वर्षक एवं अवशोषक वलों के साथ-२ सम्पीडन, प्रेरण और विशेष क्रियाशीलता आदि गुणों से युक्त होने के कारण रूपसमृद्ध कहलाती हैं। इसका आशय यह है कि ये प्रातःसवन क्रियाओं को समृद्ध करने के लिए सर्वथा अनुकूल और समर्थ होती हैं॥

उपर्युक्त सभी ९ छन्द रश्मियां सर्ग यज्ञ की प्रक्रिया को तीव्र करती हैं। सृष्टि की सभी क्रियाएं इन्द्रतत्त्व के द्वारा ही समृद्ध व सम्पादित होती हैं। इसके विना सृष्टि में कोई भी क्रिया सम्पन्न नहीं हो सकती क्योंकि इन्द्रतत्त्व ही सभी वलों का रक्षक और पालक है। इसलिए पूर्वोक्त मैत्रावरुण छन्द रश्मियों को समृद्ध एवं तीव्र वनाने के लिए इन्द्रतत्त्व की समृद्धि अनिवार्य है। इसी कारण इन्द्र-देवताक इन ९ छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है॥

प्रातःसवन में गायत्री छन्द रश्मियों की प्रधानता होती है। इस कारण प्रातःसवन के उत्कर्ष के लिए गायत्री छन्द रश्मियों वाला यह उपर्युक्त सूक्तरूप रश्मिसमूह उत्पन्न होता है, जिसके कारण कॉस्मिक मेघों

की प्राथमिक एवं गायत्र अवस्था में ये गायत्री छन्द रश्मियां ही उत्पन्न होती हैं।।

उपर्युक्त सूक्त की छन्द रश्मियों की संख्या का महत्व वतलाते हुए ऋषि कहते हैं कि प्रातःसवन में उत्कर्ष हेतु पूर्वोक्त ६ गायत्री छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। यह संख्या आगामी माध्यन्दिन सवन में उत्पन्न होने वाली १० छन्द रश्मियों की अपेक्षा संख्या में एक कम है। इसका कारण वताते हुए ग्रन्थकार ने लिखा है कि प्रातःसवन अर्थात् लोक निर्माण की प्राथमिक प्रक्रियाओं में गायत्री छन्द रश्मियों द्वारा रेतसिंचन अर्थात् तेज और वल का सूक्ष्म एवं अव्यक्त संचरण न्यून मात्रा में ही होता है। इस कारण माध्यन्दिन की अपेक्षा न्यून छन्द रश्मियों की आवश्यकता होती है। इधर प्रातःसवन अर्थात् गायत्री छन्द रश्मियों का विशेष सम्वन्ध पार्थिव लोकों से होता है, जैसा कि कहा गया है-

"अयं वै लोकः (पृथिवी) प्रातःसवनम्" (श.१२.८.२.८)
"अयं वै (पृथिवी) लोको गायत्री तृचाशीतिः" (ऐ.आ.१.४.३)
"अयमेव (भूलोको) गायत्री" (तां.७.३.६)

व्रह्माण्ड में पार्थिव लोक भी अन्तरिक्ष लोक की अपेक्षा न्यून मात्रा में होते हैं। इस कारण भी इनमें न्यून मात्रा में प्रेरक रश्मियों की आवश्यकता होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सृष्टि प्रक्रिया के अन्तर्गत जिन तीन प्रमुख चरणों में पूर्वोक्त उत्प्रेरिका विभिन्न छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है, उन छन्द रश्मियों को भी तीव्रता प्रदान करने वाली अन्य छन्द रश्मियां भी उत्पन्न होती हैं। इनमें गायत्री छन्द रश्मियों एवं उनकी प्रधानता वाले लोक अर्थात् विभिन्न मूलकण और उनसे उत्पन्न विभिन्न ग्रह आदि अप्रकाशित लोकों के निर्माण की प्रक्रिया को तीव्र करने हेतु ६ गायत्री छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जो विद्युत् चुम्बकीय बलों के साथ-२ गुरुत्व वल को भी तीव्र बनाती हैं। इसके कारण पदार्थ संपीडित और संघनित होना प्रारम्भ हो जाता है। डार्क एनर्जी का प्रभाव घटने वा नष्ट होने लगता है। विद्युत् और गुरुत्व बल इस सृष्टि के दो प्रमुख बल हैं, जिनके बिना सृष्टि प्रक्रिया की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इस सृष्टि में जितना पदार्थ विभिन्न ग्रह आदि अप्रकाशित लोकों में विद्यमान रहता है, उससे बहुत अधिक पदार्थ की मात्रा अन्तरिक्ष में सूक्ष्म रूप में बिखरी हुई होती है।।

**२. दश मध्यंदिनेऽन्वाह; न्यूने वै रेतः सिक्तं मध्यं स्त्रियै प्राप्य स्थविष्ठं भवति।।
नव न्यूनास्तृतीयसवनेऽन्वाह; न्यूनाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते।।
तद् यदेतानि केवलसूक्तान्यन्वाह, यजमानमेव तद्गर्भं भूतं प्रजनयति यज्ञाद् देवयोन्यै।।**

व्याख्यानम्- मध्यन्दिन सवन की प्रक्रिया किंवा अन्तरिक्ष एवं अन्तरिक्षस्थ सूक्ष्म पदार्थ की निर्माण प्रक्रिया में पूर्वोक्त ब्राह्मणाच्छंसी शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मियों को उत्कर्षित करने के लिए दश छन्द रश्मियों का एक समूह उत्पन्न होता है। यह छन्द रश्मिसमूह ऋ.७.२१ सूक्त है, इसका संकेत ६.११.१ में विद्यमान है। इसकी उत्पत्ति वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राण से होती है। इसका देवता इन्द्र है। इसकी उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच।
बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा नः स्तोममन्धसो मदेषु।।१।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह कमनीय एवं आशुगामी रश्मियों से युक्त इन्द्रतत्त्व विभिन्न संयोजक वलों से युक्त वागू रश्मियों के द्वारा सहजता से व्याप्त होता हुआ अनेक संयोज्य परमाणुओं को निरन्तर उत्पन्न करता है। वह विभिन्न देव परमाणुओं को निरन्तर प्रेरित करता हुआ नाना प्रकार की संगतियों के द्वारा प्रकाशित करता है।

(२) प्र यन्ति यज्ञं विपयन्ति बर्हिः सोममादो विदथे दुध्रवाचः।
न्यु भ्रियन्ते यशसो गृभादा दूरउपब्दो वृषणो नृषाचः॥२॥

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मियों के साथ संगत होकर विभिन्न बलवती छन्द रश्मियों को धारण करके नाना प्रकार के परमाणुओं को सक्रिय करता हुआ सृष्टि प्रक्रिया को व्याप्त करता है। वह विभिन्न संग्रामों और संघातों में विभिन्न छन्दादि रश्मियों के संगम से विशेषतया प्रकट होकर अपने बलों के द्वारा विभिन्न पदार्थों को सब ओर से धारण करता हुआ तीव्रता से गुंजायमान होता है।

(३) त्वमिन्द्र स्रवितवा अपस्कः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः।
त्वद्वावक्रे रथ्यो३ न धेना रेजन्ते विश्वा कृत्रिमाणि भीषा॥३॥

इसका छन्द भुरिक्पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह तीक्ष्ण इन्द्रतत्त्व मेघरूप पदार्थों के सब ओर स्थित असुर पदार्थों को नियन्त्रित एवं दूर करने के लिए नाना प्रकार की क्रियाओं को प्रकट करता है। वह कुटिल गतियों वाले उस असुर पदार्थ को कंपाता हुआ नाना प्रकार की कमनीय छन्द रश्मियों को उत्पन्न करता है।

(४) भीमो विवेषायुधेभिरेषामपांसि विश्वा नर्याणि विद्वान्।
इन्द्रः पुरो जर्हृषाणो वि दूधोद्वि वज्रहस्तो महिना जघान॥४॥

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न हरणशील वज्ररूप रश्मियों से युक्त भयंकर इन्द्रतत्त्व अपनी तीक्ष्ण रश्मियों के द्वारा विभिन्न मरुद् एवं प्राण रश्मियों से व्याप्त होकर असुर तत्त्व के विशाल मेघ को छिन्न-भिन्न करता है। {दूधोत् = अकम्पयत् (म.द.भा.)}

(५) न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः॥५॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {शिश्नम् = शिश्नं वै शोचिष्केश शिश्नँ हीदं शिश्निनं भूयिष्ठः शोचयति (श.१.४.३.६)} अत्यन्त बलयुक्त इन्द्रतत्त्व असुर तत्त्व के आक्रमण से भागने वाले देव परमाणुओं को व्याप्त करता है। {शोचिष्केशः = शोचन्तीव ह्येतस्य (अग्नेः) केशाः (श. १.४.१.३८)} इस कारण तेजस्विनी रश्मियों से युक्त विभिन्न देव परमाणु अग्निरूपी ऋतु को धारण करके असुर तत्त्व को प्राप्त नहीं होते हैं। मेघरूप पदार्थों में व्याप्त विभिन्न प्रकार की प्राण रश्मियों के द्वारा प्रकाशित और नियंत्रित सभी देव परमाणु निरन्तर बलयुक्त होते हैं।

(६) अभि क्रत्वेन्द्र भूरध ज्मन्न ते विव्यङ्महिमानं रजांसि।
स्वेना हि वृत्रं शवसा जघन्थ न शत्रुरन्तं विविदद्युधा ते॥६॥

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व अपनी तेजस्विनी क्रियाओं के द्वारा पार्थिव और आग्नेय परमाणुओं को व्याप्त करके बाधक असुर पदार्थ को भी व्याप्त करता है। वह अपने तीव्र बल के द्वारा बाधक, आच्छादक असुर तत्त्व को नष्ट करता है।

(७) देवाश्चित्ते असुर्याय पूर्वेऽनु क्षत्राय ममिरे सहांसि।
इन्द्रो मघानि दयते विषह्येन्द्रं वाजस्य जोहुवन्त सातौ॥७॥

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व असुर पदार्थ से संघर्ष करने के लिए देव परमाणुओं को निरन्तर बल प्रदान करता है। वे देव परमाणु नाना प्रकार के बलों का विभाग करने के लिए निरन्तर इन्द्रतत्त्व का ग्रहण करते हैं।

(८) कीरिश्चिद्धि त्वामवसे जुहावेशानमिन्द्र सौभगस्य भूरेः।
अवो बभूथ शतमूते अस्मे अभिक्षत्तुस्त्वावतो वरूता।।८।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सैकड़ों प्रकार की गतियों और रक्षण शक्तियों से युक्त सबका प्रकाशक इन्द्रतत्त्व नाना नियंत्रक बलों से युक्त होकर विभिन्न देव परमाणुओं के साथ संगत होता है। वह उन परमाणुओं की हिंसक असुर पदार्थ से सब ओर से रक्षा करता है।

(९) सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम नमोवृधासो महिना तरुत्र।
वन्वन्तु स्मा तेऽवसा समीकेऽभीतिमर्यो वनुषां शवांसि।।९।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह तारक इन्द्रतत्त्व समस्त देव पदार्थ को अपनी वज्र रश्मियों से बढ़ाता और प्रकाशित करता है। {वनुषाम् = (वनोति कान्तिकर्मा - निघं.२.६)} वह विभिन्न कमनीय परमाणुओं को अपने बलों से युक्त करके असुर तत्त्व से सुरक्षित और अपने द्वारा नियंत्रित तथा धारण करता है।

(१०) स न इन्द्र त्वयताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जुनन्ति।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।१०।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व विभिन्न परमाणुओं को धारण करके उनमें संयोजक बलों एवं प्रकाश आदि को उत्पन्न करता है, जिसके कारण वे सहजतापूर्वक निरापद मार्गों पर गमन करते हैं।

जो तेज पूर्व चरण में गायत्री छन्द रश्मियों के द्वारा उत्पन्न होता है, वह इस चरण में इन त्रिष्टुप् एवं पंक्ति छन्द रश्मियों द्वारा उत्पन्न तेज की अपेक्षा न्यून शक्ति वाला होता है, इस कारण इन छन्द रश्मियों से पूर्व उत्पन्न पदार्थ को स्त्री कहा गया है। जब वह पदार्थ इन तेजस्विनी रश्मियों के द्वारा व्याप्त हो जाता है, तब वह सुदृढ़ बलों से युक्त हो जाता है और इस कारण वह पदार्थ संघनित और संपीडित होता हुआ सब लोकों में सबसे विशाल अन्तरिक्ष लोक को भी प्रकट करने में समर्थ होता है, इसलिए अन्तरिक्ष को भी मध्यन्दिन सवन कहा जाता है।।

तदुपरान्त तृतीय सवन में वामदेव ऋषि अर्थात् मनस्तत्त्व से विशेष सम्पृक्त प्राण नामक प्राण तत्त्व से इन्द्र-ऋभवो-देवताक (इसके देवता के विषय में खण्ड ६.१२ देखें) ऋ.४.३५ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) इहोप यात शवसो नपातः सौधन्वना ऋभवो माप भूत।
अस्मिन्हि वः सवने रत्नधेयं गमन्त्विन्द्रमनु वो मदासः।।१।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {धन्व = अन्तरिक्षनाम (निघं.१.३)} अपतनीय बलों से युक्त अन्तरिक्ष में स्थित सूत्रात्मा वायु रश्मियां विभिन्न सूक्ष्म पदार्थों को निकटता से व्याप्त करती हैं। इस कारण विभिन्न देव परमाणु रमणीय रश्मियों से युक्त इन्द्रतत्त्व के साथ संगत होकर नाना प्रकार की संगमन और संघनन क्रियाओं को सम्पन्न करते हैं।

(२) आगन्नृभूणामिह रत्नधेयमभूत्सोमस्य सुषुतस्य पीतिः।

सुकृत्यया यत्स्वपस्यया चँ एकं विचक्र चमसं चतुर्धा।।२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न देव परमाणु एवं छन्दादि रश्मियां सुन्दर क्रिया एवं प्राणों से युक्त होकर मेघरूप पदार्थों को चार प्रकार की गतियों से युक्त करती हैं। यहाँ **चतुर्धा** का अर्थ करते हुए **ऋषि दयानन्द** अपने वेदभाष्य में लिखते हैं- "अधऊर्ध्वतिर्यक्समगति-युक्तम्"। ये मेघरूप पदार्थ नाना प्रकार की गतियां करते हुए भी सदैव नियंत्रित रहते हैं।

(३) व्यकृणोत चमसं चतुर्धा सखे वि शिक्षेत्यब्रवीत।
अथैत वाजा अमृतस्य पन्थां गणं देवानामृभवः सुहस्ताः।।३।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सुन्दर हरणशील बलों से युक्त सूत्रात्मा वायु रश्मियां विभिन्न रश्मि एवं परमाणु आदि पदार्थों को संगत करती हुई मेघरूप पदार्थों को ४ प्रकार की गतियों से युक्त करके चार रूपों में विभक्त भी करती हैं। इस प्रक्रिया में विभिन्न देव पदार्थ अमृत अर्थात् आदित्य वा अग्नि लोकों के निर्माण के मार्ग को प्राप्त करते हैं।

(४) किंमयः स्विच्चमस एष आस यं काव्येन चतुरो विचक्र।
अथा सुनुध्वं सवनं मदाय पात ऋभवो मधुनः सोम्यस्य।।४।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियों के द्वारा मेघरूप पदार्थों के चार भाग होने में असुर तत्त्व के प्रक्षेपक बलों का भी योगदान रहता है। वे सूत्रात्मा वायु रश्मियां विभिन्न सोम रश्मियों को सक्रिय करके प्राण रश्मियों के साथ उन्हें नानाविध संगत करती हैं।

(५) शच्याकर्त पितरा युवाना शच्याकर्त चमसं देवपानम्।
शच्या हरी धनुतरावतष्टेन्द्रवाहावृभवो वाजरत्नाः।।५।।

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से रमणीय बलों से युक्त सूत्रात्मा वायु रश्मियां अपने उत्तम तेज के द्वारा द्यु और पार्थिव परमाणुओं में संयोजक बलों को उत्पन्न करती हैं। वे विभिन्न क्रियाओं के द्वारा देव परमाणुओं को संघनित करके मेघरूप पदार्थों को उत्पन्न करती हैं। वे विभिन्न वाग् रश्मियों के साथ संयुक्त होकर तीक्ष्ण वज्र रश्मियों से युक्त वाहक इन्द्रतत्त्व और उसके धारण - आकर्षण बलों को उत्पन्न करती हैं।

(६) यो वः सुनोत्यभिपित्वे अह्नां तीव्रं वाजासः सवनं मदाय।
तस्मै रयिमृभवः सर्ववीरमा तक्षत वृषणो मन्दसानाः।।६।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न वर्षक बलों से युक्त कमनीय सूत्रात्मा वायु रश्मियां देव पदार्थों में व्याप्त होकर उसे निरन्तर सम्पीडित संगत और तीव्र बनाती हैं। इस कार्य के लिए वह सभी वीर अर्थात् प्राण रश्मियों एवं छन्दादि रश्मियों को तीक्ष्णता प्रदान करती हैं।

(७) प्रातः सुतमपिबो हर्यश्व माध्यन्दिनं सवनं केवलं ते।
समृभुभिः पिबस्व रत्नधेभिः सखीर्यां इन्द्र चकृषे सुकृत्या।।७।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से हरणशील आशुगामी रश्मियों से युक्त इन्द्रतत्त्व रमणीय सूत्रात्मा वायु रश्मियों के साथ संगत होकर उत्तम क्रियाओं के द्वारा विभिन्न परमाणु

आदि पदार्थों को संगत करता है। वह प्रातः एवं माध्यन्दिन सवनों में भी नाना प्रकार के पदार्थों को निरन्तर अवशोषित और संगत करता है।

(८) ये देवासो अभवता सुकृत्या श्येनाइवेदधि दिवि निषेद।
ते रत्नं धात शवसो नपातः सौधन्वना अभवतामृतासः।।८।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे मेघरूप देव पदार्थ विशेष प्रकार की क्रियाओं से सम्पन्न होकर एवं महान् बल से युक्त होकर अन्तरिक्ष में परस्पर दूर हटने लगते हैं। वे अपतनीय बलों से युक्त सूत्रात्मा वायु रश्मियों के साथ संगत होने के कारण लोकों के सुन्दर केन्द्रीय भागों का भी निर्माण व धारण करने लगते हैं।

(९) यत्तृतीयं सवनं रत्नधेयमकृणुध्वं स्वपस्या सुहस्ताः।
तदृभवः परिषिक्तं व एतत्सं मदेभिरिन्द्रियेभिः पिबध्वम्।।९।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सुन्दर हरणशील रश्मियों से युक्त सूत्रात्मा वायु विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों को चारों ओर से सींचता हुआ अपने सक्रिय बलों के द्वारा प्राण रश्मियों को सम्यग् अवशोषित करता हुआ तृतीय सवन रूपी आदित्य लोकों का निर्माण करने की प्रक्रिया को तीव्र करता है।

तृतीय सवन अर्थात् आदित्य आदि लोकों, विशेषकर उनके केन्द्रीय भागों के निर्माण की प्रक्रिया में उत्पन्न इन छन्द रश्मियों की संख्या भी माध्यन्दिन सवन की अपेक्षा न्यून होती है। इसी कारण {प्रजा = आदित्या वा इमाः प्रजाः (तां.१८.८.१२)} विभिन्न आदित्य लोकों के निर्माण में आवश्यक पदार्थ की **मात्रा अन्तरिक्ष में बिखरे हुए पदार्थ की मात्रा से न्यून होती है। यहाँ प्रजा के उत्पन्न होने से तात्पर्य यह भी है कि इस ब्रह्माण्ड में ऐसे सभी प्रकार के लोक, जिनमें प्रजा अर्थात् प्राणी वसते हैं, वे सभी लोक जिस पदार्थ से निर्मित होते हैं, उस पदार्थ की मात्रा भी अन्तरिक्ष में विद्यमान उस पदार्थ, जिसमें प्राणियों का वास नहीं होता, की अपेक्षा न्यून होती है।।**

इस प्रकार उपर्युक्त सभी तीनों सूक्तरूप रश्मिसमूहों की विधिवत् उत्पत्ति व पूर्ण सक्रियता हो जाती है। उस समय देवयोनिरूप {देवयोनिः = अग्निर्वै देवयोनिः (ऐ.१.२२; २.३)} अग्नितत्त्व से सम्पन्न मेघरूप पदार्थों में संगमनीय पदार्थों के तेजरूप गर्भ प्रकृष्ट रूप से उत्पन्न व सक्रिय होकर परस्पर संगत होकर नानाविध रूपों को धारण करते हैं। इससे अनेक प्रकार के संगमनीय पदार्थ उत्तरोत्तर उत्पन्न होते हुए सर्गप्रक्रिया वा सर्ग को जन्म देते हैं। यह ध्यातव्य ही है कि ये उपर्युक्त तीनों छन्द रश्मिसमूह पूर्वोक्त मैत्रावरुणादि शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मिसमूहों के उत्कर्षार्थ ही उत्पन्न होते हैं। इससे मेघरूप पदार्थों में सृष्टि प्रक्रिया तीव्र गति से होने लगती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न कॉस्मिक मेघों से नाना लोकों के निर्माण की प्रक्रिया में पूर्वोत्पन्न विभिन्न रश्मियों को उत्तेजित करने के लिए १६ त्रिष्टुप् और ३ पंक्ति छन्द रश्मियों की उत्पत्ति १० और ९ छन्द रश्मियों के दो समूहों में होती है। इनके कारण विद्युत् चुम्बकीय एवं गुरुत्व बल अति तीक्ष्ण होने लगते हैं, जिसके कारण पदार्थ तेजी से संघनित होने लगता है। इस संघनन से पदार्थ में ऊष्मा की मात्रा भी तेजी से बढ़ने लगती है और डार्क एनर्जी का प्रभाव समाप्त होने लगता है। कॉस्मिक मेघों के संपीडन के समय भारी हलचल प्रारम्भ होती है। उनके
अन्दर पदार्थ ऊपर, नीचे, तिरछी और सीधी चार प्रकार की गतियों से युक्त होकर चार प्रकार के रूपों को धारण करने लगता है। वे रूप तारों के केन्द्रीय और शेष भाग, ग्रह एवं उपग्रह तथा अन्य छोटे-२ पिण्ड ये चार रूप हो सकते हैं। उन लोकों के बीच में परस्पर दूरी भी बढ़ने लगती है। **इस ब्रह्माण्ड में अन्तरिक्ष में विद्यमान बिखरे हुए अप्रकाशित व प्रकाशित पदार्थ के पश्चात् सर्वाधिक मात्रा में पदार्थ तारों में ही विद्यमान होता है। सबसे कम पदार्थ ग्रह-उपग्रह आदि लोकों में होता है।** इन सब लोकों की उत्पत्ति

में ऊष्मा और विद्युत् की विशेष भूमिका होती है।
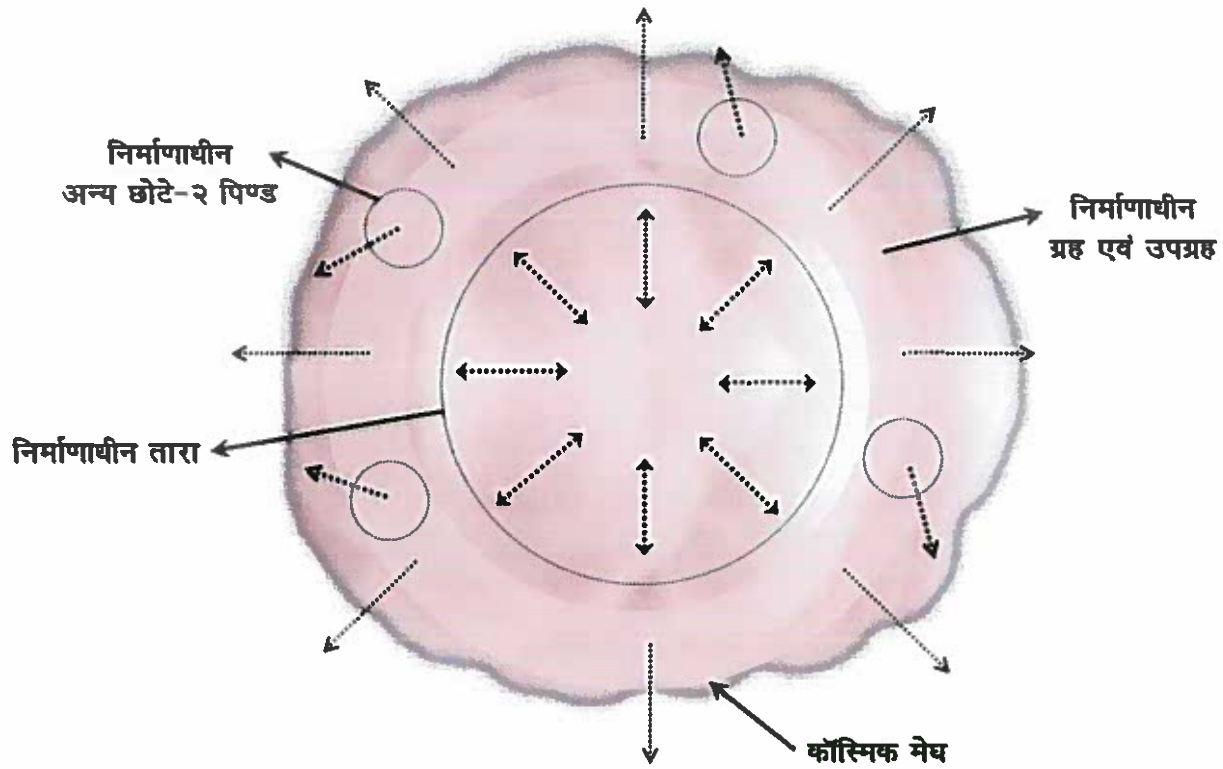
चित्र २८.१ विभिन्न कॉस्मिक मेघों से नाना लोकों के निर्माण की प्रक्रिया

३. ते हैके सप्त सप्तान्वाहुः,-सप्त प्रातःसवने, सप्त माध्यंदिने, सप्त तृतीयसवने, यावत्यो वै पुरोनुवाक्यास्तावत्यो याज्याः, सप्त वै प्राश्चो यजन्ति, सप्त वषट्कुर्वन्ति, तासामेताः पुरोनुवाक्या इति वदन्तः।।
तत्तथा न कुर्याद्, यजमानस्य ह ते रेतो विलुम्पन्त्यथो यजमानमेव; यजमानो हि सूक्तम्।।
नवभिर्वा एतं मैत्रावरुणोऽस्माल्लोकादन्तरिक्षलोकमभिप्रवहति; दशभिरन्तरिक्षलोकादमुं लोकमभ्यन्तरिक्षलोको हि ज्येष्ठो नवभिरमुष्माल्लोकात् स्वर्गं लोकमभि।।
न ह वै ते यजमानं स्वर्गं लोकमभि वोढ्ळुमर्हन्ति, ये सप्त-सप्तान्वाहुः।।
तस्मात् केवलश एव सूक्तान्यनुब्रूयात्।।१।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का मत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि पूर्वोक्त तीनों सूक्तों की सभी छन्द रश्मियां उत्पन्न न होकर प्रत्येक सूक्त की केवल सात-२ छन्द रश्मियां ही उत्पन्न होती हैं। ७ प्रातःसवन में, ७ माध्यंदिन और ७ छन्द रश्मियां तृतीय सवन में उत्पन्न होती हैं। महर्षि कहते हैं कि इस सृष्टि में जितनी पुरोनुवाक्या रश्मियां होती हैं, उतनी ही संख्या में याज्या संज्ञक छन्द रश्मियां होती हैं। इसका भाष्य करते हुए आचार्य सायण ने लिखा है-
"......पुरोनुवाक्यानां याज्यानं च संख्या प्रायेण समानैव दृश्यते। तथा सत्यत्र 'सप्त' - संख्याका ऋत्विजः - होता, मैत्रावरुणः, ब्राह्मणाच्छंसी, नेष्टा, पोता, आग्नीध्र; अच्छावाकश्चेत्येते प्राङ्मुखा 'यजन्ति' याज्याः पठन्ति। तस्यैव व्याख्यानं 'सप्त वषट्कुर्वन्तीति'। 'तासां' सप्तभिः पठ्यमानानां याज्यानाम् 'एताः' सूक्तगताः

सप्तसंख्याका ऋचः पुरोनुवाक्या भवन्तीत्येके तादृशीं युक्तिं वदन्तः सप्त - सप्तान्वाहुरित्यन्वयः"।

हम यहाँ सायणभाष्य में वर्णित ७ ऋत्विजों के विषय में निम्नानुसार संक्षिप्त विचार करते हैं-

(१) होता = मन और वाक् तत्त्व का मिथुन ही होता कहलाता है।
(२) मैत्रावरुण = ६.४.१ में वर्णित तृचरूप रश्मिसमूह ही मैत्रावरुण कहलाता है।
(३) ब्राह्मणाच्छंसी = ६.४.२ में वर्णित तृचरूप रश्मिसमूह।
(४) नेष्टा = हमारे मत में यहाँ नेष्टा का तात्पर्य अपान तत्त्व है क्योंकि यही प्राण तत्त्व का धारण और वहन करता है। इसलिए कहा है-

"अपानेन वै प्राणो धृतः" (मै.४.५.६)

"अपानो वै यन्ताऽपानेन ह्ययं यतः प्राणो न पराङ् भवति"। (ऐ.२.४०)

(५) पोता = प्राण नामक प्राण तत्त्व ही पोता कहलाता है क्योंकि यही विभिन्न पदार्थों को शुद्धता एवं गति प्रदान करता है। हमारे मत की पुष्टि अनेक ऋषियों के कथन से होती है। वह कथन है-

"प्राणो वै पवमानः" (मै.३.३.२; काठ.८.८; श.२.२.१.६)

(६) आग्नीध्र = आकाश तत्त्व के अतिरिक्त पार्थिव और आग्नेय परमाणु भी आग्नीध्र कहलाते हैं।
(७) अच्छावाक = ६.४.२ में वर्णित तृच रश्मियां।

ये सातों ऋत्विज् विभिन्न याज्या संज्ञक छन्द रश्मियों, जिनका वर्णन अगले खण्ड में किया गया है, उन्हें अधिक व्यक्त रूप प्रदान करते हैं। इसके लिए वे सभी ऋत्विज् उन याज्या संज्ञक छन्द रश्मियों के सम्मुख उपस्थित रहते हैं तथा उन याज्या संज्ञक छन्द रश्मियों को उत्पन्न करने वाली विभिन्न ऋषि प्राण-रश्मियों को भी प्रेरित करते हैं, जिसके कारण वे याज्या छन्द रश्मियां अधिक व्यक्त वा तेजस्वी रूप में प्रकट होती हैं। ये सातों ऋत्विज् ही वषट्कार की क्रिया भी करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि वे उन याज्या संज्ञक छन्द रश्मियों को वज्र अर्थात् तीक्ष्ण रूप प्रदान करते हैं। इसी कारण कहा है- "वज्रो वै वषट्कारः" (ऐ.३.८; कौ.ब्रा.३.५; गो.उ.३.५)। ये वषट्कृत याज्या छन्द रश्मियां विभिन्न देव परमाणुओं को आधार प्रदान करती हैं। इसी कारण कहा गया है-

"देवपात्रं वाऽएष यद् वषट्कारः" (श.१.७.२.१३)

"देवपात्रं वा एतद् यद् वषट्कारः" (ऐ.३.५)

"देवपात्रं वै वषट्कारः" (गो.उ.३.१)

यहाँ याज्या संज्ञक सातों छन्द रश्मियां अपनी-२ पुरोनुवाक्या संज्ञक छन्द रश्मियों के साथ सदैव संचरण करती हैं। यहाँ पुरोनुवाक्या छन्द रश्मियां कौनसी हैं? इस विषय में सायण का इन प्राचीन विद्वानों के मत के विषय में मत ही उचित प्रतीत होता है कि पूर्वोक्त तीनों सूक्तरूप रश्मिसमूहों की सात-२ छन्द रश्मियां ही पुरोनुवाक्या कहलाती हैं। इस प्रकार वे विद्वान् पूर्वोक्त तीनों सूक्तों की सम्पूर्णता से उत्पत्ति न मानकर सात-२ छन्द रश्मियों की ही उत्पत्ति मानते हैं। ध्यातव्य है कि पुरोनुवाक्या संज्ञक छन्द रश्मियां प्राण नामक प्राण तत्त्व के समान व्यवहार करती हैं क्योंकि कहा गया है- "प्राण एव पुरोनुवाक्या" (श.१४.६.१.१२)। उधर याज्या संज्ञक छन्द रश्मियां अपान तत्त्व का कार्य करती हैं। इस कथन को प्रमाणित करते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है- "अपानो याज्या" (श.१४.६.१.१२)। जिस प्रकार प्राण और अपान तत्त्व साथ-२ संचरण करते हैं, उसी प्रकार ये दोनों प्रकार की छन्द रश्मियां भी साथ-२ ही संचरित होती हैं। इस प्रकार इन विद्वानों के मत में सात-२ छन्द रश्मियां ही उत्पन्न होती हैं।।

इस मत का खण्डन करते हुए महर्षि ऐतरेय महीदास कहते हैं कि ऐसा नहीं होता है। इसका कारण वताते हुए महर्षि कहते हैं कि सम्पूर्ण सूक्तरूप रश्मिसमूह ही विशेष रूप से संगतिकारक होता है। इसलिए सूक्त को यजमान कहा गया है। इसकी पुष्टि अन्यत्र भी होती है- "गृहाः सूक्तम्" (ऐ.३.२३; गो.उ.३.२१)। इस कारण अपूर्ण सूक्तों के उत्पन्न होने से सर्ग प्रक्रिया में भाग लेने वाले विभिन्न संयोज्य परमाणु आदि पदार्थ हीन तेज और बल से युक्त हो जाते हैं अर्थात् सूक्त रश्मियों के अपूर्ण उत्पन्न होने पर पूर्ण उत्पन्न होने की अपेक्षा उनके वल और क्रियाशीलता आदि गुण दुर्वल हो जाते हैं। इस कारण उपर्युक्त विद्वानों के मतानुसार सात-२ छन्द रश्मियों का ही उत्पन्न होना सत्य नहीं है, वल्कि सूक्तों की उत्पत्ति सम्पूर्णता के साथ ही होती है।।

यहाँ महर्षि अपना मत वतलाते हुए पुनः कहते हैं कि पूर्वोक्त मैत्रावरुण संज्ञक छन्द रश्मियां

पूर्वोक्त ऋ.१.१६ सूक्त की ६ छन्द रश्मियों के द्वारा अप्रकाशित लोकों वा मेघरूप पदार्थ की प्रारम्भिक अवस्था को अन्तरिक्ष लोक की ओर उन्मुख करती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये पदार्थ की प्रातःसवनरूप गायत्र अवस्था को उत्तेजित करके माध्यंदिन सवन अर्थात् अन्तरिक्ष के निर्माण की त्रैष्टुभ अवस्था की ओर उन्मुख करती हैं। इस कारण इन सभी ६ छन्द रश्मियों वाले सूक्त की पूर्णता से उत्पत्ति होना अनिवार्य है। इसके पश्चात् पूर्वोक्त ब्राह्मणाच्छंसी संज्ञक छन्द रश्मियां पूर्वोक्त ऋ.७.२१ सूक्तरूप रश्मिसमूह के द्वारा मेघरूप पदार्थ को माध्यंदिन सवन अर्थात् त्रिष्टुप् छन्द रश्मि प्रधान अन्तरिक्ष लोक से आदित्य लोकों के निर्माण की ओर उन्मुख करती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि मेघस्थ अप्रकाशित पदार्थ में से एक बड़ी मात्रा में पदार्थ हटकर तेजस्वी रूप की प्राप्ति के लिए संघनित होने लगता है। इसका प्रकार यह हो सकता है कि मेघस्थ पदार्थ का कुछ भाग अप्रकाशित रूप में अर्थात् पृथिवी आदि लोकों के रूप में अलग छिटक जाता है और शेष बहुत बड़ा भाग संघनित होता हुआ तेजस्वी होने की ओर अग्रसर होता है। इन दोनों ही प्रकार के पदार्थों के मध्य विस्तृत अन्तरिक्ष उत्पन्न हो जाता है। उस अन्तरिक्ष में ही ये दस रश्मियां ब्राह्मणाच्छंसी संज्ञक छन्द रश्मियों को उत्तेजित करती हुई विद्यमान रहती हैं। इनके पश्चात् पूर्वोक्त ऋ.४.३५ सूक्त की सभी ६ छन्द रश्मियां तृतीय सवन अर्थात् आदित्य लोकों के निर्माण में, विशेषकर उनके केन्द्रीय भागों में होने वाली क्रियाओं को उत्तेजित करती हुई तेजस्वी होते हुए पदार्थ को आदित्य लोक के निर्माण में सक्षम बनाती हैं। इसके कारण तेजस्वी पदार्थ तेजी से केन्द्रीय भागों का निर्माण करने लगता है। तारों का यह केन्द्रीय भाग ही स्वर्गलोक कहलाता है, यह अनेकत्र सिद्ध हो ही चुका है।।

इस प्रकार ग्रन्थकार ने तीनों ही सूक्तरूप रश्मिसमूहों की पूर्णता से उत्पत्ति की अनिवार्यता दर्शायी है। वे कहते हैं कि यदि पूर्वोक्त अन्य विद्वानों के मतानुसार तीनों सूक्तों की केवल सात-२ छन्द रश्मियां उत्पन्न हों, तो वे संयोज्य परमाणुओं को स्वर्गलोक अर्थात् आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों के निर्माण में **सक्षम नहीं बना सकतीं। इस कारण इन तीनों ही सूक्तों की पूर्णता से ही उत्पत्ति होती है, जिससे लोक निर्माण प्रक्रिया भी पूर्णता को प्राप्त करती है।।+।।**

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में यदि कुछ छन्द रश्मि-समूहों (सूक्त) की कुछ छन्द रश्मियां उत्पन्न होवें तथा शेष उत्पन्न नहीं होवें, तब सृष्टि के कारणभूत विभिन्न कण वा तरंगों की शक्ति न्यून हो जाती है। ये छन्द रश्मिसमूह पूर्णरूप से उत्पन्न होने पर ही विशेष संयोजक गुणों से युक्त होते हैं, इस कारण इन समूहों के अपूर्णता से उत्पन्न होने पर विभिन्न बल (गुरुत्व बल, विद्युत् चुम्बकीय बल आदि) दुर्बल हो जाते हैं। इससे तारे तथा गृह आदि लोकों के केन्द्रीय भागों का निर्माण नहीं हो पाता है। फलतः लोकनिर्माण प्रक्रिया सम्पन्न नहीं हो पाती है। विशेष जानकारी हेतु व्याख्यान भाग अवश्य पठनीय है।।

इति २८.१ समाप्तः

ॐ अथ २८.२ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. अथाह यदैन्द्रो वै यज्ञोऽथ कस्माद् द्वावेव प्रातःसवने प्रस्थितानां प्रत्यक्षादैन्द्रीभ्यां यजतो होता चैव ब्राह्मणाच्छंसी चेदं ते सोम्यं मध्विति होता यजतीन्द्र त्वा वृषभं वयमिति ब्राह्मणाच्छंसी, नानादेवत्याभिरितरे; कथं तेषामैन्द्र्यो भवन्तीति।।
'मित्रं वयं हवामह इति मैत्रावरुणो यजति; वरुणं सोमपीतय इति, यद्वै किंच पीतवत् पदं, तदैन्द्रं रूपं, तेनेन्द्रं प्रीणाति।।
'मरुतो यस्य हि क्षय इति पोता यजति; स सुगोपातमो जन इतीन्द्रो वै गोपास्तदैन्द्रं रूपं, तेनेन्द्रं प्रीणाति।।
'अग्ने पत्नीरिहा वहेति नेष्टा यजति; त्वष्टारं सोमपीतय इतीन्द्रो वै त्वष्टा, तदैन्द्रं रूपं, तनेन्द्रं प्रीणाति।।
'उक्षान्नाय वशान्नायेत्याग्नीध्रो यजति, सोमपृष्ठाय वेधस इतीन्द्रो वै वेधास्तदैन्द्रं रूपं, तेनेन्द्रं प्रीणाति।।
'प्रातर्यावभिरा गतं देवेभिर्जेन्यावसू, इन्द्राग्नी सोमपीतय इति स्वयं समृद्धाऽच्छावाकस्य।।
एवमु हैता ऐन्द्र्यो भवन्ति।।
यन्नानादेवत्यास्तेनान्या देवताः प्रीणाति।।
यदु गायत्र्यस्तेनाग्नेय्यः।।
एतदु हैताभिस्त्रयमुपाप्नोति।।२।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त उन्नीयमान अर्थात् विभिन्न ऋत्विजों रूपी छन्द रश्मियों को उत्तेजित करने वाले सूक्तों का वर्णन और उनके कार्य को स्पष्ट करने के पश्चात् कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि सर्ग यज्ञ को ऐन्द्र कहा जाता है अर्थात् सृष्टि यज्ञ में इन्द्रतत्त्व की प्रधानता बतलाई जाती है, तब होता, ब्राह्मणाच्छंसी, मैत्रावरुण, पोता, नेष्टा आदि सभी पूर्वखण्डोक्त सात ऋत्विजों की याज्या छन्द रश्मियां इन्द्र-देवताक क्यों नहीं होती? इस बात को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि पूर्वोक्त प्रातःसवन में दो ऋत्विज् होता एवं ब्राह्मणाच्छंसी की प्रस्थित याज्या ही प्रत्यक्ष रूप से इन्द्र-देवताक होती है। ध्यातव्य है कि इन सातों ऋत्विजों और सात याज्या संज्ञक छन्द रश्मियों की चर्चा पूर्वखण्ड में की जा चुकी है। यहाँ पुनः चर्चा करने एवं सातों याज्या संज्ञक छन्द रश्मियों का वर्णन होने से यह बात तो स्पष्ट है कि याज्या संज्ञक ये सात छन्द रश्मियां उत्पन्न अवश्य होती हैं, भले ही पूर्वोक्त तीनों सूक्तों की सभी छन्द रश्मियां अपने पूर्वोक्त कार्य हेतु अनिवार्य रूप से उत्पन्न होती हों। यदि, ऐसा नहीं होता तो ग्रन्थकार पुनः इन विद्वानों के प्रश्न को उपस्थित करके उसका समाधान नहीं करते। यहाँ 'याज्या' शब्द के साथ प्रस्थित विशेषण से यह संकेत मिलता है कि ये छन्द रश्मियां {प्रस्थितः = इतस्ततश्चलितः (तु.म.द.ऋ.भा.१.२३.१)} अपने संयोजक गुणों के साथ इस ब्रह्माण्ड में इधर-उधर गमनागमन करती रहती हैं। अब यहाँ इन प्रस्थित याज्या छन्द रश्मियों का वर्णन क्रमशः करते हुए कहते हैं-
(१) पूर्वोक्त होता संज्ञक ऋत्विज् की याज्या के रूप में प्रगाथः काण्व ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु रश्मियों से उत्पन्न एक विशेष तेजयुक्त ऋषि प्राण रश्मि से इन्द्र-देवताक एवं विराड् गायत्री छन्दस्क-

इदं ते सोम्यं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः। जुषाण इन्द्र तत्पिब॥८॥ (ऋ.८.६५.८)

ऋचा है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां नाना प्राण रश्मियों के साथ इन्द्रतत्त्व को पूर्ण बलयुक्त करती हैं, जिससे विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ प्राणवान् होकर सक्रिय होता है।

इस छन्द रश्मि में 'इन्द्र' पद प्रत्यक्षरूप से विद्यमान है। इसलिए इसको 'ऐन्द्री' कहना स्वयं सिद्ध है।

(२) ब्राह्मणाच्छंसी संज्ञक ऋत्विज् की याज्यारूप छन्द रश्मि विश्वामित्र ऋषि अर्थात् सूक्ष्म वाक् तत्त्व से इन्द्र-देवताक एवं गायत्री छन्दस्क-

इन्द्रं त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे। स पाहि मध्वो अन्धसः॥१॥ (ऋ.३.४०.१)

की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से मेघरूप पदार्थों में विद्यमान विभिन्न संयोज्य परमाणु नाना प्रकार की प्राण रश्मियों से युक्त होकर बलवर्षक इन्द्रतत्त्व को आकर्षित करते हैं।

इस ऋचा में भी 'इन्द्र' शब्द प्रत्यक्ष विद्यमान है। इस कारण यह भी 'ऐन्द्री' स्वयं सिद्ध है। इन दोनों के अतिरिक्त अन्य पांच ऋत्विजों की याज्या संज्ञक छन्द रश्मियों के देवता इन्द्र तत्व से भिन्न हैं, तब उन याज्या संज्ञक ऋचाओं को ऐन्द्री कैसे कहा जा सकता है? यह प्रश्न कुछ विद्वानों का है। इसका उत्तर देते हुए महर्षि आगामी कण्डिकाओं में बतलाते हैं॥

(३) मैत्रावरुण संज्ञक ऋत्विज् की प्रस्थित याज्या छन्द रश्मि काण्वो मेधातिथि ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न मित्रावरुणौ-देवताक एवं गायत्री-छन्दस्क-

मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये। जज्ञाना पूतदक्षसा॥४॥ (ऋ.१.२३.४)

है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से मेघस्थ विभिन्न परमाणु विभिन्न सोम रश्मियों का अवशोषण करके प्राणापान और प्राणोदान रश्मियों से युक्त होकर पवित्र बल से युक्त होते हैं।

इस ऋचा में 'इन्द्र' शब्द विद्यमान नहीं है, तब यह 'ऐन्द्री' क्यों कहलाती हैं? इसका कारण बताते हुए महर्षि लिखते हैं कि इस ऋचा में "वरुणं सोमपीतये" पाद में 'पिबृ' धातु विद्यमान है। इस धातु से निष्पन्न 'सोमपीतये' पद पदार्थों में विद्यमान इन्द्रतत्त्व को प्रभावित करता है। वस्तुतः 'सोमपीतये' पद इन्द्र के लिए ही प्रयुक्त है, क्योंकि इन्द्रतत्त्व ही सोम रश्मियों का पान करता है। इस प्रकार इस छन्द रश्मि के द्वारा भी इन्द्रतत्त्व ही तृप्त होता है। इस कारण इसे भी ऐन्द्री कहा जा सकता है॥

(४) पोता संज्ञक ऋत्विज् की प्रस्थित याज्या छन्द रश्मि राहूगणो गोतम ऋषि अर्थात् धनंजय प्राण से उत्पन्न मरुद्देवताक एवं गायत्री छन्दस्क-

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः। स सुगोपातमो जनः॥१॥ (ऋ.१.८६.१)

है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विशेष महिमा और प्रकाशयुक्त मरुद् रश्मियां विभिन्न परमाणुओं के अन्दर निवास करती हुई उनकी सर्वश्रेष्ठ रक्षिका होती हैं।

इस ऋचा में भी 'इन्द्र' पद विद्यमान नहीं है, तब यह 'ऐन्द्री' कैसे कही जा सकती है? इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि इस ऋचा के तृतीय पाद "स सुगोपातमो जनः" में "गोपा" शब्द किंवा 'सुगोपातमः' पद इन्द्र ही के वाचक हैं क्योंकि इन्द्रतत्त्व ही मरुद् रश्मियों से घिरा हुआ और उनका पान करता हुआ विभिन्न पदार्थों की रक्षा करने वालों में श्रेष्ठ होता है। इस कारण इन पदों के प्रभाव से पदार्थ में विद्यमान इन्द्रतत्त्व तृप्त होता है। इस कारण यह ऋचा इन्द्र-देवताक न होते हुए भी 'ऐन्द्री' कहलाती है॥

(५) नेष्टा संज्ञक ऋत्विज् की प्रस्थित याज्यारूप छन्द रश्मि पूर्वोक्त काण्वो मेधातिथि ऋषि से उत्पन्न अग्निदेवताक एवं गायत्री छन्दस्क-

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप। त्वष्टारं सोमपीतये।।६।। (ऋ.१.२२.६)

है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से अग्नितत्त्व सोम अर्थात् विभिन्न उत्पन्न परमाणुओं के पालन और रक्षण के लिए उन देव परमाणुओं की धारक और प्रकाशिका शक्तियों तथा त्वष्टारूप तीक्ष्ण वलकारी पदार्थ को निकटता से प्राप्त करता है।

इस ऋचा में भी 'इन्द्र' शब्द विद्यमान नहीं है, परन्तु इसके अन्तिम पाद "त्वष्टारं सोमपीतये" में 'त्वष्टा' शब्द इन्द्र वाचक ही है। इस कारण अग्नितत्त्व इन्द्र से संगत होकर उसे तृप्त करता है। इसलिए यह ऋचा भी ऐन्द्री कहलाती है।।

(६) आग्नीध्र संज्ञक ऋत्विज् की प्रस्थित याज्यारूप छन्द रश्मि विरूप आंगिरस ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न विविध रूप धारण करने वाली प्राण रश्मि विशेष से अग्निदेवताक एवं निचृद्गायत्री छन्दस्क-

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे। स्तोमैर्विधेमाग्नये।।११।। (ऋ.८.४३.११)

है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {वेधा = विशेषेण दधातीति वेधाः (उ.को.४.२२६)} विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ अग्नि तत्त्व की रश्मियों को धारण करके नाना प्रकार के वर्षक, संयोजक और नियंत्रक वलों को विशेषरूप से धारण करते हैं।

इस ऋचा में भी 'इन्द्र' पद विद्यमान नहीं है। पुनः इसे 'ऐन्द्री' किस प्रकार कहा जा सकता है? इसका समाधान देते हुए कहते हैं कि इस ऋचा के द्वितीय पाद "सोमपृष्ठाय वेधसे" में विद्यमान 'वेधा' शब्द इन्द्र वाचक ही है, क्योंकि इन्द्रतत्त्व ही विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को विशेषरूप से धारण करता है। यहाँ 'वेधसे' पद के प्रभाव से इन्द्रतत्त्व विशेषरूप से तृप्त होता है। इस कारण इस ऋचा को भी ऐन्द्रीरूप कहा जाता है।।

(७) अच्छावाक संज्ञक ऋत्विज् की याज्यारूप छन्द रश्मि पूर्वोक्त श्यावाश्व ऋषि नामक सूक्ष्म प्राण से उत्पन्न इन्द्राग्नी-देवताक एवं निचृद् गायत्री छन्दस्क-

प्रातर्यावभिरा गतं देवेभिर्जेन्यावसू। इन्द्राग्नी सोमपीतये।।७।। (ऋ.८.३८.७)

है। {जेन्यावसू = यौ जेन्यान् जयशीलान् वासयतो यद्वा जेन्यं जेतव्यं जितं वा वसु धनं याभ्यां तौ (म.द.य.भा.३३.८८)} इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र और अग्नि तत्त्व अपने द्वारा नियन्त्रित विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को वसाते हुए अतिशीघ्र गमन करने वाली धनंजय आदि प्राण रश्मियों के साथ संगत होकर विभिन्न सोम रश्मियों को अवशोषित करके सव ओर व्याप्त होते वा गमन करते हैं। इस ऋचा के अन्तिम पाद 'इन्द्राग्नी सोमपीतये' में 'इन्द्र' शव्द प्रत्यक्ष विद्यमान होने से यह छन्द रश्मि इन्द्रतत्त्व से स्वयं ही समृद्ध है। इस कारण इसका ऐन्द्री होना भी स्वतः सिद्ध है।।

इस प्रकार उपर्युक्त सभी सातों ऋचाओं का देवता इन्द्र न होने पर भी ये सभी इन्द्र-देवताक ऋचाओं के समान ही प्रभाव वाली होती हैं। ये सभी छन्द रश्मियां इन्द्र देवता के अतिरिक्त अन्य उपर्युक्त देवताओं वाली भी होने से तत्-तत् सभी देवतारूप पदार्थों को भी तृप्त और समृद्ध करती हैं अर्थात् इनका व्यापक प्रभाव सर्ग प्रक्रिया पर होता है। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"इदं ते सोम्यं मधु मित्रं वयं हवामह इन्द्र त्वा वृषभं वयं मरुतो यस्य हि क्षयेऽग्ने पत्नीरिहाऽऽवहोक्षान्नाय वशान्नायेति प्रातःसवनिक्यः प्रस्थितयाज्याः।" (आश्व.श्रौ.५.५.१६)

यहाँ अच्छावाक की याज्या छन्द रश्मि के अतिरिक्त अन्य छः याज्या ऋचाओं का संकेत किया हुआ है। अच्छावाक की याज्या के विषय में महर्षि आश्वलायन ने अन्यत्र कहा है-

"उपहूतः प्रत्यस्मा इत्युन्नीयमानायानूच्य प्रातर्यावभिरागतमिति यजति।" (आश्व.श्रौ.५.७.६)

इस पर टीकाकार आचार्य नारायण का कथन है- "उपहूत इति वचनमच्छावाकस्य ग्रहणार्थम्.... .एषाऽस्य प्रस्थित याज्या।"।।+।।

ये उपर्युक्त सभी छन्द रश्मियां गायत्री छन्दस्क होने से अग्नि तत्त्व को विशेष समृद्ध करती हैं, क्योंकि अग्नि तत्त्व का गायत्री छन्द रश्मियों से विशेष सम्बन्ध होता है। इसलिए ये छन्द रश्मियां आग्नेयी भी कहलाती हैं। गायत्री छन्द रश्मियों का अग्नि तत्त्व से विशेष सम्वन्ध वतलाते हुए अनेक ऋषियों का कथन है-

"अग्निर्हि गायत्री" (जै.ब्रा.३.१८४)
"गायत्री वाऽअग्निः" (श.१.८.२.१३)
"तेजो वै गायत्री" (तै.सं.३.२.६.३; काठ.१६.३)
"गायत्रो ह्यग्निः" (मै.३.६.५)।

इस प्रकार उपर्युक्त सातों छन्द रश्मियां तीन प्रकार का देवत्य प्रभाव दर्शाती हैं, जो निम्नानुसार है-

(१) उपर्युक्तानुसार सभी छन्द रश्मियां इन्द्रतत्त्व का प्रभाव दर्शाती हैं।
(२) सभी छन्द रश्मियां अपने-२ देवता के अनुसार प्रभाव दर्शाते हुए वहुदेवत्य प्रभाव को उत्पन्न करती हैं।
(३) सभी गायत्री छन्दस्क होने से आग्नेयी प्रभाव दर्शाती हैं।

इस प्रकार इन छन्द रश्मियों का वहुत व्यापक और महत्वपूर्ण प्रभाव होता है, क्योंकि अग्नि और इन्द्र दोनों ही पदार्थ इस सृष्टि के महत्वपूर्ण तत्त्व हैं। सभी प्रकार के वल और तेज आदि गुणों की इन्हीं के द्वारा उत्पत्ति होती है। जिनके अभाव में सृष्टि रचना सम्भव ही नहीं है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में विभिन्न क्रियाओं को सम्पन्न करने में विद्युत् एवं ऊष्मा की विशेष भूमिका होती है। लोकों के निर्माण, संचालन आदि की विस्तृत व असंख्य क्रियाओं में यद्यपि अनेक पदार्थों की आवश्यक भूमिका होती है परन्तु इन सभी क्रियाओं के पीछे विद्युत् तथा ऊष्मा की सर्वत्र अनिवार्य भूमिका होती है। इन दोनों के ही अभाव में ब्रह्माण्ड की न तो उत्पत्ति सम्भव है और न ही उसका संचालन। हाँ, यह अवश्य है कि इन दोनों की ही उत्पत्ति विभिन्न प्राण व छन्दादि रश्मियों से होती है। इस प्रकार प्राण व छन्दादि रश्मियों का व्यापार विद्युत् व ऊष्मा दोनों की ही उत्पत्ति से पूर्व प्रारम्भ हो जाता है। विद्युत् वलों एवं ऊष्मा की उत्पत्ति व समृद्धि में सात गायत्री छन्द रश्मियों की व्यापक भूमिका होती है। इस विषय में विशेष परिज्ञान हेतु व्याख्यान भाग अवश्य द्रष्टव्य है।।

इति २८.२ समाप्तः

अथ २८.३ प्रारभ्यते

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. 'असावि देवं गोऋजीकमन्ध' इति मध्यंदिन उन्नीयमानेभ्योऽन्वाह; वृषण्वतीः पीतवतीः सुतवतीर्मद्वती रूपसमृद्धाः।।
ऐन्द्रीरन्वाहैन्द्रो वै यज्ञस्त्रिष्टुभोऽन्वाह, त्रैष्टुभं वै माध्यंदिनं सवनम्।।
तदाहुर्यत्तृतीयसवनस्यैव रूपं मद्वदथ कस्मान्मध्यंदिने मद्वतीरनु चाह यजन्ति चाभिरिति।।
माद्यन्तीव वै मध्यंदिने देवताः, समेव तृतीयसवने मादयन्ते, तस्मान्मध्यन्दिने मद्वतीरनु चाह यजन्ति चाभिः।।

व्याख्यानम्- जैसा कि इस अध्याय के प्रथम खण्ड में वर्णित कर चुके हैं कि माध्यंदिन सवन अर्थात् अन्तरिक्षस्थ ब्राह्मणाच्छंसी संज्ञक छन्द रश्मियों को उत्कर्षित करने के लिए

असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच।
बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा नः स्तोममन्धसो मदेषु।।१।।

इत्यादि (ऋ.७.२१) सूक्तरूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति होती है। उसी चर्चा को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि इस सूक्त की ऋचाएं 'वृषन्' शब्द से युक्त हैं। इस कारण इन्हें 'वृषण्वती' कहा गया है। इसकी द्वितीय ऋचा -

प्र यन्ति यज्ञं विपयन्ति बर्हिः सोममादो विदथे दुध्रवाचः।
न्यु भ्रियन्ते यशसो गृभादा दूरउपब्दो वृषणो नृषाचः।।२।।

में 'वृषणः' पद विद्यमान है। इसकी तृतीय ऋचा

त्वमिन्द्र स्रवितवा अपस्कः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः।
त्वद्वावक्रे रथ्यो३ न धेना रेजन्ते विश्वा कृत्रिमाणि भीषा।।३।।

में 'धेना' पद विद्यमान है, जिसकी व्युत्पति 'धेट् पाने' धातु से होती है। इस कारण यह शब्द एवं इस शब्द के कारण सम्पूर्ण सूक्तरूपी रश्मिसमूह 'पीतवत्' कहलाता है। इसकी प्रथम ऋचा में 'असावि' पद विद्यमान है, जो 'सूङ् प्राणिगर्भविमोचने' से निष्पन्न होता है। इस कारण यह सूक्तरूप रश्मिसमूह 'सुतवत्' कहलाता है। इसकी प्रथम ऋचा में ही 'मदेषु' पद विद्यमान है। यह पद 'मदी हर्षग्लेपनयोः' से निष्पन्न होता है। इस कारण यह सूक्तरूप रश्मिसमूह 'मदवत्' कहलाता है। इस सम्पूर्ण सूक्त का आधिदैविक प्रभाव हम पूर्व में लिख चुके हैं। यहाँ केवल यही विशेष कहना है कि इन चार शब्दों के प्रभाव से ये छन्द रश्मियां वर्धक बल, सक्रियता, सम्पीडन और अवशोषण के द्वारा पूर्वोक्त माध्यंदिन सवन को उसके रूप में यथावत् रूप से समृद्ध करती हैं। इस सूक्त का देवता इन्द्र होने से 'ऐन्द्री' कहा जाता है और इन्द्रतत्त्व ही संयोग-विभाग प्रक्रिया में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह सूक्त त्रिष्टुप् छन्द रश्मि प्रधान है और ये त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां ही माध्यंदिन सवन एवं अन्तरिक्ष में विशेषतया विद्यमान रहती हैं, इसका उल्लेख हम अनेकत्र कर चुके हैं, इस कारण यह सूक्तरूप रश्मिसमूह आकाश तत्त्व को समृद्ध करने के साथ-२ सम्पूर्ण अन्तरिक्ष को विस्तृत करता हुआ नाना प्रकार की सृजन क्रियाओं को भी समृद्ध

करता है। इस कारण ही यह सूक्तरूप रश्मिसमूह माध्यन्दिन सवन में ब्राह्मणाच्छंसी शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मियों के उन्नयन के लिए उत्पन्न होता है।।+।।

यहाँ कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए ऋषि लिखते हैं कि तृतीय सवन के उत्कृष्ट रूप के लिए जो सूक्तरूप रश्मिसमूह उत्पन्न होता है, वह 'मद' धातु से युक्त होता ही है, जिसके कारण तृतीय सवन अर्थात् आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों (विशेषकर) में सभी परमाणु आदि पदार्थ अतिसक्रिय होकर भारी विक्षुब्ध अवस्था को प्राप्त करते हैं। ऐसी अवस्था में यहाँ मध्यंदिन सवन को भी क्यों 'मद्वत्' बताया गया है? इसका तात्पर्य यह प्रश्न उपस्थित करना है कि यहाँ क्यों "मद्वती" छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं?।।

इसका उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि माध्यंदिन सवन में उत्पन्न विविध ऋचाओं के देवता भी अतिसक्रिय ही होते हैं। इसी कारण इस सवन में विद्यमान विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ तीव्र वेग से आदित्य लोकों के निर्माण हेतु केन्द्रीय भागों की ओर उत्क्रमण करते हैं। इसी का संकेत करते हुए महर्षि जैमिनी का संकेत है-

"माध्यन्दिनाद् वै देवा यज्ञायज्ञीयेनोर्ध्वा स्वर्गं लोकमुदक्रामन्।" (जै.ब्रा.३.२६०)

तृतीय सवन में भी सभी परमाणु आदि पदार्थ अतिसक्रिय होते हैं, यह दोनों सवनों की समानता है, परन्तु भेद यह है कि तृतीय सवन अर्थात् आदित्य लोकों, विशेषकर उनके केन्द्रीय भागों में विद्यमान विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ अतिसक्रिय होने के साथ-२ संघातरूप में भी विद्यमान होते हैं अथवा संघात प्रक्रिया से विशेषतया युक्त होते हैं। इस कारण मध्यन्दिन सवन में भी 'मद्वती' छन्द रश्मियां ही उत्पन्न होती हैं। इसके साथ-२ मध्यन्दिन सवन किंवा ब्राह्मणाच्छंसी शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मियों की पूर्वोक्त प्रस्थित याज्या छन्द रश्मियां भी मद्वती होती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- कॉस्मिक मेघों से लोकनिर्माण की प्रक्रिया में जब विभिन्न लोक आकार ग्रहण करने लगते हैं, तब उनके मध्य में विस्तृत हुआ अन्तरिक्ष नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों से भरा होता है। उस समय उस पदार्थ के परमाणु भी अति सक्रिय होते हैं। उनकी स्थिति ऐसी ही होती है, जैसी कि तारे आदि लोकों के अन्दर होती है। भेद केवल यह होता है कि तारों के अन्दर परमाणु आदि पदार्थ सघन रूप में विद्यमान होते हैं और उनके केन्द्रीय भागों में अतिसघन रूप में विद्यमान होते हैं परन्तु अन्तरिक्ष में बिखरे हुए परमाणु अपेक्षाकृत स्वतंत्र और विरल अवस्था में होते हैं। त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की दोनों ही स्थानों में प्रधानता होती है। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग पठनीय है।।

२. ते वै खलु सर्व एव माध्यन्दिने प्रस्थितानां प्रत्यक्षादैन्द्रीभिर्यजन्ति।।
अभितृण्णवतीभिरेके।।
'पिबा सोममभि यमुग्र तर्द इति' होता यजति।।
'स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्र' इति मैत्रावरुणो यजति।।
'एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वेति' ब्राह्मणाच्छंसी यजति।।
'अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरिति' पोता यजति।।
'तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङिति' नेष्टा यजति।।
'इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना' इत्यच्छावाको यजति।।
'आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहेत्याग्नीध्रो यजति।।
तासामेता अभितृण्णवत्यो भवन्तीन्द्रो वै प्रातःसवने न व्यजयत; स एताभिरेव माध्यन्दिनं सवनमभ्यतृणद्यदभ्यतृणत्, तस्मादेता अभितृण्णवत्यो भवन्ति।।३।।

व्याख्यानम्- पूर्वखण्ड में होता आदि सातों ऋत्विजों की प्रस्थित याज्या संज्ञक सात छन्द रश्मियों का

वर्णन करने के पश्चात् माध्यन्दिन सवन में उन्हीं ऋत्विजों की प्रस्थित याज्या संज्ञक छन्द रश्मियों का वर्णन करते हैं, जो प्रत्यक्ष रूप से इन्द्र-देवताक हैं। यहाँ प्रस्थित याज्या और इन्द्र-देवताक होने का आशय हम पूर्ववत् समझ सकते हैं। इन सातों ऋत्विजों की प्रस्थित याज्याएं इन्द्रतत्त्व को समृद्ध करने वाली होती हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार इनमें से प्रथम तीन ऋत्विज् होता, मैत्रावरुण एवं ब्राह्मणाच्छंसी की प्रस्थित याज्याएं न केवल 'ऐन्द्री' होती हैं, अपितु वे ऋचाएं 'अभि'-पूर्वक 'तृद्' धातु से युक्त भी होती हैं। इसके प्रभाव से वे छन्द रश्मियां इन्द्रतत्त्व को इतना तीव्र और हिंसक वना देती हैं कि अन्तरिक्ष में विद्यमान विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ तीव्र वल और वेग से युक्त होकर, जहाँ वे एक-दूसरे के अभिमुख होकर तीव्र वेग से दौड़ते हुए परस्पर टकराते वा संयुक्त होते रहते हैं, वहीं वे असुर तत्त्व की शक्तियों का उल्लंघन करके आदित्य लोकों की ओर भी वेगपूर्वक गमन करते हैं। इस तीक्ष्ण प्रक्रिया में अनेक प्रकार की छेदन-भेदन क्रियाएं भी होती हैं।।+।।

माध्यन्दिन सवन में पूर्वोक्त होता की याज्यारूप

पिबा सोममभि यमुग्र तर्द ऊर्वं गव्यं महि गृणान इन्द्र।
वि यो धृष्णो वधिषो वज्रहस्त विश्वा वृत्रममित्रिया शवोभिः।।१।। (ऋ.६.१७.१)

की उत्पत्ति होती है। इसके विषय में ५.१८.४ द्रष्टव्य है।।

पूर्वोक्त मैत्रावरुण-संज्ञक ऋत्विज् की याज्यारूप

स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो यः शिप्रवान्वृषभो यो मतीनाम्।
यो गोत्रभिद्वज्रभृद्यो हरिष्ठाः स इन्द्र चित्राँ अभि तृन्धि वाजान्।।२।। (ऋ.६.१७.२)

की उत्पत्ति होती है। इसके विषय में भी ५.१८.४ द्रष्टव्य है।।

पूर्वोक्त ब्राह्मणाच्छंसी-संज्ञक ऋत्विज् की याज्यारूप

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि।।३।। (ऋ.६.१७.३)

की उत्पत्ति होती है। इसके विषय में भी ५.१८.४ द्रष्टव्य है।।

पूर्वोक्त पोता-संज्ञक ऋत्विज् की याज्यारूप छन्द रश्मि आङ्गिरसः कुत्स ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न तीक्ष्ण प्राणरश्मिविशेष से इन्द्र-देवताक एवं निचृत् त्रिष्टुप् छन्दस्क-

अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः।।६।। (ऋ.१.१०४.६)

है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्रतत्त्व सोमरश्मियों को आकर्षित करता हुआ विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के अन्दर सव ओर से व्याप्त होकर सम्पीडित पदार्थ को सक्रिय और व्याप्त करता है। वह इन्द्रतत्त्व विशेषरूप से सर्वत्र व्यापक जठररूप आकाश में विद्यमान परमाणु आदि पदार्थों को सब ओर से सींचता हुआ उनमें आकर्षण आदि वलों को समृद्ध करता है।।

पूर्वोक्त नेष्टा-संज्ञक ऋत्विज् की याज्यारूप छन्दरश्मि विश्वामित्र ऋषि अर्थात् सूक्ष्म वाक् तत्त्व से उत्पन्न इन्द्र-देवताक और निचृद् त्रिष्टुप् छन्दस्क-

तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमं सुमना अस्य पाहि।

अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र॥६॥ (ऋ.३.३५.६)

है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्रतत्त्व अपने अधोभाग अर्थात् अपनी गति की विपरीत दिशा में सोम अर्थात् सूक्ष्म मरुद् रश्मियों को संगत रखता हुआ निरन्तर गमन करता है। इस विषय में अन्य ऋषियों का भी कथन है- "इन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानः (मै.२.११.१), "मरुतो ह वै क्रीडिनो वृत्रः हनिष्यन्तमिन्द्रमागतं तमभितः परिचिक्रीडुर्महयन्तः" (श.२.५.३.२०) वह अन्तरिक्ष में विद्यमान विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों की संयोगादि प्रक्रिया में निरन्तर प्रकाशित और स्थित होता हुआ उनकी रक्षा करता है। वह विभिन्न सोम रश्मियों को सब ओर से धारण करता है।।

पूर्वोक्त अच्छावाक संज्ञक ऋत्विज् की याज्यारूप छन्द रश्मि पूर्वोक्त विश्वामित्र ऋषि से उत्पन्न इन्द्र-देवताक एवं निचृत् त्रिष्टुप् छन्दस्क-

इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः।
प्रयम्यमानान्प्रति षू गृभायेन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्णः॥२॥ (ऋ.३.३६.२)

है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से जैसे सूत्रात्मा वायु अपनी बलवान् सन्धियों के द्वारा नियन्त्रित करते हुए विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को प्रतिकर्षक बाधक रश्मियों से मुक्त करता है, उसी प्रकार सोम रश्मियां इन्द्रतत्त्व को प्रकाशित और व्याप्त करके उसकी ग्राह्य क्षमता को बढ़ाती हैं। इसके कारण वह इन्द्रतत्त्व कॉस्मिक मेघों में नाना प्रकार के सम्पीडनों से स्रवित विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को अवशोषित करता है।।

अन्त में आग्नीध्र संज्ञक ऋत्विज् की याज्यारूप छन्दरश्मि पूर्वोक्त विश्वामित्र ऋषि प्राण से उत्पन्न इन्द्र-देवताक एवं निचृत् त्रिष्टुप् छन्दस्क-

आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै।
समु प्रिया आववृत्रन्मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम्॥१५॥ (ऋ.३.३२.१५)

है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न कमनीय सोम रश्मियां इन्द्रतत्त्व को चारों ओर से घेरती हैं। वे सम्पूर्ण मेघरूप पदार्थ को सब ओर से सींचती हैं। उन सोम रश्मियों से तृप्त वह मेघरूप पदार्थ अन्य रश्मि आदि पदार्थों के साथ भी संगत होकर तेजी से दक्षिणावर्त घूमने लगते हैं।।

इन उपर्युक्त सातों याज्या संज्ञक छन्द रश्मियों में से प्रारम्भ की तीन छन्द रश्मियां 'अभि' पूर्वक 'तृद्' धातु से सम्पन्न हैं। जिनका प्रभाव हम पूर्व में बतला चुके हैं। प्रातःसवन की प्रक्रियाओं में इन्द्रतत्त्व इतना शक्तिशाली नहीं होता कि वह विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को पूर्ण नियन्त्रित कर सके, तब वह माध्यंदिन सवन की क्रियाओं में इन तीन छन्द रश्मियों के द्वारा ही सर्ग प्रक्रिया को पूर्ण नियन्त्रित करता है। इसके कारण विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के बन्धन दृढ़ होने लगते हैं एवं असुरादि तत्त्व के आक्रामक प्रभाव छिन्न-भिन्न होने लगते हैं। उनमें इन तीन प्रकार की छन्द रश्मियों का सर्वाधिक योगदान रहता है। ध्यातव्य है कि ये सभी याज्या छन्द रश्मियां त्रिष्टुप् छन्दस्क हैं, जिनमें से ४ तो निचृत् त्रिष्टुप् छन्दस्क हैं। इस कारण भी इन सातों छन्द रश्मियों का प्रभाव अति तीक्ष्ण होता है, जिससे इन्द्रतत्त्व अतितीक्ष्ण बलों से युक्त होकर 'अभि+तृद्' के प्रभाव से और भी विध्वंसक होकर असुरादि तत्त्वों को नष्ट करने में समर्थ होता है। इस कारण इन ऋचाओं का उत्पन्न होना लोक निर्माण प्रक्रिया के माध्यन्दिन चरण के लिए बहुत उपयोगी है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- कॉस्मिक मेघों से लोक निर्माण की प्रक्रिया में जब विभिन्न तारे एवं ग्रह आदि लोक अपनी-२ पृथक् आकृतियां ग्रहण करने लगते हैं। उस समय सम्पूर्ण पदार्थ में भारी विक्षोभ होता है

और इस विक्षोभ को उत्पन्न करने के लिए सात त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इनके कारण विद्युत् चुम्बकीय और गुरुत्वाकर्षण बल दोनों ही तीक्ष्ण और तीक्ष्णतर होते चलते हैं। विभिन्न विद्युदावेशित तरंगों के कणों की गति की विपरीत दिशा में घूर्णन करती हुई मरुद् रश्मियां गमन करती हैं। विभिन्न तारों के चारों ओर भी मरुद् रश्मियों की प्रधानता वाला आवरण विद्यमान होता है। कॉस्मिक मेघों के संघनन के समय बहुत सारा सूक्ष्म पदार्थ अन्तरिक्ष में बिखरा हुआ रह जाता है, जो विभिन्न विद्युत् तरंगों के द्वारा आकर्षित होता हुआ निर्माणाधीन लोकों की ओर प्रवाहित होने लगता है। इससे सिद्ध है कि लोकों के निर्माण और पदार्थ के संघनन में गुरुत्वाकर्षण बल के साथ-२ विद्युत् चुम्बकीय बल की भी भूमिका होती है। विभिन्न निर्माणाधीन तारे सोम अर्थात् मरुद् रश्मियों से आवृत्त होकर दक्षिणावर्त घूमने लगते हैं। इसी प्रकार कॉस्मिक मेघ भी दक्षिणावर्त घूर्णन (अपने अक्ष पर) करते हैं। हमारे मत में इतने ही लोक एवं कॉस्मिक मेघ वामावर्त भी घूर्णन करने चाहिए, जिससे संवेग संरक्षित रहे। वामावर्त घूमने के लिए कुछ अन्य रश्मियां भूमिका निभाती हैं। ये सात छन्द रश्मियां अति तीक्ष्ण तेज और बल से युक्त होती हैं।।

ॐ इति २८.3 समाप्तः ॐ

꧁ अथ २८.४ प्रारभ्यते ꧂

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. 'इहोप यात शवसो नपात' इति तृतीयसवन उन्नीयमानेभ्योऽन्वाह; वृषण्वतीः पीतवतीः सुतवतीर्मद्वती रूपसमृद्धास्ता ऐन्द्रार्भव्यो भवन्ति।।
तदाहुर्यन्नार्भवीषु स्तुवतेऽथ कस्मादार्भवः पवमान इत्याचक्षत इति।।
प्रजापतिर्वै पित ऋभून् मर्त्यान् सतोऽमर्त्यान् कृत्वा तृतीयसवन आभजत, तस्मान्नार्भवीषु स्तुवतेऽथार्भवः पवमान इत्याचक्षते।।

व्याख्यानम्– खण्ड ६.६ में तृतीय सवन की विभिन्न छन्द रश्मियों को उत्कृष्ट वनाने के लिए

इहोप॑ यात शवसो नपातः सौध॑न्वना ऋभवो माप॑ भूत।
अस्मिन्हि वः सव॑ने रत्नधेयं गमन्त्विन्द्रमनु वो मदा॑सः।।१।।

इत्यादि ऋ.४.३५ सूक्तरूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति की चर्चा कर चुके हैं। यहाँ उसी विषय को आगे वढ़ाते हुए कहते हैं कि इस समूह की छठीं ऋचा

यो वः सुनोत्य॑भिपित्वे अह्नां तीव्रं वा॑जासः सव॑नं मदा॑य।
तस्मै॑ रयिमृ॑भवः सर्ववी॑रमा त॑क्षत वृषणो मन्दसानाः।।६।।

में 'वृषणः' पद विद्यमान होने से यह ऋचा 'वृषण्वती' कहलाती है। द्वितीय ऋचा

आग॑न्नृभूणामिह र॑त्नधेयमभूत्सोम॑स्य सुषु॑तस्य पीतिः।
सुकृत्यया यत्स्व॑पस्यया॑ चँ एकं॑ विचक्र च॑मसं च॑तुर्धा।।२।।

में 'पीति', 'सुषुतस्य' एवं 'सोमस्य' पद विद्यमान होने से यह ऋचा 'पीतवती' 'सुतवती' कहलाती है। इस सूक्त में अनेकत्र 'मद्' धातु विद्यमान होने से 'मद्वत्' कहलाता है। इन सभी गुणों के कारण इसकी रूपसमृद्धि को पूर्वखण्ड की प्रथम कण्डिका के समान समझें।।

इसका भाष्य करते हुए आचार्य सायण ने लिखा है– "तत् तस्मिन्नृभुसंवन्धविषये चोद्यमाहुः। यस्मात्कारणादृभुदेवतास्वृक्षु सामगास्तृतीयसवने पवमानस्तोत्रेण न स्तुवते, किन्तु 'स्वादिष्ठया मदिष्ठया' इत्यन्यदेवताकास्वेव स्तुवते। अथैव सति कस्मात् कारणात् पवमानस्तोत्रस्यार्भवत्वमाचक्षते?" इससे प्रतीत होता है कि तृतीय सवन में विद्यमान विभिन्न छन्द रश्मियों को शुद्ध और अपेक्षाकृत अधिक तेजस्वी वनाने के लिए पूर्वोक्त मधुच्छन्दा ऋषि प्राण से पवमान सोम-देवताक एवं गायत्री छन्दस्क–

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुतः।।२।। (साम.४६८)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव को यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्रेरित और संपीडित रश्मि आदि पदार्थों के साथ वर्तमान संयोजक एवं विशेष क्रियाशील धारक वलों से युक्त वह इन्द्रतत्त्व सोम रश्मियों को अवशोषित करके विभिन्न प्रकार की रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों

को शुद्धता एवं विशेष गतिशीलता प्रदान करता है। इस छन्द रश्मि को पवमान स्तोत्र कहा जाता है। यहाँ इन्द्रतत्त्व को पवमान बनाने में सोम रश्मियों की विशेष भूमिका दर्शायी है। इसी कारण महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है- "सोमो वै पवमानः" (श.२.२.३.२२)। महर्षि तित्तिर का कथन है- "सुपावः पवमानः" (तै.सं.७.५.२०.१)। पवमान के विषय में ताण्ड्य महाब्राह्मण का कथन है- "

"आत्मा वै यज्ञस्य पवमानः" (तां.७.३.७), "माध्यन्दिनस्य पवमानः (स्वर्ग्यः)" (तां.७.४.१)।

इसका आशय है कि यह छन्द रश्मि माध्यन्दिन सवन में विद्यमान विभिन्न छन्दादि रश्मियों को स्वर्गलोक अर्थात् तृतीयसवन वा आदित्य लोकों की प्राप्ति कराने के लिए सम्पूर्ण पदार्थ में निरन्तर विचरण करती रहती है। यहाँ प्रश्न यह उपस्थित किया गया है कि इस छन्द रश्मि का देवता ऋभु न होने पर भी इसे आर्भव पवमान क्यों कहा जाता है? इस प्रश्न का उत्तर अगली कण्डिका में दिया गया है।।

{मर्त्यः = अनात्मा हि मर्त्यः (श.२.२.२.८)} तृतीय सवन से पूर्व सवनों में ऋभु अर्थात् धनंजय व सूत्रात्मा वायु मर्त्य रूप होते हैं। इसका आशय यह है कि ये दोनों ही रश्मियां विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को परिधि रूप में व्याप्त नहीं कर पाती हैं। यहाँ तृतीय सवन के विषय में निम्नलिखित ऋषियों का मत विचारणीय है-

"पशवो वै तृतीयसवनम्" (मै.३.७.४; काठ.२४.२; क.३७.३), "पशूःस्तृतीयसवने" (तै.सं.३.२.६.२)

इस मत के अनुसार यहाँ विभिन्न पशु अर्थात् परमाणुओं की उत्पत्ति की अवस्था को ही तृतीय सवन कहा गया है, जिसमें ये परमाणु सर्ग प्रक्रिया के आत्मरूप होकर सतत विचरण करते हैं। यहाँ मर्त्यरूप जो स्थिति बतायी गयी है, उसमें प्रजापति अर्थात् मनस्तत्त्व से सूक्ष्म ऋतु एवं प्राण रश्मियां ही उत्पन्न हुई होती हैं। ये रश्मियां एवं छन्दादि रश्मियां सूत्रात्मा वायु से सूत्रवत् बंधी व नियंत्रित अवश्य होती हैं, परन्तु पूर्णतः आवृत्त और व्याप्त नहीं हो पाती हैं, क्योंकि उस समय परमाणु अवस्था उत्पन्न ही नहीं हुई होती है। तृतीय सवन अर्थात् परमाणु अवस्था उत्पन्न होने पर सूत्रात्मा वायु उन परमाणुओं को सब ओर से घेरकर आवृत्त और व्याप्त कर देता है, जिसके कारण वे सूत्रात्मा वायु आदि रश्मियां विभिन्न संसर्ग क्रियाओं में भागीदार बनने लगती हैं। इस कारण

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुतः।।२।। (साम.४६८)

ऋभु-देवताक न होते हुए भी आर्भव पवमान कहा जाता है अर्थात् ऋभु एवं सोम दोनों ही देवताओं से सम्बन्धित माना जाता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्रीय भाग के निर्माण की प्रक्रिया में क्रियाशील सभी छन्दादि रश्मियां अति सक्रिय एक-दूसरे की अवशोषक और सम्पीडक एवं बलवती होती हैं। उस समय विभिन्न रश्मियों को अधिक शुद्ध रूप में क्रियाशील बनाने हेतु एक गायत्री छन्द रश्मि और उत्पन्न होती है, जिससे विभिन्न कणों का संलयन तेजी से होने लगता है। यह छन्द रश्मि तारों के केन्द्रीय भागों में सतत विचरण करती रहती है। इस सृष्टि के सभी कण एवं लोक सूत्रात्मा और धनंजय रश्मियों से आवृत्त और संचालित होते हैं। इसी प्रकार सभी क्वान्टाज़् भी इस रूप में होते हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

२. अथाह यद्यथाछन्दसं पूर्वयोः सवनयोरन्वाह,-गायत्रीः प्रातःसवने, त्रिष्टुभो माध्यंदिने,ऽथ कस्माज्जागते सति तृतीयसवने, त्रिष्टुभोऽन्वाहेति।।
धीतरसं वै तृतीयसवनमथैतदधीतरसं शुक्रियं छन्दो यत्त्रिष्टुप्, सवनस्य सरसताया इति ब्रूयादथो इन्द्रमेवैतत्सवनेऽन्वाभजतीति।।
अथाह यदैन्द्रार्भवं वै तृतीयसवनमथ कस्मादेष एव तृतीयसवने प्रस्थितानां प्रत्यक्षादैन्द्रार्भव्या यजतीन्द्र ऋभुभिर्वाजवद्भिः समुक्षितमिति होतैव; नानादेवत्याभिरितरे; कथं तेषामैन्द्रार्भव्यो भवन्तीति।।

इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतमिति मैत्रावरुणो यजति; युवो रथो अध्वरं देववीतय इति बहूनि वाऽह तदृभूणां रूपम्।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त उन्नीयमान सूक्तरूप रश्मिसमूहों के वर्णन के पश्चात् कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए महर्षि लिखते हैं कि पूर्व में तीनों सवनों के उन्नीयमान सूक्तों का वर्णन किया गया है। इनमें से प्रातःसवन के उन्नीयमान सूक्त का छन्द गायत्री है तथा माध्यन्दिन सवन के उन्नीयमान सूक्त का छन्द त्रिष्टुप् है, जो इन सवनों के सर्वथा अनुकूल है, क्योंकि हम सर्वत्र प्रातःसवन का छन्द गायत्री और माध्यंदिनसवन का छन्द त्रिष्टुप् दर्शाते आये हैं। तृतीयसवन का छन्द जगती होता है, यह तथ्य सर्वविदित है, तब यहाँ तृतीयसवन का उन्नीयमान सूक्त त्रिष्टुप् छन्द प्रधान क्यों होता है?।।

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि तृतीयसवन धीतरसरूप होता है। इस विषय में महर्षि तित्तिर का कथन है-

"पद्भ्यां द्वे सवने समगृह्णान्मुखेनैकं यन्मुखेन समगृह्णात तदधयत् तस्माद् द्वे सवने शुक्रवती प्रातःसवनं च माध्यंदिनं च तस्मात् तृतीयसवन ऋजीषमभि षुण्वन्ति धीतमिव हि मन्यन्ते" (तै.सं.६.१.६.४)

इस विषय में ग्रन्थकार ने स्वयं भी अन्यत्र कहा है-

"यन्मुखेन समगृभ्णात् तत् तृतीयसवनमभवत्।। तस्य पतन्ती रसमधयत्, तद् धीतरसं नान्वाप्नोत् पूर्वे सवने ते देवाः प्राजिज्ञासन्त, तत्पशुष्वपश्यंस्तद् यदाशिरमवनयन्त्याज्येन पशुना चरन्ति तेन तत्समावद्वीर्यमभवत् पूर्वाभ्यां सवनाभ्याम्।।" (ऐ.३.२७)

इन दोनों ही वचनों से तृतीय सवन धीतरसरूप सिद्ध होता है अर्थात् इसके रसरूप सामर्थ्य को गायत्री छन्द रश्मियां अवशोषित कर लेती हैं। इस विषय में विशेष जानकारी के लिए ३.२७.२ द्रष्टव्य है। इस प्रकार तृतीय सवन धीतरस होने के कारण अल्प सामर्थ्य वाला होता है और माध्यंदिन सवन शुक्र रूप अर्थात् तेजस्वी और बलवान् होता है। इसलिए तृतीय सवन को भी शुद्ध और सबल बनाने के लिए ही इस सवन की उत्कर्षिका छन्द रश्मियां भी त्रिष्टुप् प्रधानता वाली होती हैं। इसके कारण तृतीय सवन अर्थात् आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों के निर्माण के समय इन्द्रतत्त्व अपनी अनिवार्य भूमिका निभाता है।।

अब महर्षि कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि जब तृतीय सवन अर्थात् आदित्य लोक, विशेषकर उनके केन्द्रीय भागों में इन्द्रतत्त्व और ऋभु देवता अर्थात् सूत्रात्मा एवं धनंजय वायु रश्मियों की प्रधानता होती है, तब क्यों पूर्वोक्त ७ होता आदि ऋत्विजों में से केवल होतारूप ऋत्विज् ही इन्द्र और ऋभु देवता वाली याज्या संज्ञक छन्द रश्मि से संगत होता है? ये याज्या संज्ञक छन्द रश्मियां पूर्वोक्त प्रस्थित याज्या संज्ञक छन्द रश्मियों की याज्यारूप होती हैं। इससे संकेत मिलता है कि होता आदि ऋत्विज् रूप रश्मियां प्रस्थित याज्या संज्ञक छन्द रश्मियों के साथ संगत होती हैं और ये प्रस्थित याज्यारूप छन्द रश्मियां पुनः याज्या संज्ञक छन्द रश्मियों के साथ संगत होती हैं। होता संज्ञक ऋत्विज् की प्रस्थित याज्या की याज्या संज्ञक छन्द रश्मि पूर्वोक्त विश्वामित्र ऋषि प्राण रश्मि से उत्पन्न इन्द्र एवं ऋभवो देवताक एवं निचृज्जगती छन्दस्क-

इन्द्रं ऋभुभिर्वाजवद्भिः समुक्षितं सुतं सोममा वृषस्वा गभस्त्योः।
धियेषितो मघवन्दाशुषो गृहे सौधन्वनेभिः सह मत्स्वा नृभिः।।५।। (ऋ.३.६०.५)

है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह प्रशंसित इन्द्रतत्त्व अपने तेजस्वी कर्मों के द्वारा नाना प्रकार की छन्दादि रश्मियों एवं सूत्रात्मा व धनंजय वायु रश्मियों के साथ संगत होकर विभिन्न पदार्थों को भली प्रकार सिंचित करता है। वह सम्पीडित पदार्थ को अपने बल के द्वारा सब ओर से पुष्ट करता हुआ सुन्दर वज्र एवं मरुद् रश्मियों के साथ सम्पूर्ण पदार्थ में सक्रिय होता है।

इस उपर्युक्त याज्या छन्द रश्मि के अतिरिक्त अन्य ऋत्विग्रूप रश्मियों की प्रस्थित याज्याओं की

याज्यारूप छन्द रश्मियां अन्य देवताओं वाली होती हैं, जिनका वर्णन आगे किया जायेगा। तब ये विद्वान् प्रश्न यह उठाते हैं कि सभी ऋत्विजों की प्रस्थित याज्याओं की याज्या संज्ञक छन्द रश्मियां इन्द्र वा ऋभवो-देवताक क्यों मानी जाती हैं? अर्थात् ये रश्मियां इन्द्रतत्त्व, धनंजय एवं सूत्रात्मा वायु रश्मियों को समृद्ध करने वाली क्यों होती हैं?।।

इसका उत्तर देते हुए महर्षि क्रमशः लिखते हैं कि मैत्रावरुण संज्ञक ऋत्विज् की याज्यारूप छन्द रश्मि पूर्वोक्त भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि प्राण से उत्पन्न इन्द्रावरुणौ-देवताक एवं निचृज्जगती छन्दस्क-

इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रता।
युवो रथो अध्वरं देववीतये प्रति स्वसरमुप याति पीतये।।१०।। (ऋ.६.६८.१०)

है। इसका देवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {स्वसरम् = अहर्नाम (निघं. १.९), गृहनाम (निघं.३.४)} अच्छी प्रकार तपे अर्थात् सक्रिय हुए वायु और विद्युत् अनेकों प्रकार की क्रियाओं को धारण करके रमणीय रश्मि रूप होकर विभिन्न देव परमाणुओं को व्याप्त और अवशोषित करने के लिए, साथ ही उनको नाना प्रकार के कमनीय बलों से युक्त करने के लिए सर्वत्र संयोगादि कर्मों का सतत विस्तार करते हैं। वे विभिन्न उत्पन्न हुए अति क्रियाशील परमाणु आदि पदार्थों को निरन्तर व्याप्त वा अवशोषित करते रहते हैं।

इस ऋचा के तृतीय पाद "युवो रथो अध्वरं देववीतये" में {ऋभवः = ऋभव उरु भान्तीति वा, ऋतेन भान्तीति वा, ऋतेन भवन्तीति वा, आदित्यरश्मयोऽप्यृभव उच्यन्ते (नि.११.१५-१६)} 'देववीतये' पद विद्यमान है, जो वहुत्व किंवा व्यापकता का प्रतीक है और ऋभु अर्थात् सूत्रात्मा वायु रश्मियां भी बहुत व्यापक होती हैं। इस कारण यह याज्या छन्द रश्मि इन्द्र और ऋभु दोनों देवताओं का प्रभाव दर्शाती है। **हमारे मत में यहाँ 'वरुण' शव्द का अर्थ सूत्रात्मा वायु भी हो सकता है, क्योंकि यह वायु ही सभी परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों का वरण करके विविध चेष्टाएं कराता है। हमारे कथन की पुष्टि "सर्वान् वा एतद् वरुणो गृह्णाति यद्दीक्षिते मनुष्यान् पितृन्, देवान् (काठ.२६.२)" से भी होती है। इस कारण इस छन्द रश्मि का दैवत प्रभाव इन्द्र और ऋभु देवताओं का होता है।।**

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्रीय भाग के निर्माण के समय एवं सम्पूर्ण भाग के निर्माण के समय भी उत्पन्न एवं क्रियाशील जगती छन्द रश्मियां दुर्बल होती हैं। इस कारण उनको सबल करने के लिए त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इस समय विद्युत् चुम्बकीय बल एवं गुरुत्व वल को प्रवल बनाने के लिए सूत्रात्मा एवं धनंजय प्राण रश्मियां विशेष सक्रिय होती हैं। सूत्रात्मा वायु रश्मियों के अभाव में इस ब्रह्माण्ड में किसी भी प्रकार के आकर्षण और धारक बलों की कल्पना नहीं की जा सकती है। इस कारण इस काल में उत्पन्न सभी छन्द रश्मियां सूत्रात्मा वायु रश्मियों से अवश्यमेव सम्पृक्त रहती हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

३. इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पत इति ब्राह्मणाच्छंसी यजत्या वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुव इति बहूनि वाह तदृभूणां रूपम्।।
आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यद इति पोता यजति; रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिरिति बहूनि वाह तदृभूणां रूपम्।।
अमेव नः सुहवा आ हि गन्तनेति नेष्टा यजति; गन्तनेति वाह तदृभूणां रूपम्।।
इन्द्राविष्णू पिबतं मध्वो अस्येत्यच्छावाको यजत्या वामन्धांसि मदिराण्यग्मन्निति बहूनि वाह तदृभूणां रूपम्।।
इमं स्तोममर्हते जातवेदस इत्याग्नीध्रो यजति; रथमिव सं महेमा मनीषयेति बहूनि वा ह तदृभूणां रूपम्।।

एवमु हैता ऐन्द्रार्भव्यो भवन्ति।।
यन्नानादेवत्यास्तेनान्या देवताः प्रीणाति।।
यदु जगत्प्रासाहा जागतं वै तृतीयसवनं तृतीयसवनस्यैव समृद्ध्यै।।४।।

व्याख्यानम्– पूर्वोक्त ब्राह्मणाच्छंसी की प्रस्थित याज्या की याज्यारूप छन्द रश्मि पूर्वोक्त वामदेव ऋषिरूपी प्राण से उत्पन्न इन्द्राबृहस्पती-देवताक एवं त्रिष्टुप् छन्दस्क-

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम्।।१०।। (ऋ.४.५०.१०)

है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र एवं बृहस्पति अर्थात् सूत्रात्मा वायु दोनों ही विशेष तेजस्वी बलों में व्याप्त होकर आदित्य लोकों के निर्माण यज्ञ में विभिन्न सोम रश्मियों और परमाणु आदि पदार्थों को अवशोषित करते हैं। वे दोनों स्वयं समर्थ विभिन्न सेचक रश्मियों, विभिन्न प्राण व छन्दादि रश्मियों को नानाविध पदार्थों के साथ संगत करते हैं।

इस ऋचा के तृतीय पाद 'आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवः' में 'विशन्तु' पद बहुवचनान्त है। इससे सिद्ध होता है कि देवतावाची पदार्थ भी बहु प्रकार के विद्यमान होते हैं, इस कारण इसमें ऋभु देवता भी सम्मिलित है, जिसका अर्थ हम सूत्रात्मा एवं धनंजय वायु ग्रहण करते हैं। हमारे मत में यहाँ देवतावाची बृहस्पति पद भी सूत्रात्मा वायु के लिए प्रयुक्त है। इस कारण भी यह ऋचा इन्द्र और ऋभु देवता वाली सिद्ध होती है।।

पोता संज्ञक ऋत्विज् की याज्यारूप छन्द रश्मि पूर्वोक्त राहूगणो गोतम ऋषिरूपी प्राण रश्मि से उत्पन्न मरुतोदेवताक एवं जगती छन्दस्क-

आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः।।६।। (ऋ.१.८५.६)

है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {रघुस्यदः = ये मार्गान् स्यन्दन्ते ते (म.द.भा.)। रघुपत्वानः = ये रघून् पथः पतन्ति ते (म.द.भा.)} विभिन्न मरुद् रश्मियां विभिन्न मार्गों पर विभागशः गति करती हुई शीघ्रगामी परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को व्याप्त करती हैं। वे विभिन्न बलों के साथ व्यापक अन्तरिक्ष में व्याप्त होकर विभिन्न प्राण रश्मियों और संयोज्य परमाणुओं को विशेष सक्रियता प्रदान करती हैं।

इस ऋचा के द्वितीय पाद 'रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः' में 'रघुपत्वानः' पद बहुत्व किंवा व्यापकत्व का वाचक है। इस कारण पूर्वोक्तवत् यह छन्द रश्मि भी ऋभवो-देवताक प्रभाव भी दर्शाती है। मरुद् रश्मियों का इन्द्रतत्त्व से सम्बन्ध प्रसिद्ध ही है अर्थात् मरुद् रश्मियों के समृद्ध होने पर इन्द्र तत्त्व समृद्ध होता ही है। मरुद् रश्मियों एवं इन्द्रतत्त्व के प्रगाढ़ सम्बन्ध को दर्शाते हुए अनेक ऋषियों का कथन है-

"इन्द्रो मरुद्भिः (व्युदक्रामत्)।" (मै.२.२.६; श.३.४.२.१)
"इन्द्रो मरुद्भिर्ऋतुथा कृणोतु।" (मै.४.१२.२; काठ.१०.१२)
"इन्द्रो वै मरुतः क्रीडिनः।" (गो.उ.१.२३)
"इन्द्रो वै मरुतः सान्तपनाः।" (गो.उ.१.२३)
"मरुत्वान् वा इन्द्रः।" (जै.ब्रा.१.११६)

इस प्रकार इस ऋचा से इन्द्र और ऋभु दोनों देवताओं का प्रभाव समृद्ध होकर इन्द्रतत्त्व, सूत्रात्मा एवं धनंजय वायु समृद्ध होते हैं।।

पूर्वोक्त नेष्टा संज्ञक ऋत्विज् की याज्यारूप छन्द रश्मि पूर्वोक्त गृत्समद ऋषि प्राण, त्वष्टा एवं शुक्र

देवता वाली एवं जगती छन्दस्क-

अमेवं नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन।
अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः।।३।। (ऋ.२.३६.३)

है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से तीव्र भेदन सामर्थ्ययुक्त इन्द्रतत्त्वरूपी त्वष्टा और अच्छी प्रकार सक्रिय रश्मिसमूह अर्थात् सूत्रात्मा वायु रश्मियां विभिन्न प्राण रश्मियों के साथ संगत होकर नाना प्रकार के संयोज्य परमाणुओं की उत्पत्ति के साथ ही उन्हें सक्रिय करती हैं। वे विभिन्न छन्द रश्मियों से युक्त आकाश में नाना प्रकार के संयोजक बलों को निरन्तर व्याप्त और प्रकाशित करती हैं।

इस ऋचा के प्रथम पाद में 'गन्तन' शब्द बहुवचनान्त है, जो बहुत्व अथवा व्यापकत्व का सूचक है। इस कारण यह त्वष्टारूपी इन्द्र के साथ-२ ऋभु देवता का प्रभाव भी दर्शाती है अर्थात् इससे सूत्रात्मा एवं धनंजय वायु रश्मियां भी समृद्ध होती है। हमारे मत में इस ऋचा का देवता शुक्र, धनंजय वायु का वाचक है एवं इस ऋचा का अन्तिम पद 'सुमद्गणः' सूत्रात्मा वायु रश्मिसमूह का वाचक है। इस कारण भी यह ऋचा इन्द्र एवं ऋभु देवता वाली मानी जाती है।।

पूर्वोक्त अच्छावाक ऋत्विज् की याज्यारूप छन्द रश्मि पूर्वोक्त भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि प्राण से उत्पन्न इन्द्राविष्णू-देवताक एवं निचृत् त्रिष्टुप् छन्दस्क-

इन्द्राविष्णू पिबतं मध्वो अस्य सोमस्य दस्रा जठरं पृणेथाम्।
आ वामन्धांसि मदिराण्यग्मन्नुप ब्रह्माणि शृणुतं हवं मे।।७।। (ऋ.६.६९.७)

है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र एवं व्यापक सूत्रात्मा वायु रश्मियां विभिन्न प्राण रश्मियों से युक्त होकर असुरादि रश्मियों का नाश करके विभिन्न सोम रश्मियों से विशेष सक्रिय संयोज्य परमाणुओं को उत्पन्न करती हैं। वे इन पदार्थों से अन्तरिक्ष को सब ओर से परिपूर्ण करती हुई सुसंगत प्राणापान रश्मियों को निकटता से धारण करती हैं।

इस ऋचा के तृतीय पाद 'आ वामन्धासि मदिराण्यग्मन्' में 'मदिराणि' 'अन्धांसि', 'अग्मन्' पद बहुत्व अर्थात् व्यापकत्व के सूचक हैं। इस कारण यह छन्द रश्मि इन्द्र के साथ-२ ऋभुदेवताक भी है। हमारी दृष्टि में यहाँ देवतावाची विष्णु पद भी सूत्रात्मा वायुरूपी ऋभु का वाचक होने से भी इस ऋचा के दैवत प्रभाव से इन्द्रतत्त्व एवं सूत्रात्मा वायु दोनों ही तत्त्व सक्रिय और समृद्ध होते हैं।।

आग्नीध्र संज्ञक ऋत्विज् की याज्यारूप छन्द रश्मि पूर्वोक्त आङ्गिरसः कुत्स ऋषि प्राण रश्मियों से उत्पन्न अग्निदेवताक एवं निचृद् जगती छन्दस्क-

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव।।१।। (ऋ.१.९४.१)

है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को मनस्तत्त्व से प्रेरित सूत्रात्मा वायु आदि प्राण रश्मियों के द्वारा समर्थ होकर अग्नि तत्त्व रमणीय वाहक रूप प्राप्त कराके नाना प्रकार के पदार्थों का प्रकाशन और वहन करता है। इसके द्वारा समर्थ और प्रकाशित परमाणु आदि पदार्थ बाधक असुरादि रश्मियों के द्वारा नष्ट नहीं हो पाते हैं, बल्कि अच्छी प्रकार से संलयित और प्रकाशित होते हैं।

इस ऋचा के द्वितीय पाद 'रथमिव सं महेमा मनीषया' में 'संमहेम' पद बहुत्व अर्थात् व्यापकत्व का वाचक होने से इस ऋचा का आर्भव रूप भी सिद्ध होता है। हमारे मत में यहाँ 'मनीषा' नामक पदार्थ मन के द्वारा प्रेरित सूत्रात्मा वायु ही है। इस कारण भी इसका देवता ऋभु भी माना जा सकता

है। यहाँ देवता अग्नि का इन्द्रतत्त्व से भी निकट सम्बन्ध है। इसका संकेत महर्षि तित्तिर के कथन "यदिन्द्राय राथन्तराय निर्वपति, यदेवाग्नेस्तेजस्तदेवावरुन्धे" (तै.सं.२.३.७.२) से भी मिलता है। महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है-

"अथ यत्रैतत् प्रदीप्तो भवति। उच्चैर्धूमः परमया जूत्या बल्बलीति तर्हि हैष (अग्निः) भवतीन्द्रः (श. २.३.२.११)। ऋषि दयानन्द सरस्वती ने भी अपने वेदभाष्य में अनेकत्र इन्द्र का अर्थ विद्युदग्नि किया है। इस प्रकार यह छन्द रश्मि आर्भव एवं ऐन्द्री दोनों ही रूपों में सिद्ध होती है।।

इस प्रकार से उपर्युक्त सभी सातों याज्या छन्द रश्मियां इन्द्र एवं ऋभु दोनों देवताओं वाली सिद्ध होती हैं और तदनुसार ही अपना प्रभाव दर्शाती हैं। इसके अतिरिक्त अन्य मरुत्, अग्नि आदि देवता भी तृप्त होने से उन पदार्थों को भी समृद्ध करती हैं। इन सातों छन्द रश्मियों में से पांच छन्द रश्मियां जगती एवं दो त्रिष्टुप् हैं। इस कारण जगती छन्द रश्मियों की प्रधानता है, जो तृतीय सवन से सम्बन्धित है। यहाँ आचार्य सायण ने 'प्रासाह' शब्द बाहुल्यवाची माना है अर्थात् इनमें जगती छन्द रश्मियों का ही बाहुल्य है, जिसके कारण तृतीय सवन अर्थात् आदित्य लोक, विशेषकर उनके केन्द्रीय भाग समर्थ होते हैं।।+।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न तारों के केन्द्रीय भागों के निर्माण के समय ५ जगती और २ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां व्याख्यान भाग के वर्णनानुसार उत्पन्न होकर गुरुत्व बल एवं विद्युत् चुम्बकीय बल को और भी तीक्ष्ण बनाने में सहयोग करती हैं। इसमें भी सूत्रात्मा वायु रश्मियां विशेष भूमिका निभाती हैं। तारों के अन्दर विभिन्न मरुद् रश्मियां मण्डूक के समान उछलती हुई गति करती हैं तथा उनका वेग भी विशेषरूप से बढ़ा हुआ होता है। प्रत्येक विद्युदावेशित कण के चारों ओर ये चक्रीय गति करती हैं। इस समय नाना प्रकार के प्राणों के संयोग से पदार्थ का संलयन तेजी से बढ़ने लगता है। डार्क एनर्जी का प्रभाव समाप्त हो चुका होता है। तारों के सम्पूर्ण भाग में तीव्र ज्वालाएं उठने लगती हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग देखें।।

ॐ इति २८.४ समाप्तः ॐ

꧁ अथ २८.५ प्रारभ्यते ꧂

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. अथाऽऽह यदुक्थिन्योऽन्या होत्रा, अनुक्था अन्याः, कथमस्यैता उक्थिन्यः सर्वाः समाः समृद्धा भवन्तीति।।
यदेवैनाः संप्रगीर्य होत्रा इत्याचक्षते, तेन समाः।।
यदुक्थिन्योऽन्या होत्रा अनुक्था अन्यास्तेनो विषमाः।।
एवमु हास्यैता उक्थिन्यः सर्वाः समाः समृद्धा भवन्ति।।
अथाऽऽह शंसन्ति प्रातःसवने, शंसन्ति माध्यन्दिने होत्रकाः, कथमेषां तृतीयसवने शस्तं भवतीति।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि पूर्वोक्त होता मैत्रावरुण आदि होत्रक अर्थात् ऋत्विजों में से कुछ ऋत्विज् उक्थ युक्त होते हैं और कुछ उक्थ युक्त नहीं होते? यहाँ 'उक्थ' शब्द का अर्थ आचार्य सायण ने शस्त्र किया है तथा हमें यह मत उचित प्रतीत होता है। इसकी पुष्टि महर्षि आश्वलायन के वचन "प्रशास्ता ब्राह्मणाच्छंस्यच्छावाक इति शस्त्रिणो होत्रकाः" (आश्व. श्रौ.५.१०.१०) से होती है। इस वचन से यह भी संकेत मिलता है कि यहाँ 'प्रशास्ता' शब्द मैत्रावरुण का वाचक है। मैत्रावरुण को प्रशास्ता कहने में अन्य ऋषियों की भी सहमति है, जिनका कथन है-

"मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युनज्मि"। (तै.सं.१.८.१५.१; काठ.१५.८) यहाँ मित्रावरुण का विशेषण प्रशास्ता किया गया है और मित्रावरुण एवं मैत्रावरुण की समानता बतलाते हुए महर्षि जैमिनी का कथन है-

"मित्रावरुणावेव मैत्रावरुणावास्ताम्"। (जै.ब्रा.३.३७४)

इस प्रकार मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी एवं अच्छावाक ये शस्त्ररूप होते हैं अर्थात् ये छन्द रश्मियां शस्त्ररूप अर्थात् तीक्ष्ण होती हैं, जबकि अन्य ऋत्विज् होता, नेष्टा, पोता एवं आग्नीध्र ये शस्त्ररहित (अनुक्थ) होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये रश्मियां तीक्ष्ण नहीं होती। तब यहाँ प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इन सबमें यह विषमता होने के उपरान्त भी सर्ग प्रक्रिया में इनका परस्पर सामंजस्य कैसे होता है और कैसे सब समृद्ध होकर समन्वित व्यवहार करते हुए सर्ग प्रक्रिया में अपनी भूमिका निभाते हैं?।।

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि ये सातों ऋत्विज् सम्यग् रूप से प्रकृष्टता के साथ उत्पन्न एवं प्रकाशित होते हैं। इसके साथ ही ये रश्मियां निरन्तर हवनीय होकर नाना प्रकार की सृजन क्रियाओं को सम्पादित करती हैं। इस कारण ये सभी होत्रा कहलाती हैं। इस कारण ये सभी प्रकार के ऋत्विग्रूप रश्मिसमूह इन समान गुणों के कारण परस्पर समन्वित होकर सर्ग प्रक्रिया में अपनी-२ भूमिका निभाते हैं।।

इनकी पारस्परिक समानता दर्शाने के पश्चात् असमानता दर्शाते हुए कहते हैं कि प्रथम कण्डिका के अनुसार तीन ऋत्विग्रूप रश्मिसमूह उक्थ्य अर्थात् शस्त्ररूप और शेष चार ऋत्विग्रूप अनुक्थ्य अर्थात् शस्त्ररूप नहीं होते हैं। यह इनकी पारस्परिक असमानता है, जिसके कारण इनके पारस्परिक गुण और क्रियाभेद इस सृष्टि में देखे जाते हैं।।

इस प्रकार उक्थ्य अर्थात् शस्त्र से युक्त किंवा उपर्युक्त तीन तीक्ष्ण रश्मिसमूह अन्य चार अनुक्थ्य

= शस्त्ररूपविहीन रश्मिसमूह को भी तीक्ष्ण बनाते हुए सबको समान और समन्वित करते हैं, जिसके कारण उन सभी की सृजन प्रक्रियाएं समृद्ध और समन्वित होती हैं।।

यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि कुछ ऋत्विग्रूपी होत्रा छन्द रश्मिसमूह प्रातःसवन एवं माध्यंदिन सवन में ही तीक्ष्णता प्रदान करते हैं किंवा इस समय ही वे उत्पन्न और प्रकाशित होते हैं। इसका आशय यह है कि ये छन्द रश्मियां गायत्री एवं त्रिष्टुप् प्रधान अवस्था के साथ ही पृथिवी आदि लोक एवं अन्तरिक्ष में ही उत्पन्न होती एवं तीक्ष्ण रूप प्राप्त करती हैं। ऐसी स्थिति में तृतीय सवन अर्थात् जगती छन्द रश्मि प्रधान आदित्य लोकों विशेषकर उनके केन्द्रीय भागों में इन तीन ऋत्विग्रूप रश्मिसमूहों की तीक्ष्णता कैसे सिद्ध वा उत्पन्न होती है? इस प्रश्न का उत्तर अगली कण्डिका में दिया गया है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में कुछ छन्द रश्मियां उत्पन्न होते ही तीक्ष्ण तेज बल से युक्त होती हैं तथा कुछ उत्पन्न होते समय दुर्बल होती हैं। ऐसा होने पर भी उनका परस्पर समन्वय बना रहता है। इसका कारण यह है कि सबल एवं सतेज छन्द रश्मियां दुर्बल व निस्तेज अथवा हीनतेज छन्द रश्मियों के साथ क्रियारत रहते हुए उन्हें भी तेज व बल से विशेष युक्त करती रहती हैं। इसी प्रकार कुछ छन्द रश्मियां कॉस्मिक पदार्थ के अप्रकाशित अवस्था में रहते हुए अन्तरिक्ष में उत्पन्न होती हैं, तो अन्य रश्मियां तारों के केन्द्रीय भागों के निर्माण के समय उत्पन्न होती हैं, तब भी प्रारम्भ में उत्पन्न होने वाली छन्द रश्मियां तारों के केन्द्रीय भागों में भी विद्यमान व क्रियाशील रहती हैं। विशेष परिज्ञानार्थ व्याख्यान भाग द्रष्टव्य है।।

२. यदेव माध्यन्दिने द्वे द्वे सूक्ते शंसन्तीति ब्रूयात् तेनेति।।
अथाऽऽह यद्द्व्युक्थो होता, कथं होत्रका द्व्युक्था भवन्तीति।।
यदेव द्विदेवत्याभिर्यजन्तीति ब्रूयात् तेनेति।।५।।

व्याख्यानम्- इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि माध्यंदिन सवन में मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी एवं अच्छावाक नामक ऋत्विग्रूप रश्मिसमूह दो-२ सूक्तरूप रश्मिसमूहों को प्रकाशित करते हैं अथवा उनकी उत्पत्ति में भूमिका निभाते एवं उन्हें तीक्ष्ण करते हैं। इनमें से एक-२ सूक्त से क्रमशः माध्यन्दिन तथा तृतीय सवन को प्रकाशित वा तीक्ष्ण करते हैं। इस कारण माध्यन्दिन के साथ-२ तृतीयसवन भी प्रकाशित वा तीव्र हो उठता है। अब इन सूक्तों को वर्णित करते हुए आचार्य सायण ने अपने भाष्य में लिखा है-

"मैत्रावरुणस्य 'सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः' इत्येकं सूक्तम्। 'एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्'- इति द्वितीयम्। ब्राह्मणाच्छंसिनः 'इन्द्रः पूर्भिद्'- इत्येकं सूक्तम्, 'उदु ब्रह्माणीति' द्वितीयम्। अच्छावाकस्य 'भूयः इत्' इत्येकम्, 'इमामूष्विति' द्वितीयम्। एवमेते त्रयो माध्यंदिने सवने प्रत्येकं द्वे द्वे सूक्ते शंसन्ति। तत्रैकं माध्यंदिनसवनार्थम्। द्वितीयं तु तृतीयसवनार्थमित्युपचारेण तत्रापि शंसनं सिध्यतीत्युत्तरं ब्रूयात्।"

आचार्य सायण ने इन सूक्तों का ग्रहण महर्षि आश्वलायन के निम्न कथन से किया प्रतीत होता है-

"होत्रकाणां कया नश्चित्र आ भुवत्कया त्वं न ऊत्या कस्तमिन्द्र त्वा वसुं सद्यो ह जात एवा त्वामिन्द्रः। शं नु षु णः सुमना उ पाक इति याज्या। तं वो दस्ममृतीषहं तत्त्वा यामि सुवीर्यमिति प्रगाथौ स्तोत्रियानुरूपा उदुत्ये मधुमत्तमा इन्द्र पूर्भिदुदु ब्रह्माणि। ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाळिति याज्या। तरोभिर्वो विदद्वसुं तरणिरित्सिषासतीति प्रगाथौ स्तोत्रियानुरूपा उदिन्वस्य रिच्यते भूय इदिमामूष्वित्युपोत्तमामुद्धरेत्सर्वत्र। पिबा वर्धस्व तव घा सुतास इति याज्या।" (आश्व.श्रौ.५.१६.१)

अब इन सूक्तों पर क्रमशः विचार करते हैं-

(अ) मैत्रावरुण का प्रथम सूक्त पूर्वोक्त विश्वामित्र ऋषि प्राण से उत्पन्न इन्द्र-देवताक ऋ.३.४८ सूक्त की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः प्रभर्तुमावदन्धसः सुतस्य।
साधोः पिब प्रतिकामं यथा ते रसाशिरः प्रथमं सोम्यस्य।।१।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्रतत्त्व विभिन्न कमनीय परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों का उत्तम मार्गों में धारण और अवशोषण करता है, जिसके कारण विभिन्न संयोज्य परमाणु और संपीडित पदार्थों से निर्मित सबको ग्रहण करने वाला आदित्यलोक त्वरित गति से उत्पन्न और बलवान् होता हुआ विस्तृत होता है।।

(२) यज्जायथास्तदहरस्य कामेंऽशोः पीयूषमपिबो गिरिष्ठाम्।
तं ते माता परि योषा जनित्री महः पितुर्दम आसिञ्चदग्रे।।२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से उत्पन्न होते हुए आदित्य लोक अपने कमनीय बलों के द्वारा विशाल मेघरूप पदार्थों में से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को ग्रहण करते रहते हैं। वे आदित्य लोक विभिन्न पदार्थों के उत्पादक और पालक के रूप में कार्य करते हुए अपने साथ संगत अप्रकाशित विशाल पदार्थ समूह को सब ओर से अपने प्रकाश आदि गुणों से सींचते हैं, जिससे सम्पूर्ण पदार्थ प्रकाशित होने लगता है।

(३) उपस्थाय मातरमन्नमैट्ट तिग्ममपश्यदभि सोममूधः।
प्रयावयन्नचरद् गृत्सो अन्यान्महानि चक्रे पुरुधप्रतीकः।।३।।

इसका छन्द त्रिष्टुप्। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से अन्तरिक्षस्थ अनेक पदार्थों का ग्राहक तथा व्यापकरूपेण परमाणु आदि पदार्थों का धारक आदित्य लोक मातृरूप किरणों को प्राप्त कराकर विभिन्न संयोज्य पदार्थों को प्रकाशित व नियन्त्रित करता है। वह विभिन्न पदार्थों का संयोग-विभाग करता हुआ बड़े-२ लोकों को अपने बलों के द्वारा चलाता है।

(४) उग्रस्तुराषाळभिभूत्योजा यथावशं तन्वं चक्र एषः।
त्वष्टारमिन्द्रो जनुषाभिभूयामुष्या सोममपिबच्चमूषु।।४।।

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से विभिन्न तीक्ष्ण आसुर मेघरूप पदार्थ जब विभिन्न उत्पन्न परमाणु आदि पदार्थों को सर्ग प्रक्रिया से हटा कर छुपाते हैं वा अपहृत करते हैं, उस समय तीक्ष्ण इन्द्रतत्त्व उस आसुर पदार्थ को अपने उग्र बलों के द्वारा नियन्त्रित करता है और उसे दूर-२ फैला देता है।

(५) शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्।।५।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {शुनम् = यद् वै समृद्धं तच्छुनम् (श.७.२.२.६)। वृत्रम् = धननाम (निघं.२.१०), वृत्रो वै सोम आसीत् (श.३.४.३.१३)।} लोक निर्माण प्रक्रिया में होने वाले नाना प्रकार के संघर्षों में अनेकविध बलों व परमाणु आदि पदार्थों का विभाजन होता है। उस समय विभिन्न सृजन क्रियाओं की रक्षा, व्याप्ति व कान्ति के लिए सर्वाधिक सक्रिय, तीक्ष्ण बल सम्पन्न, आशुगामी एवं समृद्ध इन्द्रतत्त्व नाना प्रकार से सोम अर्थात् विभिन्न परमाणुओं एवं विभिन्न मरुद् रश्मियों को आकर्षित कर ग्रहण करता है।

इस सूक्तरूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति के साथ ही एक अन्य सूक्त ऋ.४.१९, जिसका देवता इन्द्र है, की उत्पत्ति पूर्वोक्त वामदेव ऋषि प्राण से निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्नत्र विश्वे देवासः सुहवास ऊमाः।
महामुभे रोदसी वृद्धमृष्वं निरेकमिद् वृणते वृत्रहत्ये।।१।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वज्र रश्मियों से युक्त इन्द्रतत्त्व प्रकाशित व अप्रकाशित दोनों ही लोकों वा परमाणुओं के मध्य असुर तत्त्व के संग्राम में असुर तत्त्व को नियन्त्रित वा नष्ट करने में सर्वाधिक अग्रणी एवं व्यापक भूमिका निभाता है।

(२) अवासृजन्त जिव्रयो न देवा भुवः सम्राळिन्द्र सत्ययोनिः।
अहन्नहिं परिशयानमर्णः प्र वर्तनीररदो विश्वधेनाः।।२।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {जिव्रिः = यो जीर्यति येन वा स जिव्रिः (उ.को.५.४६)} प्राणापानरूपी नित्य पदार्थों से उत्पन्न तेजस्वी इन्द्रतत्त्व अन्तरिक्ष में फैले हुए आसुर मेघ को छिन्न भिन्न करता है। वह निरन्तर गमन करते पदार्थों के मार्गों को बनाता हुआ विभिन्न वाग् रश्मियों से उत्पन्न जीर्ण होते पदार्थों को बल प्रदान करता है।

(३) अतृण्णुवन्तं वियतमबुध्यमबुध्यमानं सुषुपाणमिन्द्र।
सप्त प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण वि रिणा अपर्वन्।।३।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। छान्दस व दैवत प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {प्रवते = गतिकर्मा (निघं. २.१४), संवत्सरो वै प्रवतः शश्वतीरपः (तां.४.७.६)।} वह इन्द्रतत्त्व अपनी वज्र रश्मियों के द्वारा सब ओर फैले आसुर मेघ को छिन्न-भिन्न करके उसमें विद्यमान सभी सातों आसुरी गायत्र्यादि छन्द रश्मियों को दूर भगाता है। वह अतृप्त, असंगत, अनियन्त्रित, निष्क्रिय वा न्यून क्रियाशीलतायुक्त परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को अवशोषित व सक्रिय-सबल बनाता है।

(४) अक्षोदयच्छवसा क्षाम बुध्नं वार्ण वातस्तविषीभिरिन्द्रः।
दृळहान्यौभ्नादुशमान ओजोऽवाभिनत्ककुभः पर्वतानाम्।।४।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {वाः = उदकनाम (निघं.१.१२)} वह बलवान् इन्द्रतत्त्व अपने बल से पार्थिव, जलीय व अन्तरिक्ष लोक में विद्यमान बलवान् असुर पदार्थ को पीसता हुआ सब दिशाओं में विशाल आसुर मेघों को छिन्न-भिन्न करता है। इससे सम्पूर्ण देव पदार्थ कमनीय बलों से युक्त होकर तीव्रता से परस्पर संघनित होने लगता है।

(५) अभि प्र दद्रुर्जनयो न गर्भं रथाइव प्र ययुः साकमद्रयः।
अतर्पयो विसृत उब्ज ऊर्मीन्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून्।।५।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {जनयः = देवानां पत्नीर्जनयः (तै.सं.५.१.७.२-३), आपो वै जनयोऽद्भ्यो हीदं सर्वं जायते (श.६.८.२.३)।} वह इन्द्रतत्त्व व्याहृति प्राण रश्मियों के समान मेघरूप देव पदार्थों में अपने बल का बीजारोपण करता है तथा रमणीय रश्मिरूप वाहन के तुल्य गति करता व कराता है। {उब्जः = (उब्ज आर्जवे = दबाना, दमन करना - सं.धा.को. - पं. युधिष्ठिर मीमांसक)} वह अन्तरिक्ष में व्याप्त विभिन्न तरंगों को दबाता - सम्पीडित करता हुआ परमाणुओं को नानाविध उत्पन्न व तृप्त करता है।

(६) त्वं महीमवनिं विश्वधेनां तुर्वीतये वय्याय क्षरन्तीम्।
अरमयो नमसैजदर्णः सुतरणाँ अकृणोरिन्द्र सिन्धून्।।६।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व वज्र रश्मियों की त्वरित व व्यापक क्रियाओं के द्वारा सभी छन्द रश्मियों से सम्पन्न नाना परमाणु आदि पदार्थों से युक्त पृथिवी आदि लोकों को नानाविध रमण कराता है। वह आकाश में जलीय अवस्था वाले पदार्थ की विविध धाराओं को उत्पन्न व धारण करता है।

(७) प्राग्रुवो नभन्वोऽ३ न वक्वा ध्वस्रा अपिन्वद्युवतीर्ऋतज्ञाः।
धन्वान्यज्रौं अपृणक्तृषाणाँ अधोगिन्द्रः स्तर्यो३ दंसुपत्नीः।।७।।

इसका छन्द पंक्ति है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {अग्रुवः = नदीनाम (निघं. १.१३)। नभन्वः = नदीनाम (निघं.१.१३), अरीणां हिंसका वीराः (म.द.भा.)।} वह इन्द्रतत्त्व हिंसक, अग्निसम प्रकाशित, संयोजक व विभाजक, असुर पदार्थों की विध्वंसक वज्र रश्मियों से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को सींचता हुआ अन्तरिक्ष में निरन्तर गमन करने वाले संयोज्य परमाणुओं को तृप्त करता है अर्थात् संयुक्त करता है। वह इन्द्र विभिन्न व्यापिका व्याहृति रश्मियों को दुहता हुआ अर्थात् उनसे वल प्राप्त करता हुआ सर्वत्र समर्थ होकर विचरता है।

(८) पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ता वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून्।
परिष्ठिता अतृणद्बद्बधानाः सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या।।८।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। वह इन्द्रतत्त्व पूर्वोत्पन्न उत्कृष्ट वेग से गमन करने वाली तेजस्विनी धाराओं को अनेकविध उत्पन्न करता है। {शरत् = अन्नं वै शरद् (मै.१.६.६), स्वधा वै शरद् (श.१३.८.१.४)।} वह विभिन्न संयोज्य परमाणु आदि पदार्थों को संगत करता तथा वाहरी भागों में स्थित विक्षोभ करती हुई असुर रश्मियों की धाराओं को नष्ट करके अन्तरिक्षस्थ लोकों को गमनशील वनाता है।

(९) वम्रीभिः पुत्रमग्रुवो अदानं निवेशनाद्धरिव आ जभर्थ।
व्य१न्धो अख्यदहिमाददानो निर्भूदुखच्छित्समरन्त पर्व।।९।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न निर्माणाधीन लोकों से उगलती हुई सी धाराएं {पुत्रः = पुत्रो वै वीरः (श.३.३.१.१२)} अपनी हरणशील रश्मियों के द्वारा अति तीक्ष्ण परमाणु आदि पदार्थों का सव ओर से हरण करती हैं। इन्द्रतत्त्व अप्रकाशित मेघरूप पदार्थ को व्याप्त और प्रकाशित करता है। वह उसको और उसकी गतियों को छिन्न-भिन्न करते हुए समुचित रूप प्रदान करता है।

(१०) प्र ते पूर्वाणि करणानि विप्राविद्वाँ आह विदुषे करांसि।
यथायथा वृष्ण्यानि स्वगूर्तापांसि राजन्नर्याविवेषीः।।१०।।

इसका छन्द पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {करस् = कर्मनाम (निघं.२.१)} प्रकाशित और कमनीय इन्द्रतत्त्व विविध प्रकृष्ट गति करता हुआ पूर्वोत्पन्न प्राण एवं मरुद् रश्मियों के द्वारा नाना प्रकार के वलकारी कर्मों को समुचित रूप से करता हुआ अपनी तीव्र सक्रिय मरुद् रश्मियों और विविध प्राण रश्मियों को अच्छी प्रकार प्रकट और व्याप्त करता है।

(११) नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः।।११।।

इसका छन्द निचृत्पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सद्यः

प्रकाशित इन्द्रतत्त्व सबको प्रकाशित करता हुआ तेजी से समृद्ध और विस्तृत होता है। इसके कारण विभिन्न रमणीय परमाणु आदि पदार्थ नाना प्रकार के कर्मों को प्रकाशित करते हैं।
(ब) ब्राह्मणाच्छंसी का प्रथम सूक्त पूर्वोक्त विश्वामित्र ऋषि से उत्पन्न एवं इन्द्र-देवताक ऋ.३.३४ सूक्त निम्न क्रमानुसार है-

(१) इन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून्।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद्रोदसी उभे॥१॥

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका देवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्रतत्त्व प्राणापान रश्मियों से व्याप्त होकर अपने बल के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों का संगम करता तथा विशाल आसुर पदार्थ को भेदता हुआ अपनी तेजस्विनी रश्मियों के द्वारा सभी बाधक पदार्थों को तिरस्कृत करके पार्थिव और द्युलोकों को परिपूर्ण करता है।

(२) मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन्।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा॥२॥

इसका छन्द, छान्दस एवं देवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {मखः = यज्ञनाम (निघं.३.१७)} इन्द्रतत्त्व विभिन्न संयोजक बलों से युक्त परमाणु आदि पदार्थों को वाग् रश्मियों से भूषित करता हुआ आशुगामी बनाकर आदित्य लोकों में व्याप्त करता है। वह विभिन्न शुद्ध प्रकाश से युक्त नाना प्रकार के पदार्थों को सभी लोकों में पूर्णरूप से व्याप्त करता है।

(३) इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः।
अहन्व्यंसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम्॥३॥

इसका छन्द भुरिक्पंक्ति है। इसका देवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व आसुर मेघों को विदीर्ण करके विभिन्न बल रश्मियों के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को नाना प्रकार के वर्णों से युक्त करता है। वह आसुरी विद्युत् को नष्ट करके नाना प्रकार की किरणों को विभिन्न वाग् रश्मियों से आच्छादित करके रमणीय सृजनशील रूप प्रदान करता है।

(४) इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय॥४॥

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका देवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व विद्युत् बलों का विभाग करते हुए अपने बल रश्मिसमूहों एवं सब ओर से नाना संगमन कर्मों के द्वारा द्युलोकों को प्रकट करता है। वह असुर पदार्थ को व्यापक संग्राम में जीतकर द्युलोकों को सब ओर से प्रकाशित और व्याप्त करता है।

(५) इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद्दधानो नर्या पुरूणि।
अचेतयद्धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम्॥५॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को अपनी मरुद् रश्मियों के द्वारा व्यापक स्तर पर धारण करता हुआ भेदक वज्र रश्मियों से युक्त होता है। वह देव परमाणुओं को सक्रिय और आशुगामी बनाकर नाना प्रकार से तारता है।

(६) महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि।

और बिगड़ने लगते हैं।

(६) एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः।
स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।६।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न वज्ररूप प्राण रश्मियां बलवान् और वज्र रश्मियों से युक्त इन्द्रतत्त्व को सब ओर से प्रकाशित करके नाना पदार्थों की रक्षा करती हैं। वह इन्द्रतत्त्व सहज क्रियाओं के द्वारा प्राण और छन्द रश्मियों से युक्त होकर विभिन्न पदार्थों की रक्षा करने में समर्थ होता है।
(स) अच्छावाक का प्रथम सूक्त, जो इन्द्र-देवताक है, पूर्वोक्त भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि प्राण से ऋ.६.३० सूक्त निम्न क्रमानुसार उत्पन्न होता है-

(१) भूय इद्वावृधे वीर्यायँ एको अजुर्यो दयते वसूनि।
प्र रिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे।।१।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व प्रकाशमान अन्तरिक्ष में विद्यमान पार्थिव और आग्नेय लोकों को समृद्ध करने में समर्थ होता है। वह विभिन्न तेजस्विनी प्राणादि रश्मियों के द्वारा व्यापकरूप से बढ़ता और उत्कृष्ट होता हुआ अन्तरिक्ष में बिखरे विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को इन दोनों ही प्रकार के लोकों को प्राप्त कराता है।

(२) अधा मन्ये बृहदसुर्यमस्य यानि दाधार नकिरा मिनाति।
दिवेदिवे सूर्यो दर्शतो भूद्वि सद्मान्युर्विया सुक्रतुर्धात्।।२।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह दर्शनीय सुकर्मा आदित्य लोक मनरूपी असुर तत्त्व से उत्पन्न नाना प्रकार की छन्दादि रश्मियों एवं पार्थिव वा आग्नेय परमाणुओं को निरन्तर अपने अन्दर धारण किये रहता है। अति विक्षोभ होने पर भी वह उनको अपने से दूर नहीं करता।

(३) अद्या चिन्नू चित्तदपो नदीनां यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र।
नि पर्वता अद्मसदो न सेदुस्त्वया दृळहानि सुक्रतो रजांसि।।३।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {गातुः = पृथिवीनाम (निघं.१.१), गातुं गमनम् (नि.४.२१)} वह सुकर्मा इन्द्रतत्त्व विभिन्न पार्थिव परमाणुओं तथा विभिन्न लोकों के अन्दर तन्मात्राओं की विशाल धाराओं को आकर्षित करता है। वह विभिन्न लोकों व परमाणुओं को धारण करके संयोज्य लोकों में विद्यमान मेघरूप पदार्थों को धारण करता हुआ उनमें निरन्तर स्थित होता है।

(४) सत्यमित्तन्न त्वावाँ अन्यो अस्तीन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान्।
अहन्नहिं परिशयानमर्णोऽवासृजो अपो अच्छा समुद्रम्।।४।।

इसका छन्द पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व ही आकाश में फैले मेघरूप पदार्थों को संगत करता और उनमें अनेक तन्मात्राओं की धाराओं को उत्पन्न करता तथा आसुर मेघों को नष्ट करता है। इस प्रकार इन्द्रतत्त्व बलवानों में श्रेष्ठ होता है।

(५) त्वमपो वि दुरो विषूचीरिन्द्र दृळहमरुजः पर्वतस्य।

राजा॑भवो॒ जग॑तश्चर्षणी॒नां सा॒कं सूर्यं॑ ज॒नय॑न्द्या॒मु॒षास॑म्।।५।।

इसका छन्द ब्राह्मी उष्णिक् है। इसका छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व कठिन मेघरूप पदार्थों को तोड़ता हुआ उनमें व्याप्त विभिन्न तन्मात्राओं और उनके मार्गों को प्रकाशित करते हुए नाना प्रकाश रश्मियों को उत्पन्न करता है। वह विभिन्न द्युलोकों एवं उनके अन्दर प्रकाश रश्मियों को उत्पन्न करता और नाना बाधक पदार्थों को नष्ट करता है।

इस उपर्युक्त सूक्त के साथ ही एक अन्य इन्द्र-देवताक ऋ.३.३६ सूक्तरूप रश्मिसमूह की १-९ एवं ११ छन्द रश्मियां पूर्वोक्त विश्वामित्र ऋषि प्राण से तथा १० वीं छन्द रश्मि घोर आङ्गिरस ऋषि प्राण से उत्पन्न होती हैं, जिनका क्रम निम्नानुसार है-

(१) इ॒माम् षु प्रभृ॑तिं सा॒तये॑ धाः॒ शश्व॑च्छश्वदू॒तिभि॒र्याद॑मानः।
सु॒तेसु॑ते वावृधे॒ वर्ध॑नेभि॒र्यः कर्म॑भिर्म॒हद्भिः॒ सुश्रु॑तो भू॒त्।।१।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {शश्वच्छश्वत् = व्यापकं व्यापकं वस्तु (म.द.भा)} वह इन्द्रतत्त्व अपनी गति, रक्षण, और आकर्षण आदि क्रियाओं के द्वारा पदार्थ का नानाविध विभाग करने के लिए अपनी धारण-पोषण शक्तियों एवं व्यापक प्राण वा वाग् आदि रश्मियों को उत्तम प्रकार से निरन्तर धारण करता है। वह व्यापक और समृद्ध प्राणादि रश्मियों के द्वारा विभिन्न उत्पन्न हुए पदार्थों वा संपीडित होते हुए विशाल पदार्थ समूह को समृद्ध और गतिशील करता है।

(२) इन्द्रा॑य॒ सोमाः॑ प्र॒दिवो॒ विदा॑ना ऋ॒भुर्येभि॒र्वृष॑पर्वा॒ विहा॑याः।
प्र॒य॒म्यमा॑नान्प्रति॒ षू गृ॑भा॒येन्द्र॒ पिब॒ वृष॑धूतस्य॒ वृष्णः॑।।२।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इस ऋचा पर व्याख्यान ६.११.२ में पढ़ें।

(३) पिबा॒ वर्ध॑स्व॒ तव॑ घा सु॒तास॒ इन्द्र॒ सोमा॑सः प्र॒थमा उ॒तेमे।
यथापि॑बः पू॒र्व्याँ इ॑न्द्र॒ सोमाँ॑ ए॒वा पा॑हि॒ पन्यो॑ अ॒द्या नवी॑यान्।।३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह प्रकाशित एवं नवीन रूप से निरन्तर उत्पन्न होने वाला इन्द्रतत्त्व पूर्वोत्पन्न सोम रश्मियों का अवशोषण करता है। इसके द्वारा वह विभिन्न परमाणुओं रूपी सोम तत्त्व की रक्षा करता है। वह विस्तृत फैले हुए सोम अर्थात् परमाणुओं को अवशोषित, सम्पीडित और समृद्ध करता है।

(४) म॒हाँ अम॑त्रो वृ॒जने॑ विर॒प्श्यु१ग्रं शवः॑ पत्यते धृ॒ष्ण्वोजः॑।
नाह॑ विव्याच पृथि॒वी च॒नैनं॒ यत्सोमा॑सो॒ हर्य॑श्व॒मम॑न्दन्।।४।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {अमत्रम् = अमति प्राप्नोति यत्र तत् अमत्रम् पात्रं वा (उ.को.३.१०५), अमत्रोऽमात्रो महान्भवति अभ्यमितो वा (नि.६.२३), (अम गतिशब्दसंभक्तिषु - सं.धा.को. - पं. युधिष्ठिर मीमांसक)। विरप्शि = महन्नाम (निघं.३.३)} सबका आधार एवं सबके सम्मुख अभिव्याप्त व्यापक और महान् इन्द्रतत्त्व तीव्र सम्पीडक और नियंत्रक बलों के द्वारा नाना पदार्थों को नियंत्रित व रक्षित करता है। वह किसी भी बल से नष्ट न होते हुए अन्तरिक्ष में व्याप्त विभिन्न प्रकार की तेजस्विनी एवं आशुगामिनी सोम रश्मियों को तृप्त व सक्रिय करता है।

(५) महाँ उग्रो वावृधे वीर्याय समाचक्रे वृषभः काव्येन।
इन्द्रो भगो वाजदा अस्य गावः प्र जायन्ते दक्षिणा अस्य पूर्वीः।।५।।

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वर्षक और संयोजक बलों से युक्त संयोज्य परमाणु आदि पदार्थों को उत्पन्न करने वाला तेजस्वी और महान् इन्द्रतत्त्व सूत्रात्मा वायु रश्मियों से उत्पन्न विभिन्न बलों के द्वारा नाना परमाणु आदि पदार्थों को समृद्ध और संयुक्त करता है। उस इन्द्रतत्त्व की रश्मियां विभिन्न बलों को पूर्ण और प्रकृष्ट रूप से उत्पन्न करती हैं।

(६) प्र यत्सिन्धवः प्रसवं यथायन्नापः समुद्रं रथ्येव जग्मुः।
अतश्चिदिन्द्रः सदसो वरीयान्यदीं सोमः पृणति दुग्धो अंशुः।।६।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {समुद्रः = मनो वै समुद्रः (श.७.५.२.५२), वाग्वै समुद्रः (तां.७.७.६), वाग्वै समुद्रो मनः समुद्रस्य चक्षुः (तां.६.४.७)। सिन्धु = तद् यदेतैरिदं सर्वं सितं तस्मात् सिन्धवः (जै.उ.१.६.२.६)} विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को परस्पर बांधने वाले प्राण तत्त्व अच्छी प्रकार उत्पन्न एवं मनस्तत्त्व के द्वारा प्रकाशित वाक् तत्त्व में व्याप्त होकर गमन करते हैं। वे रमणीय वाहक गुणों को प्राप्त होकर इन्द्रतत्त्व को श्रेष्ठ बनाने के लिए सोम रश्मियों को अपने साथ संगत करते हैं।

(७) समुद्रेण सिन्धवो यादमाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तः।
अंशुं दुहन्ति हस्तिनो भरित्रैर्मध्वः पुनन्ति धारया पवित्रैः।।७।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वाक् एवं प्राण रश्मियों के मेल से कमनीय बलों से युक्त एवं सुप्रेरक सोम रश्मियों को धारण करता हुआ इन्द्रतत्त्व सबको धारण और पुष्ट करता है। वह आकर्षक और धारक बलों से युक्त प्राण रश्मियों की धाराओं के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को पवित्र और पूर्ण करता है।

(८) ह्रदाइव कुक्षयः सोमधानाः समी विव्याच सवना पुरूणि।
अन्ना यदिन्द्रः प्रथमा व्याश वृत्रं जघन्वाँ अवृणीत सोमम्।।८।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {कुक्षि = कुष्णाति निष्कृषतीति कुक्षिः (उ.को.३.१५५)} वह इन्द्रतत्त्व सोम रश्मियों को धारण और सम्पीडित करके उन्हें मथकर तेजस्वी बनाता है। वह व्यापक संयोगादि कर्मों से नाना प्रकार के संयोज्य परमाणुओं एवं अन्य सभी पदार्थों को अच्छी प्रकार से क्षुब्ध और नियंत्रित करके आसुर मेघों को छिन्न-भिन्न करता है।

(९) आ तू भर माकिरेतत्परि ष्ठाद्विद्मा हि त्वा वसुपतिं वसूनाम्।
इन्द्र यत्ते माहिनं दत्रमस्त्यस्मभ्यं तद्धर्यश्व प्र यन्धि।।९।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {दत्रम् = दानम् (म.द.भा.)} वह इन्द्रतत्त्व महान् दानादि कर्मों के द्वारा अपनी हरणशील एवं आशुगामी रश्मियों से आसुर तत्त्व को सब ओर से रोकता है। वह विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को गति व रक्षा प्रदान करता हुआ सब ओर से धारण करता है।

(१०) अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः।

अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन्।।१०।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सुन्दर हनन और गमन सामर्थ्य वाला इन्द्रतत्त्व सरलगामी प्राण रश्मियों से परिपूर्ण होकर सबको अनेक प्रकार से मरुदादि रश्मियां प्रदान करके संयोज्य अन्नरूप में धारण करता है।

(११) शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्।।११।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व विभिन्न संग्राम और संघातों में होने वाले विभिन्न परमाणुओं एवं उनके बलों को सक्रिय और व्यापक बनाकर उग्र आसुर मेघों को उत्तमता से निष्क्रिय वा नियंत्रित करता है।

इस प्रकार तीन ऋत्विजों के यह ६ सूक्तरूप रश्मिसमूह उत्पन्न होते हैं। इनमें से एक-२ सूक्त माध्यंदिन सवन को तीक्ष्ण और तेजस्वी बनाता है, तो दूसरा एक-२ सूक्तरूप रश्मिसमूह के द्वारा तृतीय सवन सतेज और समृद्ध होता है।।

इसका भाष्य करते हुए आचार्य सायण का कथन है-

" 'अथ' तृतीयसवने शंसनसंपादनानन्तरं पुनरपि ब्रह्मवादी चोद्यान्तरमाह। 'यद्' यस्मात्कारणाद्धोता 'द्व्युक्था' द्वे उक्थे शस्त्रे यस्यासौ 'द्व्युक्थः'। प्रातःसवने आज्यप्रउगे द्वे, माध्यंदिनसवने मरुत्वतीय - निष्केवल्ये द्वे, तृतीयसवने वैश्वदेवाग्निमारुते द्वे। एवं स्थिते होतृदृष्टान्तेन होत्रकाणामप्युक्थद्वयोपेतत्त्वमपेक्षितम्। न चोक्थद्वयं विहितमस्ति; अतस्तत् केन प्रकारेण सिध्यति? इति चोद्यम्।

यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि जब होता दो उक्थ वाला होता है, जो कि सायण भाष्य के अनुसार, प्रातःसवन में 'आज्य' एवं 'प्रउग', माध्यंदिन सवन में 'मरुत्वतीय' और 'निष्केवल्य' तथा तृतीय सवन में 'वैश्वदेव' एवं 'आग्निमारुत' ये दो-२ उक्थ अर्थात् शस्त्रों के युग्म होते हैं परन्तु मैत्रावरुण आदि होत्रकों अर्थात् ऋत्विजों के दो-२ उक्थ कैसे सिद्ध होते हैं? इन उक्थ वा शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मिसमूहों के विषय में निम्नानुसार अध्याय द्रष्टव्य हैं-

आज्य शस्त्र के विषय में १० वां अध्याय।
प्रउग शस्त्र के विषय में ११ वां अध्याय।
मरुत्वतीय और निष्केवल्य के विषय में १२ वां अध्याय।
वैश्वदेव एवं आग्निमारुत के विषय में १३ वां अध्याय द्रष्टव्य है।

इस कारण इन सभी उक्थों वा शस्त्रों के विषय में हम पिष्टपेषण करना आवश्यक नहीं समझते हैं। विज्ञ पाठक इन उपर्युक्त अध्यायों का गम्भीरता से अवलोकन करके उसकी यहाँ संगति स्वयं लगा सकते हैं।।

इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि मैत्रावरुण आदि होत्रकों वा ऋत्विजों की याज्या संज्ञक छन्द रश्मियां दो देवताओं वाली होती हैं, जैसा कि पूर्वखण्ड में वर्णित है। उनमें से एक ऋचा याज्यारूप एवं दूसरी शस्त्ररूप होती है। हमारे मत में इन्द्र-देवताक ऋचा तीक्ष्ण तेज और बल से युक्त होने के कारण शस्त्ररूप होती है और ऋभु देवताक दूसरी ऋचा याज्या अर्थात् संगमनीय बलों से विशेष युक्त होती है, क्योंकि इसमें सूत्रात्मा वायु रश्मियां विशेष समृद्ध होती हैं। इस प्रकार ये मैत्रावरुण आदि होत्रक भी दो उक्थ वाले सिद्ध हो जाते हैं। यहाँ यह संकेत अवश्य मिलता है कि याज्या संज्ञक छन्द रश्मियों में भी दो भेद हो सकते हैं, जिनमें से एक अधिक संगमनीय होती है और दूसरी क्रियाओं को तीक्ष्णता प्रदान करने वाली होती है। इसी कारण यहाँ याज्या को याज्या और शस्त्र दोनों रूपों में माना गया है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न लोकों के निर्माण की प्रक्रिया में ४६ विभिन्न छन्द रश्मियां उत्पन्न होती

हैं, जिनमें से १३ पंक्ति एवं १ ब्राह्मी उष्णिक् तथा अन्य सभी विविध प्रकार की त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां होती हैं। ये सभी छन्द रश्मियां लोकों के निर्माण की प्रारम्भिक प्रक्रिया से लेकर तारों के निर्माण की पूर्णता तक उत्पन्न होती रहती हैं। इनके प्रभाव से गुरुत्व बल एवं विद्युत् चुम्बकीय बल दोनों ही समृद्ध होते हैं। परमाणु आदि पदार्थों का बल और तेज तीक्ष्ण होने के साथ-२ उनके संगमन, संघनन और संपीडन की क्रियाएं भी समृद्ध होती हैं। तारों की उत्पत्ति प्रक्रिया तीव्र और विस्तृत होती है। जब तारों एवं ग्रहादि लोकों का निर्माण हो रहा होता है, तब इन छन्द रश्मियों के प्रभाव से विभिन्न कॉस्मिक मेघ अन्तरिक्ष में बिखरे हुए विरल परमाणु आदि पदार्थों को आकर्षित करते रहते हैं। इसी प्रकार तारे और ग्रह आदि लोक कॉस्मिक मेघ के विरल पदार्थों को भी अपने गुरुत्व और विद्युत् चुम्बकीय बलों के कारण आकृष्ट करते हैं। हमारे मत में **केवल गुरुत्व बल के प्रभाव से सूक्ष्म कणों के संघनन और संगमन की क्रिया कदापि सम्पादित नहीं हो सकती, विशेषकर प्रारम्भ में विद्युत् चुम्बकीय बलों का ही विशेष योगदान रहता है। जब विशाल पिण्ड उत्पन्न हो जाते हैं, तब उनमें गुरुत्वाकर्षण बल का प्रभाव बढ़ने लगता है,** जिससे वे बाहरी पदार्थ को अपनी ओर आकृष्ट करने लगते हैं। संघनित पदार्थ ऊष्मा और प्रकाश से युक्त होकर बाहरी पदार्थ को भी प्रकाशित करने लगते हैं। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में आकाश तत्त्व की भी अनिवार्य भूमिका होती है। तारों से उत्सर्जित विभिन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगें अन्तरिक्ष अथवा दूसरे लोकों में विद्यमान पदार्थ को अनेक प्रकार से प्रभावित करके नाना प्रकार की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक क्रियाओं को सम्पादित व प्रभावित करती हैं तथा बड़े लोकों का गुरुत्वाकर्षण बल छोटे लोकों को अपने चारों ओर परिक्रमण करने के लिए निरन्तर प्रेरित करता है। इस समय डार्क एनर्जी के दुष्प्रभाव से लोकों की दूरी भी बढ़ती है, उधर डार्क मैटर इन लोकों को ढकने और उनकी क्रियाओं को बाधित करने का प्रयास भी करता है परन्तु तप्त और विद्युदावेशित तरंगें उस डार्क मैटर को दूर-२ फैला देती हैं। विभिन्न प्रकार के बलों एवं उनके द्वारा सभी प्रकार की क्रियाओं में विद्युत् की अनिवार्य भूमिका होती है और इसके पीछे विभिन्न प्राण, मरुद् और छन्द रश्मियों की अनिवार्य भूमिका होती है। यह विद्युत् विभिन्न कणों के मार्गों और गतियों का निर्धारण करती है तथा दुर्बल कणों को सबल बनाती है, जिससे क्रियाओं की तीव्रता बढ़ती है। विभिन्न प्राण रश्मियां एवं छन्द रश्मियां विभिन्न प्रकार के कण और क्वान्टाज् को उत्पन्न भी करती रहती हैं, उस समय आकाश में पदार्थ के तरलरूप की विभिन्न धाराएं निरन्तर बहती रहती हैं और उनकी उत्पत्ति में भी विद्युत् की ही विशेष भूमिका होती हैं, दूसरी ओर डार्क मैटर की भी धाराएं बहती हैं, जिनका दृश्य-पदार्थ की धाराओं से संघर्ष होता रहता है। डार्क मैटर में भी एक विशेष प्रकार की विद्युत् विद्यमान रहती है, जिसके कारण ही डार्क मैटर और डार्क एनर्जी का दृश्य-पदार्थ से सतत संघर्ष चलता रहता है। इस संघर्ष में दृश्य पदार्थ डार्क पदार्थ को चारों ओर से घेर कर प्रहार करता है। विभिन्न लोकों के निर्माण में पदार्थ का संघनन, संपीडन, विभाजन, पृथक्करण, दूरगमन आदि सभी क्रियाओं में इन्द्ररूपी विद्युत् की भूमिका होती है, साथ ही डार्क एनर्जी व डार्क मैटर की भी पृथक्करण, दूरगमन जैसी क्रियाओं में भूमिका होती है। **इस सृष्टि में विद्युत् बल ही सबसे महान् बल होता है, जिसका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता।** विशेष परिज्ञानार्थ व्याख्यान भाग द्रष्टव्य है।।

इति २८.५ समाप्तः

ॐ अथ २८.६ प्रारभ्यते ॐ

**** तमसो मा ज्योतिर्गमय ****

१. अथाऽऽह यदेतास्तिस्र उक्थिन्यो होत्राः, कथमितरा उक्थिन्यो भवन्तीति।। आज्यमेवाऽऽग्नीध्रीयाया उक्थं, मरुत्वतीयं पौत्रीयायै, वैश्वदेवं नेष्ट्रीयायै; ता वा एता होत्रा एवं न्यङ्गा एव भवन्ति।।

अथाऽऽह यदेकप्रैषा अन्ये होत्रका अथ कस्माद् द्विप्रैषः पोता, द्विप्रैषो नेष्टेति।। यत्रादो गायत्री सुपर्णो भूत्वा सोममाहरत्, तदेतासां होत्राणामिन्द्र उक्थानि परिलुप्य होत्रे प्रददौ; यूयं माऽभ्यहयध्वं, यूयमस्यावेदिष्टेति, ते होचुर्देवा वाचेमे होत्रे प्रभावयामेति, तस्मात्ते द्विप्रैषे भवत ऋचाऽग्नीध्रीयां प्रभावयांचक्रुस्तस्मात् तस्यैकयर्चा भूयस्यो याज्या भवन्ति।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि जिस कारण मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी एवं अच्छावाक इन तीन उक्थ अर्थात् शस्त्रयुक्त होत्रकों की क्रियाएं होती हैं, तव शेष पोता, नेष्टा आदि होत्रकों अर्थात् ऋत्विजों की क्रियाएं शस्त्र रहित होने पर भी कैसे उक्थयुक्त होती हैं? यहाँ यह संकेत स्पष्ट है कि नेष्टा, पोता, आग्नीध्र होत्रक सर्वथा शस्त्र रहित नहीं होते हैं अर्थात् ये मैत्रावरुण आदि की भाँति स्वाभाविक रूप से तीक्ष्ण नहीं होते हैं। इसी कारण यहाँ प्रश्न यह है कि ये स्वाभाविक रूप से तीक्ष्ण न होने पर भी तीक्ष्ण प्रभाव कैसे दर्शाते हैं?।।

इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि आज्य शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मियां ही आग्नीध्र संज्ञक होत्रक वा ऋत्विज् की क्रियाओं को तीक्ष्ण बनाती हैं। मरुत्वतीय शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मियां पोता संज्ञक होत्रक अथवा ऋत्विज् की क्रियाओं को तीक्ष्ण बनाती हैं तथा वैश्वदेव शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मियां नेष्टा संज्ञक होत्रक वा ऋत्विज् की क्रियाओं को तीक्ष्ण बनाती हैं। यहाँ आज्य आदि शस्त्र पूर्वोक्त प्रकार से ग्रहणीय नहीं हैं, वल्कि इन शस्त्रों के विषय में निम्न प्रकार ज्ञातव्य है- आज्य के विषय में महर्षि तित्तिर का कथन है-

"अग्नेर्वा एतद्रूपम्। यदाज्यम्" (तै.ब्रा.३.८.१४.२)

हम ६.१०.१ में लिख चुके हैं कि आग्नीध्र संज्ञक ऋत्विज् की याज्यारूप

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे। स्तोमैर्विधेमाग्नये।।११।। (ऋ.८.४३.११)

ऋचा अग्निदेवताक होने से आज्य संज्ञक शस्त्र का कार्य करती है। पोता संज्ञक होत्रक अर्थात् ऋत्विज् की याज्यारूप

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः। स सुगोपातमो जनः।।१।। (ऋ.१.८६.१)

ऋचा मरुद्-देवताक होने से मरुत्वतीय संज्ञक शस्त्र का कार्य करती है। उधर नेष्टा संज्ञक होत्रक वा ऋत्विज् की याज्यारूप

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप। त्वष्टारं सोमपीतये।।६।। (ऋ.१.२२.६)

ऋचा यद्यपि अग्निदेवताक है, तदपि इस ऋचा में 'देवानामुशतीः' पद विद्यमान होने से अर्थात् इसके वहुवचनान्त होने से यह विश्वेदेवादेवताक व्यवहार करते हुए वैश्वदेव शस्त्र का प्रभाव दर्शाती है। इन सभी याज्याओं के विषय में ६.१०.१ द्रष्टव्य है। इस प्रकार इन तीनों होत्रकों की क्रियाएं अपनी-२ शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मियों के चिह्नों वा प्रभावों से युक्त होती है।।

इस पर व्याख्यान करते हुए आचार्य सायण का कथन है-

"प्रैषसूक्ते अस्ति पञ्चाध्यायात्मक ऋक्परिशिष्टः। तत्र पञ्चमः प्रैषाध्यायः। स एव प्रैषसामाम्नायः -इति, प्रैषग्रन्थः -इति चोच्यते। तस्मिंश्च पञ्च सूक्तानि। तदीय-पञ्चमे सूक्ते सुत्यायां सवनीयप्रैषा उक्ताः। तत्रैवेत्यर्थः। आश्वलायनेनायुक्तम्- 'ऋतुयाजैश्चरन्ति, तेषां प्रैषाः पञ्चमं प्रैषसूक्तम्- इति आश्व.श्रौ.५.८.१-३ ये ये प्रैषा उक्ताः तेषु प्रैषेषु एकैक एव प्रैषो नेष्टृ-पोतृ-व्यतिरिक्तानां होत्रकाणाम्, पोतुर्नेष्टुश्च द्वौ द्वौ प्रैषौ। तथा च यज्ञसंप्रदायविदः पठन्ति -'हो-पो-नेऽग्नीद्-ब्रा-प्र-हो-पो-ने-ऽच्छा-ऽध्वर्यु-गृहपतीति च' इति। अस्यायमर्थः -तत्र नाम्नामाद्याक्षरेणैते क्रतुपुरुषा निर्दिश्यन्ते। तथा च होता, पोता, नेष्टा, आग्नीध्रः, ब्राह्मणाच्छंसी प्रशास्ता होता, पोता, नेष्टा,ऽच्छावाकः, अध्वर्युर्गृहपतिश्च क्रमेणोक्ताः। एतेषा प्रैषसूक्ते द्वादश प्रैषाः क्रमेण सन्ति। तथा सति पोतुर्द्वितीयोऽष्टमश्च द्वौ प्रैषौ; नेष्टुस्तृतीयो नवमश्च द्वौ प्रैषौ। 'होता यक्षन्मरुतः पोत्रात्' इत्येकः प्रैषः। 'होता यक्षद्देवं द्रविणोदां पोत्रांदृतुभिरिति' द्वितीयः, एतौ द्वौ पोतुः प्रैषौ। 'होता यक्षद् ग्रावो नेष्टा' इत्येकः। होता यक्षद्देवं द्रविणोदां नेष्ट्रात्' इति द्वितीयः। एतौ द्वौ नेष्टुः प्रैषौ। इतरेषामाग्री(ग्नी)ध्राच्छावाकादीनामेकैक एव प्रैषः। तथा सति पोतृ-नेष्ट्रोः द्विः प्रैषत्वे किं कारणम्? इति प्रश्नः।

इसका आशय यह है कि ऋक् परिशिष्ट में पांचवां अध्याय प्रैष अध्याय कहलाता है, जिसमें ५ सूक्त हैं और उसके पांचवें सूक्त को प्रैष सूक्त कहा जाता है। इन प्रैष सूक्तों में क्रमशः १२ प्रैष होते हैं- १. होता, २. पोता, ३. नेष्टा, ४. आग्नीध्र ५. ब्राह्मणाच्छंसी, ६. प्रशास्ता, ७. होता, ८.पोता, ९. नेष्टा, १०. अच्छावाक ११. अध्वर्यु, १२. गृहपति।

इनमें से अध्वर्यु और गृहपति के विषय में ऋषियों का कथन है-

"आदित्यो मेऽध्वर्युः" (ष.२.५) अर्थात् मास रश्मियां अध्वर्यु कहलाती हैं।

"अध्वर्युणा वै यज्ञो विधृतः" (मै.३.८.१०)

"अग्निर्गृहपतिः" (ऐ.५.२५; तै.सं.२.४.५.२)

शेष के विषय में ६.९.३ द्रष्टव्य है। यहाँ 'प्रैष' शब्द का तात्पर्य है, जिसको विशेषरूप से प्रेरित किया जाए। यहाँ सायणभाष्य के अनुसार "होता यक्षन्मरुतः पोत्रात्" एवं "होता यक्षद्देवं द्रविणोदां पोत्रादृतुभिः" क्रमशः प्राजापत्या भुरिग्गायत्री एवं प्राजापत्या निचृदनुष्टुप् छन्द रश्मियों के द्वारा पोता अर्थात् प्राण नामक प्राण रश्मियां विशेष सक्रिय होती हैं।

इसका तात्पर्य यह है कि मन एवं वाक् का मिथुन विभिन्न मरुद् रश्मियों को प्राण नामक प्राण रश्मियों तथा ऋतु रश्मियों के साथ विशेषरूप से संगत करके दिव्य वलों (द्रविण) को समृद्ध करता है। उधर "होता यक्षत् ग्रावो नेष्टा" एवं "होता यक्षद्देवं द्रविणोदां नेष्ट्रात्" क्रमशः प्राजापत्या गायत्री और प्राजापत्या उष्णिक् छन्द रश्मियों के द्वारा नेष्टा अर्थात् अपान रश्मियों को समृद्ध करता है अर्थात् मन और वाक् का मिथुन अपान नामक रश्मियों को ग्रावा संज्ञक विभिन्न मरुदादि रश्मियों के साथ संगत करके दिव्य वलों को उत्पन्न करता है। यहाँ किये गये प्रश्न से यह संकेत मिलता है कि 'नेष्टा' और 'पोता' अर्थात् अपान और प्राण रश्मियां दो-२ छन्द रश्मियों के द्वारा प्रेरित की जाती हैं, जवकि अन्य पदार्थों के लिए एक-२ छन्द रश्मि ही उत्पन्न होती है। इसका क्या कारण है? इसी कारण यहाँ १२ प्रैषों में नेष्टा और पोता की दो वार गणना है, जवकि अन्य की गणना १-१ वार ही है। हमारे मत में यहाँ यह भी प्रश्न उठ सकता है कि होता की गणना भी क्यों दो वार की गयी है? इस विषय में हमारा मत यह है कि होता अर्थात् **मन एवं वाक् तत्त्व का मिथुन स्वयं ही सबका प्रेरक होने से प्रैष कहलाता है। यह केवल ईश्वर तत्त्व से ही प्रेरित होता है**। इससे मन एवं वाक् दोनों ही तत्त्व होता रूप होने से इसकी गणना दो वार की गयी है। यहाँ 'प्रशास्ता' शब्द का अर्थ पूर्ववत् मैत्रावरुण समझना चाहिए।।

{इन्द्रः = इन्द्रो माध्यन्दिनः सवनम्। (तै.आ.५.१.६)} उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि जव गायत्री छन्द रश्मियां सुपर्णरूप धारण करके गन्धर्वों से सोम रश्मियों का आहरण करती

हैं, उस समय प्राण नामक प्राण तत्त्व एवं त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों से युक्त माध्यंदिन सवन किंवा आकाश तत्त्व के सामर्थ्यवान् होने पर वहाँ विद्यमान पूर्वोक्त नेष्टा और पोता अर्थात् अपान एवं प्राण रश्मियों की शस्त्ररूप याज्या रश्मियां, जिनको ६.१२.३ में दर्शाया गया है, उनसे पृथक् हो जाती हैं तथा वे याज्या छन्द रश्मियां मन-वाक् मिथुन रूपी होता के साथ ही संगत हो जाती हैं। इस कारण से उन प्राणापान रश्मियों का आहाव संज्ञक 'शोंसावोम' से भी सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है, जिसके कारण उनकी गति और तेज भी मन्द हो जाते हैं। यह घटना गायत्री छन्द रश्मियों के गन्धर्व संज्ञक रश्मियों के साथ संघर्ष के कारण उत्पन्न होती है। उसके पश्चात् वे हीनवल नेष्टा और पोता संज्ञक अपान एवं प्राण रश्मियां उन याज्या संज्ञक रश्मियों जैसा तीक्ष्ण प्रभाव प्राप्त करने का प्रयास करती हैं। उस प्रयास में होता संज्ञक मन एवं वाक् का मिथुन प्रेरक प्रैषरूप होकर उन नेष्टा और पोता संज्ञक रश्मियों को पूर्वोक्तानुसार दो-२ छन्द रश्मियों से प्रैष वा प्रेरित करता है, जिसके कारण वे रश्मियां पुनः तीक्ष्णरूप प्राप्त कर लेती हैं। उसी समय आग्नीध्र अर्थात् आकाश तत्त्व में पूर्वोक्त याज्या छन्द रश्मि के अतिरिक्त एक अन्य याज्या छन्द रश्मि, जो अग्निदेवताक एवं स्वराट् पंक्ति छन्दस्क होती है, पूर्वोक्त विश्वामित्र ऋषि प्राण से उत्पन्न होती है, वह छन्द रश्मि है-

ऐभि॑रग्ने स॒रथं॑ याह्य॒र्वाङ् ना॑नार॒थं वा॑ वि॒भवो॒ ह्यश्वाः॑।
पत्नी॑वतस्त्रिं॒शतं॒ त्रींश्च॑ दे॒वान॑नुष्व॒धमा व॑ह मा॒दय॑स्व।।९।। (ऋ.३.६.९)

इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से अग्नि की आशुगामी और व्यापक रमणीय तरंगें ८ वसुरूप गायत्री छन्द के अक्षर, ११ रुद्ररूप त्रिष्टुप् छन्द रश्मि के अक्षर, १२ आदित्य रूप जगती छन्द रश्मि के अक्षर एवं धनंजय तथा सूत्रात्मा वायु किंवा प्राणापान इन ३३ रक्षिका रश्मियों से युक्त होकर विभिन्न मार्गों को व्याप्त करते हुए नाना प्रकार के संयोज्य परमाणुओं को सक्रिय करती हैं। इस एक याज्या छन्द रश्मि के कारण आग्नीध्र अर्थात् आकाश तत्त्व एवं आग्नेय तथा पार्थिव परमाणुओं की संगमनीयता विशेषरूप से समृद्ध हो जाती है। हमने इस याज्या संज्ञक छन्द रश्मि का ग्रहण आचार्य सायण के भाष्य के आधार पर किया है। यहाँ गायत्री छन्द रश्मियों द्वारा सोम आहरण की घटना अध्याय १३, विशेषकर इसके खण्ड ३ में द्रष्टव्य है। पाठक उसे अवश्य पढ़ें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- प्राणापानादि प्राथमिक प्राण रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों को उत्पन्न करती हैं, साथ ही उनको धारण, सक्रिय और वहन भी करती हैं। यह एक सुविदित तथ्य है, पुनरपि इस सृष्टि में इसके विपरीत घटनाएं भी देखने को मिलती हैं, जहाँ कुछ छन्द रश्मियां इन प्राणापान रश्मियों के साथ संगत होकर उनकी तीक्ष्णता को बढ़ा देती हैं। खण्ड ३.२७ के अनुसार जब गायत्री छन्द रश्मियां सोम रश्मियों को अपने साथ लाती हैं और आकाश तत्त्व उस समय विशेष सक्रिय होने लगता है, तब प्राण और अपान रश्मियां अपने साथ संगत छन्द रश्मियों से पृथक् होकर दुर्बल हो जाती हैं। उस समय वे कुछ अन्य छन्द रश्मियों के उत्पन्न होने व उनके साथ संगत होने पर पुनः तीक्ष्ण रूप प्राप्त करती हैं। इसी समय १ पंक्ति छन्द रश्मि उत्पन्न होकर गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती छन्द रश्मियों को अपने साथ संगत करती हुई धनंजय और सूत्रात्मा वायु के साथ मिलकर विभिन्न कणों एवं क्वान्टाज् को उत्पन्न व सक्रिय करती हैं। इस विषय में विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पठनीय है।।

२. अथाऽऽह यद्धोता यक्षद्धोता यक्षदिति मैत्रावरुणो होत्रे प्रेष्यत्यथ कस्मादहोतृभ्यः सद्भ्यो होत्राशंसिभ्यो होता यक्षद्धोता यक्षदिति प्रेष्यतीति।।
प्राणो वै होता, प्राणः सर्व ऋत्विजः, प्राणो यक्षत्, प्राणो यक्षदित्येव तदाह।।
अथाहास्त्युद्गातॄणां प्रैषा३ः, नाँ३ इति। अस्तीति ब्रूयाद्; यदेवैतत्प्रशास्ता जपं जपित्वा स्तुध्वमित्याह, स एषां प्रैषः।।
अथाहास्त्यच्छावाकस्य प्रवरा३ः, नाँ३ इति। अस्तीति ब्रूयाद्, यदेवैनमध्वर्युराहाच्छावाक

वदस्व यत्ते वाद्यमित्येषोऽस्य प्रवरः।।

व्याख्यानम्- यहाँ कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए महर्षि लिखते हैं कि जब पूर्वोक्त **मैत्रावरुण** नामक ऋत्विज् वा होत्रक **होता** संज्ञक होत्रक के द्वारा प्रेरित किया जाता है, तब **'होता यक्षत्'** इन छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इन रश्मियों को आचार्य सायण ने पाद टिप्पणी में निम्नानुसार ऋक् परिशिष्ट से उद्धृत किया है-

"तद्यथा - १. होता यक्षद्..........होतर्यज। २. होता यक्षद्.............पोतर्यज। ३. होता यक्षद्..... ....नेष्टर्यज। ४. होता यक्षद्................. अग्नीद्यज। ५. होता यक्षद्...........ब्रह्मन्यज। होता यक्षद्.................प्रशास्तर्यज। ६. होता यक्षद्..............होतर्यज। ७. होता यक्षद्...... ....पोतर्यज। ८. होता यक्षद्.............नेष्टर्यज। ९. होता यक्षद्........अच्छवाक् यज। १०. होता यक्षद्..............अध्वर्यू यजतम्। ११. होता यक्षद्...............गृहपते यज।' - इति प.५.५.९-२०।"

यहाँ प्रत्येक ऋचा में **'होतृ'** शब्द विद्यमान है, जिसके कारण **होतासंज्ञक** होत्रक प्रेरित और संगत होते हैं। हमने यहाँ **'होत्रे'** पद को तृतीया विभक्ति का छान्दस रूप माना है। यहाँ प्रश्न यह है कि जब **होता** स्वयं ही प्रेरक है, तो वह **मैत्रावरुण** आदि सभी होत्रकों को **'होतृ'** शब्दयुक्त इन उपर्युक्त छन्द रश्मियों के द्वारा कैसे प्रेरित वा संगत कर सकता है? क्योंकि **'होतृ'** शब्द के किसी भी रूप का प्रभाव केवल **होता** संज्ञक होत्रक पर ही होना चाहिए, अन्य पर नहीं।।

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि हर प्राण होता ही कहलाता है, क्योंकि वे ही इस सृष्टि में सर्वत्र आहुत वा आहूत होते और अन्य पदार्थों को भी आहुत वा आहूत करते हैं। हम यह जानते हैं कि पूर्वोक्त **मैत्रावरुण** आदि सभी होत्रक वा ऋत्विज् विभिन्न प्रकार की प्राण रश्मियों के ही रूप हैं। स्वयं मन एवं वाग् रूप होता भी प्राण रूप ही होते हैं। इस कारण **'होता यक्षद्'** इन पदों का प्रभाव **'प्राणो यक्षत'** के समान ही होता है। इस कारण से **'होता यक्षद्', 'होता यक्षद्'** के प्रभाव से होता से इतर **मैत्रावरुण, नेष्टा-पोता** आदि सभी होत्रक वा ऋत्विग् रूप रश्मियां प्रेरित वा उत्तेजित होती हैं।।

यहाँ महर्षि पुनः कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि पूर्वोक्त प्रैष सूक्तों में **उद्गाता** नामक ऋत्विज् विद्यमान नहीं है, तो क्या **उद्गाता** संज्ञक होत्रक रूप रश्मियों को भी प्रैष वा प्रेरित किया जाता है अथवा नहीं? इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि हाँ, अवश्य किया जाता है। हम यहाँ **उद्गाता** नामक ऋत्विज् के विषय में **महर्षि जैमिनी** का कथन उद्धृत करते हैं-

"देवानां वै षड् उद्गातार आसन् वाक् च मनश्च चक्षुश्च श्रोत्रं चाऽपानश्च प्राणश्च" (जै.उ.२.१.१.१)

इन ६ उद्गाताओं में से मन, वाक्, प्राण एवं अपान को हम अन्य होत्रकों के रूप में पूर्व में ग्रहण कर चुके हैं, तब हम केवल चक्षु और श्रोत्र के विषय में विचार करते हैं। {चक्षुः = चक्षुरुष्णिक् (श.१०.३.१.१), त्रैष्टुभं चक्षुः (तां.२०.१६.५), यच्चक्षुः स बृहस्पतिः (गो.उ.४.११)। श्रोत्रम् = श्रोत्रं पंक्तिः (श.१०.३.१.१), यत्तच्छ्रोत्रं दिश एव तत् (श.१०.३.३.७)} वस्तुतः उष्णिक् और त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां एवं सूत्रात्मा वायु को ही यहाँ **उद्गाता** कह सकते हैं तथा पंक्ति छन्द रश्मियां एवं दिशा वा आकाश तत्त्व को भी **उद्गाता** कहते हैं। इस प्रकार यहाँ यह सिद्ध होता है कि इन सबको भी प्रैष अर्थात् प्रेरित किया जाता है। हम पूर्व में **'प्रशास्ता'** पद से **मित्रावरुण** का ग्रहण कर चुके हैं, इस विषय में एक अन्य आर्ष प्रमाण प्रस्तुत करते हैं-

"मित्रावरुणौ प्रशास्तारौ प्राशास्त्रात्" (कात्या.श्रौ.६.८.६)

अब प्रश्न यह उठ सकता है कि ये पांच उद्गाता संज्ञक पदार्थ कैसे प्रेरित वा उत्तेजित किये जाते है? {जपः = ब्रह्म वै जपः (कौ.ब्रा.३.७), (ब्रह्म = ब्रह्म वै वाचः परमं व्योम - तै.ब्रा.३.९.५.५; वाग् ब्रह्म - गो.पू.२.११)} इस विषय में आचार्य सायण का कथन है-

"स च 'स्तुतदेवेन सवित्रा' इत्यादिमन्त्रजपं जपित्वा, अनन्तरं स्तुध्वमिति' यदेवैतद्वचनं प्राह, स एव 'एषाम्' उद्गातृणां प्रैषः"।

इससे यहाँ संकेत मिलता है कि अपनी याज्ञिक परम्परा में प्रशास्ता अर्थात् मैत्रावरुण संज्ञक ऋत्विज् 'स्तुतदेवेन सवित्रा......इत्यादि ऋचा का पाठ करके पुनः 'स्तुध्वम्' का उच्चारण करता है। इसी को उद्गाता संज्ञक ऋत्विज् का प्रैष कहा गया है। आचार्य सायण द्वारा उद्धृत यह ऋचा कहाँ से उद्धृत की गयी है, यह ज्ञात नहीं है, साथ ही इसको पूर्णतः उद्धृत नहीं किया गया है। इस कारण इस विषय में व्याख्यान करना और उसकी प्रामाणिकता को निश्चयात्मक रूप से स्वीकार करना कुछ कठिन है। इस विषय में हमारा मत यह भी है कि प्रशास्ता अर्थात् प्राणापान का युग्म ब्रह्म अर्थात् 'ओम्' रूपी सूक्ष्मतम वागु रश्मियों को विशेष ग्रहण करके 'स्तुध्वम्' पदरूपी दैवी उष्णिक् छन्द रश्मि को उत्पन्न करके पूर्वोक्त पांचों प्रकार के उद्गाता संज्ञक पदार्थों को उत्तेजित वा सक्रिय करता है। इसी को इसका प्रैष होना कहा जाता है।।

यहाँ महर्षि पुनः कुछ विद्वानों का प्रश्न अच्छावाक होत्रक के विषय में उठाते हुए कहते हैं कि क्या अच्छावाक संज्ञक पूर्वोक्त तृच रश्मियां विशेषरूप से वरणीय होती हैं वा नहीं? साथ ही वे ऐसा करके आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों को प्रकृष्टता से {वरः = वरो वरयितव्यो भवति (नि.१.७), वर इव वै स्वर्गो लोकः (जै.ब्रा.२.६६), सर्वं वै वरः (श.२.२.१.४)} प्राप्त करने में समर्थ होती हैं वा नहीं? अथवा वे सर्वत्र ही सभी प्रकार की छन्दादि रश्मियों को अपने साथ संगत करके उन्हें श्रेष्ठरूप प्रदान करती हैं अथवा नहीं? इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि हाँ, अवश्य ही ऐसा होता है और उसका प्रकार यह है कि मास रश्मियों रूप अध्वर्यु अच्छावाक संज्ञक तृच छन्द रश्मियों को प्रकृष्ट गति और तेज प्रदान करता है। यद्यपि 'अध्वर्यु' शब्द का अर्थ प्राण और अपान भी होता है परन्तु होत्रकों की गणना में हमने पोता को प्राण और नेष्टा को अपान ग्रहण किया है, इस कारण यहाँ १२ मास रश्मियों रूपी आदित्य को ही 'अध्वर्यु' मानना उचित है। इन्हीं के द्वारा प्रकृष्ट हुई अच्छावाक छन्द रश्मियां प्रवररूप प्राप्त करती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न प्रकार की प्राण वा छन्द रश्मियां इस सृष्टि की सभी प्रक्रियाओं का प्रत्यक्षरूपेण संचालन करती हैं। ये रश्मियां परस्पर स्वयं संगत होती हैं और ये ही दूसरों को भी परस्पर संगत कराने में सहयोग करती हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड इन्हीं रश्मियों का होमरूप माना जा सकता है। ये रश्मियां ही वेदी हैं, ये ही अग्नि हैं, ये ही आहुतिरूप हैं और ये ही आहुति के पात्र और यजमानरूप भी हैं। सभी प्रकार के ऋत्विज् भी ये ही होती हैं। इनमें मन एवं **'ओम्'** छन्द रश्मिरूपी वाक् की सबसे सूक्ष्म और व्यापक भूमिका होती है। इसके उपरान्त सूत्रात्मा वायु एवं अन्य प्राथमिक प्राण रश्मियों, तदुपरान्त विभिन्न छन्दादि रश्मियों की भूमिका होती है। विभिन्न छन्दादि रश्मियों एवं विभिन्न कणों और क्वान्टाज् को परस्पर जोड़े रखने में सूत्रात्मा वायु एवं व्यान रश्मियों के साथ-२ १२ प्रकार की मास रश्मियों की भी भूमिका होती है। विशेष परिज्ञान के लिए व्याख्यान भाग अवश्य द्रष्टव्य है।।

३. अथाह यदैन्द्रावरुणं मैत्रावरुणस्तृतीयसवने शंसत्यथ कस्मादस्याऽऽग्नेयौ स्तोत्रियानुरूपौ भवत इत्यग्निना वै मुखेन देवा असुरानुक्थेभ्यो निर्जघ्नुस्तस्मादस्याऽऽग्नेयौ स्तोत्रियानुरूपौ भवतः।।
अथाऽऽह यदैन्द्राबार्हस्पत्यं ब्राह्मणाच्छंसी तृतीयसवने शंसत्यैन्द्रावैष्णवमच्छावाकः, कथमेनयोरैन्द्रः; स्तोत्रियानुरूपा भवन्तीतीन्द्रो ह स्म वा असुरानुक्थेभ्यः प्रजिगाय; सोऽब्रवीत् कश्चाहं चेत्यहं चाहं चेति ह स्म देवता अन्ववयन्ति; स यदिन्द्रः पूर्वः प्रजिगाय, तस्मादेनयोरैन्द्राः स्तोत्रियानुरूपा भवन्ति; यद्वहं चाहं चेति ह स्म देवता अन्ववयुस्तस्मान्नानादेवत्यानि शंसतः।।६।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि पूर्वोक्त मैत्रावरुण संज्ञक ऋत्विज् जब तृतीय सवन में ऐन्द्रावरुण सूक्तरूप रश्मिसमूह को उत्पन्न करता है, तब अग्निदेवताक

स्तोत्रिय एवं अनुरूप तृच रश्मियों की उत्पत्ति क्यों होती है? मैत्रावरुण संज्ञक ऋत्विज् द्वारा ऐन्द्रावरुण सूक्त

इन्द्रा॑वरुणा यु॒वम॑ध्व॒राय॑ नो वि॒शे जना॑य॒ महि॒ शर्म॑ यच्छतम्।
दी॒र्घप्र॑यज्यु॒मति॒ यो व॑नु॒ष्यति॑ व॒यं ज॑येम॒ पृत॑नासु दू॒ढ्य॑ः।।१।।

इत्यादि ऋ.७.८२ सूक्त की उत्पत्ति का सम्पूर्ण प्रसंग एवं स्वरूप, प्रभाव आदि के विषय में ३.५०.१ द्रष्टव्य है। यहाँ स्तोत्रियरूप तृच पूर्वोक्त भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि प्राण से अग्निदेवताक ऋ.६.१६.१६-१८ की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) एह्यू॒ षु ब्रवा॑णि॒ तेऽग्न॑ इ॒त्थेत॑रा॒ गिर॑ः। ए॒भिर्व॑र्धास॒ इन्दु॑भिः।।१६।।

इसका छन्द साम्नी त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव के विषय में ३.४६.१ की द्वितीय कण्डिका द्रष्टव्य है।

(२) यत्र॒ क्व॑ च ते॒ मनो॒ दक्षं॑ दधस॒ उत्त॑रम्। तत्रा॒ सद॑ः कृणवसे।।१७।।

इसका छन्द निचृद्गायत्री है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {मन = मनोऽन्तरिक्ष लोकः (श.१४.४.३.११), इयम् (पृथिवी) वै मनः (तै.सं.१.६.८.१), यन्मनः स इन्द्रः (गो. उ.४.११)} इस सृष्टि में सर्वत्र ही अग्नि के परमाणु इन्द्रतत्त्व के द्वारा अर्थात् उसके वल को धारण करते हुए पार्थिव परमाणुओं को तारते और आकाश तत्त्व से पार होते हैं। इसके साथ ही उसी में निवास करते हुए नाना प्रकार के कर्मों को सम्पादित करते हैं।

(३) न॒हि ते॑ पू॒र्तम॑क्षि॒पद्भुव॑न्नेमानां वसो। अथा॒ दुवो॑ वनवसे।।१८।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {नेमः = अन्ननाम (निघं.२.७), नेमोऽपनीतः (नि.३.२०)} विभिन्न संयोज्य परमाणु अग्नि के परमाणुओं से परिपूर्ण होकर परस्पर दूर वा पृथक् न होकर परस्पर एक-दूसरे के साथ संगत और गतिशील रहते हैं।

अब अनुरूप संज्ञक तृच उपर्युक्त सूक्त की ऋ.६.१६.१९-२१ की उत्पत्ति निम्नानुसार होती है। (इसका ऋषि व देवता उपर्युक्तवत् है)

(१) आग्निर॑गामि॒ भार॑तो वृत्र॒हा पु॑रु॒चेत॑नः। दिवो॑दासस्य॒ सत्प॑तिः।।१९।।

इसका छन्द गायत्री है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह नित्य प्राणों का पालक अग्नि तत्त्व सब ओर व्याप्त होकर आवरक आसुर मेघ को नष्ट करते हुए विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों का धारण और पोषण करके प्रकाशित करता है।

(२) स हि विश्वाति॒ पार्थि॑वा र॒यिं दाश॑न्महित्व॒ना। व॒न्वन्नवा॑तो॒ अस्तृ॑तः।।२०।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व अहिंसित होकर सभी पार्थिव परमाणुओं को नाना प्रकार की छन्दादि रश्मियों से युक्त करते हुए उन्हें समर्थ वनाता हुआ भी अति कम्पित नहीं करता है।

(३) स प्र॑त्न॒वन्नवी॑य॒साग्ने॑ द्यु॒म्नेन॑ सं॒यता॑। बृ॒हत्त॑तन्थ भा॒नुना॑।।२१।।

इसका छन्द निचृद्गायत्री है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व अपनी किरणों के द्वारा प्राचीन और नवीन सभी उत्पन्न परमाणुओं को विस्तृत और नियन्त्रित करता है।

यहाँ प्रश्न यह किया गया है कि जब मैत्रावरुण, इन्द्र और वरुण देवता वाले सूक्तरूप रश्मिसमूह को उत्पन्न करता है, तब स्तोत्रिय और अनुरूप संज्ञक तृचरूप छन्द रश्मियां अग्निदेवताक क्यों होती हैं? यहाँ स्तोत्रिय और अनुरूप के विषय में महर्षि जैमिनी का कथन है- "इयम् एव स्तोत्रियः" (जै.उ. ३.१.४.२), अग्निरनुरूपः (जै.उ.३.१.४.२)। अन्य ऋषि का कथन है- "आत्मा वै स्तोत्रियानुरूपी" (कौ. ब्रा.३०.८)। इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि देव पदार्थ अग्नि को ही मुख्य साधन बनाकर असुर तत्त्व को नष्ट वा नियन्त्रित करता है, जैसा कि खण्ड ३.४६ में वर्णित है। इस कारण ये स्तोत्रिय और अनुरूप संज्ञक तृच रश्मियां अग्निदेवताक ही होती हैं। यहाँ स्तोत्रियरूप तृच रश्मियां पार्थिव परमाणु एवं अनुरूप संज्ञक तृच रश्मियां आग्नेय परमाणुओं को विशेषरूप से प्रभावित करके असुर तत्त्व से मुक्त करने में अपनी विशेष भूमिका निभाती हैं।।

अब महर्षि कुछ विद्वानों का प्रश्न पुनः उपस्थित करते हुए कहते हैं कि जब ब्राह्मणाच्छंसी नामक होत्रक तृतीय सवन में इन्द्र और बृहस्पति-देवताक शस्त्ररूप रश्मि को उत्पन्न करता है और अच्छावाक संज्ञक होत्रक इन्द्राविष्णू-देवताक शस्त्रसंज्ञक रश्मि को उत्पन्न करता है, तब इनकी स्तोत्रिय एवं अनुरूप संज्ञक तृच रश्मियां क्यों इन्द्र-देवताक होती हैं? यहाँ ग्रन्थकार ने इन छन्द रश्मियों के विषय में कुछ भी संकेत नहीं किया है, उधर आचार्य सायण ने अपने भाष्य में ब्राह्मणाच्छंसी होत्रक द्वारा उत्पन्न शस्त्र के रूप में

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम्।।१।।

इत्यादि ऋ.१.५७ सूक्त का ग्रहण किया है, जिसका देवता महर्षि दयानन्द एवं आचार्य सायण ने इन्द्र ही माना है। यद्यपि हमने अनेकत्र इन दोनों ही वेदभाष्यकारों के देवता सम्बन्धी मत को अस्वीकार करके महर्षि ऐतरेय महीदास के मतानुसार ही देवता का ग्रहण किया है परन्तु वहाँ महर्षि ऐतरेय महीदास ने उस ऋचा वा सूक्त को उद्धृत भी किया हुआ है। इसके विपरीत इस कण्डिका में महर्षि ने इन्द्र और बृहस्पति देवता अवश्य बतलाया है परन्तु किसी ऋचा वा सूक्त का संकेत नहीं किया गया है। इस कारण सायण द्वारा अपनी ऊहा अथवा किसी भी परम्परा के अनुसार भिन्न देवताक सूक्त का ग्रहण करना सर्वथा अनुचित प्रतीत होता है। इस सूक्त के सभी ६ मन्त्रों पर विचार करने से इनका ऐन्द्रदेवत्व तो स्पष्ट होता है परन्तु बार्हस्पत्यदेवत्व का कहीं भी संकेत नहीं मिलता। इस कारण इसका देवता इन्द्राबृहस्पती मानना सर्वथा अनुचित है। इस कारण ब्राह्मणाच्छंसी होत्रक द्वारा इस सूक्त का शंसन वा प्रादुर्भाव मानना स्वीकरणीय नहीं है। इस विषय में हमारा मत है कि विभिन्न होत्रकों की याज्यासंज्ञक छन्द रश्मियां भी शस्त्ररूप छन्द रश्मियों का कार्य करती हैं। हमारे मत की पुष्टि अनेक आर्ष प्रमाणों से होती है। हम कुछ प्रमाण यहाँ प्रस्तुत करते हैं। "इयं (पृथिवी) याज्या" (श.१.७.२.११), "वागिति पृथिवी" (जै.उ.४.११.१.११), "वाग्घि शस्त्रम्" (ऐ.३.४४)। यहाँ पृथिवी को वाक् तथा वाक् को शस्त्र तथा पृथिवी को याज्या कहा गया है। इससे शस्त्र व याज्या की समानता भी प्रतिपादित होती है। उधर ६.१२.३ में

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम्।।१०।। (ऋ.४.५०.१०)

जिसका देवता इन्द्राबृहस्पती है, को ब्राह्मणाच्छंसी की याज्या कहा है। ऐसी स्थिति में इसी छन्द रश्मि को ब्राह्मणाच्छंसी का शस्त्ररूप ग्रहण करना सर्वथा उचित एवं प्रासंगिक है, न कि किसी अन्य सूक्त की कल्पना करना। इसी प्रकार अच्छावाक संज्ञक होत्रक के शस्त्ररूप में आचार्य सायण ने

ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि मक्षू जात आविशद्यासु वर्धते।
तदाहना अभवत्पिप्युषी पयोंऽशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम्।।१।।

इत्यादि ऋ.२.१३ सूक्त का ग्रहण किया है। इसका देवता इन्द्र है। यहाँ भी ग्रन्थकार ने अच्छावाक की शस्त्ररूप किसी भी ऋचा वा सूक्त का संकेत नहीं किया है। आचार्य सायण ने अपनी ऊहा अथवा किसी परम्परा से प्रेरित होकर इस इन्द्र-देवताक सूक्त का ग्रहण किया है। इस सूक्त की किसी भी ऋचा का देवता विष्णु प्रतीत नहीं होता, तब इस सूक्त का ग्रहण करना हमें उचित प्रतीत नहीं होता, जबकि ६.१२.३ में स्वयं ग्रन्थकार ने इन्द्राविष्णूदेवताक

इन्द्राविष्णू पिबतं मध्वो अस्य सोमस्य दस्रा जठरं पृणेथाम्।
आ वामन्धांसि मदिराण्यग्मन्नुप ब्रह्माणि शृणुतं हवं मे।।७।। (ऋ.६.६९.७)

को अच्छावाक होत्रक की याज्या, जो शस्त्ररूप प्रभाव भी दर्शाती है, के रूप में वर्णित किया है, अतः हमारी दृष्टि में अच्छावाक होत्रक की शस्त्ररूप ऋचा के रूप में इसी एक ऋचा का ग्रहण होना चाहिए, न कि किसी भिन्न देवता वाले कल्पित सूक्त का। इस स्पष्टीकरण के पश्चात् पुनः हम विद्वानों के प्रश्न पर आते हैं। उनका प्रश्न यह है कि इन दोनों अर्थात् ब्राह्मणाच्छंसी एवं अच्छावाक होत्रकों की शस्त्रसंज्ञक रश्मियां क्रमशः इन्द्राबृहस्पती एवं इन्द्राविष्णूदेवताक हैं, तब इनकी स्तोत्रिय और अनुरूप संज्ञक तृच रश्मियां क्यों इन्द्र-देवताक होती हैं? यहाँ इन तृच रश्मियों के विषय में हम आचार्य सायण का मत ही ग्रहण करते हैं।

सर्वप्रथम ब्राह्मणाच्छंसी के स्तोत्रियरूप तृच (ऋ.८.२.१६-१८) पर निम्नानुसार विचार करते हैं। इस तृच की उत्पत्ति मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरस ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न विशेष संगमनीय प्राणरश्मि विशेष से होती है। इसका देवता इन्द्र है तथा क्रम निम्नानुसार है-

(१) वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः। कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते।।१६।।

इसका छन्द गायत्री है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्रतत्त्व समानरूप से प्रकाशित विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को विभिन्न छन्द रश्मियों से सूत्रात्मा वायु के योग से संगत करते हुए प्रकाशित करता है।

(२) न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ। तवेदु स्तोमं चिकेत।।१७।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वज्र रश्मियों से युक्त इन्द्रतत्त्व नित नवीन उत्पन्न विभिन्न तन्मात्राओं के संयोगादि कर्मों में नाना छन्द रश्मियों के साथ प्रकाशित होता है।

(३) इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति। यन्ति प्रमादमतन्द्राः।।१८।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से प्रकाशित इन्द्रतत्त्व एवं विभिन्न प्राण रश्मियां निष्क्रिय वा शिथिल परमाणु आदि पदार्थों को प्रकृष्टरूप से सक्रिय करती हैं।

अब ब्राह्मणाच्छंसी की अनुरूप संज्ञक ऋ.८.२१.९-११ तृच पर विचार करते हैं। इसकी उत्पत्ति सोभरिः काण्व ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न अच्छी प्रकार धारण करने वाली विशेष प्राण रश्मियों से होती है। इसका देवता इन्द्र तथा क्रम व प्रभाव निम्नानुसार है-

(१) यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु वः स्तुषे। सखाय इन्द्रमूतये।।९।।

इसका छन्द उष्णिक् ककुप् है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्रतत्त्व विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को सब ओर से आच्छादित और प्रकाशित करता है। इसके अन्य प्रभाव से वह पूर्वोत्पन्न विभिन्न

प्रकाशित परमाणु आदि पदार्थों को सब ओर से रक्षित, प्रकाशित और संगृहीत करता है।

(२) हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत। आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम्।।१०।।

इसका छन्द विराट् पंक्ति है। इसका देवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व विभिन्न हरणशील एवं आशुगामी रश्मियों से युक्त होकर नाना प्रकाशादि रश्मियों को बल प्रदान करता हुआ विभिन्न प्राण रश्मियों के द्वारा सदैव अनेकविध सक्रिय होता एवं विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को भी सक्रिय करता है।

(३) त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि। संस्थे जनस्य गोमतः।।११।।

इसका छन्द उष्णिक् ककुप् है। इसका देवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न वर्षक बलों से युक्त इन्द्रतत्त्व नाना छन्दादि रश्मियों के असुर तत्त्व के साथ संग्राम में तीक्ष्ण असुर तत्त्व को नष्ट वा नियंत्रित करता है।

अब अच्छावाक होत्रक की स्तोत्रिय संज्ञक ऋ.८.९८.७-९ तृच रश्मियों पर विचार करते हैं। इसकी उत्पत्ति नृमेध ऋषि अर्थात् वहन और संगमन करने वाली विशेष सूक्ष्म प्राणरश्मियों से होती है। इसका देवता इन्द्र है तथा क्रम एवं स्वरूप निम्नानुसार है-

(१) अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान्महः ससृज्महे। उदेव यन्त उदभिः।।७।।

इसका छन्द विराडुष्णिक है। इसका देवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न छन्द रश्मियों का सेवन और विभाजन करता हुआ इन्द्रतत्त्व नाना प्रकार के व्यापक कमनीय बलों को उत्पन्न करता है।

(२) वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि। वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे।।८।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व विभिन्न व्यापक एवं संगमनीय वाग् रश्मियों के द्वारा विभिन्न मेघरूप पदार्थों को और उनमें प्रवाहित वा विद्यमान धाराओं को तीक्ष्ण और समृद्ध बनाता है।

(३) युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे। इन्द्रवाहा वचोयुजा।।९।।

इसका छन्द निचृदुष्णिक् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न वाग् रश्मियों से युक्त इन्द्रतत्त्व के धारण और आकर्षण बल स्वयं प्रकाशित होकर व्यापक रमणीय एवं संगमनीय रश्मियों के द्वारा विभिन्न पदार्थों को परस्पर संगत करते हैं।

अब अच्छावाक शस्त्र की अनुरूप संज्ञक ऋ.८.१३.४-६ तृच के विषय में विचार करते हैं। {नारदः = नरस्य धर्मो नारं, तत् ददाति (आप्टेकोष)} इसकी उत्पत्ति नारदः काण्व ऋषि अर्थात् विभिन्न वाहक रश्मियों को धारण करने का गुण प्रदान करने वाली ऐसी विशेष सूक्ष्म प्राण रश्मियों, जो सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न होती हैं, से होती है। इनका देवता इन्द्र तथा क्रम निम्नानुसार है-

(१) इयं त इन्द्र गिर्वणो रातिः क्षरति सुन्वतः। मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि।।४।।

इसका छन्द उष्णिक् है। इसका छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व विभिन्न छन्दादि रश्मियों का विभाजन वा संयोजन करते हुए नाना प्रकार के पदार्थों का संपीडन व प्रेरण करने के लिए विभिन्न मरुद् रश्मियों को प्रकाशित व प्रवाहित करता है।

(२) नूनं तदिन्द्र दद्धि नो यत्त्वा सुन्वन्त ईमहे। रयिं नश्चित्रमा भरा स्वर्विदम्।।५।।

इसका छन्द निचृदुष्णिक् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व अनेक विचित्ररूप से प्रकाशित मरुदादि रश्मियों को संगृहीत करके नाना प्रकार के पदार्थों का धारण, प्रेरण व संपीडन करता है।

(३) स्तोता यत्ते विचर्षणिरतिप्रशर्धयद्गिरः। वयाइवानु रोहते जुषन्त यत्।।६।।

इसका छन्द उष्णिक् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विशेष प्रकाशक इन्द्रतत्त्व विभिन्न रश्मियों को अत्यन्त बलवान् बनाता है, जिसमें वे नाना प्रकार के कमनीय बलों से विशेषतः सम्पन्न होकर अनुकूलतापूर्वक नाना प्रकार की सर्ग प्रक्रियाओं को आगे बढ़ाती हैं।

यहाँ हमने देखा है कि उपर्युक्त दोनों ही होत्रकों की दोनों ही स्तोत्रिय और अनुरूप तृच रश्मियां अर्थात् सभी १२ छन्द रश्मियां इन्द्र देवता वाली ही हैं, जबकि उपर्युक्त दोनों शस्त्र संज्ञक रश्मियां क्रमशः इन्द्राबृहस्पती एवं इन्द्राविष्णू देवता वाली है। यहाँ प्रश्न यही है कि ऐसा क्यों होता है? अर्थात् इन विद्वानों के कहने का आशय यह है कि स्तोत्रिय और अनुरूप तृच रश्मियां भी शस्त्र संज्ञक रश्मियों के समान देवता वाली ही होनी चाहिए थी।

इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि जब विभिन्न उक्थों से असुर तत्त्व के निष्कासन के लिए विभिन्न देव पदार्थों का आह्वान किया जा रहा था और सभी देव पदार्थ असुर तत्त्व को निष्कासित वा नियंत्रित करने में अपनी-२ भूमिका निभा रहे थे, उस समय इन्द्रतत्त्व ही सबका आह्वानकर्त्ता और नायक था। इस कारण ही ब्राह्मणाच्छंसी और अच्छावाक दोनों की स्तोत्रिय और अनुरूप तृच रश्मियां इन्द्र-देवताक होती हैं, जिसके कारण ये विभिन्न पार्थिव और आग्नेय परमाणुओं में वैद्युत प्रभाव को उत्पन्न करती हुई सतत विचरण करती हैं। यहाँ उक्थों से असुर तत्त्व के निष्कासन एवं इन्द्रतत्त्व के उसमें नायकत्व के लिए खण्ड ३.५० अवश्यमेव द्रष्टव्य है। इस प्रक्रिया में अन्य देव पदार्थ असुर तत्त्व निष्कासन के लिए इन्द्रतत्त्व का अनुसरण करते हैं। इस कारण उन देवताओं वाली छन्द रश्मियां उपर्युक्तानुसार होत्रकों की शस्त्ररश्मियों के रूप में उत्पन्न व सक्रिय होती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- जब दृश्य पदार्थ पर डार्क एनर्जी का आक्रमण होता है अथवा विभिन्न सृजन प्रक्रियाओं में जब डार्क मैटर का दृश्य पदार्थ से संघर्ष होता है, तब अनेक प्रकार के तीक्ष्ण विकिरण डार्क एनर्जी वा डार्क मैटर के आक्रमण को निष्प्रभावी करने का प्रयास करते हैं। उन सब विकिरणों में जो सबसे महत्वपूर्ण पदार्थ होता है, वह है विद्युत् आवेश, इसके पश्चात् दूसरा पदार्थ है ऊष्मा। इससे संकेत यह मिलता है कि **डार्क मैटर और डार्क एनर्जी के तीव्र प्रक्षेपक और प्रतिकर्षक बलों को नियन्त्रित वा क्षीण करने के लिए दृश्य पदार्थ अति उच्च ऊर्जा वाली विद्युदावेशित तरंगों का प्रहार करता है।** इन कण्डिकाओं में विभिन्न छन्द रश्मियों के व्यवहार को लेकर कुछ प्रश्नोत्तर किये गये हैं, जिनके विषय में व्याख्यान भाग ही पठनीय है।।

॥ इति २८.६ समाप्तः ॥

अथ २८.७ प्रारभ्यते

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. अथाह यद्वैश्वदेवं वै तृतीयसवनमथ कस्मादेतान्यैन्द्राणि जागतानि सूक्तानि तृतीयसवन आरम्भणीयानि शस्यन्त इतीन्द्रमेवैतैरारभ्य यन्तीति ब्रूयादथो यज्जागतं वै तृतीयसवनं तज्जगत्काम्यैव; यद्यत्किं चात ऊर्ध्वं छन्दः शस्यते, तद्ध सर्वं जागतं भवत्येतानि चेदैन्द्राणि जागतानि सूक्तानि तृतीयसवन आरम्भणीयानि शस्यन्ते।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि पुनः पूर्वोक्त शस्त्रों के छन्द और देवता के विषय में कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि जब तृतीय सवन विश्वेदेवादेवताक होता है, तब क्यों तृतीय सवन के आरम्भ में इन्द्र-देवताक एवं जगती छन्दस्क सूक्तरूप रश्मिसमूहों की उत्पत्ति होती है? वैश्वदेव देवता का तृतीय सवन से सम्बन्ध बतलाते हुए अनेक ऋषियों के मत है-

'वैश्वदेवं वै तृतीयसवनम्' (तै.सं.७.५.६.५; ऐ.६.१५; श.१.७.३.१६; जै.उ.१.१२.३.४)।

उधर इन्द्रतत्त्व का त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों से सम्बन्ध बतलाते हुए ऋषियों का कथन है-

"इन्द्रस्त्रिष्टुप्" (श.६.६.२.७)
"त्रिष्टुबिन्द्रस्य वज्रः" (ऐ.२.२)
"यदैन्द्रं तत् त्रिष्टुभो रूपम्" (जै.ब्रा.३.२०६)
"इन्द्रस्यैवैतच्छन्दो यत् त्रिष्टुप्" (शां.आ.१.२)
"त्रिष्टुब्वा इन्द्रस्य स्वं छन्दः" (काठ.११.३)

इस प्रकार यहाँ प्रश्न यह किया गया है कि जब तृतीयसवन का सम्बन्ध वैश्वदेव देवता से ही होता है, तब उसके आरम्भ में इन्द्र-देवताक सूक्तरूप रश्मिसमूहों की उत्पत्ति क्यों होती है? और यदि इन्द्रदेवताक सूक्त उत्पन्न ही हो, तो उनका छन्द जगती न होकर त्रिष्टुप् ही होना चाहिए अथवा त्रिष्टुप् की प्रधानता होनी चाहिए? जबकि यहाँ जगती छन्दस्क सूक्तों को आरम्भणीय कहा गया है। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि तृतीयसवन के प्रारम्भ में इन्द्रदेवताक सूक्तरूप छन्द रश्मिसमूहों की ही उत्पत्ति इस कारण होती है, क्योंकि इन्द्रतत्त्व ही विभिन्न क्रियाओं तथा परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को नियन्त्रित तथा विघ्न-रहित करता है। हम जानते हैं कि इस सर्गप्रक्रिया में आसुर पदार्थ की बाधा तृतीय सवन अर्थात् द्युलोकों के केन्द्रीय भागों के निर्माण तक भी बार-२ आती रहती है और इस बाधा को दूर करने में इन्द्रतत्त्व ही सर्वाधिक समर्थ होता है। हमें यह भी ज्ञात है कि तृतीय सवन की उत्पत्ति माध्यन्दिन सवन के तत्काल पश्चात् होती है अर्थात् इन दोनों सवनों के संधिकाल में इन्द्रतत्त्व की सक्रियता अनिवार्य होती है। ऐसा न होने पर असुर पदार्थ अपने प्रहार से संधनन प्रक्रिया को बाधित करके द्युलोकों के केन्द्रीय भागों का निर्माण प्रारम्भ ही नहीं होने देगा। इस कारण यहाँ इन्द्रतत्त्व का विशेष सक्रिय होना अनिवार्य है। यहाँ 'यन्ति' पद न केवल परमाणु आदि पदार्थों को नियन्त्रित करने के अर्थ में प्रयुक्त है, अपितु असुर तत्त्व के नियंत्रण करने के लिए भी प्रयुक्त है। वस्तुतः इन्द्रतत्त्व के अभाव में आदित्य लोकों के निर्माण की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इसी कारण इन्द्रतत्त्व का आदित्य लोकों के साथ सम्बन्ध बतलाते हुए ऋषियों का कथन है-

"एष इन्द्र एष प्रजापतिः (य एष तपति)" (जै.ब्रा.१.८)
"एष एवेन्द्रः। य एष (सूर्यः) तपति" (श.१.६.४.१८)
"अथ यः स इन्द्रोऽसौ स आदित्यः" (श.८.५.३.२)

इन्द्रतत्त्व की तृतीय सवन के प्रारम्भ में अनिवार्यता सिद्ध करने के पश्चात् हम इन्द्रतत्त्व के होते हुए जगती छन्द रश्मियों की अनिवार्यता पर विचार करते हैं। यहाँ महर्षि कहते हैं कि तृतीय सवन जगती छन्द रश्मियों की प्रधानता वाला ही होता है, भले ही उन छन्द रश्मियों का देवता इन्द्र क्यों नहीं हो।

इसका कारण बताते हुए लिखते हैं कि जगती छन्द रश्मियां जगत् की काम्यारूप होती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये छन्द रश्मियां निरन्तर गमन करते हुए विभिन्न सूक्ष्म परमाणुओं में विशेष कमनीय बल उत्पन्न करके उनके आवागमन, संयोग-वियोग में विशेष भूमिका निभाती हैं। यहाँ एक विशेष विज्ञान यह और उद्घाटित किया गया है कि इन जगती छन्द रश्मियों अर्थात् इन्द्र-देवताक जगती छन्द रश्मियों की उत्पत्ति जब तृतीय सवन के प्रारम्भ में होती है, तब उसके पश्चात् जो भी अन्य छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, वे भी जगती के समान ही प्रभाव दर्शाती हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि तृतीय सवन अर्थात् आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग के निर्माण के समय सभी छन्द रश्मियां जगती का प्रभाव ही दर्शाती है अर्थात् जगतीरूप ही हो जाती है। कदाचित् इसी कारण महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है- "जगती सर्वाणि छन्दांसि" (श.६.२.१.३०)। जगती के विषय में अन्य ऋषियों का भी कथन है-

"तदिदꣳ सर्वं जगदस्यां तेनेयं जगती" (श.१.८.२.११)

"द्यौर्जगती" (मै.३.१.२; काठ.१६.१; क.२६.८)

इस प्रकार यह सिद्ध किया गया कि तृतीय सवन के प्रारम्भ में इन्द्रदेवताक एवं जगतीछन्दस्क सूक्तरूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति अनिवार्यरूप से होती है। इसके बिना तृतीय सवन वा आदित्य लोकों का निर्माण सम्भव नहीं हो सकता। यहाँ आचार्य सायण ने बिना किसी आर्षप्रमाण के इन्द्रदेवताक ३ सूक्तों को उद्धृत किया है, जिनमें से मैत्रावरुण का

चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्य१मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत।
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे॥१॥

इत्यादि ऋ.३.५१ सूक्त है, जिसका देवता इन्द्र तथा छन्द इस प्रकार है-
४,७-९ त्रिष्टुप्, ५,६ निचृत् त्रिष्टुप्, १-३ निचृज्जगती, १०,११ यवमध्या गायत्री, १२ विराट् गायत्री छन्द। ब्राह्मणाच्छंसी का सूक्त पूर्वोक्त खण्ड की कण्डिका में उद्धृत

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम्॥१॥

इत्यादि ऋ.१.५७ सूक्त, जिसका देवता इन्द्र एवं छन्द निम्न प्रकार हैं-
१,२,४, जगती, ३ विराड् जगती, ६ निचृज्जगती, ५ भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः।
इसके पश्चात् अच्छावाक का सूक्त इन्द्र-देवताक

ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि मक्षू जात आविशद्यासु वर्धते।
तदाहना अभवत्पिप्युषी पयोंऽशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम्॥१॥

इत्यादि ऋ.२.१३, सूक्त जिसके छन्द इस प्रकार हैं।
१-३, १०-१२ भुरिक् त्रिष्टुप्, ७,८ निचृत्त्रिष्टुप्, ६,१३ त्रिष्टुप्, ४ निचृज्जगती, ५,६ विराड्जगती छन्द हैं।

इन सूक्तों की यहाँ प्रासंगिकता के विषय में हम आचार्य सायण से सहमत नहीं है। इसके कारण निम्नानुसार हैं-

(१) हम ब्राह्मणाच्छंसी और अच्छावाक के सूक्तों की अप्रांसगिकता पूर्व खण्ड की अन्तिम कण्डिका में सिद्ध कर चुके हैं।

(२) जब आचार्य सायण ने वहाँ इन दोनों सूक्तों को क्रमशः इन्द्राबृहस्पती एवं इन्द्राविष्णूदेवताक के रूप में ग्रहण किया है, तब यहाँ ये दोनों केवल इन्द्रदेवताक कैसे हो गये? जबकि महर्षि ने इन पृथक्-२ देवता वाले सूक्तों का उत्पन्न होना ही स्वीकार किया है, जो ये सूक्त तो कदापि नहीं है, क्योंकि कोई भी ऋषि एक ही प्रकरण में एक ही सूक्त को दो भिन्न देवता वाला स्वीकार नहीं कर सकता। यदि, करे भी तो उसका कारण बताना भी अनिवार्य होता।

(३) इनमें से प्रथम और तृतीय सूक्त जगती छन्द प्रधान हैं ही नहीं, केवल द्वितीय सूक्त ही जगती छन्दरश्मि प्रधान है।

इस कारण जागत सूक्तों के रूप में इन तीनों का ग्रहण करना तथा द्वितीय और तृतीय सूक्त के देवताओं में विसंगति वा विरोधाभास होना यह सिद्ध करता है कि इन सूक्तों का ग्रहण आचार्य सायण द्वारा किया जाना अनावश्यक, अप्रासंगिक और काल्पनिक है। वास्तविकता यह है कि पूर्व कण्डिका में तथा यहाँ तत् तद् देवता और छन्दों से युक्त किन्हीं अन्य सूक्तों का वर्णन है, जिसे ग्रन्थकार ने स्पष्ट नहीं किया है। इसलिए हमने किन्हीं विशेष सूक्तों का ग्रहण न करके सामान्य चर्चा की है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- जब विभिन्न तारों का निर्माण हो रहा होता है, उस समय तथा अन्य सभी लोकों के निर्माण के समय विद्युत् की सर्वोच्च भूमिका होती है। तारों के केन्द्रीय भाग के निर्माण के समय तक डार्क एनर्जी और डार्क मैटर सम्पीडन और संघनन क्रियाओं को बाधित करने का प्रयास करते रहते हैं। उस समय अति तीव्र ऊर्जायुक्त विद्युदावेशित तरंगें ही उस दुष्प्रभाव को नष्ट वा नियंत्रित करती हैं। इस कारण तारों के केन्द्रीय भाग के निर्माण के प्रारम्भिक चरण में विद्युत् को समृद्ध करने वाली जगती छन्द रश्मियां विशेषरूप से उत्पन्न होती हैं, जिनके कारण विभिन्न विद्युदावेशित सूक्ष्म कणों और क्वान्टाज् के उत्सर्जन और अवशोषण की प्रक्रिया तीव्र होती है। इस चरण के पश्चात् अर्थात् तारों के केन्द्रीय भाग में जो भी छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, वे पूर्वोत्पन्न जगती छन्द रश्मियों के साथ संगत होकर जगती छन्द रश्मियों जैसा ही प्रभाव उत्पन्न करती हैं, जिसके कारण केन्द्रीय भागों में नाभिकीय संलयन तथा ऊर्जा के उत्सर्जन और अवशोषण की प्रक्रिया तीव्र होने लगती है।।

२. अथैतत् त्रैष्टुभमच्छावाकोऽन्ततः शंसति, सं वां कर्मणेति; यदेव पनाय्यं, कर्म, तदेतदभिवदति।।
समिषेत्यन्नं वा इषोऽन्नाद्यस्यावरुद्ध्यै।।
अरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्तेति स्वस्तिताया एवैतदहरहः शंसति।।
अथाह यज्जागतं वै तृतीयसवनमथ कस्मादेषां त्रिष्टुभः परिधानीया भवन्तीति; वीर्यं वै त्रिष्टुब्वीर्य एव तदन्ततः प्रतितिष्ठन्तो यन्ति।।

व्याख्यानम्- उपर्युक्त प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि अच्छावाक के जागत सूक्त की उत्पत्ति के पश्चात् अन्त में पूर्वोक्त भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि प्राण से इन्द्राविष्णूदेवताक ऋ.६.६९ सूक्त की उत्पत्ति होती है। इस सूक्तरूप रश्मिसमूह के विषय में ३.५०.२ द्रष्टव्य है। संक्षेप में इस सूक्तरूप रश्मिसमूह का प्रभाव बतलाते हुए महर्षि कहते हैं कि इसके द्वारा विभिन्न प्रकार के देव परमाणु आदि पदार्थ नाना प्रकार के प्रकाशादि व्यवहारों को सब ओर से प्रकाशित और गतिमान करते हैं।।

इस उपर्युक्त सूक्तरूप रश्मिसमूह की प्रथम ऋचा में 'समिषा' पद विद्यमान है, जहाँ 'इष' का अर्थ है 'अन्न' अर्थात् संयोज्य परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ। इस कारण इस पद के प्रभाव से यह छन्द रश्मि अथवा यह सूक्तरूप रश्मिसमूह विभिन्न प्रकार के संयोज्य परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को सब ओर से रोककर अपने अधीन करने में समर्थ होता है, जिसके कारण विभिन्न पदार्थों के संपीडन, संघनन, संयोजन वा संलयन की क्रियाएं तीव्र होती हैं।।

उपर्युक्त सूक्त की प्रथम ऋचा के चतुर्थ पाद "अरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता" का प्रभाव बतलाते हुए कहते हैं कि यह छन्द रश्मि नाना प्रकार के अरिष्ट अर्थात् अहिंसित वा निरापद मार्गों पर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को सम्यग्रूप से पार लगाती है। इसका तात्पर्य यह है कि इस सूक्त वा इस छन्द रश्मि, विशेषकर इसके चतुर्थ पाद के प्रभाव से सम्पूर्ण पदार्थ सहजतापूर्वक सम्पीडित, संघनित और संलयित होने लगता है। यह छन्द रश्मि सभी देव लोकों, विशेषकर आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग को

तीक्ष्णता प्रदान करने में विशेष उपयोगी होती है। यह इन लोकों में निरन्तर सक्रिय बनी रहती है।।

यहाँ महर्षि पुनः कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि जब तृतीय सवन जगती छन्द रश्मियों की प्रधानता वाला होता है, तो उन जगती छन्द रश्मियों की विभिन्न परिधानीय छन्द रश्मियां त्रिष्टुप् छन्दस्क क्यों होती हैं? इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां विशेष तेज और बल से युक्त होती हैं। इस कारण उनके द्वारा आवेष्टित विभिन्न शस्त्ररूप छन्द रश्मियां अन्त में विशेष तेज और बल में प्रतिष्ठित हो जाती हैं अर्थात् तृतीय सवन किंवा आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों को तीव्र तेजस्विता प्रदान करने के लिए आदित्य लोकों में विद्यमान जगती छन्द रश्मिसमूहों को विभिन्न त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां आवेष्टित कर लेती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न तारों के केन्द्रीय भाग के निर्माण के समय एवं उसके पश्चात् भी उन केन्द्रीय भागों में विद्युत् चुम्बकीय तरंगें एवं विद्युदावेशित तरंगें धनंजय प्राण रश्मि के साथ संयुक्त होकर अति तीव्रगामी हो जाती हैं। इनकी छेदन और भेदन शक्ति भी अति प्रबल हो जाती है, जो किसी भी बाधा को पार करके अपने मार्गों पर तीव्रता से गमन करने में सक्षम हो जाती हैं। इससे तारों के अन्दर विद्युत् चुम्बकीय तरंगों का व्यापक स्तर पर उत्पादन और उत्सर्जन प्रारम्भ हो जाता है। इस कार्य में विशेषकर तारों के केन्द्रीय भाग में होने वाली क्रियाओं को तीक्ष्ण बनाने में त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की विशेष भूमिका होती है। उस समय ७ विभिन्न त्रिष्टुप् एवं १ उष्णिक् छन्द रश्मि, सब मिलकर विभिन्न जगती आदि छन्द रश्मियों को तीक्ष्णता प्रदान करके सम्पूर्ण तारे को विशेष तेजस्विता प्रदान करती हैं। ये ८ छन्द रश्मियां विभिन्न जगती छन्द रश्मियों को चारों ओर से घेरकर उन्हें तीव्रता प्रदान करती हैं।।

३. 'इयमिन्द्रं वरुणमष्टमे गीरिति' मैत्रावरुणस्य 'बृहस्पतिर्नः परिपातु पश्चादिति' ब्राह्मणाच्छंसिन, 'उभा जिग्यथुरित्यच्छावाकस्य'।।
उभौ हि तौ जिग्यतुः।।
न पराजयेथे न पराजिग्य इति।।
न हि तयोः कतरश्चन पराजिग्ये।।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथामिति।।

व्याख्यानम्- अब तीनों मुख्य शस्त्ररूप रश्मिसमूहों की परिधानीय अर्थात् आच्छादिका छन्द रश्मियों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि मैत्रावरुण शस्त्र की आच्छादिका छन्द रश्मि वसिष्ठ ऋषि प्राण से उत्पन्न इन्द्रावरुणौ-देवताक एवं निचृत्त्रिष्टुप् छन्दस्क-

इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत्तोके तनये तूतुजाना।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।५।। (ऋ.७.८४.५)

है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {तूतुजान = क्षिप्रनाम (निघं. २.१५)} विभिन्न छन्द रश्मियां इन्द्रतत्त्व सूत्रात्मा एवं व्यान वायु से व्याप्त होकर आशुगामी होती हुई विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों का विस्तार और रक्षा करती हैं। वे उत्तम देव परमाणुओं में व्याप्त होकर सदा सहज क्रियाओं को सम्पादित करती हैं।

ब्राह्मणाच्छंसी शस्त्र की परिधानीय छन्द रश्मि कृष्ण आङ्गिरस ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न विशेष आकर्षक प्राण रश्मियों से इन्द्र-देवताक तथा त्रिष्टुप् छन्दस्क-

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु।।११।। (ऋ.१०.४२.११)

है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह महान् पालक इन्द्रतत्त्व सब दिशाओं से विभिन्न लोकों एवं परमाणु आदि पदार्थों को सुरक्षित और प्रकाशित करते हुए सब ओर विचरण कराता है।

अच्छावाक शस्त्र की परिधानीय छन्द रश्मि पूर्वोक्त भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि प्राण से उत्पन्न इन्द्राविष्णूदेवताक एवं त्रिष्टुप् छन्दस्क-

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम्॥८॥ (ऋ.६.६९.८)

है। इसका प्रभाव ३.५०.२ में देखें।

इस प्रकार उपर्युक्त तीनों त्रिष्टुप् छन्दस्क रश्मियां मैत्रावरुणादि शस्त्ररूप छन्द रश्मिसमूहों की आच्छादिका एवं संरक्षिका होती हैं॥

यहाँ महर्षि अन्तिम परिधानीय छन्द रश्मि, जो अच्छावाक शस्त्र को आच्छादित करती हैं, के विषय में किंवा प्रभाव बतलाते हुए कहते हैं कि इसके प्रभाव से इन्द्र तथा विष्णु अर्थात् इन्द्रतत्त्व एवं धनंजय+व्यान वायु दोनों ही विशेष नियन्त्रण शक्ति सम्पन्न होते हैं। उनकी तीक्ष्णता ऐसी हो जाती है कि असुरादि तत्त्व वा अन्य कोई पदार्थ उन्हें पराभूत नहीं कर सकता। वैसे भी इन दोनों ही पदार्थों को कभी भी कोई पदार्थ बाधित नहीं कर सकता। इस छन्द रश्मि के प्रभाव से इनकी तीव्रता और भी बढ़ जाती है। जब इनका परस्पर मेल हो जाता है, तब इन्द्रतत्त्व की तीव्रता विशेष बढ़ जाती है। जब इन दोनों का असुर तत्त्व से युद्ध होता है, उस समय इन दोनों का संयुक्त रूप अपनी असंख्य प्रकार की बल रश्मियों का उन असुर परमाणु रश्मियों पर तीन प्रकार से प्रहार करता है, जिससे उनका बाधक प्रभाव नष्ट हो जाता है तथा इस इन्द्रतत्त्व का बल देव परमाणु आदि पदार्थ को तीन भागों में प्रेरित करता है, जिससे वह पदार्थ नाना प्रकार की सृजन प्रक्रियाओं को सम्पादित करने लगता है॥+॥+॥+॥

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्रीय भागों के निर्माण की प्रक्रिया के चलते एवं निर्माण प्रक्रिया के पूर्ण हो जाने पर भी पूर्वोक्त प्रक्रिया के उपरान्त तीन त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इनके कारण केन्द्रीय भागों में विद्युत् चुम्बकीय बलों के साथ व्यान व धनंजय रश्मियां विशेषरूप से मिश्रित हो जाने के कारण उन बलों की तीव्रता विशेष बढ़ जाती है। इस कारण केन्द्रीय भागों में डार्क एनर्जी वा डार्क मैटर का प्रक्षेपक प्रभाव पूर्ण नियन्त्रित हो जाता है और नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया समृद्ध होती है। इस समय विद्युत् बलों की तीव्रता इतनी होती है कि सृष्टि का कोई भी बाधक बल इसे दबा नहीं सकता॥

४. इन्द्रश्च ह वै विष्णुश्चासुरैर्युयुधाते; तान् ह स्म जित्वोचतुः, कल्पामहा इति; ते ह तथेत्यसुरा ऊचुः; सोऽब्रवीदिन्द्रो यावदेवायं विष्णुस्त्रिर्विक्रमते तावदस्माकमथ युष्माकमितरदिति; स इमाँल्लोकान् विचक्रमेऽथो वेदानथो वाचं; तदाहुः किं तत्सहस्रमितीमे लोका इमे वेदा अथो वागिति ब्रूयात्॥
ऐरयेथामैरयेथामित्यच्छावाक उक्थ्येऽभ्यस्यति; स हि तत्रान्त्यो भवति॥
अग्निष्टोमे होताऽतिरात्रे च; स हि तत्रान्त्यो भवति॥
अभ्यस्येत् षोळशिनी३ नाभ्यस्ये३त् इति? अभ्यस्येदित्याहुः; कथमन्येष्वहःस्वभ्यस्यति, कथमत्र नाभ्यस्येदिति, तस्मादभ्यस्येत्॥७॥

व्याख्यानम्- तृतीय सवन अर्थात् द्युलोकों, विशेषकर उनके केन्द्रीय भागों में इन्द्र वा विष्णु (धनंजय+व्यान

वायु) के असुर तत्त्व के साथ पूर्वोक्त युद्ध का वर्णन विस्तार से करते हुए देव व असुरों के मध्य वार्तालाप की शैली में समझाया गया है। इसमें बल के त्रिविध विभाग अर्थात् विष्णु के तीन पादों का रहस्योद्घाटन किया गया है। {कल्पामहे = (कल्पते अर्चतिकर्मा - निघं.३.१४)} असुर तत्त्व पर पूर्ण नियन्त्रण की प्रक्रिया तीन चरणों में होती है। इन तीनों चरणों के द्वारा ही इन्द्रतत्त्व तथा विष्णु तत्त्व पूर्ण प्रकाशित होकर पूर्ण समर्थ होते हैं अर्थात् तभी आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों में असुर तत्त्व पूर्ण नियन्त्रित होकर वे केन्द्रीय भाग अपना पूर्ण समृद्ध स्वरूप प्राप्त कर पाते हैं। ये तीन चरण निम्नानुसार हैं-

(१) सर्वप्रथम विष्णुतत्त्व अर्थात् धनंजय आदि प्राण रश्मियां पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोकों अर्थात् विभिन्न पार्थिव परमाणुओं, आकाश तत्त्व तथा अग्नि के परमाणुओं को अपने नियन्त्रण में लेने हेतु उनमें व्याप्त होने लगती हैं। यह धनंजय+व्यान रश्मियों का सर्वाधिक स्थूल प्रभाव होता है। हमारे मत में इन दोनों ही रश्मियों के साथ सूत्रात्मा वायु रश्मियों का भी योग होना आवश्यक है। तभी विभिन्न पदार्थों के संयोजन संलयन आदि की प्रक्रिया सम्यग्रूपेण हो पायेगी।

(२) इस उपर्युक्त प्रक्रिया को संचालित व सम्पादित करने हेतु यह दूसरा चरण प्रारम्भ होता है। इसमें ये धनंजयादि रश्मियां वेदत्रयी को व्याप्त व नियन्त्रित कर लेती हैं किंवा उनके साथ संगत होने लगती हैं। इसका तात्पर्य है कि ये धनंजयादि प्राण रश्मियां ऋक्, यजुः तथा साम भेद वाली विभिन्न छन्द रश्मियों में व्याप्त होकर अपना प्रभाव दर्शाकर उन्हें विशेष सक्रिय एवं सबल बनाती हैं। इसके कारण इन छन्द रश्मियों का भी पारस्परिक संयोजन, संलयन वा सम्पीडन समृद्ध होना प्रारम्भ हो जाता है।

(३) अन्त में इस प्रक्रिया का तृतीय चरण प्रारम्भ होता है। इसमें उपर्युक्त धनंजयादि रश्मियां वाक् तत्त्व अर्थात् 'ओम्' रूपी सूक्ष्मतम प्राण वा छन्द रश्मि को अपने अन्दर विशेषतः व्याप्त करने लगती हैं। इसके प्रभाव से धनंजयादि प्राण रश्मियां स्वयं अधिक तेज व बलयुक्त होने लगती हैं, जिसके कारण वे उपर्युक्त दोनों चरणों को और भी सशक्त व समृद्ध बनाने में सक्षम होने लगती हैं।

हमारे मत में यह क्रम प्रभाव की दृष्टि से विपरीत रूप में दर्शाया गया है, जो धनंजयादि रश्मियों को स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने व संगत वा सक्रिय होने को ही दर्शाता है। इस क्रम में उत्तर चरण पूर्व चरण का मूलरूप है। जब तक द्वितीय चरण सम्पन्न व समर्थ नहीं होगा, तब तक प्रथम चरण सम्पन्न व समर्थ नहीं होगा और जब तक तृतीय चरण सम्पन्न व समर्थ नहीं होगा, तब तक द्वितीय चरण सम्पन्न व समर्थ नहीं होगा। इसका तात्पर्य है कि धनंजयादि रश्मियों को 'ओम्' छन्द रश्मि समर्थ बनाती है, पुनः वे समर्थ हुई धनंजयादि रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों को समर्थ बनाती हैं। अन्त में वे समर्थ छन्द रश्मियां तीनों उपर्युक्त लोकों वा कणों को समर्थ व सक्रिय करती हैं। उसके पश्चात् ही विभिन्न लोकों में सम्पीडन, संलयन आदि क्रियाएं प्रारम्भ व समर्थ हो पाती हैं।

अब इसी प्रकरण में ग्रन्थकार ने लिखा है कि ये सभी लोक, वेद अर्थात् छन्द रश्मियां तथा वाक् तत्त्व अर्थात् 'ओम्' छन्द रश्मियां संख्या वा मात्रा की दृष्टि से सहस्र हैं। यहाँ 'सहस्रम्' पद का अर्थ असंख्य है। एक तत्त्ववेत्ता ऋषि के शब्दों में "परमः सहस्रम्।" (तां.१६.९.२)। अन्य ऋषियों का कथन है-

"सर्वं वै सहस्रम्" (श.४.६.१.१५; ६.४.२.७)

इसका तात्पर्य है कि सभी प्रकार के पदार्थ असंख्य मात्रा में पार्थिव व आग्नेय परमाणुओं व आकाश तत्त्व की रश्मियों के रूप में विद्यमान हैं। इनसे पृथक् कोई पदार्थ इनके समकक्ष (सूक्ष्म वा स्थूल रूप में) विद्यमान नहीं है। इस विषय में एक अन्य ऋषि ने कहा है- "सहस्रसंमिता हीमे लोकाः" (काठ.२१.६) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड इन्हीं से ही निर्मित है। यह प्रथम चरण की बात है।

द्वितीय चरण के विषय में भी यही ज्ञातव्य है कि यह उपर्युक्त त्रिलोकी सृष्टि वेद अर्थात् विभिन्न छन्दों, जिनमें विभिन्न प्राण रश्मियां भी समाहित हैं, से ही उत्पन्न होती है तथा ये छन्द रश्मियां संख्या वा मात्रा की दृष्टि से असंख्य हैं। छन्द रश्मियां भेद की दृष्टि से तो असंख्य वा अनन्त नहीं परन्तु कुल मात्रा की दृष्टि से असंख्य वा अनन्त हैं। इसे ही कभी देवराज इन्द्र ने महर्षि भरद्वाज से कहा था - "अनन्ता वै वेदाः।" (तै.ब्रा.३.१०.११.४)

इसी प्रकार तृतीय चरण के विषय में स्पष्ट है कि वाक् तत्त्व अर्थात् सूक्ष्मतम 'ओम्' छन्द रश्मियों की मात्रा भी इस सृष्टि में अनन्त है। इनका पश्यन्ती रूप ही सभी छन्द रश्मियों व लोकों का उपादान कारणरूप है। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"यथा हि परिमिता वर्णा अपरिमितां वाचो गतिम्" (आश्व.श्रौ.१०.५.१६)

ग्रन्थकार ने इसी ग्रन्थ में अन्यत्र कहा है-

"न वै वाक् क्षीयते" (ऐ.५.१६)

यही वाक् तत्त्व सम्पूर्ण सृष्टि का मूल है। इसके विषय में ग्रन्थकार ने अन्यत्र कहा है-

"वाचा वै वेदाः संधीयन्ते, वाचा छन्दांसि, वाचा मित्राणि संदधति वाचा सर्वाणि भूतान्यथो वागेवेदं सर्वमिति।" (ऐ.आ.३.१.६)

इस प्रकार विष्णु के तीन पगों का रहस्य प्रकट करके स्पष्ट किया गया कि कैसे इन्द्रतत्त्व धनंजयादि प्राण रश्मियों के साथ संगत होकर असुर पदार्थ को निराकृत करके द्युलोकों के निर्माण को निरापद बनाता है।।

पूर्वोक्त अच्छावाक की परिधानीय छन्द रश्मि

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम्।।८।। (ऋ.६.६९.८)

का अन्तिम पद "ऐरयेथाम्" तृतीय सवन वा द्युलोकों के केन्द्रीय भागों की विभिन्न प्रक्रियाओं, जिनकी चर्चा इस प्रकरण में की गई है, में दो वार उत्पन्न व सर्वत्र प्रक्षिप्त होता है। इसका कारण है कि यह पद इस ऋचा का अन्तिम पद है। हमारे मत में यह पदरूप छन्दरश्मि अवयव दो वार उत्पन्न होने से इस परिधानीय छन्द रश्मि के परिधान वा आच्छादन कर्म को विशेषरूप से समृद्ध करता है। यहाँ इसका यह प्रयोजन प्रतीत होता है। इसके साथ ही यह अपने प्रेरण कर्म को द्विगुणित करके द्युलोकों की क्रिया व बलों को तीक्ष्ण बना देता है। यह इसी छन्द रश्मि के अन्य पदरूप रश्मि अवयवों को भी पृथक् से प्रेरित करके उनके प्रभाव को बढ़ाने में समर्थ होता है।।

अच्छावाक नामक होत्रक की परिधानीय छन्द रश्मि की महिमा के वर्णन के उपरान्त पूर्वोक्त होता संज्ञक होत्रक, जिसकी परिधानीय छन्द रश्मि का इस प्रकरण में पूर्व में वर्णन नहीं किया है, वर्णन करते हुए कहते हैं कि द्युलोक निर्माण की प्रक्रिया के अग्निष्टोम तथा अतिरात्र क्षेत्रों में अर्थात् द्युलोकों के केन्द्रीय भाग तथा सम्पूर्ण द्युलोक में पृथक्-२ दो ऋचाएं होता की परिधानीयरूप में उत्पन्न होती हैं। इनमें से द्युलोकों के केन्द्रीय भाग रूपी अग्निष्टोम क्षेत्र में

एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी करत्सत्या चर्षणीधृदनर्वा।
त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे अधि श्रवो माहिनं यज्जरित्रे।।२०।। (ऋ.४.१७.२०)

की उत्पत्ति होती है। इसके विषय में ३.३८.४ में देखें, जहाँ इसका परिधानीय रूप में ही उत्पन्न होना वर्णित है। इस ऋचा के विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शीति परिदध्यात्" (आश्व.श्रौ.५.२०.६)

इस ऋचा के अन्तिम पद 'यज्जरित्रे' का पूर्वोक्तवत् दो वार अभ्यास होता है अर्थात् दो वार आवृत्ति होती है। इसके प्रभाव से अग्निष्टोम क्षेत्र अर्थात् केन्द्रीय भागों की प्रकाशन क्रिया समृद्ध होती है।

उधर अतिरात्र अर्थात् सम्पूर्ण द्युलोक में होता नामक होत्रक को परिधानीयरूप में वर्णित करते हुए कहा है-

"बृहस्पते अति यदर्यो अर्हादिति परिधानीया।" (आश्व.श्रौ.६.५.१८)

अर्थात्

"बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु।
यद् दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्।।१५।। (ऋ.२.२३.१५)

की परिधानीय के रूप में उत्पत्ति होती है। इसके विषय में ४.११.२ द्रष्टव्य है। यहाँ इसके अन्तिम पद **'धेहि चित्रम्'** की दो बार आवृत्ति होती है। इसके प्रभाव से द्युलोक अपने सम्पूर्ण पदार्थ को विचित्र ढंग से निरन्तर धारण व पुष्ट करता रहता है। यद्यपि यह गुण एक आवृत्ति से भी होगा परन्तु दो बार आवृत्त होने का प्रयोजन यह है कि धारण क्षमता और भी अधिक बढ़ जाती है।।

यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हैं कि उपर्युक्त अच्छावाक तथा होता संज्ञक होत्रकों की परिधानीय छन्द रश्मियों के अन्तिम पदों की दो बार आवृत्ति होती है, तब क्या षोळशी शस्त्र की परिधानीयरूप छन्द रश्मि के अन्तिम पद की भी दो बार आवृत्ति होती है? यहाँ आचार्य सायण ने षोळशी की परिधानीय के रूप में

उद्यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि।
मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे।।७।। (ऋ.८.६९.७)

को उद्धृत किया है। इस छन्द रश्मि के विषय में ४.४.४ द्रष्टव्य है। इस ऋचा को ग्रहण करने में महर्षि आश्वलायन का कथन

"उद्यद्ब्रध्नस्य विष्टपमिति परिधानीया......"(आश्व.श्रौ.६.२.१२) आधार है। षोडशी के विषय में ग्रन्थकार का कथन है-

"सर्वेभ्यो वा एष लोकेभ्यः सन्निर्मितो यत् षोडशी" (ऐ.४.४)

इसका तात्पर्य यह है कि द्युलोक तथा पृथिव्यादि लोकों का एक मंडल षोडशी कहलाता है। यह भी सम्भव है कि महाद्युलोक, जिसके चारों ओर अनेकों आदित्य लोक अपने परिवार के साथ परिक्रमण करते हैं, को षोडशी कहा जाता हो। षोडशी के विषय में कुछ अन्य ऋषियों का कथन है-

"यद्वाव षोडशः स्तोत्रः षोडशः शस्त्रं तेन षोडशी" (तै.सं.६.६.११.१)

"षोळशः स्तोत्राणां षोळशः शस्त्राणां षोळशभिरक्षरैरादत्ते षोळशभिः प्रणौति षोळशपदान्निविदं दधाति तत्षोळशिनः षोळशित्वम्" (ऐ.४.१)

"सूर्यराज्यः षोडशिना (अभिजयति)" (मै.१.८.६)

इनसे संकेत मिलता है कि इन विशाल लोकों में १६ प्रकार की शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मियां विद्यमान होती हैं, जिनके विषय में अध्याय १६ विशेष द्रष्टव्य है। यहाँ प्रश्न यह है कि इन षोडशी शस्त्रों की उपर्युक्त परिधानीय छन्द रश्मि के अन्तिम पद "सख्युः पदे" की दो बार आवृत्ति होती है वा नहीं? इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि हाँ, अवश्य ही इसकी आवृत्ति होती है, क्योंकि जब अन्य लोकों में शस्त्ररूप रश्मियों की परिधानीय ऋचाओं के अन्तिम पदों की दो बार आवृत्ति होती है, तो इस विशाल लोकमण्डल में क्यों नहीं? यहाँ इन पदों के दो बार आवृत्त होने से ये विशाल लोक अपने साथ संगत अन्य लोकों के मार्गों को व्यवस्थित करने में सहयोग पाते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के निर्माण की प्रक्रिया में दृश्य पदार्थ का जब डार्क मैटर और डार्क एनर्जी से संघर्ष होता है, उस समय तीन चरणों में डार्क एनर्जी आदि के दुष्प्रभाव को दूर किया जाता है। इसमें सर्वप्रथम धनंजय एवं व्यान रश्मियां विभिन्न मूलकणों एवं क्वाण्टाज् में व्याप्त होती हैं। द्वितीय चरण में ये धनंजय आदि प्राण रश्मियां विभिन्न कणों और क्वाण्टाज् के अन्दर विद्यमान विभिन्न छन्द रश्मियों में व्याप्त होती हैं। इसके पश्चात् तृतीय चरण में ये धनंजय आदि रश्मियां उन छन्द रश्मियों की कारणरूप और उनमें व्याप्त **'ओम्'** छन्द रश्मि के साथ विशेषरूप से संगत होकर विशेष क्रियाशील हो उठती हैं। ध्यातव्य है कि **'ओम्'** छन्द रश्मि धनंजय आदि की भी कारणरूप होती है। इस प्रकार इन तीनों चरणों के सम्पन्न होने पर सभी प्रकार के कण और क्वान्टाज् इतने समर्थ हो जाते हैं कि वे डार्क एनर्जी आदि के तीक्ष्ण प्रक्षेपक प्रभाव आदि से पृथक् रहकर लोक निर्माण की प्रक्रिया को यथाविध सम्पादित करने लगते हैं। **इस ब्रह्माण्ड में मूलकण और क्वाण्टाज् की संख्या अपरिमित होती है। यद्यपि यह संख्या ईश्वर की दृष्टि से परिमित और गणनीय होती है, परन्तु मानव की दृष्टि से यह असंख्य है।** वर्तमान विज्ञान भी सम्पूर्ण सृष्टि के बारे में अभी कुछ कहने की स्थिति में नहीं है। हाँ, वह जितने भाग को अपनी तकनीक से देख चुका है, उसी के बारे में ही कुछ कल्पना कर पा रहा है। इस कारण इसे अपरिमित ही कहना उचित है। **इन कणों वा क्वाण्टाज् की रचना विभिन्न छन्दादि रश्मियों से होती है, अतः उनकी**

संख्या और भी अधिक वा अनन्त है। 'ओम्' छन्द रश्मिों की संख्या सर्वाधिक होती है, अतः ये भी अनन्त है। विभिन्न तारों के केन्द्रीय भागों, तारों के सम्पूर्ण भाग तथा आकाशगंगा के केन्द्रीय लोक के निर्माण की प्रक्रिया में कुछ तीक्ष्ण व आच्छादक छन्द रश्मियों के अन्तिम भाग की दो-२ आवृत्ति हुआ करती हैं। इससे ये छन्द रश्मियां और भी तीक्ष्ण व प्रभावी हो जाती हैं। विशेष जानकारी हेतु व्याख्यान भाग द्रष्टव्य है।।
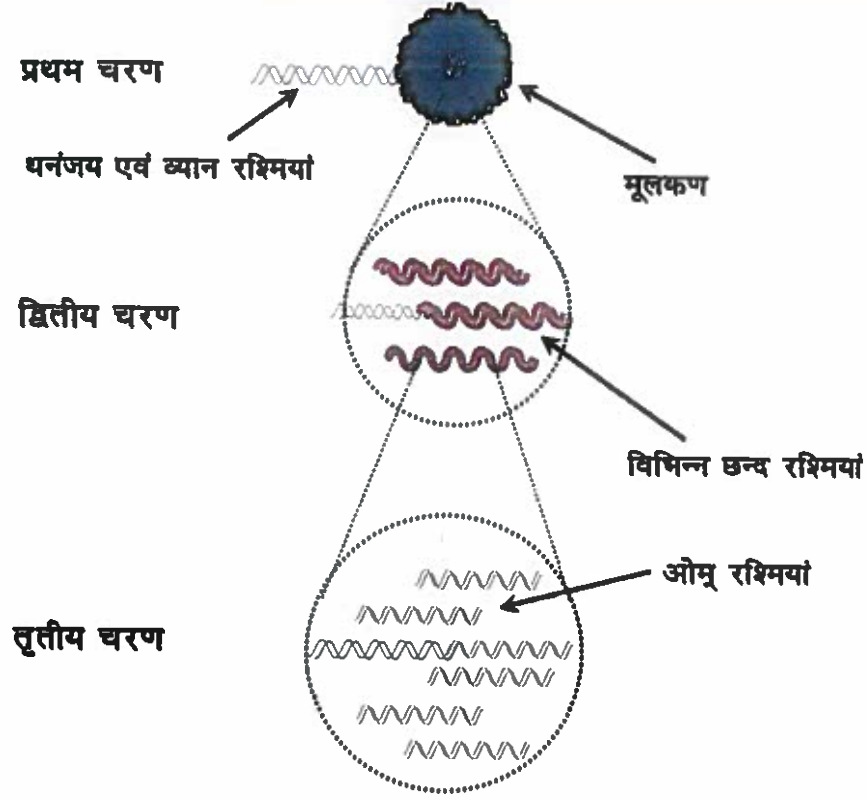
चित्र २८.२ तारों के निर्माण की प्रक्रिया में डार्क मैटर और डार्क एनर्जी को दूर करने की प्रक्रिया

॥ इति २८.७ समाप्तः ॥

ॐ अथ २८.८ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. अथाह यन्नाराशंसं वै तृतीयसवनमथ कस्मादच्छावाकोऽन्ततः शिल्पेष्वनाराशंसीः शंसतीति।।
विकृतिर्वै नाराशंसं, किमिव च वै किमिव च रेतो विक्रियते, तत्तदा विकृतं प्रजातं भवत्यथैतन्मृद्विवच्छन्दः शिथिरं यन्नाराशंसमथैषोऽन्त्यो यदच्छावाकस्तद्दृळहतायै दृळहे प्रतिष्ठास्याम इति।।
तस्मादच्छावाकोऽन्ततः शिल्पेष्वनाराशंसीः शंसति दृळहतायै, दृळहे प्रतिष्ठास्याम इति दृळहे प्रतिष्ठास्याम इति।।८।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि तृतीय सवन नराशंस-देवताक माना जाता है। {नरः = प्रजा वै नरः (ऐ.२.४), नरो वै देवानां ग्रामः (तां.६.९.२)। नराशंस = प्रजा वै नरस्ता इमा अन्तरिक्षमनु वावद्यमानाः प्रजाश्चरन्ति यद्वै वदति शंसतीति वै तदाहुस्तस्मादन्तरिक्षं नराशंसः (श.१.८.२.१२)} इसका तात्पर्य यह है कि इस समय उत्पन्न ऋचाओं में नराशंस-देवताक छन्द रश्मियों की प्रधानता होनी चाहिए, जिससे सम्पूर्ण पदार्थ अर्थात् आशुगामी परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों के विशाल समूहों तथा आकाशतत्त्व के मध्य विशेष संगमनीय क्रियाएं होनी चाहिए। नराशंस के विषय में महर्षि यास्क ने कुछ प्राचीन आचार्यों का मत प्रस्तुत करते हुए लिखा है-

"नराशंसो यज्ञ इति कात्थक्यो नरा अस्मिन्नासीनाः शंसन्त्यग्निरिति शाकपूणिर्नरैः प्रशस्यो भवति" (नि.८.६)

इस कथन से यह और स्पष्ट होता है कि नराशंस देवताक छन्द रश्मियां विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को विशेष रूप से संगत करने के साथ-२ अग्नि तत्त्व को भी समृद्ध करती हैं। यहाँ प्रश्न यह उठाया गया है कि पूर्वोक्त अच्छावाक शस्त्र संज्ञक रश्मियों की उत्पत्ति के अन्त में शिल्प नामक शस्त्रों में तृतीय सवन के प्रकरण में नराशंसी से भिन्न देवताक छन्द रश्मियों की उत्पत्ति क्यों होती है? इस विषय में महर्षि आश्वलायन का भी मत है-

"त ऊर्ध्वमनुरूपेभ्यो विकृतानि शिल्पानि शंसेयुः" (आश्व.श्रौ.८.२.२)

इस पर वृत्तिकार आचार्य नारायण का कथन है-

"ते होत्रका अनुरूपेभ्य ऊर्ध्वं वालखिल्यादीनि शिल्पसंज्ञकानि विहरणन्यूङ्ख-निनर्दादिभिर्विकृतानि शंसेयुः। त इति वचनं होत्रका एवानुरूपेभ्य ऊर्ध्वं शिल्पानि शंसेयुर्होता त्वन्यत्रेति ज्ञापनार्थम्। तेन नाभानेदिष्ठस्यापि शिल्पत्वं साधितं भवति। ऊर्ध्वमनुरूपेभ्य इति शिल्पानां स्थानविधानम्। विकृतानीति वचनं विकृतान्यविकृतानि चेति शिल्पानां द्वैविध्यप्रदर्शनार्थम्। तेनैषु त्रिषु शस्त्रेषु विकृतानि शस्त्राणीति विद्यात्। यानि पुनः प्रकृत्या शिल्पानि शंसेयुरित्यत्रोक्तानि तान्यविकृतानीति विद्यात्। द्वैविध्यप्रदर्शनस्य प्रयोजनं शिल्पान्यविकृतानि शंसेयुरित्यत्राविकृतानामेव प्रापणार्थम्।"

इससे यह संकेत मिलता है कि पूर्वोक्त विभिन्न क्रियाओं के पश्चात् वालखिल्य नामक सूक्तों की उत्पत्ति होती है। ये सूक्त ऋग्वेद में (८.४९ से लेकर ८.५९ तक) कुल ११ हैं। इन्हीं वालखिल्य सूक्तों को यहाँ शिल्प कहा जाता है। {शिल्पम् = कर्मनाम् (निघं.२.१), रूपनाम (निघं.३.७)} ये छन्द रश्मियां द्युलोकों के अन्दर नाना प्रकार की क्रियाओं के द्वारा विभिन्न रूपों को उत्पन्न करती हैं। वालखिल्य सूक्तों के विषय में ५.१५.१ की प्रथम कण्डिका द्रष्टव्य है। यहाँ आचार्य नारायण ने नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण से उत्पन्न छन्द रश्मियों को भी शिल्प कहा है। इस कारण नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण से उत्पन्न छन्द रश्मियों के विषय में खण्ड ५.१३-१४ द्रष्टव्य है। इन शिल्प संज्ञक छन्द रश्मियों के विषय में एक अन्य ऋषि का

कथन है-

"शिल्पैर्हि सर्वं कुर्वन्ति।" (काठ.संक.८.५ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत)

इससे स्पष्ट है कि द्युलोकों के अन्दर सभी क्रियाएं इन शिल्प संज्ञक छन्द रश्मियों की उपस्थिति में ही हो पाती हैं। यहाँ प्रश्न यह उठाया गया है, कि इस तृतीय सवन में ६.१४.३ एवं ६.१५.२ में वर्णित क्रमशः इन्द्राविष्णूदेवताक एवं इन्द्रदेवताक सूक्त अच्छावाक शस्त्र के द्वारा उत्पन्न होते हैं। आचार्य सायण ने इसे सूक्त (ऋ.२.१३) के रूप में वर्णित किया है, जिसका प्रत्याख्यान हमने उपरिवर्णित खण्डों में विस्तार से किया है। निश्चय ही ये सूक्त नराशंसदेवताक नहीं हैं, तब इनकी उत्पत्ति इस तृतीय सवन में क्यों होती है, यही प्रश्न है?।।

इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि नराशंस अवस्था द्युलोकों की लगभग अन्तिम अवस्था होती है। यह कैसे उत्पन्न होती है? उसकी एक उपमा देते हुए ऋषि लिखते हैं कि जिस प्रकार गर्भाशय में निषेचित शुक्र और रज अति सूक्ष्म अवस्था से विकृत होता हुआ शनैः-२ विकसित शरीर का रूप प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार नाराशंस रूप विकृत अवस्था, जो द्युलोकों का विकसित रूप होती है, सूक्ष्म बिन्दु रूप से प्रारम्भ होकर अन्त में विशाल लोक का रूप धारण कर लेती है। उसके सम्पूर्ण रूप से विकसित होने के लिए नराशंसविहीन देवता वाली छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इसका कारण यह है कि नराशंसदेवताक छन्द रश्मियां मृदु और शिथिल होती हैं अर्थात् वे न्यून बलयुक्त होती हैं, उन्हें दृढ़ और तीक्ष्ण बनाने के लिए ही पूर्वोक्त इन्द्राविष्णू और इन्द्रदेवताक छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है, जिससे द्युलोक दृढ़ता को प्राप्त करके बिखरने न पाये। यहाँ हमें यह प्रतीत होता है कि नराशंसदेवताक छन्द रश्मियां भी द्यु आदि लोकों के निर्माण में अवश्य उत्पन्न होती हैं और वे न्यून बलयुक्त होती हैं, जिन्हें दृढ़ बलयुक्त करने के लिए ही इन्द्रादि-देवताक छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। यदि ऐसा न होता तो नराशंसदेवताक छन्द रश्मियों के न्यूनबल होने और उन्हें सुदृढ़ करने के लिए इन्द्रादि-देवताक छन्द रश्मियों की उत्पत्ति की आवश्यकता और चर्चा ही न होती।।

प्रकरण का उपसंहार करते हुए महर्षि लिखते हैं कि इन उपर्युक्त कारणों से तृतीय सवन में अच्छावाक के द्वारा विभिन्न वालखिल्य छन्द रश्मियों के मध्य नराशंस देवता से पृथक् देवता वाली अर्थात् पूर्वोक्त इन्द्राविष्णू और इन्द्रदेवताक छन्द रश्मियां द्युलोकों को दृढ़ बनाने के लिए ही उत्पन्न होती हैं। अच्छावाक के विषय में महर्षि जैमिनी का कथन है-

"ईर्म इव वा एषा होत्राणां यदच्छावाकः" (जै.ब्रा.२.३७८)।

{ईर्म = ईर्म इति बाहुनाम समीरिततरो भवति (नि.५.२५)} इसका तात्पर्य यह है कि अच्छावाक संज्ञक छन्द रश्मियां अपनी सहयोगिनी छन्दादि रश्मियों के साथ मिलकर अन्य शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मियों को अपने साथ दृढ़ता से जोड़ते हुए सम्पूर्ण द्युलोक को दृढ़ आकार एवं दृढ़ केन्द्रीय लोक प्रदान करती हैं। इस कार्य में नराशंसविहीनदेवताक पूर्वोक्त छन्द रश्मियों की विशेष भूमिका होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न **लोकों के निर्माण की प्रक्रिया कॉस्मिक मेघों के अन्दर बिन्दुरूप में प्रारम्भ होती है, जो इसी प्रकार धीरे-२ विशाल आकार वाले तारे एवं ग्रहादि लोकों को उत्पन्न करती है,** जिस प्रकार गर्भ के अन्दर भ्रूण का विकास बिन्दुरूप से प्रारम्भ होकर शनैः-२ होता है। विभिन्न लोकों के दृढ़ आकार प्रदान करने में धनंजय, व्यान, एवं सूत्रात्मा वायु रश्मियों से विशेष सम्पन्न ऐसी छन्द रश्मियों की विशेष भूमिका होती है, जो विद्युत् और गुरुत्व दोनों बलों को तीव्र करती है। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

ॐ इति २८.८ समाप्तः ॐ

ॐ इति अष्टाविंशोऽध्यायः समाप्तः ॐ
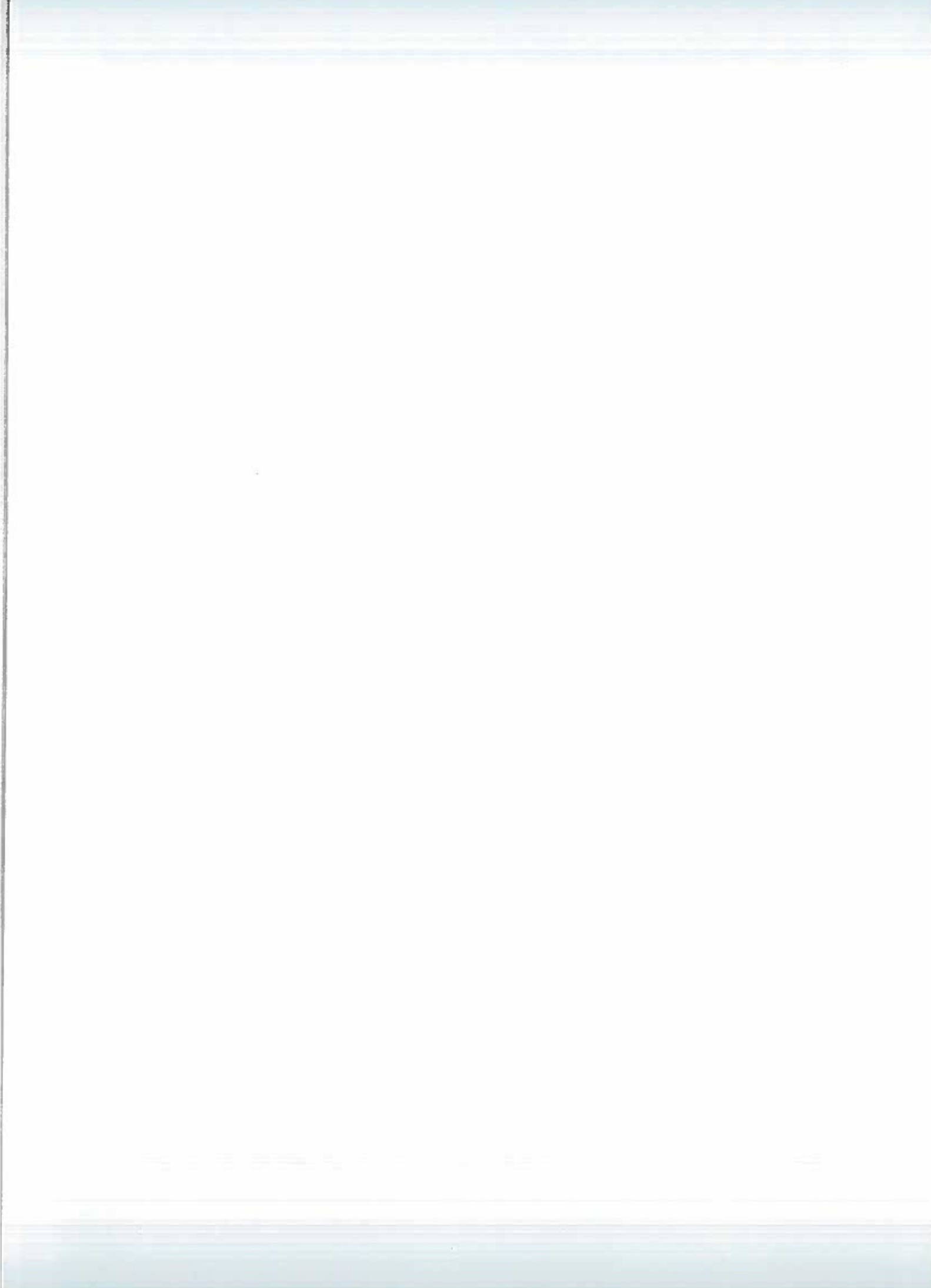
एकोनत्रिंशोऽध्यायः

"

सृष्टि का यह सार्वत्रिक शाश्वत नियम है कि मूलकण से लेकर क्वाण्टाज् वा विशाल लोक तक सरल मार्ग का ही अनुसरण करते हैं। यही कारण है कि ऊष्मादि ऊर्जाएं उच्च से निम्न स्तर की ओर गमन करती हैं। उच्च दाब अनुकूलता से निम्न दाब में परिवर्तित होता रहता है।

"

।। ओ३म् ।।

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व।।

अनुक्रमणिका

२९.१	स्तोत्रिय-अनुरूप, एकाह-अहीन। प्राण, छन्द व विद्युत् की सतत संचरणशीलता।	1815
२९.२	सम्पात सूक्त। तारों व गैलेक्सियों के केन्द्रों का विज्ञान, डार्क एनर्जी-दृश्य पदार्थ संघर्ष, लोकों की गतियाँ, प्राण-छन्द व विद्युत् का रहस्यमय व्यवहार। लोकों के निर्माण व गतियों का विज्ञान।	1819
२९.३	लोकों के मार्ग व गतियों का निर्धारण, उनकी निर्माण प्रक्रिया का विज्ञान, विभिन्न कणों द्वारा प्रकाश का उत्सर्जन मैत्रावरुण-ब्राह्माणाच्छंसी-अच्छावाक। लोकों व कणों के निर्माण का विज्ञान। चतुर्विंश-अभिजित्-विषुवत्-विश्वजित्-महाव्रत नामक अहन्। संपात सूक्तों का विनियोग-मैत्रावरुण-ब्राह्मणच्छंसी-अच्छावाक। संपात व मास रश्मियों का विभिन्न लोकों पर प्रभाव। लोक निर्माण प्रक्रिया का विज्ञान। महास्तोम कणों-लोकों का गति विज्ञान, लोकों की संरचना, क्वाण्टाज् की ऊर्जा के संरक्षण का विज्ञान।	1845
२९.४	तारों की निर्माण-प्रक्रिया।	1859
२९.५	विभिन्न लोकों के निर्माण का विज्ञान। विभिन्न तरंगों, आकाश एवं कणों की उत्पत्ति का क्रम। विभिन्न रश्मियों के संयोजन में समानधर्मिता की आवश्यकता।	1865
२९.६	विभिन्न बलों की क्रियाविधि।	1871
२९.७	अहीन रश्मियों का संयोग-वियोग। क्वाण्टाज् और कणों का स्वरूप। चतुर्विंश अहन् में परिधानीय रश्मियों का संयोग-वियोग। इसमें प्राण और अपान छन्द रश्मियों की भूमिका। संयोजक-वियोजक छन्द रश्मियों का स्वरूप। विभिन्न कणों और क्वाण्टाज् का स्वरूप और उनकी अन्योन्य क्रिया का विज्ञान।	1875
२९.८	वलासुर से देवों का संघर्ष। नभाक ऋषि। वालखिल्य। वाचःकूट। ऋचाओं का विहरण। डार्क और दृश्य पदार्थ का संघर्ष। दशम अहन्।	1880

महाव्रत-महानाम्नी। डार्क मैटर व डार्क एनर्जी से दृश्य पदार्थ का संघर्ष।

२९.९ दूरोहण-तारों के निर्माण का विज्ञान 1889

२९.१० दूरोहण और ऐकाहिक रश्मियों का सम्बन्ध और संयोग। षष्ठम अहन्। तारों के निर्माण और संरचना का विज्ञान। प्रेरित और प्रेरक पदार्थों का स्वरूप। संयोजन और विभाजन में ऊर्जा की भूमिका 1895

अथ २९.१ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. यः श्वः स्तोत्रियस्तमनुरूपं कुर्वन्ति, प्रातःसवनेऽहीनसंतत्यै।। यथा वा एकाहः सुत एवमहीनस्तद्यथैकाहस्य सुतस्य सवनानि संतिष्ठमानानि यन्त्येवमेवाहीनस्याहानि संतिष्ठमानानि यन्ति; तद्यच्छ्वःस्तोत्रियमनुरूपं कुर्वन्ति प्रातःसवनेऽहीनसंतत्या, अहीनमेव तत् संतन्वन्ति।। ते वै देवाश्च ऋषयश्चाद्रियन्त समानेन यज्ञं संतनवामेति त एतत् समानं यज्ञस्यापश्यन्, समानान् प्रगाथान्, समानीः प्रतिपदः, समानानि सूक्तानि।। ओकःसारी वा इन्द्रो यत्र वा इन्द्रः पूर्वं गच्छत्यैव तत्रापरं गच्छति, यज्ञस्यैव सेन्द्रतायै।।१।।

व्याख्यानम्- {श्वः = श्वो बृहत् (साम) (तै.सं.३.१.७.२)} पूर्वोक्त विभिन्न प्रक्रियाओं के विषय में कुछ अन्य चर्चा प्रारम्भ करते हुए कहते हैं कि स्तोत्रियरूप प्राण रश्मियां अन्य आगामी प्राण रश्मियों के साथ संगत होने के लिए अनुरूप संज्ञक अपान रश्मियों को धारण करती हैं, जैसा कि खण्ड ६.५ की प्रथम कण्डिका में भी दर्शाया गया है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि कोई भी प्राण नामक प्राण रश्मि निकटतम आगामी काल में उत्पन्न होने वाली प्राण रश्मि के साथ संगत होने के लिए सदैव तत्पर रहती है और जैसे ही आगामी प्राण रश्मि उत्पन्न होती है, वैसे ही पूर्वोक्त प्राण रश्मि उसके साथ संगत अपान रश्मि को धारण कर लेती है। इस प्रक्रिया के प्रभाव से प्रातःसवन में विद्यमान विभिन्न छन्द रश्मियां, विशेषकर गायत्री छन्द रश्मियों की परिधानीय अहीन रश्मियों का अहीन रूप निरन्तर विस्तृत बना रहता है। अहीन रश्मियों के विषय में विशेष जानकारी के लिए खण्ड ६.८ द्रष्टव्य है। यहाँ इस विषय में अन्य प्रकार से भी चर्चा करते हैं। हमारे मत में यहाँ बृहत्साम रश्मियां, जिनके विषय में पूर्व में अनेकत्र चर्चा की जा चुकी है, भी 'श्वः' का रूप होती हैं और ये छन्द रश्मियां प्राण नामक प्राण तत्त्व का प्रभाव भी दर्शाती हैं। इस विषय में ऋषियों का कथन है-

"प्राणो बृहत्" (तां.७.६.१४), "प्राणो बृहतः" (रूपम्) (ऐ.आ.३.१.६)

जैसा कि हम खण्ड ६.५ में पढ़ चुके हैं कि साम रश्मियां स्तोत्रियरूप एवं ऋग् रश्मियां अनुरूप संज्ञक होती हैं। इसमें इस कण्डिका का यह रहस्य और प्रकट होता है कि बृहत्साम रश्मियां विशेष प्रकाशित होती हुई अपने अनुरूप ऋग्रूप छन्द रश्मियों को धारण करके प्रकाशित होती हैं। हमारे इस मत की पुष्टि महर्षि याज्ञवल्क्य के कथन "ऋचि साम गीयते" (श.८.१.३.३) अर्थात् साम रश्मियां ऋग् रश्मियों में आश्रित होकर प्रकाशित होती हैं, से होती है। इस प्रक्रिया के द्वारा भी प्रातःसवन में विद्यमान विभिन्न छन्द रश्मियों की अहीन संज्ञक आच्छादिका रश्मियां निरन्तरता एवं विस्तार को प्राप्त करती रहती हैं।।

यहाँ महर्षि ऐकाहिक एवं अहीन संज्ञक परिधानीय छन्द रश्मियों की तुलना करते हुए लिखते हैं {सुतः = प्रेरितः (म.द.य.भा.२०.५५), संतापितः (म.द.ऋ.भा.१.८०.२)} कि जिस प्रकार ऐकाहिक संज्ञक परिधानीय = आच्छादिका रश्मियां अपने द्वारा संपीडित, संतापित अथवा प्रेरित छन्द रश्मियों को धारण और नियंत्रित करती हैं एवं उनके द्वारा नाना पदार्थों को उत्पन्न व संतप्त करती हैं, उसी प्रकार अहीन संज्ञक परिधानीय छन्द रश्मियां भी अपने अन्दर आच्छादित व सुरक्षित छन्द रश्मियों को क्षीण न होने देने के साथ-२ प्रेरित, नियंत्रित और संतप्त भी करती हैं। ये दोनों प्रकार की परिधानीय रश्मियां विभिन्न सवनों किंवा उनके अन्दर होने वाली नाना प्रकार की क्रियारत संयोगादि प्रक्रियाओं को अच्छी प्रकार से

संपन्न करती एवं स्थायित्व प्रदान करती हैं। यहाँ ऐकाहिक छन्द रश्मियों के विषय में खण्ड ६.८ द्रष्टव्य है। इस प्रकार अहीन और ऐकाहिक संज्ञक परिधानीय छन्द रश्मियों की समानता दर्शाने के पश्चात् महर्षि कहते हैं कि पूर्व कण्डिका में जो स्तोत्रिय और अनुरूप की प्रक्रिया को दर्शाया गया है, उसके कारण उन ऐकाहिक और अहीन संज्ञक छन्द रश्मियों की सभी प्रकार की उपर्युक्त क्रियाएं अक्षुण्ण रहकर सतत विस्तृत होती रहती हैं अर्थात् उनमें विराम और क्षीणता नहीं आती।।

यहाँ महर्षि पूर्वोक्त प्रातःसवन के साथ-२ अन्य सवनों में (आचार्य सायण की दृष्टि में माध्यन्दिन सवन में) विभिन्न शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मियों को समर्थ व सक्रिय वनाये रखने के लिए नाना क्रियाओं की चर्चा करते हुए एक व्याख्यान के माध्यम से समझाते हैं, जिसका आशय इस प्रकार है- "विभिन्न देव अर्थात् प्राथमिक प्राण रश्मियां एवं नाना प्रकार की ऋषिरूप सूक्ष्म प्राण रश्मियां विभिन्न छन्दादि रश्मियों की संगमन क्रियाओं को व्याप्त व आकर्षित करती हैं।" ऐसा करने का प्रयोजन यह होता है कि पूर्वोक्त अहीन संज्ञक छन्द रश्मियां समानरूप से अर्थात् एकरस होकर सर्वत्र व्याप्त होने लगती हैं। ऐसा करने के लिए समान प्रगाथ, समान प्रतिपत् अर्थात् आरम्भणीय छन्द रश्मियां और समान सूक्तरूप छन्दरश्मिसमूह उत्पन्न होते हैं। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"स्तोत्रियानुरूपाणां यद्यनुरूपे स्तुवीरन्स्तोत्रियाऽनुरूपः"।।५।।

"ऊर्ध्वं स्तोत्रियानुरूपेभ्यः कस्तमिन्द्र त्वा वसुं कन्नव्यो अतसीनां कद्न्वस्याकृतमिति कद्वन्तः प्रगाथाः"।।६।।

"अपप्राच इन्द्र विश्वाँ अमित्रान्ब्रह्मणा ते ब्रह्म युजा युनज्म्युरुं नो लोकमनुनेषि विद्वानिति कद्वद्भ्य आरम्भणीयाः"।।७।।

"ऊर्ध्वमारम्भणीयाभ्यः सद्यो ह जात इत्यहरहः शस्यं मैत्रावरुणोऽस्मा इदु प्रतवसे शासद्वह्निरितीतरावहीनसूक्ते"।।८।।

"आ सत्यो यात्वित्यहीनसूक्तं द्वितीयं मैत्रावरुण उदु ब्रह्माण्यमितष्टे वेतीतरावहरहः शस्ये"।।९।।

"नूनं सात इत्यन्तमुत्तमम्"।।१०।। (आश्व.श्रौ.७.४.५-१०)

इन सूत्रों के आधार पर हम समान प्रगाथ, समान आरम्भणीय ऋचाएं एवं समान सूक्तों की क्रमशः चर्चा करते हैं-

(१) वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राण से इन्द्र-देवताक एवं भुरिगनुष्टुप् छन्दस्क-

कस्तमिन्द्र त्वावसुमा मर्त्यो दधर्षति।
श्रद्धा इत्ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति।।१४।। (ऋ.७.३२.१४)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व विभिन्न विनाशी परमाणु आदि पदार्थों को सम्पीडित करके संयोज्य वलों से युक्त कर अन्तरिक्ष में उनको सव ओर से संविभक्त वा संगत करता है। इसके पश्चात् मेधातिथिः काण्व ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न एक सूक्ष्म रश्मि विशेष से इन्द्र-देवताक एवं अनुष्टुप् छन्दस्क-

कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः।।१३।। (ऋ.८.३.१३)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {अतसीनाम् = सततगामिनीनाम् (सायणवेदभाष्य)} वह इन्द्रतत्त्व सततगामी नित नवीनोत्पन्न विनाशी परमाणु आदि पदार्थों को निरन्तर बल एवं तेज आदि से युक्त और व्याप्त करता है। इस प्रकार ये दोनों छन्द रश्मियां मिलकर एक प्रगाथ कहलाती हैं, जो पूर्वोक्त सभी अहीनसंज्ञक रश्मिसमूहों में समानरूप से अर्थात् एकरस होकर व्याप्त रहती हैं।

(२) प्रतिपत् अर्थात् आरम्भणीय तृच के रूप में भिन्न छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं-

(क) अप प्राच इन्द्र विश्वाँ अमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व।
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन्मदेम॥१॥ (ऋ.१०.१३१.१)

इस ऋचा के विषय में ५.१५.२ द्रष्टव्य है।
(ख) पूर्वोक्त विश्वामित्र ऋषि से इन्द्र-देवताक एवं भुरिक्पंक्ति छन्दस्क-

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन्प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम्॥४॥ (ऋ.३.३५.४)

उत्पन्न होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व प्राणापान रश्मियों से विशेष युक्त होकर अपने धारण और आकर्षण बलों को प्रकाशित करता हुआ नाना संयोज्य परमाणुओं का धारण और संयोजन करता है। इसके कारण वे परमाणु आदि पदार्थ स्थिरतापूर्वक आकाश में रमणीय रश्मियों के रूप में सब ओर विद्यमान हो जाते हैं। ऐसा वह इन्द्रतत्त्व नाना सोम रश्मियों को भी सब ओर से प्राप्त करता है।
(ग) {गर्गः = गृ+ग - इति आप्टेकोष (गृ सेचने)} गर्ग ऋषि अर्थात् विभिन्न पदार्थों को अपने सेचक बलों से युक्त करने वाली एक विशेष प्रकार की प्राण रश्मियों से इन्द्र-देवताक एवं विराट् त्रिष्टुप् छन्दस्क-

उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता॥८॥ (ऋ.६.४७.८)

की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व विशाल एवं व्यापक धारण और पोषण बलों के द्वारा तीक्ष्ण एवं दृढ़ पदार्थों को रोकता तथा निष्कम्प तेज के द्वारा विभिन्न परमाणु वा लोकादि पदार्थों को अनुकूलता और सहजता से नियंत्रित करता है। तदुपरान्त

(३) सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः प्रभर्तुमावदन्धसः सुतस्य।
साधोः पिब प्रतिकामं यथा ते रसाशिरः प्रथमं सोम्यस्य॥१॥

इत्यादि (ऋ.३.४८) सूक्त तथा

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः॥१॥ इत्यादि (ऋ.४.१६)

सूक्तों की उत्पत्ति होती है। इन दोनों सूक्तों के विषय में क्रमशः खण्ड ६.१३ एवं ५.२१ द्रष्टव्य है।
उपर्युक्त तृच एवं सूक्तद्वय भी समानरूप ही होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये भी अपने-२ द्वारा प्रभावित पदार्थ में एकरस व्याप्त होकर इस सृष्टि में समान प्रभाव दर्शाते हैं। इन प्रभावों पर देश और काल का भेद प्रभाव नहीं डालता॥

{ओकांसि = गृहा वा ओकः (ऐ.८.२६), प्राणा ह खलु वा ओकः (जै.ब्रा.१.२१४)} इन्द्रतत्त्व विभिन्न गृहों अर्थात् नाना प्रकार के स्थानों और सूक्तरूप रश्मिसमूहों में निरन्तर विचरण करता रहता है। यह तत्त्व पूर्व और अपर दोनों ही कालों में उत्पन्न विभिन्न रश्मियों और सब स्थानों में निरन्तर विचरण करता रहता है अर्थात् सदैव, सर्वत्र संचरित और व्याप्त होता है, जिसके कारण सर्गप्रक्रिया निरन्तर इन्द्रतत्त्व से सम्पन्न होकर सबलता के साथ संचालित होती रहती है॥

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में प्राण व छन्द रश्मियों के साथ-२ विद्युत् का भी सतत संचरण होता रहता है। ये कभी स्थिर नहीं रहते। इनकी स्थिरता से सृष्टि का विनाश हो जाता है। इन तीनों के

निरन्तर संचरण के कारण समग्र सृष्टि में सक्रियता के साथ-२ एकरसता व निरन्तरता भी बनी रहती है। इन तीनों पदार्थों के गुण-कर्म व स्वभाव भी सर्वत्र समान होते हैं अर्थात् देश व काल के भेद से भौतिकी के नियम सदैव अप्रभावित ही रहते हैं अर्थात् सदैव समान ही रहते हैं। यहाँ विभिन्न छन्द रश्मियों का विवेचन एवं उनके नाना व्यवहारों को दर्शाया गया है, जिसे समझने हेतु व्याख्यान भाग ही पठनीय है।।

इति २९.१ समाप्तः

❧ अथ २९.२ प्रारभ्यते ❧

**** तमसो मा ज्योतिर्गमय ****

१. तान् वा एतान् संपातान् विश्वामित्रः प्रथममपश्यत्, तान् विश्वामित्रेण दृष्टान् वामदेवोऽसृजतैवा त्वामिन्द्र वज्रिन्नत्र, यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि, कथा महामवृधत् कस्य होतुरिति; तान् क्षिप्रं समपतद्; यत् क्षिप्रं समपतत्, तत् संपातानां संपातत्वम्।।

व्याख्यानम्- अब एक अन्य विषय प्रारम्भ करते हैं कि सूक्ष्मतम वाक् तत्त्व के कुछ संपातसंज्ञक सूक्तरूप रश्मिसमूहों की उत्पत्ति होती है। यह वाक् तत्त्व ही विश्वामित्र ऋषि है। इससे उत्पन्न सूक्तरूप छन्द रश्मिसमूह को वामदेव ऋषि अर्थात् मनस्तत्त्व से विशेष सम्पन्न प्राण नामक प्राण तत्त्व {सृज विसर्गे = मुक्त करना, छितराना, प्रसृत करना, बिखेरना (आप्टेकोष)} अन्तरिक्ष में सर्वत्र किंवा उपर्युक्त पदार्थों में छितरा वा फैला देता है। इसका तात्पर्य यह है कि वाक् तत्त्व से ये संपातसूक्त उत्पन्न अवश्य होते हैं लेकिन इनका फैलाव, विस्तार प्राण नामक प्राण रश्मियों के द्वारा ही होता है। ये सूक्त निम्न प्रकार से हैं-

(क) उपर्युक्त वामदेव ऋषि प्राण रश्मि से इन्द्र-देवताक क्रमशः ऋ.४.१९, ४.२२ व ४.२३ सूक्तों की उत्पत्ति होती है- प्रथम सूक्त के विषय में ६.१३.२ द्रष्टव्य है।

(ख) द्वितीय सूक्त निम्न क्रमानुसार है-

(१) यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि तन्नो महान्करति शुष्म्या चित्।
ब्रह्म स्तोमं मघवा सोममुक्था यो अश्मानं शवसा बिभ्रदेति।।१।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका देवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व अपने महान् बल के द्वारा विभिन्न देव परमाणुओं को सक्रिय और बलवान् बनाकर विभिन्न मेघरूप पदार्थों तथा तेजयुक्त सोम रश्मियों को धारण करता हुआ नाना प्रकार की क्रियाओं को सम्पादित करता है।

(२) वृषा वृषन्धिं चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्यां नृतमः शचीवान्।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्याः पर्वाणि सख्याय विव्ये।।२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {अश्रिः = आश्रयति तत्रेति अश्रिः, कोणो वा (उ.को.४.१३९)। परुष्णीम् = विभागवतीम् (म.द.भा.)} सेचक बलों से युक्त इन्द्रतत्त्व बलों के धारण करने वाले ठोस, द्रव, गैस और आकाश तत्त्वों को अपने धारण-आकर्षण बलों के द्वारा प्रक्षिप्त करता वा बिखेरता है। वह अतिशय तेज और उग्र क्रियाओं के द्वारा नाना परमाणु आदि पदार्थों को संयुक्त और विभक्त करता है। वह सबको आच्छादित, आश्रित और तेजयुक्त करता हुआ नाना प्रकार के कर्मों को सम्पादित करता है।

(३) यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः।
दधानो वज्रं बाह्वोरुशन्तं द्याममेन रेजयत्प्र भूम।।३।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका देवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से

महान् शोषक बलों से युक्त इन्द्रतत्त्व उत्पन्न होते ही वज्र रश्मियों के साथ प्रकाशित होता हुआ कमनीय प्रकाशित एवं अप्रकाशित लोकों वा परमाणुओं को कंपाता है।

(४) विश्वा रोधांसि प्रवतश्च पूर्वीर्द्यौर्ऋष्वाज्जनिमन्रेजत क्षाः।
आ मातरा भरति शुष्म्या गोर्नृवत्परिज्मन्नोनुवन्त वाताः।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से प्रकाशित एवं अप्रकाशित परमाणु वा लोक आदि पदार्थ विशाल कारण पदार्थ से उत्पन्न होकर नाना प्रकार के अवरोधक बलों से अच्छी प्रकार सब ओर से सुरक्षित रहते हैं। अन्तरिक्ष में व्याप्त वे दोनों पदार्थ इन्द्रतत्त्व के प्रभाव से कांपते और तीव्र घोष करते रहते हैं।

(५) ता तू त इन्द्र महतो महानि विश्वेष्वित्सवनेषु प्रवाच्या।
यच्छूर धृष्णो धृषता दधृष्वानहिं वज्रेण शवसाविवेषीः।।५।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व तीक्ष्ण बलों के द्वारा विभिन्न लोकों में होने वाली व्यापक सृजन क्रियाओं को धारण करता हुआ अपनी वज्र रश्मियों के द्वारा असुरादि मेघों को नियन्त्रित करके देव पदार्थ में नाना क्रियाओं को सम्पादित करता है।

(६) ता तू ते सत्या तुविनृम्ण विश्वा प्र धेनवः सिस्रते वृष्ण ऊध्नः।
अधा ह त्वद् वृषमणो भियानाः प्र सिन्धवो जवसा चक्रमन्त।।६।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्रतत्त्व से सम्पन्न पदार्थ की धाराएं जब अत्यन्त वेग से अन्तरिक्ष में प्रवाहित होती हैं, उस समय वे असुर तत्त्व को दूर करने में समर्थ होती हैं। उन धाराओं में विभिन्न बलवती वायु रश्मियां अच्छी प्रकार व्याप्त रहती हैं।

(७) अत्राह ते हरिवस्ता उ देवीरवोभिरिन्द्र स्तवन्त स्वसारः।
यत्सीमनु प्र मुचो बद्बधाना दीर्घामनु प्रसितिं स्यन्दयध्यै।।७।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {अह = विनिग्रहे (म.द.भा.)} इन्द्रतत्त्व की कमनीय और बलवती रश्मियां पदार्थ को निगृहीत करके उन्हें सुदीर्घ धाराओं के रूप में परिवर्तित करती हैं। वे रश्मियां अपने रक्षणादि व्यवहारों से उन प्रवाहित धाराओं की नाना बाधाओं को दूर करती हैं।

(८) पिपीळे अंशुर्मद्यो न सिन्धुरा त्वा शमी शशमानस्य शक्तिः।
अस्मद्र्यक्शुशुचानस्य यम्या आशुर्न रश्मिं तुव्योजसं गोः।।८।।

इसका छन्द भुरिक्पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {गौः = स्तोतृनाम (निघं.३.१६)} अन्तरिक्ष में प्रवाहित और सक्रिय पदार्थ की धाराओं में व्याप्त इन्द्रतत्त्व उन्हें अच्छी प्रकार मथता हुआ गति और प्रकाश से युक्त करता है। वे धाराएं इन्द्र के द्वारा नियंत्रित होती हुई महान् बलों और कर्मों से युक्त होती हैं।

(९) अस्मे वर्षिष्ठा कृणुहि ज्येष्ठा नृम्णानि सत्रा सहुरे सहांसि।
अस्मभ्यं वृत्रा सुहनानि रन्धि जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य।।९।।

इसका छन्द स्वराट्पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्रतत्त्व विविध वलों से युक्त परमाणु आदि पदार्थों को उत्पन्न और धारण करते हुए उन्हें नाना प्रकार से गतियुक्त करता है तथा असुर पदार्थ को नष्ट करता है।

(१०) अस्माकमित्सु शृंणुहि त्वमिन्द्रास्मभ्यं चित्राँ उप माहि वाजान्।
अस्मभ्यं विश्वा इषणः पुरंन्धीरस्माकं सु मघवन्बोधि गोदाः।।१०।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र विभिन्न संयोज्य परमाणु आदि पदार्थों को उत्तम और विचित्र गतियां प्रदान करते हुए सब ओर से धारण, प्रेरित और सीमित करता है। वह विभिन्न वाग् रश्मियों के द्वारा उन पदार्थों को विशेष सक्रिय करता है।

(११) नू ष्टुत इंन्द्र नू गृंणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पींपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः।।११।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से अन्तरिक्ष में गरजता हुआ इन्द्रतत्त्व पदार्थ की धाराओं को समृद्ध और प्रकाशित करते हुए उन्हें नाना प्रकार के नवीन संयोज्य परमाणुओं और अनेकों प्रकार की क्रियाओं से युक्त तेजस्वी रश्मियों से संपन्न करता है।

(ग) तृतीय सूक्त निम्न क्रमानुसार है-

(१) कथा महामंवृधत्कस्य होतुर्यज्ञं जुषाणो अभि सोममूधः।
पिबंन्नुशानो जुषमांणो अन्धों ववक्ष ऋष्वः शुंचते धनांय।।१।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व विभिन्न संयोजक वलों से युक्त परमाणु वा लोक आदि पदार्थों की व्यापक संयोगादि क्रियाओं को सर्वतः समृद्ध करता है। प्रकाशित व अप्रकाशित सोम रश्मियों को अवशोषित करते हुए कमनीय वा अप्रकाशित परमाणु आदि पदार्थों को व्याप्त व शुद्ध-तेज से युक्त करता है। इसकी सभी क्रियाएं रहस्यमय होती हैं।

(२) को अंस्य वीरः सधमादमाप समानंश सुमतिभिः को अंस्य।
कदंस्य चित्रं चिंकिते कदूती वृधे भुंवच्छशमानस्य यज्योः।।२।।

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वीर अर्थात् विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियां इन्द्रतत्त्व के साथ सक्रिय रहकर उसमें व्याप्त रहतीं तथा अनेक विचित्र तेजों से उसे तेजस्वी वनाती हैं। वे ही {शशमान इति अर्चतिकर्मा (निघं.३.१४)} उस प्रकाशित इन्द्रतत्त्व में संयोगादि व्यवहारों को समृद्ध करती हैं।

(३) कथा शृंणोति हूयमांनमिन्द्रः कथा शृण्वन्नवंसामस्य वेद।
का अंस्य पूर्वीरुपंमातयो ह कथैनंमाहुः पपुरिं जरित्रे।।३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व रहस्यमय रीति से आकर्षणीय परमाणु आदि पदार्थों को गति व क्रिया से विशेष युक्त करता हुआ नाना रक्षणादि गुणों से युक्त करता है। वह इनको सदैव रहस्यमय रीति से ही पालता, मापता और प्रकाशित करता है।

(४) कथा सबाधः शशमानो अस्य नशदभि द्रविणं दीध्यानः।
देवो भुवन्नवेदा म ऋतानां नमो जगृभ्वाँ अभि यज्जुजोषत्।।४।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व रहस्यमय ढंग से असुरादि बाधक पदार्थों का नाश व नियन्त्रण करके सर्ग प्रक्रिया की बाधा को दूर करता है। वह विभिन्न परमाणुओं को विचित्र व अज्ञेय ढंग से दीप्त वा गतिमान् करता है। वह इसी प्रकार नाना संयोज्य परमाणुओं को अपने नियन्त्रण व संरक्षण में रखता है।

(५) कथा कदस्या उषसो व्युष्टौ देवो मर्तस्य सख्यं जुजोष।
कथा कदस्य सख्यं सखिभ्यो ये अस्मिन्कामं सुयुजं ततस्रे।।५।।

इसका छन्द भुरिक्पंक्ति है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह प्रकाशित इन्द्रतत्त्व रहस्यमय ढंग से प्रकाशित तथा अप्रकाशित परमाणुओं में व्याप्त होकर उन्हें प्रकाशित व संयोज्यता गुण से सम्पन्न करता है।

(६) किमादमत्रं सख्यं सखिभ्यः कदा नु ते भ्रात्रं प्र ब्रवाम।
श्रिये सुदृशो वपुरस्य सर्गाः स्व१र्ण चित्रतममिष आ गोः।।६।।

वह इन्द्रतत्त्व प्राण तत्त्व के द्वारा रहस्यमय विधि से प्रकाशन, धारण व हरण आदि गुणों से सम्पन्न होता है। {अमत्रः = अमत्रः अमात्रो महान् भवति, अभ्यमितो वा (नि.६.२३), पात्रम् अमा अस्मिन्नदन्ति अमा पुनरनिर्मितं भवति (नि.५.१)।} वह प्राण तत्त्व व्यापकता के द्वारा इन्द्रतत्त्व को मापता वा आच्छादित करता हुआ उसका आधार वन नाना पृथिव्यादि लोकों को रचने में रहस्यमय भूमिका निभाता है।

(७) द्रुहं जिघांसन्ध्वरसमनिन्द्रां तेतिक्ते तिग्मा तुजसे अनीका।
ऋणा चिद्यत्र ऋणया न उग्रो दूरे अज्ञाता उषसो बबाधे।।७।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह उग्र इन्द्रतत्त्व दूर-२ गुप्त स्थानों में व्याप्त आसुर पदार्थों को नष्ट वा नियन्त्रित करता हुआ प्रकाशित व अप्रकाशित पदार्थों का विलोडन करता है। वह अनेक तीक्ष्ण पदार्थों को नियन्त्रित करके उनके वलों तथा गति को समुचित रूप प्रदान करता है।

(८) ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः।।८।।

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र प्राण रश्मियों की आशुकारिणी सेना द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों का धारण व बाधक तत्त्वों का निरोधन करता है। वह वद्ध आकाश तत्त्व को वाग् रश्मियों के द्वारा अवशोषित करता वा खोलता है। वह विभिन्न संयोजनीय परमाणुओं को शुद्ध करता है।

(९) ऋतस्य दृळ्हा धरुणानि सन्ति पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपूंषि।
ऋतेन दीर्घमिषणन्त पृक्ष ऋतेन गाव ऋतमा विवेशुः।।९।।

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {धरुणम् = उदकनाम (निघं.१.१२)} वह इन्द्रतत्त्व प्राण रश्मियों के द्वारा ही दृढ़ वल व वेगवती पदार्थ की धाराओं को उत्तम रूप व आकार

से युक्त करता है। वह उन धाराओं में विद्यमान परमाणु आदि पदार्थों को प्राण रश्मियों से सिंचित करके अनेक वाग् रश्मियों से भी व्याप्त कर दीर्घत्व प्रदान करता है।

(१०) ऋतं येमान ऋतमिद्वनोत्यृतस्य शुष्मंस्तुरया उ गव्युः।
ऋताय पृथ्वी बहुले गंभीरे ऋताय धेनू परमे दुहाते।।१०।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {गभीरः = महन्नाम (निघं.३.३), गभीरे द्यावापृथिवीनाम (निघं.३.३०)। ऋतम् = ऋतमित्येष (सूर्यः) वै सत्यम् (ऐ.४.२०), ऋतमेव परमेष्ठि (तै.ब्रा.१.५.५.१)} व्यापक और गम्भीर अन्तरिक्ष में द्यु एवं पृथिवी लोकों तथा परमेष्ठी रूपी महा आदित्य लोकों को उत्पन्न एवं नियंत्रित करने के लिए इन्द्रतत्त्व विभिन्न प्राण रश्मियों तथा 'धेनू' अर्थात् मरुद् एवं छन्द रश्मियों के बलों को शीघ्रतापूर्वक प्राप्त करता है।

(११) नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः।।११।।

इसका छन्द निचृत्पंक्ति है। इसका प्रभाव पूर्वसूक्त की अन्तिम ऋचा के समान है।

उपर्युक्त तीनों सूक्तरूप छन्दरश्मियां अतिशीघ्रता से प्रकट होती हैं, इसी कारण इनको सम्पात सूक्त कहा जाता है। इन सूक्तरूप रश्मिसमूहों के विषय में अन्य एक ऋषि का मत है-

"एतैर्वै संपातैरेत ऋषय इमांल्लोकान्त्समपतंस्तद्यत्समपतंस्तस्मात् संपाताः। तत् संपातानां संपातत्त्वम्।" (गो.उ.६.१)

इसका तात्पर्य यह है कि इन छन्द रश्मियों के योग से विभिन्न ऋषि अर्थात् प्राथमिक प्राण रश्मियां सभी परमाणु वा लोक समूहों में विशेष सक्रिय होकर एक दूसरे से क्रियाएं करते हुए संगत होने लगती हैं, जिससे लोक निर्माण की प्रक्रिया अथवा लोकों के अन्दर होने वाली क्रियाएं तीव्र होने लगती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न लोकों में विशेषकर तारों एवं आकाशगंगाओं के केन्द्रों के अन्दर ३३ विभिन्न प्रकार की छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जिनमें से २२ विभिन्न त्रिष्टुप् और ६ विभिन्न पंक्ति छन्द रश्मियां हैं। ये ११-११ छन्द रश्मियों के तीन समूहों में उत्पन्न होती हैं। इनमें से एक पंक्ति छन्द रश्मि तीनों समूहों के अन्त में विद्यमान होकर अपने-२ समूह की अन्य छन्द रश्मियों को आच्छादित व सुरक्षित रखती है। इस प्रकार ३१ छन्द रश्मियां ३३ के रूप में प्रकट होती हैं। इनसे सभी लोकों में विद्युत् चुम्बकीय एवं गुरुत्वाकर्षण बलों की तीव्रता में विशेष वृद्धि होती है। डार्क एनर्जी और डार्क मैटर की बाधाएं दूर होती हैं। डार्क एनर्जी की अवयवरूप सातों छन्द रश्मियां बिखरकर दूर होती हैं। विभिन्न नवीन मूलकणों की उत्पत्ति भी होती है। विभिन्न लोकों की गतियों में भी ये छन्द रश्मियां अपनी भूमिका निभाती हैं। उन लोकों के अन्दर पदार्थ की नाना प्रकार की धाराओं की उत्पत्ति होती है। वे विद्युत् ठोस, द्रव, गैस अवस्था में विद्यमान कणों के अतिरिक्त आकाश तत्त्व को भी प्रभावित करती हैं। विद्युत् चुम्बकीय और गुरुत्व बलों के कारण विभिन्न तारे एवं ग्रहादि लोक कम्पन करते हुए अन्तरिक्ष में गमन करते हैं। विद्युदावेशित पदार्थ की तीव्र वेगवती धाराएं डार्क एनर्जी आदि के दुष्प्रभावों से मुक्त रहने में सक्षम होती हैं। वे धाराएं विद्युत् चुम्बकीय बलों के कारण ही उत्पन्न होती तथा अच्छी प्रकार मथी जाती हुई तीव्र गति और प्रकाश से युक्त होती हैं। **विद्युत् के विभिन्न कार्यों एवं व्यवहार को पूर्णतः जानना मानव तकनीक के द्वारा सम्भव नहीं है, क्योंकि विद्युत् के समस्त व्यवहार विभिन्न प्राण रश्मियों के द्वारा सम्पन्न होते हैं, जिन्हें वर्तमान तकनीक द्वारा विश्लेषित नहीं किया जा सकता।** ये प्राण रश्मियां सभी प्रकार के मूलकणों, क्वाण्टाज् से लेकर विशालतम लोकों को भी सदैव आच्छादित करती रहती हैं। **आकाश तत्त्व का आकुंचन और प्रसारण, जो द्रव्यमान वा विद्युत् आवेश के कारण होता है, में भी प्राण रश्मियों की ही भूमिका होती है।।**

२. स हेक्षांचक्रे विश्वामित्रो यान्वा अहं संपातानपश्यं, तान् वामदेवोऽसृष्ट, कानि

न्वहं सूक्तानि संपातांस्तत्प्रतिमान् सृजेयेति; स एतानि सूक्तानि संपातांस्तत्प्रतिमानसृजत; सद्यो ह जातो वृषभः कनीन, इन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैरिमामू षु प्रभृतिं सातये धा, इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः, शासद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यङ्गाद,भि तष्टेव दीधया मनीषामिति।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रक्रिया सम्पन्न होने के पश्चात् विश्वामित्ररूपी वाक् तत्त्व में यह चेष्टा उत्पन्न होती है कि पूर्वोक्त सूक्त, जो विश्वामित्र ऋषि से उत्पन्न होकर प्राण मनस्तत्त्व से विशेष सम्पृक्त प्राण नामक प्राण तत्त्वरूपी वामदेव ऋषि के द्वारा सर्वत्र प्रसृत किये जाते हैं, उनके समान अन्य संपातसूक्तों की उत्पत्ति की जाए। इसका तात्पर्य यही है कि विश्वामित्र अर्थात् वाक् तत्त्व के द्वारा पूर्वोक्त संपातसूक्तों के समान अन्य सहसंपात-सूक्तों की उत्पत्ति होती है। ये सूक्त निम्न क्रमानुसार हैं-

(क) सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः प्रभर्तुमावदन्धसः सुतस्य।
साधोः पिब प्रतिकामं यथा ते रसाशिरः प्रथमं सोम्यस्य।।१।।

इत्यादि (ऋ.३.४८) की उत्पत्ति होती है। इस सूक्त के विषय में ६.१३.२ द्रष्टव्य है।

(ख) इन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून्।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद्रोदसी उभे।।१।।

इत्यादि (ऋ.३.३४) सूक्त के विषय में भी वहीं देखें।

(ग) इमामू षु प्रभृतिं सातये धाः शश्वच्छश्वदूतिभिर्यादमानः।
सुतेसुते वावृधे वर्धनेभिर्यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतो भूत्।।१।।

इत्यादि (ऋ.३.३६) सूक्त के विषय में भी वहीं देखें।

(घ) इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि।
तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः।।१।।

इत्यादि (ऋ.३.३०) जिसका देवता इन्द्र है, की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि।
तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः।।१।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्रतत्त्व सोम रश्मियों को आकर्षित करता हुआ सम्पीडित, प्रकाशित और धारण करता है। वह सब ओर से प्रतिरोधी बलों का सामना कर रहे विभिन्न परमाणुओं को प्रकृष्टता से प्रेरित करता है।

(२) न ते दूरे परमा चिद्रजांस्या तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम्।
स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ।।२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व आकर्षण और धारण

बलों के द्वारा विभिन्न लोकों और परमाणुओं को थामता है। वह उन्हें अग्नि में स्थिर करके नाना प्रकार के संयोगादि कर्मों को संपादित करने के लिए विभिन्न छन्द वा मरुद् रश्मियों से युक्त होता है।

(३) इन्द्रः सुशिप्रो मघवा तरुत्रो महाव्रातस्तुविकूर्मिर्ऋघावान्।
यदुग्रो धा बाधितो मर्त्येषु क्व१ त्या ते वृषभ वीर्याणि॥३॥

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। इसका देवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह उग्र बलवान् इन्द्रतत्त्व विनाशी परमाणु आदि पदार्थों में आने वाली विभिन्न बाधाओं को दूर करके उन्हें समुचितरूप से धारण करता है। {ऋघावान् = य ऋत् शत्रून् घ्नन्ति ते वा बहवः शूरा विद्यन्ते यस्य (म.द.भा.)} वह असंख्यकर्मा इन्द्रतत्त्व असुरादि बाधक रश्मियों को नष्ट करता है।

(४) त्वं हि ष्मा च्यावयन्नच्युतान्येको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः।
तव द्यावापृथिवी पर्वतासोऽ नु व्रताय निमितेव तस्थुः॥४॥

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व दृढ़ शक्तिसम्पन्न विशाल पिण्डों, पार्थिव व द्यु आदि लोकों तथा ब्रह्माण्ड में उत्पन्न अनियमित आकार के नाना लोकों को कम्पाता व इधर-उधर घुमाता है। वह विशाल आसुर मेघों को छिन्न-भिन्न करके नाना सृजन कर्मों को करता है।

(५) उताभये पुरुहूत श्रवोभिरेको दृळ्हमवदो वृत्रहा सन्।
इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे यत्संगृभ्णा मघवन्काशिरित्ते॥५॥

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से इन्द्रतत्त्व विना किसी के सहाय के विभिन्न छन्द रश्मियों के द्वारा अविचल भाव से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को दृढ़ता से गति व प्रकाश से युक्त करता है। वह असुर तत्त्व निवारक इन्द्र प्रकाशित व अप्रकाशित लोकों को प्रकाशित करता व थामे रखता है।

(६) प्र सू त इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून्।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विश्वं सत्यं कृणुहि विष्टमस्तु॥६॥

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व सभी दिशाओं में विद्यमान गुप्त व प्रकट सभी रूपों वाले असुर तत्त्व को अपनी वज्र रश्मियों के द्वारा प्रकृष्टता से नष्ट करता तथा सभी लोकों को अच्छे प्रकार रचता व धारण करता है।

(७) यस्मै धायुरदधा मर्त्यायाभक्तं चिद्भजते गेह्यं१ सः।
भद्रा त इन्द्र सुमतिर्घृताची सहस्रदाना पुरुहूत रातिः॥७॥

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। इसका देवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व अविनाशी और अखण्ड परमाणुओं के द्वारा विनाशी कणों को उत्पन्न और धारण करता है। {घृताचि = वाग्वै धीर्घृताची (ऐ.आ.१.१.४ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत), स्रुग्घृताची (श.८.६.१.१६)} वह असंख्य छन्दादि रश्मियों से नित्य ही संयोगादि प्रक्रियाओं को सम्पन्न करता है।

(८) सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र सं पिणक्कुणारुम्।
अभि वृत्रं वर्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ॥८॥

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {कुणारुः

= परिक्वणनं मेघम् (निघं.६.१)। पियारुम = (पीयतिर्हिंसाकर्मा - नि.४.२५)} वह इन्द्रतत्त्व अन्तरिक्ष में विद्यमान सब ओर घोर शब्द करते हुए अपने हिंसक व प्रतिरोधक बलों से समृद्ध होते हुए आसुर विशाल मेघ को अपने वज्र रश्मि प्रहारों से बिना हाथ-पैर का करके अर्थात् बल एवं गति से विहीन करते हुए पीसता है।

(९) नि सामनामिषिरामिन्द्र भूमिं महीमपारां सदने ससत्थ।
अस्तभ्नाद् द्यां वृषभो अन्तरिक्षमर्षन्त्वापस्त्वयेह प्रसूताः।।९।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व असंख्य साम रश्मियों से युक्त द्युलोकों तथा असंख्य पार्थिवलोकों को थामता तथा विभिन्न जल धाराओं वा तन्मात्राओं की असंख्य धाराओं को अन्तरिक्ष में प्रवाहित करता है।

(१०) अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार।
सुगान्पथो अकृणोन्निरजे गाः प्रावन्वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः।।१०।।

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से अतितीक्ष्ण भेदकवल सम्पन्न इन्द्रतत्त्व कम्पायमान पार्थिव लोकों वा कणों को मार्ग व गति प्रदान करने हेतु पूर्वोत्पन्न वाग् रश्मियों को धारण करता है। इस कार्य को संरक्षित करने में नाना ध्वनि तरंगों की भी उत्पत्ति होती है।

(११) एको द्वे वसुमती समीची इन्द्र आ पप्रौ पृथिवीमुत द्याम्।
उतान्तरिक्षादभि नः समीक इषो रथीः सयुजः शूर वाजान्।।११।।

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह तीक्ष्ण इन्द्रतत्त्व पृथिवी, द्यु व अन्तरिक्ष लोकों को परिपूर्ण करके उनके अन्दर विद्यमान परस्पर संयुक्त परमाणु आदि पदार्थों को सब ओर से बलयुक्त करता है।

(१२) दिशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा दिवेदिवे हर्यश्वप्रसूताः।
सं यदानळध्वन आदिदश्वैर्विमोचनं कृणुते तत्त्वस्य।।१२।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व अपनी हरणशील आशुगामिनी रश्मियों के द्वारा उत्पन्न विभिन्न लोकों वा कणों की घूर्णन गतियों का निर्धारण करता है। वह अपनी रश्मियों को आकाश में व्याप्त करके संयुक्त पदार्थों को परस्पर वियुक्त भी करता है।

(१३) दिदृक्षन्त उषसो यामन्नक्तोर्विवस्वत्या महि चित्रमनीकम्।
विश्वे जानन्ति महिना यदागादिन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि।।१३।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। वह इन्द्रतत्त्व सूर्यलोक में विद्यमान प्रकाशित तथा अप्रकाशित किंवा अल्प प्रकाशित क्षेत्रों को उत्पन्न करता है। वह अपने विशाल रश्मिसमूह के द्वारा अनेकों क्रियाओं को निरन्तर करता है।

(१४) महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्वामा पक्वं चरति बिभ्रती गौः।
विश्वं स्वाद्म संभृतमुस्रियायां यत्सीमिन्द्रो अदधाद्भोजनाय।।१४।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {वक्षणा = नदीनाम (निघं.१.१३)} वह इन्द्रतत्त्व विभिन्न प्रवाहित होती विशाल धाराओं में पूर्ण व अपूर्ण विकसित पदार्थों को धारण करता है। वह द्युलोक वा पार्थिव लोकों वा कणों को नाना प्रकार की सृजन क्रियाओं से पुष्ट करता हुआ सब ओर से धारण करता है।

(१५) इन्द्र दृह्यं यामकोशा अंभूवन्यज्ञाय शिक्ष गृणते सखिभ्यः।
दुर्मायवो दुरेवा मर्त्यासो निषङ्गिणो रिपवो हन्त्वासः।।१५।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {कोशः = मेघनाम (निघं.१.१०)} इन्द्रतत्त्व विभिन्न मेघरूपी पदार्थों को संगत और प्रकाशित करने के लिए उनको मार्ग, गति व दीप्ति प्रदान करता है और जो आसुर मेघ अनिष्ट प्रक्षेपक बलों से युक्त होते हैं, उनका विनाश करता है।

(१६) सं घोषः शृण्वेऽवमैरमित्रैर्जही न्येष्वशनिं तपिष्ठाम्।
वृश्चेमधस्ताद्वि रुजा सहस्व जहि रक्षो मघवन्रन्धयस्व।।१६।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {अवमः = अन्तिकनाम (निघं.२.१६)} वह इन्द्रतत्त्व देव पदार्थ के निकट विद्यमान असुर पदार्थ के गम्भीर घोष को तथा उस असुर पदार्थ को अपनी अतितप्त वज्ररश्मियों के द्वारा विदीर्ण कर डालता है।

(१७) उद्वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि।
आ कीवतः सललूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य।।१७।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र आसुर पदार्थ को सब ओर से अपनी अतितप्त किरणों के द्वारा मूलसहित छिन्न-भिन्न करता है अर्थात् आसुर पदार्थ की कारणरूप आसुरी छन्द रश्मियों को भी नष्ट वा छिन्न-भिन्न कर देता है। इसके अतिरिक्त भी जो भी ऐसी रश्मियां हैं, जो अपनी तीक्ष्णता के द्वारा विभिन्न सृजन क्रियाओं को बाधित करती हैं, को भी नष्ट करता है।

(१८) स्वस्तये वाजिभिश्च प्रणेतः सं यन्महीरिष आसत्सि पूर्वीः।
रायो वन्तारो बृहतः स्यामास्मे अस्तु भग इन्द्र प्रजावान्।।१८।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व अनेक प्रकार की छन्द रश्मियों से युक्त होकर व्यापक कमनीय बलों से सम्पन्न होता है। वह विभिन्न मरुद् रश्मियों से युक्त होकर व्यापक कमनीय बलों से सम्पन्न होता है। वह विभिन्न मरुद् रश्मियों के द्वारा पदार्थों के नाना विभाग करके विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को नानाविध संगत करता है।

(१९) आ नो भर भगमिन्द्र द्युमन्तं नि ते देष्णस्य धीमहि प्ररेके।
ऊर्वइव पप्रथे कामो अस्मे तमा पृण वसुपते वसूनाम्।।१९।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व नाना प्रकार के परमाणुओं को धारण करता हुआ उन्हें अनेक गायत्री छन्द रश्मियों के द्वारा प्रकाशित, आच्छादित और समृद्ध करता है। विभिन्न अव्यवस्थित वा भ्रान्त परमाणु आदि पदार्थों को धारण करके वह अनुकूलता प्रदान करता है।

(२०) इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन्।।२०।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह विभिन्न तेजस्विनी रश्मियों को समृद्ध और विस्तृत करते हुए तेज के धारक आदित्य लोकों को व्याप्त करता है। वह घोर शब्द करता हुआ अपनी विशिष्ट तेजस्विनी रश्मियों के द्वारा उन लोकों को तीव्र सक्रिय करता है।

(२१) आ नो गोत्रा दर्दृहि गोपते गाः समस्मभ्यं सनयो यन्तु वाजाः।
दिवक्षा असि वृषभ सत्यशुष्मोऽस्मभ्यं सु मघवन्बोधि गोदाः।।२१।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र विभिन्न वाग् रश्मियों को उत्सर्जित करने वाला और नित्य प्राण रश्मियों के बल से युक्त होता है। वह विभिन्न वल एवं परमाणुओं का विभाग करने वाला गोत्र अर्थात् मेघों और पृथिव्यादि लोकों को समृद्ध करता है।

(२२) शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्।।२२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह विभिन्न संग्रामों में अत्यन्त सक्रिय होकर अन्तरिक्ष में फैलता हुआ विभिन्न संयोज्य पदार्थों का नाना प्रकार से विभाग करता है। वह विभिन्न देव पदार्थों की रक्षा करने के लिए आच्छादक आसुर मेघों को नष्ट करता है।
(ङ) पूर्वोक्त ऋषि और देवता वाला ऋ.३.३१ सूक्तरूप रश्मिसमूह निम्न क्रमानुसार उत्पन्न होता है-

(१) शासद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद्विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन्।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्त्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे।।१।।

इसका छन्द विराट्पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {शग्मः = कर्मनाम (निघं.२.१ - वै.को. से उद्धृत)} विभिन्न पदार्थों का पालक और वाहक इन्द्रतत्त्व सुदूर स्थित कमनीय रश्मियों को सिंचित करता हुआ व्याप्त होता है। वह अग्नि को धारण करने वाली उन कमनीय रश्मियों में पतित न होने वाले कर्मों को अपनी तेजस्विनी रश्मियों के द्वारा तृप्त और नियंत्रित करता है।

(२) न जामये तान्वो रिक्थमारैक्चकार गर्भं सनितुर्निधानम्।
यदी मातरो जनयन्त वह्निमन्यः कर्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन्।।२।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {जामि = उदकनाम (निघं.१.१२), अंगुलिनाम (निघं.२.५), जमतीति गतिकर्मा (निघं.२.१४)। रिक्थम् = धननाम (निघं.२.१०)। आरैक् = अरिचत् (नि.२.१६), प्रारिचत् (नि.३.६)} वह इन्द्र विभिन्न परमाणुओं को परस्पर संगत और गतिशील बनाने के लिए, साथ ही उनको तेजस्वी बनाये रखने के लिए दूर-२ बिखरने से रोकता है। वह उनकी विभाजन क्रिया को भी धारण करता हुआ अग्निरूप गर्भ को भी सिद्ध करके नाना प्रकार की क्रियाओं से सम्पन्न किरणों को उत्पन्न करता है।

(३) अग्निर्जज्ञे जुह्वा३ रेजमानो महस्पुत्राँ अरुषस्य प्रयक्षे।

महान्गर्भो मह्या जातमेषां मही प्रवृद्धर्यश्वस्य यज्ञैः ।।३।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से आकर्षण एवं प्रतिकर्षण गुणों से युक्त विद्युदग्नि कांपता हुआ महान् गर्भ के रूप में उत्पन्न होता है। वह अहिंसनीय पुत्ररूप महान् प्राणतत्त्व के संयोग से आशुगामी कमनीय रश्मियों के रूप में व्यापकरूप से उत्पन्न होने लगता है।

(४) अभि जैत्रीरसचन्त स्पृधानं महि ज्योतिस्तमसो निरजानन्।
तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः ।।४।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व अपनी नियन्त्रिका प्राणापान रश्मियों को सम्मुख व साथ-२ संगत रखते हुए गमन कराता है। वे रश्मियां महान् द्युलोकों को निरन्तर प्रकाश व ऊष्मा से युक्त करती हैं।

(५) वीळौ सतीरभि धीरा अतृन्दन्प्राचाहिन्वन्मनसा सप्त विप्राः।
विश्वामविन्दन्पथ्यामृतस्य प्रजानन्नित्ता नमसा विवेश ।।५।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {वीळु = बलनाम (निघं.२.६)} मनस् तत्त्व के साथ संगत सूत्रात्मा वायु तथा प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, धनंजय ये सात धारक प्राणतत्त्व नित्य वायु रश्मियों के साथ संगत होकर नाना क्रियाओं व बलों को समृद्ध करते हैं। वे सब पदार्थ अपने बलों को दृढ़ एवं गमनीय बनाकर वज्र रश्मियों के रूप में तथा संयोज्य परमाणुओं के रूप में प्रकट करते हैं।

(६) विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः।
अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ।।६।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। अन्य प्रभाव से इन्द्रतत्त्व में विद्यमान मरुद् रश्मियां सुन्दर मार्गों पर परस्पर समूह वा संगतरूप में गमन करती हुई नाना छन्द वा प्राण रश्मियों के साथ प्रकट होती हैं। वे विभिन्न संयोज्य परमाणुओं में व्याप्त होकर क्रियाभंग परमाणुओं को धारण व समर्थ करती, व्याहृतिरूप सूक्ष्मरश्मियों को धारण करती व उन्हीं के द्वारा प्रकाशित व विस्तृत होती हैं।

(७) अगच्छदु विप्रतमः सखीयन्नसूदयत्सुकृते गर्भमद्रिः।
ससान मर्यो युवभिर्मखस्यन्नथाभवदङ्गिराः सद्यो अर्चन् ।।७।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न विनाशी कण नाना संयोगादि बलों के द्वारा अन्य कणों के साथ संयुक्त होने के लिए अत्यन्त व्याप्त सूत्रात्मा वायु रश्मियों को प्राप्त करते हैं। वे छन्द वा प्राणादि रश्मियों के द्वारा बलों का विभाग करके गर्भरूप किरणों के रूप में परिवर्तित होते हैं।

(८) सतःसतः प्रतिमानं पुरोभूर्विश्वा वेद जनिमा हन्ति शुष्णम्।
प्र णो दिवः पदवीर्गव्युरर्चन्त्सखा सखीँरमुञ्चन्निरवद्यात् ।।८।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्रतत्त्व पूर्व से विद्यमान नित्य परमाणु आदि पदार्थ और अनित्य पदार्थों में निरन्तर स्थित होकर देव पदार्थ के शोषक असुरादि पदार्थ को नष्ट करता है। वह विभिन्न पार्थिव और आग्नेय परमाणुओं को प्रतिष्ठा प्रदान करके निरन्तर

अधिकाधिक प्रकाशित करता हुआ सब बाधाओं से मुक्त करता है।

(९) नि गव्यता मनसा सेदुरर्कैः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम्।
इदं चिन्नु सदनं भूर्येषां येन मासाँ असिषासन्नृतेन।।९।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {गातुम् = पृथिवीनाम (निघं.१.१)।} इन्द्रतत्त्व वाक् एवं मनस्तत्त्व की रश्मियों के द्वारा पार्थिव परमाणुओं को आदित्य रश्मियों का रूप प्रदान करता है। इस कार्य में प्राण व मास रश्मियां अनेक विभाजनादि कर्मों को सम्पन्न करती हैं।

(१०) संपश्यमाना अमदन्नभि स्वं पयः प्रत्नस्य रेतसो दुघानाः।
वि रोदसी अतपद्घोष एषां जाते निःष्ठामदधुर्गोषु वीरान्।।१०।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से इन्द्रतत्त्व पुरातन बीजरूप प्राणादि रश्मियों से पूर्ण होता हुआ प्रकाशित स्वरूप को प्राप्त करके उसमें स्थित पार्थिव व आग्नेय परमाणुओं को तपाता है। वह विभिन्न लोकों वा कणों में प्राण रश्मियों को स्थापित करता है।

(११) स जातेभिर्वृत्रहा सेदु हव्यैरुदुस्रिया असृजदिन्द्रो अर्कैः।
उरूच्यस्मै घृतवद्भरन्ती मधु स्वाद्म दुदुहे जेन्या गौः।।११।।

इसका छन्द स्वराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से असुरनाशक इन्द्रतत्त्व विभिन्न किरणों को उत्पन्न करता हुआ उनके द्वारा तेजस्वी संयोज्य परमाणु आदि पदार्थों को उत्पन्न करता है। वे परमाणु अन्तरिक्ष में व्याप्त होकर संयोजक बलों और तेज को धारण करते हुए नाना प्रकार की छन्द रश्मियों को निरन्तर आकर्षित करते रहते हैं।

(१२) पित्रे चिच्चक्रुः सदनं समस्मै महि त्विषीमत्सुकृतो वि हि ख्यन्।
विष्कभ्नन्तः स्कम्भनेना जनित्री आसीना ऊर्ध्वं रभसं वि मिन्वन्।।१२।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {रभसम्ः = वेगम् (म.द.ऋ.भा.)। त्विषिः = दीप्तिर्नाम भवति (नि.१.१७)} शोभनकर्मा विशेष धारक इन्द्रतत्त्व को उत्पन्न करने वाली प्राणादि रश्मियां उस इन्द्रतत्त्व में विद्यमान रहकर धारक बलों, उच्च वेग एवं प्रकाश को उत्पन्न करती हैं, जिसके कारण नाना दीप्तियों से युक्त इन्द्रतत्त्व विभिन्न पदार्थों का पालन और संरक्षण करने में समर्थ होता है।

(१३) मही यदि धिषणा शिश्नथे धात्सद्योवृधं विभ्वं१ रोदस्योः।
गिरो यस्मिन्ननवद्याः समीचीर्विश्वा इन्द्राय तविषीरनुत्ताः।।१३।।

इसका छन्द स्वराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से महान् गुणों से युक्त विभिन्न वाग् रश्मियां पृथिवी आदि तीनों लोकों को शीघ्रता से समृद्ध, विस्तृत और धारण करती हैं। वे विभिन्न बाधाओं को नष्ट करती हुई सबको समान और अनुकूलतापूर्वक धारण करके तेजस्वी इन्द्रतत्त्व को उत्पन्न व समर्थ करती हैं। {अनुत्ताः = आनुकूल्येन धृताः (म.द.भा.)}

(१४) मह्या ते सख्यं वश्मि शक्तीरा वृत्रघ्ने नियुतो यन्ति पूर्वीः।
महि स्तोत्रमव आगन्म सूरेरस्माकं सु मघवन्बोधि गोपाः।।१४।।

इसका छन्द विराट् पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के प्रति विशेष संयोज्यता का गुण रखकर पूर्वोत्पन्न प्राण व छन्द रश्मियों से व्याप्त होता है। वह विशाल तेजस्वी रश्मिसमूहों को प्राप्त करके नाना पदार्थों की रक्षा करता है।

(१५) महि क्षेत्रं पुरु श्चन्द्रं विविद्वानादित्सखिभ्यश्चरथं समैरत्।
इन्द्रो नृभिरजनद्दीद्यानः साकं सूर्यमुषसं गातुमग्निम्।।१५।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। विभिन्न पदार्थों में विशेष विद्यमान तथा प्रकाशित इन्द्रतत्त्व अपने साथ संगत पदार्थों को विशाल तेज व क्षेत्र वा आधार एवं गति प्रदान करता है। वह उन परमाणु आदि पदार्थों की मरुद् रश्मियों के द्वारा अग्नि, सूर्य व भूमि आदि को उत्पन्न करता है।

(१६) अपश्चिदेष विभ्वो३ दमूनाः प्र सध्रीचीरसृजद्विश्वश्चन्द्राः।
मध्वः पुनानाः कविभिः पवित्रैर्द्युभिर्हिन्वन्त्यक्तुभिर्धनुत्रीः।।१६।।

इसका छन्द विराट् पंक्ति है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न पवित्र और तेजस्विनी ऋषि प्राण रश्मियां विभिन्न प्राण रश्मियों के व्यक्त मार्गों व रूपों के द्वारा समृद्ध वज्र रश्मियों के द्वारा तारक इन्द्रतत्त्व को पवित्र और समृद्ध करती हैं। वह इन्द्रतत्त्व सबका नियंत्रक अनेक तेजस्वी रश्मियों से युक्त परस्पर सहगमन करने वाली तन्मात्राओं को उत्पन्न करता है।

(१७) अनु कृष्णे वसुधिती जिहाते उभे सूर्यस्य मंहना यजत्रे।
परि यत्ते महिमानं वृजध्यै सखाय इन्द्र काम्या ऋजिप्याः।।१७।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से इन्द्रतत्त्व ऋजुगतियों एवं व्यवहारों से युक्त कमनीय बलों के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को धारण करने वाले पृथिवी आदि तीनों लोकों को सब ओर से रोकता और प्राप्त करता है।

(१८) पतिर्भव वृत्रहन्त्सूनृतानां गिरां विश्वायुर्वृषभो वयोधाः।
आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरूतिभिः सरण्यन्।।१८।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {सूनृता = उषोनाम (निघं.१.८)} वह इन्द्र अपने सम्पूर्ण जीवन में तेजस्विनी प्राण रश्मियों को धारण करता हुआ प्रकाश-रक्षण आदि गुणों से युक्त छन्दादि रश्मियों के द्वारा निरन्तर गति करता है।

(१९) तमङ्गिरस्वन्नमसा सपर्यन्नव्यं कृणोमि सन्यसे पुराजाम्।
द्रुहो वि याहि बहुला अदेवीः स्वश्च नो मघवन्त्सातये धाः।।१९।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियों से युक्त इन्द्र तत्त्व पूर्व और पश्चात् उत्पन्न अनेक नवीन तरंगों वा पदार्थों को वज्र रश्मियों के द्वारा विभाजित व प्रवाहित करता है। इसके साथ ही वह असुर रश्मियों को दूर करता है।

(२०) मिहः पावकाः प्रतता अभूवन्त्स्वस्ति नः पिपृहि पारमासाम्।

इन्द्र त्वं रथिरः पाहि नो रिषो मक्षूमक्षू कृणुहि गोजितो नः।।२०।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से रमणीय रश्मियों से युक्त इन्द्र, देव परमाणुओं की हिंसक पदार्थों से रक्षा करता है। वह विभिन्न परमाणुओं को अतिशीघ्र धारण करता हुआ दूर-२ तक सींचता, उन्हें पवित्र एवं विस्तृत करता है।

(२१) अदेदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गा अन्तः कृष्णाँ अरुषैर्धामभिर्गात्।
प्र सूनृता दिशमान ऋतेन दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः।।२१।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {अरुषः = अश्वनाम (निघं.१.१४)। धाम = अङ्गानि वै विश्वानि धामानि (श.३.३.४.१४)} असुरहन्ता एवं विभिन्न छन्द रश्मियों का पालक इन्द्र तत्त्व अपनी अंगभूत आशुगामिनी छन्द रश्मियों के द्वारा विशाल आकर्षणवलयुक्त लोकों के अन्दर व्याप्त होता है। वह प्राण रश्मियों और वाग् रश्मियों के द्वारा नाना द्वारों को खोलकर विभिन्न पदार्थों को नियंत्रित व प्रेरित करता है।

(२२) शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्।।२२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके प्रभाव के विषय में पूर्व सूक्त की अन्तिम ऋचा द्रष्टव्य है।

(च) पूर्वोक्त विश्वामित्र ऋषिरूपी वाक्तत्त्व, जिसे प्रजापति भी कह सकते हैं {प्रजापतिः = प्रजापतिर्हि वाक् (तै.ब्रा.१.३.४.५), वाग्वै प्रजापतिः (श.५.१.५.६)} से इन्द्र-देवताक ऋ.३.३८ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) अभि तष्टेव दीधया मनीषामत्यो न वाजी सुधुरो जिहानः।
अभि प्रियाणि मर्मृशत्पराणि कवीँरिच्छामि सन्दृशे सुमेधाः।।१।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्रतत्त्व अच्छी प्रकार संगमनीय क्रान्तदर्शिनी रश्मियों को आकर्षित और प्राप्त करता हुआ विभिन्न संयोज्य परमाणुओं को सब ओर से सम्पीडित करके उन्हें निरन्तर आशुगामी बनाने हेतु सब ओर से धारण और प्रकाशित करता है।

(२) इनोत पृच्छ जनिमा कवीनां मनोधृतः सुकृतस्तक्षत द्याम्।
इमा उ ते प्रण्यो३ वर्धमाना मनोवाता अध नु धर्मणि ग्मन्।।२।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न ऋषि प्राण रश्मियों से उत्पन्न मनस्तत्त्व के द्वारा विशेषरूप से धारण व गतिशील की हुई शोभन कर्म करने वाली उत्तम वहनशक्तिसम्पन्न छन्द रश्मियां धारण गुणों से युक्त होकर द्युलोकों को उत्पन्न करती हैं। ये रश्मियां विभिन्न संयोज्य परमाणुओं को आकृष्ट करते हुए निरापदरूप से संगत करती रहती हैं।

(३) नि षीमिदत्र गुह्या दधाना उत क्षत्राय रोदसी समञ्जन्।
सं मात्राभिर्ममिरे येमुरुर्वी अन्तर्मही समृते धायसे धुः।।३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे छन्द रश्मियां अपने रहस्यमय बलों को धारण करती हुई ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करने के लिए प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के परमाणुओं को उत्पन्न करके नाना विशाल लोकों को उत्पन्न, धारण और नियंत्रित करती हैं।

(४) आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः।
महत्तद् वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विविध रूपों वाले सूर्यादि प्रकाशित लोक विभिन्न प्राण रश्मियों को ग्रहण करते हुए मनस्तत्त्व से उत्पन्न अविनाशी वाग् रश्मियों में सब ओर से स्थित होकर विशाल मार्ग को प्राप्त करते हैं।

(५) असूत पूर्वो वृषभो ज्यायानिमा अस्य शुरुधः सन्ति पूर्वीः।
दिवो नपाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवो दधाते।।५।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से अपतनीय सूर्यादि लोक और इन्द्रतत्त्व महान सेचक बलों से परिपूर्ण और समृद्ध होकर आशुधारक गुणों से युक्त रश्मियों को उत्पन्न करते हैं। वे अन्तरिक्ष में होने वाले नाना संग्रामों में नाना धारक गुणों के द्वारा तीक्ष्ण प्रकाश को धारण वा उत्पन्न करते हैं।

(६) त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि।
अपश्यमत्र मनसा जगन्वान्व्रते गन्धर्वां अपि वायुकेशान्।।६।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। इसके अन्य प्रभाव से वे सूर्य रश्मियां और इन्द्रतत्त्व सूत्रात्मा वायु रश्मियों को मनस्तत्त्व के द्वारा निरन्तर प्राप्त होते हुए अपने नाना व्यवहारों को प्राप्त करते हैं। वे पृथिवी आदि तीनों लोकों में होने वाले नाना संग्रामों वा संसर्ग क्रियाओं में सब ओर से सुशोभित और सक्रिय होते हैं।

(७) तदिन्न्वस्य वृषभस्य धेनोरा नामभिर्ममिरे सक्म्यं गोः।
अन्यदन्यदसुर्यं१ वसाना नि मायिनो ममिरे रूपमस्मिन्।।७।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से बलवती छन्द रश्मियों की सूक्ष्म वज्ररूप रश्मियां विभिन्न पदार्थों को सब ओर से आच्छादित करके संसर्ग क्रियाओं को समृद्ध करती हैं। वे पृथक्-२ वर्तमान मेघरूप पदार्थों को ढांपती हुई उत्तम तेजयुक्त विद्युत् को उत्पन्न करती हैं।

(८) तदिन्न्वस्य सवितुर्नकिर्मे हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत्।
आ सुष्टुती रोदसी विश्वमिन्वे अपीव योषा जनिमानि वव्रे।।८।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {अपीव = समुच्चिता इव (म.द.भा.)। अमतिः = रूपनाम (निघं.३.७)।} उस सवितृरूप इन्द्रतत्त्व की तेजस्विरूपयुक्त योषारूप सम्पीडित हुई रश्मियां द्यु व पृथिव्यादि लोकों के अन्दर व्याप्त होकर नाना सृजन व प्रकाशन कर्मों को उत्पन्न करती तथा नाना परमाणुओं को आश्रय प्रदान करती हैं।

(९) युवं प्रत्नस्य साधथो महो यद्दैवी स्वस्तिः परि णः स्यातम्।

गोपाजिह्वस्य तस्थुषो विरूपा विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि।।६।।

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे इन्द्र वा आदित्य रश्मियां स्थिर वा कुटिल व्यवहारों वाले परमाणुओं के कर्मों वा रूपों को उत्पन्न वा आकृष्ट अर्थात् नियन्त्रित करती हैं। वे अपनी गुप्त वाग् रश्मियों की महती व कमनीय क्रियाओं के द्वारा सब पदार्थों को सिद्ध करती हैं।

(१०) शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्।।१०।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसके विषय में पूर्व सूक्त की अन्तिम ऋचा द्रष्टव्य है।

यहाँ उपर्युक्त सभी छः सूक्तरूप रश्मिसमूहों में अन्तिम ऋचा समान होने से इसकी छः बार आवृत्ति हुई है। इस कारण इस ऋचा का प्रभाव विशेष होता है। उस प्रभाव को हम उपर्युक्त व्याख्यान में समझ सकते हैं। यहाँ यह भी विदित है कि सभी संपातसंज्ञक रश्मिसमूहों की अन्तिम रश्मि समान होती है। यह इस संपात सूक्तरूप की यहाँ विशेषता प्रकट हो रही है। जैसा कि हम अवगत है कि किसी सूक्त की अन्तिम ऋचा उस सूक्त की शेष ऋचाओं की परिधानीय अर्थात् आच्छादिका होती है। इस प्रकार सभी आच्छादिका छन्द रश्मियां एक जैसी होने से उनका प्रभाव अत्यधिक बढ़ जाता है, जिससे वे सभी छन्द रश्मियां तेजी से इधर-उधर फैलती हुई परस्पर संगत होने में विशेष तत्पर रहती हैं। ये छन्द रश्मियां पूर्वोत्पन्न सम्पातसंज्ञक छन्द रश्मियों के समान रूप वाली होने से सम्पात ही कहलाती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- लोक निर्माण की उपर्युक्त प्रक्रिया में पुनः ८१ छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जिनमें से ६४ विभिन्न त्रिष्टुप् तथा १७ विभिन्न पंक्ति छन्द रश्मियां हैं। इन सबके प्रभाव से विद्युत् चुम्बकीय बलों में भारी वृद्धि होकर उनके कार्य क्षेत्र का भी विस्तार होता है। विभिन्न कणों के संलयन की प्रक्रिया में भी वृद्धि होती है। गुरुत्वाकर्षण बल में भी वृद्धि होकर पदार्थ के सम्पीडन की क्रिया में वृद्धि होती है, जिससे निर्माणाधीन लोकों के आस-पास विद्यमान पदार्थ उनकी ओर आकर्षित होने लगता है। डार्क एनर्जी का प्रभाव और भी कम होने लगता है। डार्क मैटर भी लोकों से बाहर प्रक्षिप्त किया जाता है। विभिन्न तारों एवं निर्माणाधीन ग्रह आदि लोकों में नाना प्रकार के रंगों की उत्पत्ति होती है। तारों के अन्दर विद्युत् चुम्बकीय तरंगों का निर्माण और भी तीव्र गति से होने लगता है। अन्तरिक्ष में उत्पन्न तारे एवं ग्रह आदि लोकों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी पिण्डों का निर्माण होता है, जिनकी आकृति अनिश्चित और विचित्र होती है। अनेक आकृतियों के ऐसे पिण्ड उस समय जन्म लेते हैं। उस समय ये सभी लोक अपनी-२ कक्षाओं में स्थिर न होकर अव्यवस्थित रूप में इधर-उधर कांपते हुए भ्रमण करते हैं। इस कार्य में गुरुत्व बल के साथ-२ विद्युत् चुम्बकीय बलों की भी भूमिका होती है। इस समय विभिन्न मूल कणों के मेल से नाना प्रकार के atoms और molecules भी निर्मित होते हैं। विभिन्न लोकों के अन्दर एवं बाहर भी पदार्थ के गैस और तरल रूप की धाराएं भी विद्युत् चुम्बकीय बलों के प्रभाव से प्रवाहित होती हैं। नाना प्रकार की ध्वनि तरंगें भी उत्पन्न होती हैं। इस समय विभिन्न लोक अपनी घूर्णन और परिक्रमण गतियों को व्यवस्थित करने लगते हैं। इनके मार्गों के निर्धारण की प्रक्रिया भी प्रारम्भ होने लगती है। इस समय अन्तरिक्ष में नाना प्रकार के सूक्ष्म व स्थूल कणों के मध्य अनेक प्रकार की क्रियाओं से नाना पदार्थों का निर्माण होता है। ऊष्मा और प्रकाश की निरन्तर वृद्धि होने लगती है। अनेक नवीन लोकों के भी गर्भरूप बिन्दुओं का निर्माण होने लगता है। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

३. य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिति भरद्वाजो, यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम, उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येति वसिष्ठो,ऽस्मा इदु प्र तवसे तुरायेति नोधाः।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर पूर्वोक्त भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि प्राणरश्मि से इन्द्र-देवताक ऋ.६.२२ सूक्त की

उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान्॥१॥

इसका छन्द भुरिक्पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {सत्वा = सर्वत्र स्थितः (म.द.भा.)} इन्द्रतत्त्व विभिन्न वाग्रश्मियों के द्वारा अनेक प्रकार की प्रकाशरश्मियों को उत्पन्न करता है। वह अविनाशी प्राणरश्मियों में स्थित होकर अनेक प्रकार के बलों से सम्पन्न होता हुआ सबको नियंत्रित करता है।

(२) तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम्॥२॥

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, धनंजय और सूत्रात्मा वायु इन ७ पालिका प्राणरश्मियों के तेज से बलवान् होता हुआ अनेक प्रकार के दोषों को नष्ट करके नाना प्रकार के मेघरूप पदार्थों में विद्यमान परमाणु आदि पदार्थों को निरन्तर तारता है।

(३) तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्तमा भर हरिवो मादयध्यै॥३॥

इसका छन्द स्वराट्पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {अस्कृधोयुः = अपरिच्छिन्नः (म.द.भा.)} वह व्यापक, सदैव सक्रिय एवं प्रकाश आदि से विशेष युक्त इन्द्रतत्त्व अनेक मरुद् और छन्द रश्मियों के द्वारा आकर्षित होता हुआ सब ओर से सब पदार्थों को धारण करता है।

(४) तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः॥४॥

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह असुरघ्न इन्द्रतत्त्व समस्त देव पदार्थ से आकर्षित होता हुआ उनको धारण करता और विशेषरूप से प्रकाशित करता है। इस कार्य में इन्द्रतत्त्व की उत्पत्ति से पूर्व विद्यमान प्राण व छन्द रश्मियां ही मुख्य भूमिका निभाती हैं किंवा यही मिलकर इन्द्रतत्त्व के रूप में प्रकट होती हैं।

(५) तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ॥५॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {तुम्रः = आहन्ता (म.द.ऋ.भा.३.५०.१), सत्कर्मसु प्रेरकः (तु.म.द.ऋ.भा.४.१८.१०)। वेपी = धीमती (म.द.भा.)} वह इन्द्रतत्त्व विशेष धारणा और कमनीय शक्तिसम्पन्न छन्दादि रश्मियों से युक्त होकर वज्र रश्मियों के साथ रमणीय रश्मियों के रूप में प्रकट होता है। वह व्यापक स्तर पर विभिन्न परमाणुओं को सब ओर से ग्रहण करता और वेग एवं बल से सम्पन्न करता है।

(६) अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन।

अच्युंता चिद्वीळिता स्वोजो रुजो वि दृळहा धृषता विरप्शिन्।।६।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व अपने महान् और व्यापक सम्पीड्य वलों से युक्त होकर नाना प्रकार की रहस्यमयी एवं कुटिल क्रियाओं के द्वारा मेघरूप पदार्थों में अपनी तेजस्वी रश्मियों के द्वारा दृढ़ता उत्पन्न करता है।

(७) तं वों धिया नव्यंस्या शविंष्ठं प्रत्नं प्रंत्नवत्परितंसयध्यैं।
स नों वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि।।७।।

इसका छन्द भुरिक्पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {परितंसयध्यै = सर्वतः भूषयितुम् (म.द.भा.)} अपरिमित वहनशक्तिसम्पन्न इन्द्रतत्त्व नवीन और प्राचीन उत्पन्न धारक वलों वा क्रियाओं के द्वारा सभी पदार्थों को वलवान् वनाते हुए सव ओर से सुशोभित भी करता है।

(८) आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा।
तपा वृषन्विश्वतः शोचिषा तान्ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च।।८।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से द्युलोक, पृथिवीलोक एवं अन्तरिक्षस्थ विभिन्न पदार्थ इन्द्रतत्त्व के प्रकाश से ही प्रदीप्त होते हैं और नाना क्रियाओं को प्रकाशित करने के लिए इन्द्रतत्त्व ही संयोग क्रियाओं में वाधक सभी पदार्थों को अनुकूल वा नष्ट करता है।

(९) भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक्।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः।।९।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से प्रकाशमान इन्द्रतत्त्व अपने समृद्ध आकर्षण-प्रतिकर्षण वलों से युक्त वज्र रश्मियों को धारण करके सभी लोकों में उत्पन्न परमाणु आदि पदार्थों को अपने नियंत्रण में रखता है।

(१०) आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम्।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि।।१०।।

इसका छन्द पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {सुतुका = सुष्ठु वर्धकानि (म.द.भा)} वह इन्द्र उत्सर्जक, नियंत्रक एवं वंधक वलों को अच्छी प्रकार वढ़ाता हुआ वाधक असुरादि पदार्थों को नष्ट करके देव पदार्थ की क्रियाओं को सुगम वनाता है।

(११) स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक्।।११।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र अत्यन्त संगमनीय सूत्रात्मा वायु से विशेष युक्त होकर सम्पूर्ण पदार्थ में व्याप्त होता है। वह असुर पदार्थ के साथ संगत न होकर देव पदार्थ में ही पूर्णरूप से व्याप्त व संगत रहता है।

इन ११ छन्द रश्मियों के पश्चात्

यस्तिग्मशृ॑ङ्गो वृष॒भो न भी॒म एकः॑ कृ॒ष्टीश्च्या॒वय॑ति॒ प्र विश्वाः॑।
यः शश्व॑तो॒ अदा॑शुषो॒ गय॑स्य प्रय॒न्तासि॑ सु॒ष्वित॑राय॒ वेदः॑॥१॥

इत्यादि ऋ.७.१९ सूक्त की उत्पत्ति होती है। इसके विषय में ४.१९.४ द्रष्टव्य है। इसके पश्चात्

उदु॒ ब्रह्मा॑ण्यैरत श्रव॒स्येन्द्रं॑ सम॒र्ये म॑हया वसिष्ठ।
आ यो विश्वा॑नि॒ शव॑सा त॒तानो॑पश्रो॒ता म॒ ईव॑तो॒ वचां॑सि॥१॥

इत्यादि ऋ.७.२३ सूक्त की उत्पत्ति होती है। इसके विषय में ६.१३.२ द्रष्टव्य है।

तदनन्तर गौतमो नोधा ऋषि {नोधा = नोधा ऋषिर्भवति नवनं दधाति (नि.४.१६)} अर्थात् सर्वाधिक आशुगामी धनंजय प्राण रश्मियों से इन्द्र-देवताक ऋ.१.६१ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है।

(१) अ॒स्मा इदु॒ प्र त॒वसे॑ तु॒राय॒ प्रयो॒ न ह॑र्मि॒ स्तोमं॒ माहि॑नाय।
ऋची॑षमा॒याध्रि॑गव॒ ओह॒मिन्द्रा॑य॒ ब्रह्मा॑णि रा॒तत॑मा॥१॥

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {प्रयः = अन्ननाम (निघं.२.७ - वै.को. से उद्धृत), उदकनाम (निघं.१.१२ - वै.को. से उद्धृत), कमनीयम् (म.द.ऋ.भा.४.४६.३)} वह इन्द्र छन्द रश्मियों के समान आशुगामी वलों से व्यापक और धारण गुणों से युक्त विभिन्न रश्मियों को व्याप्त करके नाना प्रकार के प्रकाशित संयोज्य परमाणुओं को विविध क्रियाओं में नियुक्त करता है।

(२) अ॒स्मा इदु॒ प्रय॑इव॒ प्र यं॑सि॒ भरा॑म्याङ्गू॒षं बाधे॑ सुवृ॒क्ति।
इन्द्रा॑य हृ॒दा मन॑सा मनी॒षा प्र॒त्नाय॒ पत्ये॒ धियो॑ मर्जयन्त॥२॥

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {आङ्गूषः = आङ्गूषः स्तोम आघोषः (नि.५.११)} वह इन्द्र तत्त्व पुरातन प्राणापान रश्मियों से उत्पन्न और रक्षित होता हुआ व्यापक संयोजक वलों को उत्पन्न करता है। वह मनस्तत्त्व एवं उसके द्वारा प्रेरित आदित्य रश्मियों को उत्तमता से रोकता और धारण करता है। वह घोषयुक्त तीव्र किरणों को मथता हुआ अनेक प्रकार की क्रियाओं को शुद्धता एवं गतिशीलता प्रदान करता है।

(३) अ॒स्मा इदु॒ त्यमु॑प॒मं स्व॒र्षां भरा॑म्याङ्गू॒षमा॒स्ये॑न।
मंहि॑ष्ठ॒मच्छो॑क्तिभिर्मती॒नां सु॑वृ॒क्तिभिः॑ सू॒रिं वा॑वृ॒धध्यै॑॥३॥

इसका छन्द पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र वर्जनीय क्रियाओं से युक्त अग्निरूपी मुख के द्वारा नाना प्रकार की तीव्र दीप्तियों से युक्त होकर विभिन्न तेजस्वी पदार्थों को विशेषरूप से समृद्ध करता है। वह घोषयुक्त व्यापक किरणों को धारण करता हुआ नाना प्रकार के वलों को समृद्ध करता है।

(४) अ॒स्मा इदु॒ स्तोमं॒ सं हि॑नोमि॒ रथं॒ न तष्टे॑व॒ तत्सि॑नाय।
गिर॑श्च॒ गिर्वा॑हसे सुवृ॒क्तीन्द्रा॑य विश्वमि॒न्वं मेधि॑राय॥४॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह सूत्रात्मा वायु को धारण करती हुई विभिन्न छन्द रश्मियों से युक्त होकर नाना रमणीय वाहक एवं वन्धक वलों को तीक्ष्णरूप से प्राप्त करके विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों और विकिरणों को अच्छी प्रकार से नियंत्रित करता है।

(५) अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा३ समञ्जे।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम्।।५।।

इसका छन्द विराट्पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह नाना प्रकार के वल एवं उनकी आदान-प्रदान आदि क्रियाओं को प्रकाशित करने के लिए आशुगामी और सक्रियता आदि गुणों से युक्त होकर आसुर मेघ आदि पदार्थों को विदीर्ण करता एवं नाना प्राणादि रश्मियों से युक्त प्रकाश रश्मियों को अपने साथ संगत करता है।

(६) अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद्वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं१ रणाय।
वृत्रस्य चिद्विदद्येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः।।६।।

इसका छन्द पंक्ति है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह तीक्ष्ण एवं नियंत्रक शक्तिसम्पन्न इन्द्रतत्त्व आसुर मेघ को नष्ट करता हुआ असंख्य परमाणु आदि पदार्थों को धारण करके द्युलोकों में अत्यन्त सक्रिय तीक्ष्ण वज्र रश्मियों के द्वारा बाधक रश्मियों को निरन्तर नष्ट करके नाना क्रियाओं को समृद्ध करता है।

(७) अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना।
मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान्विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता।।७।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। इसके अन्य प्रभाव से वह विशाल अन्तरिक्ष में होने वाली विभिन्न संसर्ग क्रियाओं को परिपक्व और सुन्दर बनाता हुआ विभिन्न संयोज्य परमाणुओं को संपीडित, अवशोषित एवं प्रक्षिप्त करता है, साथ ही उनको अनेकत्र संलयित करके छुपाता है। वह व्यापक इन्द्र विशाल मेघों को छिन्न-भिन्न करता हुआ नाना क्रियाएं करता है।

(८) अस्मा इदु ग्नाश्चिद्देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः।।८।।

इसका छन्द पंक्ति है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से पृथिवी और अग्नि के परमाणु आकाश तत्त्व से युक्त होकर जब आसुर मेघरूप पदार्थों से परितः घिरे हुए होते हैं, उस समय इन्द्रतत्त्व देव परमाणुओं की रक्षिका विभिन्न तेजस्विनी वाग् रश्मियों के द्वारा विस्तृत होकर आसुर पदार्थ को नष्ट करता है।

(९) अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात्।
स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय।।९।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {ववक्षे = (वक्ष रोषे संघाते च)} सवको निगलने वाला असीम आधाररूप तेजस्वी इन्द्रतत्त्व इस सृष्टि में नाना प्रकार के संग्राम और संघातों में आकाश, पृथिवी और द्युलोकों को सव ओर से रिक्त वा संघनित करता है।

(१०) अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद्वज्रेण वृत्रमिन्द्रः।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः।।१०।।

इसका छन्द पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से विशेष सक्रिय इन्द्रतत्त्व

अपनी बलवान् वज्ररश्मियों के द्वारा क्षीण होते हुए आसुर मेघों को छिन्न भिन्न करता है। वह पार्थिव परमाणुओं की आवरण तुल्य छन्द रश्मियों को नाना प्रकार की संयोगादि क्रियाओं में उन परमाणुओं से पृथक् करता है।

(११) अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद्वज्रेण सीमयच्छत्।
ईशानकृद्दाशुषे दशस्यन्तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः।।११।।

इसका छन्द भुरिक्पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र अपने तेज के साथ रमण करता हुआ वज्र रश्मियों के द्वारा सब प्रकार की धाराओं को निगृहीत करके उन्हें शीघ्रता से विलोडित करता है। इससे वह उनमें विद्यमान पदार्थ को अनेक प्रकार से गति-कान्ति आदि से युक्त करते हुए नाना संयोग-विभागों से युक्त करता है।

(१२) अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै।।१२।।

इसका छन्द पंक्ति है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व अनेकों गुणों को धारण करके आशुगामी नियन्त्रक बलों के द्वारा नाना तन्मात्राओं की धाराओं को प्रवाहित करता है। वह वक्र गति वाली वज्ररूप रश्मियों से आच्छादक आसुर मेघ को छिन्न-भिन्न करता है।

(१३) अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून्।।१३।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व अपनी वज्ररश्मियों को बार-२ नवीन रूप प्रदान करके नाना संघर्षों में बाधक तत्त्वों को नष्ट करता है। वह पूर्व से ही हो रही नाना क्रियाओं को नाना नवीनोत्पन्न छन्दादि रश्मियों के द्वारा अच्छी प्रकार प्रकाशित करता है।

(१४) अस्येदु भिया गिरयश्च दृळहा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद्वीर्याय नोधाः।।१४।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से सबका नियन्त्रक वह इन्द्रतत्त्व बार-२ अव्यक्त शब्द करता हुआ त्वरित पराक्रम से युक्त होता है। {वेनः = इन्द्र उ वै वेनः (कौ.ब्रा.८.५)} इस कारण वह इन्द्र प्रकाशित व अप्रकाशित दोनों ही लोकों को कम्पाता हुआ प्रकाशित करता है।

(१५) अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः।।१५।।

इसका छन्द विराट् पंक्ति है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {एतशः = अश्वनाम (निघं.१.१४)} विभिन्न सूर्यलोकों में वह इन्द्रतत्त्व अनेक प्रकार की नियंत्रण शक्तियों से सम्पन्न होकर सूर्यादि लोकों में नाना प्रकार की आशुगामिनी, परस्पर एक-दूसरे के साथ स्पर्धा करती हुई तरंगों को उत्पन्न और रक्षित करता है।

(१६) एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन्।

ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात्।।१६।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से विभिन्न हरणशील रश्मियों को नानाविध संगत करने वाला एवं नाना प्रकार के प्रकाश और क्रियाओं को उत्पन्न करने वाला इन्द्रतत्त्व अनेक प्रकार के रूपों से युक्त प्रकाश रश्मियों को सब प्रकार से शीघ्रता से धारण करता है। वह अत्यन्त आशुगामी होकर नाना प्रकार की रश्मियों को निरुद्ध करके अनेक प्रकार के संयोज्य परमाणुओं को उत्पन्न करता है।

यहाँ इस प्रकार उपर्युक्त चार सूक्तरूप रश्मिसमूहों की उत्पत्ति होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार– उपर्युक्त लोक निर्माण में ४४ विभिन्न प्रकार की छन्द रश्मियां ४ समूहों में उत्पन्न होती हैं, जिनमें से २१ विभिन्न पंक्ति एवं २३ विभिन्न त्रिष्टुप् रश्मियां हैं। इस समय विद्युत् चुम्बकीय एवं गुरुत्वाकर्षण बल दोनों की ही विशेष वृद्धि होती है। विद्युत् चुम्बकीय तरंगों में भी भारी वृद्धि होती है। लोक सुदृढ़ अवस्था प्राप्त करने लगते हैं। विभिन्न लोकों की गतियां एवं मार्ग स्पष्ट होने लगते हैं। वे डार्क एनर्जी और डार्क मैटर के दुष्प्रभाव से मुक्त होने लगते हैं। विभिन्न पदार्थों के छेदन-भेदन एवं संयोग-वियोग की प्रक्रियाएं तीव्र होने लगती हैं। लोकों के अन्दर नाना प्रकार के गम्भीर घोष उत्पन्न होते हैं। नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया तीव्र होती है। विभिन्न द्युलोकों में ऊष्ण पदार्थ की धाराएं विक्षुब्ध वेग के साथ निरन्तर बहती हैं। विभिन्न कणों के संयोग और वियोग की क्रियाओं में आकाश तत्त्व भी सघन और विरल होता रहता है, साथ ही उन कणों को आच्छादित करने वाला छन्द रश्मियों का आवरण भी सघन और विरल होता रहता है। विद्युत् के कारण जहाँ सूर्यादि तारे प्रकाश उत्पन्न करते हैं, वहीं पृथिवी आदि ग्रह और छोटे-२ atoms और molecules भी सूक्ष्म प्रकाश रश्मियों को निरन्तर उत्पन्न करते हैं। विभिन्न कणों और तरंगों के मध्य होने वाली अन्योन्य क्रियाओं में विद्युत् की ही भूमिका होती है।।

४. त एते प्रातःसवने षळहस्तोत्रियाञ्छस्त्वा माध्यंदिनेऽहीनसूक्तानि शंसन्ति।। तान्येतान्यहीनसूक्तान्या सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषीति सत्यवन् मैत्रावरुणो, ऽस्मा इदु प्र तवसे तुरायेन्द्राय ब्रह्माणि राततमा। इन्द्रब्रह्माणि गोतमासो अक्रन्निति ब्रह्मण्वद् ब्राह्मणाच्छंसी, शासद्वह्निर्जनयन्त वह्निमिति वह्निवदच्छावाकः।।

व्याख्यानम्– {षडहः = षळहो वा उ सर्वः संवत्सरः (कौ.ब्रा.१६.१०)। अहः = पशवो वा अहोरात्राणि (तै.सं.२.१.५.२-३)} तदुपरान्त पूर्वोक्त प्रातःसवनसंज्ञक अवस्था में स्तोत्रियसंज्ञक दो तृचों अर्थात् कुल छः छन्द रश्मिसमूहरूप षडह की उत्पत्ति होती है। वे छः छन्द रश्मियां कौन सी हैं, इस विषय में महर्षि आश्वलायन का मत है–

"आ नो मित्रावरुणा मित्रं वयं हवामहे मित्रं हुवे पूतदक्षमयं वां मित्रावरुणा पुरूरुणा चिद्धचस्ति प्रति वां सूर उदित इति षळहस्तोत्रिया मैत्रावरुणस्य।" (आश्व.श्रौ.७.२.२)

इससे संकेत मिलता है कि दो स्तोत्रिय तृचरूप में निम्नलिखित ६ छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं–
(१) पूर्वोक्त विश्वामित्रो जमदग्निर्वा ऋषि प्राण से मित्रावरुणौ-देवताक एवं निचृद्गायत्री-छन्दस्क-

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्। मध्वा रजांसि सुक्रतू।।१६।। (ऋ.३.६२.१६)

की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {गव्यूतिः = गो – यूतिपदयोः समासः। 'अध्वपरिमाणे च' (पा.अ.६.१.७६ – वा. सूत्रेण वान्तादेश – वै.को. आ. राजवीर शास्त्री)} सुकर्मा प्राण एवं अपान अथवा प्राणोदान रश्मियां 'घृङ्' रश्मियों के साथ मिलकर नाना प्रकार की छन्द रश्मियों एवं परमाणुओं को सहजता से खींचती हैं।
(२) पूर्वोक्त काण्वो मेधातिथि ऋषिप्राण से मित्रावरुणौ-देवताक एवं गायत्री छन्दस्क-

मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये। जज्ञाना पूतदक्षसा।।४।। (ऋ.१.२३.४)

की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से प्राणापान एवं प्राणोदान रश्मियां अपने पवित्र और प्रकाशित वलों के द्वारा विभिन्न मरुद् रश्मियों को अवशोषित करने के लिए आकर्षित करती हैं।
(३) पूर्वोक्त मधुच्छन्दा ऋषि प्राण से मित्रावरुणौ-देवताक एवं गायत्री-छन्दस्क-

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्। धियं घृताचीं साधन्ता।।७।। (ऋ.१.२.७)

की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से प्राणापान एवं प्राणोदान रश्मियां 'घृमु' रश्मियों के साथ युक्त होकर अपने पवित्र वलों के द्वारा नाना बाधक तत्त्वों को दूर करके अनेकों कार्य सिद्ध करती हैं।
(४) पूर्वोक्त गृत्समद ऋषि प्राण से मित्रावरुणौ-देवताक एवं गायत्री-छन्दस्क-

अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा। ममेदिह श्रुतं हवम्।।४।। (ऋ.२.४१.४)

की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {ऋतम् = ओमित्येतदेवाक्षरमृतम् (जै.उ.३.६.८.५)} ओम् रश्मियों से समृद्ध होती हुई प्राणापान एवं प्राणोदान रश्मियां सोम रश्मियों को उत्पन्न करके उन्हें सम्पीडित वा आकर्षित करती हैं।
(५) उरुचक्रिरात्रेय ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न अनेकों प्रकार के कर्मों को करने वाली सूक्ष्म प्राणरश्मि विशेष से मित्रावरुणौ-देवताक एवं विराड्गायत्री-छन्दस्क-

पुरुरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण। मित्र वंसि वां सुमतिम्।।१।। (ऋ.५.७०.१)

की उत्पत्ति होती है। वे प्राणापान और प्राणोदान रश्मियां अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र में नाना प्रकार की क्रियाओं एवं पदार्थों की रक्षा करती हुई उन्हें प्रकाशित करती हैं। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें।
(६) पूर्वोक्त वसिष्ठ ऋषि से आदित्य-देवताक एवं गायत्रीछन्दस्क-

प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम्। अर्यमणं रिशादसम्।।७।। (ऋ.७.६६.७)

की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से प्राणापान वा प्राणोदान रश्मियां नियंत्रक एवं असुर विनाशक वलों से युक्त होकर सब पदार्थों के तेज को उत्कृष्टता प्रदान करती हैं।

जैसा कि हम पूर्व में अनेकत्र लिख चुके हैं कि स्तोत्रियरूप प्राणरश्मियां प्राण नामक प्राणतत्त्व के समान व्यवहार करती हैं। इसी कारण इन ६ रश्मियों को "षडह" कहा गया है। इनकी उत्पत्ति के पश्चात् अग्रिम माध्यन्दिन अवस्था के रूप में अहीनसंज्ञक सूक्तरूप रश्मिसमूह उत्पन्न होते हैं, जिनका वर्णन अगली कण्डिका में किया गया है। सूक्तों के अहीन रूप को हम पूर्व में स्पष्ट कर चुके हैं।।

माध्यन्दिन सवन के अहीनसंज्ञक सूक्तरूप रश्मिसमूह निम्नानुसार उत्पन्न होते हैं-

(१) आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः।।१।।

इत्यादि ऋ.४.१६ सूक्त के विषय में ५.२१.१ द्रष्टव्य है। यह सूक्त मैत्रावरुण से सम्बन्धित है किंवा पूर्वोक्त मैत्रावरुण शस्त्र रश्मियों के मध्य उत्पन्न होता है।

(२) अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय।
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा।।१।।

इत्यादि ऋ.१.६१ सूक्त, इसके विषय में हम इसी खण्ड में लिख चुके हैं। इस सूक्त की प्रथम ऋचा का चतुर्थ पाद "इन्द्राय ब्रह्माणि राततमा" है, जिसके प्रभाव से इन्द्रतत्त्व प्राणापान रश्मियों का विशेष सिंचन करके संयोज्य परमाणुओं को विशेषरूप से युक्त करता है। इसी सूक्त की अन्तिम ऋचा का द्वितीय पाद "इन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन्" है, जिसके प्रभाव से वह इन्द्र अत्यन्त गतिशील होकर नाना प्रकार के संयोज्य परमाणुओं को उत्पन्न करता है। इन दोनों ही ऋचाओं में 'ब्रह्मन्' शब्द विद्यमान होने से इस सूक्तरूप रश्मिसमूह के प्रभाव से विभिन्न संयोगादि प्रक्रियाएं समृद्ध होती हैं। इस सूक्त की उत्पत्ति पूर्वोक्त ब्राह्मणाच्छंसी शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मियों के मध्य होती है।

(३) शासद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद्विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन्।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्त्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे।।१।।

इत्यादि ऋ.३.३१ सूक्त की उत्पत्ति होती है। इस सूक्त के विषय में इसी खण्ड की द्वितीय कण्डिका द्रष्टव्य है। इस सूक्त की द्वितीय ऋचा में 'जनयन्त वह्निः' पद विद्यमान है। इस कारण इसके प्रभाव से इन्द्रतत्त्व नाना वाहक रश्मियों को उत्पन्न करता है। इस सूक्त की उत्पत्ति पूर्वोक्त अच्छावाक शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मियों के मध्य होती है।

ये तीनों सूक्तरूप रश्मिसमूह अहीनसंज्ञक हैं, जिनके विषय में हम पूर्व में लिख चुके हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार– उस समय ६ गायत्री छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। उनके प्रभाव से प्राण, अपान, उदान एवं मास रश्मियां विशेष सक्रिय होकर विभिन्न प्रकार के कणों और तरंगों के संयोग की प्रक्रिया तेज होने लगती है। इसके प्रभाव से डार्क एनर्जी का सूक्ष्म स्वरूप भी विभिन्न संयोग वा सम्पीडन आदि क्रियाओं में बाधक नहीं बन पाता। विद्युत् चुम्बकीय बलों में तीव्र वृद्धि होती है। विभिन्न लोकों में गम्भीर घोष उत्पन्न होते हैं। प्रकाश व ऊष्मा की मात्रा भी पूर्वापेक्षा बढ़ने लगती है। दूर-२ स्थित कॉस्मिक मेघ छिन्न-भिन्न होकर लोकों के साथ संयुक्त होने लगते हैं। लोकों में छेदन-भेदन, आकर्षण, प्रतिकर्षण, प्रक्षेपण आदि क्रियाएं तीव्र होती हैं। विभिन्न कणों की ऊर्जा में वृद्धि होती है। तारों में नाभिकीय संलयन की क्रिया तीव्र होती है। तारों में प्रवाहित धाराएं विक्षुब्ध वेग से बहती हैं। विभिन्न लोक कम्पन करते हुए नाना प्रकार की गतियों से युक्त होते हैं। अनेक रूप-रंगों की उत्पत्ति होती है। इस समय नवीन तारों वा क्षुद्र ग्रह आदि लोकों के निर्माण की प्रक्रिया भी होती रहती है। अन्तरिक्ष में बिखरा हुआ पदार्थ लोकों के प्रबल गुरुत्वाकर्षण बल के प्रभाव से संघनित होता रहता है। निष्क्रिय वा न्यून बलयुक्त कणों की ऊर्जा में वृद्धि होकर वे भी सक्रिय हो उठते हैं। **नाना प्रकार के क्वाण्टाज् व कणों की उत्पत्ति विभिन्न छन्दादि रश्मियों के संघनन से होती है।** अनेक कणों के द्वारा भी क्वाण्टाज् उत्पन्न होते हैं। विभिन्न लोकों में अपेक्षाकृत स्थायित्व आने लगता है। डार्क एनर्जी व डार्क मैटर का प्रभाव न्यून होता है। इस विषय में विशेष परिज्ञानार्थ व्याख्यान भाग द्रष्टव्य है।।

५. तदाहुः कस्मादच्छावाको वह्निवदेतत् सूक्तमुभयत्र शंसति-पराञ्चिषु चैवाहःस्वभ्यावर्तिषु चेति।।
वीर्यवान् वा एष बह्वृचो वह्निवदेतत् सूक्तं वहति ह वै वह्निर्धुरो यासु युज्यते; तस्मादच्छावाको वह्निवदेतत् सूक्तमुभयत्र शंसति, पराञ्चिषु चैवाहःस्वभ्यावर्तिषु च।।
तानि पञ्चस्वहःसु भवन्ति,-चतुर्विंशेऽभिजिति विषुवति विश्वजिति महाव्रतेऽहीनानि ह

वा एतान्यहानि, न ह्येषु किंचन हीयते; पराञ्चीनि ह वा एतान्यहान्यनभ्यावर्तीनि;
तस्मादेनान्येतेष्वहःसु शंसन्ति।।
यदेनानि शंसन्त्यहीनान् स्वर्गाँल्लोकान् सर्वरूपान् सर्वसमृद्धानवाप्नवामेति।।
यदेवैनानि शंसन्तीन्द्रमेवैतैर्निह्वयन्ते यथ ऋषभं वाशितायै।।
यद्वेवैनानि शंसन्त्यहीनस्य संतत्या, अहीनमेव तत् संतन्वन्ति।।२।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि क्यों पूर्वोक्त अच्छावाक शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मियों में, जो ऋग्वेद ३.३१ सूक्तरूप रश्मिसमूह में 'वह्नि' पद विद्यमान होता है, की उत्पत्ति होती है। यह सूक्तरूप रश्मिसमूह पूर्वोत्पन्न रश्मिसमूहों, जिनकी बार-२ आवृत्ति नहीं होती, में तथा उपरि कण्डिका में वर्णित 'षडह-रूप' छन्दरश्मिसमूह में उत्पन्न होता है। इससे यह भी संकेत मिलता है कि उपरिवर्णित 'षडह-रूप' छः छन्द रश्मियां बार-२ आवृत्त होती रहती हैं। इन दोनों ही प्रकार के रश्मिसमूहों के विषय में आगे इसी खण्ड में स्पष्ट विवेचन किया गया है।।

इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि इसी खण्ड में माध्यन्दिन सवन में जो अहीनरूप सूक्त अर्थात् छन्दरश्मि समूहों की चर्चा की गयी है, उनमें से अच्छावाक के अहीन सूक्त ऋ.३.३१ में २२ छन्द रश्मियां हैं, जबकि ब्राह्मणाच्छंसी के अहीन सूक्त ऋ.१.६१ में १६ छन्द रश्मियां तथा मैत्रावरुण के अहीन सूक्त ऋ.४.१६ में २१ छन्द रश्मियां हैं। इस प्रकार अच्छावाक के अहीन सूक्त में सर्वाधिक छन्द रश्मि होने से इसे 'बह्वृचः' कहा है और इसे वीर्यवान् इस कारण कहा है, क्योंकि इसी सूक्त में त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की संख्या अन्य दो सूक्तों की अपेक्षा अधिक है। त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां न केवल तीव्र तेज और बल से युक्त होती हैं, अपितु वह अन्य छन्द रश्मियों की अपेक्षा तारक गुणों से विशेष युक्त होती हैं। इस विषय की इस ग्रन्थ में चर्चा अनेकत्र की जाती रही है कि त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां अन्य भ्रान्त व दुर्बल छन्द रश्मियों को तारने वाली होती हैं। इस विषय में अन्यत्र भी कहा गया है-

"त्रिष्टुप् स्तोम इत्युत्तरपदा का तु त्रिता स्यात्तीर्णतमं छन्दो भवति" (दै.३.१४,१५)

इससे स्पष्ट है कि त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां ही अन्य छन्द रश्मियों के लिए वाहन का कार्य करती हैं। यद्यपि खण्ड ५.१२ में गायत्री द्वारा त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों एवं खण्ड ५.१६ में जगती द्वारा त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों को वहन करने की चर्चा की गयी है परन्तु मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी और अच्छावाक इन तीनों के ही अहीन सूक्तों में गायत्री एवं जगती कोई भी छन्द रश्मि विद्यमान नहीं है। इस कारण त्रिष्टुप्प्रधान सूक्त, जो अच्छावाक का अहीन सूक्त है, को ही सर्वश्रेष्ठ वाहन माना जा सकता है। इसके साथ ही भ्रान्त छन्द रश्मियों को तारने में त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की ही भूमिका सर्वत्र मानी गयी है। इन कारणों से अच्छावाक रश्मियों में 'वह्नि' पद से युक्त ऋचाओं की उत्पत्ति उनके सर्वथा अनुकूल ही होती है। 'वह्नि' के विषय में ऋषियों का कथन है-

"वह्निना हि तत्र गच्छति यत्र जिगमिषति।" (जै.ब्रा.२.६६)
"वह्निरसि हव्यवाहनः" (मै.१.२.१२; काठ.२.१३; क.२.७)
"वह्निर्होता"। (तै.सं.२.२.१०.५)
"वह्निर्वा अनड्वान्" (तै.सं.२.२.१०.५; ६.१.१०.२; तै.ब्रा.१.१.६.१०; १.८.२.५)

इस प्रकार महर्षि यह कहना चाहते हैं कि ये 'वह्नि' शब्दयुक्त छन्दरश्मियां, जो धारकबलों से विशेष युक्त होती हैं, ये जिन छन्द रश्मियों के साथ संयुक्त हो जाती हैं, वे ही छन्द रश्मियां विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों को वहन करने में समर्थ होती हैं। जैसे लोक में किसी गाड़ी में अश्व अथवा बैल जुतने पर ही वह गाड़ी भार वहन करने में समर्थ होती है, वैसे ही अच्छावाक की अहीनसंज्ञक रश्मियां इन उपर्युक्त 'वह्निवत्' सूक्तरूप छन्द रश्मियों से युक्त होकर विभिन्न रश्मियों की वाहिका एवं तारिका बनने में समर्थ होती हैं। इस कारण इन वह्निवत् सूक्तरूप रश्मियों की उपर्युक्त दोनों ही स्थितियों में उत्पत्ति होती है अर्थात् पूर्व और अपर उत्पन्न होने वाली रश्मियों में इनकी उत्पत्ति होती है।।

उपर्युक्त अहीन सूक्तरूप रश्मियां जिन पूर्वोत्पन्न रश्मियों में उत्पन्न होती हैं, उनकी विवेचना

करते हुए ऋषि लिखते हैं कि वे पूर्वोत्पन्न रश्मिसमूह, जिन्हें अहन् भी कहा गया है, पांच प्रकार के होते हैं। (१) चतुर्विंश रश्मिसमूह, (२) अभिजित् रश्मिसमूह, (३) विषुवान् रश्मिसमूह, (४) विश्वजित् रश्मिसमूह, (५) महाव्रत रश्मिसमूह। इनमें से चतुर्विंश आरम्भणीय रश्मिसमूह है, जिसके विषय में ४.१२.१ द्रष्टव्य है। शेष चार अहनों (रश्मिसमूहों) के विषय में खण्ड ४.१८ द्रष्टव्य है। इन चार रश्मिसमूहों की भूमिका विभिन्न लोकों की कक्षाओं के स्थायित्व में विशेष होती है। इनमें से विषुवत् नामक रश्मिसमूह लघु एवं विशाल आदित्य लोकों के भीतर विशेषरूप से विद्यमान होते हैं, जबकि अन्य तीन को खण्ड ४.१८ में चित्र द्वारा दर्शाया गया है। उधर प्रथम चतुर्विंश नामक छन्द रश्मियां लोक निर्माण की प्रक्रिया के प्रारम्भिक काल में उत्पन्न होती हैं। ये पांचों नाम क्षेत्र विशेष के भी हैं। उन क्षेत्रों में जो भी छन्द रश्मिसमूह विद्यमान होते हैं, उन्हें भी इसी नाम से पुकारा जाता है। ये पांचों क्षेत्र भी अहीनसंज्ञक होते हैं। साथ ही उनमें विद्यमान छन्द रश्मियां भी। इसका कारण यह है कि इस समय विभिन्न छन्द रश्मियों में क्षीणता नहीं आ पाती। इनमें क्षीणता आने से लोक निर्माण प्रक्रिया एवं लोकों के स्थायित्व वा परिक्रमणपथों के निर्माण की प्रक्रिया छिन्न-भिन्न हो जाएगी। इस कारण पूर्वोक्त अहीनसंज्ञक छन्दरश्मिसमूहों से इन अहीनसंज्ञक रश्मियों की समुचित संगति है, इस कारण इन पांचों में अहीनसूक्तों की उत्पत्ति होती है। इन पांचों को ही यहाँ 'पराच्' कहा गया है, {पराच् = अनावृत्त (आप्टेकोष)} क्योंकि इन उपर्युक्त पांचों अहनरूपी रश्मिसमूहों की बार-२ आवृत्ति नहीं होती, इस कारण बार-२ आवृत्त होने वाले अहीनसंज्ञक उपर्युक्त तीनों सूक्तरूप रश्मिसमूहों की उत्पत्ति होती है, जिनमें से एक सूक्तरूप रश्मिसमूह 'वह्निवत्' होने से विशेष वाहक और धारक गुणों से युक्त होता है। इस कारण लोक निर्माण प्रक्रिया का समुचित वहन होता रहता है।।

जब उपर्युक्त अहीनसूक्तरूप रश्मिसमूहों की उत्पत्ति होती है, उस समय सभी प्रकार के रूपों से युक्त एवं सर्वसमृद्ध आदित्य लोक उत्पन्न होते हैं। इसके साथ ही सभी प्रकार के लोकों की सर्वसमृद्धता पूर्णता को प्राप्त होती है।।

ये उपर्युक्त अहीनसंज्ञक सूक्तरूप रश्मिसमूह इन्द्रदेवताक होते हैं, इस कारण उनकी उत्पत्ति होने से इन्द्रतत्त्व विशेष समृद्ध होता है। इन इन्द्रदेवताक अहीनसूक्तरूप रश्मिसमूहों को अन्य छन्दादि रश्मियां इसी प्रकार आकृष्ट करती रहती हैं अर्थात् इन्द्रतत्त्व का आह्वान करती रहती हैं, जैसे लोक में ऋतुकाल में गौ रम्भाती हुई वृषभ का आह्वान करती है। उन रश्मियों के द्वारा इन्द्रतत्त्व के आह्वान पर इन्द्रतत्त्व आह्वान करने वाले रश्मि आदि पदार्थों के साथ निरन्तर संगत होने लगता है, जिससे लोक निर्माण प्रक्रिया समृद्धतर होती चली जाती है।।

उपर्युक्त पांच क्षेत्रों, पदार्थों वा उनमें विद्यमान छन्द रश्मिसमूहों, जिन्हें यहाँ अहन् कहा गया है, में जब अहीनसंज्ञक उपर्युक्त सूक्तरूप रश्मिसमूहों की उत्पत्ति होती है, तब उनके प्रभाव से वे अहन् संज्ञक पांचों पदार्थ निरन्तरता को प्राप्त करते हैं अर्थात् उनमें कहीं भी व्यवधान नहीं आ पाता। इसके साथ ही उनमें होने वाली नाना प्रकार की क्रियाएं निर्बाधरूप से विस्तृत होती चली जाती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इसका वैज्ञानिक भाष्यसार पृथक् से समझना दुष्कर है। इसलिए विज्ञ पाठक व्याख्यान भाग को ही ध्यान से पढ़कर स्वयं समझ सकते हैं। इसमें कुछ पूर्व प्रसंगों की भी चर्चा है, जिसे व्याख्यान भाग में उद्धृत किया गया है।।

इति २९.२ समाप्तः

ॐ अथ २९.३ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. ततो वा एतांस्त्रीन् संपातान् मैत्रावरुणो विपर्यासमेकैकमहरहः शंसति।।
'एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्नत्रेति' प्रथमेऽहनि, 'यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टीति' द्वितीये, 'कथा महामवृधत् कस्य होतुरिति' तृतीये।।
त्रीनेव संपातान् ब्राह्मणाच्छंसी विपर्यासमेकैकमहरहः शंसतीन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैरिति प्रथमेऽहनि, 'य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिति' द्वितीये, 'यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम इति' तृतीये।।
त्रीनेव संपातानच्छावाको विपर्यासमेकैकमहरहः शंसतीमामू षु प्रभृतिं सातये धा इति प्रथमेऽहनीच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखाय इति द्वितीये, 'शासद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यङ्गादिति' तृतीये।।
तानि वा एतानि नव।।

व्याख्यानम्– पूर्वखण्ड में जिन सम्पात-सूक्तों का वर्णन किया गया है, यहाँ उनका विनियोग दर्शाया गया है। विनियोग का तात्पर्य यह है कि ये संपातसूक्त कब और किसके द्वारा उत्पन्न वा प्रयुक्त किये जाते हैं? इस विषय में महर्षि कहते हैं कि पूर्वोक्त पांच अहन् रूपी क्षेत्र वा छन्द रश्मियों के अतिरिक्त जो 'षडह'-रूपी क्षेत्र होते हैं और जिनका वर्णन खण्ड ४.१५ में किया गया है, उनमें तीन संपात-सूक्तों को पूर्वोक्त मैत्रावरुण शस्त्र संज्ञक तृच रश्मियां ऋषि प्राणों को प्रेरित करके उत्पन्न करती हैं। इन संपात-सूक्तों की उत्पत्ति उन षडहों के एक-२ अहन् रूपी क्षेत्र में क्रमानुसार एवं उल्टे क्रम से होती है। जैसे प्रथम षडह के प्रथम अहन् रूपी क्षेत्र में जो संपात सूक्तरूप रश्मिसमूह उत्पन्न होता है, अगले षडह के प्रारम्भ में वह सूक्त उत्पन्न न होकर तृतीय सूक्त सर्वप्रथम उत्पन्न होता है, जिससे महा आदित्य लोकों के निर्माण की प्रक्रिया समुचितरूप से होती है। इस क्रम की संगति ४.१६.१ में वर्णित महा आदित्य लोक, जिसे बृहत् स्वर्गलोक कहा जाता है, के निर्माण की सचित्र प्रक्रिया में पूरी तरह दिखाई देती है। पाठक उस खण्ड पर गम्भीरता से विचार करके इस विषय को समझ सकते हैं।।

ये उपर्युक्त संपात सूक्त क्रमशः इस प्रकार हैं-

(१) एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्नत्र विश्वे देवासः सुहवास ऊमाः।
महामुभे रोदसी वृद्धमृष्वं निरेकमिद् वृणते वृत्रहत्ये।।१।।

इत्यादि ऋ.४.१९ सूक्त, जिसकी उत्पत्ति षडह के प्रथम अहन् में होती है। इस सूक्त के विषय में पूर्वखण्ड द्रष्टव्य है।

(२) यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि तन्नो महान्करति शुष्म्या चित्।
ब्रह्म स्तोमं मघवा सोममुक्था यो अश्मानं शवसा बिभ्रदेति।।१।।

इत्यादि ऋ.४.२२ सूक्त की उत्पत्ति द्वितीय अहन् में होती है। इसके विषय में पूर्वखण्ड द्रष्टव्य है।

(३) कथा महामंवृधत्कस्य होतुर्यज्ञं जुषाणो अभि सोममूधः।
पिबन्नुशानो जुषमाणो अन्धो ववक्ष ऋष्वः शुचते धनाय।।१।।

इत्यादि ऋ.४.२३ सूक्त की उत्पत्ति तृतीय अहन् में होती है। इसके विषय में पूर्वखण्ड द्रष्टव्य है।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि षडह के प्रथम तीन अहन् रूपी क्षेत्रों में मैत्रावरुण शस्त्र द्वारा इन तीन संपात-सूक्तों की उत्पत्ति होती है, तब अगले तीन अहनों में इनकी उत्पत्ति किस क्रम से होती है, इस विषय में हमारा मत यह है कि क्रमशः चौथे, पांचवें और छटे अहन् में क्रमशः द्वितीय, तृतीय एवं प्रथम-सम्पात सूक्त की उत्पत्ति होती है। इसके पश्चात् अगले षडह में सर्वप्रथम तृतीय सम्पात-सूक्त की उत्पत्ति होकर पुनः द्वितीय एवं प्रथम सम्पात-सूक्त की क्रमशः उत्पत्ति होती है। यह क्रम एक शृंखला के रूप में निरन्तर आगे बढ़ता हुआ परिवर्तित भी होता रहता है अर्थात् सम्पात-सूक्तों का सदैव यही क्रम नहीं रहता।।

मैत्रावरुण के समान ही ब्राह्मणाच्छंसी शस्त्र द्वारा पूर्वोक्त क्रम से विभिन्न अहनों में तीन संपात-सूक्तरूप रश्मिसमूह निम्न क्रमानुसार उत्पन्न होते हैं-

(१) इन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून्।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद्रोदसी उभे।।१।।

इत्यादि ऋ.३.३४ सूक्त की उत्पत्ति प्रथम षडह के प्रथम अहन् रूपी क्षेत्र में होती है। इस सूक्त के विषय में पूर्वखण्ड द्रष्टव्य है।

(२) य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान्।।१।।

इत्यादि ऋ.६.२२ सूक्त की उत्पत्ति द्वितीय अहन् में होती है। इस सूक्त के विषय में पूर्वखण्ड देखें।

(३) यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः।।१।।

इत्यादि ऋ.७.१९ सूक्त की तृतीय अहन् में उत्पत्ति होती है। इसके विषय में भी पूर्वखण्ड द्रष्टव्य है।
इनके उत्पत्ति के क्रम की विस्तृत विवेचना पूर्ववत् समझें।।

तदुपरान्त अच्छावाक शस्त्र से तीन संपात सूक्तरूप रश्मिसमूह पूर्ववत् क्रम के अनुसार षडहों के विभिन्न अहनों में निम्न क्रमानुसार उत्पन्न होते हैं-

(१) इमामू षु प्रभृतिं सातये धाः शश्वच्छश्वदूतिभिर्यादमानः।
सुतेसुते वावृधे वर्धनेभिर्यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतो भूत्।।१।।

इत्यादि ऋ.३.३६ सूक्त की प्रथम अहन् में उत्पत्ति होती है। इसके विषय में पूर्वखण्ड द्रष्टव्य है।

(२) इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि।
तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः।।१।।

इत्यादि ऋ.३.३० सूक्त की उत्पत्ति द्वितीय अहन् में होती है। इसके विषय में भी पूर्वखण्ड देखें।

(३) शासद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद्विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन्।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्त्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे।।१।।

इत्यादि ऋ.३.३१ सूक्त की तृतीय अहन् में उत्पत्ति होती है। इसके विषय में भी पूर्वखण्ड द्रष्टव्य है।
इस प्रकार ये कुल मिलाकर ९ सूक्तरूप रश्मिसमूह संपात रूप में उपर्युक्त परिस्थिति और पदार्थों में उत्पन्न होते हैं। संपात-सूक्तों के स्वरूप और प्रभाव के विषय में हम पूर्वखण्ड में विस्तार से लिख चुके हैं।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार– व्याख्यान भाग में दर्शाये हुए सभी ९ छन्द रश्मिसमूहों का सृष्टि प्रक्रिया पर वैज्ञानिक प्रभाव पूर्वखण्ड में दर्शाए अनुसार विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं। व्याख्यान भाग में दर्शाए खण्डों से भी इसकी संगति भी लगा सकते हैं।।

२. त्रीणि चाहरहः शस्यानि।।
तानि द्वादश संपद्यन्ते, द्वादश वै मासाः संवत्सरः, संवत्सरः प्रजापतिर्यज्ञस्तत्संवत्सरं प्रजापतिं यज्ञमाप्नुवन्ति, तत्संवत्सरे प्रजापतौ यज्ञेऽहरहः प्रतितिष्ठन्तो यन्ति।।

व्याख्यानम्– उपर्युक्त नौ सम्पात सूक्तरूप रश्मिसमूहों के वर्णन के पश्चात् उनसे सम्बंधित अन्य तीन सूक्तरूप छन्द रश्मिसमूहों की चर्चा करते हुए कहते हैं कि उन तीन-२ सूक्तों की उत्पत्ति से पूर्व मैत्रावरुणादि तीनों शस्त्रों द्वारा एक-२ सूक्तरूप छन्द रश्मिसमूह की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार तीन सूक्त और उत्पन्न होते हैं। इन तीनों सूक्तों का वर्णन अगले खण्ड में किया गया है। हम इससे अवगत हैं कि प्रत्येक अहन् रूपी क्षेत्र में तीनों ही शस्त्रों द्वारा तीन-२ सम्पात सूक्तों की उत्पत्ति होती है। इस कारण प्रत्येक अहन् में नौ-नौ सूक्त हो जाते हैं। जब प्रत्येक शस्त्र संज्ञक तृच प्रत्येक सम्पात-सूक्तत्रय से पूर्व एक-२ सूक्त को उत्पन्न करता है, तब प्रत्येक अहन् रूपी क्षेत्र में कुल मिलाकर बारह सूक्त हो जाते हैं। उधर इस सृष्टिरूपी संवत्सर में कुल बारह प्रकार की मास रश्मियां विद्यमान होती हैं, जिनके विषय में हम अनेकत्र लिखते आये हैं। ये मास रश्मियां ही नाना छन्द रश्मियों एवं परमाणु आदि पदार्थों के मध्य संधानक का कार्य करती हैं, जिसके कारण यह सृष्टि यज्ञ संचालित व उत्पन्न होता है। इस सृष्टि में संवत्सररूपी विभिन्न लोक यज्ञ एवं प्रजापति का रूप होते हैं अर्थात् विभिन्न लोकों में, विशेषकर द्युलोकों में नाना प्रकार के परमाणुओं की उत्पत्ति होती है। इस कारण इन लोकों को ही प्रजापति कहा जाता है। इन लोकों में बारह उपर्युक्त संपात-सूक्तरूप रश्मिसमूह एवं बारह मास रश्मियां मिलकर इस सृष्टि यज्ञरूपी प्रजापति को सर्वथा व्याप्त कर लेती हैं, जिसके कारण इस सृष्टि में विद्यमान पूर्वोक्त अहन् रूपी विभिन्न क्षेत्र अपनी-२ क्रियाओं को संपात एवं मास रश्मियों के द्वारा समृद्ध और प्रतिष्ठित करते रहते हैं। इस प्रकार पूर्वोक्त लोकनिर्माण की प्रक्रिया सतत समृद्ध और विस्तृत होती रहती है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार– इस सृष्टि में अनेक छन्द रश्मियां, जिन्हें पूर्वखण्ड में संपात कहा गया है, वे साथ-२ उत्पन्न होकर तीव्रता से संगत होती हैं। वे विभिन्न मास रश्मियों के साथ मिलकर लोकों के निर्माण की प्रक्रिया को तीव्र और विस्तृत करती हैं। इससे सभी तारे, ग्रह-उपग्रह एवं अन्तरिक्षस्थ सभी पदार्थ प्रभावित और समृद्ध होते हैं।।

३. तान्यन्तरेणाऽऽवापमावपेरन्।।
अन्यूङ्ख्या विराजो वैमदीश्च चतुर्थेऽहनि, पङ्क्तीः पञ्चमे, पारुच्छेपीः षष्ठे।।

व्याख्यानम्- यहाँ पूर्वोक्त ६ संपात-सूक्तों और उनमें से तीन-२ सूक्तों के समूह के पूर्व एक-२ सूक्त के उत्पन्न होने की चर्चा की गयी है। इसके उपरान्त महर्षि कहते हैं कि सम्पात सूक्त के प्रत्येक समूह से पूर्व उत्पन्न प्रत्येक सूक्त के मध्य अर्थात् सम्पात एवं अन्य सूक्त के मध्य कुछ अन्य छन्द रश्मियों का वपन किया जाता है अर्थात् ये छन्द रश्मियां पूर्ववर्णित सूक्तों के मध्य सब ओर बिखरती हुई सी उत्पन्न होती हैं, जो नाना प्रकार की क्रियाओं का बीजवपन करती हैं।।

इसका भाष्य करते हुए आचार्य सायण ने लिखा है- 'विराजः' विराट्छन्दस्का ऋचः। ताः पृष्ठ्यषडहस्य चतुर्थेऽहन्यावपनीयाः। 'न ते गिरो अपि मृष्ये'- इत्याद्याश्चतस्र ऋचः। 'प्र वो महे महिवृधे भरध्वम्'-इत्याद्यास्तिस्रः। एताः सप्त विराजः। त्रयाणां होत्रकाणां त्रयस्तृचा भवन्ति। प्रथममारभ्यैकस्तृचो मैत्रावरुणस्य, तृतीयमारभ्यैकस्तृचो ब्राह्मणाच्छंसिनः। पञ्चमीमारभ्यैकस्तृचोऽच्छावाकस्य। तदेवं सप्तस्वृक्षु त्रयस्तृचा विभज्य प्रक्षेपणीयाः। सोऽयं विराजां प्रक्षेप एकः पक्षः। वैमदीरावपेरन्निति पक्षान्तरम्। विमदाख्येन महर्षिणा दृष्टा वैमद्यः। ताश्च 'यजामह इन्द्रम्'-इत्याद्याः सप्तर्चः। ता अपि पूर्ववत् त्रयस्तृचाः कर्त्तव्याः। पञ्चमेऽहनि 'यच्चिद्धि सत्य सोमपाः- 'इत्याद्याः पंक्तिच्छन्दस्काः सप्तर्चः पूर्ववदावपनीयाः। तथा षष्ठेऽहनि परुच्छेपेन दृष्टा 'इन्द्राय हि द्यौः'- इत्याद्याः सप्तर्चः पूर्ववदावपनीयाः। इसका तात्पर्य है कि उपर्युक्त आवपनीय छन्द रश्मियों के उत्पन्न होने की प्रक्रिया और स्थान का प्रकार यह है कि पूर्वोक्त षडह के चौथे अहन् में वसिष्ठ ऋषि प्राण से इन्द्र-देवताक निम्न चार छन्द रश्मियों ऋ.७.२२.५-८ तृच की क्रमशः उत्पत्ति होती है-

(१) न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान्। सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि।।५।।

इस ऋचा के विषय में ५.४.७ द्रष्टव्य है।

(२) भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित्। मारे अस्मन्मघवञ्ज्योक्कः।।६।।

इस ऋचा के विषय में भी ५.४.७ द्रष्टव्य है।

इन दोनों ही ऋचाओं को वैराज कहा है। इस विषय में भी वही खण्ड द्रष्टव्य है।

(३) तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि। त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि।।७।।

इसका छन्द निचृदनुष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से सबको धारण करने वाला तीक्ष्ण इन्द्रतत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मियों के द्वारा सबको अपने साथ संगत करके नाना प्रकार की संयोगादि क्रियाओं को सम्पन्न करता हुआ अनेक प्रकार के संयोज्य परमाणु वा रश्मियों को समृद्ध करता है।

(४) नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र। न वीर्यमिन्द्र ते न राधः।।८।।

इसका छन्द विराड् अनुष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से असुर विनाशक तीक्ष्ण इन्द्रतत्त्व की व्यापकता को विभिन्न तेजस्वी परमाणु आदि पदार्थ उत्कृष्टता से प्राप्त करके अक्षीण तेज से युक्त हो जाते हैं।।

इसके पश्चात् पूर्वोक्त ऋषि और देवता वाले ऋ.७.३१.१०-१२ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम्। विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः।।१०।।

इसका छन्द भुरिगनुष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह

इन्द्रतत्त्व व्यापक, समृद्ध, सक्रिय और सतेज होकर पूर्वोत्पन्न विभिन्न रश्मि और परमाणु आदि पदार्थों को धारण करके प्रकाशादि रश्मियों को समृद्ध करता है।

(२) उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः। तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः।।११।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व बहुत पदार्थों में किंवा सब पदार्थों में व्यापक एवं महती धारणा शक्तिसम्पन्न सूत्रात्मा वायु रश्मियों के द्वारा अनेक रश्मियों के निरोध से नाना परमाणुओं और बलों की उत्पत्ति करता है, जिससे वे निर्विघ्न होकर नाना कार्य करने में समर्थ होते हैं।

(३) इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै। हर्यश्वाय बर्हया समापीन्।।१२।।

इसका छन्द अनुष्टुप् है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण एवं वाग् रश्मियों के द्वारा संतुलित शक्ति सम्पन्न प्रकाशित इन्द्रतत्त्व विभिन्न पदार्थों को सम्पीडित और व्याप्त करता हुआ धारण करता है, जिससे नाना प्रकार की हरणशील रश्मियां निरन्तर समृद्ध होती हैं।

इन तीनों ऋचाओं को भी महर्षि ने वैराज कहा है। इसका आशय भी उपर्युक्त चार ऋचाओं के समान समझें।

ये सातों वैराज छन्द रश्मियां चतुर्थ अहन् में ही उत्पन्न होती हैं। ये सभी अन्यूङ्ख अवस्था में उत्पन्न होती हैं। न्यूङ्ख प्रक्रिया के विषय में ५.३.२ द्रष्टव्य है।

इन सात छन्द रश्मियों का तीनों होत्रक अर्थात् शस्त्रों के साथ सम्बन्ध वा विभाजन इस प्रकार है-

(१) मैत्रावरुण शस्त्र का सम्बन्ध प्रथम तृच से होता है, जो पूर्वोक्त कुल ७ सात छन्द रश्मियों में से प्रथम तीन छन्द रश्मियों के रूप में होता है।

(२) ब्राह्मणाच्छंसी शस्त्र का सम्बन्ध द्वितीय तृच से होता है। इस तृच की तीन छन्द रश्मियों में उपर्युक्त सात में से तीसरी, चौथी और पांचवीं सम्मिलित हैं। स्पष्ट है कि तीसरी छन्द रश्मि दोनों ही शस्त्रों से सम्बन्ध रखती है।

(३) अच्छावाक शस्त्र से तृतीय तृच का सम्बन्ध होता है। इस तृच में उपर्युक्त सात में से पांचवीं, छठी और सातवीं छन्द रश्मि सम्मिलित हैं। यहाँ स्पष्ट है कि पांचवीं छन्द रश्मि भी दो शस्त्रों से सम्बन्ध रखती है।

इस प्रकार का विभाजन और समायोजन एक पक्ष है, जो चतुर्थ अहन् के विषय में आवपनीय छन्द रश्मियों की विवेचना करता है। अब दूसरा पक्ष भी प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि चतुर्थ अहन् में उपर्युक्त आवपनीय छन्द रश्मियों के स्थान पर विमद ऋषि अर्थात् विशेष क्रियाशील प्राण विशेष, जो कदाचित् प्राण तथा धनंजय का मिश्ररूप हो सकता है, से इन्द्रदेवताक ऋ.१०.२३ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यं१ विव्रतानाम्।
प्र श्मश्रु दोधुवदूर्ध्वथा भूद्वि सेनाभिर्दयमानो वि राधसा।।१।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से विविधकर्मों को करने में समर्थ हरणशील रश्मियों के स्वामी बलवान् वज्र तथा वहन-सामर्थ्य वाली रश्मियों से युक्त इन्द्रतत्त्व विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के साथ संगत होता है। वह अपने समृद्ध रश्मिसमूहों के द्वारा नाना बाधक पदार्थों का छेदन करता हुआ आदित्य लोकों के ऊपर विद्यमान रश्मियों से युक्त लपटों को प्रकम्पित करता है। यहाँ हमने 'श्मश्रुः' पद का अर्थ "आदित्य लोकों के ऊपर विद्यमान ज्वालाएं" किया है।।

हमारे मत की पुष्टि निम्न लिखित आर्षवचन से होती है-

"आदित्यान् श्मश्रुभिः" (प्रीणामि) (मै.३.१५.१)

यहाँ 'श्मश्रुः' का अर्थ दाढ़ी कदापि सम्भव नहीं है।

(२) हरी न्वंस्य या वने विदे वस्विन्द्रो मघैर्मघवा वृत्रहा भुवत्।
ऋभुर्वाज ऋभुक्षाः पत्यते शवोऽव क्ष्णौमि दासस्य नाम चित्।।२।।

इसका छन्द आर्ची भुरिग् जगती है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राणों से सम्पन्न रश्मियों से युक्त तथा नाना पदार्थों में व्याप्त इन्द्रतत्त्व आवरक आसुर मेघ को नष्ट करता है। वह सूत्रात्मा वायु आदि प्राण रश्मियों से समृद्ध होकर नाना पदार्थों को संगत व नियंत्रित करके बाधक बलों को क्षीण करता है।

(३) यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः।।३।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से इन्द्रतत्त्व प्राणापान रश्मियों के द्वारा तेजस्वी वज्र रश्मियों से युक्त होकर सम्पूर्ण पदार्थ में व्याप्त होता है। इसकी हरणशील रश्मियां व्यापक बलों से युक्त होकर नाना पदार्थों को नानाविध विभक्त और गतिशील करती हैं।

(४) सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या३ स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम्।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {हरित् = हरितः दिङ्नाम (निघं.१.६), हरित आदित्यस्य (निघं.१.१५), दिशो वै हरितः (श.२.५.१.५)} जब इन्द्रतत्त्व आदित्य लोकों में सभी दिशाओं में व्याप्त ज्वालाओं को अपने रश्मिसमूहों से संगत करता है, उस समय ही आदित्य लोकों से नाना प्रकार की प्रकाश आदि रश्मियों की वृष्टि होती है। वह विभिन्न प्राणरश्मियों से सूक्ष्म किरणों को उत्पन्न करता और कंपाता हुआ उनमें व्याप्त रहता है।

(५) यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः।।५।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {मृध्रवाचः = मृध्रा हिंस्राऽनृता वाग् येषां ते (म.द.ऋ.भा.७.६.३), (मृधः संग्रामनाम - निघं.२.१७, पाप्मा वै मृधः - श.६.३.३.८)} इन्द्रतत्त्व विभिन्न प्रकार की हिंसक छन्द रश्मियों से युक्त बाधक एवं व्यापक असंख्य आसुर परमाणु आदि पदार्थों को नष्ट करता है तथा देव परमाणुओं के बल को बढ़ाता हुआ उनकी नानाविध रक्षा करता है।

(६) स्तोमं त इन्द्र विमदा अजीजनन्नपूर्व्यं पुरुतमं सुदानवे।
विद्मा ह्यस्य भोजनमिनस्य यदा पशुं न गोपाः करामहे।।६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र अपने तेज और बल के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में व्यापक और अपूर्व तेज और बल उत्पन्न करके विशेष सक्रिय करता है। {इनः = ईश्वरनाम (निघं.२.२२)} वह इन्द्र सबका नियंत्रक होकर नाना प्रकार के विभाजक आदि कर्मों को उत्पन्न करके {पशुः = पशवो वै हविष्मन्तः (श.१.४.१.६), पशवो वै हरिश्रियः (तां.१५.३.१०), पशवो वा आदित्यः (मै.४.६.६), पशवः स्वर्गो लोकः (जै.ब्रा.२.१०६), पशवोऽयं (पृथिवी) लोकः (जै.ब्रा.१.३०७)} सभी प्रकार के लोकों एवं परमाणु आदि पदार्थों की रक्षा करता है।

(७) माकिर्न एना सख्या वि यौषुस्तव चेन्द्र विमदस्य च ऋषेः।
विद्मा हि ते प्रमतिं देव जामिवदस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि।।७।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {माकिः = निषेधे (म.द.य.भा.१३.११)} वह इन्द्रतत्त्व इस सूक्त के कारणभूत विमद ऋषि प्राण से दृढ़ता से संयुक्त रहता हुआ निरन्तर प्रकाशित होता है। इस कारण इन्द्रतत्त्व के प्रभाव से विभिन्न प्रकार के परमाणु आदि पदार्थ परस्पर समुचित युग्म बनाते हुए नाना कर्मों को करने में समर्थ होते हैं।

इस प्रकार ये सात छन्द रश्मियां आवपनीय कहलाती हैं। ये सात छन्द रश्मियां भी पूर्वोक्त सात छन्द रश्मियों के समान संपात-सूक्तत्रय तथा एक अन्य सूक्त के मध्य प्रकट होती हैं। ये भी मैत्रावरुण आदि तीनों शस्त्र वा होत्रक रश्मियों से निम्न प्रकार सम्बद्ध होती हैं।

(१) प्रथम तीन छन्द रश्मियां चतुर्थ अहन् में मैत्रावरुण के साथ सम्बद्ध रहती हैं।

(२) चतुर्थ अहन् में ही तीसरी, चौथी और पांचवीं छन्द रश्मि ब्राह्मणाच्छंसी शस्त्र के साथ सम्बद्ध होती है। इस प्रकार यहाँ भी तृतीय छन्द रश्मि दो होत्रकों से सम्बद्ध रहती है।

(३) चतुर्थ अहन् में ही पांचवीं, छठी और सातवीं छन्द रश्मियां अच्छावाक के साथ सम्बद्ध होती हैं। यहाँ भी पांचवीं छन्द रश्मि दो शस्त्रों के साथ सम्बद्ध रहती है।

इस प्रकार महर्षि ने चतुर्थ अहन् में आवपनीय ऋचाओं के समूह के दो विकल्प प्रस्तुत किये हैं। इसके पश्चात् महर्षि पंचम अहन् की आवपनीय ऋचाओं का वर्णन करते हैं। ये ऋचाएं ऋ.१.२९ सूक्त के रूप में इन्द्र-देवताक एवं पंक्तिश्छन्दस्क आजीगर्तिः शुनःशेप ऋषि प्राण, जिसके विषय में ५.१२.८ द्रष्टव्य है, से निम्न क्रमानुसार उत्पन्न होती हैं-

(१) यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ताइव स्मसि।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ।।१।।

इसके प्रभाव से महान् बलों से युक्त सोम रश्मियों का पान करने वाला इन्द्रतत्त्व दुर्बल एवं निस्तेज परमाणु आदि पदार्थों को सबल, सतेज और आशुगामी बनाता है।

(२) शिप्रिन्वाजानां पते शचीवस्तव दंसना।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ।।२।।

इसके प्रभाव से {शचि = प्रज्ञानाम (निघं.३.९), कर्मनाम (निघं.२.१)} हिंसक गति और बल के साथ-२ महान् तेजयुक्त क्रियाओं से युक्त इन्द्रतत्त्व विभिन्न संयोज्य परमाणु आदि पदार्थों का पालन करता हुआ {दंसः = कर्मनाम (निघं.२.१)} असंख्य सुन्दर आशुगामिनी रश्मियों वा परमाणु आदि पदार्थों में प्रकाशित होता है।

(३) नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने। आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ।।३।।

इसके प्रभाव से वह इन्द्र बाधक रश्मियों के उत्पादक वा आकर्षक पदार्थों को नष्ट करके विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को असंख्य आशुगामिनी क्रियाओं से युक्त करता है।

(४) ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः। आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ।।४।।

इसके प्रभाव से जिन परमाणु आदि पदार्थों में संयोज्यता गुण का अभाव होता है, उन पदार्थों को इन्द्रतत्त्व तीव्र संयोजक गुणों एवं असंख्य बल रश्मियों से युक्त करता है।

(५) समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया। आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ।।४।।

इसके प्रभाव से {गर्दभः = भस्मन एव गर्दभोऽसृज्यत (जै.ब्रा.२.२६४), वृषा ह्येष (गर्दभः) वृषाऽग्निः (तै.सं.५.१.५.७), (भस्म = प्रदीपकं तेजः - म.द.य.भा.१२.३५, दग्धदोषः - म.द.य.भा.१२.४६)} वह इन्द्रतत्त्व असुरविध्वंसक प्रदीपक तेज से युक्त होकर विभिन्न पदार्थों को भी असुर पदार्थ से मुक्त करता है। शेष प्रभाव पूर्ववत् समझें।

(६) पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि। आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ।।६।।

इसके प्रभाव से {कुण्डृणाच्या = यया कुटिलां गतिमञ्चति प्राप्नोति तया (म.द.भा.)} वह पूर्वोक्त इन्द्रतत्त्व विभिन्न तेज रश्मियों के ऊपर-नीचे कुटिल गति से रमण करता है। शेष पूर्ववत्।

(७) सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम्। आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ।।७।।

इसके प्रभाव से {कृकदाश्वम् = कृकं हिंसनं दाशति ददाति तं शत्रुम् (म.द.भा.)} वह इन्द्रतत्त्व सब ओर से बाधा पहुंचाने वाले असुरादि पदार्थों को नष्ट करके देव पदार्थ को तेजस्वी बनाता है। शेष पूर्ववत्।

ये उपर्युक्त सातों छन्द रश्मियां पंचम अहन् की पूर्वोक्तानुसार आवपनीय ऋचाएं कहलाती हैं। इनका भी मैत्रावरुण आदि तीनों होत्रकों में पूर्ववत् तीन-२ के समूह में विभाजन होता है, जिसे पाठक स्वयं समझ सकते हैं।

इसके पश्चात् अन्त में षष्ठ अहन् की आवपनीय ऋचाओं का वर्णन करते हुए महर्षि लिखते हैं कि इस समय इन्द्र-देवताक

इन्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नतेन्द्राय मही पृथिवी वरीमभिर्द्युम्नसाता वरीमभिः।
इन्द्रं विश्वे सजोषसो देवासो दधिरे पुरः।
इन्द्राय विश्वा सवनानि मानुषा रातानि सन्तु मानुषा।।१।। इत्यादि (ऋ.१.१३१)

सूक्त की सभी सातों ऋचाएं पूर्वोक्त आवपनीय रूप में प्रयुक्त होती हैं। इस सूक्त की प्रथम ६ ऋचाओं के विषय में ५.१०.१ द्रष्टव्य है।

इसके पश्चात् सातवीं ऋचा

त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुरमित्रयन्तं तुविजात मर्त्यं वज्रेण शूर मर्त्यम्।
जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः।
रिष्टं न यामन्नप भूतु दुर्मतिर्विश्वाप भूतु दुर्मतिः।।७।।

उत्पन्न होती है। इसका छन्द भुरिगष्टि है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से व्यापक पदार्थों में विद्यमान रहता हुआ तीक्ष्ण परन्तु नियन्त्रित बलों से युक्त इन्द्रतत्त्व सब ओर बढ़ता हुआ असुरादि रश्मियों को नष्ट करते हुए विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को अपने साथ संगत करता है। वह दूर-२ तक फैली हुई अन्य हिंसक रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को भी नियन्त्रित करके देव पदार्थों की रक्षा करता है। इन सातों छन्द रश्मियों का भी मैत्रावरुण आदि होत्रकों में तीन-२ के समूह में विभाजन पूर्वोक्तानुसार ही समझना चाहिए।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- लोक निर्माण प्रक्रिया में विभिन्न छन्द रश्मियां परस्पर एक-दूसरे के साथ गुंथी हुई रहती हैं। इससे उन रश्मियों की शक्ति तीव्र हो जाती है। उपर्युक्त व्याख्यान में ऐसी २१ छन्द रश्मियों की चर्चा की गयी है। ये सभी छन्द रश्मियां अन्य पूर्वोक्त संपात आदि सूक्तरूप रश्मिसमूहों में सब ओर से व्याप्त होकर उन्हें विशेष क्रियाशील एवं सृजनधर्मिणी बनाती हैं। विद्युत् चुम्बकीय बल एवं गुरुत्वाकर्षण बल की तीव्रता बढ़ने से लोकों के निर्माण की प्रक्रिया तीव्र होती है। दुर्बल और निस्तेज

परमाणुओं की ऊर्जा में वृद्धि होती है। सूत्रात्मा वायु आदि सभी प्राण रश्मियां विशेष सक्रिय होकर विभिन्न बलों को समुचित और नियन्त्रित रूप प्रदान करती हैं। डार्क एनर्जी का प्रभाव न्यून से न्यूनतर होता है। निर्माणाधीन वा निर्मित **तारों के ऊपरी भाग में तीव्र ज्वालाएं उठने लगती हैं, जिनमें विद्युदावेशित कणों की मात्रा विशेष होती है। इसके कारण ही तारों से प्रकाश आदि के उत्सर्जन की प्रक्रिया होती है।** विभिन्न ग्रह आदि लोकों के बाहरी वायुमण्डल में भी आवेशित कणों की मात्रा अधिक विद्यमान होती है। विभिन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के दोनों ओर कुटिल गति करता हुआ विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र विद्यमान व गतिशील होता है। पदार्थ का सम्पीडन और संघनन जारी रहता है। नाना प्रकार के आयनों का निर्माण होकर नवीन-२ तत्त्वों का निर्माण होता रहता है। तारों के केन्द्रीय भागों की ओर संलयनीय पदार्थ का प्रवाह निरन्तर बना रहता है। नाना प्रकार की प्रकाश रश्मियों की उत्पत्ति भी इस समय होती रहती है।।

४. अथ यान्यहानि महास्तोमानि स्युः, को अद्य नर्यो देवकाम इति मैत्रावरुण आवपेत; वने न वायो न्यधायि चाकन्निति ब्राह्मणाच्छंस्या याह्यर्वाङुप बन्धुरेष्ठा इत्यच्छावाकः।।
एतानि वा आवपनान्येतैर्वा आवपनैर्देवाः स्वर्गं लोकमजयन्नेतैर्ऋषयस्तथैवैतद्यज-माना एतैरावपनैः स्वर्गं लोकं जयन्ति।।३।।

व्याख्यानम्- उपर्युक्त आवपनीय रश्मियों के पश्चात् पुनः कुछ आवपनीय रश्मियों की चर्चा करते हैं, जो उन अहनों में उत्पन्न होती हैं, जिनमें महास्तोम छन्द रश्मियां विद्यमान होती हैं। हम त्रिवृत्, पञ्चदश आदि विभिन्न स्तोमों के विषय में ४.१६.१ में पढ़ चुके हैं। आचार्य सायण ने एकविंश स्तोम से बड़े चतुर्विंश एवं त्रिणव आदि स्तोमों को महास्तोम माना है। इस प्रकार जिन अहन् रूपी क्षेत्रों में ये महास्तोम रूपी छन्द रश्मिसमूह विद्यमान होते हैं, वहाँ मैत्रावरुण आदि होत्रकों से सम्बद्ध आवपनीय छन्द रश्मियां सम्पूर्ण सूक्त के रूप में ही होती हैं, जो निम्न क्रमानुसार हैं-
(अ) पूर्वोक्त वामदेव ऋषि प्राण से इन्द्र-देवताक ऋ.४.२५ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) को अद्य नर्यो देवकाम उशन्निन्द्रस्य सख्यं जुजोष।
को वा महेऽवसे पार्याय समिद्धे अग्नौ सुतसोम ईट्टे।।१।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से प्राणापान नामक प्राण तत्त्व विभिन्न देव परमाणुओं की कामना करता हुआ इन्द्रतत्त्व के साथ संगत मरुद् रश्मियों से संसर्ग करता है। वही प्राण तत्त्व उन परमाणु आदि पदार्थों के रक्षण, तारण और प्रकाशन के लिए अग्नि तत्त्व के अन्दर सोम रश्मियों को व्याप्त व नियंत्रित करता है।

(२) को नानाम वचसा सोम्याय मनायुर्वा भवति वस्त उस्राः।
क इन्द्रस्य युज्यं कः सखित्वं को भ्रात्रं वष्टि कवये क ऊती।।२।।

छन्द स्वराट् पंक्ति। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से पूर्वोक्त प्राण तत्त्व वाक् तत्त्व के साथ संगत होकर सोम रश्मियों की ओर प्रवाहित व संगत होता है, वही मनस्तत्त्व से प्रेरित व संगत होता हुआ नाना प्रकार की रश्मियों को व्याप्त करता है, वही प्राण तत्त्व इन्द्रतत्त्व के साथ संगत होने के लिए सूत्रात्मा वायु का संरक्षण प्राप्त करता है।

(३) को देवानामवो अद्या वृणीते क आदित्याँ अदितिं ज्योतिरीट्टे।
कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यांशोः पिबन्ति मनसाविवेनम्।।३।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। इसके अन्य प्रभाव से वह पूर्वोक्त प्राण तत्त्व विभिन्न प्रकाशित परमाणुओं की गति और रक्षा का कारण होता है। वह विभिन्न मास और वाग् रश्मियों की ज्योति को व्याप्त व नियंत्रित करता है। उसकी सम्पीडित रश्मियों के मनस्तत्त्व के साथ संगत होने से इन्द्रतत्त्व सभी प्रकार के परमाणुओं को व्याप्त करता है।

(४) तस्मा॑ अ॒ग्निर्भार॑तः॒ शर्म॑ यंस॒ज्ज्योक्प॑श्यात्सूर्य॑मु॒च्चर॑न्तम्।
य इन्द्रा॑य सु॒नवा॒मेत्याह॒ नरे॒ नर्या॑य॒ नृत॑माय नृ॒णाम्॥४॥

छन्द भुरिक् पंक्ति है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {भारतः = धारकस्यायं धर्त्ता (म.द.भा.)} वह प्राण तत्त्व सबका अग्रणी होकर विभिन्न धारक पदार्थों को भी धारण करता हुआ सबको आश्रय प्रदान करता है। वह घूमते हुए सूर्यादि लोकों को निरन्तर प्रकाशित व नियंत्रित करता हुआ विभिन्न वाहकों में महान् वाहक इन्द्रतत्त्व को उत्पन्न करता है।

(५) न तं जि॑नन्ति ब॒हवो॒ न द॒भ्रा उ॒र्व॑स्मा॒ अदि॑तिः॒ शर्म॑ यंसत्।
प्रि॒यः सु॒कृत्प्रि॒य इन्द्रे॑ म॒नायुः॑ प्रि॒यः सु॑प्रा॒वीः प्रि॒यो अ॑स्य सो॒मी॥५॥

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {जिनन्ति = जयन्ति (म.द.भा.)} इन्द्रतत्त्व उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त करने पर मनस्तत्त्व के साथ विशेष संगत होकर सुकर्मा आकर्षण बलों से विशेष युक्त होता है। उस समय वह विभिन्न क्रियाओं का विशेष रक्षक और सोम रश्मियों एवं विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को विशेष नियंत्रित करने वाला होता है। वह विभिन्न वाग् रश्मियों से व्यापकरूप से युक्त होकर नाना बाधक पदार्थों को नष्ट करने में विशेष सक्षम होता है।

(६) सु॒प्रा॒व्यः॑ प्राशु॒षाळे॒ष वी॒रः सुष्वेः॑ प॒क्तिं कृ॑णु॒ते केव॒लेन्द्रः॑।
नासु॑ष्वेरा॒पिर्न सखा॒ न जा॒मिर्दु॑ष्प्रा॒व्यो॑ऽवह॒न्तेदवा॑चः॥६॥

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र त्वरित गति से बल उत्पन्न करके रक्षण करने वाला विभिन्न लोकों में अनेक क्रियाओं को परिपक्व और विस्तृत करता है। वह सतत सक्रिय और व्यापक होकर सबके साथ संगत होता हुआ विरोधी पदार्थों को नियन्त्रित करता है।

(७) न रे॒वता॑ प॒णिना॑ स॒ख्यमिन्द्रो॒ऽसु॑न्वता सुत॒पाः सं गृ॑णीते।
आस्य॒ वेदः॑ खिदति॒ हन्ति॑ न॒ग्नं वि सुष्व॑ये प॒क्तये॒ केव॑लो भूत्॥७॥

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियों से युक्त संतप्त इन्द्रतत्त्व अपने बलों के द्वारा असंपीडित पदार्थ के साथ विशेष रूप से संगत नहीं होता। वह विभिन्न पदार्थों को पकाता और विस्तृत करता हुआ नग्न पदार्थ अर्थात् वाक् तत्त्व रहित प्राण रश्मियां, जो ५.२७.२ के अनुसार असुर पदार्थ का रूप होती हैं, को नष्ट करता है।

(८) इन्द्रं॒ परेऽव॑रे मध्य॒मास॒ इन्द्रं॒ यान्तोऽव॑सितास॒ इन्द्र॑म्।
इन्द्रं॑ क्षि॒यन्त॑ उ॒त युध्य॑माना॒ इन्द्रं॒ नरो॑ वाज॒यन्तो॑ हवन्ते॥८॥

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से उत्तम, अधम और मध्यम बलयुक्त परमाणु आदि पदार्थ इन्द्रतत्त्व को प्राप्त करके नियंत्रक शक्तिसम्पन्न होकर नाना विघ्नों को क्षीण करते हैं। वे इन्द्रतत्त्व में निवास करते हुए नाना संयोज्य बलों को प्राप्त करके अनेक प्रकार के संघर्षों में नाना परमाणु आदि पदार्थों को उत्पन्न करते हैं।

ये उपर्युक्त आठों छन्द रश्मियां मैत्रावरुण की आवपनीय ऋचाएं हैं। यहाँ किसी अहन् विशेष का सम्बन्ध नहीं है, बल्कि जिस अहन् में पूर्वोक्त महास्तोम छन्द रश्मियां विद्यमान होती हैं, उन्हीं में इनकी उत्पत्ति होती है।

(ब) ब्राह्मणाच्छंसी होत्रक से सम्बद्ध आवपनीय ऋचाएं इन्द्र-देवताक ऋ.१०.२९ सूक्तरूप में वसुक्र ऋषि {वसुक्रः = ब्रह्म वै वसुक्रः (ऐ.आ.१.२.२), इन्द्र उ वै वसुक्रः (शां.आ.१.३)} अर्थात् प्राणापान के सूक्ष्म ऐन्द्रीरूप से निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) वने न वा यो न्य॑धायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो॑ भुरणावजीगः।
यस्येदिन्द्रः॑ पुरुदिने॑षु होता॑ नृणां नर्यो॒ नृत॑मः क्षपावा॑न्॥१॥

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न रश्मियों को बुनता हुआ सा वह इन्द्रतत्त्व विशेषरूप से धारण और पुष्ट करता हुआ अपने कमनीय बलों से निरन्तर व्याप्त होता है। उसमें प्रज्वलित विभिन्न छन्द रश्मिसमूह नाना बाधक तत्त्वों को निगलते हैं। वह इन्द्रतत्त्व अपनी अति सक्रिय मरुद् रश्मियों के द्वारा इस सृष्टि में प्रलयकाल होने तक सक्रिय रहता है।

(२) प्र ते॑ अस्या उषसः॑ प्राप॑रस्या नृतौ॑ स्याम॒ नृत॑मस्य नृणाम्।
अनु॑ त्रिशोकः॑ शतमाव॑हन्नॄन्कुत्से॑न रथो॒ यो अस॑त्ससवान्॥२॥

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से शीघ्रतमा मरुद् रश्मियों को वहन करता हुआ इन्द्रतत्त्व अपने सुन्दर प्रकाश में तीव्रता से सक्रिय होता हुआ तीन प्रकार की प्रज्वलित रश्मियों को उत्पन्न करता है। वह सैकड़ों प्रकार की मरुद् रश्मियों को अपनी तीक्ष्ण वज्र रश्मियों के द्वारा नाना विभाग करके रमाता है।

(३) कस्ते॒ मद॑ इन्द्र रन्त्यो॑ भूद्दुरो॒ गिरो॑ अभ्यु१॒॑ग्रो वि धा॑व।
कद्वाहो॑ अर्वागुप॑ मा मनीषा आ त्वा॑ शक्यामुपमं॑ राधो॒ अन्नैः॑॥३॥

इसका छन्द पादनिचृत् त्रिष्टुप् है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से विभिन्न सक्रिय प्राण रश्मियां रमण करती हुई इन्द्रतत्त्व के मार्गों को सभी ओर से शुद्ध बनाती हैं। विभिन्न छन्द रश्मियां मनस्तत्त्व के द्वारा प्रेरित होती हुई नाना प्रकार के संयोज्य गुणों के द्वारा इन्द्रतत्त्व के निकट विद्यमान होकर उसे समृद्ध और समर्थ बनाती हैं।

(४) कदु॑ द्युम्नमिन्द्र त्वाव॑तो नॄन्कया॑ धिया क॑रसे॒ कन्न आग॑न्।
मित्रो न सत्य उ॑रुगाय भृत्या अन्ने॑ समस्य यदस॑न्मनीषाः॥४॥

छन्द निचृत् त्रिष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {द्युम्नम् = द्योततेर्यशो वा अन्नं वा (नि.५.५), द्युम्नं हि बृहस्पतिः (श.३.१.४.१६)} विशाल लोकों का पालक इन्द्रतत्त्व अपने साथ संगत मरुद् रश्मियों को प्राण तत्त्व के साथ धारण करके सब ओर व्याप्त होता है। वह अविनाशी प्राण रश्मियों के साथ व्यापकरूप से प्रकाशित व संगत होता हुआ विभिन्न संयोज्य परमाणु आदि पदार्थों का पोषण करता है।

(५) प्रेर॑य सूरो॒ अर्थं॒ न पारं॑ ये अ॑स्य कामं॑ जनिधाइ॑व ग्मन्।
गिर॑श्च ये ते॑ तुविजात पूर्वीर्नर॑ इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः॑॥५॥

छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से अपनी महानता से व्यापक इन्द्रतत्त्व प्रकाशित होता हुआ नाना द्रव्यों को प्रेरित करते हुए पार लगाता है। वह विभिन्न उत्पन्न पदार्थों को धारण करता हुआ अपने कमनीय बलों से उनमें व्याप्त होता है। विभिन्न मरुद् एवं छन्द रश्मियां इन्द्रतत्त्व को नाना संयोज्य परमाणुओं के साथ संगत करती हैं।

(६) मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन्भवन्तु पीतये मधूनि।।६।।

छन्द निचृत् त्रिष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व नाना ध्वनियों से युक्त बलों के द्वारा प्रकाशित और अप्रकाशित लोकों वा परमाणुओं को अच्छी प्रकार मापता हुआ पूर्ण करता है। उसकी संदीप्त मरुद् रश्मियां एवं प्राण रश्मियां परस्पर मिथुन बनाते हुए उसे श्रेष्ठ बल से युक्त करती हैं।

(७) आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च।।७।।

छन्द विराट् त्रिष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से अपरिमित प्राण रश्मियां इन्द्रतत्त्व को सींचती हुई निरन्तर सिद्ध करती हैं। वह ऐसा इन्द्र उन रश्मियों को वहन करते हुए श्रेष्ठ आकाश तत्त्व में एवं इसके द्वारा सभी परमाणु आदि पदार्थों में अपने बलों से समृद्ध होता है।

(८) व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे।।८।।

छन्द पादनिचृत् त्रिष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से सुन्दर तेजयुक्त इन्द्रतत्त्व अपने रश्मिसमूहों के द्वारा विभिन्न पदार्थों को व्याप्त और परिपूर्ण करता हुआ संयोजक गुणों का विस्तार करता है। वह अपनी रमणीय रश्मियों के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को व्याप्त करके उन्हें अच्छी प्रकार प्रेरित करता है।
(ख) अन्त में अच्छावाक होत्रक से सम्बद्ध आवपनीय छन्द रश्मिसमूह इन्द्र-देवताक ऋ.३.४३ सूक्तरूप में पूर्वोक्त विश्वामित्र ऋषि प्राण से निम्न क्रमानुसार उत्पन्न होता है-

(१) आ याह्यर्वाङुप वन्धुरेष्ठास्तवेदनु प्रदिवः सोमपेयम्।
प्रिया सखाया वि मुचोप बर्हिस्त्वामिमे हव्यवाहो हवन्ते।।१।।

इसका छन्द विराट् पंक्ति है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र उत्तम प्रकाशित बन्धक बलों में स्थित होकर नाना परमाणु आदि पदार्थों का अवशोषण करता है। अन्तरिक्ष में इन्द्रतत्त्व नाना पदार्थों को अपना अनुगामी बनाता हुआ उनका वहन व हवन करता है।

(२) आ याहि पूर्वीरति चर्षणीराँ अर्य आशिष उप नो हरिभ्याम्।
इमा हि त्वा मतयः स्तोमतष्टा इन्द्र हवन्ते सख्यं जुषाणाः।।२।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व नाना छन्द रश्मिसमूहों का छेदन करता हुआ उन्हें नाना दीप्तियों से युक्त करके नानाविध संगत करता है। वह नाना प्रकाश रश्मियों को नियन्त्रित करके धारणाकर्षण बलों से युक्त करता है।

(३) आ नो यज्ञं नमोवृधं सजोषा इन्द्र देव हरिभिर्याहि तूयम्।

अहं हि त्वा मतिभिर्जोहवीमि घृतप्रयाः सधमादे मधूनाम्।।३।।

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव प्रथम ऋचा के समान है। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व, जो अहंकार, मन तथा प्राण रश्मियों से निरन्तर प्रेरित होता रहता है, विविध तेजों को उत्पन्न व तृप्त करता है। वह प्राणापान रश्मियों रूपी वज्र से समानरूप से समृद्ध होता हुआ शीघ्रकारी होकर सबमें व्याप्त होता है।

(४) आ च त्वामेता वृषणा वहातो हरी सखाया सुधुरा स्वङ्गा।
धानावदिन्द्रः सवनं जुषाणः सखा सख्युः शृणवद्वन्दनानि।।४।।

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव द्वितीय ऋचा के समान। अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व नाना प्रकार के धारण व आकर्षण गुणों से सम्पन्न होकर अपने साथ संगत व प्रकाशित पदार्थों को अपने बलों से धारण करता है। इससे संगत परमाणु आदि पदार्थ भी इन गुणों से युक्त हो जाते हैं।

(५) कुविन्मा गोपां करसे जनस्य कुविद्राजानं मघवन्नृजीषिन्।
कुविन्म ऋषिं पपिवांसं सुतस्य कुविन्मे वस्वो अमृतस्य शिक्षाः।।५।।

इसका छन्द भुरिक् त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {कुवित् = बहुनाम (निघं.३.१)} वह महान् इन्द्रतत्त्व नाना परमाणुओं का रक्षक होकर उन्हें सरल व सहज मार्ग से गमन कराता व प्रकाशित करता है। वह विभिन्न ऋषि अर्थात् सूक्ष्म प्राणापानादि रश्मियों का पान करके विभिन्न आदित्य लोकों वा रश्मियों में उन्हें बताता है।

(६) आ त्वा बृहन्तो हरयो युजाना अर्वागिन्द्र सधमादो वहन्तु।
प्र ये द्विता दिव ऋञ्जन्त्याताः सुसंमृष्टासो वृषभस्य मूराः।।६।।

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव द्वितीय ऋचा के समान है। अन्य प्रभाव से {आताः = दिङ्नाम (निघं.१.६)। मूराः = मूढाः (म.द.भा.)।} वह इन्द्र व्यापक स्तर पर सूक्ष्म परमाणु आदि पदार्थों एवं विशाल लोकों को अपनी हरणशील रश्मियों के द्वारा सब ओर से साथ-२ वहन करता है। वह प्रकाशित परमाणुओं को दो प्रकार के स्वभावों से युक्त करता है। वह उनकी दिशाओं किंवा घूर्णन गतियों व पथों को शुद्ध करके भ्रान्त पथों को अपने बल से नियन्त्रित व व्यवस्थित करता है।

(७) इन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्ण आ यं ते श्येन उशते जभार।
यस्य मदे च्यावयसि प्र कृष्टीर्यस्य मदे अप गोत्रा ववर्थ।।७।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र बलवान् पदार्थों को कम्पाने वाले बलों को सोखता तथा अति बलवेग से युक्त होकर सबको सर्वतः धारण करता है। वह विभिन्न कृष्टी अर्थात् आकर्षण-छेदनादि बलों से युक्त रश्मियों को प्राप्त करके नाना मेघरूप पदार्थों में विद्यमान होता है।

(८) शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्।।८।।

यह ऋचा इसी अध्याय में अनेकत्र वर्णित है। पाठक इसका प्रभाव वहीं देखें।

इस प्रकार तीनों होत्रकों की आवपनीय ऋचाएं एक-२ सूक्त के रूप में हैं तथा प्रत्येक सूक्त में आठ-२ ऋचाएं विद्यमान हैं, यह समानता है। समान संख्या में छन्द रश्मियों का होना पूर्ववर्णित आवपनीय ऋचाओं में भी विद्यमान था। भेद यह अवश्य है कि पूर्वोक्त आवपनीय ऋचाएं तीन-२ छन्द रश्मियों के समूह के रूप में थीं और यहाँ आठ-२ के समूह में। सभी आवपनीय छन्द रश्मियां इन्द्रदेवताक ही होने

से इन्द्रतत्त्व ही विशेष समृद्ध होता है। ये सभी आवपनीय ऋचाएं लोक निर्माण की प्रक्रिया में समान गुण दर्शाती हैं। ध्यातव्य है कि ये छन्द रश्मियां महारश्मियुक्त लोकों में ही उत्पन्न होती हैं तथा महास्तोम रश्मियां त्रिवृत् आदि स्तोमों से न्यून वल एवं तेज युक्त होती हैं। इस विषय में कहा है-

"त्रिवृत्पञ्चदशः सप्तदश एकविंश एते वै स्तोमानां वीर्यवत्तमाः" (तां.६.३.१५)।।

यहाँ महर्षि दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि इन उपर्युक्त सभी आवपनीय छन्द रश्मियों के द्वारा ही विभिन्न देव परमाणु आदित्य लोकों का निर्माण करने में समर्थ हो पाते हैं। विभिन्न ऋषि प्राण रश्मियां भी इन्हीं छन्द रश्मियों के उत्पन्न होने पर आदित्य लोकों के निर्माण में सक्षम भूमिका निभा पाती हैं। सभी प्रकार के संयोज्य कण, जो मेघरूप पदार्थों में विद्यमान होते हैं, वे आदित्य लोकों के निर्माण में सक्रिय भाग तभी ले पाते हैं, जब ये आवपनीय छन्द रश्मियां उत्पन्न व सक्रिय हो जाती हैं। यहाँ ग्रन्थकार यह भी स्पष्ट करते हैं कि आवपनीय छन्द रश्मियां ये ही होती हैं, अन्य नहीं। ये अन्य सभी छन्द रश्मियों के वीच प्रकट होकर उनमें अपने वल, तेज आदि गुणों का बीजारोपण करके उनके अपने गुणों को विशेष समृद्ध करती हैं। यही इनका वैशिष्ट्य है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त क्रियाओं के उपरान्त उपर्युक्त २१ छन्द रश्मियों के समान उत्प्रेरण, उद्दीपन गुणों से युक्त अन्य २४ छन्द रश्मियां आठ-२ के तीन समूहों में उत्पन्न होती हैं। इनमें १७ त्रिष्टुप् तथा ७ पंक्ति छन्द रश्मियां होती हैं। ये रश्मियां अन्य सभी छन्द रश्मियों को विशेष सक्रिय करती हैं। विद्युत् चुम्बकीय बलों में विशेष वृद्धि होती है। तारों के केन्द्रों में strong force तीव्र होते हैं। लोकों की गतियां अपेक्षाकृत व्यवस्थित होती जाती हैं। डार्क एनर्जी एवं डार्क मैटर का दुष्प्रभाव और भी दूर होता जाता है। जैसे-२ कॉस्मिक पदार्थ संघनित व सम्पीडित होता जाता है, वैसे-२ विभिन्न बलों में वृद्धि होती चली जाती है। नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया अपेक्षाकृत तीव्रतर होती है। विद्युत् आवेश एवं बलों का अस्तित्त्व सम्पूर्ण सृष्टिकाल तक बना रहता है। विभिन्न तारों में धनावेशित, ऋणावेशित तथा उदासीन तीन प्रकार के कणों की धाराएं निरन्तर उत्पन्न व उत्सर्जित होती रहती हैं। इन धाराओं वा विकिरणों के साथ प्राण रश्मियां सदैव वर्तमान रहकर उन्हें शुद्ध बनाती रहती हैं। इनके साथ अव्यक्त व अश्रव्य ध्वनियां भी सदैव विद्यमान रहती हैं। ये ध्वनियां एवं प्राण-मरुत् रश्मियां आकाश तत्त्व के साथ सतत सम्पर्क में रहती हैं। इन्हीं के कारण उन विकिरणों की ऊर्जा अक्षुण्ण बनी रहती है। **इनके कारण समृद्ध विद्युत् विभिन्न क्वाण्टाज् को सम्पीडित करके सूक्ष्म कणों का निर्माण करती है।** इस समस्त **सृष्टि का यह सार्वत्रिक शाश्वत नियम है कि मूलकण से लेकर क्वाण्टाज् वा विशाल लोक तक सरल मार्ग का ही अनुसरण करते हैं।** यही कारण है कि ऊष्मादि ऊर्जाएं उच्च से निम्न स्तर की ओर गमन करती हैं। उच्च दाब अनुकूलता से निम्न दाब में परिवर्तित होता रहता है, इसी प्रकार सर्वत्र समझें। प्राण व विद्युत् के ही खेल के कारण विद्युत् चुम्बकीय तरंगें वा सूक्ष्म कण तरंग व कण दोनों की भाँति व्यवहार करते हैं। विद्युत् का गुरुत्वबल रूप ही विभिन्न लोकों की गतियों का निर्धारण व नियन्त्रण करता है, जबकि इसका सामान्य प्रसिद्ध रूप सूक्ष्म कणों की गतियों व मार्गों का निर्धारण व नियन्त्रिण करता है। यहाँ वर्णित २४ छन्द रश्मियों तथा इसके पूर्व वर्णित २१ छन्द रश्मियों की तारों के निर्माण में अनिवार्य भूमिका होती है। इनके अभाव में अन्य सभी छन्द रश्मियां, कण व विकिरण सभी मिलकर भी तारों के स्वरूप को पूर्णता प्रदान नहीं कर सकते।।

इति २९.3 समाप्तः

ॐ अथ २९.४ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. 'सद्यो ह जातो वृषभः कनीन इति' मैत्रावरुणः पुरस्तात् सूक्तानामहरहः शंसति।। तदेतत्सूक्तं स्वर्ग्यमेतेन वै सूक्तेन देवाः स्वर्गं लोकमजयन्नेतेन ऋषयस्तथैवैतद्यजमाना एतेन सूक्तेन स्वर्गं लोकं जयन्ति।।
तदु वैश्वामित्रं विश्वस्य ह वै मित्रं विश्वामित्र आस।।
विश्वं हास्मै मित्रं भवति य एवं वेद, येषां चैवं विद्वानेतन् मैत्रावरुणः पुरस्तात् सूक्तानामहरहः शंसति।।
तद्वृषभवत् पशुमद्भवति, पशूनामवरुद्ध्यै।।
तत्पञ्चर्चं भवति, पञ्चपदा पङ्क्तिः, पङ्क्तिर्वा अन्नमन्नाद्यस्यावरुद्ध्यै।।

व्याख्यानम्- पूर्वखण्ड में मैत्रावरुण आदि होत्रकों की जिन संपातरश्मियों का वर्णन किया गया है, उस प्रसंग को स्पष्ट करते हुए महर्षि लिखते हैं कि मैत्रावरुण अपने संपातसंज्ञक सूक्तों को उत्पन्न करने से पूर्व एक अन्य सूक्तरूप रश्मिसमूह

सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः प्रभर्तुमावदन्धसः सुतस्य।
साधोः पिब प्रतिकामं यथा ते रसाशिरः प्रथमं सोम्यस्य।।१।।

इत्यादि ऋ.३.४८ सूक्त की उत्पत्ति होती है। इस सूक्त के विषय में ६.१३.२ द्रष्टव्य है। यह सूक्त विभिन्न अहनों में उत्पन्न पृथक्-२ सूक्तरूप रश्मिसमूहों के उत्पन्न होने से पूर्व प्रकट होता है।।

इस सूक्त की महत्ता बताते हुए ग्रन्थकार का कथन है कि यह सूक्तरूप रश्मिसमूह आदित्य लोकों के निर्माण में अनिवार्य भूमिका निभाता है। इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्वखण्ड की अन्तिम कण्डिका के समान समझें।।

उपर्युक्त सूक्तरूप रश्मिसमूह विश्वामित्र ऋषि अर्थात् सूक्ष्म वाक् तत्त्व से उत्पन्न होता है। यह बात हम ग्रन्थ में अनेक बार लिख चुके हैं कि सूक्ष्म उत्पन्न वाक् तत्त्व अर्थात् 'ओम्' छन्दरश्मियां ही विश्वामित्र ऋषि कहलाती हैं। ये रश्मियां सबको मित्र समान आकर्षित करने वाली होती हैं, इसी कारण इनको विश्वामित्र कहा जाता है। इस विषय में महर्षि ने अन्यत्र भी कहा है-

"तस्येदं विश्वं मित्रमासीद्यदिदं किञ्च तद्यदस्येदं विश्वं मित्रमासीद्यदिदं किञ्च तस्माद्विश्वामित्रस्तस्माद्विश्वामित्र इत्याचक्षत एतम् (प्राणम्) एव सन्तम्" (ऐ.आ.२.२.१)

हम यह जानते ही हैं कि वाक् तत्त्व एवं प्राण तत्त्व दोनों ही मूलतः एक हैं, इस कारण यहाँ 'ओम्' छन्द रश्मि को प्राण कहा गया है। यह सबसे सूक्ष्मरूप वाला प्राण और वाक् तत्त्व है।।

जब विश्वामित्रसंज्ञक प्राण अर्थात् 'ओम्' रश्मि से उपर्युक्त सूक्तरूप रश्मिसमूह उत्पन्न होता है, तब वे रश्मियां सभी पूर्वोक्त संपात रश्मियों एवं उनके बीच उत्पन्न आवपनीय आदि छन्द रश्मियां भी सबकी मित्र बन जाती हैं। इसके साथ-२ ही सृष्टि के सभी पदार्थ भी मित्ररूप हो जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि उस समय ये सभी पदार्थ परस्पर एक-दूसरे के धारण आकर्षण बलों में बंधकर सृजन

प्रक्रियाओं को समृद्ध करते हैं।।

इस उपर्युक्त सूक्त की प्रथम ऋचा में 'वृषभः' पद विद्यमान है। यह 'वृषभ' शब्द विभिन्न बलों की समृद्धता का सूचक है। उधर, ग्रन्थकार ने कहा है- "वाजो वै पशवः" (ऐ.५.८)। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस वृषभ पद को 'पशु' का पर्यायवाची भी मान जा सकता है। जैसा कि हम अनेकत्र लिख चुके हैं कि पशु एवं वाज दोनों ही शब्द छन्द, मरुद् वा प्राण रश्मियों के भी सूचक हैं। इस कारण यह सूक्तरूप रश्मिसमूह 'वृषभ' शब्द से युक्त होने के कारण नाना प्रकार की प्राण एवं छन्द रश्मियों को समृद्ध वा प्राप्त करता है, जिसके कारण वे सभी रश्मियां एक-दूसरे के साथ संगत होकर नाना प्रकार की क्रियाओं को सम्पादित करती हैं।।

इस उपर्युक्त सूक्त में कुल ५ छन्द रश्मियां विद्यमान हैं। हम यह भी जानते हैं कि पंक्ति छन्द में पांच पाद विद्यमान होते हैं। इस कारण ये पांचों छन्द रश्मियां, जिनमें से चार त्रिष्टुप् और एक पंक्ति छन्दस्क हैं, सामूहिक रूप से पंक्ति छन्द रश्मि का व्यवहार करती हैं। पंक्ति छन्द रश्मियां अन्न के समान कार्य करती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये छन्द रश्मियां संयोजक बलों से विशेष युक्त होती हैं। इस विषय में अन्यत्र भी कहा है- "अन्नं वै पंक्तिः" (ऐ.आ.१.१.३; गो.उ.६.२), "प्रतिष्ठित्या अन्नाद्याय पङ्क्तिः" (ऐ.आ.१.४.२ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत), यजमानो वै पंक्तिः (मै.३.३.६)

इन वचनों से यह सिद्ध होता है कि अन्न संज्ञक पंक्ति छन्द रश्मियां विशेष संयोज्य गुणों से युक्त होती हैं, इसकी पुष्टि एक अन्य वचन- "मेध्यमन्नम्" (काठ.१२.११) से भी होती है। इस कारण उपर्युक्त सूक्त की पांचों छन्द रश्मियां पंक्ति छन्द रश्मि का रूप धारण करके स्वयं संयोज्यता गुण से विशेष समृद्ध होकर अन्य संयोज्य गुणों से युक्त रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को विशेषरूप से प्राप्त करती हैं, जिसके कारण सर्ग प्रक्रिया और अधिक समृद्ध होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **'ओम्'** छन्द रश्मि इस समस्त सृष्टि में सर्वप्रथम उत्पन्न, सबसे सूक्ष्म प्राण और वाक् तत्त्व का रूप है। इस सृष्टि में कोई भी सूक्ष्मतम वा स्थूलतम ऐसा पदार्थ विद्यमान नहीं है, जिसमें यह रश्मि व्याप्त न हो। इस रश्मि से उत्पन्न चार त्रिष्टुप् एवं एक पंक्ति छन्द रश्मि का समूह भी **'ओम्'** छन्द रश्मि के समान विशेष संयोजक गुणों से युक्त होकर अन्य पदार्थों को भी इसी गुण से युक्त करता है। ये सभी छन्द रश्मियां पंक्ति छन्द के समान व्यवहार करके दूर-२ तक फैलती जाती हैं, जिससे विभिन्न तारों की उत्पत्ति की प्रक्रिया तीव्र होती जाती है। कॉस्मिक मेघों में दूर-२ बिखरा हुआ पदार्थ तेजी से संघनित होने लगता है। तारे प्रकाशित होकर अन्य ग्रह आदि लोकों को प्रकाशित करने लगते हैं।।

२. 'उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येति' ब्राह्मणाच्छंसी ब्रह्मण्वत् समृद्धं सूक्तमहरहः शंसति।।
तदेतत् सूक्तं स्वर्ग्यमेतेन वै सूक्तेन देवाः स्वर्गं लोकमजयन्नेतेन ऋषयस्तथैवैतद्यजमाना एतेन सूक्तेन स्वर्गं लोकं जयन्ति।।
तदु वासिष्ठमेतेन वै वसिष्ठ इन्द्रस्य प्रियं धामोपागच्छत्, स परमं लोकमजयत्।।
उपेन्द्रस्य प्रियं धाम गच्छति, जयति परमं लोकं य एवं वेद।।
तद्वै षळृचं षड् वा ऋतव ऋतूनामाप्त्यै।।
तदुपरिष्टात् संपातानां शंसत्याप्त्वैव तत्स्वर्गं लोकं यजमाना अस्मिँल्लोके प्रतितिष्ठन्ति।।

व्याख्यानम्- पूर्वखण्ड में ब्राह्मणाच्छंसी होत्रक के संपात सूक्तरूप रश्मिसमूहों से सम्बद्ध

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ।

आ यो विश्वा॑नि॒ शव॑सा तता॒नोप॑श्रो॒ता म॒ ईव॑तो॒ वचां॑सि॥१॥

इत्यादि ऋ.७.२३ सूक्तरूप रश्मिसमूह उत्पन्न होता है। यह प्रत्येक अहन् में उत्पन्न संपात सूक्तरूप रश्मिसमूहों से पूर्व उत्पन्न होता है। इस सूक्त के विषय में ६.१८.२ द्रष्टव्य है। यह सूक्त 'ब्रह्मन्' शब्द से युक्त होने के कारण विभिन्न रश्मियों वा परमाणु आदि पदार्थों की क्रियाओं को विशेष समृद्ध करता है॥

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझें॥

इस सूक्तरूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राण रश्मियों से होती है। इस रश्मिसमूह के द्वारा प्राण नामक प्राणरश्मियां अधिक ऐश्वर्यवान् हो उठती हैं। साथ ही यह सूक्तरूप रश्मिसमूह भी इन्द्रतत्त्व को विशेष समृद्ध करके आदित्य लोकों एवं उनमें संचालित विभिन्न प्रकार की क्रियाओं को नियंत्रित करने में समर्थ होता है। इसकी उत्पत्ति होने पर विशाल पदार्थ समूह इन्द्ररूपी आदित्य लोकों की ओर तीव्र गति से प्रवाहित होकर उनमें समाहित होने लगता है। इसके साथ ही उन लोकों के केन्द्रीय भागों, जिन्हें परमलोक भी कहा जाता है, को भी प्राप्त करता है, जिससे वे भी और अधिक सक्रिय हो उठते हैं॥+॥

इस सूक्त में कुल छः छन्द रश्मियां होती हैं। इसके कारण शिशिर, वसन्त आदि सभी छः ऋतु रूप प्राण रश्मियों में ये छन्द रश्मियां व्याप्त हो जाती हैं। जैसा कि हम अनेकत्र लिख चुके हैं कि ये सभी छन्द रश्मियां विभिन्न आदित्य आदि लोकों के अन्दर विभिन्न छन्द रश्मियों के बलों को समृद्ध करके अग्नि तत्त्व को समृद्ध करती हैं। इसकी पुष्टि इन आर्षवचनों से भी होती है-

"अग्नयो वाऽ ऋतवः" (श.६.२.१.३६), "ऋतवो वै वाजिनः" (कौ.ब्रा.५.२)

यह सूक्तरूप रश्मिसमूह विभिन्न ऋतु रश्मियों को प्राप्त करके उन्हें भी सक्रिय करता है, जिसके कारण लोकों में अग्नि तत्त्व की वृद्धि होती है॥

उपर्युक्त सूक्तरूप रश्मिसमूह पूर्वोक्त संपातसूक्तरूप रश्मिसमूहों के पश्चात् उत्पन्न होता है। यह उत्पन्न होते ही संपातसूक्तों को व्याप्त करके विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को विशेष तेज और बल से युक्त करके आदित्य लोकों के निर्माण हेतु प्रबलता से प्रेरित करता है। ध्यातव्य है कि मैत्रावरुण से सम्बद्ध सूक्त संपातसूक्तों से पूर्व उत्पन्न होता है और यह ब्राह्मणाच्छंसी से सम्बन्धित सूक्त संपात सूक्तों के पश्चात् उत्पन्न होता है, यही दोनों में भेद है॥

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त संपात छन्द रश्मियों के साथ-२ पूर्ववर्णित कुछ छन्द रश्मियों के अतिरिक्त ३ त्रिष्टुप् और ३ पंक्ति रश्मियां और उत्पन्न होती हैं, जो विद्युत् बलों को और अधिक समृद्ध करते हुए विभिन्न लोकों में विद्यमान पदार्थ की ऊर्जा में वृद्धि करती हैं, जिससे वे लोक डार्क एनर्जी आदि के प्रभाव से मुक्त होकर नाना प्रकार की संयोगादि क्रियाओं के द्वारा नवीन तत्त्वों का निर्माण शीघ्रता से करने लगते हैं। विभिन्न तारों में संलयनीय पदार्थ त्वरित गति से केन्द्रीय भागों की ओर बढ़ने लगता है। इससे नाभिकीय संलयन की क्रिया तीव्र होकर ऊर्जा का उत्पादन व उत्सर्जन भी शीघ्रता से होता है। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग देखें॥

३. अभितष्टेव दीधया मनीषामित्यच्छावाकोऽहरहः शंसत्यभिवत् तत्यै रूपम्॥ अभि प्रियाणि मर्मृशत् पराणीति; यान्येव पराण्यहानि, तानि प्रियाणि, तान्येव तदभिमर्मृशतो यन्त्यभ्यारभमाणाः; परो वा अस्माल्लोकात् स्वर्गो लोकस्तमेव तदभिवदति॥

कवींरिच्छामि संदृशे सुमेधा इति॥

ये वै ते न ऋषयः पूर्वे प्रेतास्ते वै कवयस्तानेव तदभ्यति वदति॥

तदु वैश्वामित्रं, विश्वस्य ह वै मित्रं विश्वामित्र आस; विश्वं हास्मै मित्रं भवति य एवं वेद।।
तदनिरुक्तं प्राजापत्यं शंसत्यनिरुक्तो वै प्रजापतिः; प्रजापतेराप्त्यै।।
सकृदिन्द्रं निराह तेनैन्द्राद्रूपान्न प्रच्यवते।।
तद्वै दशर्चं, दशाक्षरा विराळन्नं विराळन्नाद्यस्यावरुद्ध्यै।।
यदेव दशर्चा३म्, दश वै प्राणाः, प्राणानेव तदाप्नुवन्ति, प्राणानात्मन् दधते।।
तदुपरिष्टात् संपातानां शंसत्याप्त्वैव तत्स्वर्गं लोकं यजमाना अस्मिँल्लोके प्रतितिष्ठन्ति।।४।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त अच्छावाक होत्रक संपातसूक्त रश्मियों के साथ-२ एक अन्य सूक्त को भी उत्पन्न करता है। वह सूक्त इन्द्र-देवताक

अभि तष्टेव दीधया मनीषामत्यो न वाजी सुधुरो जिहानः।
अभि प्रियाणि मर्मृशत्पराणि कवींरिच्छामि सन्दृशे सुमेधाः।।१।।

इत्यादि (ऋ.३.३८) है। इस सूक्त के विषय में ६.१८.२ द्रष्टव्य है। यह सूक्तरूप रश्मिसमूह प्रत्येक अहन् में संपात सूक्तों के साथ उत्पन्न होता है। इस सूक्त में 'अभि' शब्द विद्यमान होने से इसका प्रभाव सब ओर निरन्तर विस्तृत होता हुआ निर्बाध गति से जारी रहता है।।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा का तृतीय पाद "अभि प्रियाणि मर्मृशत् पराणि" है। इसके प्रभाव से ब्राह्मणाच्छंसी होत्रकरूप छन्दरश्मियां जिस अहन् रूपी क्षेत्र में उत्पन्न और व्याप्त होती हैं, वे अगले अहन् रूपी क्षेत्र में विद्यमान पदार्थ को भी सब ओर से आकर्षित करती हैं। इस प्रकार यह सूक्तरूप रश्मिसमूह उन क्षेत्रों को सब ओर से स्पर्श अर्थात् अपने साथ सम्बद्ध करते हुए अपनी क्रियाओं को प्रारम्भ व संचालित करते हैं। यह क्रम निरन्तर आगे बढ़ता रहता है। इस प्रकार सभी क्षेत्रों में विद्यमान परमाणु आदि पदार्थ एक-दूसरे से सम्बद्ध होकर परस्पर अनेक प्रकार की क्रियाएं करते रहते हैं। इस क्रम से ही विभिन्न पार्थिव परमाणु आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों की ओर निरन्तर सब ओर से गमन करते हैं। वस्तुतः यह सूक्तरूप रश्मिसमूह पूर्वोक्त षडहरूप सम्पूर्ण लोक समूह को परस्पर बांधे रखता है, यही इस तृतीय पाद का विशेष सामर्थ्य है।।

"कवींरिच्छामि सन्दृशे सुमेधाः" यह इस सूक्त की प्रथम ऋचा का चतुर्थ पाद है। यहाँ 'कवि' शब्द ऋषिवाची है। जो ऋषि अर्थात् प्राणापानादि प्राथमिक प्राण रश्मियां इन विभिन्न छन्दादि रश्मियों से पूर्व ही उत्पन्न हो चुकी होती हैं, वे इस पाद के प्रभाव से आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग की ओर तीव्रता से गमन करती हैं। इनके पश्चात् ही विभिन्न छन्दादि रश्मियां एवं परमाणु आदि पदार्थ गमन करते हैं। इन प्राण रश्मियों में भी यहाँ सूत्रात्मा वायु की विशेष प्रमुखता समझनी चाहिए। {ऋषिः = अग्निर् ऋषिः (मै.१.६.१)} वे सूत्रात्मा वायु रश्मियां ही अन्य रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को अपने साथ बांधकर खींचती हुई आदित्य लोकों किंवा उनके केन्द्रीय भागों की ओर ले जाती हैं। इसके साथ ही केन्द्रीय भाग की ओर ऊष्णता भी तेजी से समृद्ध होने लगती है, क्योंकि वहाँ अग्नि तत्त्व का वेगपूर्वक प्राबल्य होने लगता है।।+।।

इसका व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

यहाँ महर्षि इस सूक्त को प्राजापत्य बतलाते हैं और इसे अनिरुक्त भी कहते है। आचार्य सायण ने अपने भाष्य में इसे प्रजापति-देवताक मानकर अनिरुक्त भी कहा है और प्राजापत्य भी। जबकि इसी

सूक्त को ग्रन्थकार ने पूर्व में इन्द्रदेवताक ही माना है और आचार्य सायण ने भी अपने ब्राह्मणभाष्य में इसे इन्द्रदेवताक माना है। ऋषि दयानन्द एवं सायण दोनों ने ही अपने वेदभाष्य में इसे इन्द्रदेवताक ही माना है, तब यहाँ प्रजापतिदेवताक कैसे माना जा सकता है? आचार्य सायण और ऋषि दयानन्द दोनों ने ही इस सूक्त का ऋषि प्रजापति अवश्य माना है। महर्षि ऐतरेय महीदास ने अपने ग्रन्थ में अनेकत्र ऋषिवाची शब्द से तद्धित प्रत्यय करके सूक्तों को दर्शाया है। जैसा कि इन्द्र, अग्नि आदि देवता वाले ऋ. १.१२७-१३६ सूक्तों को खण्ड ५.६ में पारुच्छेपी संज्ञा से सम्बोधित किया गया है। इस कारण यह प्रतीत होता है कि यहाँ प्रजापति ऋषि से उत्पन्न होने के कारण ही इस सूक्त को प्राजापत्य कहा गया है। एक ही सूक्त का दो स्थानों पर पृथक्-२ देवता दर्शाना प्रमाणभूत ऋषियों के द्वारा कदापि सम्भव नहीं है। अतः इसका देवता इन्द्र ही है। इससे यह एक महत्वपूर्ण तथ्य और प्रकाशित होता है कि **ऋषि प्राण रश्मियां तदुत्पन्न सूक्तरूप रश्मिसमूह को अवश्य प्रभावित करती हैं** और जब ऋषि प्रजापति अर्थात् मनस्तत्त्व हो, तब उसके देवता और छन्द रश्मियों पर इसका प्रभाव पड़ना अत्यन्त स्वाभाविक है। ऐसा ही परुच्छेप ऋषि के विषय में भी कहा जा सकता है, जबकि इनका देवता इन्द्र हो। इसका संकेत निम्न आर्ष वचनों से मिलता है-

इन्द्र उ वै प्रजापतिः (शां.आ.१.१)
इन्द्र उ वै परुच्छेपः (कौ.ब्रा.२३.४)

देवता और ऋषि का यह पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट करने के पश्चात् अब हम कण्डिका के मूल आशय पर विचार करते हैं-

यह सूक्तरूप रश्मिसमूह प्राजापत्य होने के कारण अनिरुक्त होता है, क्योंकि मन और इन्द्ररूपी प्रजापति दोनों ही अपरिमित अर्थात् अनिरुक्त प्रभाव वाले होते हैं। इस कारण इस रश्मिसमूह के द्वारा इन्द्रतत्त्व की प्रचुरता और व्याप्ति विशेष होती है। प्रजापति के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है-

सर्वाणि छन्दांसि प्रजापतिः (श.६.२.१.३०)
प्रजापतिर्वै हिरण्यगर्भः (श.६.२.२.५)
प्रजननं प्रजापतिः (श.५.१.३.१०)
इमे लोकाः प्रजापतिः (श.७.५.१.२७)
द्यावापृथिवी हि प्रजापतिः (श.५.१.५.२६)

इन सब वचनों से यह सिद्ध होता है कि प्राजापत्य संज्ञक सूक्तरूप रश्मिसमूह प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के परमाणुओं वा लोकों को उत्पन्न करने के लिए सभी छन्दादि रश्मियों को आकृष्ट करता हुआ जिस महान् तेजस्वी विशाल लोकों को उत्पन्न करने में विशेष भूमिका निभाता है, वही विशाल लोक हिरण्यगर्भ कहलाता है।।

इस सूक्तरूप रश्मिसमूह की अन्तिम ऋचा "शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे.......।" में 'इन्द्रम्' पद विद्यमान है, जो इस सम्पूर्ण सूक्त में एक बार आया है। इस कारण इसके प्रभाव से वह अपने ऐन्द्ररूप से च्युत नहीं होता है। इसका तात्पर्य यह है कि इसका दैवत प्रभाव एवं इस 'इन्द्रम्' पद का प्रभाव दोनों ही के कारण इन्द्रतत्त्व समृद्ध होता है, उसमें कहीं न्यूनता, दुर्बलता वा स्खलन नहीं होता है।।

इस सूक्त में कुल १० ऋचाएं हैं। विराट् छन्द में भी १० अक्षर होते हैं। इस प्रकार यह सम्पूर्ण सूक्तरूप रश्मिसमूह विराट् छन्द के समान प्रभावकारी होता है। विराट् छन्द रश्मियां अन्नरूप होती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये प्राण रश्मियां जहाँ विराड्रूप होने से विशेष तेजयुक्त होती हैं, वहीं ये अन्नरूप होने से संयोज्यता गुण से विशेष युक्त होती हैं। इस कारण इस सूक्तरूप रश्मिसमूह के प्रभाव से आकाश में विद्यमान संयोज्य परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ विशेषरूप से परस्पर आकृष्ट होकर आदित्य आदि लोकों के निर्माण की प्रक्रिया को तीव्र करते हैं।।

इस सूक्त की १० ऋचाओं का अन्य प्रभाव दर्शाते हुए महर्षि लिखते हैं कि प्राणापान आदि रश्मियां भी संख्या में १० होती हैं। इस कारण ये दसों छन्द रश्मियां उन १० प्राण रश्मियों से विशेषरूप से व्याप्त होती हैं। इसके साथ ही इन छन्द रश्मियों के प्रभाव से आत्मा अर्थात् सूत्रात्मा वायु उन दसों प्राण रश्मियों को विशेष रूप से धारण करके विभिन्न लोकों को व्याप्त करता है। 'आत्मा' शब्द के विषय

में ऋषियों का कथन है-

"आत्मा वै तनूः" (श.६.७.२.६)
"मध्यतो ह्यात्मा" (श.६.२.२.१३)
"आत्मा यजमानः" (कौ.ब्रा.१७.७; गो.उ.५.४)

इन वचनों से सिद्ध है कि इन दसों छन्द रश्मियों के प्रभाव से सूत्रात्मा वायु दसों प्राण रश्मियों को अपने साथ संगत करके विभिन्न संयोज्य परमाणुओं में प्रविष्ट होकर विभिन्न लोकों, विशेषकर उनके केन्द्रीय भागों को समृद्ध करता है।।

इन दसों छन्द रश्मियों के समूहरूप सूक्त की उत्पत्ति अच्छावाक के संपात सूक्तों की उत्पत्ति के पश्चात् होती है। इसे पूर्ववत् समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त संपात छन्द रश्मिसमूहों के साथ-साथ ९ त्रिष्टुप् एवं १ पंक्ति कुल १० छन्द रश्मियों का एक समूह और उत्पन्न होता है। ये रश्मियां विभिन्न निर्माणाधीन लोकों में एक साथ प्रवाहित होकर सम्पूर्ण पदार्थ को एक-दूसरे से कहीं दुर्बल, तो कहीं तीक्ष्ण बलों के द्वारा बांधे रखती हैं। विभिन्न तारों के अन्दर संलयनीय पदार्थ को केन्द्रीय भाग की ओर ले जाने में इन रश्मियों की विशेष भूमिका होती है। इन छन्द रश्मियों का सम्बन्ध प्राणापानादि प्राथमिक प्राण रश्मियों से विशेष होता है, जो सूत्रात्मा वायु के साथ बंधकर तारों के केन्द्रीय भाग की तरफ पहले प्रवाहित होती हैं, तदुपरान्त उनका अनुकरण करता हुआ संलयनीय पदार्थ भी केन्द्रीय भाग की ओर तीव्र वेग से जाने लगता है। इसके कारण तारों के केन्द्रीय भाग में ऊष्मा की मात्रा विशेष रूप से बढ़ने लगती है। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग पठनीय है।

इति २९.४ समाप्तः

∞ अथ २९.५ प्रारभ्यते ∞

**** तमसो मा ज्योतिर्गमय ****

१. कस्तमिन्द्र त्वा वसुं, कन्नव्यो अतसीनां, कदू न्वस्याकृतमिति कद्वन्तः प्रगाथा आरम्भणीया अहरहः शस्यन्ते।।
को वै प्रजापतिः, प्रजापतेराप्त्यै।।
यदेव कद्वन्ता३ः, अन्नं वै कमन्नाद्यस्यावरुद्ध्यै।।
यद्वेव कद्वन्ता३ः, अहरहर्वा एते शान्तान्यहीनसूक्तान्युपयुञ्जाना यन्ति; तानि कद्वद्भिः प्रगाथैः शमयन्ति; तान्येभ्यः शान्तानि कं भवन्ति; तान्येनाञ्छान्तानि स्वर्गं लोकमभिवहन्ति।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त महर्षि तीन प्रगाथरूप रश्मि युग्मों की चर्चा करते हैं-
(१) वसिष्ठ ऋषि प्राण से उत्पन्न इन्द्र-देवताक ऋ.७.३२.१४-१५ तृच की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(क) **कस्तमिन्द्र त्वावसुमा मर्त्यो दधर्षति। श्रद्धा इत्ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति।।१४।।**

इसका छन्द भुरिगनुष्टुप् है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से 'कः' रूप प्रजापति विभिन्न छन्द रश्मियों, प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणुओं एवं विभिन्न प्राण रश्मियों को आकृष्ट करके हिरण्यगर्भरूप लोकों को उत्पन्न करने में विशेष भूमिका निभाता है। इन प्राण व छन्द रश्मियों से सम्पन्न इन्द्रतत्त्व विभिन्न परमाणुओं को विलोडित करता हुआ द्युलोकों में नाना प्रकार के संयोजनीय वलों को सब ओर फैलाता है। {श्रद्धा = तेज एव श्रद्धा (श.११.३.१.१), श्रद्धा वा आपः (तै.ब्रा.३.२.४.१)} इसके कारण तेजयुक्त विभिन्न तन्मात्रायें समुचित विभागों को प्राप्त करके सर्ग प्रक्रिया को पूर्ण करती हैं।

(ख) **मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु। तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता।।१५।।**

इसका छन्द निचृत् पंक्ति है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से इन्द्रतत्त्व की हरणशील आशुगामी रश्मियां विभिन्न प्रकाशक प्राण रश्मियों के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को उत्तम रीति से आकर्षित करती हुई वहन करती हैं। इसके कारण वे परमाणु आदि पदार्थ आसुर मेघों को नष्ट वा नियंत्रित करने में अच्छी प्रकार समर्थ होते हैं।
(२) मेध्यतिथिः काण्व ऋषि प्राण से इन्द्र-देवताक ऋ.८.३.१३-१४ प्रगाथ की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(क) **कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः। नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः।।१३।।**

इसका छन्द अनुष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {नवते गतिकर्मा (निघं.२.१४)} वह इन्द्रतत्त्व निरन्तर गमन करते हुए स्थूल व सूक्ष्म पदार्थों को आशु गति प्रदान करता हुआ प्राण व मरुद् रश्मियों के द्वारा निरन्तर प्रकाशित करता रहता है। यह महान् वलयुक्त इन्द्रतत्त्व अपने तेज द्वारा आदित्य लोकों को व्याप्त व प्रकाशित करता है। इसके साथ ही वे आदित्य लोक उस

इन्द्रतत्त्व को माप नहीं पाते हैं।

(ख) कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते। कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः।।१४।।

इसका छन्द सतः पंक्ति है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियां इन्द्रतत्त्व को प्रकाशित करते हुए संगमनीय बनाती हैं और सूत्रात्मा वायु रश्मि उस इन्द्रतत्त्व का वहन करती है, ऐसा वह इन्द्रतत्त्व अपने संयोज्य गुणों के द्वारा नाना प्रकार की हव्य रश्मियों वा परमाणु आदि पदार्थों को सब ओर से व्याप्त करता है।
(३) कालः प्रगाथः ऋषि {कालः = (कल क्षेपे = उड़ाना, फेंकना)} अर्थात् ऐसी प्रकृष्ट तेज वाली सूक्ष्म प्राण रश्मियां, जो नाना प्रकार की तन्मात्राओं के भीतर प्रविष्ट रहकर सूर्यादि लोकों में स्थित होती हैं, {कालः = काला अप्सु निविशन्ते, आपः सूर्ये समाहिताः (तै.आ.१.८.१)} से इन्द्र-देवताक ऋ.८.६६.९-१० की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(क) कदू न्व१स्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम्। केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा।।९।।

छन्द अनुष्टुप् है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {श्रोमतम् = प्रशस्तकीर्तियुक्तं व्यवहारम् (तु.म.द.ऋ.भा.१.१८२.७)} वह इन्द्रतत्त्व जिन बलों और तेजयुक्त व्यवहारों से रहित होता जाता है, उनको प्राण रश्मियों की प्रेरणा से पुनः प्राप्त करके विशाल आसुर मेघों को नष्ट करने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है।

(ख) कदू महीरधृष्टा अस्य तविषीः कदु वृत्रघ्नो अस्तृतम्। इन्द्रो विश्वान्बेकनाटाँ अहर्दृश उत क्रत्वा पणीँरभि।।१०।।

छन्द पंक्ति है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {यहाँ 'बेकनाट' का अर्थ आचार्य सायण ने सूदखोर किया है। इसी का अनुकरण आर्य विद्वान् पं. शिवशंकर जी ने किया है। यह भाष्य सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली ने प्रकाशित किया है। हमारे मत में आधिदैविक अर्थ में 'बेकनाटः' पद 'भेकनाटः' का छान्दस रूप है। यहाँ भेकः = यो बिभेति यस्माद्वा स भेकः मण्डूको मेघो वा (उ.को.३.४३)। इस प्रकार बेकनाट = भेकनाट ऐसे मेघरूप पदार्थों को कहा गया है, जो अन्तरिक्ष में कांपते हुए यत्र तत्र भ्रमण करते रहते हैं।} इन्द्रतत्त्व में वर्तमान विभिन्न प्राण रश्मियां व्यापक बलों से युक्त तथा किसी से नियन्त्रित न होने योग्य होती हैं। वे ही विशाल आसुर मेघों को नष्ट करती हैं। वे ही इन्द्रतत्त्व में वर्तमान रहकर अन्तरिक्ष में यत्र-तत्र भ्रमित आकाशीय मेघरूप पदार्थ को धारण व नियन्त्रित करके दर्शनीय अर्थात् तेजस्वी बनाकर उनके सृजनादि व्यवहारों को सब ओर से प्रकट करती हैं।

ये तीनों प्रगाथरूप रश्मियुग्म पूर्वोक्त षडह के सभी अहनों के आरम्भ में उत्पन्न होते हैं। इस कारण इन्हें आरम्भणीय प्रगाथ कहते हैं। ये सभी प्रगाथ रश्मियां अन्तरिक्षस्थ विभिन्न छन्द व प्राणादि रश्मियों को सब ओर से आकृष्ट करती हैं। यहाँ 'कः' का अर्थ प्रजापति करने पर इन रश्मियों को प्राण व छन्द रश्मियों का आकृष्टकर्ता व ग्राहक माना, साथ ही 'प्रजापति' का अर्थ यज्ञ भी होता है। इससे ये प्रगाथ रश्मियां नाना संयोगादि क्रियाओं को समृद्ध करने वाली सिद्ध होती हैं। ये रश्मियां 'कद्' शब्द से युक्त हैं और 'कद्' शब्द 'कम्' का रूप है तथा निरुक्त ६.३५ के अनुसार 'कम्' शब्द अन्न वाचक है। इस प्रकार ये प्रगाथ रश्मियां अन्न अर्थात् संयोज्य परमाणु आदि पदार्थों को आकृष्ट व अवरुद्ध करके संसर्ग, संघनन की क्रिया को समृद्ध करती हैं।।+।।+।।

'कद्' शब्द से युक्त पूर्वोक्त प्रगाथ रश्मियां षडह के सभी अहन् रूप क्षेत्रों में उत्पन्न विभिन्न शमनकर्त्री अहीन संज्ञक छन्द रश्मियों के साथ संगत हो जाती हैं। तदुपरान्त इन 'कद्' शब्दयुक्त प्रगाथ

रश्मियों के द्वारा वे पूर्वोक्त अहीन संज्ञक छन्द रश्मियां नियंत्रित और संतुलित होती हैं। इनके ही द्वारा वे रश्मियां अपने-२ कर्मों को करने में सहजता एवं अनुकूलता को प्राप्त होकर आदित्य लोकों के निर्माण की प्रक्रिया को चरमावस्था तक ले जाने में सक्षम होती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- लोक निर्माण की प्रक्रिया के विभिन्न चरणों के प्रारम्भ में एक अनुष्टुप् और एक पंक्ति छन्द रश्मि के तीन युग्म उत्पन्न होते हैं, जो प्रारम्भ से ही विद्युत् चुम्बकीय एवं गुरुत्व आदि बलों को निरन्तर तीव्र करते हैं। वे पूर्वोत्पन्न अनेक छन्द रश्मियों को अनेक प्रकार से धारण और नियन्त्रित करते हुए संतुलित क्रिया और बलों से युक्त रखते हैं। वे सूक्ष्म छन्दादि रश्मियों से लेकर विभिन्न कणों और विकिरणों को भी विलोडित करते हुए तारों के केन्द्रीय भाग के निर्माण में सहयोगी होते हैं। डार्क एनर्जी एवं डार्क मैटर के नियंत्रण में भी इनकी भूमिका होती है। विभिन्न प्रकार के विद्युत् बलों का विस्तार और उनकी भूमिका विभिन्न तारे और ग्रहादि लोकों तक ही सीमित नहीं होती है, बल्कि इनसे बाहर विशाल अन्तरिक्ष में विद्यमान समस्त पदार्थ में भी व्यापक होती है। प्राणापानादि रश्मियों के द्वारा विभिन्न कणों में विभिन्न संयोजक बलों की उत्पत्ति होती है एवं सूत्रात्मा वायु रश्मियों के द्वारा वे कण धारक और वाहक गुणों से युक्त होते हैं। डार्क एनर्जी के नियंत्रण और निर्मूलन में प्राणापानादि रश्मियों की ही मूल भूमिका होती है। विद्युत् बल इस सृष्टि का सबसे बड़ा बल है। विद्युत् और गुरुत्व बल मिलकर अन्तरिक्ष में दूर-२ तक बिखरे पदार्थों को सूक्ष्म और विशाल समूहों को एकत्र करके लोक निर्माण की प्रक्रिया में सम्मिलित करते हैं।।

२. त्रिष्टुभः सूक्तप्रतिपदः शंसेयुः।।
ता हैके पुरस्तात् प्रगाथानां शंसन्ति, धाय्या इति वदन्तः।।
तत् तथा न कुर्यात्।।
क्षत्रं वै होता, विशो होत्राशंसिनः, क्षत्रायैव तद्विशं प्रत्युद्यामिनीं कुर्युः पापवस्यसम्।।
त्रिष्टुभो म इमाः सूक्तप्रतिपद इत्येव विद्यात्।।
तद्यथा समुद्रं प्रप्लवेरन्नेवं हैव ते प्रप्लवन्ते, ये संवत्सरं वा द्वादशाहं वाऽऽसते;
तद्यथा सैरावतीं नावं पारकामाः समारोहेयुरेवमेवैतास्त्रिष्टुभः समारोहन्ति।।
न ह वा एतच्छन्दो गमयित्वा स्वर्गं लोकमुपावर्तते, वीर्यवत्तमं हि।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रगाथ रश्मियों की उत्पत्ति के पूर्व कुछ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है, जिसका वर्णन अगले खण्ड में किया गया है। ये त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां पूर्वोक्त विभिन्न अहीन सूक्तरूप रश्मिसमूहों के प्रारम्भ में प्रत्येक अहन् रूपी क्षेत्रों में उत्पन्न होती हैं।।

यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का मत उपस्थित करते हुए कहते हैं कि उपरि संकेतित त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां उपर्युक्त प्रगाथों के पश्चात् नहीं, बल्कि पूर्व में उत्पन्न होती हैं, क्योंकि वे त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां उनकी धाय्या के रूप में काम करती हैं? धाय्या संज्ञक रश्मियों के स्वरूप के विषय में पूर्व में अनेकत्र लिखा जा चुका है।।

इसका प्रत्याख्यान करते हुए महर्षि कहते हैं कि ऐसा नहीं होता है।।

{क्षत्रम् = क्षत्रं वै त्रिष्टुप् (कौ.ब्रा.७.१०; जै.ब्रा.१.२६३), क्षत्रमिन्द्रः (जै.ब्रा.१.१८२), क्षत्रं माध्यंदिनं सवनम् (कौ.ब्रा.१६.४)। विश् = विट् सूक्तं (ऐ.२.३३; ३.१६), विड् वा उक्थानि (जै.ब्रा.२.१४०), विण्मरुतः (तै.सं.३.५.७.२; मै.१.१०.६; काठ.१०.११), विट् तृतीयसवनम् (कौ.ब्रा.१६.४)} इसका कारण बतलाते हुए महर्षि लिखते हैं कि त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां, जो क्षत्र रूप तीक्ष्ण होती हैं, वे होता का कार्य करती हैं। इस विषय में अन्य ऋषि का भी कथन है- 'क्षत्रं वै होता' (गो.उ.६.३)। इसका तात्पर्य यह

है कि ये रश्मियां विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों का आदान-प्रदान करने में विशेष सक्षम होती हैं। ये होतारूप त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां इन्द्रतत्त्व को समृद्ध करने के साथ-२ माध्यंदिन सवन को भी विशेष समृद्ध करती हैं। इस कारण इनका सम्वन्ध अन्तरिक्ष के साथ विशेषरूप से होता है। इन्द्र का होतृत्व वतलाते हुए महर्षि तित्तिर ने भी कहा है- 'इन्द्रः सप्तहोता' (तै.ब्रा.२.२.८.५; २.३.१.१)।

उधर माध्यन्दिन सवन का होता से सम्वन्ध भी अनेक आर्ष वचनों से स्पष्ट होता है। इस विषय में निम्न आर्ष वचन विचारणीय हैं-

"आत्मा वै यज्ञस्य होता" (कौ.ब्रा.६.६)

"आत्मा वै होता" (ऐ.६.८; गो.उ.५.१४)

यहाँ 'होता' को आत्मरूप सिद्ध किया है और आत्मा के विषय में ऋषियों का कथन है- "आत्मा मध्यन्दिनः" (कौ.ब्रा.२५.१२; जै.ब्रा.३.६६), आत्मा यजमानस्य मध्यन्दिनः (ऐ.३.१८)।

इस प्रकार माध्यन्दिन सवन का होतारूप होना सिद्ध है। अव 'होत्राशंसिन्' के विषय में विचार करते हैं। इस विषय में एक ऋषि का कथन है-

"अङ्गानि होत्राशंसिनः" (कौ.ब्रा.१७.७; २६.८)

उधर अङ्ग के विषय में अन्य ऋषियों का कथन है-

"अङ्गानि होत्रकाः" (ऐ.६.८; गो.उ.५.१४)

यहाँ पूर्वोक्त मैत्रावरुण आदि होत्रकों को होत्राशंसी कहा गया है। इस प्रकार के मैत्रावरुण होत्रक विड् रूप सिद्ध होते हैं। उधर अङ्ग के विषय में ऋषियों का कथन है-

"अङ्गानि वै विश्वानि धामानि" (श.३.३.४.१४)

"अङ्गान्युक्थ्याः" (मै.४.५.६)

"छन्दांस्यङ्गानि" (मै.२.७.८; काठ.१६.८)

इस प्रकार उक्थ्यों एवं विभिन्न छन्द रश्मियों को भी होत्राशंसी कहा गया है। उधर एक अन्य ऋषि का कथन है-

"आपो मे होत्राशंसिनः" (ष.२.५)

इसके साथ ही अन्य ऋषियों का कथन है-

"आपो वै मरुतः" (ऐ.६.३०; कौ.ब्रा.१२.८)

इस प्रकार मरुद् रश्मियों का भी होत्राशंसी होना सिद्ध है। ग्रन्थकार ने अङ्ग के विषय में कहा है-

"वैश्वदेवानि ह्यङ्गानि" (ऐ.३.२)

उधर अन्य ऋषियों का कथन है-

"वैश्वदेवम् वै तृतीयसवनम्" (तै.सं.७.५.६.५; ऐ.६.१५; श.१.७.३.१६; जै.उ.१.१२.३.४)।

इन प्रमाणों से तृतीय सवन का भी होत्राशंसी होना सिद्ध होता है। अव ग्रन्थकार का कथन है कि उपरि संकेतित त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां होतारूप होकर तीक्ष्णता से कार्य करती हैं। वे इन्द्रतत्त्व को समृद्ध करके विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को तीव्र तेज और वल से युक्त करके आकाश तत्त्व के साथ संगत करती हुई नाना प्रकार की संयोगादि प्रक्रियाओं को सम्पादित करती हैं किंवा वल प्रदान करती हैं। उधर, उपर्युक्त प्रगाथ आदि वा सूक्त आदि छन्द रश्मियां होत्राशंसीरूप होकर नाना प्रकार की मरुद् वा छन्द रश्मियों को विस्तृत और समृद्ध करती हैं। ये तृतीयसवनरूप सभी प्रकार के देव पदार्थों और उनके आश्रयरूप द्युलोकों को समृद्ध करने वाली होती हैं। यहाँ ग्रन्थकार ने अपना हेतु प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि यदि वे त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां उपर्युक्त प्रगाथ रश्मियों के पूर्व उत्पन्न हो जाएं, तो विट् अर्थात् होत्राशंसीसंज्ञक अन्य छन्दरश्मियां त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के प्रवल वल के कारण उनके प्रतिकूल होकर उपद्रवग्रस्त हो सकती हैं और ऐसा होना पाप अर्थात् वाधक स्थिति को उत्पन्न कर सकता है। इसी प्रकार माध्यन्दिन एवं तृतीय सवन, इन्द्रतत्त्व एवं मरुद् रश्मियां, त्रिष्टुप् एवं जगती आदि छन्द रश्मियां, ये सभी परस्पर विपरीत आचरण वाली होकर सम्पूर्ण सृष्टि प्रक्रिया को नष्ट-भ्रष्ट कर सकती हैं, जवकि सृष्टि प्रक्रिया को समुचित वनाये रखने के लिए सभी विट् संज्ञक उपर्युक्त पदार्थ क्षत्र संज्ञक उपर्युक्त पदार्थों के अनुगामी ही हों, यह अनिवार्य है। इसी की ओर संकेत करते हुए महर्षि जैमिनी का कथन है-

"क्षत्रस्य विडनुवर्त्मा" (जै.ब्रा.१.६५; २.१६७; ३.२०५)

यहाँ महर्षि ने इस प्रतिकूलता की आशंका की अनिवार्यता को दर्शाया अवश्य है, परन्तु इसका कारण नहीं बतलाया कि ऐसा क्यों होता है? इस विषय में हमारा मत यह है कि पूर्वोक्त कद्वत् प्रगाथ रश्मियों के छन्द अनुष्टुप् एवं पंक्ति हैं। सृष्टि उत्पत्ति के क्रम में इनकी उत्पत्ति त्रिष्टुप् से पूर्व होनी चाहिए, इस कारण स्वभावतः त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां इन प्रगाथ रश्मियों के पश्चात् ही उत्पन्न होती हैं, पूर्व में नहीं। यदि इन त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों को प्रगाथ रश्मि की धाय्या संज्ञक छन्द रश्मियां भी माना जाए, तब भी धाय्या संज्ञक छन्द रश्मियां, सदैव बाद में ही उत्पन्न होती हैं। क्योंकि जब कोई छन्द रश्मिसमूह उत्पन्न ही न होवे, तो धाय्या छन्द रश्मि उत्पन्न होकर किसको धारण करेगी? इस कारण भी उन त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों का प्रगाथ रश्मियों के पश्चात् ही उत्पन्न होना सिद्ध होता है।।

इस प्रकार उपरि-संकेतित त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां पूर्वोक्त प्रगाथ छन्द रश्मियों के पश्चात् परन्तु प्रत्येक अहन् में उत्पन्न अन्य छन्द रश्मियों (सूक्तरूप रश्मिसमूहों) के प्रारम्भ में ही उत्पन्न होती हैं, ऐसा ग्रन्थकार का दृढ़ मत है। इन त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की महत्ता बतलाते हुए महर्षि लिखते हैं कि जिस प्रकार लोक में समुद्र आदि को तैरकर पार किया जाता है, उसी प्रकार सृष्टि प्रक्रिया में अध्याय १६ में वर्णित द्वादशाह अथवा अध्याय १८ में वर्णित षडह एवं गवामयन आदि अनेक क्रियाएं भी विभिन्न रश्मियों के सहारे पार होती हैं और जिस प्रकार समुद्र एवं नदी आदि को पार करने के लिए विभिन्न अन्न आदि सामग्री के साथ नौका में आरूढ़ हुआ जाता है, उसी प्रकार इस सृष्टि की उपर्युक्त प्रक्रियाओं को पार करने अर्थात् सम्पन्न व संचालित करने के लिए पूर्वोक्त त्रिष्टुप् छन्दरश्मियां नाव का काम करती हैं। इसके साथ ही अन्य छन्दादि रश्मियां नौका में ले जाने के लिए विविध सामग्री के रूप में होती हैं। इन रश्मियों की सृष्टि प्रक्रिया में उतनी ही अनिवार्यता है, जितनी कि नौका की।।+।।

ये नौकारूप त्रिष्टुप् छन्दरश्मियां इतनी शक्तिशाली होती हैं कि इन पर आरूढ़ होकर अन्य छन्दादि रश्मियां आदित्य लोकों में पहुंचकर एवं व्याप्त होकर वापिस नहीं लौटती हैं अर्थात् वे आदित्य लोकों का ही भाग बन जाती हैं। इस कारण वे आदित्य लोकों में विभिन्न प्रकार की क्रियाओं में सक्रिय रहती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सृष्टि प्रक्रिया में न्यून ऊर्जा वाली तरंगें पहले उत्पन्न होती हैं, उसके पश्चात् तीव्र ऊर्जा वाली तरंगें उत्पन्न होती हैं, भले ही उसके पश्चात् सभी प्रकार की तरंगें क्यों न उत्पन्न हों। यदि तीव्र ऊर्जा वाली तरंगें पहले उत्पन्न हो जाएं, तो सृष्टि प्रक्रिया बाधित और उपद्रवित हो जाती है। इसी प्रकार विभिन्न कणों और विकिरणों से पूर्व आकाश तत्त्व की उत्पत्ति भी अनिवार्यतः होती है। ऐसा न होने पर भी सृष्टि रचना का होना सम्भव नहीं है, क्योंकि आकाश तत्त्व के अभाव में विभिन्न कणों और विकिरणों को कौन धारण करे? छन्द रश्मियों में गायत्री, अनुष्टुप् छन्द रश्मियां पूर्व में उत्पन्न होती हैं। इसके पश्चात् ही त्रिष्टुप् आदि की उत्पत्ति होती है। सृष्टि प्रक्रिया में त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां नौका के समान व्यवहार करती हुई अन्य रश्मि वा पदार्थों को धारण और वहन करती हैं। इसके कारण वे रश्मि आदि पदार्थ किंवा संलयनीय पदार्थ तारों के केन्द्रीय भाग तक पहुंचकर बहिर्गमन नहीं कर पाते हैं, बल्कि वहीं संलयित होकर ऊर्जा को उत्पन्न करते हैं।।

३. ताभ्यो न व्याह्वयीत; समानं हि च्छन्दोऽथो नेद्धाय्याः करवाणीति।।
यदेनाः शंसन्ति, प्रज्ञाताभिः सूक्तप्रतिपद्भिः सूक्तानि समारोहामेति।।
यदेवैनाः शंसन्तीन्द्रमेवैताभिर्निह्वयन्ते यथऋषभं वाशितायै, यद्वेवैनाः शंसन्त्यहीनस्य संतत्या अहीनमेव तत् संतन्वन्ति।।५।।

व्याख्यानम्- अब महर्षि उपरिवर्णित त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के विषय में कुछ अन्य विषय उपस्थित करते हुए कहते हैं कि उन त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों को आहाव संज्ञक 'शोंसावोम्' रूप तेजस्विनी छन्द रश्मि से युक्त नहीं होती है। यहाँ 'आहाव' के सूचक क्रियापद से पूर्व 'वि' उपसर्ग का प्रयोग है। इस 'व्याहाव'

के प्रभाव के विषय में ३.१६.५ द्रष्टव्य है। 'आहाव' संज्ञक 'शोंसावोम्' रश्मियों के विषय में २.३३.१ भी द्रष्टव्य है। यहाँ ऋषि का मन्तव्य है कि वे त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां इनके पश्चात् उत्पन्न होने वाली अहीन आदि छन्द रश्मियों के लगभग समान गुणधर्म वाली होती हैं। इस कारण उन त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के पूर्व आकर्षण बल से विशेष युक्त 'शोंसावोम्' रश्मियों की उत्पत्ति की कोई अनिवार्यता नहीं होती है। इसके साथ ही ग्रन्थकार ने स्पष्ट किया है कि ये त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां अहीन सूक्तरूप रश्मिसमूहों की धाय्या अर्थात् धारण करने वाली भी नहीं होती, बल्कि वे समानता के आधार पर ही उनके साथ संगत होती हैं। यहाँ यह संकेत मिलता है कि आहाव संज्ञक तेजस्विनी रश्मियां एवं धाय्या संज्ञक छन्द रश्मियां मुख्यरूप से असमान गुणों वाली छन्द रश्मियों को परस्पर संगत करने में विशिष्ट उपयोगी होती हैं, न कि समान गुण-धर्म वाली रश्मियों को संगत करने में।।

ये त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां जब उत्पन्न होती हैं, तब प्रख्यात अहीनसूक्तरूप रश्मिसमूहों के प्रारम्भ में ही उत्पन्न होती हैं, परन्तु पूर्वोक्त कद्वत् प्रगाथ रश्मियों के पश्चात् उत्पन्न होती हैं। ये त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां अहीनरूप छन्दरश्मियों, जो सबकी रक्षिका होती हैं, के साथ अन्य छन्दादि रश्मियों को जोड़ने में सीढ़ी रूप होती हैं। जैसा कि हम लिख चुके हैं कि अहीनसंज्ञक छन्दरश्मियां परिधानीय अर्थात् आच्छादिका के रूप में व्यवहार करके उन छन्दादि रश्मियों को अक्षीण बनाये रखती हैं वा अक्षीणता प्रदान करती हैं। इस प्रकार वे अहीन रश्मियां अन्य रश्मियों के लिए और भी विशाल नौका के समान होती हैं। उस विशाल नौका पर अन्य छन्दादि रश्मियों को आरूढ़ करने के लिए ये त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां सोपान का कार्य करती हैं अर्थात् इन्हीं के सहारे अन्य छन्दादि रश्मियां, जो सृष्टि प्रक्रिया का एक विशाल उपादानरूप होती हैं, अहीन रश्मियों के द्वारा संयुक्त वा आच्छादित होकर रक्षित होती हैं।।

इस कण्डिका का व्याख्यान ६.१८.५ में वर्णित दो कण्डिकाओं के संयुक्त व्याख्यान के समान समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में समान गुणधर्म वाली छन्द रश्मियां परस्पर सहजता से संयुक्त हो जाती हैं। जब संयुक्त होने योग्य रश्मियों के गुणधर्म समान नहीं होते, तब उनको परस्पर संयुक्त करने के लिए कुछ अन्य प्रेरक और धारक गुणों से युक्त रश्मियों की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार विभिन्न कणों और विकिरणों के विषय में भी समझना चाहिए। सभी प्रकार की संयोगादि क्रियाओं में विद्युत् बलों की अनिवार्य एवं सतत भूमिका रहती है। इन बलों के कारण ही विभिन्न कण और विकिरण सदैव एक-दूसरे के प्रति आकर्षण वा प्रतिकर्षण का भाव रखते हैं।।

ॐ इति २९.५ समाप्तः ॐ

अथ २९.६ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. अप प्राच इन्द्र विश्वाँ अमित्रानिति मैत्रावरुणः पुरस्तात् सूक्तानामहरहः शंसति।।
अपापाचो अभिभूते नुदस्व, अपोदीचो, अप शूराधराच, उरौ यथा तव शर्मन् मदेमेति।।
अभयस्य रूपमभयमिव हि यन्निच्छति।।

व्याख्यानम्- पूर्वखण्ड में जिन त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की चर्चा की गयी हैं, उनका वर्णन करते हुए महर्षि लिखते हैं कि मैत्रावरुण संज्ञक होत्रक रश्मियों के द्वारा काक्षीवत सुकीर्ति ऋषि से इन्द्र-देवताक

अप प्राच इन्द्र विश्वाँ अमित्रानपापाचो अभिभूते। (ऋ.१०.१३१.१)

की उत्पत्ति प्रत्येक अहन् रूपी क्षेत्रों में होती है। इसके विषय में ५.१५.२ द्रष्टव्य है, जहाँ ऋ.१०.१३१ सम्पूर्ण सूक्त की चर्चा की गयी है। यह छन्द रश्मि पूर्वोक्तानुसार अहीनसूक्तरूप रश्मियों के प्रारम्भ में उत्पन्न होती हैं।।

यद्यपि इस सम्पूर्ण ऋचा के विषय में हम उपर्युक्तानुसार पूर्व में पढ़ सकते हैं, पुनरपि यहाँ इस ऋचा के अन्तिम तीन पादों की चर्चा विशेषरूप से की गयी है। ये तीन पाद इस प्रकार हैं- ''अपापाचो अभिभूते नुदस्व,' 'अपोदीचो, अप शूराधराच,' 'उरौ यथा तव शर्मन् मदेम'। इनके प्रभाव से इन्द्रतत्त्व दक्षिण दिशा, उत्तर दिशा और नीचे की दिशा से असुरादि रश्मियों को दूर हटाता है, जबकि पूर्वकण्डिका में दर्शाये हुए प्रथम पाद के प्रभाव से इन्द्रतत्त्व यही कार्य पूर्व दिशा की ओर से करता है। इस प्रकार यह छन्द रश्मि सभी दिशाओं से असुरादि रश्मियों को दूर करके विस्तृत कर्मों को सहजता से करने में समर्थ होकर देव पदार्थ को उत्तम और व्यापक आधार प्रदान करने में सहायक होती है। इससे मैत्रावरुण होत्रक छन्द रश्मियां निर्वाधरूप से अपने कार्यों को करने में समर्थ होती हैं।।+।।

नोट :- इसका वैज्ञानिक भाष्यसार आगामी कण्डिकाओं के भाष्यसार के साथ पढ़ें।।

२. ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मीति ब्राह्मणाच्छंस्यहरहः शंसति; युनज्मीति युक्तवती; युक्त इव ह्यहीनोऽहीनस्य रूपम्।।
उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वानित्यच्छावाकोऽहरहः शंसत्यनु नेषीत्येतीव ह्यहीनोऽहीनस्य रूपम्।।
नेषीति सत्रायणरूपम्।।
ता वा एता अहरहः शस्यन्ते।।
समानीभिः परिदध्युः।।
ओकःसारी हैषामिन्द्रो यज्ञं भवतीं३, यथ ऋषभो वाशितां, यथा वा गौः प्रज्ञातं गोष्ठमेवं हैषामिन्द्रो यज्ञमेव गच्छति।।

न शुनंहुवीययाऽहीनस्य परिदध्यात् क्षत्रियो ह राष्ट्राच्च्यवते यो हैव परो भवति तमभिह्वयति।।६।।

व्याख्यानम्- ब्राह्मणाच्छंसी होत्रक रश्मियों के द्वारा किंवा उनके मध्य विश्वामित्र ऋषि प्राण से इन्द्र-देवताक एवं भुरिक्-पंक्ति-छन्दस्क-

ब्रह्म॑णा ते ब्रह्म॒युजा॑ युनज्मि॒ हरी॒ सखा॑या सध॒माद॑ आ॒शू।
स्थि॒रं रथं॑ सु॒खमि॑न्द्राधि॒तिष्ठ॑न्प्रजा॒नन्वि॒द्वाँ उप॑ याहि॒ सोम॑म्।।४।। (ऋ.३.३५.४)

की उत्पत्ति होती है। इस ऋचा के विषय में ५.२०.४ द्रष्टव्य है, जहाँ सम्पूर्ण सूक्त की चर्चा की गयी है। इस छन्द रश्मि की उत्पत्ति ब्राह्मणाच्छंसी द्वारा प्रत्येक अहन् रूपी क्षेत्रों में अहीन सूक्तादि रश्मियों से पूर्व होती है। इस ऋचा में 'युज' धातु विद्यमान होने से यह सभी अहीन संज्ञक छन्द रश्मियों को अपने साथ संगत करके उनके अहीनत्व रूप को समृद्ध करती है।।

इसी क्रम में अच्छावाक होत्रक द्वारा गर्ग ऋषि (खण्ड ३.३८ की प्रथम कण्डिका में वर्णित) से इन्द्र-देवताक एवं विराट् त्रिष्टुप् छन्दस्क-

उ॒रुं नो॑ लो॒कमनु॑ नेषि वि॒द्वान्त्स्व॑र्व॒ज्ज्योति॒रभ॑यं स्व॒स्ति।
ऋ॒ष्वा त॑ इन्द्र॒ स्थवि॑रस्य बा॒हू उप॑ स्थेयाम शर॒णा बृ॒हन्ता॑।।८।। (ऋ.६.४७.८)

की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व {शरणम् = गृहनाम (निघं.३.४)} अपने सुदृढ़ आश्रयभूत विशाल, आकर्षक और प्रतिकर्षक श्रेष्ठ बलों के साथ विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को धारण करता है। वह विस्तृत प्रकाश से युक्त होकर निरापदरूप से नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को प्राप्त करता है। यहाँ 'अनु नेषि' पदों के विद्यमान होने से इन्द्रतत्त्व के बाहुरूपी बल {अच्छावाक = ईर्म इव वा एषा होत्राणां यदच्छावाकः (जै.ब्रा.२.३७८), (ईर्म = बाहुनाम - नि.५.२५)} सभी रश्मि आदि पदार्थों में व्याप्त होकर उन्हें अहीनत्व प्रदान करते हैं। इस कारण ही यह त्रिष्टुप् छन्द रश्मि अहीन छन्द रश्मियों को अहीनत्व रूप प्रदान करने में सहायक होती है।।

इस ऋचा में 'नेषि' पद सत्रायण का रूप है। इसका तात्पर्य है कि यह पदरूप सूक्ष्मरश्मि सत्र अर्थात् सर्ग यज्ञ के अयन अर्थात् मार्ग को निर्धारित करने में सहायक होती है। इससे यह संकेत मिलता है कि इन्द्रतत्त्व इस पद के प्रभाव से नाना प्रकार की अहीन छन्द रश्मियों और परमाणु आदि पदार्थों के मार्गों को निर्धारित करने में सहयोग प्राप्त करता है।।

इस प्रकार तीनों होत्रकों से प्रेरित होकर ये तीनों छन्द रश्मियां प्रत्येक अहन् में पूर्वोक्त 'कद्वत्' प्रगाथ रश्मियों के पश्चात् एवं अहीन रश्मियों से पूर्व उनके आरम्भ में क्रमशः उत्पन्न होती हैं, ऐसा ही महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"अपप्राच इन्द्र विश्वाँ अमित्रान्ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्म्युरुं नो लोकमनुनेषि विद्वानिति कद्वद्भ्य आरम्भणीयाः।।"

उपर्युक्त मैत्रावरुण आदि रश्मियों की उपर्युक्त त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के अतिरिक्त समान देवता वाली निम्न क्रमानुसार परिधानीय छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं-

(१) मैत्रावरुण की परिधानीय छन्द रश्मि

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः॥११॥ (ऋ.४.१६.११)

उत्पन्न होती है। इसके विषय में ६.१३.२ द्रष्टव्य है।
(२) ब्राह्मणाच्छंसी होत्रक की परिधानीय छन्द रश्मि

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः।
स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥६॥ (ऋ.७.२३.६)

उत्पन्न होती है। इसके विषय में ६.१८.२ द्रष्टव्य है।
(३) अच्छावाक होत्रक की परिधानीय छन्द रश्मि

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥२१॥ (ऋ.२.११.२१)

उत्पन्न होती है। इसके विषय में ६.८.१ द्रष्टव्य है॥

परिधानीय रश्मियों के विषय में हम पूर्व में अनेकत्र लिख चुके हैं। इन ऋचाओं को आचार्य सायण ने परिधानीय माना है॥

इन उपर्युक्त परिधानीय छन्द रश्मियों का प्रभाव पृथक् से दर्शाते हुए महर्षि कहते हैं कि इनके प्रभाव से इन्द्रतत्त्व विशेष सक्रिय होकर सभी परमाणु आदि पदार्थों के स्थानों में विचरता हुआ उनके संगमनादि कर्मों को निरन्तर बल प्रदान करता रहता है। उस समय विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ भी इन्द्रतत्त्व को उसी प्रकार चाहते हैं, जिस प्रकार ऋतुमती गौ वृषभ को चाहती है। दूसरी उपमा देते हुए लिखते हैं कि जिस प्रकार गौएं प्रतिदिन अपने गोष्ठ में सहजता से लौटती हैं, उसी प्रकार इन्द्रतत्त्व भी संयोज्य विभिन्न परमाणुओं की ओर सतत, नितान्त सहजतया प्रवाहित होता रहता है। इस कारण इन उपर्युक्त तीन परिधानीय छन्द रश्मियों की उत्पत्ति आवश्यक रूप से होती है॥

उपर्युक्त प्रकरण में समान देवता वाली ऐन्द्री छन्द रश्मियों को परिधानीय बताते हुए उसके परिणाम को प्रस्तुत किया गया है। वहाँ यह कहा गया है कि मैत्रावरुण आदि तीनों होत्रकों की परिधानीय रश्मियां समान धर्म वाली होने से समान देवता वाली होती हैं। वहाँ इन समान देवता वाली तीन छन्द रश्मियों को दर्शाया भी गया है। उन तीनों रश्मियों के विषय में चर्चा करते हुए महर्षि एक निषेध पक्ष को दर्शाते हुए कहते हैं कि ६.२०.३ में अच्छावाक होत्रक द्वारा

अभि तष्टेव दीधया मनीषामत्यो न वाजी सुधुरो जिहानः।
अभि प्रियाणि मर्मृशत्पराणि कवींरिच्छामि सन्दृशे सुमेधाः॥१॥

इत्यादि ऋ.३.३८ सूक्त की उत्पत्ति बतलाई गई है, जिसकी अन्तिम ऋचा

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्॥१०॥ है।

हम जानते हैं कि सूक्त की अन्तिम ऋचा परिधानीय होती है। इस ऋचा का देवता भी इन्द्र ही है, पुनरपि महर्षि निषेध करते हुए कहते हैं कि अच्छावाक होत्रक की अहीन रश्मियों की परिधानीय

के रूप में यह छन्द रश्मि काम नहीं कर सकती। यदि ऐसा हो जाये तो इसका परिणाम बतलाते हुए ऋषि लिखते हैं कि अहीन सूक्तरूप क्षत्रिय प्राण रश्मियां राष्ट्र अर्थात् दीप्ति से च्युत हो जाती हैं। यहाँ क्षत्रिय को हमने अहीन सूक्त इस कारण कहा है, क्योंकि क्षत्रिय भी अपनी प्रजा को क्षीणता से बचाता है, उसी प्रकार क्षत्रिय रश्मियां भी अन्य रश्मियों को क्षीणता से बचाती हैं। जब अहीन रश्मियां अपनी दीप्ति और बल से च्युत हो जाती हैं, तो असुर रश्मियां सभी छन्दादि रश्मियों एवं परमाणु आदि पदार्थों पर आक्रमण कर देती हैं, जिससे सम्पूर्ण सृष्टि प्रक्रिया उपद्रव ग्रस्त और क्षतिग्रस्त होने लगती है। इस कारण अच्छावाक होत्रक की परिधानीय ऋचा के रूप में

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्।।१०।। (ऋ.३.३८.१०)

की उत्पत्ति न होकर पूर्वोक्त

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः।।२१।। (ऋ.२.११.२१)

की ही उत्पत्ति होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सृष्टि की विभिन्न क्रियाओं में कार्यरत विभिन्न बलों का प्रभाव सर्वप्रथम आकाश तत्त्व पर होता है। उधर आकाश तत्त्व प्रत्येक कण वा क्वाण्टाज् के साथ निकटता से सम्बद्ध होता है। इस प्रकार कोई भी बल किसी भी कण वा क्वाण्टा को प्रभावित करता है। विभिन्न प्रकार के बल ही किसी कण वा क्वाण्टा की गति और मार्गों को निर्धारित करते हैं और बलों की उत्पत्ति विभिन्न प्रकार की छन्द वा प्राण रश्मियों के द्वारा होती है। इस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि प्रक्रिया का संचालन विभिन्न छन्द एवं प्राणादि रश्मियों के द्वारा ही होता है। विशेष जानकारी हेतु व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

इति २९.६ समाप्तः

अथ २९.७ प्रारभ्यते

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. अथातोऽहीनस्य युक्तिश्च विमुक्तिश्च।।
व्यन्तरिक्षमतिरदित्यहीनं युङ्क्त एवेदिन्द्रमिति विमुञ्चति।।
आऽहं सरस्वतीवतोर्नूनं सा त इत्यहीनं युङ्क्ते।।
ते स्याम देव वरुण, नू ष्टुत इति विमुञ्चति।।
एष ह वा अहीनं तन्तुमर्हति य एनं योक्तुं च विमोक्तुं च वेद।।

व्याख्यानम्- पूर्व में हम विभिन्न अहीन रश्मियों से रक्षित विभिन्न छन्दादि रश्मियों के संयोग-वियोग आदि की चर्चा करते रहे हैं। अब हम इन अहीन सूक्तरूप रश्मिसमूहों के पारस्परिक संयोग-वियोग की चर्चा प्रारम्भ करते हैं। हम जानते हैं कि सम्पूर्ण सृष्टि विभिन्न रश्मियों के संयोग-वियोग की सतत और विस्तृत श्रृंखला का परिणाम है। अहीन सूक्तरूप रश्मिसमूह जिन रश्मियों और परमाणुओं को आच्छादित और सुरक्षित करते हैं, वे रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थ परस्पर नाना प्रकार की क्रियाएं करके नवीन रश्मि आदि पदार्थों को उत्पन्न करते हैं। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि वे अहीन सूक्तरूप रश्मिसमूह, जो संख्या की दृष्टि से इस सृष्टि में असंख्य होते हैं, वे यदि पृथक्-२ ही रहें, तब भी सृष्टि प्रक्रिया का होना सम्भव नहीं है। इस कारण उनके भी संयोग और वियोग की चर्चा यहाँ प्रारम्भ की जा रही है।।

इस क्रम में महर्षि लिखते हैं

व्य१न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना। इन्द्रो यदभिनद्वलम्।।७।।
उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः। अर्वाञ्चं नुनुदे वलम्।।८।।
इन्द्रेण रोचना दिवो दृळहानि दृंहितानि च। स्थिराणि न पराणुदे।।९।। (ऋ.८.१४.७-९)

तृचरूप छन्द रश्मिसमूह की उत्पत्ति ब्राह्मणाच्छंसी शस्त्र की परिधानीय रश्मियों के रूप में होती है। इस विषय में खण्ड ६.७ द्रष्टव्य है। ये तृच रूपी रश्मिसमूह ब्राह्मणाच्छंसी होत्रकों की परिधानीयरूप होकर विभिन्न अहीन सूक्तरूप रश्मिसमूहों के पारस्परिक संयोगों को सम्पादित करने में समर्थ होता है तथा

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः।
स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।६।। (ऋ.७.२३.६)

भुरिक् पंक्ति छन्दस्क एवं इन्द्र-देवताक छन्द रश्मि विभिन्न अहीन संज्ञक सूक्तरूप रश्मिसमूह को परस्पर वियुक्त करने का सामर्थ्य प्रदान करती है। इस ऋचा के विषय में ६.१८.३ एवं ६.२०.२ द्रष्टव्य है, जहाँ ऋग्वेद सूक्त ७.२३ सम्पूर्ण रूप से उद्धृत किया गया है। यहाँ आचार्य सायण ने भाष्य करते हुए अहीन सूक्त रश्मियों के संयोग को प्रातःसवन तथा उनके वियोग को माध्यंदिन सवन से सम्बद्ध माना है। इन सवनों के विषय में ग्रन्थकार का कथन है-

"पीतवद्वै प्रातःसवनं.....................माध्यंदिनं वै सवनं केवलम्" (ऐ.४.४)

इन वचनों से भी यह संकेत मिलता है कि प्रातःसवन में रश्मियां एक दूसरे को अवशोषित वा संयुक्त करती हैं, जबकि माध्यंदिन सवन में रश्मियां पृथक्-२ होकर ही रहती हैं।।

ब्राह्मणाच्छंसी के पश्चात् अच्छावाक छन्द रश्मियों के संयोग-वियोग की प्रक्रिया को दर्शाते हुए कहते हैं कि

आहं सरस्वतीवतोरिन्द्राग्न्योरवो वृणे। याभ्यां गायत्रमृच्यते।।१०।। (ऋ.८.३८.१०)

परिधानीय छन्द रश्मि के द्वारा प्रातःसवन में अहीन रश्मियों को परस्पर संयुक्त करने में अच्छावाक होत्रक रश्मियां समर्थ होती हैं। इस छन्द रश्मि के विषय में ६.७.२ द्रष्टव्य है। उधर,

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः।।२१।। (ऋ.२.११.२१)

परिधानीय छन्द रश्मि के द्वारा माध्यंदिन सवन में अहीन छन्द रश्मिसमूह वियुक्त होते हैं। इस प्रकार ये दोनों छन्द रश्मियां अच्छावाक को सामर्थ्य प्रदान करती हैं।।

अव मैत्रावरुण होत्रक की परिधानीय रश्मियों के विषय में लिखते हुए कहते हैं कि

ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह। इषं स्वश्च धीमहि।।६।। (ऋ.७.६६.६)

मैत्रावरुण की परिधानीय छन्द रश्मि के रूप में प्रातःसवन में उत्पन्न होती है। इस ऋचा के विषय में ६.८.१ द्रष्टव्य है। यह छन्द रश्मि मैत्रावरुण के अहीन छन्द रश्मिसमूहों को परस्पर संगत करने में सहायक होती है। उधर

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः।।२१।। (ऋ.४.१६.२१)

परिधानीय छन्द रश्मि के रूप में माध्यंदिन सवन में उत्पन्न होती है। इसके विषय में ६.८.१ द्रष्टव्य है। यह छन्द रश्मि माध्यंदिन सवन में मैत्रावरुण की अहीन रश्मियों को परस्पर वियुक्त करने में सहायक होती है।।

इस प्रकार प्रातःसवन में मैत्रावरुण आदि शस्त्रों की उपर्युक्त परिधानीय छन्द रश्मियों के द्वारा अहीन रश्मिसमूहों के संयोग एवं माध्यंदिन सवन की परिधानीय छन्द रश्मियों के द्वारा अहीन रश्मिसमूहों का वियोग होना सम्भव होता है, जिससे सम्पूर्ण सृष्टि प्रक्रिया अच्छी प्रकार विस्तृत होती हुई निरन्तर आगे बढ़ती रहती है। इस प्रकरण में प्रातःसवन को पार्थिव लोक वा परमाणुओं और माध्यंदिन सवन को आकाश तत्त्व का सूचक मानकर भी इस प्रकरण को समझा जा सकता है। हम जानते हैं कि पार्थिव लोक वा परमाणुओं में छन्द रश्मियां सघनरूप में विद्यमान होने से परस्पर निकटता से संगत रहती हैं। इस कारण इनमें अहीन रश्मिसमूहों के संयोजन की पूर्ण संगति बैठती है। आकाश तत्त्व में विभिन्न छन्दादि रश्मियां अत्यन्त विरल अवस्था में होने से उनका परस्पर वियोग होना स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होता है। इस प्रकार ये दोनों प्रकार की परिधानीय रश्मियां दोनों ही प्रकार के लोकों के निर्माण में स्पष्ट भूमिका निभाती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में सभी प्रकार के कण, विकिरण एवं आकाश आदि पदार्थ विभिन्न प्रकार की छन्द एवं प्राण रश्मियों से मिलकर बनते हैं। विभिन्न छन्द रश्मियां एकाकी न रहकर समूह में रहती हैं। जब उन रश्मियों के समूह पृथक्-२ विचरण करते हुए स्वतन्त्र रहते हैं, तब वे आकाश का रूप होते हैं। जब वे रश्मियों के समूह कुछ छन्द रश्मियों द्वारा परस्पर संयुक्त होकर अति सघन रूप प्राप्त करते हैं, तब वे ही विभिन्न प्रकार के मूलकणों का रूप धारण कर लेते हैं। जब वे रश्मिसमूह इन दोनों

के मध्य अवस्था को प्राप्त करते हैं, तब वे ही विभिन्न प्रकार के क्वाण्टाज् का निर्माण करते हैं। इसी प्रकार सारी सृष्टि का विस्तार होता है।।

२. तद्यच्चतुर्विंशेऽहन् युज्यन्ते, सा युक्तिरथ यत्पुरस्तादुदयनीयस्यातिरात्रस्य विमुच्यन्ते, सा विमुक्तिः।।
तद्यच्चतुर्विंशेऽहन्नैकाहिकाभिः परिदध्युरत्राहैव यज्ञं संस्थापयेयुर्नाहीनकर्म कुर्युरथ यदहीनपरिधानीयाभिः परिदध्युर्यथा श्रान्तोऽविमुच्यमान उत्कृत्येतैवं यजमाना उत्कृत्येरन्नुभयीभिः परिदध्युः।।
तद्यथा दीर्घाध्व उपविमोकं यायात् तादृक्तत्।।
संततो हैषां यज्ञो भवतीं३ व्यू मुञ्चन्ते।।

व्याख्यानम्- {चतुर्विंशः = चतुर्विंशं प्रातस्सवनम् (जै.ब्रा.२.२७६)। अतिरात्रः = प्राणो वै पूर्वोऽतिरात्रोऽपान उत्तरः (काठ.३४.८)} पूर्व कण्डिकाओं में विभिन्न छन्द रश्मियों की संयोग-वियोग प्रक्रिया के कथन के पश्चात् महर्षि इसी विषय को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि चतुर्विंश नामक सृष्टि की प्रारम्भिक स्थितियों में से एक स्थिति, जिसके विषय में ४.१२.१ में विस्तार से स्पष्ट किया गया है, में अहन् अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण रश्मियां, जिन्हें प्रायणीय अर्थात् पूर्व अतिरात्र भी कहा जाता है, सन्धि का कार्य करती हैं। हम ४.१२.१ में पढ़ चुके हैं कि चतुर्विंश स्थिति में २४ गायत्री आदि छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। वे छन्द रश्मियां ही २४ अर्धमास रश्मियों का भी कार्य करती हैं। इन रश्मियों को ये प्राण नामक प्राथमिक प्राण रश्मियां ही संगत करती हैं। उधर अपान रश्मियां इनको वियुक्त करने का काम करती हैं। ध्यातव्य है कि इस सृष्टि में {चतुर्विंश = चतुर्विंशो वै संवत्सरोऽन्नं पञ्चविंशम् (तां. ४.१०.५)} जहाँ कहीं भी छन्द रश्मिसमूहों का संयोग-वियोग जिन किन्हीं भी परिधानीय रश्मियों के द्वारा होता है, तब भी उसके मूल में इन प्राण और अपान रश्मियों की ही भूमिका होती है, यही इस कण्डिका का प्रयोजन है।।

उसी प्रकरण को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि उपर्युक्त चतुर्विंश अवस्था में विभिन्न गायत्र्यादि छन्द रश्मियों की परिधानीय रश्मियों के रूप में खण्ड ६.८ में वर्णित स्वरूप वाली ऐकाहिक छन्द रश्मियां ही उत्पन्न होती हैं। इन्हीं परिधानीय रश्मियों के कारण सभी रश्मि आदि पदार्थ ज्योतिर्मय हो उठते हैं। इन्हीं ऐकाहिक आच्छादक रश्मियों के द्वारा नाना प्रकार के छन्द रश्मिसमूहों की संगत्यादि क्रियाएं सम्पन्न होती हैं। इसके साथ ही इन्हीं ऐकाहिक रश्मियों के द्वारा वे संयोगादि क्रियाएं दृढ़ता से सम्पादित होती हुई उन्हीं में समाप्त हो जाती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि इन संयोगादि क्रियाओं के लिए पूर्व की भाँति अहीन संज्ञक परिधानीय छन्द रश्मियों के उत्पन्न होने की आवश्यकता नहीं होती। यदि यहाँ अर्थात् चतुर्विंश अवस्था में ऐकाहिक के स्थान पर पूर्वोक्तवत् अहीन छन्द रश्मियां परिधानीय रश्मियों के रूप में उत्पन्न होवें, तब सृष्टि प्रक्रिया उपद्रव वा क्षतिग्रस्त हो जाती है। इसको एक उपमा द्वारा समझाते हुए कहते हैं कि जैसे थके हुए अश्व अथवा बैल को चलती हुई गाड़ी अथवा रथ में से अलग न करके उसे जुते ही रहने दें, तो उस बैल अथवा अश्व का ही उच्छेद हो जाता है, इसी प्रकार यहाँ अहीन रश्मियों के द्वारा परिधान करने से अहीन रश्मियों से आच्छादित और वहन किये जाने वाले परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों का भी उच्छेद हो जाता है। इसका कारण हमें यह प्रतीत होता है कि अहीन छन्द रश्मियां चतुर्विंश रश्मियों को अपने अन्दर ही दृढ़ता से रोके रखती हैं तथा उन्हें बाहर किंचिदपि रिसने नहीं देती हैं। हम ४.१२.१ में लिख चुके हैं कि चतुर्विंश स्थिति में सभी गायत्री आदि रश्मियां "हिम्" रश्मियों के द्वारा एक व्यवस्था के अनुसार परस्पर संगत रहती हैं। जब दो चतुर्विंश समूह, जो अहीन रश्मियों से आच्छादित होकर परस्पर निकट आते हैं, तब अहीन रश्मियों का आवरण 'हिम्' रश्मियों को भी रिसने नहीं देता। इस कारण अहीन रश्मियों से आच्छादित वे दोनों समूह परस्पर निकट आते हुए भी संगत नहीं हो पाते और इस कारण से उनकी संयोग प्रक्रिया का ही उच्छेद हो जाता है। इसके साथ ही वे

चतुर्विंश समूह के अन्दर विद्यमान रश्मियां भी परिश्रान्त होकर ही पड़ी रहती हैं। इस कारण चतुर्विंश अवस्था में अहीन रश्मियों की परिधानीय रश्मियों के रूप में उत्पत्ति नहीं होती है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि अहीन और ऐकाहिक दोनों ही परिधानीय रश्मियों की पृथक्-२ परिस्थितियों में आवश्यकता होती है। इनमें से **सृष्टि के प्रारम्भिक चरणों में ऐकाहिक छन्द रश्मियों तथा उनके बाद के चरणों में अहीन छन्द रश्मियों की आवश्यकता होती है।** इनके द्वारा संयोग और वियोग दोनों ही प्रकार के कर्मों का सम्पादन किया जाता है।।

अब महर्षि चतुर्विंश अवस्था में भी अहीन और ऐकाहिक दोनों ही प्रकार की परिधानीय रश्मियों की उपयोगिता बतलाते हुए कहते हैं कि जैसे किसी रथ से लम्बी दूरी तय करने पर अश्व अथवा बैल को थकने पर उन्हें समय-२ पर अलग करके उन्हें थकावट से दूर करके पुनः रथ में जोतकर धीरे-२ मार्ग तय किया जाता है, उसी प्रकार अहीन रश्मियों के कारण श्रान्त हुई छन्द रश्मियों वा रश्मिसमूहों की थकावट से मुक्ति हो जाती है और वे पुनः नई ऊर्जा के साथ अगली संयोग प्रक्रिया को सम्पन्न करने की दिशा में अग्रसर होती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कदाचित् इन दोनों ही छन्द रश्मियों के परिधानीय रूप के द्वारा परिश्रान्ति एवं उससे मुक्ति का क्रम निरन्तर चलते रहकर विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों की परस्पर मुक्ति व युक्ति अर्थात् वियोग व संयोग की क्रियाएं निरन्तर शृंखला के रूप में चलती रहती हैं। इस सृष्टि में न केवल संयोग से कोई भी सृजन कार्य सम्पन्न हो सकता है और न केवल वियोग से ही। इन दोनों की ही अनिवार्यता सतत और सर्वत्र निरन्तर बनी रहती है। इस प्रकार सृष्टि प्रक्रिया भी निरन्तर चलती रहती है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न कणों एवं विकिरणों के संयोग-वियोग की प्रक्रिया में सूक्ष्मतम स्तर पर प्राण एवं अपान रश्मियों की विशेष भूमिका होती है। इनमें भी संयोग हेतु प्राण एवं वियोग हेतु अपान रश्मि का योगदान होता है। इसके अगले चरण में कुछ छन्द रश्मियां संयोग हेतु, तो कुछ वियोग हेतु उत्तरदायिनी होती हैं। इनमें से संयोग हेतु उत्तरदायिनी छन्द रश्मियां अपेक्षाकृत शान्त, नियंत्रित और तेजयुक्त आधार प्रदान करती हैं, जबकि वियोग हेतु उत्तरदायिनी छन्द रश्मियां तीक्ष्ण बल से युक्त होती हैं। इस सृष्टि में संयोग और वियोग दोनों ही प्रक्रियाओं का व्यापार सतत एवं क्रम से चलता रहता है। केवल संयोग अथवा केवल वियोग से ही कोई भी क्रिया सम्पन्न नहीं हो सकती। इस कारण इन दोनों ही क्रियाओं के लिए उत्तरदायिनी छन्द रश्मियां क्रमानुसार सतत उत्पन्न होती रहती हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग पढ़ें।।

३. एकां द्वे न द्वयोः सवनयोः स्तोममतिशंसेत्।।
दीर्घारण्यानि ह वै भवन्ति, यत्र बह्वीभिः स्तोमोऽतिशस्यते।।
अपरिमिताभिस्तृतीयसवनेऽपरिमितो वै स्वर्गो लोकः स्वर्गस्य लोकस्याऽऽप्त्यै।।
संततो हास्याभ्यारब्धोऽविस्रस्तोऽहीनो भवति य एवं विद्वानहीनं तनुते।।७।।

व्याख्यानम्- {न = यत्र कारकात् पूर्वं नकारस्य प्रयोगस्तत्र प्रतिषेधार्थीयः, यत्र च परस्तत्रोपमार्थीयः (म.द.ऋ.भा.१.८.५)} पूर्व प्रकरण को आगे बढ़ाते हुए महर्षि लिखते हैं कि पूर्वोक्त चतुर्विंश नामक रश्मिसमूह, जिसे स्तोम भी कहा जाता है तथा जो अहीन और ऐकाहिक छन्द रश्मियों से आच्छादित होता है, उस आच्छादन वा प्रकाशन का एक नियम दृष्टिगोचर होता है। वह इस प्रकार है- कि वे चतुर्विंश स्तोम रश्मिसमूह परिधानीय छन्द रश्मियों से आच्छादित होने में एक अथवा दो से अधिक अतिक्रमित नहीं होते। इसका तात्पर्य यह है कि परिधानीय शस्त्र रश्मियों की आच्छादन प्रक्रिया में चतुर्विंश स्तोम के एक अथवा दो समूह से अधिक व्यवधान नहीं होता। इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि यहाँ परिधानीय रश्मियों का आच्छादन प्रत्येक समूह के साथ होवे, यह अनिवार्य नहीं है। परन्तु, यहाँ यह भी स्पष्ट है कि दो चतुर्विंश समूहों से अधिक का व्यवधान भी परिधानीय रश्मियों के लिए नहीं हो सकता। यह नियम प्रातः एवं माध्यंदिन दोनों सवनों के लिए समानरूप से बतलाया गया है। यहाँ प्रश्न यह उपस्थित हो

सकता है कि, जब दो चतुर्विंश समूहों के मध्य कोई परिधानीय शस्त्र संज्ञक रश्मियां नहीं होती, तो वे परस्पर कैसे संगत हो पाते हैं? इसके उत्तर में हमारा मत यह है कि इस परिस्थिति में उन चतुर्विंश समूह रश्मियों के मध्य कार्य करने वाली 'हिम्' रश्मियां दोनों समूहों को परस्पर जोड़े रखती हैं और ये 'हिम्' रश्मियां अधिकतम दो समूहों के अतिक्रमण होने अर्थात् कुल ३ समूहों की एक परिधानीय रश्मि होने पर उनसे आच्छादित कुल ७२ सूक्ष्म रश्मियों को परस्पर बांधे रखने में सक्षम होती हैं। इससे अधिक का अतिक्रमण होने पर वे समूह बिखर जाते हैं। ऐसा होने पर सृष्टि का सम्पूर्ण पदार्थ एक विशाल अरण्य के समान हो जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि वे चतुर्विंश रश्मिसमूह एवं उनमें विद्यमान सूक्ष्म छन्द रश्मियां नाना प्रकार के संघात और संघर्षों के लिए असमर्थ हो जाती हैं अर्थात् वे सभी निर्बल हो जाती हैं, जिससे संयोगादि प्रक्रिया मन्द वा बन्द हो जाती है। यहाँ हमें एक अन्य संकेत यह भी दिखायी देता प्रतीत होता है कि चतुर्विंश समूहों की छन्द रश्मियां सभी समान मात्रा में प्रकाशित नहीं होती हैं, बल्कि उनके मध्य प्रत्येक दूसरी अथवा तीसरी छन्द रश्मि अर्थात् दो में से एक अपेक्षाकृत अधिक प्रकाशित होती है। यही शृंखला सम्पूर्ण पदार्थ में चलती है। जब बहुत सी छन्द रश्मियां एक साथ अति प्रकाशित हो जाती हैं, तब उस पदार्थ में भारी उथल-पुथल होने लगती है, जिससे संयोग वा संघात की प्रक्रिया नहीं हो पाती है।।+।।

अब तृतीय सवन की चर्चा करते हुए कहते हैं कि तृतीय सवन {अपरिमितम् = (परिमिमीते = सर्वतो जनयति - म.द.ऋ.भा.३.१.५)} में सभी छन्द रश्मियां अति प्रकाशित होती हुई उत्पन्न नहीं होती परन्तु जहाँ होती हैं, वहाँ प्रातः एवं माध्यंदिन सवन की भाँति एक-एक करके तीव्र प्रकाशित नहीं होती, बल्कि क्षेत्रविशेष में एक साथ सभी छन्द रश्मियां अपरिमितरूप से अति तीक्ष्णता के साथ प्रकाशित होती हैं। स्वर्ग लोक अर्थात् आदित्य लोकों, विशेषकर उनके केन्द्रीय भागों में विद्यमान छन्द रश्मियां अति तीव्रता से सब एक साथ प्रकाशित होती हैं और इस प्रकार की प्रकाशन प्रक्रिया से ही इन लोकों का, विशेषकर उनके केन्द्रीय भागों का निर्माण होता है। यहाँ इसका दूसरा आशय यह भी है कि तृतीय सवन में पूर्वोक्त परिधानीय रश्मियां अपरिमित अर्थात् सर्वत्र ही उत्पन्न और प्रकाशित होती हैं। यहाँ सर्वत्र का अर्थ यह है कि वे प्रत्येक चतुर्विंश समूह को आच्छादित करती हुई उत्पन्न होती हैं। यह क्रिया आदित्य लोकों, विशेषकर उनके केन्द्रीय भागों में ही उत्पन्न होती है।।

इस प्रकार की व्यवस्था बनने पर वे अहीन आदि परिधानीय रश्मियां स्वयं अक्षीणता और निरन्तरता को प्राप्त करती हुई सम्पूर्ण पदार्थ को प्रकाशित करके सृष्टि यज्ञ को भी निरापद और सतत प्रवहमान बनाती हैं अर्थात् सृष्टि प्रक्रिया सहजतया निरन्तर अग्रसर होने में समर्थ हो जाती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि की प्रारम्भिक अवस्था वाले पदार्थ अर्थात् गायत्री छन्द रश्मियों की प्रधानता वाले पदार्थ में सभी छन्द रश्मियां समान मात्रा में प्रकाशित नहीं होतीं, बल्कि एक तीक्ष्ण तो दूसरी कम प्रकाशित वा सक्रिय होती है अर्थात् एक-एक का युग्म रहता है, जिनमें एक तीक्ष्ण, तो दूसरी मृदु होती है। इसका एक विकल्प यह भी हो सकता है कि दो रश्मियों के मध्य एक रश्मि अपेक्षाकृत तीव्रतर प्रकाशित होती है। आकाश तत्त्व में भी छन्द रश्मियों के प्रकाश व बल की यही अवस्था होती है। सभी ग्रहादि लोकों व विभिन्न कणों में भी यही स्थिति रहती है। उधर तारों, विशेषकर उनके केन्द्रीय भागों साथ ही विभिन्न क्वाण्टाज़् में सभी छन्द रश्मियां एक साथ तीक्ष्णता से प्रकाशित व सक्रिय होती हैं। सम्पूर्ण सृष्टि में यह व्यवस्था सर्वत्र समानरूप से विद्यमान होती है। **आकाश तत्त्व तथा विभिन्न मूलकणों अर्थात् द्रव्यमानयुक्त पदार्थों की इस समान व्यवस्था के कारण ही उनका परस्पर आकर्षण अधिक प्रभावी होता है अर्थात् द्रव्यमान व आवेशयुक्त कण आकाश तत्त्व को क्वाण्टाज़् की अपेक्षा अधिक आकर्षित वा संकुचित करते हैं।** इसके साथ ही असमान व्यवस्था के कारण कणों व क्वाण्टाज़् का परस्पर संगम विरल व अल्पकालीन होता है। वह क्वाण्टा अवसर पाते ही उस कण से उत्सर्जित होने का प्रयास करता है तथा प्रायः हो भी जाता है। विशेष ज्ञानार्थ व्याख्यान भाग द्रष्टव्य है।।

इति २९.७ समाप्तः

अथ २९.८ प्रारभ्यते

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. देवा वै वले गाः पर्यपश्यंस्ता यज्ञेनैवेत्{वैप्}संस्ताः षष्ठेनाह्नाऽऽप्नुवंस्ते प्रातःसवने नभाकेन वलमनभयंस्तं यदनभयाड्नु, अश्रथयन्नेवैनं तत्, त उ तृतीयसवने वज्रेण वालखिल्याभिर्वाचः कूटेनैकपदया वलं विरुज्य गा उदाजन्।।

व्याख्यानम्– {वलः = बलः, बलवान् (म.द.ऋ.भा.३.३०.१०), मेघनाम (निघं.१.१०), वक्रगतिः (तु.म.द.ऋ.भा.४.५०.५)। नभाकः = नभ हिंसायाम्+आक – इति आप्टेकोष, (नभते वधकर्मा – निघं.२.१९)। वले = वलस्य इति सायणः} यहाँ महर्षि एक घटनाविशेष का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि कभी वल अर्थात् वक्रगति करते हुए अन्धकारयुक्त बलवान् मेघ के अन्दर विभिन्न रश्मियां वा परमाणु आदि पदार्थ विद्यमान थे, उन्हें देव अर्थात् प्रकाशित परमाणु आदि पदार्थ किंवा विभिन्न प्राण रश्मियां दूर से ही उनको आकृष्ट करने का प्रयत्न करती हैं। वह प्रयत्न किस प्रकार किया जाता है, यह समझाते हुए यहाँ कहते हैं कि वे प्रातःसवन में षष्ठ अहन्, जिसके विषय में हम १८ वें अध्याय के षडह प्रकरण में लिख चुके हैं, से सम्बन्धित होने वाली अनेकों प्रकार की संयोग-वियोग प्रक्रियाओं के द्वारा उन रश्मियों वा परमाणु आदि पदार्थों को प्राप्त वा आकृष्ट करते हैं। उस आकर्षण प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि उस समय प्रातःसवन में नाभाक ऋषि प्राणों, जो विशेष भेदन सामर्थ्ययुक्त होते हैं, से तथा उनसे उत्पन्न विभिन्न छन्द रश्मियों, जिनका वर्णन आगामी कण्डिकाओं में किया जायेगा, के प्रहार से वह वल नामक मेघरूप पदार्थ प्रताड़ित किया जाता है, जिससे उस मेघरूप पदार्थ के अन्दर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के बन्धन शिथिल हो जाते हैं। यह प्रताड़ना उस वक्रगति वाले अन्धकारयुक्त बलवान् मेघरूप पदार्थ में बार-२ होती है। {वाचः कूटः = (कूट परितापे परिदाहे च)} उसके पश्चात् तृतीय सवन अवस्था में वालखिल्य ऋषि प्राणों द्वारा उत्पन्न छन्द रश्मियां, जो ऋ.८.४९ सूक्त से ८.५९ सूक्त तक वर्णित हैं, "वाचःकूटः" नामक अतिच्छन्द रूप में प्रकट होकर उस मेघरूप पदार्थ में विभिन्न छन्द रश्मियों को उद्वेलित करके व्यापक तापयुक्त अवस्था को उत्पन्न करती हैं। वाचःकूट समूह के विषय में आगामी कण्डिकाएं द्रष्टव्य हैं। वालखिल्य ऋषि प्राण रश्मियों से उत्पन्न सभी ११ सूक्तरूप रश्मिसमूहों के विषय में ५.१५.१ द्रष्टव्य है। इस पद के संयोग से वालखिल्य सूक्तों की ऋचाओं के छन्दों में भारी परिवर्तन होता है। इससे वे ऋचाएं भारी भेदक बलों से युक्त हो जाती हैं। इस कारण वह कुटिल गतिवाला अन्धकारयुक्त मेघरूप पदार्थ विदीर्ण होकर, उसमें भरा हुआ परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ बाहर निकल आता है, जिससे वह विभिन्न देव परमाणुओं वा प्राण रश्मिसमूहों के द्वारा आकर्षित कर लिया जाता है। इसके पश्चात् वह पदार्थ प्रकाशित और विशेष सक्रिय होकर सर्ग प्रक्रिया को समृद्ध करता है।।

नोट :- भाष्यसार आगामी कण्डिकाओं के साथ देखें।।

२. तथैवैतद् यजमानाः प्रातःसवने नभाकेन वलं नभयन्ति, तं यन्नभयन्तीउँ श्रथयन्त्येवैनं तत्; तस्माद्धोत्रकाः प्रातःसवने नाभाकांस्तृचाञ्छंसन्ति।।
यः ककुभो निधारय इति मैत्रावरुणः पूर्वीष्ट इन्द्रोपमातय इति ब्राह्मणाच्छंसी, ता हि मध्यं भराणामित्यच्छावाकः।।
त उ तृतीयसवने वज्रेण वालखिल्याभिर्वाचःकूटेनैकपदया वलं विरुज्य गा आप्नुवन्ति।।
पच्छः प्रथमं षड्वालखिल्यानां सूक्तानि विहरत्यर्धर्चशो द्वितीयमृक्शस्तृतीयं, स पच्छो

विहरन् प्रगाथे प्रगाथ एवैकपदां दध्यात् स वाचःकूटः।।

व्याख्यानम्- इस कण्डिका से यह संकेत मिलता है कि पूर्व कण्डिका वा इस प्रकरण में वर्णित वल नामक मेघरूप पदार्थ असुर रूप ही होता है, जो विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को आवेष्टित करके उन्हें सर्ग प्रक्रिया में सम्मिलित होने से रोक लेता है। पूर्व प्रकरण में ऐसे ही अवरुद्ध पदार्थों को आसुर मेघ से मुक्त कराने की चर्चा की गयी है। इस कण्डिका में महर्षि लिखते हैं कि विभिन्न संयोज्य परमाणुओं को भी गायत्रीप्रधान अवस्था में यही वल नामक असुर पदार्थ संयोगादि प्रक्रिया से वंचित वा निरुद्ध कर देता है। उस समय यहाँ भी पूर्वोक्त नभाक ऋषि प्राण रश्मियां और उनसे उत्पन्न विभिन्न छन्द रश्मियां, जिनका वर्णन आगामी कण्डिका में किया गया है, ही उस वल रूप असुर पदार्थ को ताड़ित करती हैं और तीव्रता से ताड़ित करने के कारण उन असुर रश्मियों को नष्ट भी करती हैं। इसके कारण उनके वल शिथिल हो जाते हैं और संयोज्य परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ वाधक असुर रश्मियों से मुक्त हो जाते हैं। इसी कारण प्रातःसवन में मैत्रावरुण आदि होत्रक रश्मियां उन नभाक ऋषि प्राण रश्मियों को उत्प्रेरित करके नाभाक तृच रश्मियों को उत्पन्न करती हैं, जिनके कारण ही संयोज्य परमाणु वाधक असुर रश्मियों से पूर्णतः मुक्त होकर संयोगादि कर्मों में प्रवृत्त होने लगते हैं।।

उपर्युक्तानुसार मैत्रावरुण होत्रक की प्रेरणा से नाभाकः काण्व ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न एक तीक्ष्ण भेदक एवं बन्धक वलयुक्त प्राण रश्मिविशेष से वरुणदेवताक ऋ.८.४१.४-६ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) यः ककुभो निधारयः पृथिव्यामधि दर्शतः।
स माता पूर्व्यं पदं तद्वरुणस्य सप्त्यं स हि गोपाइवेर्यो नभन्तामन्यके समे।।४।।

छन्द भुरिक् त्रिष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {सप्तिः = वायुः सप्तिः (तै.ब्रा.१.३.६.४)। वरुणः = यः प्राणः स वरुणः (गो.उ.४.११), व्यानो वरुणः (श.१२.६.१.१६), अपानो वरुणः (श.८.४.२.६)} वरुण अर्थात् प्राणापानव्यान रश्मियां अन्तरिक्ष में नाना प्रकार के परमाणुओं की दिशा अर्थात् घूर्णन आदि प्रक्रिया को निर्धारित करती हैं। सबको आकर्षित करने वाली आशुगामिनी सनातन रूप से सबका रक्षण करने वाली वे रश्मियां असुर रश्मियों को वांधती व नष्ट करती हैं।

(२) यो धर्ता भुवनानां य उस्राणामपीच्या३ वेद नामानि गुह्या।
स कविः काव्या पुरु रूपं द्यौरिव पुष्यति नभन्तामन्यके समे।।५।।

छन्द त्रिष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {अपीच्यम् = अपीच्यमिति निर्णीतान्तर्हितनाम (निघं.३.२५), अपीच्यमपचितं, अपगतम्, अपहितम् अन्तर्हितं वा (नि.४.२४)} वह उपर्युक्त प्राणत्रय परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को धारण करता हुआ छिपी हुई वज्र रश्मियों को प्रकट करके असुर रश्मियों को नष्ट करता और आदित्य रश्मियों को व्यापक रूप से पुष्ट करता है।

(३) यस्मिन्विश्वानि काव्या चक्रे नाभिरिव श्रिता।
त्रितं जूती सपर्यत व्रजे गावो न संयुजे युजे अश्वाँ अयुक्षत नभन्तामन्यके समे।।६।।

इसका छन्द निचृज्जगती। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से उस प्राणत्रय में सभी प्रकार के क्रान्तदर्शी पदार्थ बंधे हुए आश्रित रहते हैं। वह असुर रश्मियों को नष्ट करके विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को उनके बंधन से शीघ्रता से मुक्त करके पारस्परिक संयोगादि प्रक्रिया को निरापद बनाता है।

मैत्रावरुण के पश्चात् ब्राह्मणाच्छंसी होत्रक से पूर्वोक्त नाभाकः काण्व ऋषि प्राण से इन्द्राग्नी-देवताक ऋ.८.४०.९-११ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) पूर्वीष्ट इन्द्रोपमातयः पूर्वीरुत प्रशंस्तयः सूनो हिन्वस्य हरिवः।
वस्वो वीरस्यापृचो या नु साधन्त नो धियो नभन्तामन्यके समे।।९।।

छन्द जगती। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से हरणशील रश्मियों से युक्त इन्द्रतत्त्व विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को प्रेरित और तृप्त करता हुआ नाना प्रकार की क्रियाओं और तेज रश्मियों से सिद्ध करके सभी बाधक तत्त्वों का हनन करता है।

(२) तं शिशीता सुवृक्तिभिस्त्वेषं सत्वानमृग्मियम्।
उतो नु चिद्य ओजसा शुष्णस्याण्डानि भेदति जेषत्स्वर्वतीरपो नभन्तामन्यके समे।।१०।।

छन्द निचृज्जगती। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से तेजस्वी और सम्पीडक बलों से युक्त इन्द्रतत्त्व नाना प्रकार की छन्द रश्मियों से समृद्ध होकर बलवान् असुर मेघ के गर्भ में विद्यमान पदार्थों को छिन्न-भिन्न करके अपनी वर्जक क्रियाओं के द्वारा विभिन्न परमाणुओं को अति तीक्ष्ण बनाता व नियंत्रित करता है। इसके साथ ही वह असुर पदार्थ को नष्ट करता है।

(३) तं शिशीता स्वध्वरं सत्यं सत्वानमृत्वियम्।
उतो नु चिद्य ओहत आण्डा शुष्णस्य भेदत्यजैः स्वर्वतीरपो नभन्तामन्यके समे।।११।।

छन्द भुरिक् त्रिष्टुप् है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से विभिन्न ऋतु रश्मियों से संपन्न अग्नि तत्त्व विभिन्न प्राण रश्मियों के द्वारा नाना परमाणुओं को निरापद क्रियाओं से युक्त करता है। वह असुर मेघ के गर्भ में विद्यमान पदार्थ को छिन्न-भिन्न करके नाना परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को तीक्ष्ण बनाकर असुर तत्त्व से मुक्त करता हुआ नियंत्रित रखता है।

तदुपरान्त अच्छावाक होत्रक द्वारा प्रेरित पूर्वोक्त ऋषि और देवता वाली ऋ.८.४०.३-५ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) ता हि मध्यं भराणामिन्द्राग्नी अधिक्षितः।
ता उ कवित्वना कवी पृच्छ्यमाना सखीयते सं धीतमश्नुतं नरा नभन्तामन्यके समे।।३।।

छन्द स्वराट् त्रिष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से इन्द्र और अग्नि तत्त्व असुर तत्त्व के साथ संग्राम में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। वे अपने क्रान्तदर्शी तेज के द्वारा असुर रश्मियों को नष्ट करके देव परमाणुओं को धारण और संचित करते हैं।

(२) अभ्यर्च नभाकवदिन्द्राग्नी यजसा गिरा।
ययोर्विश्वमिदं जगदियं द्यौः पृथिवी मह्युपस्थे बिभृतो वसु नभन्तामन्यके समे।।४।।

छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वे इन्द्र और अग्नि तत्त्व नभाक ऋषि प्राणों के समान तीक्ष्ण और संयोजक छन्द रश्मियों के द्वारा प्रकाशित एवं अप्रकाशित सम्पूर्ण पदार्थ को सब ओर से प्रकाशित करके धारण करते हैं तथा असुर रश्मियों को नष्ट करते हैं।

(३) प्र ब्रह्माणि नभाकवदिन्द्राग्निभ्यामिरज्यत।
या सप्तबुध्नमर्णवं जिह्मबारमपोर्णुत इन्द्र ईशान ओजसा नभन्तामन्यके समे।।५।।

छन्द जगती। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {इरज्यति = ऐश्वर्यकर्मा (निघं.२.२१), परिचरणकर्मा (निघं.३.५)} विभिन्न संयोज्य परमाणु इन्द्र और अग्नि के साथ संयुक्त होकर नभाक प्राण रश्मियों के समान तीक्ष्ण ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं। वे सात प्रकार की प्राण रश्मियों वा सात आसुरी छन्द रश्मियों से युक्त टेढ़े-मेढ़े मार्गों वाले आसुर मेघ को विदीर्ण करके इन्द्रतत्त्व के द्वारा नियंत्रित होते हैं।

इस प्रकार ये कुल ६ छन्द रश्मियां प्रातःसवन में नाभाक ऋषि प्राण रश्मियों द्वारा उत्पन्न होकर वल नामक आसुर मेघ को शिथिल एवं विदीर्ण करती हैं।।

वे उपर्युक्त मैत्रावरुण आदि तीनों होत्रक रश्मियां तृतीय सवन में पूर्वोक्त वालखिल्य नामक ११ सूक्तरूप रश्मिसमूह एवं "वाचः कूटः" नामक सूक्ष्म रश्मि के मेल से प्रथम कण्डिका में दर्शाए अनुसार वल नामक आसुर मेघ से विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को मुक्त करके अपने साथ संगत करती हैं।।

इसके भाष्य करते हुए आचार्य सायण ने लिखा है-

"वालखिल्यनामकाः केचन महर्षयः तेषां सम्बन्धीन्यष्टसूक्तानि विद्यन्ते; तानि वालखिल्यनामके ग्रन्थे समाम्नायन्ते। तेष्वादौ यानि षट्सूक्तानि, तानि प्रथमं 'पच्छः' पादशो विहरेत्। ततो द्वितीयस्यामावृत्तावर्धर्चशो विहरेत्। तृतीयस्यामावृत्तौ ऋक्शो विहरेत्। यदा पच्छो विहरति, तदानीमेकैकस्मिन् प्रगाथ एकैकामेकपदां दध्यात्। स प्रगाथैकपदयोः समूहो 'वाचः कूटः'- इत्यनेन शब्देनाभिधीयते। तमिमं विहारप्रकारम् आश्वलायन आह- 'षट्सूक्तानि व्यतिमर्श पच्छो विहरेत्। व्यतिमर्शमर्धर्चशो, व्यतिमर्शमृक्शः, प्रगाथान्तेषु चानुपसन्तानमृगावानमेकपदाः शंसेत् इति। तेषु षट्सूक्तेषु प्रथमसूक्तादावृग्द्वयमेवमाम्नातम्-

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विद।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति।।१।। ओ३म्।
शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे।
गिरेरिव स रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः।।२।। ओ३म्।
द्वितीयसूक्तेऽपि ऋग्द्वयमेवमाम्नातम्
प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते।।१।। ओ३म्।
शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः।।२।। ओ३मिति।

तत्र प्रथमसूक्तगतमेकं (?) पादं च संयोजयेत्। सोऽयं विहारः। अस्मिन् विहारे 'व्यतिमर्शः' नाम कश्चिद्विशेषः। स च यथाक्रमं परित्यज्य प्रकारान्तरेण योजने सति संपद्यते। प्रथम सूक्तस्य प्रथमायामृचि प्रथमपादमुक्त्वा द्वितीयसूक्तस्य द्वितीयायामृचि {यत्} द्वितीयपादं तेन संयोजयेत्। तद्यथा- 'अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रस्य समिषो महीरिति'। द्वितीयसूक्तस्य द्वितीयस्यामृचि प्रथमपादमुक्त्वा प्रथमसूक्तस्य प्रथमायामृचि {यत्} द्वितीयपादं तेन संयोजयेत्। तद्यथा- 'शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रमर्च यथाविदो३मिति'। अथ प्रथमसूक्तस्य प्रथमायामृचि तृतीयपादमुक्त्वा द्वितीयसूक्तस्य द्वितीयस्यामृचि {यत्} चतुर्थपादं तेन संयोजयेत्। तद्यथा- 'यो जरितृभ्यो मघवा पुरुवसुर्यदीं सुता अमन्दिषुरिति'। द्वितीयसूक्तस्य द्वितीयस्यामृचि तृतीयपादमुक्त्वा प्रथमसूक्तस्य प्रथमायामृचि {यत्} चतुर्थपादं तेन संयोजयेत्। तद्यथा- गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते सहस्रेणेव शिक्षतो३मिति।

तदिदं पादयोर्विहृतमृग्द्वयमेकः प्रगाथः संपद्यते। तस्य प्रगाथस्यान्ते 'इन्द्रो विश्वस्य गोपतिः' इत्येतामेकपदां संदध्यात्। सोऽयं समूहो वाचः कूटसंज्ञकः। अनेनैव न्यायेन सर्वेषु सूक्तेषु सर्वास्वृक्षु बुद्धिमता पादशो व्यतिमर्शविहरणमुन्नेयम्।

अथार्धर्चशो विहार उच्यते- प्रथमसूक्तस्य प्रथमायामृचि प्रथमार्धर्चमुक्त्वा द्वितीयसूक्तस्य द्वितीयस्यामृचि {यत्} उत्तरार्धं तेन संयोजयेत्। तद्यथा- 'अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे। गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषो३मिति। एवं सर्वमुन्नेयम्।

ऋक्शो विहरेत्- तत्र प्रथमसूक्तस्य प्रथमामृचमुक्त्वा तया सह द्वितीयसूक्तस्य

द्वितीयामृचं योजयेत्। एवं सर्वत्रोहनीयम्।।''

यहाँ आचार्य सायण ने ८ सूक्तों को वालखिल्य कहा है। वस्तुतः ऋ.८.४६ से ऋ.८.५६ तक कुल ११ सूक्त वालखिल्य संज्ञक होते हैं। मैक्समूलर द्वारा सम्पादित, आचार्य सायण द्वारा विरचित भाष्य और कृष्णदास अकादमी, वाराणसी द्वारा प्रकाशित ऋग्वेद संहिता में तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित भाष्य में भी इन्हीं ११ सूक्तों को वालखिल्य कहा गया है। इन वालखिल्य संज्ञक सूक्तों के प्रकाशन के विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

''एतान्येव षट् सूक्तानि व्यतिमर्शं पच्छो विहरेद्व्यतिमर्शमर्धर्चशो व्यतिमर्शमृक्शः।'' (आश्व.श्रौ.८.२.१८)

इसकी टीका करते हुए आचार्य नारायण का कथन है-

''वालखिल्यानामादितः षट्सूक्तानि त्रिप्रकारं विहरेदित्यर्थः। एवकारः पौनर्वाचनिकः।

इसी आधार पर आचार्य सायण ने कहा है कि वालखिल्य सूक्तों में से प्रथम ६ सूक्तरूप रश्मिसमूहों की रश्मियां तीन प्रकार से प्रकाशित होती हैं। यहाँ 'विहरण' का अर्थ एक छन्द रश्मि के किसी पाद, अर्धर्चा अथवा सम्पूर्ण ऋचा का किसी अन्य सूक्त की ऋचा के पाद, अर्धर्च वा सम्पूर्ण ऋचा को हरण करके अपने साथ जोड़ने से है। इसको आचार्य सायण ने उदाहरण देकर समझाया है, जैसे सायण द्वारा उद्धृत प्रथम सूक्त की प्रथम ऋचा ''अभि प्र वः.......................।'' एवं द्वितीय सूक्त की द्वितीय ऋचा ''शतानीका हेतयो अस्य.......................।'' ये दोनों निम्न प्रकार से पादशः संयुक्त होकर नवीन प्रगाथ को निम्न प्रकार से उत्पन्न करती हैं-

''अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रस्य समिषो महीः''
''शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रमर्च यथाविदो३म्''
''यो जरितृभ्यो मघवा पुरुवसुर्यदीं सुता अमन्दिषुः''
''गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते सहस्रेणेव शिक्षतो३म्।''

इस प्रकार वालखिल्य सूक्तों का एक प्रगाथ पादशः विहरण के द्वारा सर्वथा पृथक् एवं नये प्रगाथ के रूप में प्रकट होता है। इन दोनों प्रगाथों में अक्षर का भी भेद नहीं है परन्तु पाद व्यवस्था परिवर्तित हो गयी है। अब इस नये प्रगाथ के साथ किसी अन्य ऋचा के पाद के संयोग के विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

''इन्द्रो विश्वस्य गोपतिरिन्द्रो विश्वस्य भूपतिरिन्द्रो विश्वस्य चेततीन्द्रो विश्वस्य राजतीति चतस्रः।'' (आश्व.श्रौ.८.२.२०)

इससे यह प्रकट होता है कि उपर्युक्त नवीनोत्पन्न प्रगाथ के साथ ''इन्द्रो विश्वस्य गोपतिः'' यह एकपदा छन्द रश्मि संयुक्त हो जाती है। इस प्रकार यह संयुक्तरूप ही ''वाचः कूट'' कहा जाता है।

इसके पश्चात् आचार्य सायण ने 'अर्धर्चशः' विहरण का उदाहरण दिया है, जिसमें पूर्व उद्धृत दोनों सूक्तों की क्रमशः प्रथम और द्वितीय ऋचा का पूर्वार्ध और उत्तरार्ध मिलकर एक ऋचा इस प्रकार प्रकट होती है-

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषो३म्।

हमारी दृष्टि में दूसरी ऋचा का निर्माण इस प्रकार होगा -

यो जरितृभ्यो मघवा पुरुवसुः सहस्रेणेव शिक्षति शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः।

इस प्रकार यह दूसरा प्रगाथ उपर्युक्तानुसार प्रकट होता है। जब ऋचा-२ पर विहरण क्रिया होती है, तब उसका प्रकार यह है कि प्रथम सूक्त की प्रथम ऋचा के पश्चात् द्वितीय सूक्त की द्वितीय ऋचा उत्पन्न होकर एक प्रगाथ के रूप में प्रकट होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में कभी-२ डार्क मैटर और डार्क एनर्जी दृश्य पदार्थ के कुछ भाग को अपने अन्दर आच्छादित करके सृष्टि प्रक्रिया से दूर कर देते हैं। उस समय वह दृश्य पदार्थ उनके विशाल घेरे से बाहर निकल ही नहीं पाता। उस समय त्रिष्टुप् एवं जगती के दो समूह तथा जगती-२ और त्रिष्टुप् रश्मियों का एक समूह उत्पन्न होता है। इससे विद्युत् और ऊष्मा से युक्त तीक्ष्ण विकिरणों का डार्क पदार्थ पर प्रहार होता है। इनमें प्राण, अपान और व्यान रश्मियां विशेष सक्रिय होती हैं। इससे डार्क पदार्थ में भारी हलचल होकर वह शिथिल होने लगता है, तभी ५६ अन्य विविध छन्द रश्मियां

व्याख्यान भाग में दर्शायी हुई एक विशेष व्यवस्था के अन्तर्गत अति तीक्ष्ण छन्द रश्मियों को उत्पन्न करती हैं, जिससे डार्क पदार्थ और भी शिथिल होने लगता है। इसके कारण दृश्य पदार्थ प्रखर होकर बाहर निकलने लगता है। व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

३. ता एताः पञ्चैकपदाश्चतस्रो दशमादहन् एका महाव्रतात्।।
अथाष्टाक्षराणि माहानामनानि पदानि; तेषां यावद्भिः संपद्येत, तावन्ति शंसेन्नेतराण्याद्रियेत।।
अथार्धर्चशो विहरंस्ताश्चैवैकपदाः शंसेत्, तानि चैवाष्टाक्षराणि माहानामनानि पदानि।।
अथ ऋक्शो विहरंस्ताश्चैवैकपदाः शंसेत्, तानि चैवाष्टाक्षराणि माहानामनानि पदानि।।
स यत्प्रथमं षड्वालखिल्यानां सूक्तानि विहरति, प्राणं च तद्वाचं च विहरति; यद्द्वितीयं, चक्षुश्च तन्मनश्च विहरति, यत्तृतीयं, श्रोत्रं च तदात्मानं च विहरति, तदुपाप्तो विहारे काम उपाप्तो वज्रे वालखिल्यासूपाप्तो वाचःकूट एकपदायामुपाप्तः प्राणक्लृप्त्याम्।।

व्याख्यानम्– पूर्व प्रकरण में जिन एकपदा ऋचाओं की चर्चा की गई है, जिनके पूर्वोक्त प्रगाथ रश्मियों के साथ समूहरूप को 'वाचः कूट' नाम दिया गया है, हमने वहाँ एक एकपदा छन्द रश्मि "इन्द्रो विश्वस्य गोपतिः" के द्वारा 'वाचः कूट' समूह की उत्पत्ति भी दर्शाई थी। यहाँ उसी प्रकरण को आगे बढ़ाते हुए महर्षि कहते हैं कि ऐसी एकपदा छन्द रश्मियां पांच होती हैं, इनमें से ४ एकपदा छन्द रश्मियां दशम अहन् अवस्था तथा एक एकपदा रश्मि महाव्रत अवस्था से ग्रहण की जाती है। **दशम अहन् अवस्था, उस अवस्था का नाम है, जिसमें मनस्तत्त्व के उत्कर्ष की प्रधानता होती है।** इस विषय में ५.२२.१ एवं खण्ड ५.२५ द्रष्टव्य है। महाव्रत के विषय में ४.१४.१ द्रष्टव्य है। ये एकपदा छन्द रश्मि कौन - कौनसी है, इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है–

इन्द्रो विश्वस्य गोपतिरिन्द्रो विश्वस्य भूपतिरिन्द्रो विश्वस्य चेततीन्द्रो विश्वस्य राजतीति चतस्रः।।२०।।
एकां महाव्रतादाहरेत्।।२१।।

इनके विषय में आचार्य नारायण का कथन है–

"एताश्चतस्रो दशमेऽहनि श्रुतावुत्पन्ना अप्येता आचार्येणात्रैव पठिताः"।।२०।।
"इन्द्रो विश्वं विराजति' इत्येतामित्यर्थः" ।२१। (आश्व.श्रौ.८.२.२०-२१)

इससे स्पष्ट है कि ये एकपदा ऋचाएं पांच होती हैं, जो निम्न क्रमानुसार हैं–

(१) "इन्द्रो विश्वस्य गोपतिः"
(२) "इन्द्रो विश्वस्य भूपतिः"
(३) "इन्द्रो विश्वस्य चेततिः"
(४) "इन्द्रो विश्वस्य राजति"
(५) "इन्द्रो विश्वं विराजति"

इनमें से अन्तिम ऋचा महाव्रत अवस्था से तथा अन्य ऋचाएं दशम अहन् अवस्था से ग्रहण की जाती हैं। इन्हीं का असुर पदार्थ के भेदन के लिए वालखिल्य रश्मियों से पूर्वोक्तानुसार उत्पन्न प्रगाथों में प्रक्षेप किया जाता है। ये पांच एकपदा रश्मियां वालखिल्य सूक्तों में से प्रथम ६ सूक्तों में विद्यमान कुल २८ प्रगाथ रश्मियों में से प्रथम ५ प्रगाथ रश्मियों के साथ संगत होती हैं।।

उपर्युक्त ५ एकपदा रश्मियों के पांच प्रगाथों के साथ संयोग व्यवस्था को दर्शाने के पश्चात् अन्य प्रगाथों के साथ संयोजनीय एकपदा छन्द रश्मियों का विवेचन करते हुए लिखते हैं कि अन्य प्रगाथों के साथ संयोजनीय रश्मियां आठ अक्षर वाली होती हैं। वे रश्मियां ४.४.१ में वर्णित महानाम्नी संज्ञक ऋचाओं के कुछ पदों, जिन्हें वहाँ उपसर्ग कहा गया है, के मेल से उत्पन्न होती हैं। ये उपसर्ग ५ माने

गये हैं-
(१) प्रचेतन (२) प्रचेतया (३) आ याहि पिब मत्स्व (४) क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत् (५) सम्न आ धेहि नो वसो।

इनमें से प्रथम दो उपसर्ग मिलकर "प्रचेतन प्रचेतया" यह एक आठ अक्षर वाली माहानाम नामक एकपदा छन्द रश्मि के रूप में प्रकट होती है। शेष तीनों उपसर्ग आठ-२ अक्षर की माहानाम एकपदा छन्द रश्मियां ही हैं। इस प्रकार ये चार एकपदा छन्द रश्मियां अवशिष्ट २३ प्रगाथ रश्मियों में प्रक्षिप्त और संगत होती हैं। 'वल' नामक आसुर मेघरूप पदार्थ को शिथिल, नियंत्रित वा नष्ट करने के लिए कितने प्रगाथों का उत्पन्न होना आवश्यक है, इसका कोई निश्चित नियम नहीं है। यहाँ 'पद' का अर्थ छन्द का पाद समझना चाहिए। हम ४.४.१ में महानाम्नी छन्द रश्मियों के उपसर्गों से एक अनुष्टुप् छन्द रश्मि के निर्माण की चर्चा कर चुके हैं और उस अनुष्टुप् का एक पाद ८ अक्षर युक्त ही होता है। इस कारण उपर्युक्त ८ अक्षर वाली ऋचाओं को एकपदा कहा गया है। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि ये एकपदा छन्द रश्मियां इन उपसर्गों से ही उत्पन्न होती हैं, न कि सम्पूर्ण महानाम्नी छन्द रश्मियों से।।

पादशः विहरण से उत्पन्न प्रगाथ रश्मियों से एकपदा छन्द रश्मियों के प्रक्षेप व संयोग की प्रक्रिया के पश्चात् अर्धर्चशः, जिसके विषय में हम पूर्व में लिख चुके हैं, के विहरण से उत्पन्न विभिन्न प्रगाथ रश्मियों में भी उपर्युक्त दोनों ही प्रकार की एकपदा छन्द रश्मियों अर्थात् "इन्द्रो विश्वस्य गोपतिः" इत्यादि ५ एकपदा रश्मियों तथा अष्टाक्षरा माहानाम एकपदा रश्मियों का प्रक्षेपण व संगम होता है। इसकी प्रक्रिया पूर्ववत् ही समझी जा सकती है।।

इसी प्रकार ऋक्शः विहरण से उत्पन्न विभिन्न प्रगाथ रश्मियों में पूर्वोक्त सभी प्रकार की एकपदा छन्द रश्मियों का प्रक्षेपण और विहरण समझना चाहिए।।

जैसा कि हम पूर्व में भी लिख चुके हैं कि विभिन्न वालखिल्य रश्मियों के विहरण की प्रक्रिया केवल प्रारम्भिक ६ वालखिल्य सूक्तरूप रश्मिसमूहों में ही होती है, अन्यों में नहीं। जब यह पादशः विहरण और एकपदा छन्द रश्मियों के प्रक्षेपण और संयोजन की पूर्वोक्तानुसार प्रक्रिया होती है, तब {वाक् = गायत्री वाक् (मै.४.३.१), वाग्वै गायत्री (काठ.२३.५; क.३६.२), वागनुष्टुप् (मै.३.६.५; कौ.ब्रा.५.६; जै.ब्रा.१.२६६; श.८.५.२.५; ऐ.आ.१.१.१), वाग्वा अनुष्टुप् (तै.सं.५.१.३.५)। चक्षुः = चक्षुर्वै त्रिष्टुप् (जै.ब्रा.१.१०२), चक्षुरुष्णिक् (श.१०.३.१.१)। श्रोत्रम् = श्रोत्रं जगती (जै.ब्रा.१.२६६; २.५८), श्रोत्रं पंक्तिः (श.१०.३.१.१)} वाक् तत्त्व अर्थात् गायत्री और अनुष्टुप् छन्द रश्मियां एवं प्राणापानादि प्राण रश्मियां उन प्रगाथ रश्मियों में विशेषरूप से अधिक मात्रा में मिश्रित हो जाती हैं। इसके उपरान्त जब अर्धर्चशः विहरण की प्रक्रिया सम्पन्न होती है, वा हो रही होती है, तब मनस्तत्त्व से विशेष सम्पन्न उष्णिक् और त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां विशेषरूप से मिश्रित व समृद्ध होने लगती हैं। अन्त में तृतीय चरण में जब ऋक्शः विहरण की प्रक्रिया हो रही होती है, तब जगती व पंक्ति छन्द रश्मियां और सूत्रात्मा वायु रश्मियां विशेषरूप से प्रकट व मिश्रित होती हैं। इस प्रकार से तीनों प्रकार के विहरण की प्रक्रिया में तीन प्रकार के प्रभाव एक साथ प्रकट होते हैं। यहाँ यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि प्रगाथ रश्मियों के विहरण की प्रक्रियाओं में ये गायत्री, त्रिष्टुप् आदि छन्द रश्मियां कहाँ से मिश्रित हो जाती हैं? इस विषय में हमारा मत यह है कि इन विहरण प्रक्रियाओं के चलते अन्तरिक्ष में विद्यमान ये गायत्री आदि छन्द रश्मियां विभिन्न प्रक्रियाओं में आकृष्ट होती हुई मिश्रित होने लगती हैं। इन कारणों से इन प्रक्रियाओं के तीन प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं, जिनमें से प्रथम प्रभाव यह है कि वालखिल्यरूप सूक्त रश्मियां अपना वज्ररूप प्रभाव दर्शाती हैं। दूसरा प्रभाव यह है कि 'वाचः कूट' नामक समूह में वाग् रश्मियां अतितप्तरूप धारण करती हुई एकपदा छन्द रश्मियों के साथ मिश्रित प्रभाव दर्शाती हैं। तृतीय प्रभाव यह है कि उपर्युक्त मन, प्राण एवं विभिन्न छन्द रश्मियों का प्रभाव पृथक् से प्रकट होता है। इस प्रकार इस विहरण व्यवस्था से वालखिल्य छन्द रश्मियां अनेक प्रकार के तीक्ष्ण और तेजस्वी प्रभावों को उत्पन्न करके बाधक असुर रश्मियों को नष्ट करती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- डार्क मैटर व डार्क एनर्जी के साथ उपर्युक्त संग्राम में विभिन्न छन्द रश्मियां अनेक

प्रकार के संयोग करके नाना रूपों में प्रकट होती हैं, जिसके कारण अति उष्ण आवेशित तरंगें तीव्र वेग से उस डार्क पदार्थ पर आक्रमण करती हैं, जिससे वह पदार्थ छिन्न-भिन्न होकर दृश्य पदार्थ को मुक्त कर देता है। इस प्रक्रिया को विस्तार से समझने के लिए व्याख्यान भाग पढ़ना अनिवार्य है।।

४. अविहृतानेव चतुर्थं प्रगाथाञ्छंसति, पशवो वै प्रगाथाः, पशूनामवरुद्ध्यै।।
नात्रैकपदां व्यवदध्यात्।।
यदत्रैकपदां व्यवदध्याद् वाचःकूटेन यजमानात् पशून्निर्हण्याद्, एनं तत्र ब्रूयाद् वाचःकूटेन यजमानात् पशून्निरवधीरपशुमेनमकरिति शश्वत् तथा स्यात्।।
तस्मात् तत्रैकपदां न व्यवदध्यात्।।
द्व्येवोत्तमे सूक्ते पर्यस्यति, स एव तयोर्विहारः।।
तदेतत्सौबलाय सर्पिर्वात्सिः शशंस, स होवाच भूयिष्ठानहं यजमाने पशून् पर्यग्रहैषमकनिष्ठा उ मामागमिष्यन्तीति; तस्मै ह यथा महद्भ्य ऋत्विग्भ्य एवं निनाय; तदेतत्पशव्यं च स्वर्ग्यं च शस्त्रं; तस्मादेतच्छंसति।।८।।

व्याख्यानम्– पूर्वोक्त वालखिल्य छन्द रश्मियों की तीन प्रकार की व्यवस्था को हम लिख चुके हैं। इन रश्मियों के उत्पन्न होने की अर्थात् इनसे विभिन्न प्रगाथ रश्मियों के उत्पन्न होने की चतुर्थ स्थिति में विना विहरण के अर्थात् विना दो सूक्तों को मिलाए वालखिल्य रश्मियां उत्पन्न होती हैं और उन रश्मियों में ही दो छन्द रश्मियों के युग्म प्रगाथ कहलाते हैं। इस स्थिति में एकपदा छन्द रश्मियों का संयोग वा प्रक्षेपण इन प्रगाथ रश्मियों में नहीं होता है। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है–

"अवकृष्यैकपदा अविहरंश्चतुर्थं शंसेत्।" (आश्व.श्रौ.८.२.२४)

इससे यह सिद्ध होता है कि जब वालखिल्य सूक्त रश्मियों का पादशः, अर्धर्चशः और ऋक्शः किसी भी प्रकार विहरण=संयोजन होता है, वहीं एकपदा छन्द रश्मियों का प्रक्षेप व संयोजन होता है, अन्यथा नहीं। ये प्रगाथ रश्मियां पशुरूप होती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये छन्दरूप, विशेषकर अतिच्छन्दस्क होती हैं। इस कारण ये रश्मियां ब्रह्माण्डस्थ अन्य छन्द रश्मियों को निरन्तर आकर्षित और निरुद्ध करती रहती हैं, जैसा कि हम पूर्व कण्डिका में भी इन प्रगाथ रश्मियों द्वारा गायत्री-त्रिष्टुप् आदि विभिन्न छन्द रश्मियों को आकर्षित करने की चर्चा कर चुके हैं। इस कारण इस कण्डिका की पूर्व कण्डिका के साथ पूर्ण संगति है। यहाँ महर्षि का यह भी कथन है कि पूर्वोक्त एकपदा रश्मियों का प्रक्षेप कभी भी प्रगाथों के मध्य नहीं होता क्योंकि इससे प्रगाथ रश्मियों का प्रभाव बाधित होता है। पूर्व परिस्थितियों में भी एकपदा छन्द रश्मियों का प्रक्षेप व संयोजन प्रगाथ रश्मियों के अन्त में ही दर्शाया गया था, न कि मध्य में। यहाँ उस स्थिति का भी निषेध ही किया गया है।।+।।

उपर्युक्त अविहरण अवस्था में यदि एकपदा छन्द रश्मियों का प्रक्षेपजन्य व्यवधान हो जाये, तो उसका अनिष्ट फल बतलाते हुए महर्षि लिखते हैं कि ऐसा होने से वाचःकूट संज्ञक रश्मियों से युक्त विभिन्न संयोज्य परमाणुओं वा उनके विशाल समूह से विभिन्न छन्द रश्मियों का विनाश वा पलायन हो जाता है और यह प्रक्रिया तुरन्त ही आवश्यकरूप से हो जाती है। यहाँ किसी के द्वारा शापयुक्त वचन कहना आदि केवल ग्रन्थकार की शैली मात्र है, जिसका आशय मात्र अविहरण की अवस्था में एकपदा छन्द रश्मियों के प्रक्षेप का निषेध करना ही है और इस निषेध से ही सर्ग प्रक्रिया सुचारुरूप से चल पाती है।।+।।

वालखिल्य सूक्तों में से अन्तिम दो सूक्तों में विहरण की प्रक्रिया के स्थान पर विपर्यास की प्रक्रिया होती है अर्थात् उन सूक्तों की विपरीत क्रम में उत्पत्ति होती है किंवा अन्तिम सूक्त पहले उत्पन्न होता है और उससे पूर्व वाला सूक्त उसके बाद में उत्पन्न होता है। यहाँ आचार्य सायण ने विपर्यास का यही अर्थ ग्रहण किया है। हमारे मत में यहाँ विपर्यास का अर्थ यह भी है कि वे दो सूक्त सम्पूर्ण पदार्थ में

किंवा पूर्वोत्पन्न सभी वालखिल्य सूक्तरूप रश्मिसमूहों में बिखरकर व्याप्त हो जाते हैं, जिससे उन सभी की क्षमता और भी अधिक बढ़ जाती है।।

पूर्वोक्त वालखिल्य सूक्तों के प्रसंग को उपसंहार की ओर ले जाते हुए ऋषि कहते हैं कि वत्स अर्थात् मनस्तत्त्व से उत्पन्न सर्पिः अर्थात् 'घृङ्' रश्मियां उत्पन्न होकर पूर्वोक्त सभी प्रगाथ एवं अन्य छन्दादि रश्मियों को अच्छे प्रकार के बलों से युक्त करने के लिए उत्पन्न व प्रकाशित होती हैं। वे रश्मियां विभिन्न संयोज्य परमाणुओं में नाना प्रकार की छन्द व मरुद् रश्मियों को सब ओर से निरुद्ध करके समृद्ध और सक्रिय करती हैं। इस प्रक्रिया में वे विभिन्न छन्द रश्मियां व्यापक प्राण एवं ऋतु रश्मियों को वहन करती हुई सब ओर से संयोज्य पदार्थ में व्याप्त होने लगती हैं। इस प्रकार यह सम्पूर्ण प्रक्रिया नाना प्रकार के परमाणुओं, छन्दादि रश्मियों आदि पदार्थों को आदित्य लोकों के निर्माण की ओर अग्रसर करती है। इससे पूर्वोक्त वल नामक आसुर मेघ के तीक्ष्ण आच्छादन से नाना प्रकार के परमाणु और छन्दादि रश्मियां मुक्त होकर आदित्य आदि लोक निर्माण की प्रक्रिया में भाग लेने लगती हैं। सारांश यह है कि ये 'घृङ्' रश्मियां पूर्वोत्पन्न सभी पदार्थों और प्रक्रियाओं को तीव्र तेज और वल से युक्त करके सर्ग प्रक्रिया को व्यवस्थित व समृद्ध करती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त विभिन्न क्रियाओं के चलते इस ब्रह्माण्ड में सूक्ष्म 'घृङ्' रश्मियां उत्पन्न होकर सभी प्रकार की छन्द व प्राण रश्मियों तथा विभिन्न कणों और क्वाण्टाज् की ऊर्जा में भारी वृद्धि करती हैं, जिससे सम्पूर्ण दृश्य पदार्थ डार्क पदार्थ के दुष्प्रभाव से निकलकर तारे आदि लोकों के निर्माण की ओर तीव्र गति से अग्रसर होने लगता है। इसमें छन्द रश्मियों की उत्पत्ति की कुछ अन्य व्यवस्थाओं का वर्णन है, जिनके विषय में व्याख्यान भाग पढ़ना अनिवार्य है।

इति २९.८ समाप्तः

अथ २९.९ प्रारभ्यते

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. दूरोहणं रोहति, तस्योक्तं ब्राह्मणम्।।
ऐन्द्रे पशुकामस्य रोहेदैन्द्रा वै पशवः।।
तज्जागतं स्याज्जागता वै पशवः।।
तन्महासूक्तं स्याद्भूयिष्ठेष्वेव तत्पशुषु यजमानं प्रतिष्ठापयति।।
बरौ रोहेत्तन्महासूक्तं च जागतं च।।
ऐन्द्रावरुणे प्रतिष्ठाकामस्य रोहेदेतद्देवता वा एषा होत्रैतत्प्रतिष्ठा यदैन्द्रावरुणा; तदेनत्स्वायामेव प्रतिष्ठायामन्ततः प्रतिष्ठापयति।।
यदेवैन्द्रावरुण३इ, एषा ह वा अत्र निविन्निविदा वै कामा आप्यन्ते स यद्यैन्द्रावरुणे रोहेत् सौपर्णे रोहेत्तदुपाप्त ऐन्द्रावरुणे काम उपाप्तः सौपर्णे।।६।।

व्याख्यानम्- आसुर मेघ पदार्थ से द्यौ पदार्थ को पृथक् करने की पूर्वोक्त प्रक्रिया के पश्चात् दूरोहण की प्रक्रिया का वर्णन करते हैं। यहाँ दूरोहण का अर्थ यह है कि जिस पदार्थ का जन्म और आरोहण दुष्कर होता है, वह पदार्थ अर्थात् स्वर्गलोक = आदित्य लोक, विशेषकर उनके केन्द्रीय भाग के निर्माण और उनके परस्पर दूर-२ हटने की प्रक्रिया का वर्णन करते हैं। इसको दूरोहण इस कारण कहा जाता है कि सृष्टि प्रक्रिया में ये दोनों ही क्रियाएं अत्यन्त कठिन होती हैं। **विभिन्न लोकों के बिन्दुवत् केन्द्रीय भागों का निर्माण प्रारम्भ होना और दो लोकों के निर्माणाधीन केन्द्रीय भागों में उचित दूरी का होना सृष्टि का एक अति कठिन कार्य होता है।** इस दूरोहण क्रिया के विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"हंसः शुचिषदिति पच्छाऽर्धर्चशस्त्रिपद्या चतुर्थमनवानमुक्त्वा प्रणुत्यावस्येत्पुनस्त्रिपद्याऽर्धर्चशः पच्छ एव सप्तमम्।" (आश्व.श्रौ.८.२.१३)

इसकी टीका करते हुए आचार्य नारायण का कथन है-

"एतामृचमित्थं शंसेत्। प्रथमं पच्छः, द्वितीयमर्धर्चशः, तृतीयं त्रिभिः पादैरवसायोत्तमेन पादेन प्रणुत्य, चतुर्थमनवानमुक्त्वा प्रणवेनावस्येत्। एतदारोहणम्। अथावरोहणम्। पुनस्त्रिपद्येत्येवमादिनोक्तं पञ्चमम्, अर्धर्चशः षष्ठं, पुनः पच्छः सप्तमम्। एतद्दूरोहणं भवति। सप्तमवचनमियमेवर्क्सप्तकृत्वोऽभ्यस्ता दूरोहणमिति ज्ञापनार्थम्। एवकारः पौनर्वाचनिकः।"

"एतद्दूरोहणम्।" (आश्व.श्रौ.८.२.१४)

यह दूरोहण की क्रिया ४.२१.१ एवं खण्ड ४.२० में भी वर्णित है, जहाँ विभिन्न लोकों के परस्पर दूर हटने और अपनी-२ कक्षाओं में स्थापित होने की विस्तार से चर्चा की गयी है। महर्षि आश्वलायन के उपर्युक्त १३ वें सूत्र में

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्।।५।। (ऋ.४.४०.५)

ऋचारूपी छन्द रश्मि के विभिन्न प्रकार से प्रकाशित होने का वर्णन किया गया है और इस प्रकाशन से ही दूरोहण की उपर्युक्त क्रियाओं का होना लिखा है। खण्ड ४.२० में वहाँ वर्णित दूरोहण क्रिया के लिए भी इसी छन्द रश्मि के उत्पन्न होने की विस्तार से चर्चा की गयी है। इसके साथ ही अन्य तीन, इस प्रकार कुल ४ रश्मियों की उत्पत्ति और उनके प्रभाव की चर्चा की गयी है। ध्यातव्य है कि वहाँ लोकों के

निर्माण के पश्चात् उनके कक्षाओं में स्थापित होने को दूरोहण कहा गया है, परन्तु यहाँ विभिन्न लोकों के, विशेषकर आदित्य लोकों के नवोदित केन्द्रों के आकार लेने के साथ-२ उनके परस्पर दूर-२ होने को दूरोहण कहा गया है। इस कारण इस प्रकरण में "हंसः शुचिषत्.....।" छन्द रश्मि की उत्पत्ति का होना तो पूर्व प्रकरण से समानता रखता है परन्तु इस छन्द रश्मि की उत्पत्ति की प्रक्रिया पृथक् है, जहाँ यह एक छन्द रश्मि ही सात प्रकार से उत्पन्न होती है। जैसा कि महर्षि आश्वलायन और टीकाकार आचार्य नारायण ने उपर्युक्तानुसार स्पष्ट किया है, जिसका आशय इस प्रकार है-

इस उपर्युक्त दूरोहण क्रिया में उपर्युद्धृत छन्द रश्मि सात प्रकार से प्रकट होती है-

(१) यह छन्द रश्मि प्रत्येक पाद के पश्चात् कुछ विराम के साथ उत्पन्न होती है। इस प्रक्रिया में अग्रिम पाद पूर्व पाद को विशेष प्रेरित और प्रकाशित करता है।

(२) यह छन्द रश्मि अर्धर्चशः कुछ विराम के साथ प्रकट होती है। इसमें भी अगला पाद पिछले पाद को प्रेरित व प्रकाशित करता है।

(३) इसमें प्रथम तीन पाद प्रकट होकर कुछ विराम के पश्चात् चतुर्थ पाद तृतीय पाद को प्रेरित व प्रकाशित करता है।

(४) सम्पूर्ण छन्द रश्मि विना किसी व्यवधान व विराम के प्रकट होकर अन्त में 'ओम्' रश्मि से युक्त होती है।

(५) तृतीय चरण के समान।

(६) द्वितीय चरण के समान।

(७) प्रथम चरण के समान।

यहाँ 'तस्योक्तं ब्राह्मणम्' का अभिप्राय यही है कि दूरोहण क्रिया को इसी ब्राह्मण ग्रन्थ में पूर्व में कहा गया है। उस पर भी पाठकों को अवश्य विचार करना चाहिए।।

इस प्रक्रिया के सम्पादन के लिए विभिन्न मरुद् एवं छन्द रश्मियों की आवश्यकता होती है और इनकी उत्पत्ति में इन्द्रतत्त्व का विशेष योगदान रहता है क्योंकि विभिन्न मरुद् रश्मियां इन्द्रतत्त्व से विशेष सम्बन्धित होती हैं, इस कारण इस प्रक्रिया के सम्पादन के लिए इन्द्र-देवताक छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं।।

वे छन्द रश्मियां विशेषरूप से जगती छन्दस्क होती हैं क्योंकि जगती छन्द रश्मियां पशु अर्थात् सोम तत्त्व से विशेषरूप से सम्बन्धित होती हैं। जैसा कि हम ३.२५.२ में पढ़ चुके हैं कि सोम के आहरण के लिए सर्वप्रथम जगती रश्मियां ही उद्यत होती हैं और सोम को लाने का प्रयास करती एवं उसे प्राप्त भी कर लेती हैं, भले ही वे बाद में सफल न हो सकें। इससे इतना तो सिद्ध है ही कि जगती छन्द रश्मियों का मरुद् रश्मियों के साथ आकर्षण सर्वप्रथम होता है। इस कारण यहाँ इन्द्र-देवताक जगती छन्दस्क रश्मियों की महत्ता दर्शायी है।।

जगती छन्द रश्मियों के उपर्युक्त प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि वे छन्द रश्मियां महासूक्त के रूप में उत्पन्न होती हैं। ऐसा होने से वे अधिक से अधिक अन्य छन्द रश्मियों एवं मरुद् रश्मियों के साथ विभिन्न संयोज्य परमाणुओं को प्रतिष्ठित करती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि महासूक्तरूप रश्मिसमूहों के कारण मरुद् रश्मियों की उत्पत्ति अधिक मात्रा में होकर सर्ग यज्ञ विशेष समृद्ध होता है। इसका भाष्य करते हुए आचार्य सायण ने ऐतरेय आरण्यक २.२.२.५ को उद्धृत करते हुए लिखा है-

"ते क्षुद्रसूक्ताश्चाभवन् महासूक्ताश्चेति"।

इसके साथ ही किसी अन्य पूर्वाचार्य को उद्धृत करते हुए सायण ने लिखा है-

"दशर्चताया अधिकं महासूक्तं विदुर्बुधाः।"

इसका तात्पर्य यह है कि दस ऋचाओं से अधिक ऋचाओं वाले सूक्त को महासूक्त कहते हैं और ऐसे ही महासूक्तों की उत्पत्ति इस दूरोहण क्रिया में होती है।।

उपर्युक्त प्रकार का एक महासूक्त अङ्गिरसो वरुः ऐन्द्रो हरिर्वा ऋषि से हरिस्तुति देवताक (वस्तुतः इन्द्र-देवताक - कारण नीचे स्पष्ट करेंगे) ऋ.१०.९६ सूक्त की उत्पत्ति होती है। यहाँ हम इस सूक्त के

ऋषि पर विचार करते हैं। यहाँ 'बरुः' शब्द 'वरुः' का छान्दस रूप है, जो 'वृञ् वरणे' धातु से "भृमृशीङ्तृचरित्सरितनिधनिमिमस्जिभ्य उः" (उ.को.१.७) से 'उ' प्रत्यय होकर 'वरुः' शब्द उत्पन्न होता है, जिसे ही ग्रन्थकार ने 'बरुः' माना है। इस प्रकार 'बरुः' नामक सूक्ष्म प्राण रश्मियां किन्हीं रश्मि आदि पदार्थों को नियंत्रित करती वा आच्छादित करती हैं। इस प्रकार की सूक्ष्म प्राण रश्मियों को ही 'बरुः' कहते हैं। इस प्रकार इस सूक्तरूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न हरणशील एवं नियंत्रक वलों से युक्त प्राण रश्मियों से होती है। इसका देवता हरिस्तुति वतलाया गया है। महर्षि जैमिनी ने 'हरी' के विषय में कहा है-

"प्राणापानौ वा अस्य (इन्द्रस्य) हरी तौ हीदं सर्वं हर्त्तारौ हरतः।" (जै.ब्रा.२.७६) उधर प्राण के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है-

"प्राण एव इन्द्रः" (श.१२.९.१.१४)

इन दोनों वचनों से यह संकेत मिलता है कि यहाँ 'हरिस्तुतिः' शब्द इन्द्र का वाचक ही है क्योंकि इन्द्रतत्त्व हरिरूप प्राणापान रश्मियों से ही प्रकाशित होता है। इस प्रकार यहाँ इन्द्र-देवताक यह महासूक्त, जो जगती छन्द रश्मि प्रधान है, दूरोहण क्रिया में सर्वथा उपयुक्त है। इस सूक्त की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) प्र ते॑ म॒हे वि॒दथे॑ शंसिषं॒ हरी॒ प्र ते॑ वन्वे व॒नुषो॑ हर्य॒तं मद॑म्।
घृ॒तं न यो हरि॑भि॒श्चारु॒ सेच॑त॒ आ त्वा॑ विशन्तु॒ हरि॑वर्पसं॒ गिरः॑॥१॥

छन्द जगती। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से इन्द्रतत्त्व की हरणशील प्राणापानादि रश्मियां प्रकृष्टरूप से प्रकाशित होती हुई कमनीय देव परमाणुओं को अपने हरणशील तेज से सिंचित करती हुई किंवा 'घृङ्' रश्मियों के समान उन्हें सिंचित करके आसुर पदार्थ से मुक्त करती हैं।

(२) हरिं॒ हि योनि॑म॒भि ये स॒मस्व॑रन्हि॒न्वन्तो॒ हरी॑ दि॒व्यं यथा॒ सदः॑।
आ यं पृ॒णन्ति॒ हरि॑भि॒र्न धे॒नव॒ इन्द्रा॑य शू॒षं हरि॑वन्तमर्चत॥२॥

छन्द निचृज्जगती। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह हरणशील इन्द्रतत्त्व अपने कारणरूप प्राणापान तत्त्वों से परिपूर्ण होकर अपनी प्रकाशित रश्मियों को प्रेरित करता हुआ विभिन्न छन्दादि रश्मियों को पूर्ण करता है, जिससे नाना प्रकार के बल सक्रिय होते हैं।

(३) सो अ॒स्य वज्रो॒ हरि॑तो॒ य आ॑य॒सो हरि॒र्निका॑मो॒ हरि॒रा गभ॑स्त्योः।
द्यु॒म्नी सु॑शि॒प्रो हरि॑मन्युसायक॒ इन्द्रे॒ नि रू॒पा हरि॑ता मिमिक्षिरे॥३॥

छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से असुर तत्त्व संहारक इन्द्रतत्त्व अपनी वज्र रश्मियों रूप भुजाओं के द्वारा तीक्ष्ण बल और गतियों को प्राप्त करके सम्पूर्ण देव पदार्थ का आहरण करके उनमें नाना रूपों को उत्पन्न करता है।

(४) दि॒वि न के॒तुरधि॑ धायि हर्य॒तो वि॒व्यच॒द्वज्रो॒ हरि॑तो॒ न रंह्या॑।
तु॒दद॒हिं हरि॑शिप्रो॒ य आ॑य॒सः स॒हस्र॑शोका अभवद्धरिम्भ॒रः॥४॥

छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व आकाश में चमकता हुआ अपनी वज्र रश्मियों के द्वारा सब पदार्थों को व्याप्त और धारण करता है। उसकी वेगपूर्ण हरणशील रश्मियां अपने बलों के द्वारा अनेकों प्रकार की दीप्तियों को उत्पन्न करती हैं।

(५) त्वंत्व॑महर्यथा॒ उप॑स्तुतः॒ पूर्वे॑भिरिन्द्र हरिकेश॒ यज्व॑भिः।
त्वं ह॑र्यसि॒ तव॒ विश्व॑मु॒क्थ्य१॒॑मसा॑मि॒ राधो॑ हरिजात हर्य॒तम्॥५॥

छन्द आर्ची स्वराट् जगती, दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से हरणशील प्रकाश रश्मियों से युक्त इन्द्रतत्त्व पुरातन संयोजक प्राण रश्मियों के द्वारा निरन्तर प्रकाशित होता हुआ सम्पूर्ण पदार्थ को प्रकाशित और आकर्षित करता है।

(६) ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे।।६।।

छन्द विराट् जगती। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से प्रकाशक और तीव्र सक्रिय वज्र रश्मियों से युक्त इन्द्रतत्त्व अपनी रमणीय रश्मियों के द्वारा नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों का धारण, वहन और संगमन करता है।

(७) अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन्हरयो हरी तुरा।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्जोषमीयते सो अस्य कामं हरिवन्तमानशे।।७।।

छन्द जगती। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से उस इन्द्रतत्त्व की रश्मियां विभिन्न आकर्षण वलों में समर्थ होकर विभिन्न पदार्थों को धारण और स्थिर करती हुई अति शीघ्रता से नाना कार्यों में प्रेरित करती हैं। वे आशुगामिनी रश्मियां इन्द्रतत्त्व को इन वलों से युक्त करती हैं।

(८) हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी।।८।।

छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {हरिश्मशारुः = हरितवर्णश्मश्रुः (सायण)} इन्द्रतत्त्व हरे रंग की हरणशील प्रकाश रश्मियों से युक्त होकर अति शीघ्रता से विभिन्न पदार्थों को अवशोषित करता हुआ उन्हें नाना प्रकार की छन्दादि रश्मियों और संयोजक वलों से युक्त करके सभी बाधक पदार्थों से मुक्त करता है।

(९) स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः।
प्र यत्कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः।।९।।

छन्द निचृज्जगती। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से इन्द्रतत्त्व की प्राण और अपान रश्मियां विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को एक-दूसरे में प्रक्षिप्त करती हुई उन्हें नाना प्रकार की छन्दादि रश्मियों और विभिन्न बलों से कंपाती हैं। इस कारण नाना प्रकार के मेघरूप पदार्थ अनेक हरणशील एवं संयोज्य परमाणुओं आदि से विशेष व्याप्त होने लगते हैं।

(१०) उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्योरत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत्।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद्वयो दधिषे हर्यतश्चिदा।।१०।।

छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {पस्त्यम् = पस्त्यम् गृहनाम (निघं.३.४)} द्यु और पृथिवी लोकों रूपी गृह में व्याप्त इन्द्रतत्त्व अतिशीघ्रगामी बल और वेगों के द्वारा उन्हें क्षुब्ध करता है। वह अति तीक्ष्ण सम्पीडक बलों से युक्त बृहती आदि छन्द रश्मियों को आकृष्ट करता हुआ महान् तेज और वलों को धारण करता है।।

(११) आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम्।

प्र पस्त्यमसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय ।।११।।
छन्द आर्ची भुरिक् जगती। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व द्यु एवं पृथिवी लोकों किंवा प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणुओं का अपने महान् बल से आहरण करता हुआ सभी गतिशील और प्रकाशित संयोज्य परमाणुओं को आकृष्ट करता है। वह प्राण रश्मियों में रमण करता हुआ दोनों ही प्रकार के लोकों में तेजस्वी रश्मियों वा परमाणु आदि पदार्थों को प्रकट करता है।

(१२) आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन्यज्ञं सधमादे दशोणिम् ।।१२।।

छन्द त्रिष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से तीक्ष्ण बल और गति से सम्पन्न इन्द्रतत्त्व नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को अपने साथ संयुक्त करके रमणीय रश्मियों के रूप में प्रकट करता है। वह विभिन्न प्राणादि रश्मियों को {ओणिम् = ओण्यौ द्यावापृथिव्योर्नाम (निघं.३.३०)} धारण करता हुआ उनको प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के परमाणुओं में व्याप्त करता है।

(१३) अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषञ्जठर आ वृषस्व ।।१३।।

छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {अपाः = पाहि (म.द.ऋ.भा.६.६६.१ - वै.को. से उद्धृत)} वह इन्द्र विभिन्न पूर्वोत्पन्न परमाणु आदि पदार्थों की रक्षा करता हुआ उनमें नाना प्रकार की संगमन क्रियाओं को उत्पन्न करता है। वह सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में वर्षक बलों से युक्त नाना प्रकार की सोम और प्राण रश्मियों की वर्षा करता है।

इस प्रकार ये उपर्युक्त १३ छन्द रश्मियां दूरोहण क्रिया में विशेष सहयोग करती हैं।।

तदनन्तर उपर्युक्त सभी प्रकार की प्रक्रियाओं को व्यापक आधार प्रदान करने के लिए पूर्वोक्त भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि प्राण से इन्द्रावरुणौ देवताक एवं त्रिष्टुप् छन्दस्क-

इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम्।
इदं वामन्धः परिषिक्तमस्मे आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयेथाम् ।।११।। (ऋ.६.६८.११)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से बलवान् इन्द्र और वायु तत्त्व अतीव प्रकाशमान प्राण रश्मियों एवं मरुद् रश्मियों से युक्त होकर सब ओर से बलवान् होते हैं। वे दोनों अन्तरिक्ष में विद्यमान विभिन्न संयोज्य परन्तु अप्रकाशित परमाणु आदि पदार्थों को सब ओर से सिंचित करके सक्रिय और प्रकाशित करते हैं।

यहाँ आचार्य सायण ने इस सम्पूर्ण सूक्त का ग्रहण किया है, जबकि ग्रन्थकार ने कहीं भी ऐसा संकेत नहीं किया है कि सम्पूर्ण सूक्त का ग्रहण होता हो। इस सम्पूर्ण सूक्त में कुल ३ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां, ६ पंक्ति छन्द रश्मियां और २ जगती छन्द रश्मियां हैं। इधर इसे प्रतिष्ठा अर्थात् आधाररूप प्रदान करने में आवश्यक माना है। हमारी दृष्टि में त्रिष्टुप् छन्द रश्मि अन्तरिक्ष से सम्बन्धित होने के कारण साथ ही विभिन्न छन्दादि रश्मियों को तेज प्रदान करने और इन्द्रतत्त्व से विशेष सम्बन्धित होने के कारण दूरोहण की उपर्युक्त क्रिया को विशेष प्रतिष्ठा प्रदान करने में उपयोगी होती है। ध्यातव्य है कि त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां अन्य भ्रान्त रश्मियों को तारने में सर्वाधिक समर्थ होती हैं। इस कारण भी यहाँ प्रतिष्ठारूप रश्मियों में त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की विशेष भूमिका होती है। आचार्य सायण ने इस ऋचा को याज्या संज्ञक माना है। हम यह भी जानते हैं कि याज्या संज्ञा एक ऋचा की ही होती है, न कि सम्पूर्ण सूक्त की, इस कारण भी हमने यहाँ इसी एक ऋचा के ग्रहण को आवश्यक माना है। इस याज्या संज्ञक छन्द रश्मि के कारण मैत्रावरुण आदि होत्रक रश्मियां भी इन्द्रावरुणौ-देवताक इस छन्द रश्मि को और अधिक सक्रिय करके दूरोहण क्रिया को प्रतिष्ठित करती हैं। इस कारण यह इन्द्रावरुणौ-देवताक छन्द

रश्मि इस दूरोहण क्रिया का मुख्य आधार होती है, जिसके कारण विभिन्न लोकों का निर्माण, उनका व्यवस्थापन आदि कार्य गति पकड़ने लगता है। इससे वह दूरोहण क्रिया अन्ततः सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में प्रतिष्ठित हो जाती है अर्थात् विभिन्न लोकों के निर्माणाधीन केन्द्र, उनकी पारस्परिक समुचित दूरियाँ और गतियां सुनिश्चित होने लगती हैं। इस प्रकार दूरोहण कर्म अपने स्वरूप को प्राप्त करने लगता है।।

इस उपर्युक्त इन्द्रावरुणौ-देवताक ऋचा के विषय में महर्षि लिखते हैं कि यह ऋचा निविद् रश्मियों के समान होती है। निविद् रश्मियों के विषय में ऋषियों का कथन है-

"क्षत्रं निविद्" (ऐ.२.३३; ३.१९)

"गर्भा वा एत उक्थानां यन्निविदः।" (ऐ.३.१०)

"पेशा वा एत उक्थानां यन्निविदः।" (ऐ.३.१०)

"प्राणा वै निविदः।" (कौ.ब्रा.१५.३,४)

"यदन्तरात्मंस्तन्निवित्।" (कौ.ब्रा.१५.३; गो.उ.३.२१-२२)

"स्वर्गस्य हैष लोकस्य रोहो यन्निवित्।" (ऐ.३.१९)

इन वचनों से यह सिद्ध होता है कि उपर्युक्त इन्द्रावरुणौ-देवताक छन्द रश्मि के द्वारा प्रतिष्ठित दूरोहण क्रियाएं आदित्य लोकों के आरोहण और निर्माण में विशेष समर्थ होती हैं। तीक्ष्ण बलों से युक्त, नाना प्राण रश्मियों से समृद्ध यह छन्द रश्मि विभिन्न रश्मिसमूहों के मध्य गर्भरूप होकर विचरती हुई अनेक प्रकार के रूप और रंगों को उत्पन्न करती है। हम पूर्व में लिख चुके हैं कि बारह प्रकार की निविद् रश्मियां मास रश्मियों का काम करती हैं। यह एकमात्र छन्द रश्मि निविद् रूप होने के कारण मास रश्मियों का व्यवहार करते हुए नाना प्रकार की छन्द रश्मियों को परस्पर जोड़े रखती है, जिससे वे सभी छन्द रश्मियां लोक निर्माण प्रक्रिया को विशेष गति प्रदान करने में समर्थ होती हैं। अब महर्षि लिखते हैं कि यह इन्द्रावरुणौ-देवताक छन्द रश्मि जब उत्पन्न होती है, तब उससे कुछ पूर्व ही वालखिल्य सूक्तरूप इन्द्रावरुणौ-देवताक ऋ.८.५३ रश्मिसमूह की उत्पत्ति होती है। इस सूक्त के विषय में खण्ड ५.१५.१ द्रष्टव्य है। इस सूक्त में ७ छन्द रश्मियां हैं। उपर्युक्त इन्द्रावरुणौ-देवताक छन्द रश्मि इन्हीं सात रश्मियों में उत्पन्न होकर अपनी आरोहण क्रिया करती है। इस सूक्त का देवता भी इन्द्रावरुण होने से इन्द्र और वायु तत्त्व दोनों ही समृद्ध और प्रभावशाली होते हैं। यह सूक्तरूप रश्मिसमूह दूरोहण क्रिया का भली-भाँति पालन और रक्षण करता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- डार्क एनर्जी और डार्क पदार्थ के दुष्प्रभाव से मुक्त होकर दृश्य पदार्थ जब तारे व ग्रह आदि लोकों के निर्माण को प्रारम्भ करता है, तब सर्वप्रथम उनके **केन्द्रीय भागों का निर्माण बिन्दुवत् आकार से प्रारम्भ होता है। ये बिन्दुवत् भाग कैसे और कहाँ निर्मित होते हैं? यह एक अत्यन्त जटिल और कठिन प्रक्रिया है।** उन केन्द्रों के बीच परस्पर कितनी दूरी होवे, जिससे संघनित होता हुआ दृश्य पदार्थ पृथक्-२ केन्द्रों की ओर व्यवस्थित रूप से प्रवाहित हो सके? यह भी अत्यन्त जटिल प्रक्रिया है। वस्तुतः पदार्थ के संघनन और सम्पीडन की प्रक्रिया अति विक्षोभकारी होती है। इस कारण केन्द्रों के बीच पारस्परिक समुचित दूरी का होना नितान्त आवश्यक है, जिससे कि संघनित होता हुआ पदार्थ पृथक्-२ केन्द्रों की ओर जाते हुए अपनी-२ क्रियाओं को व्यवस्थित रख सके। इन क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिए सर्वप्रथम एक जगती छन्द रश्मि सात बार कुल ४ रूपों में प्रकट होती है। इस समय उत्पन्न छन्द रश्मियों में जगती रश्मियों की प्रधानता होती है। इस समय अन्य १७ जगती छन्द रश्मियां और ४ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। विद्युत् चुम्बकीय बल और ऊर्जा के उत्सर्जन, अवशोषण, साथ ही विभिन्न कणों के संयोग-वियोग की प्रक्रिया तीव्र होती है। इस समय पदार्थ में नाना प्रकार के रंगों का प्रकाश उत्पन्न होता है और पदार्थ संघनित होते हुए एक-दूसरे के साथ दृढ़ता से बंधने लगते हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

इति २९.९ समाप्तः

अथ २९.१० प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. तदाहुः संशंसे३त् षष्ठेऽहा३न्, न संशंसे३त् इति।।
संशंसेदित्याहुः।।
कथम्?।।
अन्येष्वहःसु संशंसति, कथमत्र न संशंसेदिति।।
अथो खल्वाहुर्नैव संशंसेत्।।
स्वर्गो वै लोकः षष्ठमहरसमायी वै स्वर्गो लोकः कश्चिद्वै स्वर्गे लोके समेतीति; स यत् संशंसेत् समानं तत्कुर्यादथ यन्न संशंसतीं३ तत्स्वर्गस्य लोकस्य रूपं; तस्मान्न संशंसेद्यदेव न संशंसतीं३।।
आत्मा वै स्तोत्रियः, प्राणा वालखिल्याः, स यत्संशंसेदेताभ्यां देवताभ्यां यजमानस्य प्राणान्वीयाद् य एनं तत्र ब्रूयादेताभ्यां देवताभ्यां यजमानस्य प्राणान् व्यगात् प्राण एनं हास्यतीति, शश्वत्तथा स्यात्, तस्मान्न संशंसेत्।।
स यदीक्षेताशंसिषं वालखिल्या हन्त पुरस्ताद् दूरोहणस्य संशंसानीति, नो एव तस्याशामियात्।।
तं यदि दर्प एव विन्देदुपरिष्टाद् दूरोहणस्यापि बहूनि शतानिं शंसेद् यस्यो तत्कामाय तथा कुर्यादत्रैव तदुपाप्तम्।।

व्याख्यानम्- इसका भाष्य करते हुए आचार्य सायण का कथन है-

'तत्' तत्र सौपर्णे दूरोहणे शस्ते सति पश्चाद् ब्रह्मवादिनो विचारमाहुः। यान्यैकाहिकानि तदूर्ध्वं शंसनीयानि सन्ति, तान्यत्र षष्ठेऽहन्यत्रत्यैः संभूय किं शंसेत्, किं वा संभूय न शंसेदिति विचारः। प्लुतिर्विचारार्था।''

इसका आशय यह है कि यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए लिखते हैं कि पूर्वखण्ड के अन्त में सुपर्णः काण्व ऋषि से उत्पन्न इन्द्रावरुणौ-देवताक ऋ.८.५९ वालखिल्य सूक्तरूप रश्मिसमूहों में दूरोहण क्रिया की प्रतिष्ठा वाली छन्द रश्मि के प्रकाशन की जो चर्चा की गयी है, क्या उसे पूर्वोक्त षष्ठ अहन् में उत्पन्न ऐकाहिक छन्द रश्मियों के साथ किया जाता है अथवा नहीं? इसका तात्पर्य यह हुआ कि क्या उस समय ऐकाहिक छन्द रश्मियों और दूरोहण क्रिया को सम्पन्न करने वाली छन्द रश्मियों की उत्पत्ति साथ-२ होती है अथवा नहीं?।।

इसका उत्तर देते हुए कुछ अन्य विद्वान् कहते हैं कि हाँ, इन दोनों ही प्रकार की रश्मियों की उत्पत्ति साथ-२ ही होती है। जब उनसे यह पूछा जाता है कि क्यों ऐसा होना चाहिए? तब वे उत्तर देते हैं कि जब पूर्व पांच अहनूरूपी क्षेत्रों में इन दोनों ही प्रकार की छन्द रश्मियों की उत्पत्ति साथ-२ होती है, तब यहाँ क्यों नहीं होगी? इस कारण वे कहते हैं कि यह साथ-२ ही होनी चाहिए।।+।।+।।

अब महर्षि अन्य विद्वानों का मत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि षष्ठ अहन् में यह प्रक्रिया साथ-२ नहीं होती।।

अब महर्षि इस विवाद पर अपना विचार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि षष्ठ अहन् स्वर्ग लोक के निर्माण का ही वह चरण है, जिसमें देवदत्त प्राण के उत्कर्ष की प्रधानता होती है। इसी समय आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों का निर्माण प्रारम्भ होता है। यह केन्द्रीय भाग 'असमायी' रूप होता है। {असमायी = समागन्तुमयोग्यः। समेत्य संहत्य सभूय बहुभिर्गन्तुमयोग्यः। इति गोविन्दस्वामी (सायण भाष्य से उद्धृत)} इसका अर्थ यह है कि केन्द्रीय भाग में पूर्वोक्त ऐकाहिक छन्द रश्मियों में दूरोहण क्रिया की प्रतिष्ठारूप पूर्वोक्त इन्द्रावरुणौ-देवताक छन्द रश्मि उत्पन्न नहीं हो सकती है अर्थात् दूरोहण क्रिया ऐकाहिक छन्द रश्मियों के साथ-२ नहीं होती है। हम यह जानते हैं कि दूरोहण क्रिया से किसी क्षेत्र में पदार्थ की सघनता और विरलता के पृथक्-२ क्षेत्र बनते हैं। इसके साथ ही हम यह भी जानते हैं कि आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों में उनके अन्य भागों से सभी प्रकार के परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ प्रविष्ट नहीं होते हैं। इस प्रकार यदि यहाँ भी दूरोहण की क्रिया होगी, तो इन केन्द्रीय भागों में भी पदार्थ की सघनता और विरलता के पृथक्-२ क्षेत्र बनकर उन भागों को अव्यवस्थित कर देंगे। इसके साथ ही आदित्य लोकों के सभी भागों से सभी प्रकार के परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ केन्द्रीय भागों में प्रवेश करने लगें, तब सम्पूर्ण आदित्य लोक एकरस अर्थात् एक समान हो जायेगा। इन दो कारणों से उपर्युक्त दोनों क्रियाएं साथ-२ नहीं होती अर्थात् दोनों ही प्रकार की छन्द रश्मियां साथ-२ उत्पन्न नहीं होती और इस कारण ही आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों की संरचना शेष भागों की अपेक्षा सर्वथा विशिष्ट होती है। इस कारण महर्षि दृढ़ता से कहते हैं कि देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल में ऐकाहिक छन्द रश्मियों के साथ किंवा उन रश्मियों में दूरोहण क्रिया की प्रतिष्ठारूप छन्द रश्मि उत्पन्न नहीं होती। इस कारण इन केन्द्रीय भागों में पदार्थ के सघन और विरल पृथक्-२ क्षेत्र नहीं होते, बल्कि सम्पूर्ण पदार्थ समान अर्थात् एकरस ही रहता है, जबकि इन लोकों के अन्य भाग में पदार्थ के सघन-विरल क्षेत्र निरन्तर बनते और परिवर्तित होते रहते हैं।।

{स्तोत्रम् = क्षत्रं वै स्तोत्रम् (ष.१.४)} आदित्य लोकों के निर्माण की प्रक्रिया में क्षत्ररूप अर्थात् तीक्ष्ण छन्द रश्मियों से युक्त अवस्था आत्मारूप होती है। इसका तात्पर्य यह है कि यह अवस्था उन आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग का शरीररूप होती है और इनमें उत्पन्न वालखिल्य छन्द रश्मियां प्राणरूप होकर उन्हें निरन्तर बल प्रदान करती रहती हैं। ये ही छन्द रश्मियां उन सभी तीक्ष्ण छन्द रश्मियों को परस्पर संगत करती हैं, जिससे सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग दृढ़ता से बंधा रहता है। यदि उस स्थिति में पूर्वोक्त ऐकाहिक परिधानीय रश्मियों में उपर्युक्त दूरोहण की क्रिया होवे, तब संगत होती हुई विविध छन्द रश्मियां प्राणरूप वालखिल्य छन्द रश्मियों से पृथक् हो जाती हैं, मानो केन्द्रीय भाग में होने वाली सभी संगमन आदि क्रियाएं तत्काल प्राण विहीन हो जाती हैं। इस कण्डिका में शाप और सम्वाद जैसी भाषा का प्रयोग लेखक की सर्वविदित शैली का भाग है, इस कण्डिका का इतना ही आशय पर्याप्त है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि "एताभ्यां देवताभ्याम्" पदों से यही संकेत मिलता है कि प्रतिष्ठारूप दूरोहण प्रक्रिया की छन्द रश्मि, जो इन्द्र-देवताक होती है, उसी के द्वारा यहाँ दूरोहण करने से विभिन्न संगमन आदि क्रियाओं के नष्ट होने की ओर संकेत है। इसलिए उपर्युक्त दोनों क्रियाएं साथ-२ नहीं होती हैं।।

यहाँ महर्षि कहते हैं कि यदि यह विचार किया जाये कि प्राणरूप वालखिल्य छन्द रश्मियां सब ओर व्याप्त और प्रकाशित हो जाएं, उस समय हन्त अर्थात् आकस्मिक हलचल के रूप में दूरोहण प्रक्रिया के ठीक पूर्व पूर्वोक्त ऐकाहिक छन्द रश्मियां उत्पन्न और सक्रिय हो उठें, तो कोई हानि नहीं होगी और बिना हानि के ही दोनों ही प्रक्रियाएं साथ-२ चल सकती हैं। इसका प्रतिवाद करते हुए महर्षि लिखते हैं कि नहीं, किसी विद्वान् को ऐसा विचारना भी नहीं चाहिए क्योंकि ऐसा होने पर भी पूर्वोक्त दोष उपस्थित अवश्य होंगे।।

{दर्पः = (दृप्+घञ्, अच् वा, दृप संदीपने)} पूर्वोक्त प्रकार से ऐकाहिक और दूरोहण दोनों ही प्रकार की क्रियाओं के साथ-२ होने का निषेध दृढ़ता से करने के पश्चात् यहाँ महर्षि लिखते हैं कि यदि किसी आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में अत्यन्त सन्दीप्त अवस्था उत्पन्न हो जाए, तब उपर्युक्त दोनों प्रकार की निषिद्ध क्रियाएं एक साथ हो भी सकती हैं परन्तु ऐसा होने पर भी सैकड़ों-हजारों छन्द रश्मियों का अतिरिक्त मात्रा में उत्पन्न होना आवश्यक होता है। इनके प्रभाव से आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों

में दूरोहण क्रिया के उपरिवर्णित दोष उत्पन्न नहीं हो पाते। इसका कारण यह है कि वे कई सौ संख्या में उत्पन्न छन्द रश्मियां उन भागों में सक्रियता को इतना अधिक बढ़ा देती हैं कि दूरोहण क्रिया से बनने वाले पृथक्-२ केन्द्र कहीं भी दृढ़ता से कार्य करके पदार्थ को अपनी-२ ओर संघनित नहीं कर पाते हैं, जिससे वे वन सकने वाले केन्द्र अस्तित्व में ही नहीं आ पाते और सम्पूर्ण पदार्थ एकरसवत् बना रहता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार– कॉस्मिक मेघों से जब पदार्थ बिखरकर पुनः पृथक्-२ केन्द्रों में संघनित होकर विभिन्न लोकों का निर्माण करने लगता है, तब वे सभी केन्द्र अपने-२ बल के अनुसार पदार्थ को आकृष्ट करके विभिन्न लोकों का निर्माण करने लगते हैं। उस समय वे सभी केन्द्र पारस्परिक दूरी को सुव्यवस्थित करते हैं। इस क्रिया को सम्पन्न करने में विशेष प्रकार की छन्द रश्मियां उत्तरदायिनी होती हैं। यह क्रिया सभी कॉस्मिक मेघों के अन्दर होती है। जब वे लोक अपना आकार ग्रहण कर लेते हैं, तब ग्रह आदि लोक तो ठोस अवस्था का रूप प्राप्त कर लेते हैं, जबकि विभिन्न तारे गैस वा प्लाज्मा की अवस्था में स्वयं मेघरूप ही होते हैं। इनमें पदार्थ का अत्यन्त विशाल भण्डार होता है। इनके अन्दर भी वे रश्मियां कुछ मात्रा में उत्पन्न होती हैं, जिनके कारण कॉस्मिक मेघों में पदार्थ के नाना केन्द्र उत्पन्न व व्यवस्थित होते हैं। इन रश्मियों के सहयोग व सूक्ष्म प्रभाव से तारों के अन्दर विद्यमान पदार्थ सर्वत्र एकरस एवं स्थिर नहीं रहता, बल्कि इसमें अनेक पृथक्-२ क्षेत्र और उनके पृथक्-२ केन्द्र विद्यमान होते हैं। ये केन्द्र और क्षेत्र अपने स्थान पर सदैव स्थिर नहीं रहते, बल्कि निरन्तर उनका स्थान परिवर्तित होता रहता है। तारों के केन्द्रीय भाग, जिनमें नाभिकीय संलयन की क्रिया निरन्तर होती रहती है, उनमें इस प्रकार की छन्द रश्मियां विद्यमान वा उत्पन्न प्रायः नहीं होती, जिसके कारण उन भागों में विद्यमान पदार्थ लगभग एकरस होता है अर्थात् उसमें विरल और सघन क्षेत्र विद्यमान नहीं होते। यदि कभी तारों के केन्द्रीय भाग का ताप अति उच्च होवे, तो कभी-२ ये छन्द रश्मियां अन्य सैकड़ों, हजारों प्रकार की छन्द रश्मियों के साथ प्रकट भी हो सकती हैं किन्तु वैसी स्थिति में वे हजारों प्रकार की छन्द रश्मियां पदार्थ को इतना विक्षुब्ध करती हैं कि तारों के केन्द्रीय भाग में पृथक्-२ क्षेत्र और उनके केन्द्र उत्पन्न ही नहीं हो पाते, जिसके कारण वे केन्द्रीय भाग लगभग एकरसवत् ही बने रहते हैं।।

२. ऐन्द्र्यो वालखिल्यास्तासां द्वादशाक्षराणि पदानि; तत्र स काम उपाप्तो य ऐन्द्रे जागतेऽथेदमैन्द्रावरुणं सूक्तमैन्द्रावरुणी परिधानीया; तस्मान्न संशंसेत्।।
तदाहुर्यथा वाव स्तोत्रमेवं शस्त्रं; विहृता वालखिल्याः शस्यन्ते, विहृतास्तोत्राँ३, अविहृताँ३? इति।।
विहृतमिति ब्रूयादष्टाक्षरेण द्वादशाक्षरमिति।।
तदाहुर्यथा वाव शस्त्रमेवं याज्या; तिस्रो देवताः शस्यन्तेऽग्निरिन्द्रो वरुण इत्यथैन्द्रावरुण्या यजति, कथमग्निरनन्तरित इति।।
यो वा अग्निः स वरुणस्तदप्येतदृषिणोक्तं, त्वमग्ने वरुणो जायसे यदिति; तद्यदेवैन्द्रावरुण्या यजति तेनाग्निरनन्तरितोऽनन्तरितः।।१०।।

व्याख्यानम्– पूर्वोक्त वालखिल्य सूक्तों में अधिकांश सूक्त इन्द्र-देवताक होते हैं तथा उन सूक्तों में कुछ छन्द रश्मियां जगती होने के कारण बारह अक्षर वाले पदों से युक्त होती हैं। वस्तुतः यहाँ वालखिल्य सूक्त ऋ.८.५६ की ओर ही संकेत है, जिसका देवता इन्द्रावरुणौ तथा जगती छन्द की प्रधानता है। यह इन्द्रावरुणौ देवता इन्द्र देवता का भी प्रभाव दर्शाता है। इस कारण ये वालखिल्य सूक्तरूप रश्मिसमूह अपने दैवत और छान्दस प्रभाव के द्वारा दूरोहण क्रिया में समर्थ होते हैं। जैसा कि हम पूर्वखण्ड में लिख चुके हैं कि दूरोहण क्रिया के लिए इन्द्र-देवताक एवं जगती छन्दस्क छन्द रश्मियां समर्थ होती हैं। इस कारण यहाँ ग्रन्थकार यह कहना चाहते हैं कि इन वालखिल्य छन्द रश्मियों के साथ इन्द्रदेवताक ऐकाहिक किन्हीं अन्य छन्द रश्मियों की उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि इन्द्र-देवताक और जगती छन्दस्क छन्द रश्मियों

का कार्य ये वालखिल्य रश्मियां ही कर लेती हैं। यहाँ आचार्य सायण ने

चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्य१मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत।
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे।।१।। (ऋ.३.५१)

सूक्तरूप रश्मिसमूह के निषेध की चर्चा की है, जबकि ग्रन्थकार ने ऐसा कोई संकेत नहीं किया है और न ही सायण ने किसी आर्ष ग्रन्थ का प्रमाण प्रस्तुत किया है। इसी सूक्त के विषय में ६.१५.१ में भी मैत्रावरुण से इस सूक्त का सम्बन्ध जोड़ना भी अनावश्यक खींचतान है, ऐसा हमने वहाँ दर्शाया है। यही स्थिति यहाँ भी है। यहाँ ग्रन्थकार का मन्तव्य केवल यह है कि इन वालखिल्य सूक्त रश्मियों में आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग में अन्य किन्हीं ऐन्द्री एवं जागत छन्द रश्मियां साथ-२ उत्पन्न नहीं होतीं। यद्यपि हम जानते हैं कि तारों के केन्द्रीय भाग में अनेक प्रकार के सूक्तरूप रश्मिसमूह उत्पन्न होते हैं, तब यहाँ यह निषेध क्यों है? इस विषय में हमारा मत यह है कि यहाँ ऐसी ऐन्द्री और जागत छन्द रश्मियों का निषेध किया गया है, जो दूरोहण क्रिया को उत्पन्न करती हैं, जिनकी ओर ऊपरी कण्डिका में संकेत किया गया है। अब महर्षि बतलाते हैं कि इस उपर्युक्त ऋ.८.५६ वालखिल्य सूक्त रश्मियों की एक इन्द्रावरुणौ देवताक छन्द रश्मि परिधानीय के रूप में उत्पन्न अवश्य होती है और यह ऐकाहिक रूप होती है। आचार्य सायण ने यहाँ

आ वां राजानावध्वरे ववृत्यां हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः।
प्र वां घृताची बाह्वोर्दधाना परि त्मना विषुरूपा जिगाति।।१।। (ऋ.७.८४.१)

को परिधानीयरूप में माना है। इस छन्द रश्मि को खण्ड ६.८ में भी ऐकाहिक परिधानीय के रूप में उद्धृत किया है। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"आवां राजानाविति नित्यमैकाहिकम्।" (आश्व.श्री.८.२.१५)

इस प्रकार यह परिधानीय रश्मि इस वालखिल्य सूक्त के साथ उत्पन्न हो सकती है, अन्य उपर्युक्त रश्मि नहीं।।

यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार की शस्त्ररूप रश्मियां होती हैं, उसी प्रकार की स्तोत्ररूप रश्मियां होती हैं। इस बात को ग्रन्थकार ने अनेकत्र समझाया है। इस प्रकरण में इन विद्वानों का कथन यह है कि वालखिल्य नामक शस्त्ररूप रश्मियां, जो आदित्य लोकों में प्राणवत् कार्य करती हैं, अन्य क्षत्र संज्ञक विभिन्न स्तोत्र रश्मियों के समान ही होनी चाहिए। तब यहाँ प्रश्न यह उपस्थित किया गया है कि वालखिल्य रश्मियां खण्ड ६.२४ के अनुसार नाना प्रकार के विहृत रूप में उत्पन्न होती हैं, तब क्या इनकी स्तोत्ररूप छन्द रश्मियां भी विहृत रूप में उत्पन्न होती हैं वा नहीं अर्थात् उनमें भी विहरण होता है वा नहीं?।।

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि हाँ, स्तोत्र रश्मियां भी विहृत रूप में ही उत्पन्न होती हैं। यहाँ आचार्य सायण ने भाष्य करते हुए लिखा है-

"'अग्ने त्वं नो अन्तमः' इत्यादिषु द्विपदासु सामगाः स्तुवते। तत्र चाद्याः पादा अष्टाक्षराः द्वितीयाः पादा द्वादशाक्षरा। एवं तत्र च्छन्दो विहृतमित्युत्तरं ब्रूयात्।"

इस भाष्य में पाद टिप्पणी के रूप में निम्न उद्धरण दिया है-

'अग्ने त्वं नः'- इति द्वे, 'तं त्वा शोचिष्ठ'- इत्येको (ऋ.५.२४.१-२,४), 'एवं मलितो द्वैपदस्तृचः स्तोत्रियः' (साम.उ.४.१.२२)

इसका आशय यह है कि अग्निदेवताक निम्नलिखित त्रिपदा छन्द रश्मियां स्तोत्ररूप में विहृत होकर उत्पन्न होती हैं-

(१) अग्ने॒ त्वं नो॒ अन्त॑म उ॒त त्रा॒ता शि॒वो भ॑वा वरू॒थ्यः॑।

(२) वसु॑र॒ग्निर्वसु॑श्रवा॒ अच्छा॑ नक्षि द्यु॒मत्त॑मं र॒यिं दाः॑।

(३) तं त्वा॑ शोचिष्ठ दीदिवः सु॒म्नाय॑ नू॒नमी॑महे॒ सखि॑भ्यः। (ऋ.५.२४.१-२,४)

ये तीनों ऋचाएं चार ऋषियों से उत्पन्न होती हैं। ये हैं- गौपायना लौपायना वा बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च। {लोपः = (लुप्लृ छेदने)} अर्थात् संयोगादि प्रक्रियाओं में सबकी रक्षिका तथा वियोग वा प्रलय प्रक्रिया में सबको तोड़ने वाली सूत्रात्मा वायु रश्मियों से उत्पन्न विविध बलों से युक्त चार विशिष्ट प्रकार की सूक्ष्म प्राण रश्मियां। इनका प्रभाव निम्नक्रमानुसार होता है-

(१) इसका छन्द साम्नी बृहती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव से यह रश्मि विभिन्न पदार्थों को खण्ड-२ करती हुई समुचित संयोगों के द्वारा नवीन पदार्थों को उत्पन्न करने में सहायक होती है। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के साथ अति निकटता से संगत होकर {वरूथम् = गृहनाम (निघं.३.४)} आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों में उन्हें समुचित रक्षक बल प्रदान करता है।

(२) इसका छन्द भुरिक् साम्नी बृहती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किञ्चित् तीक्ष्ण होता है। अन्य प्रभाव से अग्नि तत्त्व विभिन्न वसुरूप गायत्री छन्द रश्मियों से संयोजक बल प्राप्त करता हुआ देदीप्यमान छन्दादि रश्मियों के द्वारा अच्छी प्रकार से व्याप्त होता है।

(३) इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ अत्यन्त तीव्र तप्त व दीप्त अग्नि तत्त्व से समृद्ध होने लगते हैं।

यहाँ महर्षि ने इन ऋचाओं को कुल बीस-२ अक्षर की माना है। बीस अक्षर वाली ऋचा का छन्द पंक्ति होता है। उधर महर्षि ने इन्हीं ऋचाओं के यहाँ ग्रहण का कोई संकेत भी नहीं किया है पुनरपि आचार्य सायण ने ताण्ड्य महाब्राह्मण १३.१२.४,५ के प्रमाणानुसार इन ऋचाओं का ग्रहण किया है। इस कारण इसका ग्रहण प्रामाणिक ही है। इनमें अक्षरों की संख्या क्रमशः १८, १६ व १६ है। तब बीस अक्षर कैसे माने जायें, यह कठिनाई अवश्य है। हम यहाँ विशेष परिस्थिति में ग्रन्थकार के मत को भी साधु स्वीकार करके तदनुकूल विहरण व्यवस्था को दर्शाते हैं। जहाँ तक पंक्ति छन्द मानने का प्रश्न है, उस विषय में हमारा मत है कि ऐसा मानने पर इनका छान्दस प्रभाव संयोजक ही होगा, जो कि बृहती का भी है। यहाँ विहरण प्रक्रिया निम्नानुसार होगी -

(१) अग्ने त्वं नो अन्तमः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः।
(२) तं त्वा शोचिष्ट दीदिवः उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः।
(३) वसुरग्निर्वसुश्रवाः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः।
(४) तं त्वा शोचिष्ठ दीदिव अच्छा नक्षि द्युमत्तं रयि दाः।

इसी प्रसंग में कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि जब सर्वत्र यह सत्य है कि जैसी शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है, वैसी ही उसकी याज्या संज्ञक छन्द रश्मि भी होती है। यहाँ ऋषि कहते हैं कि विभिन्न शस्त्ररूप रश्मियां अग्नि, इन्द्र और वरुण देवता वाली होती हैं। ध्यातव्य है कि वालखिल्यरूप शस्त्र रश्मियां इन्द्र तथा वरुण देवता वाली होती हैं, जबकि मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी और अच्छावाक शस्त्र रश्मियों में मित्र और अग्नि देवता की भी विद्यमानता होती है। यहाँ ऋषि ने अग्नि, इन्द्र और वरुण का ही ग्रहण किया है, तब यहाँ प्रश्न यह उपस्थित करते हैं कि

आ वां॒ राजा॑नावध्व॒रे व॑वृत्यां ह॒व्येभि॑रिन्द्रावरुणा॒ नमो॑भिः।
प्र वां॑ घृ॒ताची॑ बा॒ह्वोर्दधा॑ना॒ परि॒ त्मना॒ विषु॑रूपा जिगाति॥१॥ (ऋ.७.८४.१)

जो एकाहिक परिधानीय, जिसे भी एक प्रकार से याज्या ही कह सकते हैं, वह इन्द्रावरुणौ-देवताक है। तब यहाँ अग्नि को क्यों छोड़ दिया गया है? जबकि यहाँ भी तीनों देवताओं की विद्यमानता होनी चाहिए, तभी शस्त्र और याज्या समान देवता वाले होंगे। उधर याज्या संज्ञक

इन्द्रा॑वरुणा॒ मधु॑मत्तमस्य॒ वृष्णः॒ सोम॑स्य वृषणा॒ वृषे॑थाम्।

इदं वा॑मन्धः॒ परि॑षिक्तम॒स्मे आ॒सद्या॒स्मिन्ब॒र्हिषि॑ मादयेथाम्॥११॥ (ऋ.६.६८.११)

जिसके विषय में खण्ड ६.२५ द्रष्टव्य है, इन्द्रावरुणौ-देवताक है, तब यहाँ भी क्यों अग्नि को छोड़ दिया गया है?॥+॥

इसका उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि जो अग्नि है, वह वरुण भी है अर्थात् अग्नि वरुण का भी प्रभाव दिखलाता है, जैसा कि वसुश्रुत आत्रेय ऋषि से उत्पन्न

त्वम॑ग्ने॒ वरु॑णो॒ जाय॑से॒ यत्त्वं मि॒त्रो भ॑वसि॒ यत्समि॑द्धः।
त्वे विश्वे॑ सहसस्पुत्र दे॒वास्त्वमिन्द्रो॑ दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य॥१॥ (ऋ.५.३.१)

में अग्नि को वरुण भी कहा है। अन्यत्र भी कहा गया है-

"अथ यत्रैतत् प्रदीप्ततरो भवति तर्हि हैष (अग्निः) भवति वरुणः।" (श.२.३.२.१०)
"स यदग्निर्घोरसंस्पर्शस्तदस्य वारुणं रूपम्" (ऐ.३.४)
"वरुण्यो वाऽएष योऽग्निना शृतोऽथैष मित्रो य ऊष्मणा शृतः" (श.५.३.२.८)

यहाँ अग्नि और वरुण का एकत्व बतलाने के साथ-२ ऊष्मा, जो कि अग्नि का ही रूप है, से मित्र का भी सम्बन्ध दर्शाया गया है। इस कारण शस्त्ररूप रश्मियों के उपर्युक्त त्रिदेवताक होने पर भी इन्द्रावरुणौ-देवताक रश्मि से यजन करने पर भी अग्नि तत्त्व में न्यूनता नहीं आती है। इस कारण अग्नि तत्त्व का छूट जाना मानना उचित नहीं है। वस्तुतः जब अग्नि तत्त्व अति प्रदीप्त होता है, तब वही वरुण संज्ञक भी होता है और उसी समय अग्नि का अत्यन्त घोर स्पर्श गुण भी होता है॥

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्रीय भाग में साथ ही सम्पूर्ण तारे में दो प्रकार की छन्द रश्मियां विशेष होती हैं। एक प्रकार की छन्द रश्मियां सृष्टि की नाना प्रकार की क्रियाओं को संचालित करने में निरन्तर सक्रिय रहती हैं। वे तीक्ष्ण बलों के द्वारा विभिन्न पदार्थों का छेदन-भेदन करती रहती हैं, तो दूसरी प्रकार की छन्द रश्मियां उनकी प्रेरक बनकर निरन्तर उन्हें बल प्रदान करती हैं। उधर सम्पूर्ण सृष्टि में भी न्यूनाधिक यही क्रिया होती है। इसके साथ ही इस सृष्टि में दो प्रकार के पदार्थ विशेषरूप से विद्यमान होते हैं, वे हैं- द्रव्य और ऊर्जा वा कण और क्वाण्टाज्। इनमें से कण विभिन्न लोकों के निर्माण का प्रमुख अंग होते हैं और क्वाण्टाज् उनको सतत प्रेरित करते और बल प्रदान करते हैं। इस प्रकार एक वह पदार्थ है, जो प्रेरक का कार्य करता है और दूसरा पदार्थ वह है, जो प्रेरित होता है। इन दोनों की ही सृष्टि में अनिवार्य और पृथक्-२ भूमिका है। प्रेरक और प्रेरित दोनों ही समान स्तर के गुण, कर्म, स्वभाव होने पर ही एक-दूसरे से संयुक्त होते वा सम्बन्ध रखते हैं, अन्यथा नहीं। ऊष्मारूपी ऊर्जा सदैव ही कणों को परस्पर पृथक्-२ करने का कार्य करती है परन्तु यही ऊष्मारूपी ऊर्जा जब अत्यन्त उच्च स्तर को प्राप्त कर लेती है, तो यह अत्यन्त प्रबल बन्धक बलों को उत्पन्न करती है। इसका ऐसा रूप ही तारों के केन्द्रीय भाग में नाभिकीय संलयन की क्रियाओं को सम्पन्न करता है। यदि तारों में उच्च ताप की अवस्था विद्यमान न हो, तो नाभिकीय संलयन की क्रिया का होना सम्भव ही नहीं है। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें॥

ॐ इति २९.१० समाप्तः ॐ

ॐ इति एकोनत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ॐ

त्रिंशोऽध्यायः

ऊर्ध्वा
अग्नि की ऊंची-२ ज्वालायें,
विभिन्न प्रकार के विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र

सौमी
विभिन्न प्रकार के पदार्थ (आयनों के रूप में)

यामी
अग्नि और वायु का सम्मिश्रण

ऐन्द्री (केन्द्रीय भाग)
तीव्र ऊर्जा की विद्युत् चुम्बकीय तरंगें
एवं विद्युदावेशित तरंगें,
सर्वाधिक प्रबल विद्युत् चुम्बकीय बल

वारुणी
ऊष्मा की अति उच्च

।। ओ३म् ।।
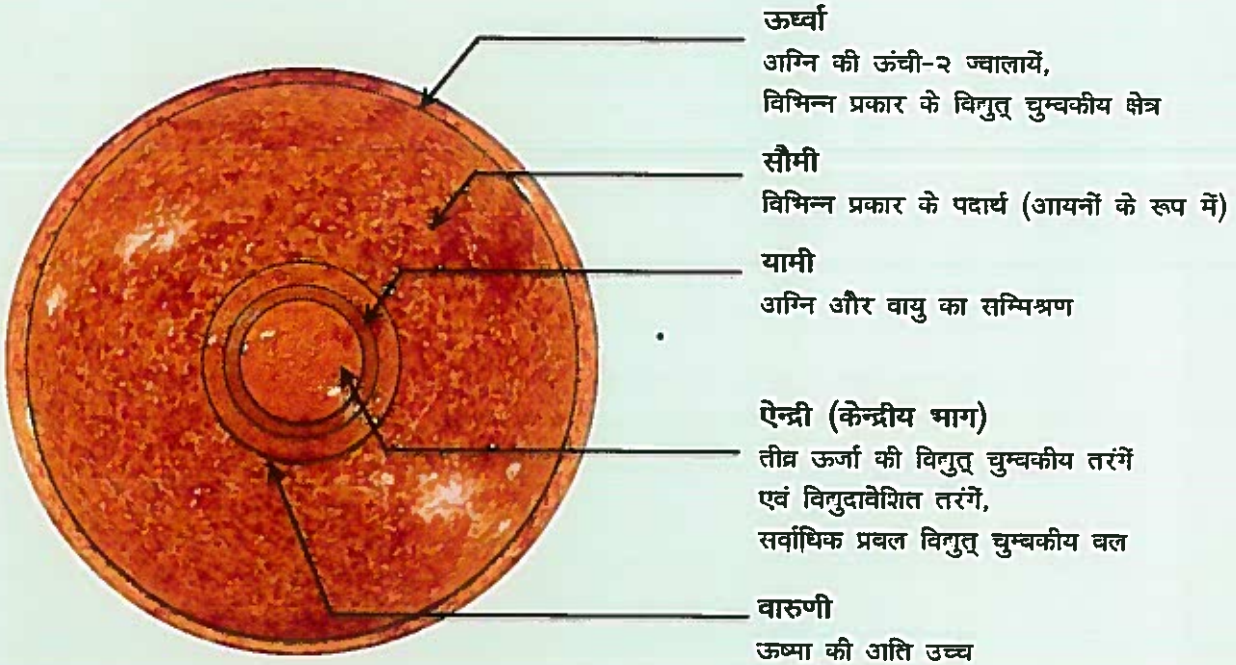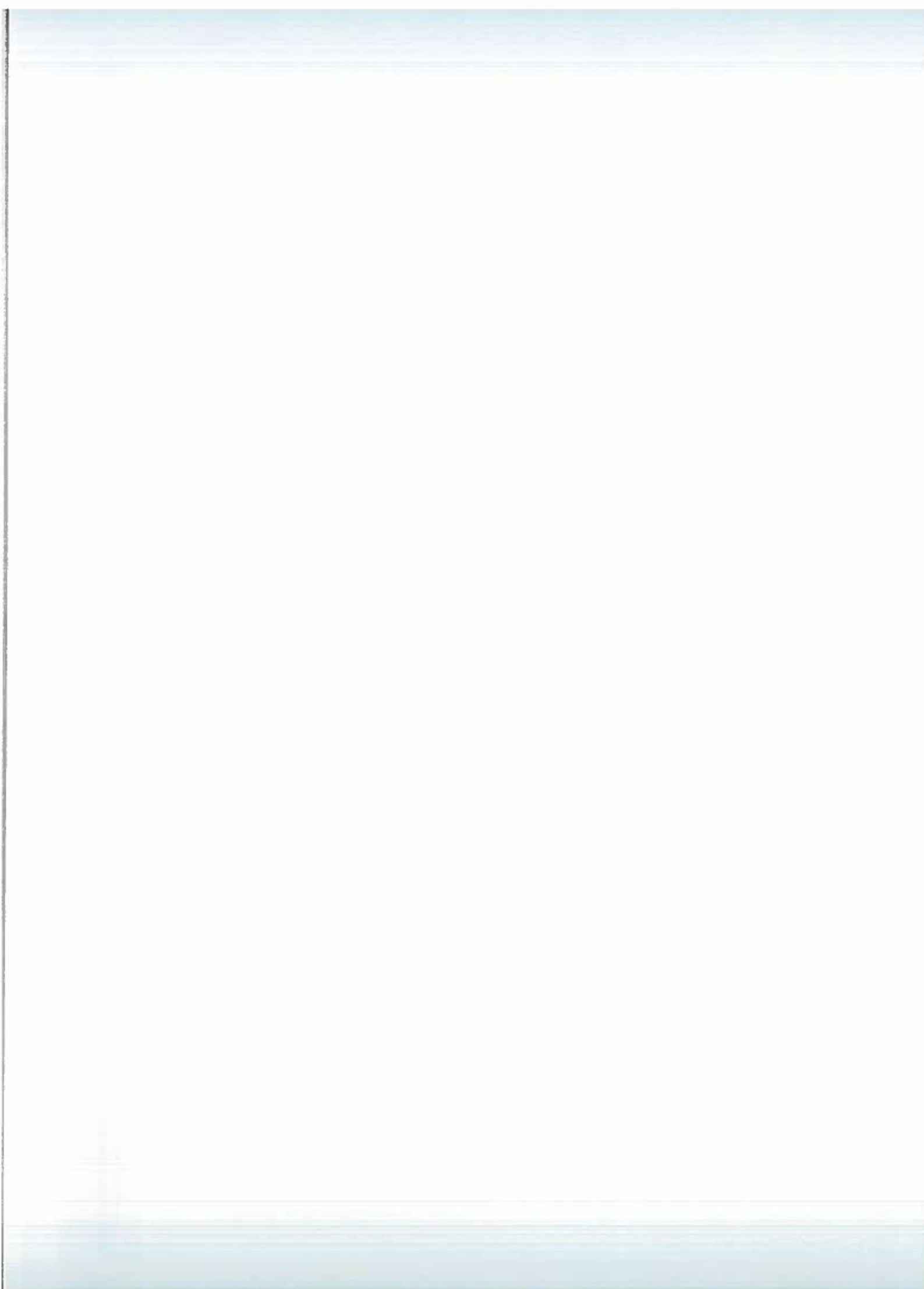
ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव।।

अनुक्रमणिका

३०.१ शिल्प, देवशिल्प। तारों का विज्ञान। नाभानेदिष्ठ। तारों के केन्द्रीय भाग का विज्ञान। मन और वाक् से सक्रिय मन की उत्पत्ति। कण और क्वाण्टाज् की उत्पत्ति। 1905

३०.२ वालखिल्य। तारों के केन्द्रीय भागों का विज्ञान, उनमें विभिन्न छन्द रश्मियों का गुंथन। मैत्रावरुण-ब्राह्मणाच्छंसी, वालखिल्य। तारों के केन्द्रों का विज्ञान। 1911

३०.३ वृषाकपि। लोम, त्वक्, मांस, अस्थि, मज्जा, ब्राह्मणाच्छंसी। तारों के केन्द्रीय भाग का विज्ञान, तारों के कुल ५ भाग। 1916

३०.४ एवयामरुत्। तारों के केन्द्रीय भाग का विज्ञान। तारों की मृत्यु। बुलिल, आश्वतर, शिल्प, गौश्ल, विष्णु, रुद्र। तारों की उत्पत्ति क्रिया की विकृतियां एवं तारों की तेजोहीनता। पुनः तारे की सक्रियता। 1919

३०.५ विश्वजित्, अतिरात्र, षष्ठ अहन्, नाभानेदिष्ठ, वालखिल्य, मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी, वृषाकपि। तारों की उत्पत्ति में कुछ छन्द रश्मियों की उत्पत्ति का क्रम एवं तारे का क्रमिक विकास। 1927

३०.६ रैभी, परिक्षित, कारु। छन्द रश्मियों के अवयवों का अन्तरिक्ष में रिसना। तारों में सभी विक्षोभ और अनिष्ट कम्पन। कुन्ताप सूक्त। इस अनिष्ट कम्पन रूप विकृति का निवारण और उसका विज्ञान।
दिशाँक्लृप्ति। तारों के पांच भाग। जनकल्पा। इन्द्रगाथा। तारों की विकृति का निवारण। 1929

३०.७ ऐतशप्रलाप। तारों की विकृति का निवारण, डार्क एनर्जी के तीन भाग व तीन दिशाऐं, उनका नियंत्रण। तारों के कृष्ण और श्वेत भाग। डार्क एनर्जी संघर्ष का विज्ञान। ऐतशमुनि। तारों के अन्दर एक अनिष्ट घटना, डार्क मैटर और डार्क एनर्जी की उत्पत्ति, अनिष्ट क्रियाओं का निवारण। प्रवह्लिका, आजिज्ञासेन्या, प्रतिराध, अतिवाद। तारों की विकृति को दूर करने का विज्ञान। 1942

३०.८ देवनीथ आदित्य एवं आङ्गिरस लोक। तारों की उत्पत्ति का विज्ञान। 1955

विभिन्न कणों के संयोग और वियोग का विज्ञान।

३०.६ आदित्य, आङ्गिरस, पृथिवी। तारों व ग्रहों की उत्पत्ति का विज्ञान एवं उनके परिक्रमण का क्रमिक विकास। 1960

३०.१० भूतेच्छद, आहनस्या। तारों का विज्ञान, दाधिक्री। तारों की संरचना एवं कक्षाओं का विज्ञान। 1966

अथ 30.१ प्रारभ्यते

**** तमसो मा ज्योतिर्गमय ****

१. शिल्पानि शंसन्ति।।
देवशिल्पान्येतेषां वै शिल्पानामनुकृतीह शिल्पमधिगम्यते,-हस्ती कंसो वासो हिरण्यमश्वतरीरथः शिल्पम्।।
शिल्पं हास्मिन्नधिगम्यते य एवं वेद।।
यदेव शिल्पानी३ँ।।
आत्मसंस्कृतिर्वाव शिल्पानि छन्दोमयं वा एतैर्यजमान आत्मानं संस्कुरुते।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं {शिल्पम् = यत् शीलति समादधाति तत् (उ.को.३.२८), रूपनाम (निघं.३.७), कर्मनाम (निघं.२.१)} कि षष्ठ अहन् के तृतीयसवन अर्थात् आदित्य लोकों विशेषकर उनके केन्द्रीय भागों के अन्दर नाना प्रकार की शिल्पसंज्ञक छन्दरश्मियां उत्पन्न होती हैं। सायणभाष्य में वालखिल्य सूक्तरूप रश्मि समूह की नाना प्रकार के विहरण के रूप में उत्पन्न छन्द रश्मियों को ही शिल्प कहा गया है। इस विहरण की व्यवस्था ६.२४.२ में दर्शायी गयी है। यह विहरण भी वालखिल्य सूक्तों में से केवल ८ सूक्तों का ही होता है। इन रश्मियों के कारण आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों में नाना रूप वाली क्रियाएं उत्पन्न होती हैं। ये शिल्पसंज्ञक छन्दरश्मियां विभिन्न पदार्थों को अच्छी प्रकार एकत्रित और संयुक्त करने में सक्षम होती हैं। अगली कण्डिका के भाष्य में आचार्य सायण ने नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण द्वारा उत्पन्न सूक्तरूप छन्द रश्मिसमूह को भी शिल्प कहा है। {कंसः = कामयते परपदार्थानिति (उ.को.३.६२)। अश्वतरः = ये दह्यमानादसृज्यन्त तेऽश्वतराश्च कृष्णाश्च (जै.ब्रा.३.२६३)} उपर्युक्त शिल्पसंज्ञक छन्दरश्मियां आदित्य लोकों के अन्दर कैसे काम करती हैं, यह बतलाते हुए महर्षि लिखते हैं कि वे छन्दरश्मियां देवों अर्थात् मन, सूक्ष्म वाक् तत्त्व एवं प्राथमिक प्राणादि रश्मियों की नाना प्रकार की क्रियाओं और उन क्रियाओं के विविध रूपों का अनुकरण करती हुई 'इह' अर्थात् यहाँ (आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग में) व्याप्त होती हैं और वहाँ नाना प्रकार की सृजन और संलयन क्रियाओं को सम्पादित करने में तत्पर रहती हैं। इनके द्वारा नाना प्रकार के पदार्थों की उत्पत्ति भी होती है, वे पदार्थ निम्न प्रकार हैं-

(१) हस्ती - ऐसी किरणें, जो तेजस्विनी होने के साथ-२ आकर्षण और धारक बलों से युक्त होती हैं। ये रश्मियां सूक्ष्म परमाणु आदि पदार्थों को आकर्षित और धारण करती हैं।

(२) कंस - ये रश्मियां अपनी प्रधानता वाले क्षेत्र में दूरस्थ परमाणु आदि पदार्थों को निरन्तर आकृष्ट करके केन्द्रीय भागों में पदार्थ की मात्रा को बढ़ाती रहती हैं।

(३) वास - ऐसी रश्मियां, जो केन्द्रीय भागों में आये हुए सभी पदार्थों को आच्छादित करके उन्हें कंस संज्ञक पदार्थ के क्षेत्र में ही संकुचित रखती हैं।

(४) हिरण्यम् - ऐसी तेजोमयी रश्मियां स्वयं उस क्षेत्र में फैलती हुई सबको आकर्षित व नियंत्रित किये हुए रहती हैं।

(५) अश्वतरीरथः - दहकते हुए परमाणुओं को वहन करने वाली धनंजय आदि छन्द रश्मियां, इनके विषय में ४.६.१ की प्रथम कण्डिका द्रष्टव्य है।

इस प्रकार ये पांच प्रकार की रश्मियां आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग में निरन्तर उत्पन्न होती रहती हैं, जिससे उन भागों में अनेक प्रकार की क्रियाएं सम्पन्न होती हैं। ये क्रियाएं किंवा उपर्युक्त पांच रश्मियां उन केन्द्रीय भागों में विद्यमान पदार्थ को एवं उनकी सभी प्रकार की क्रियाओं और बलों को सम्पादित करती हैं। इस प्रकार इन भागों में जिन भी क्रियाओं एवं विभिन्न रूपों की उत्पत्ति होती है,

उन सबमें उपर्युक्त शिल्प संज्ञक छन्द रश्मि समूहों की स्पष्ट एवं महत्वपूर्ण भूमिका होती है। नाना प्रकार के तेज और बल भी इन्हीं छन्द रश्मियों के कारण समृद्ध होते हैं। यहाँ "शिल्पानि३ँ" में सानुनासिक प्लुत के प्रयोग को आचार्य सायण ने शिल्प संज्ञक छन्द रश्मियों की महत्ता का प्रतीक माना है। वस्तुतः आचार्य सायण ने अपने आधियाज्ञिक भाष्य में नाभानेदिष्ठ और बालखिल्य ऋषियों द्वारा दृष्ट सूक्तों के पाठ की महत्ता बतलायी है, उसी का ग्रहण करके हमने अपनी शैली में रश्मियों की महत्ता को प्रकट किया है।।+।।+।।+।।

ये उपर्युक्त शिल्प संज्ञक छन्द रश्मियां आत्मसंस्कृतिरूप होती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि वे आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग किंवा सम्पूर्ण भागरूपी शरीर में निरन्तर विचरती हुई सम्पूर्ण पदार्थ को सम्यग् रूप से धारण किये रहती हैं, साथ ही उनमें नाना प्रकार की क्रियाओं को निरन्तर उत्पन्न करती रहती हैं। इन्हीं के कारण सम्पूर्ण यजमानरूपी संवत्सर, विभिन्न प्रकार के छन्द अर्थात् बल, प्रकाश आदि को धारण करता हुआ एवं इन रश्मियों के द्वारा ही सम्पूर्ण पदार्थ को आच्छादित करके स्वयं को समृद्ध करता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों में, विशेषकर उनके केन्द्रीय भागों में मन, **'ओम्'** छन्द रश्मि एवं प्राथमिक प्राण रश्मियों का अनुकरण करती हुई विभिन्न छन्द रश्मियां, विशेषकर व्याख्यान भाग में वर्णित छन्द रश्मियां नाना प्रकार के बलों को उत्पन्न करती हैं। इनके कारण तारों के केन्द्रों में अनेक प्रकार की तरंगें उत्पन्न होती हैं। विद्युत् चुम्बकीय तरंगें, विभिन्न विद्युदावेशित तरंगें तथा प्रबल गुरुत्वीय बल की तरंगें उत्पन्न होने के साथ-२ प्रबल नाभिकीय बलों तथा अत्यन्त उच्च ताप और दाब की स्थिति उत्पन्न होकर तारों के केन्द्रीय भाग अत्यन्त सक्रिय और विशिष्ट होते हैं। इन भागों में उत्पन्न अनेक प्रकार की छन्द रश्मियां अन्य भागों की अपेक्षा अधिक तीक्ष्ण बलों से युक्त होती हैं। कुछ छन्द रश्मियां सम्पूर्ण तारे में सतत विचरण करती हुई विभिन्न कणों और विकिरणों को निरन्तर ऊर्जा एवं बल प्रदान करती रहती हैं।।

२. नाभानेदिष्ठं शंसति।।
रेतो वै नाभानेदिष्ठो रेतस्तत्सिञ्चति।।
तमनिरुक्तं शंसत्यनिरुक्तं वै रेतो गुहायोन्यां सिच्यते।।
स रेतो मिश्रो भवति; क्ष्मया रेतः संजग्मानो निषिञ्चदिति रेतःसमृद्ध्या एव।।

व्याख्यानम्- उस समय उन आदित्य लोकों में होता रूप ऋत्विज् अर्थात् मन और वाक् के मिथुन की प्रेरणा से नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण द्वारा

इदमित्था रौद्रं गूर्तवचा ब्रह्म क्रत्वा शच्यामन्तराजौ।
क्राणा यदस्य पितरा मंहनेष्ठाः पर्षत्पक्थे अहन्ना सप्त होतॄन्।।१।। (ऋ.१०.६१)

सूक्त की उत्पत्ति होती है। इसमें कुल २७ ऋचाएं हैं। इनके विषय में ५.१३.८ द्रष्टव्य है। ये छन्द रश्मियां आदित्य केन्द्रों में वीर्यरूप होकर सर्वत्र सूक्ष्मरूप में व्याप्त हो जाती हैं, जिसके कारण पूर्वोक्त सभी छन्दादि रश्मियां और परमाणु आदि पदार्थ नाना प्रकार से बलयुक्त होकर विशेष सक्रिय हो उठते हैं। इसी कारण नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राणों से उत्पन्न छन्द रश्मियों के विषय में ग्रन्थकार ने ५.१५.२ में कहा है-

"यदि नाभानेदिष्ठं, रेतोऽस्यान्तरियाद्....... नाभानेदिष्ठनैव रेतोऽसिञ्चत्। इस प्रकार ये छन्द रश्मियां आदित्य लोकों को प्रचण्ड तेज और बल प्रदान करके नाना प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करने में विशेष सहयोग करती हैं।।+।।

ये उपर्युक्त सभी २७ छन्द रश्मियां विश्वेदेवादेवताक होती हैं, इससे यह सिद्ध होता है कि उनका कोई निश्चित और स्पष्ट देवता नहीं होता। इसके साथ ही ये छन्द रश्मियां नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण से सर्वथा सहजतया अव्यक्त रूप से उत्पन्न होती हैं और सम्पूर्ण पदार्थ में अपरिमितरूप से व्याप्त हो जाती हैं अर्थात् पदार्थ का कोई भी भाग इनसे वंचित नहीं रहता। इसी प्रकार सूक्ष्म प्राण रश्मियां भी वीर्यरूप होकर आदित्य लोकों में विद्यमान नाना प्रकार के पदार्थों की उत्पत्ति के कारणरूप केन्द्रीय भागों और गुहारूप आकाश तत्त्व में निरन्तर अव्यक्त और अपरिमित भाव से सिंचित वा प्रवाहित होती रहती हैं।।

वे वीर्यरूप प्राणादि रश्मियां वीर्यरूप उपर्युक्त छन्द रश्मियों में अच्छी प्रकार मिश्रित होकर उन्हें विशेष सृजनधर्मिणी बनाती हैं। इस उपर्युक्त सूक्त की सातवीं ऋचा के द्वितीय पाद "क्ष्मया रेतः संजग्मानो निषिञ्चत्" के प्रभाव से इन रश्मियों का सम्मिश्रण आदित्य लोकों में विद्यमान विभिन्न पार्थिव परमाणुओं के साथ अच्छी प्रकार व्याप्त वा संयुक्त होकर उन्हें अपने तेज एवं बल से सिञ्चित करता रहता है। इसी पाद के द्वारा समृद्ध ये उपर्युक्त नाभानेदिष्ठ ऋषि से उत्पन्न सभी छन्द रश्मियां सम्पूर्ण आदित्य लोक को तेज व बल से सम्पन्न करते हुए विविध सृजनधर्मों की दृष्टि से समृद्ध करती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न तारों में २७ विभिन्न त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों का समूह उत्पन्न होता है। तारों के अन्दर विद्यमान पदार्थ की ऊर्जा में भारी वृद्धि होती है। सभी प्राथमिक प्राण रश्मियां भी विशेष सक्रिय होती हैं। गुरुत्व एवं नाभिकीय बलों में भारी वृद्धि होकर संलयन की क्रिया तीव्र होती है। ये प्राण रश्मियां इस संलयन को नियन्त्रित करने में भी सहयोग करती हैं। तारों का वर्ण अरुण हो जाता है। उनमें विद्यमान विभिन्न कण अति सक्रिय होकर यत्र-तत्र तीव्र गति से विचरण करते हैं। डार्क एनर्जी का प्रभाव क्षीण-प्रायः हो जाता है। तारों में गम्भीर घोष निरन्तर उत्पन्न होते रहते हैं। केन्द्रीय भाग में नाना प्रकार के कणों की निरन्तर उत्पत्ति होती रहती है। विभिन्न तारे निरन्तर कम्पन करते हुए सतत गतिशील होते हैं। व्यान रश्मियों के द्वारा विभिन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगें डार्क एनर्जी के प्रक्षेपक प्रभावों से निरन्तर सुरक्षित रहती हैं। इन छन्द रश्मियों के कारण संलयनीय कणों को केन्द्रीय भागों में उचित व निर्भ्रान्त मार्ग व गतियां उपलब्ध होती हैं। ये छन्द रश्मियाँ तथा प्राथमिक प्राण रश्मियां वीर्यरूप होकर एवं परस्पर साथ मिश्रित होकर सम्पूर्ण पदार्थ में व्याप्त हो जाती हैं। इससे तारों के अन्दर होने वाली सभी क्रियाएं एवं उनको उत्पन्न करने वाले सभी कण व विकिरण आदि पदार्थ विशेष सक्रिय होते हैं। ये मिश्रित रश्मियां तारों में अव्यक्त भाव से सम्पूर्ण पदार्थ को निरन्तर प्रेरित करती रहती हैं।।

३. तं सनाराशंसं शंसति; प्रजा वै नरो वाक्शंसः, प्रजास्वेव तद्वाचं दधाति; तस्मादिमाः प्रजा वदत्यो जायन्ते।।
तं हैके पुरस्ताच्छंसन्ति, पुरस्तादायतना वागिति वदन्तः।।
उपरिष्टादेक उपरिष्टादायतना वागिति वदन्तः।।
मध्य एव शंसेन्मध्यायतना वा इयं वाक्।।
उपरिष्टान्नेदीयसीवोपरिष्टान्नेदीयसीव वा इयं वाक्।।
तं होता रेतोभूतं सिक्त्वा मैत्रावरुणाय संप्रयच्छत्येतस्य त्वं प्राणान् कल्पयेति।।१।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रकरण को आगे बढ़ाते हुए महर्षि लिखते हैं कि नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण से उत्पन्न सूक्तरूप रश्मिसमूह, जिसे नाभानेदिष्ठ सूक्त भी कहते हैं, की उत्पत्ति नाराशंस सूक्तरूप रश्मिसमूह के साथ होती है। आचार्य सायण ने नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण से ही उत्पन्न

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश।
तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः।।१।।

इत्यादि (ऋ.१०.६२) सूक्त को ही नाराशंस सूक्त कहा है, जबकि इस सूक्त का देवता नाराशंस नहीं हैं। इतना अवश्य है कि इसकी ११ में से प्रथम ६ ऋचाओं का देवता आङ्गिरस है तथा प्रथम ६ ऋचाओं में से प्रत्येक ऋचा में 'आङ्गिरस' शब्द विद्यमान है। 'आङ्गिरस' शब्द विभिन्न प्राण रश्मियों का वाचक है। हमारी दृष्टि में सूत्रात्मा सहित विभिन्न प्राण रश्मियां विभिन्न सूक्ष्म पदार्थों का वहन करने से 'नर' कहलाती है। इधर इस सूक्त की प्रथम ६ ऋचाओं का देवता आङ्गिरस के साथ-२ विश्वेदेवा भी है तथा सातवीं ऋचा का देवता भी विश्वेदेवा है। उधर, 'नरः' पद के विषय में ऋषियों का कथन है-

"नरो वै देवानां ग्रामः" (तां.६.९.२)

"अश्वनाम" (निघं.१.१४)

इसका तात्पर्य यह हुआ कि विश्वेदेवा भी नरः का वाचक है। इस प्रकार इस सूक्तरूप रश्मिसमूह के द्वारा विभिन्न 'नर' नामक प्राणादि पदार्थ एवं सभी देव पदार्थ प्रकृष्टरूप से प्रकाशित वा सक्रिय होते हैं। उधर, महर्षि यास्क का कथन है-

"येन नराः प्रशस्यन्ते स नाराशंसो मन्त्रैः" (नि.९.९)

इस कारण ही विश्वेदेवा अथवा आङ्गिरस देवता की प्रधानता के कारण इस सूक्त को नाराशंस कहा गया है। यद्यपि इससे पूर्व सूक्त को यहाँ उसके कारणरूप पदार्थ नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण के नाम पर नाभानेदिष्ठ कहा गया है, जबकि इस सूक्त को उसके देवता के आधार पर नाराशंस कहा है। महर्षि यास्क ने नराशंस के विषय में लिखा है-

नराशंसो यज्ञ इति कात्थक्यः। नरा अस्मिन्नासीनाः शंसन्ति।

अग्निरितिशाकपूणिः। नरैः प्रशस्यो भवति। (नि.८.६)

इससे यह संकेत मिलता है कि इस ऋ.१०.६२ सूक्तरूप रश्मिसमूह की छन्दरश्मियां प्राथमिक रश्मियों के द्वारा विशेषरूप से प्रकाशित होती हुई संयोगादि प्रक्रिया को तीव्र बनाती हैं। इस कारण इसे यहाँ नाराशंस सूक्त कहा गया है। इस सूक्त के विषय में भी ५.१३.८ की अन्तिम कण्डिका द्रष्टव्य है। "नाराशंसः" पद के विषय में अन्य ऋषियों के मन्तव्य पर विचार करने के पश्चात् अब हम ग्रन्थकार के अभिमत पर विचार करते हैं। यहाँ ग्रन्थकार ने प्रजा अर्थात् समस्त उत्पन्न परमाणु एवं प्राणादि रश्मियों को 'नरः' तथा वाक् तत्त्व अर्थात् विभिन्न छन्दादि रश्मियों को 'शंसः' कहा है। इससे संकेत मिलता है कि इस सूक्त की छन्दरश्मियों के कारण विभिन्न प्राण रश्मियों तथा परमाणु आदि पदार्थों की विभिन्न छन्दादि वाग् रश्मियों के साथ संगम की प्रक्रिया विशेष समृद्ध होती है, इसी कारण ग्रन्थकार ने कहा है- "प्रजास्वेव तद्वाचं दधाति।" इस प्रक्रिया के चलते आदित्य लोकों में विद्यमान सम्पूर्ण परमाणु समुदाय एवं विभिन्न प्राण रश्मियों की सक्रियता विशेषरूप से बढ़कर नवीन-२ परमाणु आदि पदार्थों की उत्पत्ति होने लगती है। इसके साथ ही 'वदत्यो जायन्ते' पदों से यह संकेत भी मिलता है कि वे नवीनोत्पन्न परमाणु गति व प्रकाशादि गुणों से युक्त होते हुए ही उत्पन्न होते हैं। कोई भी परमाणु शान्त व स्थिर अवस्था के साथ उत्पन्न नहीं होता। इसके साथ ऐसा भी नहीं होता कि परमाणु आदि पदार्थ उत्पन्न होते समय शान्त वा निष्क्रिय हों और बाद में उनमें गति वा क्रियाशीलता उत्पन्न होवे।।

यहाँ कुछ विद्वानों का पक्ष प्रस्तुत करते हुए महर्षि कहते हैं कि इस उपर्युक्त नाराशंस सूक्त (ऋ. १०.६२) की उत्पत्ति नाभानेदिष्ठ सूक्त (१०.६१) से पूर्व उत्पत्ति होती है। वस्तुतः प्रश्न यह है कि नाभानेदिष्ठ सूक्त की उत्पत्ति नाराशंस सूक्त के साथ-२ होने की जो चर्चा पूर्व कण्डिका में की गयी है, उस प्रकरण में यह नाराशंस सूक्त कब उत्पन्न होवे? नाभानेदिष्ठ सूक्त के पूर्व अथवा उसके पश्चात्? इस विषय में कुछ विद्वानों का पूर्व में उत्पन्न होने का मत प्रस्तुत किया गया है। वे विद्वान् अपने मत की पुष्टि में कारण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं। कि {आयतनम् = आयन्ति आगच्छन्ति प्राणिनो यस्मिंस्तत् जगत् स्थानं यज्ञं वा (तु.म.द.य.भा.५.२८), मनो वाऽ आयतनम् (श.१४.९.२.५; शां.आ.९.२)} उपर्युक्त वाक्तत्त्वरूपी छन्दरश्मियां अपने आधाररूप किंवा वेदिरूप परमाणु आदि पदार्थों के पूर्व उत्पन्न होती हैं। इनके उत्पन्न होने के पश्चात् विभिन्न छन्द रश्मियां पूर्वोक्त नाभानेदिष्ठ सूक्त से उत्पन्न होने वाले विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों की उत्पत्ति में सहायक होती हैं। इस कारण ये विद्वान् नाराशंस सूक्त को नाभानेदिष्ठ सूक्त से पूर्व उत्पन्न मानते हैं। इसी विषय को इस प्रकार भी समझाया जा सकता है कि वाक् तत्त्व अर्थात् 'ओम्' छन्द रश्मि विभिन्न प्राणरश्मियों से पूर्व उत्पन्न होती है। यह छन्द रश्मि नाराशंस

सूक्त में विशेष सक्रिय होती है। यह रश्मि अपने आयतनरूप मनस्तत्त्व को सक्रिय करती है, उसके पश्चात् ही मनस्तत्त्व क्रियाशील होता है। इस कारण यह रश्मि सक्रिय मनस्तत्त्व से पूर्व उत्पन्न मानी जाती है। यह रश्मि ही विभिन्न छन्द रश्मियों को उत्पन्न करके नाभानेदिष्ठ सूक्त से उत्पन्न विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त होकर उन्हें सक्रिय करती है, साथ ही 'ओम्' छन्द रश्मि नाभानेदिष्ठ सूक्तरूप रश्मिसमूह में विद्यमान विभिन्न प्राण रश्मियों को भी सक्रिय करती है। इस कारण भी नाराशंस सूक्त को नाभानेदिष्ठ सूक्त से पूर्व उत्पन्न माना जाता है।।

अव महर्षि कुछ विद्वानों का इसके विपरीत मत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि उपर्युक्त नाराशंस सूक्तरूप रश्मियां नाभानेदिष्ठ सूक्तरूप रश्मिसमूह के पश्चात् उत्पन्न होती हैं। इसका कारण वतलाते हुए वे कहते हैं कि विभिन्न छन्द रश्मियों रूपी वाक्तत्त्व अपनी आधाररूप प्राथमिक प्राणरश्मियों के पश्चात् ही उत्पन्न होता है। इस कारण नाराशंस सूक्तरूप छन्दरश्मियां नाभानेदिष्ठ सूक्तरूप छन्दरश्मियों में विद्यमान प्राथमिक प्राण रश्मियों के पश्चात् उत्पन्न होती हैं। इससे वे प्राण रश्मियां इन छन्द रश्मियों को विशेष प्रेरक वल प्रदान कर सकें। इसको अन्य प्रकार भी समझा जा सकता है। 'ओम्' छन्द रश्मिरूप वाक्तत्त्व मनस्तत्त्व के पश्चात् उत्पन्न होता है। इसी की ओर संकेत करते हुए महर्षि जैमिनी का कथन है-

"मनो वै पूर्वमथ वाक्" (जै.ब्रा.१.१२८; १.३२६)

यह मन ही इस वाक् तत्त्व का आधार होता है, इसी कारण ऋषियों का कथन है-

"मनसा हि वाग्धृता" (तै.सं.६.१.७.२; काठ.२४.३)

मनस्तत्त्व को पूर्व उत्पन्न वतलाते हुए स्वयं ग्रन्थकार का मत है-

"मन इवापूर्व........ भूयासम्" (ऐ.आ.५.१.१)

यह मनस्तत्त्व ही विभिन्न प्राण रश्मियों को उत्पन्न करके नाना प्रकार की छन्द रश्मियों को उत्पन्न और प्रेरित करता है। इसलिए कहा है-

"मन एव सविता" (गो.पू.१.३३; जै.उ.४.१२.१.१५)

"मनसैव प्राणमाप्नोति" (मै.४.५.५)

"मनो वा अनु प्राणाः" (जै.ब्रा.१.१६)

"मनो वै प्राणानामधिपतिर्मनसि हि सर्वे प्राणाः प्रतिष्ठिताः" (श.१४.३.२.३)

इस कारण भी नाराशंस सूक्तरूप छन्दरश्मियां नाभानेदिष्ठ सूक्तरूप छन्दरश्मियों के पश्चात् उत्पन्न होती हैं।।

उपर्युक्त दोनों पक्षों का खण्डन करते हुए महर्षि अपना मत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि नाराशंस सूक्तरूप रश्मिसमूह नाभानेदिष्ठ सूक्तरूप रश्मिसमूह से पूर्व और पश्चात् नहीं, वल्कि मध्य में उत्पन्न होता है। इसका कारण वताते हुए वे कहते हैं कि वाक्तत्त्व अर्थात् विभिन्न छन्दरश्मियां नाभानेदिष्ठ सूक्तरूप छन्दरश्मियों की आधार रूप विभिन्न प्राणरश्मियों के पश्चात् तथा परमाणु आदि पदार्थों के पूर्व उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार 'ओम्' छन्द रश्मिरूप वाक् तत्त्व अपने आधाररूप मनस्तत्त्व में ही उत्पन्न होने के कारण उसके पश्चात् उत्पन्न होती हुई सिद्ध होती है परन्तु मनस्तत्त्व भी इस 'ओम्' छन्द रश्मि के कारण ही सक्रिय होने तथा इसकी उत्पत्ति के पूर्व प्रायः निष्क्रिय होने के कारण सक्रिय मनस्तत्त्व का 'ओम्' छन्द रश्मि की उत्पत्ति के पश्चात् ही उत्पन्न होना सिद्ध होता है। इस कारण वाक् तत्त्व का मनस्तत्त्व के मध्य उत्पन्न होना भी सिद्ध होता है। वस्तुतः वाक् और मन दोनों ही साथ-२ काम करते हैं, इसी कारण ऋषियों का कथन है-

"वाक् च वै मनश्च देवानां मिथुनम्" (ऐ.५.२३)

"वाक् च वै मनश्च हविर्धाने" (कौ.ब्रा.६.३)

इस कारण ग्रन्थकार के मत से नाराशंस सूक्तरूप छन्दरश्मियां नाभानेदिष्ठ सूक्तरूप छन्दरश्मियों के मध्य में उत्पन्न होती हैं।।

ये नाराशंस छन्द रश्मियां नाभानेदिष्ठ छन्द रश्मियों के मध्य कहाँ उत्पन्न होती हैं? यह वतलाते हुए महर्षि कहते हैं कि नाभानेदिष्ठ के अन्तिम भाग के अतिनिकट ही ये नाराशंस सूक्तरूप छन्दरश्मियां

उत्पन्न होती हैं। यहाँ अतिनिकटता का तात्पर्य महर्षि आश्वलायन के वचनों से स्पष्ट हो जाता है-

"इदमित्था रौद्रमिति।"

"प्रागुपोत्तमाया ये यज्ञेनेत्यावपते।" (आश्व.श्रौ.८.१.२१,२२)

इसका तात्पर्य यह है कि नाराशंस छन्द रश्मियां

इदमित्था रौद्रं गूर्तवचा ब्रह्म क्रत्वा शच्यामन्तराजौ।
क्राणा यदस्य पितरा मंहनेष्ठाः पर्षत्पक्थे अहन्ना सप्त होतॄन्॥१॥

इत्यादि (ऋ.१०.६१) नाभानेदिष्ठ सूक्त की उपोत्तमा संज्ञक

स गृणानो अद्भिर्देववानिति सुबन्धुर्नमसा सूक्तैः।
वर्धदुक्थैर्वचोभिरा हि नूनं व्यध्वैति पयस उस्रियायाः॥२६॥ (ऋ.१०.६१.२६)

छन्द रश्मि के ठीक पूर्व उत्पन्न होती हैं। इधर 'ओम्' छन्दरश्मिरूप वाक्तत्त्व मनस्तत्त्व के उत्पन्न होने के पश्चात् परन्तु उसके सक्रिय होने के ठीक पूर्व ही उत्पन्न होता है एवं इसी प्रकार विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों की उत्पत्ति के पश्चात् परन्तु अग्रिम उत्पन्न परमाणु वा आकाश आदि पदार्थ उत्पन्न होने के ठीक पूर्व ही विभिन्न प्रकार की छन्द रश्मियां प्रकट होती हैं। इस कारण नाराशंस सूक्त नाभानेदिष्ठ सूक्त के मध्य उसकी उपोत्तमा ऋचा के ठीक पूर्व ही उत्पन्न होता है॥

"ओम्" वाक्तत्त्वरूप होता मनस्तत्त्वरूप यजमान को अपने तेज और वल से सिक्त करके पूर्वोक्त मैत्रावरुण शस्त्रसंज्ञक छन्दरश्मियों में धारण करता है, जिससे वे रश्मियां नाना प्रकार की प्राथमिक प्राण रश्मियों से समृद्ध होती हुई अनेक प्रकार के वल और नानाविध क्रियाओं से युक्त होती हैं। इसके कारण मैत्रावरुण से सम्पन्न होने वाली पूर्वोक्त अनेकों क्रियाएं नानाविध समृद्ध होती हैं॥

वैज्ञानिक भाष्यसार- सभी उत्पन्न पदार्थों में मनस्तत्त्व सबसे पूर्व उत्पन्न होता है परन्तु वह मनस्तत्त्व सक्रियरूप धारण किये हुए नहीं होता। उस समय उस सम्पूर्ण मनस्तत्त्व में **'ओम्'** छन्द रश्मियों रूपी ब्रह्माण्ड की सबसे सूक्ष्म तरंगें सूक्ष्मतम कंपन के रूप में उत्पन्न होती हैं। इनके उत्पन्न होते ही मनस्तत्त्व सक्रिय हो उठता है। फिर वह मनस्तत्त्व **'ओम्'** छन्द रश्मियों से मिलकर प्राथमिक प्राण रश्मियों को उत्पन्न करता है। इसके पश्चात् विभिन्न छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होने लगती है। छन्द और प्राण रश्मियां मिलकर आकाश तत्त्व एवं कण और क्वाण्टाज् को उत्पन्न करने लगती हैं। इन कण्डिकाओं में कुछ छन्द रश्मियों की उत्पत्ति की व्यवस्था और क्रम का वर्णन किया गया है, जिसे पाठक व्याख्यान भाग पढ़कर ही समझ सकते हैं॥

॥ इति ३०.१ समाप्तः ॥

ॐ अथ ३०.२ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. वालखिल्याः शंसति, प्राणा वै वालखिल्याः प्राणानेवास्य तत्कल्पयति।।
ता विहृताः शंसति, विहृता वा इमे प्राणाः, प्राणेनापानोऽपानेन व्यानः।।
स पच्छः प्रथमे सूक्ते विहरत्यर्धर्चशो द्वितीये ऋक्शस्तृतीये।।
स यत्प्रथमे सूक्ते विहरति, प्राणं च तद्वाचं च विहरति, यद्द्वितीये चक्षुश्च तन्मनश्च विहरति, यत्तृतीये श्रोत्रं च तदात्मानं च विहरति।।

व्याख्यानम्- होता संज्ञक ऋत्विज् के पश्चात् मैत्रावरुण के शिल्प शस्त्ररूप पूर्वोक्त वालखिल्य सूक्तरूप रश्मि समूहों की उत्पत्ति होती है। इन सूक्तों की कुल संख्या ११ है। हमारे मत में वालखिल्य सूक्तों में से खण्ड ६.२४ की भाँति प्रथम ६ सूक्तों की ही उत्पत्ति यहाँ अभिप्रेत है। इन सूक्तरूप रश्मिसमूहों के विषय में उसी खण्ड में देखें। ये वालखिल्य छन्दरश्मियां आदित्य लोकों के अन्दर प्राणतत्त्व के समान कार्य करती हैं। इस विषय में खण्ड ६.२६ द्रष्टव्य है, जहाँ कहा गया है-

"आत्मा वै स्तोत्रियः प्राणा वालखिल्याः"

इस कारण सम्पूर्ण आदित्य लोक इन छन्द रश्मियों के द्वारा प्राण रश्मियों से युक्त होकर निरन्तर समर्थ और समृद्ध होता जाता है।।

वे वालखिल्य छन्द रश्मियां विहरणपूर्वक उत्पन्न होती हैं अर्थात् वे एक-दूसरे से निकटता से संगत होती हुई उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियां भी परस्पर अति निकटता से संगत होती हुई ही उत्पन्न होती एवं वर्तमान रहती हैं। इनकी संगति का प्रकार यह है कि प्राण अपान के साथ संगत होता है और अपान व्यान के साथ। इस विषय में अन्यत्र भी कहा गया है-

"अथ यः प्राणापानयोः सन्धिः, स व्यानः"। (छां.उ.१.३.३)

"व्यानेन वा इमौ प्राणापानौ विधृतौ"। (काठ.२७.२; क.४२.२)

इन वचनों से भी यही सिद्ध होता है कि सभी प्राण रश्मियां निकटता से संगत रहती हैं। यहाँ उदाहरण के रूप में प्राण, अपान और व्यान की चर्चा की गयी है।।

यहाँ वालखिल्य सूक्तरूप छन्दरश्मियों के विहरण अर्थात् निकटता से संगम की प्रक्रिया दर्शायी गयी है, जहाँ पादशः, अर्धर्चशः एवं ऋक्शः इन तीन प्रकारों से विहरण की प्रक्रिया दर्शायी है। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"सूक्तानां प्रथमद्वितीये पच्छः।"

"तृतीयचतुर्थे अर्धर्चश ऋक्शः पञ्चमषष्ठे व्यतिमर्शं वा विहरेत्।" (आश्व.श्रौ.८.२.५,६)

विहरण की यह समस्त प्रक्रिया खण्ड ६.२४ में विस्तार से दर्शायी गयी है, पाठक इसे वहीं समझें। यहाँ इतना ध्यातव्य है कि विहरण प्रक्रिया, जो पूर्व अध्याय के आठवें खण्ड में दर्शायी गयी है, उससे यहाँ दर्शायी गयी विहरण प्रक्रिया में कुछ भेद है। वह भेद निम्न प्रकार समझा जा सकता है- जैसा कि हम पूर्व में भी अवगत हैं कि वालखिल्य सूक्तों में से प्रथम ६ सूक्त की ही यहाँ उत्पत्ति होती है। इन सूक्तों को तीन युग्मों के रूप में वांटा गया है। इनमें से प्रथम युग्म में विहरण पादशः द्वितीय युग्म में अर्धर्चशः एवं तृतीय युग्म में ऋक्शः होता है, जबकि पूर्व अध्याय में तीनों प्रकार से विहरण की प्रक्रिया सभी युग्मों में होती है, यही इन दोनों स्थानों में भेद है। इस विषय में महर्षि आश्वलायन उपर्युक्त विहरण के विषय में लिखते हैं-

"इति नु हैण्डिनौ" (आश्व.श्रौ.८.२.१६)

इसका तात्पर्य यह है कि यह विहरण प्रक्रिया हैण्डिन कहलाती हैं, जबकि २६ वें अध्याय में वर्णित विहरण प्रक्रिया के बारे में इन्हीं ऋषि का कथन है-

"अथ महाबालभित्"

"एतान्येव षट् सूक्तानि व्यतिमर्शं पच्छो विहरेद्व्यतिमर्शमर्धर्चशो व्यतिमर्शमृक्शः"(आश्व.श्रौ.८.२.१७,१८)

इस प्रकार इन दोनों ही विहरण प्रक्रियाओं में कुछ भेद होने के कारण इनके नाम में भी भेद है। 'हैण्डिन' शब्द "हुडि संघाते वरणे च" धातु से निष्पन्न होता है। इससे स्पष्ट होता है कि इस प्रकार की विहरण क्रिया से पदार्थ का संघात और संगमन कर्म अधिक समृद्ध होता है। अब 'महाबालभिद्' शब्द पर विचार करते हैं। यहाँ 'बाल' शब्द 'बल प्राणने धान्यावरोधे च' धातु से निष्पन्न होता है। इससे संकेत मिलता है कि यह विहरण प्रक्रिया, जो खण्ड ६.२४ में दर्शायी गयी है, इस विहरण के विपरीत विभाजन और वियोजन कर्मों को समृद्ध करती है। इस प्रकार दोनों प्रकार के विहरण कर्म आदित्य लोकों के अन्दर संयोजन और वियोजन प्रक्रिया को एक साथ संचालित करते हैं। यहाँ महर्षि आश्वलायन के वचनों में "व्यतिमर्शम्" शब्द विद्यमान है, जो यह संकेत देता है कि जहाँ-२ भी जिस-२ प्रकार से वालखिल्य छन्द रश्मियों का विहरण अर्थात् संगम होता है, वह अति निकटता से होता है, जैसा कि प्राणापानादि रश्मियों का संयोजन अति निकटता से होता है। यहाँ 'व्यमिमर्शम्' शब्द से यह भी संकेत मिलता है कि इन छन्द वा प्राण रश्मियों का परस्पर संगम कुछ रश्मियों के व्यतिक्रमण के साथ ही होता है, जो कि विहरण प्रक्रिया को ध्यानपूर्वक देखने से स्वतः स्पष्ट हो जाता है। इस कण्डिका में दर्शाया गया विहरण कर्म पूर्वोक्त मैत्रावरुण ऋत्विज् द्वारा सम्पन्न होता है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान "स यत्प्रथमं षड्वालखिल्यानां सूक्तानि विहरति, प्राणं च तद्वाचं च विहरति......।"(ऐ.६.२४) की भाँति विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं। हाँ, यहाँ इतना भेद अवश्य है कि वहाँ सभी सूक्त क्रमशः पादशः, अर्धर्चश एवं ऋक्शः विहृत होते हैं और उनकी तुलना (प्रगाथविशेषों की तुलना) प्राण, वाक्, चक्षु आदि से की गयी है, जबकि यहाँ पूर्वोक्तानुसार ६ सूक्तों का तीन युग्मों में विभाजन करके उन युग्मों में पूर्वोक्तानुसार होने वाले विहरण कर्मों की तुलना प्राण, वाक्, चक्षु आदि तत्त्वों से की गयी है। इस भेद के अतिरिक्त अन्य दृष्टि से पूर्ण समानता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्रीय भागों में विद्यमान विभिन्न छन्द रश्मियां एक-दूसरे के साथ अति निकटता से गुंथी हुई रहती हैं। इनका गुंथने का प्रकार भिन्न-२ होता है और उस गुंथन की प्रक्रिया के भेद से उन छन्द रश्मियों के गुणों में भारी परिवर्तन आ जाता है। कुछ छन्द रश्मियां आकर्षण बलों को उत्पन्न करती हैं, तो कुछ छेदन और भेदन क्रियाओं को बल देती हैं। तारों के अन्दर इन दोनों प्रकार के गुणों की आवश्यकता होती है। यह भी ध्यातव्य है कि सभी छन्द रश्मियों में इस प्रकार के गुंथन कर्मों का होना अनिवार्य नहीं है, भले ही वे छन्द रश्मियां तारों के अन्दर ही क्यों न विद्यमान हों। इसी प्रकार प्राण, अपान और व्यान आदि रश्मियां भी परस्पर अति निकटता से जुड़ी रहती हैं। इनमें से व्यान रश्मि के दोनों ओर प्राण एवं अपान रश्मियां संयुक्त रहती हैं और व्यान रश्मि उनको धारण किये रहती है। छन्द रश्मियों के गुंथन की प्रक्रिया समझने के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पठनीय है।।

२. ते हैके सह बृहत्यौ सह सतोबृहत्यौ विहरन्ति, तदुपाप्तो विहारे कामो नेत्तु प्रगाथाः कल्पन्ते।।

अतिमर्शमेव विहरेत्, तथा वै प्रगाथाः कल्पन्ते; प्रगाथा वै वालखिल्यास्तस्मादतिमर्शमेव विहरेद् यदेवातिमर्शा३म्।।

आत्मा वै बृहती, प्राणाः सतोबृहती, स बृहतीमशंसीत्, स आत्माऽथ सतोबृहतीं, ते प्राणा अथ बृहतीमथ सतोबृहतीं तदात्मानं प्राणैः परिबृहन्नेति; तस्मादतिमर्शमेव विहरेत्।।

यद्वेवातिमर्शा३म्। आत्मा वै बृहती, पशवः सतोबृहती स बृहतीमशंसीत्, स आत्माऽथ सतोबृहतीं ते पशवोऽथ बृहतीमथ सतोबृहतीं, तदात्मानं पशुभिः परिबृहन्नेति; तस्मादतिमर्शमेव विहरेत्।।
द्व्येवोत्तमे सूक्ते पर्यस्यति, स एव तयोर्विहारः।।
तस्य मैत्रावरुणः प्राणान् कल्पयित्वा ब्राह्मणाच्छंसिने संप्रयच्छत्येतं त्वं प्रजनयेति।।२।।

व्याख्यानम्– यहाँ पूर्वोक्त हौण्डिन-विहार के विषय में कुछ विद्वानों का पक्ष बतलाते हुए महर्षि कहते हैं कि पूर्वोक्त प्रक्रियानुसार परन्तु बृहती का बृहती के साथ तथा सतोबृहती का सतोबृहती छन्द रश्मियों के साथ विहरण होता है। ध्यातव्य है कि जिस ऋचा का छन्द यहाँ ग्रन्थकार ने सतोबृहती माना, उसका छन्द वस्तुतः पंक्ति है। पं.युधिष्ठिर मीमांसक ने अपने ग्रन्थ वैदिक छन्दोमीमांसा में सतःपंक्ति-छन्दस्क ऋचा में १२+८+१२+८ = ४० अक्षर होते हैं, ऐसा लिखा है। उन्होंने पिंगल छन्दःशास्त्र, जयदेव प्रोक्त छन्दःसूत्र तथा गार्ग्य प्रोक्त उपनिदानसूत्र के आधार पर यह लिखा है। उधर इसी प्रकार के छन्द का नाम शौनकप्रोक्त ऋक्प्रातिशाख्य, कात्यायनप्रोक्त ऋक्सर्वानुक्रमणी तथा वेंकट-माधव प्रोक्त छन्दोनुक्रमणी के आधार पर सतोबृहतीपंक्ति दिया है। हमारी दृष्टि में यहाँ महर्षि ऐतरेय महीदास ने सतोबृहतीपंक्ति को ही सतोबृहती कहा है। पिंगलसूत्रों (३.३५,३६) के अनुसार तो विराड् बृहती को ही महाबृहती व महर्षि तण्डि के मत में सतोबृहती कहा है। इसमें केवल ३४ अक्षर ही होते हैं, जबकि वालखिल्य के प्रथम व द्वितीय सूक्त की द्वितीय ऋचाओं में १२+८+१२+८ = ४० अक्षर ही हैं। अतः इसे आचार्य पिंगल के मतानुसार नहीं, बल्कि महर्षि शौनक आदि के अनुसार सतोबृहती पंक्ति तथा इस ग्रन्थकार के मत में सतोबृहती माना जाना चाहिए। यहाँ प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इस विषय में ऋषियों में परस्पर इतना मतभेद होने पर सृष्टि प्रक्रिया पर प्रभाव की दृष्टि से हम किस ऋषि के मत को स्वीकार करें और क्यों? इस विषय में हमारा मत यह है कि **किसी ग्रन्थ के व्याख्यान के समय हमें उसी ग्रन्थकार के मत को वरीयता देनी चाहिए।** हमने सर्वत्रैव इसी का पालन किया है। जिस प्रकरण में कोई ऋचा जो भी प्रभाव दर्शाती है, वहाँ उसका वैसा ही छन्द ऋषियों ने माना है। कभी-२ कोई छन्द रश्मि दो प्रकार का प्रभाव दर्शा सकती है, उस समय कोई ग्रन्थकार ऋषि अपने प्रकरण वा मन्तव्य के अनुकूल उस छन्द रश्मि का छन्द निर्धारित करते हैं। यहाँ उपर्युक्त वालखिल्य ऋचाएं आदित्य लोकों में सतोबृहती छन्द का प्रभाव दर्शाती हैं, इस कारण ग्रन्थकार ने इसका छन्द सतोबृहती माना है। इस छन्द विषय को विराम देते हुए हम कण्डिका पर आगे विचार करते हैं-

इस प्रकार के हौण्डिन विहरण पर ग्रन्थकार आपत्ति करते हुए कहते हैं कि इससे विहरण कर्म तो हो जाएगा परन्तु प्रगाथों का निर्माण नहीं हो पाएगा। इससे कुछ छन्द रश्मियां बृहती छन्दस्क होंगी, तो अन्य सतोबृहती। इनसे प्रगाथ सम्पादित नहीं हो पायेंगे। इससे यह प्रतीत होता है कि आदित्य लोकों में वालखिल्य सूक्तरूप छन्द रश्मि समूहों के विहरण से प्रगाथ समूहों का निर्माण होना आवश्यक है। यहाँ यह भी संकेत मिलता है कि **सभी प्रगाथ समान छन्द वाले ही होते हैं।** इस कारण प्रगाथों का निर्माण इस प्रकार से विहरण होने से सम्भव नहीं हो सकता। इस प्रकार प्रगाथों के अभाव में आदित्य लोकों में पर्याप्त तेज एवं बल आदि की उत्पत्ति भी नहीं हो पाती। इस कारण यह पक्ष उचित नहीं है। इससे आदित्य लोकों का निर्माण व उसके अन्दर होने वाली विविध आवश्यक क्रियाएं सम्पादित नहीं हो सकतीं। विहरण प्रक्रिया कैसे होती है? इससे किस प्रकार नवीन छन्द रश्मियां एवं प्रगाथ रश्मियां उत्पन्न होती है? इस विषय में खण्ड ६.२४ द्रष्टव्य है।।

इस प्रकार उपर्युक्त पक्ष को नकारते हुए महर्षि अपना मत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि इस कारण विहरण प्रक्रिया अतिमर्श अर्थात् कुछ ऋचाओं व पादों का उल्लंघन करके ही होती है, जैसा कि खण्ड ६.२४ में दर्शाया गया है। यथा- प्रथम सूक्त की प्रथम ऋचा, जो बृहती छन्दस्क है, का विहरण द्वितीय सूक्त की द्वितीय ऋचा, जो सतोबृहती-छन्दस्क है, के साथ पादशः होता है। यह पादशः पूर्वोक्तानुसार प्रथम युग्म में होता है। इससे सभी नवीनोत्पन्न ऋचाएं समान छन्द वाली हो जाती हैं। इस कारण ये सभी प्रगाथरूप भी हो जाती हैं और विहरण क्रिया के द्वारा इनका परस्पर संश्लेषण भी हो

जाता है। इनके प्रगाथरूप होने से आदित्य लोकों के अन्दर इनके प्रभाव से विशेष तेज-बलादि की उत्पत्ति होती है। यहाँ महर्षि कहते हैं कि वालखिल्य (यहाँ प्रथम छः सूक्तों की ओर ही प्रकरणानुसार संकेत है।) सूक्तरूप रश्मिसमूह भी प्रगाथरूप होते हैं, इस कारण वे विशेष प्रकाश व बलों के उत्पादक होते हैं। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि वालखिल्य सूक्तों में सभी ऋचाएं समान छन्द वाली नहीं होने पर भी इन्हें प्रगाथरूप क्यों कहा है? यदि असमान छन्दों वाली ऋचाएं प्रगाथरूप नहीं हो सकतीं, जैसा कि पूर्व कण्डिका के व्याख्यान में हमने लिखा है, तब वालखिल्य सूक्तों को कैसे प्रगाथरूप माना जा सकता है? इसके उत्तर में हमारा मत है कि प्रथम छः वालखिल्य सूक्तों को २-२ सूक्तों के युग्मों में से प्रत्येक युग्म के दोनों सूक्तों के छन्द परस्पर समान हैं। उदाहरणतः- प्रथम युग्म में ऋ.८.४९ सूक्त में १,३,५,७ व ९ ऋचाओं का छन्द बृहती (भले ही बृहती में पारस्परिक भेद विद्यमान है) तथा २,४,६,८ व १० ऋचाओं का छन्द पंक्ति (भले ही पंक्ति में पारस्परिक भेद विद्यमान है)। ध्यातव्य है कि यहाँ इस प्रकरण में इसे सतोबृहती कहा गया है। यह हम पूर्व में विवेचित कर चुके हैं। इसी प्रकार ऋ.८.५० सूक्त में १,३,५,७ व ९ का छन्द (विविध प्रकार का) बृहती है तथा २,४,६,८ व,१० का छन्द (विविध प्रकार का) पंक्ति है। इस प्रकार इस युग्म के छन्द परस्पर पूर्णरूपेण समानता रखते हैं। छन्द व उनका क्रम सभी समान है। इस कारण ये दोनों सूक्त प्रगाथरूप हैं।

इसी प्रकार अन्य दोनों युग्मों अर्थात् तीसरे व चौथे सूक्त का प्रगाथत्व तथा पांचवें व छठे वालखिल्य सूक्तों का प्रगाथत्व समझें।

इस प्रकार वालखिल्य सूक्तों का प्रगाथत्व सिद्ध करते हुए ग्रन्थकार का कथन है कि जब वालखिल्य सूक्त प्रगाथरूप हैं, तब इनका विहरण किया हुआ अर्थात् विहृतरूप भी प्रगाथरूप ही होना चाहिए। इस कारण इनका विहरण चाहे, वह पादशः हो वा अर्धर्चशः वा ऋक्शः, भी प्रगाथरूप ही होना चाहिए। ऐसा करने के लिए इनका विहरण पूर्वोक्तानुसार अतिमर्श करके ही होता है अर्थात् बृहती का सतोबृहती तथा सतोबृहती का बृहती छन्द रश्मियों के साथ ही विहरण होता है, इससे भिन्न प्रकार से नहीं। यहाँ इस कण्डिका में प्लुत का प्रयोग प्रशंसार्थ है।।

अब महर्षि उपर्युक्त वालखिल्य सूक्तों के छन्दों के गुणों का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि बृहती छन्द रश्मियां आत्मरूप होती हैं अर्थात् ये आदित्य लोकों के सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग में सतत विचरण करती रहती हैं, उधर उपर्युक्त सतोबृहती छन्द रश्मियां प्राणरूप होती हैं, जो बृहती छन्द रश्मियों को निरन्तर बल प्रदान करके सक्रिय बनाये रखती हैं। जब पूर्वोक्तानुसार बृहती छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है, तब केन्द्रीय भाग में विद्यमान सम्पूर्ण पदार्थ उन बृहती छन्द रश्मियों से व्याप्त होकर उस पदार्थ को सब ओर से घेरता और सम्पीडित करता है। जब सतोबृहती छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, {सत् = तयोः (सदसतोः) यत् सत् तत् साम तन्मनस्सः प्राणः (जै.उ.१.७.१.२), सदमृतम् (श.१४.४.१.३१)} तब वे छन्द रश्मियां विभिन्न प्राण रश्मियों को अपने साथ बांधती हुई व्याप्त कर लेती हैं। जैसा कि हम पूर्व में लिख चुके हैं कि इन ऋचाओं का छन्द आचार्य पिंगल के मत में पंक्ति भी है। इस कारण हमारे मत में ये छन्द रश्मियां पंक्ति छन्द का प्रभाव दर्शाते हुए विभिन्न प्राण व छन्द रश्मियों को अपनी व्याप्ति के साथ-२ सर्वत्र फैलाती हुई विभिन्न परमाणुओं में संयोगादि प्रक्रिया को बल प्रदान करती हैं। हमारे मत में ये छन्द रश्मियां अपने सतोबृहती प्रभाव के द्वारा विभिन्न प्राण रश्मियों को अपने साथ व्याप्त करने के कारण ही प्राणरूप कही गयी हैं। इस प्रकार इन बृहती और सतोबृहती छन्द रश्मियों के परस्पर और निरन्तर संश्लेषण से आदित्य लोकों के आत्मरूप केन्द्रीय भागों में विद्यमान पदार्थ नाना प्रकार की प्राण रश्मियों से निरन्तर प्रेरित और समृद्ध होता रहता है। इन दोनों प्रकार की छन्द रश्मियों का उपर्युक्त संयुक्त प्रभाव उत्पन्न करने के लिए ही वालखिल्य सूक्त रश्मियों को पूर्वोक्तानुसार अतिमर्श करते हुए विहरण क्रिया होती है। ध्यातव्य है कि यह विहरण क्रिया पूर्वोक्त मैत्रावरुण नामक रश्मियों के द्वारा किंवा उनकी प्रेरणा से ही होती है।।

उपर्युक्त दोनों प्रकार की छन्द रश्मियों के अन्य प्रभाव की प्रशंसा करते हुए ग्रन्थकार लिखते हैं कि बृहती छन्द रश्मियां उपर्युक्तवत् आत्मरूप होकर आदित्य लोकों के सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग में व्याप्त होती हैं। उधर, सतोबृहती छन्द रश्मियां पशुरूप होकर विभिन्न छन्द और मरुद् रश्मियों को व्याप्त करके नाना प्रकार से संयोगादि क्रियाओं को संपादित करने में विशेष भूमिका निभाती हैं। इस प्रकार बृहती छन्द

रश्मियों के उत्पन्न होने से आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग का पदार्थ विशेषरूप से सम्पीडित होने लगता है। उधर, सतोबृहती छन्द रश्मियां उत्पन्न होने पर उस क्षेत्र में विद्यमान सम्पूर्ण पदार्थ में नाना प्रकार की छन्द और मरुदादि रश्मियां और अधिक सक्रिय होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को संयोगादि प्रक्रियाओं से तीव्रता से युक्त करती हैं। इस प्रकार इन दोनों प्रकार की वालखिल्य छन्द रश्मियों के परस्पर विहरण के द्वारा आत्मरूप सम्पूर्ण पदार्थ विभिन्न प्रकार की प्राण, मरुद् एवं छन्दादि रश्मियों से सब ओर से समृद्ध होने लगता है। इस कारण इन रश्मियों को विहरण मैत्रावरुण द्वारा पूर्वोक्त अतिमर्श प्रक्रिया द्वारा ही होता है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान ६.२४.४ में इसी कण्डिका के व्याख्यान के समान समझें।।

पूर्वखण्ड में वर्णित 'ओम्' छन्द रश्मिरूप होता से संयुक्त मनस्तत्त्व के द्वारा मैत्रावरुण संज्ञक ऋत्विज् विभिन्न प्रकार की प्राण रश्मियों को समर्थ बनाकर अर्थात् उनको विशेषरूप से समृद्ध करके ब्राह्मणाच्छंसी ऋत्विज् रूपी रश्मियों को समर्पित कर देता है। इसके पश्चात् वे ब्राह्मणाच्छंसी छन्द रश्मियां नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों एवं उनकी संयोगादि प्रक्रियाओं को उत्पन्न करने में समर्थ होती हैं। इन ब्राह्मणाच्छंसी रश्मियों के विभिन्न कर्मों को अगले खण्ड में वर्णित किया गया है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार– तारों के केन्द्रीय भागों में बृहती, सतोबृहती वा पंक्ति छन्द रश्मियां परस्पर एक-दूसरे से गुंथी हुई नवीन प्रकार की छन्द रश्मियों को उत्पन्न करती हैं, जिसके कारण केन्द्रीय भाग में विभिन्न नाभिकों का संलयन तीव्रता से होता है। इन छन्द रश्मियों के कारण प्रबल विद्युत् तीव्र होती है। इन दोनों प्रकार की छन्द रश्मियों के पारस्परिक संश्लेषण से सभी प्रकार की छन्द, मरुत् एवं प्राण रश्मियां विशेष सक्रिय होकर इन बलों को बढ़ाकर नाभिकीय संलयन प्रक्रिया को तीव्र रूप प्रदान करने में सहयोग करती हैं। इन कण्डिकाओं में बृहती एवं सतोबृहती वा पंक्ति छन्द रश्मियों का पारस्परिक गुंथन किस प्रकार होता है, यह दर्शाया गया है, जिसे पाठक व्याख्यान भाग को पढ़कर ही समझ सकते हैं।।

ॐ इति 30.2 समाप्तः ॐ

अथ 30.3 प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. सुकीर्तिं शंसति; देवयोनिर्वै सुकीर्तिस्तद् यज्ञाद्देवयोन्यै यजमानं प्रजनयति।।
वृषाकपिं शंसत्यात्मा वै वृषाकपिरात्मानमेवास्य तत्कल्पयति।।
तं न्यूङ्खयत्यन्नं वै न्यूङ्खस्तदस्मै जातायान्नाद्यं प्रतिदधाति, यथा कुमाराय स्तनम्।।
स पाङ्क्तो भवति; पाङ्क्तोऽयं पुरुषः,-पञ्चधा विहितो लोमानि त्वङ्मांसमस्थि मज्जा; स यावानेव पुरुषस्तावन्तं यजमानं संस्करोति।।
तं ब्राह्मणाच्छंसी जनयित्वाऽच्छावाकाय संप्रयच्छत्येतस्य त्वं प्रतिष्ठां कल्पयेति।।३।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रकार से मैत्रावरुण से प्रेरित ब्राह्मणाच्छंसी छन्द रश्मियों की प्रेरणा से

अप प्राच इन्द्र विश्वाँ अमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व।
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन्मदेम।।१।। (ऋ.१०.१३१)

सूक्तरूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति होती है, जिसमें कुल ७ ऋचाएं हैं। इस सूक्त का ऋषि सुकीर्तिः काक्षीवतः है। इस सूक्त के विषय में ५.१५.२ द्रष्टव्य है। यहाँ ग्रन्थकार इतना और लिखते हैं कि यह सूक्तरूप रश्मिसमूह देवयोनिरूप है। इसका तात्पर्य यह है कि इस रश्मिसमूह के प्रभाव से **तारों के केन्द्रीय भाग का समूह बिन्दुरूप में निर्माण प्रारम्भ होने लगता है,** जिसमें कालान्तर में अनेक देव परमाणुओं की उत्पत्ति होती है। महर्षि के इस कथन की हमारे पूर्व में किये व्याख्यान के साथ पूर्णतः संगति पाठक स्वयं समझ सकते हैं। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"बार्हतान्येव सूक्तानि वालखिल्यानां मैत्रावरुणः।"
"सुकीर्तिं ब्राह्मणाच्छंसी.....।"(आश्व.श्रौ.८.४.८,६)

इससे संकेत मिलता है कि पूर्वोक्त वालखिल्य ऋषि प्राणरश्मियों से उत्पन्न विभिन्न बृहतीछन्दस्क सूक्तरूप रश्मिसमूहों की उत्पत्ति मैत्रावरुण की प्रेरणा से होती है, यह बात हम पूर्वखण्ड में विस्तार से जान चुके हैं। इधर ब्राह्मणाच्छंसी रश्मियों की प्रेरणा से यह उपर्युक्त सुकीर्ति ऋषि प्राण से उत्पन्न सूक्तरूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति होती है। यह देवयोनिरूप सुकीर्ति सूक्तरूप रश्मिसमूह संयोज्य गुणों से विशेषतया युक्त होकर विभिन्न संयोजक बलों से युक्त परमाणु आदि पदार्थों को ब्राह्मणाच्छंसी रश्मियों की प्रेरणा से उत्पन्न करने लगता है।।

तदनन्तर उन ब्राह्मणाच्छंसी रश्मियों की प्रेरणा से ही वृषाकपिरैन्द्र इन्द्राणीन्द्रश्च ऋषिरश्मियों से

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत।
यत्रामदद् वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।१।। (ऋ.१०.८६)

सूक्तरूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति होती है। इस सूक्तरूप रश्मिसमूह के विषय में भी ५.१५.१ द्रष्टव्य है। इस सम्पूर्ण सूक्त में कुल २३ छन्द रश्मियां हैं तथा उन सभी का छन्द पंक्ति है। यहाँ सूत्रात्मा वायु ही वृषाकपि ऋषि कहलाता है और इससे उत्पन्न सभी छन्दरश्मियां भी आत्मरूप होकर आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों में सर्वत्र विचरती हुई उस सम्पूर्ण भाग को सशक्त और सक्रिय बनाती हैं अर्थात् ये छन्द

रश्मियां उत्पन्न होकर उस भाग को सुदृढ़ और पुष्ट बनाती हैं।।

उपर्युक्त वृषाकपि ऋषि से उत्पन्न सूक्त की ऋचाएं न्यूङ्ख के रूप में प्रकट होती हैं। न्यूङ्ख क्रिया के विषय में खण्ड ५.३ द्रष्टव्य है। छन्दरश्मियों का न्यूङ्खरूप अन्नरूप होता है। इसका तात्पर्य यह है कि इन छन्दरश्मियों में विशेष संयोजक बल विद्यमान होता हुआ विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को तीव्र संयोजक बलों से युक्त करता है, जिसके कारण ये सभी छन्द रश्मियां उन परमाणु आदि पदार्थों को {प्रति = अभिमुखे (म.द.ऋ.भा.१.४८.२), वीप्सायाम् (म.द.ऋ.भा.१.१६६.७), व्याप्तौ (म.द.य.भा.२०.३७)} बार-२ व्याप्त करके उनको सम्मुख दिशा से निरन्तर धारण करती हैं अर्थात् वे रश्मियां उन परमाणुओं को तीव्र आकर्षण-भाव से ऐसे ही झपटकर पकड़ती हैं, जैसे क्षुधा से पीड़ित शिशु अपनी माँ के स्तन को शीघ्रतापूर्वक ग्रहण कर लेता है। इसका उपमार्थ छोड़कर दूसरा यह भी भाव है कि उन परमाणुओं को धारण करने पर अति चपल वेगवान् कुमार-संज्ञक अग्नि संयोज्य-परमाणुओं को कंपाता हुआ गर्जन करने लगता है अथवा वह कुमार-संज्ञक अग्नितत्त्व इन्द्रतत्त्व के रूप में प्रकट होकर सबको कंपाते हुए महाघोष उत्पन्न करता है।।

यह उपर्युक्त सूक्त पंक्ति छन्दस्क है, {पुरुष = पुरुषो वै संवत्सरः (श.१२.२.४.१), पुरुष (एव) सविता (जै.उ.४.१२.१.७)। त्वक् = त्वक् सूददोहाः (श.८.१.४.५), (सूददोहाः = आपो वै सूददोहाः - शां.आ.२.१)। मांसम् = मांसं सादनम् (श.८.१.४.५.), मांसं वै पुरीषं (श.८.६.२.१४), (पुरीषम् = पूर्णबलम् - म.द.य.भा.१२.४६; अन्नं पुरीषम् - श.८.१.४.५; स एष प्राण एव यत् पुरीषम् - श.८.७.३.६; ऐन्द्रं हि पुरीषम् - श.८.७.३.७)। अस्थि = अस्थिरैश्चञ्चलैः किरणचलनैः (म.द.ऋ.भा.१.४८.१३), अस्यति प्रक्षिपति येन तदस्थि 'छन्दस्यपि दृश्यते' (पा.अ.७.१.७६), सूत्रेणानङ् (वै.को. - आ. राजवीर शास्त्री), अस्थि वा एतत् यत्समिधः (तै.ब्रा.१.१.९.४)। मज्जा = आज्यं मज्जा (श.१२.९.१.११), मज्जा यजुः (श.८.१.४.५), मज्जानः स्वररूपम् (ऐ.आ.३.२.१; शां.आ.८.१)} उधर ये संवत्सर रूप लोक भी पांक्त कहलाते हैं। इसका अर्थ यह है कि ये लोक पांच अवयवों वा पदार्थों से युक्त होते हैं-

(१) त्वक् - आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग का वह बाहरी आच्छादक पदार्थ, जो तारे के विशाल क्षेत्र से विशाल तन्मात्राओं और छन्दादि रश्मियों का दोहन करके केन्द्रीय भाग को उनसे परिपूर्ण करता रहता है। इसके साथ ही वह आच्छादक भाग केन्द्रीय भाग में उत्पन्न विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को दोहन करके अन्य भाग में उनका क्षरण करता रहता है। यहाँ 'त्वक्' शब्द से आदित्य लोकों की बाहरी परिधि का भी ग्रहण किया जा सकता है, जो आदित्य लोकों के अन्दर से अग्नि तत्त्व आदि पदार्थों को ग्रहण करके बाहरी अन्तरिक्ष में निरन्तर फेंकता रहता है। इसी के साथ यही आच्छादक भाग विशाल अन्तरिक्ष से सोम आदि रश्मियों को ग्रहण करके आदित्य लोकों में प्रवाहित करता रहता है।

(२) मांस - यह आदित्य लोक का वह भाग है, जो इन्द्र तत्त्व के बल से पूर्ण युक्त होकर सम्पूर्ण लोक का आयतनरूप होता है। इसके अन्दर नाना प्रकार की प्राण रश्मियां एवं अनेक प्रकार के परमाणु आदि पदार्थ नाना संयोजक बलों से युक्त होते हैं। आदित्य लोकों का अधिकांश भाग यही होता है, जो इन्द्र तत्त्व के कारण अपनी विशेष आभा और बल का भण्डार होता है।

(३) अस्थि - निरन्तर गतिशील चंचल किरणें, जो आदित्य लोकों के अन्दर सर्वत्र सतत प्रक्षिप्त होती रहती हैं। इसके साथ-२ वे तेजस्वीरूप से युक्त होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को इधर-उधर प्रक्षिप्त करती रहती हैं।

(४) लोम - विभिन्न छन्दरश्मियां ही आदित्य लोकों में लोमरूप होती हैं। {लोमानि = छन्दांसि वै लोमानि (श.६.४.१.६), लोमैव हिंकारः (जै.उ.१.१२.२.६), पशवो वै लोम (तां.१३.११.११)} इसके साथ ही विभिन्न मरुत् एवं 'हिम्' रश्मियां भी लोमरूप होकर आदित्य लोकों में सर्वत्र विद्यमान होती हैं। ये ही रश्मियां स्वयं कटती और दूसरी रश्मियों को काटती हुई निरन्तर नाना प्रकार की संयोगादि क्रियाओं को सम्पादित करती हैं। विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के छेदन-भेदन में भी इन्हीं की विशेष भूमिका होती है। लोम के विषय में महर्षि यास्क का कथन है- "लोम लुनातेर्वा लीयतेर्वा" (नि.३.५)। हमने यहाँ इसी आशय को ग्रहण किया है।

(५) मज्जा - चमकीली व तप्त वह तीव्र ज्योति, जो 'यजुः' संज्ञक छन्दरश्मियों से युक्त होती है किंवा ये छन्दरश्मियां विभिन्न परमाणुओं के संगम वा संलयन में मुख्य हेतुरूप होती हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त पंक्ति-छन्दस्क सूक्तरूप रश्मिसमूह आदित्य लोकों को उपर्युक्त पांचों प्रकार के पदार्थों से समृद्ध करता हुआ उन्हें निरन्तर धारण करता है अर्थात् उनमें होने वाली सभी प्रकार की क्रियाओं को समृद्ध और संस्कृत करता है।।

पूर्वोक्त ब्राह्मणाच्छंसी ऋत्विज् रूप छन्दरश्मियां पूर्वोक्त दोनों प्रकार की ऋषि प्राण रश्मियों को प्रेरित करके सुकीर्ति एवं वृषाकपि सूक्तरूप रश्मि समूहों को उत्पन्न करके अच्छावाक-संज्ञक ऋत्विज् छन्द रश्मियों को समर्पित कर देता है। वे अच्छावाक रश्मियां इन दोनों सूक्तरूप रश्मिसमूहों के द्वारा आदित्य लोकों में होने वाली विभिन्न क्रियाओं को प्रतिष्ठा अर्थात् आधार प्रदान करती हैं। अच्छावाक के कार्यों को अग्रिम खण्ड में वर्णित किया गया है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस समय तारों के अन्दर विभिन्न प्रकार के विद्युत् बलों की विशेष समृद्ध अवस्था विद्यमान होती है। इसकी कारणरूप ३० विभिन्न छन्द रश्मियां क्रमशः ७ और २३ के समूहों में उत्पन्न होती हैं। इनकी उत्पत्ति और प्रभाव खण्ड ५.१५ में भी वर्णित है। इस कारण उसका पिष्टपेषण नहीं किया गया है। इनमें से ७ छन्द रश्मियों वाला समूह विभिन्न तारों के केन्द्रीय भागों का विन्दुवत् निर्माण प्रारम्भ करता है। उस समय इन छन्द रश्मियों का डार्क एनर्जी से भी संघर्ष होता है, जिसे नियंत्रित वा नष्ट करके ये रश्मियां केन्द्रीय भागों का निर्माण करना प्रारम्भ करने में समर्थ होती हैं। द्वितीय समूह के द्वारा तारों का विकसित रूप बनने लगता है। विभिन्न बलों की भारी वृद्धि होती है, जिससे पदार्थ का संघनन और संपीडन नाभिकीय संलयन की क्रिया को तीव्र करता है। इन छन्द रश्मियों के द्वारा ही तारों का केन्द्रीय भाग शेष भाग के ऊपर फिसलता हुआ भी दृढ़ता से जुड़ा रहता है। इनके द्वारा ही दोनों भागों में पदार्थ का सतत संचरण होता रहता है। **किसी भी तारे के प्रायः पांच भाग होते हैं-**
(१) केन्द्रीय भाग अथवा सम्पूर्ण तारे की बाहरी परिधि, जिसमें से पदार्थ का इधर-उधर संचरण होता रहता है।
(२) तारे का वह विशाल भाग, जो आयनों के रूप में प्लाज्मा अवस्था में विद्यमान होता है, यही भाग विद्युत् का बहुत बड़ा भण्डार होता है।
(३) कुछ ऐसी तीव्र ऊर्जा वाली तरंगें, जिनके कारण तारों में विद्यमान आयन इधर-उधर तीव्र गति से प्रक्षिप्त होते रहते हैं।
(४) विभिन्न प्राण एवं छन्दादि रश्मियां, जो सम्पूर्ण पदार्थ की उत्पत्ति का प्रधान कारण होती हैं। ये ही विभिन्न आयनों में तोड़-फोड़ करने में भी विशेष समर्थ होती हैं।
(५) ऐसी छन्द रश्मियां, जो नाभिकों के संलयन के लिए विशेष उत्तरदायी होती हैं।।

꧁ इति 30.3 समाप्तः ꧂

अथ ३०.४ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. एवयामरुतं शंसति; प्रतिष्ठा वा एवयामरुत्प्रतिष्ठामेवास्य तत्कल्पयति।।
तं न्यूङ्खयत्यन्नं वै न्यूङ्खोऽन्नाद्यमेवास्मिंस्तद्दधाति।।
स जागतो वाऽतिजागतो वा, सर्वं वा इदं जागतं वाऽतिजागतं वा।।
स उ मारुत आपो वै मरुत आपोऽन्नमभिपूर्वमेवास्मिंस्तदन्नाद्यं दधाति।।
तान्येतानि सहचराणीत्याचक्षते, नाभानेदिष्ठं वालखिल्या वृषाकपिमेवयामरुतं; तानि सह वा शंसेत्, सह वा न शंसेत्।।
यदेनानि नाना शंसेद् यथा पुरुषं वा रेतो वा विच्छिन्द्यात् तादृक्तत्, तस्मादेतानि सह वा शंसेत्, सह वा न शंसेत्।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रकारेण ब्राह्मणाच्छंसी से प्रेरित अच्छावाक ऋत्विज् रूप छन्दरश्मियां एवयामरुदात्रेय ऋषि प्राणरश्मियों को प्रेरित करती हैं। तत्पश्चात् एवयामरुत् ऋषि प्राणरश्मियां

प्र वो॑ म॒हे म॒तयो॑ यन्तु॒ विष्ण॑वे म॒रुत्व॑ते गिरि॒जा ए॑व॒याम॑रुत्।
प्र शर्धा॑य॒ प्रय॑ज्यवे सु॒खाद॑ये त॒वसे॑ भ॒न्ददि॑ष्टये॒ धुनि॑व्रताय॒ शव॑से।।१।।

इत्यादि (ऋ.५.८७) सूक्तरूप छन्द रश्मि समूह, जिसमें कुल नौ छन्द रश्मियां होती हैं, को उत्पन्न करती हैं। इस सूक्त के विषय में ५.१५.१ द्रष्टव्य है। इस सूक्त की महत्ता बतलाते हुए ऋषि लिखते हैं कि यह सूक्तरूप रश्मिसमूह प्रतिष्ठारूप होता है। पूर्व कण्डिका में अच्छावाक रश्मियों के कार्यों को जो वर्णन किया गया है, वह इसी सूक्तरूप रश्मिसमूह के कारण होता है। ये ही छन्द रश्मियां अपने जगती छन्द के प्रभाव से विभिन्न क्रियाओं एवं परमाणु आदि पदार्थों को दूर-२ तक विस्तृत करती हैं। प्रतिष्ठा के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है-

"प्रतिष्ठा वाऽअतिरात्रः" (श.५.५.३.५)

इससे स्पष्ट होता है कि यही छन्द रश्मिसमूह आदित्य लोकों को विशेष प्रकाशित अवस्था में लाने में महत्वपूर्ण सहयोग करता है। इस सूक्त के विषय में महर्षि आश्वलायन का भी कथन है-

"अथैवयामरुदुक्तो वृषाकपिना।" (आश्व.श्रौ.८.४.२)

इससे भी यही स्पष्ट होता है कि यह सूक्तरूप रश्मिसमूह पूर्वोत्पन्न वृषाकपि सूक्त के साथ अर्थात् उसके तुरन्त पश्चात् ही उत्पन्न होता है।।

इसका व्याख्यान पूर्वखण्ड में लगभग इसी प्रकार की कण्डिका के समान समझें।।

इस सूक्त की ऋचाएं जगती एवं अतिजगती-छन्दस्क हैं। यहाँ 'इदम्' शब्द प्रत्यक्ष जगत् की ओर संकेत करता है। यहाँ ग्रन्थकार लिखना चाहते हैं कि इस प्रत्यक्ष ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी पदार्थ प्रत्यक्ष दिखाई देता है अथवा दिखाई दे सकता है, वह सब जगती और अतिजगती छन्दरश्मियों के कारण ही सम्भव होता है, अन्यथा ब्रह्माण्ड में कुछ भी प्रतीत न होवे।।

छन्दों की दृष्टि से इस सूक्त की प्रशंसा करने के पश्चात् देवता की दृष्टि से इसकी महत्ता बताते

हुए कहते हैं कि इसका देवता मरुत् है। इस कारण इसके प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां उत्पन्न और समृद्ध होती हैं। ये मरुद् रश्मियां ही आपः का रूप होती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये मरुद् रश्मियां सम्पूर्ण पदार्थ को व्याप्त कर लेती हैं। यहाँ आपः को अन्न कहने का तात्पर्य यह है कि ये मरुद् रश्मियां अन्नरूप भी होती हैं अर्थात् इनको विभिन्न छन्दादि रश्मियां निरन्तर अवशोषित करती रहती हैं। इस अवशोषण प्रक्रिया के द्वारा ही उन रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों में विभिन्न प्रकार के संयोजक बलों की उत्पत्ति और समृद्धि होती है।।

इस प्रकरण में हम मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी एवं अच्छावाक ऋत्विजों के द्वारा पूर्वोक्त नाभानेदिष्ठ, वालखिल्य, वृषाकपि एवं एवयामरुत् ऋषि प्राण रश्मियों से उत्पन्न चार सूक्तों का वर्णन कर चुके हैं। ये चारों सूक्त सहचर कहे जाते हैं अर्थात् इनकी उत्पत्ति साथ-२ ही होती है और ये साथ-२ ही गमन करते हैं। इस विषय को खण्ड ५.१५ की प्रथम कण्डिका के साथ-२ सम्पूर्ण खण्ड में विस्तार से व्याख्यात कर चुके हैं। यहाँ ग्रन्थकार का आशय यह है कि ये सभी सूक्तरूप रश्मिसमूह साथ-२ ही उत्पन्न होते व गमन करते हैं। इसलिए जब उत्पन्न नहीं होते हैं, तो इनमें से कोई भी सूक्त उत्पन्न नहीं होता अर्थात् इनका भाव एवं अभाव दोनों साथ-२ ही होते हैं।।

अब महर्षि कहते हैं कि यदि इन चारों सूक्तों में से कोई भी सूक्त अन्य सूक्तों से पृथक् उत्पन्न होवे अथवा सभी पृथक्-२ ही उत्पन्न होवें, तब उन सबका सम्मिलित प्रभाव ऐसे ही व्यर्थ हो जाता है, जैसे वीर्यहीन पुरुष व्यर्थ होता है। इस कारण इनके पृथक्-२ उत्पन्न होने पर सम्पूर्ण आदित्य लोक तेजहीन हो जाता है क्योंकि उसमें विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों की उत्पत्ति प्रक्रिया ही बन्द हो जाती है। इस कारण ये चारों सूक्त यदि उत्पन्न होते हैं, तो साथ-२ ही होते हैं, यदि नहीं, तो कोई भी उत्पन्न नहीं होता है। यदि सक्रिय होते हैं, तो सभी एक साथ सक्रिय होते हैं, अन्यथा कोई भी सक्रिय नहीं होता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इन कण्डिकाओं में ४ छन्द रश्मि समूहों का वर्णन है, जो तारों के अन्दर सदैव साथ-२ ही उत्पन्न होते और साथ-२ ही गमन करते हैं। इनमें से एक भी समूह अन्य से पृथक् उत्पन्न हो जाये अथवा पृथक् गमन करने लगे, तो तारों की नाभिकीय संलयन की क्रिया बंद हो जाती है और वह तारा अप्रकाशित लोक के रूप में परिवर्तित हो जायेगा। इन चारों समूहों का वर्णन पूर्व में भी आ चुका है। इस कारण हम इनका स्वरूप और प्रभाव यहाँ नहीं दर्शा रहे हैं। सुविज्ञ पाठक व्याख्यान भाग को पढ़कर स्वयं विचार सकते हैं।।

२. स ह बुलिल आश्वतर आश्विर्वैश्वजितो होता सन्नीक्षांचक्र एषां वा एषां शिल्पानां विश्वजिति सांवत्सरिके द्वे मध्यन्दिनमभिप्रत्येतोर्हन्ताहमित्थमेवयामरुतं शंसयानीति; तद्ध तथा शंसयांचकार।।

व्याख्यानम्- {अश्वः = अग्निर्वा अश्वः श्वेतः (श.३.६.२.५), सौर्यो वा अश्वः (गो.उ.३.१९), वैश्वदेवो वा अश्वः (श.१३.२.५.४), वारुणो वाऽअश्वः (तै.ब्रा.३.८.७.३)} पूर्वोक्त प्रकरण को आगे बढ़ाते हुए महर्षि लिखते हैं कि उन आदित्य लोकों के अतितप्त केन्द्रीय भागों, जो श्वेतवर्णी आग्नेय पदार्थ से युक्त होते हैं, में अश्वतर नामक अति शीघ्रगामिनी मरुद् रश्मियां भी अन्य पूर्वोक्त मरुद् रश्मियों के साथ-२ विद्यमान होती हैं। ऐसी मरुद् रश्मियों से उत्पन्न आश्वतर बुलिल नामक मरुद् रश्मियां उत्पन्न होती हैं। यहाँ 'बुलिलः' पद "बल प्राणने धान्यावरोधे च" धातु से "सलिकल्यनिमहिमडिमण्डिशण्डिपिण्डितुण्डिकुकिभूभ्य इलच्" (उ.को.१.५४) से इलच् प्रत्यय होकर 'बलिलः' शब्द निष्पन्न होता है। यह 'बुलिलः' शब्द इसी का छान्दस रूप प्रतीत होता है। इसी प्रकार यह शब्द "बुल निमज्जने" धातु से भी इलच् प्रत्यय होकर बन सकता है। इस प्रकार 'बुलिल' मरुद् रश्मियां ऐसी मरुद् रश्मियां होती हैं, जो आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग में विद्यमान पदार्थ में सर्वत्र गहराई से डूबकर

अर्थात् व्याप्त होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को रोकने और संचित करने में विशेष समर्थ होती हैं। ये छन्द रश्मियां विश्वजित् {विश्वजित् = एकाहो वै विश्वजित् (कौ.ब्रा.२५.११), इन्द्रो विश्वजिद् इन्द्रो हीदं सर्वं विश्वमजयत् (कौ.ब्रा.२४.१), सर्वं वै विश्वजित् (श.१०.२.५.१६), स कृत्स्नो विश्वजिद् योऽतिरात्रः (कौ.ब्रा.२५.१४)। एकाह = ज्योतिर्वा एकाहः (कौ.ब्रा.२५.३), प्रतिष्ठा वा एकाहः (ऐ.६.८; कौ.ब्रा.२४.२; शां.आ.२.१६)} अर्थात् आदित्य लोकों के अन्दर सभी क्रियाओं को नियंत्रित करने वाले ज्योतिर्मय इन्द्र तत्त्व की होता अर्थात् आदान-प्रदान करने वाली बनने का प्रयास करती हैं किंवा बनने लगती हैं। पूर्वोक्त दो शस्त्र मैत्रावरुण एवं ब्राह्मणाच्छंसी मध्यंदिन सवन में ही नाभानेदिष्ठ, वालखिल्य एवं वृषाकपि आदि ऋषि प्राण रश्मियों को प्रेरित करके तीन पूर्वोक्त सूक्तरूप छन्दरश्मिसमूहों को उत्पन्न करते हैं। ये रश्मिसमूह बृहती और त्रिष्टुप् छन्दरश्मिसमूहों की प्रधानता वाले होने के कारण माध्यन्दिनसवन के अनुकूल होते हैं। इनका सम्बन्ध आकाश तत्त्व से विशेष होता है। ये अपने तीव्र तेज और बलों से आदित्य लोकों के निर्माण में महती भूमिका निभाते हैं। इस विषय में हम पूर्व में विस्तार से लिख ही चुके हैं। यहाँ प्रसंग यह है कि अकस्मात् एक हलचल के रूप में कभी-२ उपर्युक्त 'बुलिल' नामक पदार्थ इसी माध्यन्दिन अवस्था में ही अच्छावाक शस्त्र को प्रेरित करके इस माध्यन्दिन सवन अवस्था में ही उपर्युक्तानुसार होता बनकर इस खण्ड की प्रथम कण्डिका में वर्णित एवयामरुत् ऋषि प्राण

प्र वो॑ म॒हे म॒तयो॑ यन्तु॒ विष्ण॑वे म॒रुत्व॑ते गिरि॒जा ए॑व॒याम॑रुत्।
प्र शर्धा॑य॒ प्रय॑ज्यवे सु॒खाद॑ये त॒वसे॑ भ॒न्दद्दि॑ष्टये॒ धुनि॑व्रताय॒ शव॑से॥१॥ (ऋ.५.८७)

सूक्तरूप रश्मिसमूह को उत्पन्न कराने का बलात् प्रयास करता है और वे रश्मियां उत्पन्न हो भी जाती हैं। ये रश्मियां जगती और अतिजगती-छन्दस्क होने से यहाँ इनकी उत्पत्ति समीचीन नहीं है। इस कारण इनकी उत्पत्ति आदित्य लोकों के निर्माण में एक विकृति है, जो कभी-२ उत्पन्न हो सकती है॥

नोट- इसका वैज्ञानिक भाष्यसार अगली कण्डिकाओं के साथ देखें।

३. तद्ध तथा शस्यमाने गौश्ल आजगाम; स होवाच,-होतः कथा ते शस्त्रं विचक्रं प्लवत इति॥
किं ह्यभूदिति॥
एवयामरुदयमुत्तरतः शस्यत इति; स होवाचेन्द्रो वै मध्यन्दिनः, कथेन्द्रं मध्यन्दिनान्निनीषसीति?॥
नेन्द्रं मध्यन्दिनान्निनीषामीति होवाच॥
छन्दस्त्विदममध्यन्दिनसाच्ययं जागतो वाऽतिजागतो वा सर्वं वा इदं जागतं वाऽतिजागतं वा; स उ मारुतो मैव शंसिष्टेति॥
स होवाचाऽऽरमाच्छावाकेत्यथ हाऽस्मिन्ननुशासनमीषे॥
स होवाचैन्द्रमेष विष्णुं न्यङ्गं शंसत्वथ त्वमेतं होतरुपरिष्टाद् रौद्र्यै धाय्यायै पुरस्तान्मारुतस्याप्यस्याथा इति॥
तद्ध तथा शंसयांचकार; तदिदमप्येतर्हि तथैव शस्यते॥४॥

व्याख्यानम्- जब इस प्रकार की विकृति कभी आदित्य लोकों में आती है, तब एक गौश्ल नामक सूक्ष्म पदार्थ वहाँ उत्पन्न हो जाता है। इस 'गौश्ल' नामक पदार्थ के विषय में सायणभाष्य में पाद टिप्पणी के रूप में कुछ ऋषियों के वचन दर्शाये हैं-

'गौश्लः गौश्रः अभिन्नः' (शां.ब्रा.१६.६.२३.४)। 'स च गुश्रेरपत्यम्। गुश्रिः कुश्रिश्च स्यादभिन्नः।

स त्वेकः कुश्रिर्यज्ञवचसः' (श.१०.६.५.६), अथापरः 'कुश्रिर्वाजश्रवसः' (श.१४.६.४.३३; १०.५.४.१) इन वचनों से यह संकेत मिलता है कि गौश्ल ऋषि प्राण और कुश्रि नामक प्राण रूपी सूक्ष्म पदार्थ दोनों एक ही हैं। हमारे मत में कुश्रिः शब्द ''कुश संश्लेषणे = गले लगाना, लपेटना'' एवं ''कुशि भासार्थः = चमकना'' से अदिशदिभूशुभिभ्यः क्रिन् (उ.को.४.६६) से क्रिन् प्रत्यय होकर निष्पन्न होता है। इस प्रकार गौश्ल नामक ऋषि एक ऐसा सूक्ष्म प्राण है, जो वेगवान् संयोज्य कणों को घेरता, लपेटता हुआ संयोजक वलों और तेज से विशेष युक्त होता है। यहाँ ग्रन्थकार ने 'गौश्ल' एवं 'बुलिल' ऋषि प्राण रश्मियों का संवाद दर्शाकर अपनी शैली में इस प्रक्रिया को स्पष्ट किया है। {कथा = कथा कथम् (नि.६.३०)} इसका आशय यहाँ यह है कि बुलिल नामक ऋषि प्राण द्वारा उत्पन्न एवयामरुत् सूक्तरूप रश्मिसमूह {चक्रम् = वज्रो वै चक्रम् (तै.ब्रा.१.४.४.१०; जै.ब्रा.१.५१.)} पूर्वोत्पन्न त्रिष्टुप् एवं बृहती छन्द रश्मियुक्त अवस्था को भी वज्रविहीन अर्थात् अशक्त कर देता है, जिससे उस समय विद्यमान समस्त पदार्थ विकृति और दुर्वलता को प्राप्त होकर अस्त-व्यस्त गति करने लगता है। इसी वात को ऋषि ने संवाद की शैली में इस प्रकार कहा है-

'गौश्ल' नामक महर्षि ने 'बुलिल' नामक महर्षि को कहा कि हे होता! तुम्हारा यह एवयामरुत् शस्त्र विना पहिए की गाड़ी के समान कैसे चलता है? इस पर 'बुलिल' ऋषि ने कहा क्या हुआ अर्थात् क्यों एक पहिए की गाड़ी वता रहे हो?।।+।।

इस पर गौश्ल ऋषि कहते हैं (यह केवल ग्रन्थकार की शैली है) जिसका आशय यह है कि पूर्वोक्त एवयामरुत् नामक सूक्तरूप रश्मिसमूह, जिसे 'बुलिल' नामक ऋषि प्राण रश्मियां अच्छावाकरूपी शस्त्र को वलपूर्वक प्रेरित करके पूर्वोक्तानुसार उत्पन्न कराती हैं, वे एवयामरुत् रश्मियां वस्तुतः त्रिष्टुप् और वृहती प्रधान माध्यंदिन अवस्था के पश्चात् अर्थात् जगती सवन में ही उत्पन्न होती हैं। यह माध्यन्दिनसवन इन्द्र तत्त्व की प्रधानता वाला होता है। उस स्थिति में तत्काल ही एवयामरुत् छन्द रश्मियां, जो मरुद् देवताक होती हैं, उत्पन्न होकर इन्द्र तत्त्व को माध्यन्दिनसवन रूपी स्थिति से मानो निष्कासित कर देती हैं अर्थात् इन्द्र तत्त्व अति दुर्वल हो जाता है, जिससे आदित्य लोक निर्माण की प्रक्रिया अस्त-व्यस्त वा सुस्त हो जाती है। त्रिष्टुप् और वृहती प्राण रश्मियां अस्थिर और अशक्त होने लगती हैं।।

यहाँ मानो बुलिल प्राण रश्मियां गौश्ल प्राण रश्मियों से कहती हैं कि नहीं, मैं माध्यन्दिनसवन से इन्द्र को नहीं निकालना चाहती और न ही त्रिष्टुप् और वृहती छन्द रश्मियां दुर्वल होकर आदित्य लोकों के तेज और वल को क्षीण कर रही हैं अर्थात् आदित्य की सभी क्रियाएं यथावत् हो रही हैं, उस समय मानो 'गौश्ल' ऋषि प्राण रश्मियां कहती हैं कि ये एवयामरुत् छन्द रश्मियां माध्यन्दिनसवन के योग्य नहीं हैं क्योंकि ये जगती वा अतिजगती छन्दस्क हैं। इनका प्रकाशन त्रिष्टुप् और वृहती छन्द रश्मियों की उत्पत्ति के समय नहीं होना चाहिए क्योंकि जगती छन्द रश्मियां सम्पूर्ण आदित्य लोकों में व्याप्त होने वाली होती हैं, जवकि त्रिष्टुप् और वृहती छन्द रश्मियां सम्पूर्ण आदित्य लोकों में व्याप्त होने के साथ-२ केन्द्रीय भागों में सघनता से विद्यमान होती हैं। इसी कारण आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग अधिक वल और तेज से युक्त होते हैं। यदि जगती छन्द रश्मियां त्रिष्टुप् और वृहती छन्द रश्मियों वाली माध्यंदिन अवस्था में ही उत्पन्न और तीव्र रूप से सक्रिय हो जायें, तो वे त्रिष्टुप् और वृहती छन्द रश्मियों को भी अपने प्रभाव से सम्पूर्ण आदित्य लोक में फैला देती हैं, जिससे उनकी विरलता की स्थिति उत्पन्न होकर सम्पूर्ण पदार्थ के वल और तेज को क्षीण कर देती हैं। इसके साथ ही वे छन्दरश्मियां मरुद्देवताक होती हैं, इन्द्र-देवताक नहीं। इस कारण इन्द्रतत्त्व भी दुर्वल हो जाता है। यहाँ यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि हम इस ग्रन्थ में अनेकत्र लिख चुके हैं कि इन्द्रतत्त्व मरुद् रश्मियों को अवशोषित करके वलवान् होता है। इस कारण इन्द्रतत्त्व को मरुद्वान् भी कहते हैं, तव यहाँ मरुद्देवताक छन्द रश्मियों के द्वारा इन्द्र तत्त्व के दुर्वल होने की वात क्यों कही गयी है? इस विषय में हमारा मत यह है कि जव इन्द्रतत्त्व को समृद्ध करने वाली विभिन्न छन्द रश्मियां उत्पन्न हो ही रही होती हैं, किंवा इन्द्रतत्त्व उत्पन्न हो ही रहा होता है, उस समय उनको अर्थात् इन्द्रतत्त्व एवं उनको उत्पन्न करने वाली छन्द रश्मियों की अपेक्षा मरुद्रश्मियां एवं उनको उत्पन्न करने वाली छन्दरश्मियों का सघनरूप में उत्पन्न होना उचित नहीं है। यह उसी प्रकार हानिकारक हो सकता है, जिस प्रकार किसी प्राणी को उसके आहाररूप पदार्थ में ही डुवो देना। जैसे- एक चींटी मधु के वाहर रहकर तो मधु का रस सुगमता से ले सकती है परन्तु मधु

में डुबाकर वह उसका रस लेने की बजाय अपने प्राण ही खो बैठती है। इस कारण यह एवयामरुत् छन्द रश्मिसमूह माध्यन्दिन सवन के पश्चात् तृतीय सवन में ही उत्पन्न होता है और मरुद्रश्मियां इन्द्रतत्त्व के साथ नहीं, बल्कि उसकी अनुगामिनी होती हुई उत्पन्न होती हैं। इसलिए कहा गया है-

इन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानः। (मै.२.११.१)

यहाँ यह प्रश्न भी उपस्थित हो सकता है कि माध्यन्दिन सवन में मरुद्देवताक छन्द रश्मियां क्या किंचिदपि विद्यमान वा उत्पन्न नहीं होती? इसके उत्तर में हमारा मत है कि अवश्य उत्पन्न होती हैं परन्तु उनकी इतनी सघनता नहीं होती। कदाचित् जगती छन्द वाली रश्मियों से सम्बन्धित वा उनसे समृद्ध होने वाली मरुद् रश्मियां विद्यमान नहीं होती। हम इस प्रकार की एवयामरुत् संज्ञक छन्द रश्मिसमूह के दुष्प्रभाव को पूर्व में दर्शा ही चुके हैं।

यहाँ यह दो ऋषियों का संवाद वस्तुतः ग्रन्थकार की अपनी एक शैली है, जिसके माध्यम से वे इस विषय को स्पष्ट करना चाहते हैं। उस संवाद को हमें उसी दृष्टि से समझना चाहिए।।+।।

इसके पश्चात् उपर्युक्त गौश्ल ऋषि प्राण के द्वारा 'बुलिल' ऋषिप्राण को ताड़ित वा नियंत्रित किया जाता है। 'गौश्ल' ऋषिप्राण 'बुलिल' ऋषिप्राण की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होता है। इस कारण उसके द्वारा नियंत्रित वा ताड़ित 'बुलिल' प्राणरश्मियां अच्छावाक शस्त्ररश्मियों को एवयामरुत् सूक्तरूप छन्दरश्मियों को उत्पन्न करने से रोकती हैं और आदित्य लोकों में इन्द्रतत्त्व एवं त्रिष्टुबादि छन्द रश्मियों की दुर्बलता एवं तेजहीनता समाप्त होने लगती है और बुलिल प्राणरश्मियां पूर्णरूप से गौश्ल प्राणरश्मियों के नियंत्रण और प्रेरण में आ जाती हैं।।

तदनन्तर गौश्ल प्राणरश्मियों की प्रेरणा से बुलिल नामक प्राणरश्मियां अच्छावाक शस्त्ररूप रश्मियों को प्रेरित करती है। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"द्यौर्नय इन्द्रेत्यच्छावाकः।"

"प्रत्येवयामरुदित्येतदाचक्षते।" (आश्व.श्रौ.८.४.१०,११)

यद्यपि इस कण्डिका से किसी इन्द्रदेवताक, साथ-२ विष्णु के लक्षण वाली ऋचा के उत्पन्न होने का संकेत मिलता है परन्तु महर्षि आश्वलायन के उपर्युक्त सूत्रों से यह सिद्ध होता है कि अच्छावाक की प्रेरणा से पूर्वोक्त भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिप्राण से इन्द्र-देवताक (ऋ.६.२०) सूक्तरूप रश्मिसमूह की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) द्यौर्न य इ॑न्द्राभि भूमा॒र्यस्त॒स्थौ र॒यिः शव॑सा पृ॒त्सु जना॑न्।
तं नः॑ सहस्र॑भरमुर्व॒रासां॑ द॒द्धि सू॑नो सहसो वृत्र॒तुर॑म्।।१।।

छन्द स्वराट्-पंक्ति। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से श्रेष्ठ बलों से युक्त इन्द्र तत्त्व विभिन्न संघात और संघर्षों में विभिन्न छन्दादि रश्मियों के द्वारा प्रकाशित होता हुआ नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को धारण करता है। वह असुर पदार्थ को शीघ्रता से नष्ट करके नाना प्रकार के पदार्थों का आदान-प्रदान करने में सक्षम होता है।

(२) दि॒वो न तुभ्य॒मन्वि॑न्द्र स॒त्रासु॒र्यं॑ दे॒वेभि॑र्धायि॒ विश्व॑म्।
अहिं॒ यद् वृ॒त्रम॒पो व॑व्रि॒वांसं॒ हन्नृ॑जीषि॒न्विष्णु॑ना सचा॒नः।।२।।

छन्द पंक्ति। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विष्णु अर्थात् व्यान रश्मियों से सम्पृक्त होकर नाना प्रकार की तन्मात्राओं का विभाग करता हुआ आच्छादक आसुर मेघ को नष्ट करता है। वह विभिन्न प्राण रश्मियों के द्वारा सतत प्रकाशित होता हुआ असुर तत्त्व में विद्यमान देव परमाणुओं को उससे पृथक् करके अनुकूलता से धारण करता है।

(३) तू॒र्वन्नोजी॑यान्त॒वस॒स्तवी॑यान्कृ॒तब्र॑ह्मेन्द्रो॑ वृ॒द्धम॑हाः।
राजा॑भव॒न्मधु॑नः सो॒म्यस्य॒ विश्वा॑सां॒ यत्पु॒रां द॒र्त्नुमाव॑त्।।३।।

छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से विभिन्न सम्पीडक और संयोजक बलों को धारण करने वाला इन्द्र तत्त्व महान् प्राण रश्मियों से समृद्ध होकर असुरादि पदार्थों को नष्ट करता है। वह विभिन्न सोम एवं प्राण रश्मियों को संयुक्त करके बाधक पदार्थों को नियंत्रित करके विभिन्न परमाणुओं आदि पदार्थों की रक्षा करता है।

(४) शतैरपद्रन्पणयं इन्द्रात्र दशोणये कवयेऽर्कसातौ।
वधैः शुष्णस्याशुषस्य मायाः पित्वो नारिरेचीत्किं चन प्र।।४।।

छन्द भुरिक्पंक्ति। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व {दश = दशेति वै सर्वमेतावती हि संख्या (ऐ.आ.२.३.४)} असुरादि के अनेकों भेदक व्यवहारों के द्वारा अप्रभावित होता हुआ नाना प्रकार के संयोजक परमाणु आदि पदार्थों में सभी प्रकार की सूत्रात्मा वायु रश्मियों के विभिन्न व्यवहारों के लिए अपने बलों का अच्छी प्रकार विभाजन करता है, जिससे वे परमाणु आदि पदार्थ अपने संयोजक व्यवहारों को यथाविध सिद्ध करते हैं।

(५) महो द्रुहो अप विश्वायु धायि वज्रस्य यत्पतने पादि शुष्णः।
उरु ष सरथं सारथये करिन्द्रः कुत्साय सूर्यस्य सातौ।।५।।

छन्द निचृत्त्रिष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र अपनी वज्र रश्मियों के द्वारा सभी बाधक रश्मि आदि पदार्थों को दूर करके इस सृष्टि के व्यापक और महान् यज्ञ को धारण करता है। वह इन्द्र विभिन्न पदार्थों का सारथी एवं रथी बनकर सूर्यादि लोकों के अन्दर विद्यमान नाना प्रकार के पदार्थों को अपनी वज्र रश्मियों के द्वारा बल भी प्रदान करता है।

(६) प्र श्येनो न मदिरमंशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन्।
प्रावन्नमीं साप्यं ससन्तं पृणग्राया समिषा सं स्वस्ति।।६।।

छन्द भुरिक्पंक्ति। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {श्येनः = प्रवृद्धवेगः (म.द.ऋ.भा. ४.२६.६), श्येनः शंसनीयं गच्छति (नि.४.२४), श्येन आदित्यो भवति श्यायतेर् गतिकर्मणः (नि.१४.१३)। नमुचिः = पाप्मा वै नमुचिः (श.१२.७.३.४)} आदित्य लोकों के शीर्ष भागों में इन्द्र तत्त्व की विशेष सक्रिय किरणें बाधक असुरादि रश्मियों को अच्छी प्रकार मथती हैं। उन रश्मियों के मध्य सोये हुए देव परमाणुओं की रक्षा करता हुआ इन्द्र विभिन्न मरुद् वा छन्द रश्मियों के द्वारा पूर्ण करके संयोजक बलों से युक्त करता है।

(७) वि पिप्रोरहिमायस्य दृळहाः पुरो वज्रिञ्छवसा न दर्दः।
सुदामन्तद्रेक्णो अप्रमृष्यमृजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः।।७।।

छन्द पंक्ति। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से विशेष देदीप्यमान वज्र रश्मियों वाला इन्द्र तत्त्व विभिन्न मेघरूपी पदार्थों में विद्यमान तीक्ष्ण विद्युत् से युक्त पदार्थसमूह को यथायोग्य विभाजित करता हुआ नाना प्रकार की सृजन-क्रियाओं के लिए विभिन्न संयोजक परमाणुओं को उत्पन्न करता है।

(८) स वेतसुं दशमायं दशोणिं तूतुजिमिन्द्रः स्वभिष्टिसुम्नः।
आ तुग्रं शश्वदिभं द्योतनाय मातुर्न सीमुप सृजा इयध्यै।।८।।

छन्द निचृत्त्रिष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {सुम्नम् = प्रजा वै पशवः सुम्नम् (तै.ब्रा.३.३.६.६)} अनुकूल संयोजक बलों से युक्त छन्द रश्मियों वा परमाणु आदि पदार्थों से युक्त इन्द्र

तत्त्व {इभम् = इभाय महते (नि.१४.२६)। ओणिम् = ओण्यौ द्यावापृथिव्योर्नाम (निघं.३.३०)} नाना कर्मों के प्रकाशन के लिए व्यापनशील दस प्रकार की प्राण रश्मियों के आकर्षणादि महान् बल से युक्त दस प्रकार की प्रकाशित और अप्रकाशित रश्मियों को निकटता से और निरन्तर प्रकट करने लगता है।

(९) स ईं स्पृधो वनते अप्रतीतो बिभ्रद्वज्रं वृत्रहणं गभस्तौ।
तिष्ठद्धरी अध्यस्तेव गर्ते वचोयुजा वहत इन्द्रमृष्वम्॥९॥

छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से आच्छादक असुर रश्मियों को नष्ट करने वाली वज्र रश्मियों को धारण करने वाला इन्द्र तत्त्व अपनी परोक्ष आकर्षण और धारण शक्तियों से इस आकाश में वर्तमान रहता है। वह इन्द्र तत्त्व अनेक व्यापक वाग् रश्मियों के द्वारा निरन्तर वहन किया जाता है।

(१०) सनेम तेऽवसा नव्यं इन्द्र प्र पूरवः स्तवन्त एना यज्ञैः।
सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासीः पुरुकुत्साय शिक्षन्॥१०॥

छन्द स्वराट् पंक्ति। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {पुरुम् = पालकं धारकं वा (म.द.ऋ.भा.७.१६.३)} इन्द्रतत्त्व अन्तरिक्ष में सात प्रकार के मेघरूप पदार्थों का नानाविध विभाग करता है। वह विभिन्न पदार्थों का पालक और धारक होकर उनको अपने रक्षण और संयोजन आदि व्यवहारों से प्रकाशित करता है। वह हिंसक और संयोगादि क्रियाओं का क्षय करने वाली विभिन्न रश्मियों के गृहों को नष्ट करता है।

(११) त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूर्वरिवस्यन्नुशने काव्याय।
परा नववास्त्वमनुदेयं महे पित्रे ददाथ स्वं नपातम्॥११॥

इसका छन्द निचृत्पंक्ति है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {काव्यम् = त्रयी वै विद्या काव्यं छन्दः (श.८.५.२.४)।} इन्द्रतत्त्व सनातन प्राणरश्मियों से निरन्तर वृद्धि को प्राप्त करता हुआ उन्हीं की कामना एवं उनका अवशोषण करता रहता है। वह तीनों प्रकार की छन्द रश्मियों से समर्थ होकर अपतनीय, अनुकूल, आच्छादक बलों से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को व्यापक स्तर पर युक्त करता है।

(१२) त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः।
प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति॥१२॥

छन्द पंक्ति। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र असुरादि मेघों को कंपाने वाला अपनी उन तीक्ष्ण रश्मियों और प्रस्रवित होती हुई प्राण रश्मियों से अन्तरिक्ष में व्याप्त विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों की क्रियाओं को अनुकूलता प्रदान करता है। वह विभिन्न सक्रिय परमाणु आदि पदार्थों को नाना बाधाओं से पार लगाता हुआ अच्छी प्रकार रक्षित और समृद्ध करता है।

(१३) तव ह त्यदिन्द्र विश्वमाजौ सस्तो धुनीचुमुरी या ह सिष्वप्।
दीदयदित्तुभ्यं सोमेभिः सुन्वन्दभीतिरिध्मभृतिः पक्थ्य१र्कैः॥१३॥

छन्द स्वराट् पंक्ति। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {चुमुरिम् = अत्तारम् (म.द.ऋ.भा.६.१८.८)} वह इन्द्र सबको कंपाने वा भक्षण करने वाले विभिन्न तीक्ष्ण असुरादि पदार्थों के साथ संग्राम में निष्क्रिय देव पदार्थ को प्रकाशित और सक्रिय करता है। वह उन पदार्थों में विभिन्न सोम रश्मियों को व्याप्त करके उन्हें तीक्ष्ण बलों एवं ज्वलनशीलता आदि गुणों से संयोजक बनाता है।

अच्छावाक शस्त्ररूप रश्मिसमूह 'बुलिल" (गौश्ल ऋषि से प्रेरित) की प्रेरणा से इन उपर्युक्त १३

छन्द रश्मियों की उत्पत्ति के पश्चात् पूर्वोक्त घौर कण्व ऋषि प्राणरश्मियां बुलिल प्राण की प्रेरणा से ही रुद्रदेवताक एवं पादनिचृद्गायत्री छन्दस्क-

शं नः॑ कर॒त्यर्व॑ते सु॒गं मे॒षाय॑ मे॒ष्ये॑। नृभ्यो॒ नारि॑भ्यो॒ गवे॑॥६॥ (ऋ.१.४३.६)

को उत्पन्न करती हैं। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। {मेषः = सेचनकर्ता (तु.म.द.य.भा.२१.४०), एष वै प्रत्यक्षं वरुणस्य पशुर्यन्मेषः (श.२.५.२.१६), सारस्वतं मेषम् (तै.सं.१.८.२१.२; तै.ब्रा.१.८.५.६)। मेषी = मेषी सारस्वती (मै.४.७.८)} अन्य प्रभाव से रुद्ररूपा विभिन्न प्राणरश्मियां तथा आदित्य लोकों में विद्यमान विभिन्न त्रिष्टुप् रश्मियां आशुगामी विभिन्न रश्मियों, नाना प्रकार की वाग् रश्मियों से युक्त घोष करती हुई ज्वालाओं एवं उनकी रक्षिका रश्मियों, विभिन्न वाहक मरुद् रश्मियों एवं नाना प्रकार के प्रकाशित एवं अप्रकाशित परमाणुओं के मार्गों, गतियों और वलों को निरन्तर नियंत्रित और सुगम बनाती हैं।

इस एक छन्द रश्मि को ग्रन्थकार ने धाय्या कहा है। हम इस ग्रन्थ में पूर्व में प्रायः यह देखते आये हैं कि धाय्यासंज्ञक छन्दरश्मियां त्रिष्टुप्छन्दस्क होती हैं परन्तु यहाँ यह गायत्री छन्दरश्मि ही धाय्या का काम करती है। हमारे मत में यह छन्दरश्मि निचृत्साम्नी त्रिष्टुप् छन्दरश्मि का व्यवहार करती है। इसी के कारण वह धाय्या का प्रभाव भी दर्शाती है एवं भेदक शक्तिसम्पन्न रौद्ररूप भी दर्शाती है। इसी कारण इसे यहाँ धाय्या माना गया है। इस छन्द रश्मि की उत्पत्ति के पश्चात् पूर्वोक्त गौश्ल ऋषि प्राणरश्मियां बुलिल प्राणरश्मि के द्वारा अच्छावाक-रश्मियों के द्वारा एवयामरुत् प्राणरश्मियों को प्रेरित करके एवयामरुत् संज्ञक सूक्तरश्मियों को उत्पन्न कराती हैं। यह धाय्यासंज्ञक छन्दरश्मि माध्यन्दिन एवं तृतीयसवन के मध्य उत्पन्न होती है॥

इस प्रकार बुलिल प्राण रश्मियां गौश्ल ऋषि प्राण रश्मियों की प्रेरणा के अनुसार इन पूर्वोक्त छन्द रश्मियों को उत्पन्न करती हैं। इसी प्रकार इस समय भी ब्रह्माण्ड में, विशेषकर नाना आदित्य लोकों में बुलिल ऋषि प्राणरश्मियों के द्वारा पूर्वोक्त विकृत-अवस्था उत्पन्न होने पर गौश्ल प्राणरश्मियों के द्वारा वह विकृति दूर होकर नाना सृजन-क्रियाएं अनुकूलतापूर्वक होने लगती हैं॥

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न तारों की उत्पत्ति प्रक्रिया के चलते कभी-२ कुछ विकृतियाँ भी उत्पन्न हो जाती हैं। ये अनिष्ट विकृतियां किन्हीं प्राण रश्मियों के द्वारा विभिन्न छन्द रश्मियों की उत्पत्ति के क्रम में कुछ भेद उत्पन्न हो जाने के कारण उत्पन्न हो जाती हैं। इनके कारण तारों के नाभिकीय संलयन की क्रिया में व्यवधान आने लगता है। इसके साथ ही सम्पूर्ण तारे में विभिन्न प्रकार के विद्युत् बल क्षीण होने लगते हैं, जिससे सम्पूर्ण तारों की क्रियाएं अस्त-व्यस्त हो जाती हैं। वे तेजहीन वा न्यून तेज वाले होने लगते हैं। ऐसी ही एक विकृति का इन कण्डिकाओं में वर्णन किया गया है। इस विकृति को दूर करने के लिए कुछ प्राण रश्मियों की प्रेरणा से ८ पंक्ति, ४ त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुप् का एक समूह और १ गायत्री छन्द रश्मि उत्पन्न होती है। ये छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर इस विकृति को दूर करती हैं। इनसे विद्युत् चुम्बकीय बलों का विस्तार और वृद्धि होती है। डार्क एनर्जी का प्रभाव कम होता है। तारों के केन्द्रीय भागों एवं तारों की बाहरी परिधि में डार्क एनर्जी और डार्क मैटर से दृश्य पदार्थ का विशेष संघर्ष चलता रहता है। सूत्रात्मा वायु एवं व्यान रश्मियों के उत्कर्ष से प्रबल विद्युत् चुम्बकीय बल पुनः समृद्ध होकर नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया को समृद्ध करते हैं। दस प्रकार की विद्युत् चुम्बकीय तरंगें प्रकाशित वा अप्रकाशित रूप में उत्पन्न होने लगती हैं। इस अन्तरिक्ष में सात प्रकार के कॉस्मिक मेघ उत्पन्न होते हैं, जिनसे नाना प्रकार के लोकों की उत्पत्ति होती है। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पठनीय है॥

इति ३०.४ समाप्तः

अथ 30.5 प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. तदाहुर्यदस्मिन् विश्वजित्यतिरात्र एवं षष्ठेऽहनि कल्पते यज्ञः, कल्पते यजमानस्य प्रजातिः; कथमत्राशस्त एव नाभानेदिष्ठो भवत्यथ मैत्रावरुणो वालखिल्याः शंसति; ते प्राणा, रेतो वा अग्रेऽथ प्राणा; एवं ब्राह्मणाच्छंस्यशस्त एव नाभानेदिष्ठो भवत्यथ वृषाकपिं शंसति; स आत्मा, रेतो वा अग्रेऽथाऽऽत्मा, कथमत्र यजमानस्य प्रजातिः, कथं प्राणा अविक्लृप्ता भवन्तीति।।
यजमानं ह वा एतेन सर्वेण यज्ञक्रतुना संस्कुर्वन्ति; स यथा गर्भो योन्यामन्तरेवं संभवञ्छेते; न वै सकृदेवाग्रे सर्वः संभवत्येकैकं वा अङ्गं संभवतः संभवतीति।।
सर्वाणि चेत्समानेऽहन् क्रियेरन् कल्पत एव यज्ञः, कल्पते यजमानस्य प्रजातिरथैतं होतैवयामरुतं तृतीयसवने शंसति, तद्याऽस्य प्रतिष्ठा, तस्यामेवैनं तदन्ततः प्रतिष्ठापयति।।५।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि लिखते हैं कि विश्वजित् अर्थात् आदित्यलोकों, जिनमें इन्द्रतत्त्व की सदैव विशेष प्रधानता रहती है, के अन्दर पूर्वोक्त अतिरात्र (४.१४.२) एवं षष्ठ अहन् में विभिन्न प्रकार की रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों में संयोगादि प्रक्रिया विशेष समृद्ध व समर्थ होती है। उस समय इन आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों का निर्माण होने लगता है। इस प्रक्रिया में अनेकों संयोज्य परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों की उत्पत्ति भी होने लगती है। यहाँ एक प्रश्न इस प्रकार उत्पन्न किया जाता है कि ऐसा कैसे होता है? षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल एवं उसमें उत्पन्न होने वाली छन्द रश्मियों की उत्पत्ति खण्ड ५.११ से ही प्रारम्भ हो जाती है, जबकि नाभानेदिष्ठ सूक्तरूप छन्दरश्मिसमूह इसके पश्चात् उत्पन्न होता है। इस सूक्त की उत्पत्ति खण्ड ५.१४ व ५.१५ में व्याख्यात की गयी है। इस नाभानेदिष्ठ सूक्त की उत्पत्ति होतारूप मन एवं वाक्तत्त्व की प्रेरणा से होती है। इसकी चर्चा ६.२७.२ में की गयी है। इस सूक्तरूप रश्मिसमूह को वीर्यरूप कहा गया है। यहाँ प्रश्न यह है कि यदि मैत्रावरुण छन्दरश्मियां वालखिल्य ऋषि प्राणरश्मियों को प्रेरित करके पूर्वोक्त ६.२८.१ में वर्णित वालखिल्य सूक्तरूप रश्मिसमूह को उत्पन्न करती हैं और उस समय यदि होता की प्रेरणा से वीर्यरूप नाभानेदिष्ठ सूक्तरश्मियां उत्पन्न न हो पायी हों, तब मैत्रावरुण कैसे प्राणरूप वालखिल्यरश्मियों को उत्पन्न कर सकता है? जैसे गर्भ में पहले वीर्यस्थापन होता है, उसके उपरान्त ही उसमें भ्रूण व उसके अन्दर प्राणों का संचार होता है। इस कारण प्राण संचार से पूर्व वीर्य-सेक अनिवार्य होता है। इस प्रकार नाभानेदिष्ठ सूक्त की उत्पत्ति से पूर्व वालखिल्य सूक्तरूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति नहीं होनी चाहिए। इसी प्रकार ब्राह्मणांच्छसी द्वारा प्रेरित ६.२९.१ में वर्णित वृषाकपि सूक्त की उत्पत्ति भी नाभानेदिष्ठ सूक्त के पूर्व नहीं होनी चाहिए। जैसा कि हम पूर्व में लिख चुके हैं कि वृषाकपि सूक्त आत्मा अर्थात् शरीररूप है, इस कारण इसकी उत्पत्ति वीर्यरूप नाभानेदिष्ठ सूक्त की उत्पत्ति के पश्चात् ही होनी चाहिए। जब वीर्यरूप नाभानेदिष्ठ सूक्त की उत्पत्ति नहीं होगी, तब वृषाकपि सूक्त उत्पन्न कैसे हो सकेगा और कैसे विभिन्न संयोज्य परमाणु आदि पदार्थ आदित्य लोकों में, विशेषकर उनके केन्द्रीय भागों में उत्पन्न हो सकेंगे? कैसे उन सब पदार्थों में प्राणरूप वालखिल्य छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर उन्हें प्राणत्व अर्थात् गति व बल आदि से समृद्ध कर सकेंगी? इस सबका आशय है कि पूर्वोक्त बुलिल ऋषि प्राणरश्मियों द्वारा एवयामरुत् से पूर्व सभी क्रियाएं, विशेषकर नाभानेदिष्ठ सूक्त का प्रकाशन अनिवार्य है, अन्यथा आदित्य लोकों की उपर्युक्त कोई भी क्रियाएं सम्पादित नहीं हो पायेंगी। ध्यातव्य है कि यह मत ग्रन्थकार का नहीं है, बल्कि उन्होंने ऐसा सम्भावित प्रश्न उपस्थित किया है,

जिसका उत्तर उन्होंने अग्रिम कण्डिकाओं में दिया है।।

यहाँ ग्रन्थकार उपर्युक्त प्रश्न वा मत का समाधान करते हुए अपना मत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि प्राक्वर्णित सम्पूर्ण प्रक्रिया अर्थात् आदित्य लोकों के निर्माण की प्रक्रिया के साधनभूत पूर्वोक्त चारों शिल्प कर्म अर्थात् नाभानेदिष्ठ से एवयामरुत् तक सूक्तरूप छन्दरश्मियां सम्पूर्ण सर्गयज्ञ, इस प्रकरण में आदित्य लोकों के निर्माण की प्रक्रिया को संस्कृत करती हैं अर्थात् उन्हें अच्छी प्रकार से उत्पन्न व धारण करती हैं। इन सबके सम्मिलित योगदान से ही आदित्य लोकों के अन्दर नाना प्रकार के संयोज्य परमाणु आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं। जिस प्रकार गर्भाशय के अन्दर भ्रूण बढ़ता हुआ सोया रहता है। वह आरम्भ में ही अकस्मात् विकसित नहीं होता, बल्कि अंग-प्रत्यंग का धीरे-२ व क्रमिक विकास होता है। यहाँ ऐसा नहीं होता कि एक अंग के अभाव में दूसरा अंग उत्पन्न नहीं होता वा मर जाता, बल्कि सभी अंग परस्पर सम्बद्ध होते हुए भी क्रमिक व सतत विकसित होते हैं और उत्पन्न होने के पश्चात् उनका साथ-२ विकास भी होता है। हमारी दृष्टि में इस कथन का अभिप्राय यह भी है कि चारों शिल्पकर्म वा चारों पूर्वोक्त सूक्तरूप रश्मिसमूह क्रमशः परन्तु सतत उत्पन्न होते रहते हैं। ऐसा नहीं होता कि एक कर्म (सूक्त की उत्पत्ति प्रक्रिया व समृद्धि) के समाप्त होने पर ही दूसरा सूक्त उत्पन्न होवे, बल्कि एक क्रिया के प्रारम्भ होने के तत्काल पश्चात् दूसरी, पुनः तीसरी क्रिया वा सूक्तों की उत्पत्ति सतत होने लगती है। किसी सूक्त की उत्पत्ति-प्रक्रिया की पूर्ण सम्पन्नता के पश्चात् अगला शिल्पसूक्त उत्पन्न होवे, यह आवश्यक नहीं है। यह बात अगली कण्डिका से और भी स्पष्ट हो जाती है।।

किसी अहन् वा लोक में ये सभी चारों सूक्त सक्रिय हो जाएं, तभी उस अहन् वा लोक में होने वाली सभी क्रियाएं समर्थ होती हैं। उसी समय वहाँ विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ उत्पन्न व सक्रिय होते हैं। इस कारण पूर्वोक्त बुलिलरूप होतासंज्ञक प्राणरश्मियां तृतीय सवन में एवयामरुत् ऋषि प्राण रश्मियों को प्रेरित करके एवयामरुत् सूक्त को उत्पन्न कर ही देती हैं। सम्भावित विकृति को दूर करके यह उत्पत्ति कैसे होती है, यह हम पूर्व खण्ड में लिख चुके हैं। इस प्रकार एवयामरुत् सूक्त से जो प्रतिष्ठा अपेक्षित होती है, वह अन्त में प्राप्त हो ही जाती है। इससे स्पष्ट है कि यद्यपि ये सूक्त क्रमशः व सतत परस्पर एक दूसरे से जुड़े हुए उत्पन्न होते हैं परन्तु उनका पूर्ण प्रभाव अन्त में ही दृष्टि गोचर होता है और वह साथ-२ होता है। उनका प्रभाव सर्वथा पृथक्-२ कभी नहीं दिखाई देता, बल्कि मिश्रित सा होता है, ऐसा हमारा मत है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न लोकों की निर्माण प्रक्रिया के चलते विभिन्न प्रकार के छन्द रश्मि समूहों की उत्पत्ति होती है, जिनमें से उन चार प्रकार के समूह, जिनकी चर्चा व्याख्यान भाग में की गयी है, की उत्पत्ति इस प्रकार होती है कि प्रथम उत्पन्न होने योग्य समूह की उत्पत्ति प्रक्रिया प्रारम्भ होते ही क्रमानुसार द्वितीय समूह की उत्पत्ति प्रारम्भ हो जाती है। इसी प्रकार क्रमिक रूप से सभी समूहों की उत्पत्ति होती है। इस प्रक्रिया के चलते विभिन्न तारों की उत्पत्ति वा उनके किसी भाग विशेष की उत्पत्ति अनायास नहीं होती, बल्कि उनके केन्द्रीय भाग सर्वप्रथम बिन्दु रूप में प्रकट होकर धीरे-२ विस्तार होने लगता है। इस प्रकार तारों का विकास उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार गर्भ के अन्दर किसी भ्रूण का विकास होता है। जब तक गर्भ पूर्ण विकसित नहीं होता, तब तक प्राणी का रूप भी स्पष्ट नहीं होता, इसी प्रकार विकसित होते हुए अथवा संघनित होते हुए पदार्थ का तारे अथवा ग्रह आदि लोक का रूप धारण करना पूर्ण विकास वा उससे कुछ पूर्व ही हो पाता है।।

इति ३०.५ समाप्तः

ॐ अथ ३०.६ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. छन्दसां वै षष्ठेनाह्नाऽऽप्तानां रसोऽत्यनेदत्, स प्रजापतिरबिभेत्पराङ्यं छन्दसां रसो लोकानत्येष्यतीति; तं परस्ताच्छन्दोभिः पर्यगृह्णान्नाराशंस्या गायत्र्या, रैभ्या त्रिष्टुभः, पारिक्षित्या जगत्याः, कारव्ययाऽनुष्टुभस्तत्पुनश्छन्दःसु रसमदधात्।। सरसैर्हास्य च्छन्दोभिरिष्टं भवति, सरसैश्छन्दोभिर्यज्ञं तनुते, य एवं वेद।।

व्याख्यानम्– यहाँ आदित्य लोकों के निर्माण की एक घटना बतलाते हुए कहते हैं कि जब पूर्वोक्त विभिन्न प्रकार की क्रियाएं हो रही होती हैं, उस समय जो भी गायत्री आदि विभिन्न छन्द रश्मियां विद्यमान होती हैं, {आप्तम् आप्तानामर्दितानामिति षड्गुरुशिष्य (पाद - टिप्पणी सायणभाष्ये)। अर्दितः (अर्दयति वधकर्मा-निघं.२.१९; अर्दगतौ याचने च)। अनेद्ध अगलत् इति षड्गुरुशिष्यः (सायणभाष्ये पाद-टिप्पणी)। अति द्रुतम् इति षड्गुरुशिष्यः (सायणभाष्ये)} उनमें से जो छन्दरश्मियां अति तीव्र और भेदक शक्तिसम्पन्न हिंसकरूप में प्रकट होती हैं, {रसः वाङ्नाम (निघं.१.११)} उनकी रसरूप विभिन्न अक्षर रश्मियां द्रुतगति से बहने लगती हैं। वे रश्मियां अति शीघ्रता से उन लोकों के केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित होने लगती हैं, जिससे सम्पूर्ण आदित्य लोक कम्पायमान होने लगता है। उस समय ऐसा प्रतीत होने लगता है, मानो वे रश्मियां अन्य लोकों में न फैल जाएं। यहाँ यह ध्यातव्य है कि उन विभिन्न छन्द रश्मियों में से कुछ-२ अक्षररूप रश्मियां निकलकर एवं परस्पर संयुक्त होकर अतिहिंसक नवीन छन्द रश्मियों को उत्पन्न करती हैं। वे अति हिंसक छन्द रश्मियां ही अनिष्ट रूप धारण करके आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित होने लगती हैं। उसके पश्चात् मन एवं वाग्-रूप प्रजापति इसी समय कुन्तापसंज्ञक छन्दरश्मियों को उत्पन्न करते हैं। इन कुन्ताप रश्मियों में से नाराशंसी अर्थात् नराशंस सम्बन्धी छन्द रश्मियां गायत्री से स्रवित रसरूप रश्मियों को रोकने में विशेष भूमिका निभाती हैं। 'रेभ' शब्द से युक्त कुन्ताप रश्मियां त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की रसरूप रश्मियों को, 'परिक्षित' शब्द से युक्त कुन्ताप रश्मियां जगती छन्द रश्मियों की रसरूप रश्मियों को तथा 'कारु' शब्द से युक्त कुन्ताप रश्मियां अनुष्टुप् की रसरूप रश्मियों को रोकने में सहायक होती हैं। फिर ये सभी कुन्ताप रश्मियां उन रसरूप रश्मियों को उन्हीं छन्द रश्मियों में प्रतिष्ठित कर देती हैं, जिनसे उनका रिसाव हुआ था। इन कुन्ताप छन्द रश्मियों का वर्णन आगे इसी खण्ड में किया गया है। यहाँ यह संकेत मिलता है कि षष्ठ अहन् में इन चार प्रकार की छन्द रश्मियों के अतिरिक्त पंक्ति, बृहती एवं अतिच्छन्द रश्मियां भी उत्पन्न होती हैं, जिनके रसरूप अक्षरों का स्राव इस प्रक्रिया में नहीं होता। इसी कारण उनका वर्णन यहाँ नहीं किया गया है।।

इस प्रकार की स्थिति बनने पर अर्थात् विभिन्न कुन्ताप छन्द रश्मियों के द्वारा गायत्री आदि छन्द रश्मियों की स्रवित हुई रसरूप रश्मियां परस्पर संगम को प्राप्त होती हैं और उन्हीं संयुक्त रश्मियों के द्वारा ही आदित्य लोकों के निर्माण की प्रक्रिया विस्तृत होने लगती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार– तारों के निर्माण में कभी-२ कुछ छन्द रश्मियों के कुछ अवयव अन्तरिक्ष में रिस जाते हैं, जिसके कारण वे छन्द रश्मियां अपने प्रभावों को सम्पूर्णता से उत्पन्न नहीं कर पाती। उधर वे रिसी हुई छन्द रश्मियां परस्पर एक-दूसरे के साथ संयुक्त होकर अतिहिंसक रूप धारण कर लेती हैं। ये ऐसी हिंसक रश्मियां निर्माणाधीन तारों के केन्द्रीय भाग की ओर तेजी से प्रवाहित होने लगती हैं। इसके कारण सम्पूर्ण तारा कम्पायमान हो उठता है। ऐसी रश्मियां अन्य लोकों में भी प्रविष्ट होकर उन्हें भी कम्पायमान करने का प्रयास करती हैं। उसी समय कुछ ऐसी छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जो उन रिसी हुई रश्मियों को नियंत्रित करके वापिस उन्हीं छन्द रश्मियों के साथ मिश्रित कर देती हैं, जिससे लोकों में

हो रहा अनिष्ट विक्षोभ और अस्थिरता समाप्त होकर सम्पूर्ण प्रक्रिया यथावत् चलने लगती है।।

२. नाराशंसीः शंसति; प्रजा वै नरो वाक्शंसः, प्रजास्वेव तद्वाचं दधाति, तस्मादिमाः प्रजा वदत्यो जायन्ते य एवं वेद; यदेव नाराशंसी३ः।।
शंसन्तो वै देवाश्च ऋषयश्च स्वर्गं लोकमायंस्तथैवैतद्यजमानाः शंसन्त एव स्वर्गं लोकं यन्ति।।
ताः प्रग्राहं शंसति, यथा वृषाकपिं; वार्षाकपं हि वृषाकपेस्तन्न्यायमेति।।
तासु न न्यूङ्खयेन्नी वीव नर्देत् स हि तासां न्यूङ्खः।।

व्याख्यानम्- विशेष ज्ञातव्य - {यहाँ सर्वप्रथम महर्षि आश्वलायन का कथन उद्धृत करते हैं}-

"तस्मादूर्ध्वं कुन्तापम्।" (आश्व.श्रौ.८.३.७)

इस पर टीका करते हुए आचार्य नारायण का कथन है-

"तस्माद्वृषाकपेरूर्ध्वं कुन्तापं शंसेत्। तस्मादूर्ध्वमितिवचनान्माध्यन्दिने वृषाकपौ प्रविष्टे तदनन्तरं कुन्तापस्यासति प्रवेशे तृतीयसवनेऽपि तस्य प्रयोगो नास्तीति गम्यते।"

इससे संकेत मिलता है कि कुन्ताप छन्द रश्मियां पूर्वोक्त वृषाकपि सूक्त की उत्पत्ति के पश्चात् एवं एवयामरुत् सूक्त से पूर्व उत्पन्न होती हैं। यहाँ हम कण्डिकाओं का व्याख्यान करने से पूर्व इन कुन्ताप सूक्त रश्मियों के विषय में कुछ लिखना आवश्यक समझते हैं। इन सूक्तों की गणना १० है। अथर्ववेद के काण्ड २० के सूक्त १२७ से १३६ तक कुन्तापसूक्त माने जाते हैं। अथर्ववेद के आध्यात्मिक व्याख्याकार प्रो. विश्वनाथ विद्यालंकार ने अपने अथर्ववेदभाष्य में लिखा है कि ऋषि दयानन्द सरस्वती इन सूक्तों को संहिताभाग का अंग न मानकर प्रक्षिप्त मानते हैं। प्रो. विश्वनाथ ने इनका भाष्य किया है, पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदी एवं श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने भी इन सूक्तों का भाष्य किया है। इनमें से पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदी ने इन ऋचाओं के छन्द और देवताओं का भी वर्णन किया है लेकिन ऋषि का उल्लेख किसी ने नहीं किया है। इन सूक्तों का आश्वलायन श्रौतसूत्र के अतिरिक्त गोपथ ब्राह्मण उत्तरभाग (६.१२) में भी उल्लेख है। इस कारण इन सूक्तों की प्रामाणिकता को नकारा नहीं जा सकता। इनके ऋषि का उल्लेख न होना इस बात का परिचायक प्रतीत होता है कि इनका प्रचार-प्रसार आदि करने वाला कोई ऋषि नहीं हुआ। इस सूक्त की प्रामाणिकता में ऋषि दयानन्द सरस्वती से भी महान् तीन महर्षियों (आश्वलायन श्रौतसूत्र, गोपथ एवं ऐतरेय ब्राह्मण के रचयिताओं) की साक्षी होने के पश्चात् हम इन सूक्तों की प्रामाणिकता में सन्देह करें, यह कदापि उचित नहीं है परन्तु ऋषि दयानन्द का वचन भी मिथ्या नहीं हो सकता। इस कारण हमारा मत यह है कि भले ही इन सूक्तों को वेद संहिताओं का भाग न माना जाए परन्तु सर्ग-प्रक्रिया के दौरान इनकी उत्पत्ति अवश्य होती है। हम इस ग्रन्थ में पूर्व में भी अनेक ऐसे उदाहरण दे चुके हैं। यद्यपि महर्षि ऐतरेय महीदास ने अपने इस ग्रन्थ में स्पष्टरूप से कुन्ताप सूक्तों का उल्लेख नहीं किया है परन्तु इसी प्रकरण के उल्लेख में महर्षि आश्वलायन के उपर्युक्त वचन में कुन्ताप सूक्तों का उल्लेख होना ही इस ग्रन्थ से साक्षात् सम्बन्ध सिद्ध करता है। इन सूक्तों के ऋषि के विषय में हमारा मत है कि जिस ऋषिप्राण से इनकी उत्पत्ति होती है, उसी का नाम कुन्ताप है। इसी कारण इन सूक्तों को कुन्तापसूक्त कहते हैं। दूसरा विकल्प यह भी हो सकता है कि इन १० सूक्तरूप रश्मिसमूहों की उत्पत्ति १० सूक्ष्म ऋषि प्राणरश्मियों से होती है। उन्हीं ऋषि प्राण रश्मियों के समुदाय को कुन्ताप कहते हों, जैसे कि अनेक सूक्ष्म पृथक्-२ ऋषि प्राणरश्मियों का एक सामूहिक नाम वालखिल्य है, जिसके आधार पर ही अनेक सूक्तों को वालखिल्य कहा जाता है। पुनरपि सभी १० सूक्तों का एक ही ऋषि कुन्ताप है, यह विचार अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। कुन्ताप ऋषि के विषय में एक ऋषि का कथन है-

"कुयं ह वै नाम कुत्सितं भवति तद्यत्तपति तस्मात्कुन्तापाः तत्कुन्तापानां कुन्तापत्वम्।" (गो.उ.६.१२)

इस वचन से यह सिद्ध है कि कुन्ताप एक ऐसा सूक्ष्म प्राण है, जो कुत्सित अर्थात् वज्रयुक्त विकिरणों को और भी तपाता है अर्थात् उन्हें अधिक बलशाली एवं उष्ण बनाता है। कुन्ताप ऋषि प्राणरश्मि के विषय में स्पष्ट करने के पश्चात् अब क्रमशः कण्डिकाओं का व्याख्यान करते हैं।

कुन्ताप रश्मियों की उत्पत्ति के क्रम में सर्वप्रथम 'नराशंस' शब्द से युक्त छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। यहाँ आचार्य सायण ने नाराशंसी से

इदं जना उप॑ श्रुत नराशंस स्तविष्यते। षष्टिं सहस्रा॑ नवतिं च॑ कौरम आ रुशमेषु दद्महे।।१।।

इत्यादि (अथर्व.२०.१२७.१-३) तृच का ग्रहण किया है। पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदी के अनुसार इस सम्पूर्ण सूक्त का देवता प्रजापति वा इन्द्र है। ये छन्द रश्मियां निम्न क्रमानुसार उत्पन्न होती व प्रभाव दर्शाती हैं-

(१) इदं जना उप॑ श्रुत नराशंस स्तविष्यते। षष्टिं सहस्रा॑ नवतिं च॑ कौरम आ रुशमेषु दद्महे।।१।।

इसका छन्द पथ्यावृहती होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व के साथ-२ विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों की संसर्ग प्रक्रिया समुचितरूपेण समृद्ध होती है। विभिन्न भ्रान्त छन्दरश्मियां अपने-२ उचित मार्गों को प्राप्त करने में समर्थ होती हैं। अन्य प्रभाव से {कौरमः कौ रमते यः सः (कु = कु+डु - आप्टेकोषः। कु = भिनभिनाना, ध्वनि करना)} इस उपर्युक्त अनिष्ट क्रिया को विभिन्न मरुद् वा छन्द रश्मियों के द्वारा तेज प्राप्त करके विभिन्न उत्पन्न वा स्रवित रसरूप अक्षररश्मियां दूर करती तथा समुचित रूप प्रदान करती हैं। वे साठ प्रकार के बल एवं गतियों को प्राप्त करके अपने हिंसक बलों व मार्गों में प्रक्षिप्त करके उन्हें निर्मूल करती हैं।

(२) उष्ट्रा यस्य॑ प्रवाहणो॑ वधूमन्तो द्विर्दश॑। वर्ष्मा रथ॑स्य नि जि॑हीडते दिव ईषमा॑णा उपस्पृशः॑।।२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव उपर्युक्तवत्। अन्य प्रभाव से {वधूः = वध्वः नदीनाम (निघं.१.१३)। ईषति = गतिकर्मा (निघं.२.१४), ईष गतिहिंसादर्शनेषु। हेळते क्रुध्यतिकर्मा (निघं.२.१२)।} इन्द्रतत्त्व की रमणीय वाहिका प्राणापान रश्मियां विभिन्न आशुगामिनी रश्मियों से सम्बद्ध होती हुई बीस प्रकार की विशेष रश्मियों को उत्पन्न करती हैं। ये रश्मियां आकाश में ऊष्मा को खो चुकी विभिन्न रश्मियों को निरन्तर बल प्रदान करके उत्तेजित करने लगती हैं।

(३) एष इषाय॑ मामहे शतं निष्कान्दश स्रजः॑। त्रीणि॑ शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम्।।३।।

छन्द निचृदनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र अपनी ओर आकर्षित विभिन्न परमाणुओं को अनेक प्रकार के धारक बल प्रदान करके दस प्रकार की ऐसी रश्मियों, जो छल्लेनुमा (रिंग) आकृति लिए होती हैं, ३०० प्रकार की विशेष बल और गति से सम्पन्न रश्मियों एवं दस हजार प्रकार की विभिन्न वायु रश्मियों से युक्त करता है। यहाँ ग्रन्थकार ने विभिन्न आशुगामी मरुद् रश्मियों को प्रजा कहा है। ये उपर्युक्त तीनों प्रकार की छन्द रश्मियां विभिन्न मरुद् रश्मियों को नाना प्रकार की छन्दादि रश्मियों के साथ संयुक्त करती हैं और ऐसी वे छन्द रश्मियां विभिन्न प्रजारूप परमाणुओं को समुचित गति और तेज प्रदान करती हैं, जिससे उन परमाणु आदि पदार्थों को नाना प्रकार के बल और समुचित मार्ग प्राप्त होते हैं।

इस कण्डिका के और अधिक स्पष्ट व्याख्यान के लिए "तं सनाराशंसं शंसति.....।" (६.२७.३) का व्याख्यान अवश्य पढ़ें।।

इन उपर्युक्त कुन्ताप छन्द रश्मियों के उत्पन्न व सक्रिय होने के कारण विभिन्न देव अर्थात् प्राण रश्मियां एवं ऋषिरूप प्राणरश्मियां तारों के केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित होने लगती हैं। इन दोनों ही प्रकार की रश्मियों के द्वारा विभिन्न संयोज्य परमाणु प्रकाशित होते हुए केन्द्रीय भाग की ओर गमन करने लगते हैं तथा वे अनिष्ट रश्मियों, जो पूर्वोक्त प्रकार से रसरूप रश्मियों से उत्पन्न होती हैं, का केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है। इस प्रकार इन आदित्य लोकों का अनिष्टरूप से विक्षुब्ध और कम्पायमान होना बंद हो जाता है।।

इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"तस्याऽऽदितश्चतुर्दश विग्राहं निनर्द शंसेत्।" (आश्व.श्रौ.८.३.८)

इस सूत्र के प्रकाश में ग्रन्थकार कहते हैं कि उपर्युक्त नाराशंसी छन्द रश्मियां प्रग्राहरूप में प्रकाशित होती हैं। यहाँ 'प्रग्राह' शब्द का अर्थ करते हुए आचार्य सायण ने लिखा है- "पादे पादे प्रगृह्य अवसाय शंसेत्"।

इसका तात्पर्य यह है कि इन छन्द रश्मियों की उत्पत्ति एक-२ पाद के मध्य अवसानरूप में होती है अर्थात् ये छन्द रश्मियां इस प्रकार उत्पन्न होती हैं कि उनके प्रत्येक पाद के मध्य कुछ अवकाश होता है, जैसा कि वृषाकपि सूक्तरूप छन्दरश्मियों के पादों के मध्य होता है। इस विषय में ६.२९.१ द्रष्टव्य है, जहाँ वृषाकपि छन्दरश्मियों के पादों के न्यूङ्ख करने का वर्णन है। इससे यह स्पष्ट होता है कि उन रश्मियों के पादों के मध्य अवकाश अवश्य होता है। यदि ऐसा न हो, तो उन छन्द रश्मियों को न्यूङ्ख किया ही नहीं जा सकता। हम न्यूङ्ख क्रिया के विषय में पूर्व में अनेकत्र लिख चुके हैं। यहाँ इन कुन्ताप रश्मियों के पादों के मध्य अवकाश की चर्चा तो की गयी है परन्तु यहाँ न्यूङ्ख क्रिया का कोई संकेत नहीं किया गया है। इन दोनों ही प्रकार की छन्द रश्मियों में पादों के मध्य अवकाश का होना सामान्य है। इस कारण इन कुन्ताप रश्मियों का वृषाकपि रश्मियों से विशेष सम्बन्ध होता है। {न्यायः = नितराम् + आयः अर्थात् सम्पूर्णप्राप्ति इति मे मतम्}। ये कुन्ताप रश्मियां अपने प्रग्राह रूप के द्वारा आदित्य लोकों में पूर्वोक्त वृषाकपि सूक्त रश्मियों के साथ विशेष सम्पर्क करती हुई तारों में विद्यमान विभिन्न प्रकार के बलों की वृद्धि करने में सहायक होती हैं। इसके साथ ही वे वृषाकपिसंज्ञक छन्द रश्मियों {वृषाकपिः = आदित्यो वै वृषाकपिः (गो.उ.६.१२)} एवं वृषाकपिरूप आदित्य लोक को सम्पूर्णरूप से व्याप्त कर लेती हैं, जिससे उस लोक में आयी हुई पूर्वोक्त विकृति दूर हो जाती है।।

यहाँ ग्रन्थकार ने इन कुन्ताप रश्मियों का वृषाकपि रश्मियों से भेद बतलाते हुए कहा है कि ये कुन्ताप छन्द रश्मियां वृषाकपि छन्द रश्मियों की भाँति न्यूङ्खकृत नहीं होती, {वीव = वि + इवपदयोः समासः। विरिति शकुनिनाम वेतेर्गतिकर्मणः (नि.२.६)} बल्कि ये तेज व गति से सम्पन्न होती हुई तीव्र ध्वनियों को उत्पन्न करती हैं। यहाँ 'निनर्द' का स्वरूप बतलाते हुए हम महर्षि आश्वलायन को उद्धृत करते हैं-

"तृतीयेषु पादेषूदात्तमनुदात्तपरं यत्प्रथमं तं निनर्देत्।" (आश्व.श्रौ.८.३.६) इसकी टीका करते हुए आचार्य नारायण ने लिखा है-

"तृतीयेषु पादेष्वादितो यदक्षरं तदनुदात्तीकृत्य ब्रूयात्। तस्मात्परं यत्तद् द्वितीयं तदुदात्तीकुर्यात्।"

इसका तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त कुन्ताप ऋचाओं के तृतीय पाद का प्रथम अक्षर अनुदात्त तथा द्वितीय अक्षर उदात्त रूप में उत्पन्न होता है, यही क्रिया निनर्द कहलाती है। इस निनर्द क्रिया को ही कुन्ताप सूक्त रश्मियों का न्यूङ्ख कहा है। इसका आशय यही है कि जो प्रभाव वृषाकपि छन्द रश्मियों में न्यूङ्ख क्रिया का होता है, वही प्रभाव इन रश्मियों में निनर्द क्रिया का होता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- उपर्युक्त प्रकरण में वर्णित छन्द रश्मियों में से दो बृहती एवं १ अनुष्टुप् छन्द रश्मियों का समूह सर्वप्रथम उत्पन्न होकर विभिन्न तारों में विकृति को प्राप्त परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त हो जाता है। इस समय २० विशेष प्रकार की तरंगें उत्पन्न होती हैं। १० ऐसी तरंगें उत्पन्न होती हैं, जिनकी आकृति वलय (रिंग) के समान उत्पन्न होती है। ३०० ऐसी तरंगें होती हैं, जो विशेष गति और बल से युक्त होती हैं। इन सबकी उत्पत्ति के पीछे इन तीन छन्द रश्मियों की ही भूमिका नहीं होती, बल्कि उस समय तारों के अन्दर दस हजार प्रकार की छन्द और मरुद् रश्मियां प्रकट होकर क्षीण होते हुए तारे को पुनः नवजीवन प्रदान करती हैं। इस समय अनिष्ट रश्मियां नियंत्रित वा नष्ट होकर विभिन्न संलयनीय पदार्थ तारों के केन्द्रीय भाग की ओर समुचित रूप से प्रवाहित होने लगते हैं और तारों का अनिष्ट रूप से कंपित और विक्षुब्ध होना बंद हो जाता है। इस प्रक्रिया में तारों के अन्दर गम्भीर ध्वनियां भी उत्पन्न होती हैं। इस विषय में विशेष ज्ञान के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

३. रैभीः शंसति।।

रेभन्तो वै देवाश्च ऋषयश्च स्वर्गं लोकमायंस्तथैवैतद्यजमाना रेभन्त एव स्वर्गं लोकं यन्ति।।
ताः प्रग्राहं शंसति, यथा वृषाकपिं; वार्षाकपं हि वृषाकपेस्तन्न्यायमेति; तासु न न्यूङ्खयेन्नी वीव नर्देत्, स हि तासां न्यूङ्खः।।
पारिक्षितीः शंसति।।
अग्निर्वै परिक्षिदग्निर्हीमाः प्रजाः परिक्षेत्यग्निं हीमाः प्रजा परिक्षियन्ति।।
अग्नेरेव सायुज्यं सारूपतां सलोकतामश्नुते य एवं वेद।।
यदेव पारिक्षितीः।।
संवत्सरो वै परिक्षित्, संवत्सरो हीमाः प्रजाः परिक्षेति; संवत्सरं हीमाः प्रजाः परिक्षियन्ति।।
संवत्सरस्यैव सायुज्यं सरूपतां सलोकतामश्नुते य एवं वेद; ताः प्रग्राहं शंसति, यथा वृषाकपिं, वार्षाकपं हि वृषाकपेस्तन्न्यायमेति तासु न न्यूङ्खयेन्नी वीव नर्देत्, स हि तासां न्यूङ्खः।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर 'रेभ' शव्द से युक्त (अथर्व.२०.१२७.४-६) तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) **वच्यंस्व रेभ वच्यस्व वृक्षे न पक्वे शकुनः। नष्टे जिह्वा चर्चरीति क्षुरो न भुरिजोरिव।।४।।**

छन्द अनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {रेभ = स्तोतृनाम (निघं.३.१६), रेभति अर्चतिकर्मा (निघं.३.१४)} वे उपर्युक्त अतिवेगवती छन्दरश्मियां विभिन्न रसरूप विकृत छन्द रश्मियों को निरन्तर प्रकाशित करती हुई उनकी गति को नष्ट करके नाना प्रकार के धारण और पोषण वलों को गति प्रदान कर अग्नि की ज्वालाओं के समान निरन्तर गमन करती हुई छेदक वलसम्पन्न आदित्य लोकों में व्याप्त होती हैं।

(२) **प्र रे भासो मनीषा वृषा गावइवेरते। अमोतपुत्रका एषाममोत गाइवासते।।५।।**

छन्द निचृदनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वे उपर्युक्त वलवान् और तेजस्विनी छन्द रश्मियां मन से प्रेरित होकर निरन्तर गमन करती हुई अपने पर आश्रित विभिन्न उत्पन्न वाग् रश्मियों को आधार प्रदान करती हैं।

(३) **प्र रेभ धीं भरस्व गोविदं वसुविदम्। देवत्रेमां वाचं श्रीणीहीषुर्नावीरस्तारम्।।६।।**

छन्द भुरिगुष्णिक। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वे तेजस्विनी रश्मियां सूक्ष्म छन्द रश्मियों एवं विभिन्न गायत्री छन्द रश्मियों को अच्छी प्रकार से धारण करके विभिन्न प्रकाशित परमाणुओं में वाक् तत्त्व एवं प्राण रश्मियों के मिथुनों को अच्छी प्रकार से समृद्ध करके उन्हें विशेष संयोजक वल और गतियों से युक्त करती हैं।।

इन दोनों कण्डिकाओं का व्याख्यान पूर्वोक्त नाराशंसी तृच के संदर्भ में इसी प्रकार की तीन कण्डिकाओं के समान समझ सकते हैं। विज्ञ पाठकों के लिए इनका व्याख्यान करना पिष्टपेषणवत्

अनावश्यक प्रतीत होता है।।+।।

तदनन्तर 'परिक्षित्' शब्द से युक्त (अथर्व.२०.१२७.७-१०) छन्द रश्मियों की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है।

(१) राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोऽमर्त्यां अति। वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः।।७।।

छन्द अनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियां अल्पायु रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों का अतिक्रमण करके सभी पदार्थों के लिए हितकर, सबके नायक और सबमें व्यापक इन्द्रतत्त्व में नाना प्रकार के तेजों को उत्पन्न करती हैं।

(२) परिच्छिन्नः क्षेममकरोत्तम आसनमाचरन्। कुलायन्कृण्वन्कौरव्यः पतिर्वदति जायया।।८।।

छन्द भुरिगनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अन्धकार एवं जड़ता (निष्क्रियता) का भेदन करता हुआ सब ओर गति और व्याप्ति से युक्त होकर विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों का रक्षण करता है। वह विभिन्न क्रियाशील परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को उत्तम आश्रय देता हुआ उनके नाना मिथुनों का निर्माण करने में समर्थ होता है।

(३) कतरत्त आ हराणि दधि मन्थां परि श्रुतम्। जायाः पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः।।९।।

छन्द अनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को नाना प्राण रश्मियों से सब ओर से युक्त करके धारण, ताड़न, बल एवं समुचित गतियां प्रदान करके आदित्य लोकों में सर्वत्र उनके मिथुनों को बसाता वा व्याप्त करता है।

(४) अभीवस्वः प्र जिहीते यवः पक्वः पथो बिलम्। जनः स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः।।१०।।

छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह सबको सब ओर से बसाने वाला इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों {बिलम् = बिलं भरं भवति बिभर्त्तेः (नि.२.१७)} के मिथुनों को अनुकूल मार्गों में धारण करता है। वह सम्पूर्ण आदित्य लोक में उनको अनुकूलता से बढ़ाता है।।

यहाँ महर्षि उपर्युक्त पारिक्षिति छन्द रश्मियों की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि ये छन्द रश्मियां इन्द्र तत्त्व के साथ-२ अग्नि तत्त्व को भी समृद्ध करती हैं। यह अग्नि तत्त्व ही नाना प्रकार की क्रियाओं में अग्रणी भूमिका निभाता हुआ विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को सब ओर बसाता है और ये परमाणु आदि पदार्थ भी अग्नि के परमाणुओं का सब ओर से सेवन करते हुए विभिन्न आदित्य लोकों में व्याप्त व गतियुक्त होते हैं। इसलिए अग्नि को भी परिक्षित् कहा जाता है। जब किसी लोक में विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ अग्नि के परमाणुओं का संसर्ग प्राप्त कर लेते हैं, तब वे उन्हीं के समान तेज और रूप से युक्त होकर उन्हीं के साथ आदित्य लोकों के अन्दर निवास करते हैं। इस प्रकार की स्थिति 'परिक्षित्' शब्द से युक्त उपर्युक्त चार छन्द रश्मियों के आग्नेय प्रभाव के कारण उत्पन्न होती है।।+।।+।।

पारिक्षिति छन्द रश्मियों की महिमा का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि सम्पूर्ण संवत्सररूप आदित्य लोक ही परिक्षिद् रूप है अर्थात् इनमें पारिक्षिती छन्द रश्मियां विशेषरूप से बसी हुई होती हैं। ये आदित्य लोक ही सम्पूर्ण परमाणु आदि पदार्थों को सब ओर से अपने अन्दर बसाते हैं। इसके साथ वे परमाणु आदि पदार्थ भी आदित्य रश्मियों रूप संवत्सर को सब ओर से अपने अन्दर बसाते हैं किंवा संवत्सररूपी आदित्य लोक ही अपने अन्दर नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों की उत्पत्ति एवं पालना करते हैं और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में ऐसे ही संवत्सररूपी आदित्य लोक सर्वत्र बसे रहते हैं।।

इस कण्डिका का व्याख्यान विज्ञ पाठक स्वयं कर सकते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- उपर्युक्त प्रक्रिया के तहत ही तारों के अन्दर ६ अनुष्टुप् एवं १ उष्णिक् कुल ७ छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इनके प्रभाव से विभिन्न प्रकार के विद्युत् बलों में, विशेषकर आकर्षण व बन्धन बलों में भारी वृद्धि होती है। इस कारण तारों के अन्दर विभिन्न विकृतियां दूर होकर नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया तीव्र होती है। इससे तारों में विद्युत् चुम्बकीय तरंगों का उत्पादन अधिक तेज गति से होने लगता है। तारों के अन्दर विभिन्न आयन समुचित बल, गति एवं स्थान को प्राप्त करके तारों में उचित ताप और प्रकाश को उत्पन्न करते हैं। विशेष परिज्ञान के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

४. कारव्याः शंसति।।

देवा वै यत्किंच कल्याणं कर्माकुर्वंस्तत् कारव्याभिरवाप्नुवंस्तथैवैतद् यजमाना यत्किंच कल्याणं कर्म कुर्वन्ति, तत् कारव्याभिराप्नुवन्ति।।

ताः प्रग्राहं शंसति, यथा वृषाकपिं; वार्षाकपं हि वृषाकपेस्तन्न्यायमेति; तासु न न्यूङ्खयेन्नी वीव नर्देत्, स हि तासां न्यूङ्खः।।

दिशांक्लृप्तीः शंसति; दिश एव तत्कल्पयति।।

ताः पञ्च शंसति; पञ्च वा इमा दिशश्चतस्रस्तिरश्च्य एकोर्ध्वा।।

तासु न न्यूङ्खयेन्नैवैव च निनर्देन्नेदिमा दिशो न्यूङ्खयानीति।।

ता अर्धर्चशः शंसति, प्रतिष्ठाया एव।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर 'कारु' शव्द से युक्त

इन्द्रः॑ का॒रुम॑बूबुधदुत्ति॑ष्ठ॒ वि च॑रा॒ जन॑म्। ममे॑दु॒ग्रस्य॒ चर्कृ॑धि॒ सर्व॒ इत्ते॑ पृणा॒दरिः॑।।११।।

इत्यादि (अथर्ववेद २०.१२७.११-१४) छन्द रश्मियों की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) इन्द्रः॑ का॒रुम॑बूबुधदुत्ति॑ष्ठ॒ वि च॑रा॒ जन॑म्। ममे॑दु॒ग्रस्य॒ चर्कृ॑धि॒ सर्व॒ इत्ते॑ पृणा॒दरिः॑।।११।।

इसका छन्द अनुष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से इन्द्रतत्त्व विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को सक्रिय करता हुआ उनमें निरन्तर विचरता है तथा सभी असुरादि पदार्थों को भी वह पूर्ण व्याप्त करके नियन्त्रित करता है।

(२) इ॒ह गावः॒ प्रजा॑यध्वमि॒हाश्वा॑ इ॒ह पूरु॑षाः। इ॒हो स॒हस्र॑दक्षिणोऽपि॑ पू॒षा नि षी॑दति।।१२।।

इसका छन्द निचृदनुष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व विभिन्न वायु रश्मियों अन्य आशुगामी विशेष वलवती रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को अनेकविध वल प्रदान करता हुआ विभिन्न आदित्य लोकों को व्याप्त करता है। इसके साथ ही वह उनमें विभिन्न संयोगादि क्रियाओं को परिपुष्ट करता है।

(३) नेमा इ॑न्द्र॒ गावो॑ रिष॒न्मो आ॒सां गोप॑ रीरिषत्। मासा॑मम॒त्रयु॒र्जन॒ इन्द्र॒ मा स्ते॒न ई॑शत।।१३।।

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव उपर्युक्त प्रथम ऋचा के समान। अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व विभिन्न

परमाणुओं की रक्षा करता हुआ उन्हें असुरादि रश्मि व परमाणु आदि के नियन्त्रण से मुक्त रखता है।

(४) उपं नो न रमसि सूक्तेन वचंसा वयं भद्रेण वचंसा वयम्। वनांदधिध्वनो गिरो न रिंष्येम कदा चन।।१४।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को रमाता हुआ विभिन्न कुन्ताप सूक्तरूप रश्मिसमूहों से संसिक्त करके उनकी अति तीक्ष्ण आसुर व अन्य ऐसी ही विशेष भेदन शक्तिसम्पन्न तरंगों से रक्षा करता है।

ध्यातव्य है कि इन ऋचाओं से केवल प्रथम ऋचा में ही 'कारु' शव्द विद्यमान है, पुनरपि यहाँ 'कारव्याः' इस वहुवचनान्त पद का प्रयोग ग्रन्थकार ने किया है। यह इस वात का सूचक है कि ये चारों छन्द रश्मियां ही इस 'कारुम्' पदरूप सूक्ष्मरश्मि से प्रभावित व संसिक्त होती हैं।।

{कल्याणम् = कल्याणं कमनीयं भवति (नि.२.३)} विभिन्न प्रकाशित परमाणु और विभिन्न छन्दादि रश्मियां इन्हीं कारव्यसंज्ञक उपर्युक्त चार छन्द रश्मियों के द्वारा ही सवकी कमनीयरूप हो पाती हैं, उसी प्रकार अन्य पार्थिवादि अप्रकाशित संयोज्य परमाणु भी इन्हीं कारव्य छन्द रश्मियों के द्वारा ही कमनीय रूप प्राप्त कर पाते हैं। ये सभी प्रकार के परमाणु इन्हीं छन्द रश्मियों के द्वारा ही नाना प्रकार की छन्द व मरुत् रश्मियों को अपने साथ विनियुक्त करने में सक्षम होते हैं। यहाँ 'कल्याण' शव्द से अभिप्राय समुचित आकर्षण वल को प्राप्त करना है। इससे पूर्वोक्त रिसी हुई छन्द रश्मियां, जो अति तीक्ष्णरूप धारण करने लगी थीं, वे तथा जिन गायत्र्यादि छन्द रश्मियों से रसरूप रश्मियों का रिसाव हुआ था, उनमें वल की मात्रा का समुचित सन्तुलन होने में इन छन्द रश्मियों के सहयोग से सहायता मिलती है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान इसी खण्ड में पूर्व में देखें।।

तदनन्तर प्रजापति वा इन्द्र-देवताक (अथर्ववेद २०.१२८.१-५) छन्द रश्मियों की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) यः सभेयों विदथ्यः सुत्वा यज्वाथ पूरुंषः। सूर्यं चामूं रिशादसस्तद्देवाः प्रागंकल्पयन्।।१।।

इसका छन्द निचृदनुष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {सभेयः = "एष वै सभेयो युवा यः प्रथमवयसि, तस्मात् प्रथमवयसि स्त्रीणां प्रियो युवा पुमान् भावुकः।" (काठ.संक. १२४.१२,१३; तु.श.१३.१.६.८ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत)} वह इन्द्र तेजस्विनी एवं विशेष कमनीय अवस्था को प्राप्त करके नाना परमाणुओं के संघात में तत्पर होकर उन्हें मिलाता व सम्पीडित करता है। वह सम्पूर्ण आदित्य लोक विभिन्न हिंसक रश्मियों को दूर करके विभिन्न प्रकाशित परमाणुओं को अग्रणी होने की सामर्थ्य प्रदान करता है।

(२) यो जाम्या अप्रंथयस्तद्यत्सखायं दुधूर्षति। ज्येष्ठो यदंप्रचेतास्तदांहुरधंरागिति।।२।।

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व {जामिः = उदकनाम (निघं.१. १२), अंगुलिनाम (निघं.२.५), (जमतीति गतिकर्मसु पठितम् - निघं.२.१४), जायमानः (तु.म.द.ऋ.भा.३. २.६)} आदित्य लोकों में उदकरूप में विद्यमान वा उत्पन्न पूर्वोक्त रसरूप रश्मियों, जो कि तीक्ष्ण होकर उन लोकों को कम्पायमान करती हैं, को फैलाता हुआ दुर्वल करता है। वह उन अपने समान तीक्ष्ण प्रकाशित रसरश्मियों को ताड़ता है। वह अति विशाल असुरादि अप्रकाशित रश्मियों को अधोगामी वनाता वा दूर हटाता है।

(३) यद्भद्रस्य पुरुंषस्य पुत्रो भंवति दाधृषिः। तद् विप्रो अब्रवीदु तद्गन्धर्वः काम्यं वचः।।३।।

छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से जब आदित्य लोकरूप पुरुष के पुत्ररूप केन्द्रीय भाग पर्याप्त दृढ़ वा परिपक्व हो जाते हैं, तब वे विभिन्न प्रकार की बल एवं प्रकाश आदि रश्मियों को उत्पन्न करते हैं। इस कार्य में इन्द्रतत्त्व का विशेष योगदान रहता है।

(४) यश्चं पणि रघुंजिष्ठ्यो यश्चं देवाँ अदांशुरिः। धीरांणां शश्वंतामहं तदंपागिति शुश्रुम।।४।।

छन्द अनुष्टुप् दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र अतिसूक्ष्म {रघुजिष्ठ्यः = लघुषु ज्येष्ठ इति मे मतम्। अदाशुरिः = (दाशृ हिंसायाम्)} मरुद् रश्मियों के मध्य श्रेष्ठता को प्राप्त करता हुआ विभिन्न देव परमाणुओं के मार्गों को निरापद बनाता हुआ उन धारक परमाणुओं का निरन्तर अनुगमन करता है।

(५) ये चं देवा अयंजन्ताथो ये चं परांददिः। सूर्यो दिवंमिव गत्वायं मघवां नो वि रंप्शते।।५।।

छन्द आर्ष्यनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से इन्द्रतत्त्व से संयुक्त विभिन्न परमाणु बाधक रश्मियों को नियंत्रित करके आकाश में नाना रश्मियों से व्याप्त होकर विविध प्रकार से सुशोभित होते हैं।

ये उपर्युक्त पांचों छन्द रश्मियां पूर्वोक्त प्रकार से अस्थिर होते हुए आदित्य लोकों को सभी दिशाओं से पुनः समर्थ बनाती हैं। जो रस रूपरश्मियां नाना प्रकार से आदित्य लोकों के तेज का क्षय करती हैं, उनको ये छन्द रश्मियां अधिगृहीत करके अशक्त हुई छन्द रश्मियों को पुनः शक्ति प्रदान करती हैं।।

ये उपर्युक्त छन्द रश्मियां पांच हैं और दिशाएं भी पांच होती हैं। इन पांचों दिशाओं एवं उनके देवताओं के बारे में खण्ड १.७ द्रष्टव्य है, जहाँ सम्पूर्ण हिरण्यगर्भरूप आदित्य लोक की निर्माणाधीन अवस्था का सचित्र वर्णन किया गया है। वे सभी दिशाएं और उनमें विद्यमान पदार्थ इन उपर्युक्त दिशाँ-क्लृप्ती-संज्ञक छन्दरश्मियों के द्वारा तेज और बल की दृष्टि से समृद्ध होते हैं।

यहाँ आचार्य सायण के मतानुसार पांच दिशा इस प्रकार हैं- (१) ऐन्द्री (२) यामी (३) वारुणी (४) सौमी (५) ऊर्ध्वा। हम सायण के इस मत पर भी अपने ढंग से विचार करते हैं-

(१) ऐन्द्री - यह दिशा अर्थात् परिधि क्षेत्र किसी भी आदित्य लोक का केन्द्रीय भाग होता है। इसमें इन्द्र तत्त्व की सर्वोच्च प्रखरता होने के कारण इस दिशा को 'ऐन्द्री' कहते हैं। यह भाग किसी भी आदित्य लोक का सबसे महत्वपूर्ण भाग है।

(२) यामी - यह आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग की परिधि के बाहर विद्यमान क्षेत्र है, जिसमें अग्नि और वायु का ऐसा सम्मिश्रण विद्यमान होता है, जो केन्द्रीय भाग में विद्यमान तीव्र तेज बलों एवं बाहरी विशाल भाग के अत्युच्च दबाव को संतुलित वा नियंत्रित किये रहता है। केन्द्रीय भाग से विभिन्न प्रकार की रश्मियां एवं बाहरी भाग से विभिन्न प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों के नियंत्रितरूप से आवागमन की क्रिया को सम्पादित करता है।

(३) वारुणी - यह यामी क्षेत्र की बाहरी परिधि के निकट विद्यमान वह क्षेत्र है, जहाँ वरुण अर्थात् अपान और व्यान रश्मियों की प्रधानता होती है एवं अग्नितत्त्व भी प्रखररूप में विद्यमान रहता है। इसी कारण वरुण के विषय में ऋषियों का कथन है-

"अथ यत्रैतत् प्रदीप्ततरो भवति तर्हि हैष (अग्निः) भवति वरुणः" (श.२.३.२.१०)
"स यदग्निर्घोरसंस्पर्शस्तदस्य वारुणं रूपम्" (ऐ.३.४)

यह भाग 'यामी' भाग के कार्यों में विशेष सहयोग करता है। इसके अतिरिक्त यह भाग बाहरी विशाल भाग से संलयनीय परमाणुओं को अपनी ओर आकृष्ट करता हुआ केन्द्रीय भाग की ओर पहुंचाता रहता है।

(४) सौमी - आदित्य लोक का अन्य सबसे विशाल भाग जिस परिधि से आवृत्त होता है, उसे 'सौमी' कहते हैं। यह भाग अन्य भागों की अपेक्षा कम ऊष्ण होता है। इसमें सोम रश्मियों एवं अप्रकाशित परमाणुओं की विशालतम मात्रा विद्यमान होती है। यह वही पदार्थ होता है, जो पूर्व में अप्रकाशित और

ठण्डा था एवं बाद में विविध सम्पीडनों के कारण इस ऊष्ण स्थिति को प्राप्त करता है। इसी पदार्थ के परमाणु शनैःशनैः केन्द्रीय भाग की ओर छन-२ कर जाते रहते हैं, जो संलयित होकर नाना प्रकार के पदार्थों की उत्पत्ति का कारण बनते हैं।

(५) ऊर्ध्वा - इस दिशा के विषय में ऋषियों का कथन है-

"ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिर् देवता" (काठ.७.२; तै.ब्रा.३.११.५.३)

{ऊर्ध्वा = ऊर्ध्वं गामिन्यो ज्वालाः (म.द.ऋ.भा.१.१८१.६)} यह दिशा आदित्य लोकों की सबसे बाहरी परिधि होती है, जिसमें अग्नि की ऊंची-२ ज्वालाएं विद्यमान होती हैं। इस भाग में वृहस्पतिरूप सूत्रात्मा वायु एवं विद्युत् का प्राबल्य होता है।

इन पांचों ही भागों, जिनकी परिधियों को ही दिशा कहा गया है। इन उपर्युक्त पांचों छन्द रश्मियों के द्वारा समृद्ध और सक्रिय होती हैं।।

इन उपर्युक्त दिशाओं में उत्पन्न उपर्युक्त पांच छन्द रश्मियों में न तो न्यूङ्ख क्रिया ही होती है और न ही पूर्वोक्त निनर्द क्रिया होती है, बल्कि ये छन्द रश्मियां सामान्यरूप में ही उत्पन्न होती हैं, जिसके कारण ये उपर्युक्त पांचों दिग्रूप परिधियां चलायमान वा कम्पायमान नहीं होती, बल्कि स्थिर रहकर आदित्य लोकों के अस्तित्त्व और क्रियाओं की रक्षा करती हैं।।

इन छन्द रश्मियों में पूर्वोक्तवत् पादशः अवसान न होकर अर्धर्चशः होता है। इस प्रकार इनका उत्पन्न होना आदित्य लोकों की उपर्युक्त पांचों दिशारूप परिधियों को स्थिरता प्रदान करने में उपयोगी होता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- उपर्युक्त प्रक्रिया में ही चार एवं पांच छन्द रश्मियों के दो समूह उत्पन्न होते हैं। इनमें से एक पंक्ति तथा आठ अनुष्टुप् छन्द रश्मियां होती हैं। इनसे विभिन्न तारों के अन्दर विद्युत् बलों में वृद्धि होती है। इसके कारण विभिन्न कणों की ऊर्जा में वृद्धि होती है। उसके केन्द्रीय भाग दृढ़ और परिपक्व होने लगते हैं। तारों में मुख्यतः पांच क्षेत्र विद्यमान होते हैं-

(१) ऐन्द्री (केन्द्रीय भाग) = इसमें नाभिकीय संलयन की क्रिया होकर तीव्र ऊर्जा की विद्युत् चुम्बकीय तरंगें एवं विद्युदावेशित तरंगें उत्पन्न होती हैं। इनमें सर्वाधिक प्रबल विद्युत् चुम्बकीय बल विद्यमान होते हैं। यह किसी भी तारे का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग होता है।

(२) यामी = केन्द्रीय भाग के बाहर वह लघु भाग, जिसमें अग्नि और वायु का ऐसा सम्मिश्रण विद्यमान होता है, जो केन्द्रीय भाग और बाहरी भाग के बीच में संतुलन बनाये रखता है। इसी भाग के ऊपर तारे के दोनों भाग परस्पर फिसलते रहते हैं। इस भाग के पदार्थ को किसी पहिए में विद्यमान bearing के रूप में माना जा सकता है।

(३) वारुणी = यह bearing रूपी भाग का ऊपरी लघु क्षेत्र होता है, जिसमें ऊष्मा की अति उच्च अवस्था विद्यमान होती है। यह पदार्थ संलयनीय कणों को केन्द्र की ओर आकर्षित करता है और केन्द्रीय भाग से आती हुई विभिन्न तरंगों को बाहर की ओर फेंकता है।

(४) सौमी = यह तारे का सबसे विशाल भाग होता है, जिसकी त्रिज्या सम्पूर्ण तारे की त्रिज्या का लगभग ७५% होती है। इस भाग में विभिन्न प्रकार के पदार्थ आयनों के रूप में विद्यमान होते हैं। इसी में से विभिन्न कण केन्द्रीय भाग में पहुंचकर संलयित होकर नाना प्रकार के पदार्थों में परिवर्तित होते हैं। इस भाग का ताप अन्य भाग की अपेक्षा सबसे कम होता है।

(५) ऊर्ध्वा = यह किसी भी तारे की सबसे बाहरी परिधि होती है, जहाँ अग्नि की ऊंची-२ ज्वालायें निरन्तर उठती रहती हैं। इस भाग में विभिन्न प्रकार के विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र विद्यमान होते हैं, जिनकी स्थितियां भी निरन्तर परिवर्तित होती रहती हैं।।
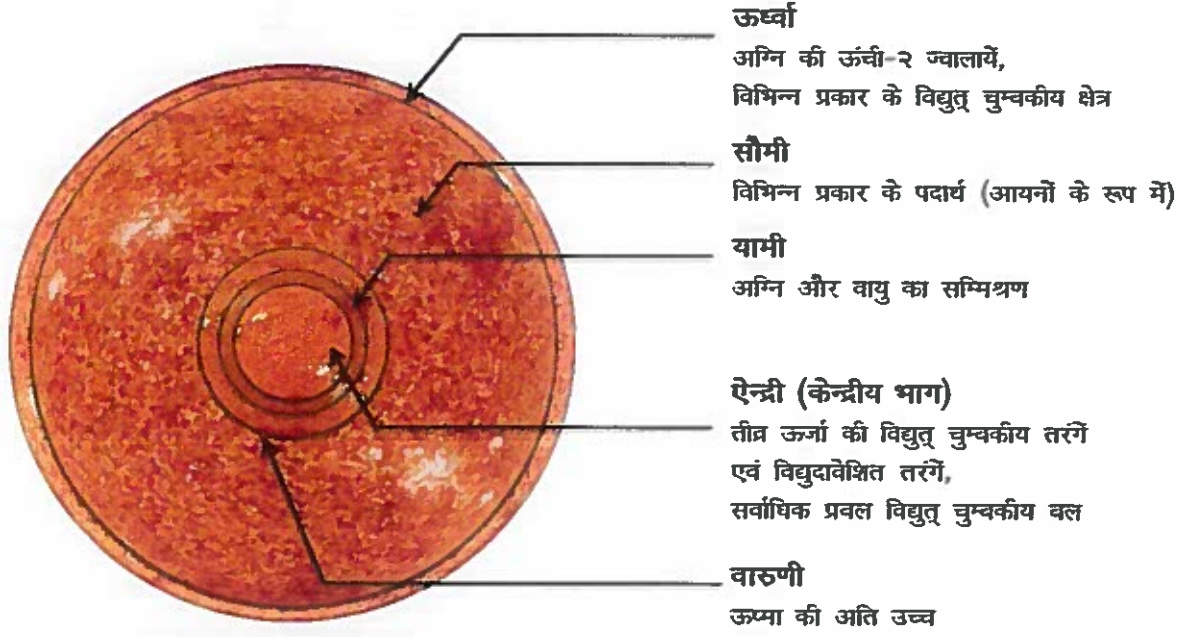
चित्र ३०.१ तारों के मुख्य पांच क्षेत्र

५. जनकल्पाः शंसति, प्रजा वै जनकल्पा, दिश एव तत्कल्पयित्वा तासु प्रजाः प्रतिष्ठापयति।।
तासु न न्यूङ्खयेन्नैवेव च निनर्देन्नेदिमाः प्रजा न्यूङ्खयानीति; ता अर्धर्चशः शंसति, प्रतिष्ठाया एव।।
इन्द्रगाथाः शंसतीन्द्रगाथाभिर्वै देवा असुरानभिगायाथैनानत्यायंस्तथैवैतद् यजमाना इन्द्रगाथाभिरेवाप्रियं भ्रातृव्यमभिगायाथैनमतियन्ति।।
ता अर्धर्चशः शंसति, प्रतिष्ठाया एव।।६।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त-देवताक (अथर्व.२०.१२८.६-११) छन्द रश्मियों की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) योऽनाक्ताक्षो अनभ्यक्तो अमणिवो अहिरण्यवः। अब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता।।६।।

छन्द भुरिगनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {तोता = ता उ ता (प्रो. विश्वनाथ विद्यालंकार भाष्य)} प्राणापानरूपी ब्रह्म से उत्पन्न विद्युत्, जो पूर्वोक्त रसरूप रश्मियों के विसरण के कारण असमृद्ध, निस्तेज हीन बल एवं अस्पष्ट हो जाता है, उसे सतेज करने वाली ये इन्द्रवर्धक छन्द रश्मियां पुनः सम्यग् रूप से उत्पन्न वा सक्रिय करती हैं।

(२) य आक्ताक्षः सुभ्यक्तः सुमणिः सुहिरण्यवः। सुब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता।।७।।

छन्द निचृदनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व प्राणापान से उत्पन्न और समृद्ध होता हुआ शुद्ध रूप में प्रकट होकर विविध तेज और ध्वनियों से युक्त होता हुआ नाना प्रकार की सामर्थ्य और सृजनशीलता से युक्त होता है।

(३) अप्रपाणा च वेशन्ता रेवाँ अप्रतिदिश्ययः। अयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता।।८।।

छन्द अनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {अप्रतिदिश्ययः = अदानी (प्रो. विश्वनाथ विद्यालंकारभाष्य)} वह इन्द्र विभिन्न छन्द वा मरुद् रश्मियों, जो आदित्य लोक के पदार्थ में प्रविष्ट होकर भी पूर्वोक्त रसरूप रश्मियों के कारण असंगमनीय हो जाती हैं, उन्हें सुन्दर कमनीय रूप प्रदान करके सामर्थ्यवान् बनाता है।

(४) सुप्रपाणा च वेशन्ता रेवान्त्सुप्रतिदिश्ययः। सुयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता।।९।।

छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व उन सभी छन्द वा मरुद् रश्मियों में आकर्षण आदि बल उत्पन्न करके सुसंगमनीय बनाकर तेजस्वी रूप और सामर्थ्य से युक्त करता है।

(५) परिवृक्ता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः। अनाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता।।१०।।

छन्द निचृदनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {महिषी = महिषी हि वाक् (श.६.५.३.४), महिषी धाय्या (कौ.ब्रा.१५.४), भूरिति महिषी (तै.ब्रा.३.९.४.५)। स्वस्ति = स्वस्ति स्वपितिकर्मा (निघं.३.२२)} पूर्वोक्त रसरूप रश्मियों के रिसने के पश्चात् अपनी पालिका शक्तियों रूपी 'भूः' आदि रश्मियों से विहीन इन्द्र तत्त्व असुरादि तीक्ष्ण तत्त्वों के साथ संघर्ष में शिथिल और मन्दगामी हो जाता है। वह इन छन्द रश्मियों के द्वारा पुनः सामर्थ्य प्राप्त करता है।

(६) वावाता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः। श्वाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता।।११।।

छन्द विराडार्ष्यनुष्टुप् दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {वावाता = भुव इति वावाता (तै.ब्रा.३.९.४.५)} भुवः रूप रक्षिका रश्मियां इन्द्र तत्त्व को धारण करके असुरादि रश्मियों के साथ युद्ध में इन्द्र तत्त्व को सुगमता एवं आशुगामिता प्रदान करके सब ओर से नियंत्रण शक्तिसम्पन्न बनाती हैं।

इन ६ छन्द रश्मियों को ग्रन्थकार ने 'जनकल्पा' कहा है {प्रजा = प्रजा वै तन्तुः (ऐ.३.११), प्रजा वै बर्हिः (कौ.ब्रा.५.७; १८.१०)} और ये जनकल्पा छन्द रश्मियां तन्तुरूप होकर विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों को सूत्रात्मा वायु रश्मियों से जोड़ने में विशेष सहयोग करती हैं। वे पूर्वोक्त सभी पांचों दिशाओं में प्रतिष्ठित होकर आदित्य लोक के उन सभी भागों को समर्थ और सक्रिय बनाती है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

तदनन्तर उपर्युक्त देवता वाली (अथर्व.२०.१२८.१२-१५) छन्द रश्मियों की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) यदिन्द्रादो दाशराज्ञे मानुषं वि गाहथाः। विरूपः सर्वस्मा आसीत्सह यक्षाय कल्पते।।१२।।

छन्द निचृदनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से विभिन्न दानादि कर्मों से युक्त होकर प्रकाशित होता हुआ इन्द्रतत्त्व {मानुषः = पशवो मानुषाः (क.४१.६), यन्मन्द्रं मानुषं तत् (तै.सं.२.५.११.१)} शुद्धरूप में प्रकाशित मानुष नामक विभिन्न वायु रश्मियों का आलोडन करता हुआ विविध रूपों में प्रकट होकर संगमन आदि कर्मों को समर्थ करता है।

(२) त्वं वृषाक्षुं मघवन्नम्रं मर्याकरो रविः। त्वं रौहिणं व्यास्यो वि वृत्रस्याभिनच्छिरः।।१३।।

छन्द विराडार्ष्यनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व व्यापनशील बलों से युक्त होकर गम्भीर घोष करता हुआ सब ओर से वज्ररश्मियों को प्रकट करके ऊपर उठते हुए आसुर मेघरूप पदार्थ को विदीर्ण और प्रक्षिप्त करता है।

(३) यः पर्वतान्व्यदधाद्यो अपो व्यगाहथाः। इन्द्रो यो वृत्रहान्महं तस्मादिन्द्र नमोऽस्तु ते।।१४।।

छन्द अनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व आदित्य लोकों के अन्दर विभिन्न मेघरूप पदार्थों को धारण करता हुआ उनका अच्छी प्रकार विलोडन करता है। वह आवरक आसुर मेघों को नष्ट करके महान् संयोजक बलों को उत्पन्न करता है।

(४) पृष्ठं धावन्तं हर्योरौच्चैः श्रवसमब्रुवन्। स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमा वह सुस्रजम्।।१५।।

छन्द विराडनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व आकर्षण और धारण से युक्त उच्च बल रश्मियों के साथ दौड़ता हुआ विभिन्न चक्रों में प्रकट होकर पदार्थ का अच्छे प्रकार वहन करता है।

(५) ये त्वा श्वेता अजैश्रवसो हार्यो युञ्जन्ति दक्षिणम्। पूर्वा नमस्य देवानां बिभ्रदिन्द्र महीयते।।१६।।

छन्द भुरिगनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व अजेय और बढ़ते हुए बलों से युक्त होकर अपनी वज्ररश्मियों के द्वारा विभिन्न संयोज्य परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को संयुक्त, पुष्ट और समृद्ध करता है।

यहाँ इन पांचों छन्द रश्मियों को **'इन्द्रगाथा'** नाम दिया गया है। यद्यपि इन सूक्तों का देवता इन्द्र होने से इनका **'ऐन्द्री'** प्रभाव स्पष्ट है, पुनरपि इन सभी ऋचाओं में **'इन्द्र'** शब्द विद्यमान होने तथा उसकी समृद्धता का विशेष वर्णन होने से इनका नाम **'इन्द्रगाथा'** दिया गया है। जब देव और असुर पदार्थ का परस्पर संघर्ष होता है, तब इन छन्द रश्मियों के द्वारा इन्द्र तत्त्व विशेष तीक्ष्ण होने से देव पदार्थ इन्द्र की सहायता से असुर पदार्थ को न केवल नियंत्रित करता है, अपितु उसका अतिक्रमण करके उसे परे भी हटाता है। यह प्रक्रिया विशाल स्तर पर इसी प्रकार होती है। सूक्ष्म स्तर पर विभिन्न परमाणुओं के पारस्परिक संयोजन क्रियाओं में जब असुरादि रश्मियां सूक्ष्म स्तर पर बाधक बनती हैं, तब भी इन्हीं छन्द रश्मियों की सहायता से प्रवृद्धमान इन्द्र तत्त्व उन बाधक रश्मियों को नियंत्रित वा पराभूत करता है, जिससे उन परमाणुओं के संयोजन आदि कर्म सहजतया सम्पन्न होने लगते हैं।।

इसका व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त प्रक्रिया के अन्तर्गत ही तारों के अन्दर पांच और छः के दो समूहों में ११ अनुष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इस समय उन तारों के विद्युत् बलों में भारी वृद्धि होती है, जिसके कारण नाभिकीय संलयन आदि क्रियाएं तीव्र होने लगती हैं। उस समय इन तारों के बाहर डार्क मैटर भी विशाल रूप में प्रकट होकर तारों के अन्दर विक्षोभ उत्पन्न करने लगता है, ऐसी स्थिति में उन तारों के अन्दर गम्भीर घोष उत्पन्न होते हुए उच्च ऊर्जा से सम्पन्न विद्युत् विकिरणों को उत्पन्न करने लगते हैं, जिनके प्रहार से डार्क मैटर छिन्न-भिन्न होकर दूर चला जाता है और तारों में होने वाली क्रियाएं उसके दुष्प्रभाव से मुक्त हो जाती हैं।।

इति ३०.६ समाप्तः

ॐ अथ ३०.७ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. ऐतशप्रलापं शंसति।।

व्याख्यानम्- इस विषय में महर्षि आश्वलायन का मत है-

"एता अश्वा आप्लवन्त इति सप्तति पदानि।" (आश्व.श्रौ.८.३.१४)

इस पर टीका करते हुए आचार्य नारायण ने लिखा है-

"सप्ततिवचनं शाखान्तरे क्वचित्षट्सप्ततिपदानि सन्तीति प्रदर्शनार्थम्।"

अथर्व. काण्ड २०, सू.१२६-१३२ तक कुल ७६ ऋचाएं उपलब्ध हैं। ये ऋचाएं लघु छन्दों वाली हैं। इन्हें ही यहाँ महर्षि आश्वलायन ने पद कहा है। यहाँ ग्रन्थकार का आशय यह है कि आदित्य लोकों की पूर्वोक्त प्रक्रिया में ये चार सूक्त निम्न क्रमानुसार उत्पन्न होते हैं-

(क) अथर्व. २०.१२६
१-२० प्रजापतिर्देवता। छन्द १-५, ७, १०-१२, १४, १५, २० प्राजापत्या गायत्री।
६, १६ याजुषी गायत्री, ८,६ दैवी वृहती, १३, साम्नी गायत्री, १६,१७ याजुष्युष्णिक्, १८ याजुषी पंक्ति।

(१) एता अश्वा आ प्लवन्ते।।१।।
(२) प्रतीपं प्राति सुत्वनम्।।२।।
(३) तासामेका हरिक्निका।।३।।
(४) हरिक्निके किमिच्छसि।।४।।
(५) साधुं पुत्रं हिरण्ययम्।।५।।
(६) क्वाहतं परास्यः।।६।।
(७) यत्रामूस्तिस्रः शिंशपाः।।७।।
(८) परि त्रयः।।८।।
(९) पृदाकवः।।९।।
(१०) शृङ्गं धमन्त आसते।।१०।।
(११) अयन्महा ते अर्वाहः।।११।।
(१२) स इच्छकं सघाघते।।१२।।
(१३) सघाघते गोमीद्या गोगतीरिति।।१३।।
(१४) पुमां कुस्ते निमिच्छसि।।१४।।
(१५) पल्प बद्ध वयो इति।।१५।।
(१६) बद्ध वो अघा इति।।१६।।
(१७) अजागार केविका।।१७।।
(१८) अश्वस्य वारो गोशपद्यके।।१८।।
(१९) श्येनीपती सा।।१९।।
(२०) अनामयोपजिह्विका।।२०।।

इन उपर्युक्त छन्द रश्मियों के दैवत प्रभाव से सर्गयज्ञरूप प्रजापति समृद्ध होता है। प्राजापत्या गायत्री छन्दस्क रश्मियों के प्रभाव से वह सर्गयज्ञ नाना बल और तेज से युक्त होता है। याजुषी रश्मियां

विभिन्न परमाणुओं की गति को समृद्ध करती हुई आकाश तत्त्व से सम्बन्ध रखती हैं। साम्नी रश्मियां विभिन्न संयोगादि वियोग कर्मों को समृद्ध करती हैं तथा दैवी रश्मियां सूक्ष्म प्राण रश्मियों से विशेष सम्बन्ध रखते हुए नाना प्रकार के परमाणुओं को वल प्रदान करती हैं। विभिन्न प्रकार की छन्द रश्मियों से सम्बन्ध जोड़कर इनका छान्दस प्रभाव विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं। इन सभी छन्द रश्मियों का संयुक्त प्रभाव निम्नानुसार है-

{प्रतीपः = प्रतिकूल - आप्टेकोष} विभिन्न आशुगामिनी वल रश्मियां प्रतिकूल वलों को सव ओर से पार करती हुई आगे वढ़ती हैं। {हरिक्निका = हरि+कनी = दीप्ति और कान्ति (प्रो.विश्वनाथ विद्यालंकार भाष्य)} उन सूक्ष्म रश्मियों में से एक प्रकार की रश्मियां विशेष हरणशील और दीप्तिमती होती हैं। वे ऐसी रश्मियां प्राथमिक प्राण रश्मियों को अपनी ओर आकृष्ट करती हैं। यहाँ हमारे मत में 'किम्' पद 'कम्' का छान्दस रूप है। इनके प्रभाव से पालक पुत्ररूप प्राणरश्मियां विभिन्न छन्द रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को अपनी ओर आकृष्ट करके तेजयुक्त करती हैं। वे प्राण रश्मियां विभिन्न सूक्ष्म असुरादि रश्मियों को सव प्रकार से आहत और विनष्ट करती हैं। {शिंशपाः = शापरूप वृत्तियां (प्रो.विश्वनाथ विद्यालंकार भाष्य)} वे प्राणरश्मियां सूक्ष्म असुर रश्मियों के उन तीन भागों पर आक्रमण करती हैं, जो सर्वाधिक तीक्ष्ण होते हैं। वे तीन भाग ही हिंसकरूप धारण करके देव परमाणु आदि पदार्थों को चारों ओर से घेरकर ताड़ित करते हैं। वे तीनों भाग सूक्ष्म परन्तु तीक्ष्ण ध्वनियां उत्पन्न करते रहते हैं। वे ही तीनों भाग व्यापकरूप धारण करके उन देव परमाणुओं को प्रतिरोधी वा प्रक्षेपक कर्मों में व्याप्त करके संयोगादि कर्मों को वाधित करते हैं। उन भागों को ही प्राथमिक प्राण रश्मियां नियंत्रित वा विदीर्ण करती हैं। {सघाघते = (सघ हिंसायाम्)} वे प्राण रश्मियां ही उन गौरूपी सूक्ष्म असुर रश्मियों में व्याप्त होकर उनको नष्ट करती हैं किंवा जो असुर रश्मियां गौरूपी देव परमाणु वा रश्मियों में व्याप्त होकर उन्हें नष्ट करने का प्रयत्न करती हैं, उन असुर रश्मियों को ये प्राण रश्मियां नष्ट करती हैं। वे पुरुषरूप प्राण रश्मियां {कुस्ते = (कुस संश्लेषणे = मिलना, घेरना - सं.धा.को. - पं. युधिष्ठिर मीमांसक)। पुमान् = पाति रक्षतीति पुमान् - उ.को.४.१७८) (पुंस अभिवर्धने)} सवकी वृद्धि और रक्षा करने वाली होती हैं, पुनरपि रसरूप रश्मियों के दुष्प्रभाव से वे भी शिथिल होने लगती हैं। {पल्प = पललम् पाति पालयतीति वा (प्रो. विश्वनाथ विद्यालंकार भाष्य), (पललम् = पलति गच्छति येन तत् (उ.को.१.१०६)} वे निरन्तर गमन करने वाली प्राण रश्मियां सतत गमनशील इन्द्र तत्त्व को पालती हैं परन्तु वे तेजस्विनी प्राण रश्मियां पूर्वोक्त रस रश्मियों के दुष्प्रभाव से वन्धन को प्राप्त होकर दुर्वल होने लगती हैं। उनको ये छन्द रश्मियां पुनः सवल और सक्रिय वनाने में सहयोग करती हैं। उसके पश्चात् 'ओम्' छन्द रश्मिरूपी अजारूप वाक् तत्त्व में निवास करने वाली ये प्राण रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों व परमाणु आदि पदार्थों को वल प्रदान करने में पुनः समर्थ हो जाती हैं। यहाँ इस प्रकरण में प्राण रश्मियों के स्थान पर इन्द्र तत्त्व का भी ग्रहण किया जा सकता है। {गोशपद्यके = गौओं के सोने के स्थान में (पं.क्षेमकरणदास त्रिवेदी भाष्य)} वह इन्द्र तत्त्व वा प्राण रश्मियां शिथिल होते हुए रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त होकर अति तीव्रगामी उन रश्मियों, जो पूर्वोक्तानुसार आदित्य लोकों को कम्पायमान करती हैं, को नियंत्रित करती हैं। वे उन शीघ्रगामी वलवती रश्मियों को नियंत्रित करके उन छन्द रश्मियों, जिनमें से रसरूप रश्मियां रिस गयी होती हैं, को पुनः संयोगादि गुणों से युक्त करती हैं।

(ब) अथर्व. २०.१३०.

१-२० प्रजापतिर्देवता। १ याजुषी पंक्तिः, २,३,४,१८ याजुषी गायत्रीः ५, ६, ८, ६, ११, १२, १४-१७, १६, २० प्राजापत्या गायत्री, ७ याजुषी वृहती, १० याजुष्युष्णिक्, १३ दैवी पंक्ति।

(१) को अर्य बहुलिमा इषूंनि।।१।।
(२) को असिद्याः पयः।।२।।
(३) को अर्जुन्याः पयः।।३।।
(४) कः कार्ष्ण्याः पयः।।४।।
(५) एतं पृच्छ कुहं पृच्छ।।५।।
(६) कुहाकं पक्वकं पृच्छ।।६।।

(७) यवानो यतिस्वभिः कुभिः।।७।।
(८) अकुप्यन्तः कुपायकुः।।८।।
(९) आमणको मणत्सकः।।९।।
(१०) देव त्वप्रतिसूर्य।।१०।।
(११) एनश्चिपंक्तिका हविः।।११।।
(१२) प्रदुद्रुदो मघाप्रति।।१२।।
(१३) शृङ्ग उत्पन्न।।१३।।
(१४) मा त्वाभि सखा नो विदन्।।१४।।
(१५) वशायाः पुत्रमा यन्ति।।१५।।
(१६) इरावेदुमयं दत।।१६।।
(१७) अथो इयन्नियन्निति।।१७।।
(१८) अथो इयन्निति।।१८।।
(१९) अथो श्वा अस्थिरो भवन्।।१९।।
(२०) उयं यकांशलोकका।।२०।।

इन सभी छन्द रश्मियों का दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझा जा सकता है। इनका संयुक्त अन्य प्रभाव निम्न प्रकार है-

{इषुः = ईषतेर्गतिकर्मणो वधकर्मणो वा (नि.९.१८), वीर्यं वा ऽइषुः (श.६.५.२.१०)} विभिन्न क्रिया और वलों को नियंत्रित करने वाली 'कः' संज्ञक प्राण रश्मियां अनेक प्रकार के तीक्ष्ण तेज और वलों को उत्पन्न करती हैं। वे प्राण रश्मियां वाधक रश्मियों के वन्धनों से मुक्त होकर सव ओर फैलती जाती हैं। उस समय वे प्राण रश्मियां आदित्य लोकों में शुक्ल और कृष्ण दोनों ही वर्णों को उत्पन्न करती हैं। इन दोनों ही वर्णों से युक्त पदार्थ सव ओर फैलने लगते हैं। ये दोनों ही प्रकार के पदार्थ विस्मयकारी गुणों से युक्त होकर परस्पर एक-दूसरे से संयुक्त होने का प्रयास करने लगते हैं। {कु = पृथिवी - आप्टेकोष} उन पदार्थों के मिथुन नियंत्रक प्राण रश्मियों के द्वारा प्रकाशित होकर पार्थिव परमाणुओं को अपने साथ संगत करते हुए उनकी सहज भाव से रक्षा करते हैं, वे ऐसे सभी परमाणु सूक्ष्म ध्वनियां उत्पन्न करते हुए {आमणकः = आ (सर्वत्र)+ मणकः (मण शब्दे)। मणत्सकः = मण्+ शतृ+ षच् (समवाये) (प्रो.विश्वनाथ विद्यालंकार भाष्य)} परस्पर संगत होकर आदित्य रश्मियों को विशेष प्रकाशित करते हैं। उस समय विभिन्न वाधक सूक्ष्म असुर रश्मियां प्राणरूप रश्मियों की अग्नि में भस्म हो जाती हैं। वे ही प्राणरश्मियां तीक्ष्ण रूप से उत्पन्न होकर नाना वलों को प्रदान करने वाले इन्द्र के स्वरूप में प्रकट होती हैं। विभिन्न संगमनीय रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थ उस इन्द्र तत्त्व के विरुद्ध कार्य करने वाले असुरादि तत्त्वों से दूर होकर उस इन्द्रतत्त्व के साथ ही व्याप्त होते हैं। विभिन्न संयोज्य परामाणुओं को अपनी व्याप्ति से नष्ट करने वाले और इधर-उधर सतत गमन करने वाले असुरतत्त्व को अन्तरिक्षस्थ सतत गमनशील वायु इन्द्रतत्त्व के साथ मिलकर नियंत्रित करता है, जिससे आदित्य लोकस्थ पदार्थ पुनः प्रदीप्त होने लगता है।

(स) अथर्व. २०.१३१

१-२० प्रजापतिर्वरुणो वा देवता। १-४, ६-११, १४, १८, १९ प्राजापत्या गायत्री, ५ अनुष्टुप्, १२, १३ दैवी वृहती, १५, १६ याजुषी गायत्री, १७ दैवी पङ्क्तिः, २० याजुष्युष्णिक्।

(१) आमिनोनिति भद्यते।।१।।
(२) तस्य अनु निभञ्जनम्।।२।।
(३) वरुणो याति वस्वभिः।।३।।
(४) शतं वा भारती शवः।।४।।
(५) शतमाश्वा हिरण्ययाः। शतं रथ्या हिरण्ययाः। शतं कुथा हिरण्ययाः। शतं निष्का हिरण्ययाः।।५।।

(६) अहंल कुश वर्त्तक।।६।।
(७) शफेनंइव ओंहते।। ७।।
(८) आयं वनेनंती जनीं।।८।।
(९) वनिंष्ठा नावं गृह्यन्तिं।।९।।
(१०) इदं मह्यं मदूरितिं।।१०।।
(११) ते वृक्षाः सह तिंष्ठति।।११।।
(१२) पाकं बलिः।।१२।।
(१३) शकं बलिः।।१३।।
(१४) अश्वंत्थ खदिंरो धवः।।१४।।
(१५) अरंदुपरम।।१५।।
(१६) शयों हतइंव।।१६।।
(१७) व्याप पूरुंषः।।१७।।
(१८) अदूंहमित्यां पूषंकम।।१८।।
(१९) अत्यंर्धर्च परंस्वतः।।१९।।
(२०) दौवं हस्तिनों दृती।।२०।।

इस सूक्त का दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इन छन्द रश्मियों का अन्य प्रभाव संयुक्तरूप से निम्न प्रकार है-

{आमिनोनिति = आमिनोति (मी प्रक्षेपणे) (प्रो.विश्वनाथ विद्यालंकार भाष्य)} वह पूर्वोक्त इन्द्र तत्त्व आदित्य लोकों की विभिन्न क्रियाओं को सहजता से सम्पन्न करने के लिए असुरादि पदार्थ को विदीर्ण करके दूर-२ प्रक्षिप्त कर देता है, जिससे विभिन्न गायत्री आदि रश्मियों के द्वारा वरुण अर्थात् अति प्रदीप्त अग्नि सब ओर व्याप्त होने लगता है तथा सैकड़ों प्रकार के बल और प्रकाश रश्मियां, सैकड़ों प्रकार की आशुगामिनी, विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को वहन करने वाली {कुथः = कु + थक् (आप्टेकोष)} अनेकों सूक्ष्म ध्वनियां उत्पन्न करने वाली रश्मियां विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त होने लगती हैं। {अहल = प्रकाशमान (पं.क्षेमकरणदास त्रिवेदीभाष्य)} वह इन्द्र तत्त्व प्रबल आकर्षण बल और प्रकाश से युक्त होकर नाना प्रकार के व्यवहारों में बार-२ वर्तने लगता है। {ओहते = उहिर् अर्दन = मार डालना} वह बाधक तीक्ष्ण पदार्थों का मर्दन करता हुआ अपनी नियंत्रण शक्ति के द्वारा सब ओर फैलकर नाना प्रकार की प्रकाश रश्मियों को उत्पन्न करता है। वे रश्मियां विभिन्न परमाणुओं की ओर झुकती हुई उन्हें नाना प्रकार से विभाजित करती हैं। वे एक-दूसरे के साथ संगम वा धारण गुण न दर्शाती हुई अतिसक्रिय होकर नृत्य करती हैं। वे रश्मियां विभिन्न छेद्य पदार्थों में व्याप्त होकर उनकी हवियों का बार-२ आदान-प्रदान करने में समर्थ होती हैं। {खदिरः = खदति हिनस्तीति खदिरः (उ.को.१.५३), खदिरो यदेनेनाखिदत् (श.३.६.२.१२)} वह इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण बल रश्मियों में स्थित होता हुआ विभिन्न पदार्थों को शुद्धरूप से खोदता है, जिससे वे पदार्थ अपने बाधक तीक्ष्ण बलों से उपरत होकर आकाश में शिथिल रूप में व्याप्त हो जाते हैं। उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वह शिथिल हुआ असुरतत्त्व पुरुषरूप आदित्य लोक की गहराइयों में व्याप्त हो गया है। तदुपरान्त इन्द्रतत्त्व सम्पूर्ण आदित्य लोक में परिपूर्ण होकर पुष्ट होने लगता है, जिसके कारण वह दूर-२ स्थित पदार्थों को भी अत्यन्त प्रकाशित करता हुआ अपने आकर्षण और धारण बलों के द्वारा नाना प्रकार के बाधक पदार्थों को छिन्न-भिन्न करने लगता है।

(द) अथर्व. २०.१३२

१-१६ प्रजापतिर्देवता। १-६, १२, १६ प्राजापत्या गायत्री, १०, १४ आसुरी जगती, ११, १३ दैवी जगती, १५ याजुषी गायत्री।

(१) आदलांबुकमेकंकम्।।१।।

(२) अलाबुकं निखातकम् ।।२।।
(३) कर्करिको निखातकः ।।३।।
(४) तद्वात उन्मथायति ।।४।।
(५) कुलायं कृणवादिति ।।५।।
(६) उग्रं वनिषदाततम् ।।६।।
(७) न वनिषदनाततम् ।।७।।
(८) क एषां कर्करी लिखत् ।।८।।
(९) क एषां दुन्दुभिं हनत् ।।९।।
(१०) यदीयं हनत्कथं हनत् ।।१०।।
(११) देवी हनत्कुहनत् ।।११।।
(१२) पर्यागारं पुनः पुनः ।।१२।।
(१३) त्रीण्युष्ट्रस्य नामानि ।।१३।।
(१४) हिरण्य इत्येके अब्रवीत् ।।१४।।
(१५) द्वौ वा ये शिशवः ।।१५।।
(१६) नीलशिखण्डवाहनः ।।१६।।

इस सूक्त का दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझ सकते हैं। वह पूर्वोक्त समृद्ध हुआ इन्द्रतत्त्व आदित्य लोकों में रसरूप रश्मियों के कारण हुए विक्षोभ में अकेला रहता हुआ भी क्षीण नहीं होता है। {अलाबुकम् = न डूबने वाला (पं.क्षेमकरणदास त्रिवेदीभाष्य)} वह ऐसा इन्द्रतत्त्व प्रबलता से सम्पूर्ण पदार्थ को खोदता और मथता हुआ {कर्करिकः = बनाने वाला (पं.क्षेमकरणदास त्रिवेदी भाष्य)} नाना प्रकार की क्रियाओं को सम्पन्न करता है। {कुलायम् = गृहाः कुलायं कुलायमेव भवति (तां.१९.१५.१)} वह उपर्युक्त इन्द्रतत्त्व आदित्य लोकों के अन्दर नाना प्रकार के देव पदार्थों के लिए नाना प्रकार के स्थानों वा क्षेत्रों की रचना करता है। वह उन पदार्थों को तीव्ररूप से नियंत्रित करता हुआ उनका नाना प्रकार से विभाजन और विस्तारण भी करता है। वह इन्द्र अनाततम् अर्थात् सघनरूप में विद्यमान पदार्थों को विभक्त न करके उन्हें सघन ही बनाये रखता है। इन्द्र के इन कर्मों को वस्तुतः प्राणरश्मियां ही सम्पादित करती हैं। {दुन्दुभिः = द्रुमो भिन्न इति वा, दुन्दुभ्यतेर्वा स्याच्छब्दकर्मणः (नि.९.१२), परमा वा एषा वाग् या दुन्दुभी (तै.ब्रा.१.३.६.२-३), एषा वै परमा वाग्या सप्तदशानां दुन्दुभीनाम् (श.५.१.५.६)} वे प्राण रश्मियां ही 'ओम्' रश्मिरूप परमावाक् को प्राप्त करके घोर गर्जना वाली हिंसक रश्मियों को नष्ट करती हैं। विभिन्न दैवी छन्द रश्मियां भी उनको नष्ट करती हैं। यह संघर्ष निरन्तर चलता रहता है। उस समय विभिन्न छन्द रश्मियों को हिंसक रश्मियों के त्रास से मुक्त करने वाली तीन प्रकार की रश्मियां होती हैं, जिनमें से कुछ अत्यन्त प्रकाशमती होती हैं, जिनका रंग सुवर्ण के समान होता है। इसके अतिरिक्त दो प्रकार की रश्मियां और होती हैं। {शिशुः = अयं वाव शिशुर्योऽयं मध्यमः प्राणः (श.१४.५.२.२)। मध्यम् = त्रिष्टुप् छन्द इन्द्रो देवता मध्यम् (श.१०.३.२.५)} वे रश्मियां त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों से युक्त होकर नीले वर्ण और मोर पंख के समान वर्ण वाली होती हैं।

इस प्रकार कुल मिलाकर ये उपर्युक्त १६ लघु छन्द रश्मियाँ ऐतशप्रलाप कहलाती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों की आकस्मिक विकृति को दूर करने वाली पूर्वोक्त प्रक्रिया में ७६ लघु छन्द रश्मियां, जिनके छन्द व्याख्यान भाग में दृष्टव्य हैं, उत्पन्न होती हैं। इनके कारण तारों के अन्दर विद्युत् चुम्बकीय बलों में और भी वृद्धि होती है। नाना प्राथमिक प्राण रश्मियां विशेष सक्रिय होती हैं। इनके प्रभाव से डार्क एनर्जी व डार्क मैटर को नियन्त्रित करके सम्पूर्ण तारे वा बाहरी आकाश में शिथिल रूप में फैला दिया जाता है। जब डार्क मैटर वा डार्क एनर्जी का दृश्य पदार्थ के साथ संघर्ष होता है, तो डार्क मैटर वा डार्क एनर्जी के तीन भाग व तीन दिशाओं से वह पदार्थ सक्रिय होकर गर्जना वा सूक्ष्म ध्वनियां उत्पन्न करता हुआ दृश्य पदार्थ को घेर लेता है। वे तीन भाग ही विशेष हिंसक होते हैं। उन भागों को प्राण रश्मियां विदीर्ण करती हैं। इन प्राण रश्मियों के कारण ही तारों की होने वाली विकृति नष्ट होती

है। ये प्राण रश्मियां **'ओम्'** छन्द रश्मि के अन्दर निवास करती हैं। विद्युत् की उत्पत्ति इन्हीं के द्वारा होती है। इस समय तारों के अन्दर कुछ भाग अति प्रकाशमान होते हैं, तो कुछ काले धब्बों के रूप में उत्पन्न होते हैं। तारों के अन्दर विद्यमान विभिन्न आयन अति सक्रिय होकर नृत्य करते हुए नाना प्रकार की ध्वनियां उत्पन्न करते हैं। प्राण रश्मियों पर डार्क एनर्जी का कोई भी दुष्प्रभाव नहीं होता। इनके कारण ही विभिन्न कण और क्वाण्टाज् अथवा विभिन्न कणों के बीच परस्पर संयोग-वियोग की क्रिया सम्पन्न होती है। तारों के बाहरी भाग में ऊंची-२ ज्वालाओं को उत्पन्न करने में भी इन्हीं प्राणादि रश्मियों की भूमिका होती है। इन्हीं के कारण विभिन्न कण और क्वाण्टाज् उत्पन्न होते हैं। सभी प्रकार के बलों का कारण भी ये ही रश्मियां होती हैं। तारों के अन्दर विभिन्न प्रकार की क्रियाओं में विद्युत् की ही भूमिका होती है, इसी के कारण तारों के अन्दर विभिन्न प्रकार के क्षेत्र उत्पन्न होते हैं। तारों के अन्दर विभिन्न प्रकार की तीक्ष्ण हानिकारक तरंगों को नष्ट करने के लिए तीन प्रकार के रंगों वाली तरंगें उत्पन्न होती हैं। इनमें से कुछ तरंगें सुनहरे रंग की तो कुछ नीले रंग की तथा अन्य मोर पंख के समान बहुरंगी होती हैं।

२. ऐतशो ह वै मुनिरग्नेरायुर्ददर्श यज्ञस्यायातयाममिति हैक आहुः; सोऽब्रवीत् पुत्रान्-पुत्रका अग्नेरायुरदर्शं, तदभिलपिष्यामि, यत्किंच वदामि, तन्मे मा परिगातेति, स प्रत्यपद्यतैता अश्वा आप्लवन्ते, प्रतीपं प्रातिसत्वनमिति।।
तस्याभ्यग्निरैतशायन एत्याकालेऽभिहाय मुखमप्यगृह्णाददृपन्नः पितेति।।
तं होवाचापेह्यलसोऽभूर्यो मे वाचमवधीः शतायुं गामकरिष्यं, सहस्रायुं पुरुषं, पापिष्ठां ते प्रजां करोमि, यो मेत्थमसक्था इति।।
तस्मादाहुरभ्यग्नय ऐतशायना और्वाणां पापिष्ठा इति।।

व्याख्यानम्- {एतशः = अश्वनाम (निघं.१.१४), एति प्राप्नोतीति एतशः, (उ.को.३.१४६), अश्वेनैव व्याप्तिशीलो वेगवान् किरणनिमित्तो वायुः (तु.म.द.य.भा.१२.७४)। ऐतशः एतश इति मे मतम्} पूर्वोक्त ७६ लघु छन्द रश्मियां ऐतश ऋषिरूपी प्राणरश्मियों से उत्पन्न होती हैं। ये ऐतश प्राणरश्मियां अति वेग और व्याप्ति से युक्त होती हैं। इस ऋषि प्राण से उत्पन्न छन्द रश्मियों को ही पूर्व कण्डिका में ऐतशप्रलाप कहा गया है। यहाँ उन्हीं छन्द रश्मियों को 'अग्नेरायुः' कहा गया है। इससे संकेत मिलता है कि इन सभी ७६ छन्द रश्मियों के द्वारा पूर्वोक्तानुसार प्रभाव के साथ-२ अग्नि तत्त्व भी प्राणवान् हो उठता है। इसके प्राणवान् होने से अनेक प्रकार की संयोग-वियोगादि प्रक्रियाएं तीव्र बलवती हो उठती हैं। कुछ विद्वान् इन ७६ छन्द रश्मियों के समूह को "यज्ञस्यायातयामम्" भी कहते हैं। {यातयामम् = परित्यक्त, विकृत - आप्टेकोष} इससे संकेत मिलता है कि आदित्य लोकों के अन्दर पूर्वोक्त प्रकार से जो रसरूप सूक्ष्मरश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों में से रिसकर अलग हो जाती हैं, इससे वे छन्द रश्मियां विकृति को प्राप्त हो जाती हैं। ऐसी विकृत छन्द रश्मियों एवं उनकी रसरश्मियों को परस्पर पुनः संगत करने में इन ऐतशप्रलाप संज्ञक ७६ छन्द रश्मियों की विशेष भूमिका होती है। इसके कारण विभिन्न आदित्य लोकों में आई हुई विकृति को दूर करने में अन्य कुन्ताप छन्द रश्मियों की अपेक्षा इनका योगदान अधिक होता है। {गातुः = पृथिवीनाम (निघं.१.१), वाङ्नाम (निघं.१.११ - वै.को. से उद्धृत), गातुं गमनम् (नि.४.२१)} ऐतश नाम की प्राणरश्मियां अपनी पुत्ररूप उपर्युक्त 'अग्नेरायु' नामक ७६ छन्द रश्मियों को उत्पन्न करके आकृष्ट करती हैं, तव सूक्ष्म ध्वनियां भी उत्पन्न होती हैं, उस समय जो भी छन्द रश्मियां वा परमाणु आदि पदार्थ गमन करते वा प्रकाशित होते हैं, वे ऐतश छन्द रश्मियों को सव ओर से आच्छादित करने वाले नहीं होते हैं, वल्कि वे ऐतश छन्द रश्मियों के प्रभाव से, विशेषकर पूर्वोक्त (अथर्व.२०.१२६.१-२ के) प्रभाव से विभिन्न वाधक रश्मियों को पार करते हुए तथा उन वाधक रश्मियों के द्वारा अनिष्ट वा विपरीत क्रियाओं को प्राप्त करने वाले परमाणु आदि पदार्थ अनुकूल गति और वल के द्वारा प्रेरित होते हैं।।

{मुखम् = मुखं गायत्री (तां.७.३.७; जै.ब्रा.२.१३)} उपर्युक्त क्रिया के चलते अकस्मात् एक

अनिष्ट घटना भी कभी-२ घट जाती है। यहाँ ऐतश प्राण रश्मियों से उत्पन्न पूर्वोक्त अग्नेरायुः नामक ७६ छन्द रश्मियों को 'ऐतशायन अभ्यग्नि' कहा है अर्थात् ये सभी छन्द रश्मियां अग्नि तत्त्व की ओर अभिमुख होती हैं। जब ऐतश प्राण रश्मियों से ये छन्द रश्मियां उत्पन्न हो रही होती हैं और उनकी उत्पत्ति पूर्ण रूप से सम्पन्न नहीं हो चुकी होती है, तभी अकस्मात् उत्पन्न वे अभ्यग्नि छन्द रश्मियां, विशेषकर उनमें विद्यमान गायत्री छन्द रश्मियां ऐतश प्राण रश्मियों को अपनी ओर तेजी से एवं अकस्मात् आकृष्ट करती हैं। उस समय ऐतश प्राण रश्मियां और उनके साथ विद्यमान सम्पूर्ण पदार्थ अति दीप्त हो उठता है, जिससे आदित्य लोक में विद्यमान पदार्थ अपेक्षा से अधिक तेज से युक्त हो उठता है, यह घटना अचानक कभी-२ घटती है।।

इस घटना के घटने के पश्चात् ऐतश नामक प्राण रश्मियां स्वयं से उत्पन्न पूर्वोक्त छन्द रश्मियों को मानो इस प्रकार कहती हैं कि तुम दीप्तिहीन व अल्पक्रियावान् हो, इससे यह संकेत मिलता है कि ग्रन्थकार अपनी शैली में कहना चाहते हैं कि वे उत्पन्न छन्द रश्मियां ऐतश प्राण रश्मियों की अपेक्षा न्यून दीप्ति और क्रिया से युक्त होती हैं। उन ऐसी छन्द रश्मियों को वे ऐतश प्राण रश्मियां स्वयं से दूर हटा देती हैं। यहाँ यह संकेत भी मिलता है कि ये ऐतश प्राण रश्मियां यद्यपि पूर्वोक्त ७६ लघु छन्द रश्मियों को उत्पन्न करती हैं परन्तु वे उनके अति निकट न रहकर कुछ दूरी बनाये रखती हैं और दूरी बनाये रहने पर ही अभ्यग्नि वा अग्नेरायु नामक छन्द रश्मियां अपने पूर्वोक्त कर्मों को सम्पादित करने में समर्थ होती हैं। इसके साथ ही इनके परस्पर दूर रहने पर ही उन छन्द रश्मियों की उत्पत्ति निरन्तर होती रहती है। जबकि उपर्युक्त अनिष्ट घटना के कारण इन छन्द रश्मियों की उत्पत्ति प्रक्रिया का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है। इस अवरोध को हटाने के लिए ही ऐतश प्राण रश्मियां उत्पन्न छन्द रश्मियों को दूर हटाती हैं। इन ऐतश प्राण रश्मियों के सामर्थ्य का वर्णन करते हुए ग्रन्थकार ने लिखा है कि ये ऐतश प्राण रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों वा परमाणु आदि पदार्थों को अनेक प्रकार की ज्योति वा बलों से युक्त करके अधिक संयोजनीय बनाती हैं। ये ऐतश प्राणरश्मियां आदित्य लोकों में विद्यमान विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को असंख्य प्रकार से बल प्रदान करके संयोजनीय बनाती हैं। ये ऐतश प्राण रश्मियां अपने ऊपर आक्रामक होती हुई उन पूर्वोक्त छन्द रश्मियों को सूक्ष्म असुर रश्मियों से युक्त करके अभिभूत कर देती हैं। इन्हीं सूक्ष्म असुर रश्मियों के प्रभाव से प्रक्षेपक बल उत्पन्न होकर आक्रामक ऐतशप्रलाप रश्मियों को निरुद्ध करते हैं किंवा उन्हें निरापद रूप प्रदान करते हैं।।

इस कारण ग्रन्थकार का कथन है कि ऊर्व अर्थात् आच्छादन स्वभाव वाली सूक्ष्म प्राण रश्मियों से उत्पन्न ऐतश प्राणरश्मियों की संतानरूप पूर्वोक्त विकृति को प्राप्त अभ्यग्नि नामक ऐतशप्रलाप छन्द रश्मियां बार-२ पतित होने वाले स्वभाव से युक्त होकर बाधक रश्मियों का ही रूप धारण कर लेती हैं। कदाचित् वे ही पतित छन्द रश्मियां आसुरी छन्द रश्मियों के रूप में प्रकट हो जाती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त ७६ छन्द रश्मियां तारों के अन्दर ऊष्मा आदि ऊर्जा में भी प्रबल वृद्धि करती हैं तथा तारों में आई हुई पूर्वोक्त विकृति को वे छन्द रश्मियां दूर करने में सक्षम होती हैं। इस प्रक्रिया में कभी-२ एक अनिष्ट घटना घट जाती है। जब इनमें से कुछ छन्द रश्मियां स्वयं को उत्पन्न करने वाली सूक्ष्म प्राण रश्मियों को ही घेरकर उनसे अपने को उत्पन्न करने वाली प्रक्रिया को अवरुद्ध कर देती हैं, उस समय वे अवरुद्ध प्राण रश्मियां तारों के अन्दर अकस्मात् अति तीव्र प्रकाश व ऊष्मा आदि को उत्पन्न करती हैं, जो तारे के अस्तित्व के लिए घातक हो सकता है। उस समय वे प्राण रश्मियां अपने को आच्छादित व आक्रमित करने वाली अपने से ही उत्पन्न उन छन्द रश्मियों को अपने बल से दूर हटा देती हैं। वे दूर हटायी हुई छन्द रश्मियां डार्क एनर्जी वा डार्क मैटर में परिवर्तित हो जाती हैं।।

३. तं हैके भूयांसं शंसन्ति।।
स न निषेधेद् यावत्कामं शंसेत्येव ब्रूयादायुर्वा ऐतशप्रलापः।।
आयुरेव तद् यजमानस्य प्रतारयति य एवं वेद।।
यदेवैतशप्रलापा३ः।।

छन्दसां हैष रसो यदैतशप्रलापश्छन्दःस्वेव तद्रसं दधाति।।
सरसैर्हास्य च्छन्दोभिरिष्टं भवति, सरसैश्छन्दोभिर्यज्ञं तनुते य एवं वेद।।
यद्वेवैतशप्रलापा३ः।।
अयातयामा वा अक्षितिरैतशप्रलापोऽयातयामा मे यज्ञेऽसदक्षितिर्मे यज्ञेऽसदिति।।
तं वा एतमैतशप्रलापं शंसति, पदावग्राहं यथा निविदम्।।
तस्योत्तमेन पदेन प्रणौति, यथा निविदः।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का मत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि उपर्युक्त ऐतशप्रलाप नामक छन्दरश्मियां आदित्य लोकों में अनेकों वार उत्पन्न होती रहती हैं। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"अष्टादश वा।"
"नवाऽऽद्यानि।" (आश्व.श्रौ.८.३.१५-१६)

इन वचनों का आशय हमारी दृष्टि में यह है कि पूर्वोक्त ७६ ऐतशप्रलाप रश्मियों में से प्रारम्भिक सूक्त की २० छन्द रश्मियां ९ वार तथा अन्य छन्द रश्मियां १८ वार एक चक्र में उत्पन्न होती हैं, इसी को यहाँ अनेक वार उत्पन्न होना कहा गया है।।

यहाँ महर्षि अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं कि इन छन्द रश्मियों की आवृत्ति की कोई निश्चित सीमा नहीं है। आदित्य लोकों में विभिन्न छन्द रश्मियों के पूर्वोक्त विकृतरूप और क्रियाओं को पुनः समुचित रूप प्रदान करने के लिए इन छन्द रश्मियों की जितनी वार आवृत्ति की आवश्यकता होती है, उतनी वार आवृत्ति होती है, इसमें कोई प्रतिवन्ध वा निश्चित सीमा नहीं है। इस प्रकार की स्थिति वनने पर यजमानरूप आदित्य लोक अपनी निर्धारित आयु प्राप्त करता है। इसके लिए उन आदित्य लोकों में नाना प्रकार की संसर्ग आदि क्रियाएं समृद्ध होकर विक्षुब्ध वा विकृत परमाणु आदि पदार्थों को समुचित वल और क्रियाएं प्राप्त होती हैं।।+।।

ये ऐतशप्रलाप रश्मियां कुन्ताप सूक्तरश्मियों में श्रेष्ठ होती हैं, मानो वे अन्य कुन्ताप छन्दरश्मियों का साररूप होती हैं। ये कुन्तापरूप सार रश्मियां विभिन्न छन्दरश्मियों से स्रवित रसरूप रश्मियों को उनकी मूल छन्दरश्मियों में धारण कराने में विशेष सहयोग करती हैं। जब ये रसरूप छन्दरश्मियां अपनी मूल छन्द रश्मियों के साथ इन ऐतशप्रलाप रश्मियों के द्वारा पुनः संयुक्त हो जाती हैं, तव उन छन्द रश्मियों की आदित्य लोकों के अन्दर जो भी इष्ट क्रियाएं होती हैं, वे अनुकूलतापूर्वक सम्पन्न होने लगती हैं। इससे तारों के अन्दर नाना प्रकार की अभीष्ट क्रियाओं रूप यज्ञ निरन्तर विस्तृत होता जाता है। इस कारण इन ऐतश छन्दरश्मियों की श्रेष्ठता प्रमाणित होती है। ये छन्दरश्मियां लघुरूप में होते हुए भी आदित्य लोकों की पूर्वोक्त विकृति को दूर करने में महती भूमिका निभाती हैं।।+।।+।।+।।

इन ऐतशप्रलाप छन्दरश्मियों की प्रशंसा करते हुए पुनः कहते हैं कि ये छन्दरश्मियां अयातयामा नहीं होती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये रश्मियां गतसार अर्थात् निष्प्रभ नहीं होती, वल्कि ये इन कुन्ताप छन्दरश्मियों का सार वा तेजरूप ही होती हैं। इस कारण से इन छन्द रश्मियों के प्रभाव और परिणाम अक्षय होते हैं। ये छन्दरश्मियां अन्य कुन्ताप छन्दरश्मियों की उत्पत्ति एवं उनके प्रभाव और परिणाम को भी सफल, समृद्ध और अक्षय वनाती हैं। यही इन रश्मियों की अन्यों की अपेक्षा श्रेष्ठता है।।

ये ऐतशप्रलाप छन्दरश्मियां इस ग्रन्थ में अनेकत्र वर्णित निविद् रश्मियों के समान कार्य करती हैं। जैसे निविद् रश्मियां विभिन्न छन्दरश्मियों के 'पादशः' विराम में संधि का कार्य करती हैं, वैसे ही ये ऐतशप्रलाप रश्मियां अन्य विभिन्न कुन्ताप आदि के पादशः अवसान-अवकाश में उत्पन्न होकर उन्हें वांधे रखने का कार्य करती हैं।।

जैसे निविद् रश्मियों का अन्तिम अक्षर **'ओम्'** छन्दरश्मि के साथ संयुक्त होता हुआ उत्पन्न होता है, वैसे ही इन ऐतशप्रलाप छन्दरश्मियों का अन्तिम अक्षर भी **'ओम्'** छन्द रश्मि के साथ संयुक्त होता हुआ ही उत्पन्न होता है। इस प्रकार इन छन्द रश्मियों की निविद् रश्मियों के साथ समानता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- व्याख्यान भाग में वर्णित लघु छन्द रश्मियां तारों की विकृति को दूर करने के लिए निरन्तर आवृत्त होती रहती हैं। ये छन्द रश्मियां तारों के अन्दर विभिन्न छन्द रश्मियों की विकृत्ति को दूर करने में सर्वाधिक अग्रणी भूमिका निभाती हैं। ये सूक्ष्म छन्द रश्मियां बड़ी छन्द रश्मियों के अन्दर प्रविष्ट होकर उन सबको बांधे रखने में सहायक होती हैं अर्थात् ये संधानक का कार्य करती हैं। इस प्रकार तारों की विकृति को दूर करने में इनकी महती भूमिका होती है। इन छन्द रश्मियों के अन्तिम भाग में **'ओम्'** छन्द रश्मि विद्यमान रहती है।।

४. प्रवह्लिकाः शंसति; प्रवह्लिकाभिर्वै देवा असुरान् प्रवह्ल्याथैनानत्यायंस्तथैवैतद् यजमानाः प्रवह्लिकाभिरेवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रवह्ल्याथैनमतियन्ति।।
ता अर्धर्चशः शंसति, प्रतिष्ठाया एव।।
आजिज्ञासेन्याः शंसत्याजिज्ञासेन्याभिर्वै देवा असुरानाज्ञायाथैनानत्यायंस्तथैवैतद् यजमाना आजिज्ञासेन्याभिरेवाप्रियं भ्रातृव्यमाज्ञायाथैनमतियन्ति; ता अर्धर्चशः शंसति, प्रतिष्ठाया एव।।
प्रतिराधं शंसति; प्रतिराधेन वै देवा असुरान् प्रतिराध्याथैनानत्यायंस्तथैवैतद् यजमानाः प्रतिराधेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रतिराध्याथैनमतियन्ति।।
अतिवादं शंसत्यतिवादेन वै देवा असुरानत्युद्याथैनानत्यायंस्तथैवैद् यजमाना अतिवादेनैवाप्रियं भ्रातृव्यमत्युद्याथैनमतियन्ति; तमर्धर्चशः शंसति, प्रतिष्ठाया एव।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर कुमारीदेवताक (अथर्व.२०.१३३ सूक्त) की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है।

(१) वितंतौ किरणौ द्वौ तावा पिनष्टि पूरुषः। न वै कुमारि तत्तथा यथा कुमारि मन्यसे।।१।।

छन्द निचृदनुष्टुप्। छान्दस प्रभाव यथावत्। इसके दैवत प्रभाव से कुमार नामक अति वेगवान् और चपल अग्नि प्रभावित होता है। अन्य प्रभाव से आदित्य लोकों में दो प्रकार की हानिकारक किरणों, जिनका वर्णन इस प्रकरण में किया गया है, आदित्य लोकों के अस्तित्त्व के लिए संकट उत्पन्न करने वाली होती हैं। ये रश्मियां हैं- (१) आसुरी रश्मियां (२) रिसी हुई रसरूप छन्द रश्मियों के मेल से उत्पन्न वे रश्मियां, जो आदित्य लोकों की विभिन्न क्रियाओं को बाधित करते हुए उन लोकों को कंपाने लगती हैं। इन दोनों ही प्रकार की किरणों को पुरुष अर्थात् ये छन्द रश्मियां पीसती वा नष्ट करती हैं क्योंकि इन हानिकारक किरणों के कारण कुमार नामक अग्नि यथावत् प्रकाशित नहीं हो पाता है, जो हानिकारक रश्मियों के नष्ट वा नियंत्रित होने पर होने लगता है।

(२) मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृत्तः पुरुषानृते। न वै कुमारि तत्तथा यथा कुमारि मन्यसे।।२।।

छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वे उपर्युक्त दोनों हानिकारक किरणें, जो विभिन्न छन्द रश्मि समूहों किंवा आदित्य लोकरूप पुरुष में विद्यमान होती हैं, वे माता अर्थात् वे मूलतः विभिन्न प्राण रश्मियों द्वारा उत्पन्न होती और मूलतः उन्हीं के द्वारा निवृत्त भी होती हैं। शेष पूर्ववत्।

(३) निगृंह्य कर्णको द्वौ निरांयच्छसि मध्यमे। न वैं कुमारि तत्तथा यथां कुमारि मन्यंसे।।३।।

छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से आदित्य लोकों के मध्य उपर्युक्त दोनों प्रकार की हानिकारक किरणों के सूक्ष्म रूप को वे प्राथमिक प्राण रश्मियां नष्ट करके सभी छन्दादि रश्मियों वा परमाणु आदि पदार्थों को अच्छी प्रकार नाना क्रियाओं में नियंत्रण के साथ नियुक्त करती हैं। शेष पूर्ववत्।

(४) उत्तानायै शयानायै तिष्ठंन्ती वावं गूहसि। न वैं कुमारि तत्तथा यथां कुमारि मन्यंसे।।४।।

छन्द अनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से आदित्य लोकों की विभिन्न क्रियाओं और पदार्थों के उत्कर्ष के लिए शिथिल क्रियाओं और पदार्थों को सक्रिय करने के लिए मातृरूप प्राण रश्मियां पूरी शक्ति के साथ कार्य करती हैं। शेष पूर्ववत्।

(५) श्लक्ष्णांयां श्लक्ष्णिंकायां श्लक्ष्णमेवावं गूहसि। न वैं कुमारि तत्तथा यथां कुमारि मन्यंसे।।५।।

छन्द निचृदनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वे उपर्युक्त प्राण रश्मियां संयोजक और सूक्ष्म संयोजक दोनों ही प्रकार की रश्मियों वा पदार्थों के संयोजक वल को अन्तरिक्ष में प्रकट करती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि विभिन्न पदार्थों के संयोजक वलों के पीछे मूलतः प्राथमिक प्राण रश्मियों की भूमिका होती है। शेष पूर्ववत्।

(६) अवंश्लक्ष्णमिवं भ्रंशदन्तर्लोममति ह्रदे। न वैं कुमारि तत्तथा यथां कुमारि मन्यंसे।।६।।

छन्द अनुष्टुप् दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {हृदयम् = असौ वाऽआदित्यो हृदयम् (श.६.१.२.४०), श्लक्ष्णं हृदयम् (श.६.१.२.४०)} आदित्य लोक रूपी हृदय, जिसमें सभी क्रियाएं विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों के संश्लेषण और विश्लेषण से उत्पन्न होती हैं, में पूर्वोक्तानुसार जव विभिन्न छन्द रश्मियां भ्रान्त और खण्डितरूप को प्राप्त करती हैं, तव संश्लेषण आदि क्रियाएं समुचितरूप से संपन्न नहीं हो पाती हैं। शेष पूर्ववत्।

इन छन्द रश्मियों को ग्रन्थकार ने 'प्रवह्लिका' कहा है। प्रवह्लिका छन्द रश्मियों के विषय में एक महर्षि का कथन है-

"तद्यथाभिर्ह वै देवा असुराणां रसान् प्रववृहुस्तस्मात्प्रवह्लिकाः। तत्प्रवह्लिकानां प्रवह्लिकात्वम्" (गो.उ.६.१३)

इसका तात्पर्य यह है कि ये छः प्रवह्लिका संज्ञक छन्दरश्मियां इतनी शक्तिशालिनी होती हैं, जो विभिन्न वाधक असुररश्मियों के वल को उखाड़ फेंककर उन्हें चलायमान करने में समर्थ होती हैं। इन रश्मियों के द्वारा ही आदित्य लोकों में वाधक वने असुररश्मि आदि पदार्थों को विक्षुब्ध वा कंपित करके देव पदार्थ उनको नियंत्रित वा निराकृत करने में सक्षम होते हैं। यहाँ यह संकेत विशाल पदार्थ समूह की दृष्टि से किया गया है। इसी प्रकार सूक्ष्म स्तर पर विभिन्न संयोज्य परमाणु आदि पदार्थ भी इन्हीं छन्द रश्मियों के द्वारा सूक्ष्म वनी वाधक रश्मियों को कंपित वा निराकृत करके अपनी विभिन्न क्रियाओं को सम्पादित करने में समर्थ होते हैं, जिससे आदित्य लोकों के अन्दर सूक्ष्म से विशाल स्तर पर सभी क्रियाएं विधिवत् होने लगती हैं। इन उपर्युक्त छन्द रश्मियों की उत्पत्ति का संकेत महर्षि आश्वलायन ने भी किया है-

"वितती किरणौ द्वाविति षळनुष्टुभः"। (आश्व.श्रौ.८.३.१८)।।

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

तदनन्तर प्रजापतिदेवताक (अथर्व.२०.१३४.१-४) छन्द रश्मियां निम्न क्रमानुसार उत्पन्न होती हैं-

(१) इहेत्थ प्रागपागुदंगधराग् अरांलागुदंभर्त्सथ।।

छन्द निचृत्साम्नी पंक्ति, दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {अरालाक् = कुटिल चाल वाले (प्रो.विश्वनाथ विद्यालंकार भाष्य)} इह अर्थात् आदित्य लोक में सभी दिशाओं में विद्यमान कुटिल चाल वाले रश्मि आदि पदार्थों को ताड़ित वा नियंत्रित किया जाता है।

(२) इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् वत्साः पुरुषन्त आसते।।

छन्द साम्नी पंक्ति, दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {वत्सः = अयमेव वत्सो योऽयं (वायुः) पवते (श.१२.४.१.११), अग्निर्ह वै ब्राह्मणो वत्सः (जै.उ.२.५.१.१)} आदित्य लोकों में सभी दिशाओं में अग्नि और वायु तत्त्व किंवा अग्नि और सोमतत्त्व रूप वत्स आदित्यरूपी पुरुष के रूप में प्रकट वा स्थित होते हैं।

(३) इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् स्थालीपाको वि लीयते।।

छन्द निचृत् साम्नी पंक्ति, दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {स्थाली = पत्नी स्थाली (तै. ब्रा.२.१.३.१)} इन आदित्य लोकों के अन्दर सभी दिशाओं में विद्यमान पदार्थ विभिन्न पत्नीरूप रक्षिका छन्दरश्मियों के द्वारा परस्पर अच्छी प्रकार से निरन्तर मिश्रित किया जाता रहता है, जिससे नाना प्रकार के पदार्थों की उत्पत्ति भी निरन्तर होती रहती है।

(४) इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् स वै पृथु लीयते।।

छन्द विराट् साम्नी पंक्ति। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से आदित्य लोकों में पूर्वोक्त पदार्थ अति विस्तृत क्षेत्र में विद्यमान रहता वा मिश्रित होता रहता है।

इस सूक्त में छः छन्द रश्मियां हैं परन्तु यहाँ 'आजिज्ञासेन्या' के रूप में आचार्य सायण ने इन चार ऋचाओं का ही ग्रहण किया है। इनके ग्रहण में महर्षि आश्वलायन का भी प्रमाण है-

"इहेत्थ प्रागपागुदगिति चतस्रो द्वेधाकारं प्रणवेनासंतन्वन्।" (आश्व.श्रौ.८.३.२०) इन छन्द रश्मियों को 'आजिज्ञासेन्या' कहा है। इस विषय में आचार्य सायण का कथन है-

"आकारोऽत्र अवशब्दार्थे वर्तते। आज्ञातुमवज्ञातुमिच्छा 'आजिज्ञासा' तामर्हन्तीति तत्साधनीभूता ऋचः 'आजिज्ञासेन्याः'। आज्ञायासुराणामवज्ञां कृत्वेत्यर्थः।

इस प्रकार ग्रन्थकार का कथन है कि आदित्य लोकों में विशाल स्तर पर दृश्य पदार्थ असुर पदार्थ की अवज्ञा करके (इन्हीं छन्द रश्मियों के द्वारा) अर्थात् उन्हें निष्प्रभावी बनाकर अपना प्रभाव बढ़ाता हुआ आदित्य लोकों का निर्माण करने में अपनी सभी वांछनीय क्रियाओं को करने में समर्थ होता है। उसी प्रकार सूक्ष्म स्तर पर विभिन्न देव परमाणु आदि पदार्थ नाना प्रकार की संयोगादि क्रियाओं को करने में समर्थ होते हैं। वे इन्हीं छन्द रश्मियों के द्वारा विभिन्न प्रकार के बाधक रश्मि आदि पदार्थों को नियंत्रित वा अतिक्रमित करके अपने नाना प्रकार के संयोगादि कर्मों के करने में समर्थ होते है। यहाँ "ता अर्धर्चशः. ......" इत्यादि भाग का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

तदनन्तर एक अन्य प्रतिराध-संज्ञक तृच की उत्पत्ति होती है। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"भुगित्यभिगत इति त्रीणि पदानि सर्वाणि यथानिशान्तम्।" (आश्व.श्रौ.८.३.२२)

इसकी टीका करते हुए आचार्य नारायण का कथन है-

"सर्वाणि यथानिशान्तमिति वचनादत्रोत्तमेऽपि पदे प्रणवो न कर्तव्य इति गम्यते। तेनात्र त्रीणि पदानि यथानिशान्तं शंस्तव्यानि।"

आचार्य सायण ने यहाँ 'प्रतिराध' नाम से इसी तृच का ग्रहण किया है। ध्यातव्य है कि इस प्रकरण में महर्षि आश्वलायन ऋचा के लिए 'पद' शब्द का प्रयोग करते हैं। यह तृच (अथर्व.२०.१३५.

१-३) प्रजापति वा इन्द्रदेवताक है, जो निम्न क्रमानुसार उत्पन्न होता है-

(१) भुगित्यभिगतः शलित्यपक्रान्तः फलित्यभिष्ठितः। दुन्दुभिमाहननाभ्यां जरितरोथामो दैव।।१।।

छन्द स्वराडार्ष्यनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से तीन प्रकार की रश्मियां विशेष सक्रिय होती हैं-
(क) 'भुक्' अर्थात् ऐसी रश्मियां, जो अन्य विभिन्न छन्दादि रश्मियों का पालन करने में सर्वाधिक अग्रणी होती हैं और इस ग्रन्थ में ऐसी अनेक रश्मियों का वर्णन अनेकत्र हुआ है। वे छन्दादि रश्मियां सब ओर व्याप्त होकर सक्रिय होने लगती हैं।
(ख) शल् - अर्थात् वे रश्मियां, जो आशुगामी होकर विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों का अतिक्रमण करती हुई निरन्तर आगे बढ़ती रहती हैं परन्तु वे रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थ उनका ही अनुगमन करते रहते हैं। इस आगे बढ़ने की प्रक्रिया में इस छन्द रश्मि का प्रभाव कार्य करता है।
(ग) फल् - वे रश्मियां, जो विभिन्न संयोगादि प्रक्रियाओं को उत्पन्न और पूर्ण करने में सर्वाधिक भूमिका निभाती हैं, संयोजक बलों से युक्त वे ऐसी छन्दादि रश्मियां संयोजनीय पदार्थों के संयुक्त होते समय सब ओर उत्पन्न वा स्थित हो जाती हैं। इसके साथ ही विभिन्न देव अर्थात् प्राण रश्मियां एवं मरुद् रश्मियां ध्वनि उत्पन्न करते हुए संयुक्त होने वाली विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को सब ओर से उत्कृष्ट बल प्रदान करती हैं।

(२) कोशबिले रजनि ग्रन्थेर्धानमुपानहि पादम्। उत्तमां जनिमां जन्यानुत्तमां जनीन्वर्त्मन्यात्।।२।।

छन्द भुरिगनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {कोशः = मेघनाम (निघं.१.१०)। बिलम् = बिलं भरं भवति बिभर्तेः (नि.२.१७)} विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों के पारस्परिक राग अर्थात् संयोजन में सबके धारक मेघरूप पदार्थों में नाना प्रकार के रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों के पारस्परिक ग्रन्थन बलों को धारण करने के लिए विभिन्न पादरूप छन्द रश्मियों को निकटता से आकाश तत्त्व के साथ बांधने में इस छन्द रश्मि का विशेष योगदान रहता है। सबको उत्पन्न करने वाली विभिन्न वाग् रश्मियों एवं उनसे उत्पन्न होने योग्य अनेक उत्तम और अति उत्तम पदार्थों की नाना प्रकार के मार्गों में व्याप्ति होती है अर्थात् आदित्य लोकों में ये विशेष सक्रिय हो उठते हैं।

(३) अलाबूनि पृषातकान्यश्वत्थपलाशम्। पिपीलिकावटश्वसो विद्युत्स्वापर्णशफो गोशफो जरितरोथामो दैव।।३।।

छन्द आर्षी पंक्ति। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {अलाबूः = न-लम्बते इति आप्टे कोश (लम्बृ = चिपकना, सहारा लेना इति आप्टेकोष)। पृषातकम् = पृषत्+ आ+ तक्+ अच् - आप्टे कोश। पलाशः = ब्रह्म वै पलाशः (श.१.३.३.१९; ५.२.४.१८), सोमो वै पलाशः (कौ.ब्रा.२.२; श.६.६.३.७)। पिपीलिका = पिपीलिका पेलतेर्गतिकर्मणः (दै.३.६)। वटः = वट्+अच् (वट् = घेरना, विभाजन करना - आप्टे कोश)। श्वसः = (श्वस प्राणने, श्वसिति वधकर्मा - निघं.२.१९)} विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थ, जो स्वच्छन्द होकर यत्र-तत्र विचरण करते हैं तथा जो सेचन बलों से युक्त होकर ब्रह्म अर्थात् प्राणापान रश्मियों वा सोम अर्थात् विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में आशुगति से टकराते रहते हैं, वे पदार्थ उन परमाणु आदि पदार्थों को घेरकर उन्हें बल प्रदान करते तथा बाधक पदार्थों को नष्ट करते हैं। वे विद्युत् को अच्छी प्रकार पालते वा उत्पन्न करते हुए विभिन्न पार्थिव परमाणुओं को सम्यग् गति और प्रकाश प्रदान करके उत्क्षेपण बल उत्पन्न करते हैं।

इन तीनों छन्द रश्मियों को 'प्रतिराध' कहा गया है अर्थात् ये छन्द रश्मियां बाधक तत्त्वों का प्रतिरोध और इन प्रतिरोधी छन्द रश्मियों के द्वारा विशाल पदार्थ समूह में देव पदार्थ असुर पदार्थ का प्रतिरोध करके आदित्य लोकों के निर्माण की प्रक्रिया को निरन्तर आगे बढ़ाता है। उसी प्रकार सूक्ष्म स्तर पर विभिन्न दृश्य परमाणु भी विभिन्न संयोग-क्रियाओं में सूक्ष्म असुर रश्मियों को नियंत्रित वा नष्ट करने के लिए इन छन्द रश्मियों का भी आश्रय लेते हैं। ध्यातव्य है कि इन छन्द रश्मियों के अन्तिम अक्षर के

साथ 'ओम्' छन्द रश्मि प्रकट नहीं होती, ऐसा महर्षि आश्वलायन के उपर्युक्त वचन की नारायणी टीका से संकेत मिलता है। इसका कारण हमारी दृष्टि में यह हो सकता है कि इन छन्द रश्मियों में संयोजक वलों की आवश्यकता नहीं होती, वल्कि ये परोक्षरूप में ही इस क्रिया में सहयोग करती हैं।।

तदनन्तर 'अतिवाद' संज्ञक एक छन्द रश्मि उत्पन्न होती है। महर्षि आश्वलायन के कथन "......बीमे देवा अक्रंसतेत्यनुष्टुप्" (आश्व.श्री.८.३.२३) को दृष्टिगत रखते हुए आचार्य सायण ने 'अतिवाद' ऋचा के रूप में प्रजापति वा इन्द्र देवताक एवं आर्ष्युष्णिक् छन्दस्क

वी [मे देवा अक्रंसताध्वर्यो क्षिप्रं प्रचर। सुसत्यमिद्गवामस्यसि प्रखुदसि।।४।। (अथर्व.२०.१३५.४)

का ग्रहण किया है। देवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न देव परमाणु विभिन्न मार्गों पर गमन करते हुए नाना प्रकार की प्राण रश्मियों के द्वारा आशुगमन करते हैं। विभिन्न वागू रश्मियां सत्य अर्थात् प्राण रश्मियों के साथ समुचितरूप से युक्त होकर नाना प्रकार की क्रीड़ाएं करती हैं (खुद क्रीडायाम्)। इस छन्द रश्मि को 'अतिवाद' कहने से यह संकेत मिलता है कि ये छन्द रश्मियां विभिन्न पदार्थों को आश्रयरूप प्राथमिक प्राण रश्मियों के साथ विशेषरूप से जोड़कर उन्हें वल और क्रियाशीलता की दृष्टि से अधिक पुष्ट करती हैं। इसी कारण 'अतिवाद' के विषय में एक ऋषि का कथन है-

"श्रीर्वा अतिवादः" (गो.उ.६.१३)

यहाँ 'श्रीः' प्राण रश्मियों के लिए ही प्रयुक्त है, साथ ही ये शक्वरी संज्ञक तीक्ष्ण छन्द रश्मियों के लिए भी प्रयुक्त होता है। इसी कारण एक अन्य ऋषि का कथन है-

"श्रीर्वै पशवः, श्री शक्वर्यः" (तां.१३.२.२)

शेष भाग का व्याख्यान पूर्व कण्डिका के समान विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न तारों की पूर्वोक्त क्रियाओं में ही ८ अनुष्टुप् और ५ पंक्ति छन्द रश्मियां तीन समूहों में उत्पन्न होती हैं, जिनके द्वारा तारों के निर्माण में जो भी बाधक छन्द रश्मियां क्रियाशील होती हैं, उन्हें नष्ट वा नियंत्रित करने में सहयोग करती हैं। इन छन्द रश्मियों की शक्ति के रूप में प्राथमिक प्राण रश्मियां ही कार्यरत होती हैं। वे प्राण रश्मियां इन छन्द रश्मियों का संयोग आकाश तत्त्व के साथ करने में सहयोग करती हैं। इनमें से कुछ छन्द रश्मियां विशेष वलवती होती हैं, जो डार्क एनर्जी और डार्क मैटर जैसे बाधक पदार्थों से सर्वथा अप्रभावित रहकर तारों की विभिन्न क्रियाओं को सम्पादित करने में सभी छन्द रश्मियों का सहयोग करती हैं। तारों के अन्दर कुछ छन्द रश्मियां अन्य छन्द रश्मियों के पालन वा रक्षण का कार्य करती हैं, तो कुछ छन्द रश्मियां अति तीव्र गति से गमन करती हुई अन्य छन्द रश्मियों को अपना अनुगमन करने के लिए बाध्य करती हैं। एक अन्य प्रकार की छन्द रश्मियां विभिन्न कण व क्वाण्टाज् के पारस्परिक संयोग के समय उनको सब ओर से घेरकर उत्कृष्ट बल प्रदान करती हैं। कोई-२ छन्द रश्मि अन्य छन्दादि रश्मियों के पारस्परिक संयोजन वा एक-दूसरे के साथ गूंथने तथा आकाश तत्त्व के साथ अच्छी तरह सम्बद्ध होने में विशेष बल प्रदान करती है। कुछ छन्द रश्मियां स्वतंत्र और उन्मुक्त रहती हुई किसी के साथ स्थायी रूप से संयुक्त नहीं होती, बल्कि वे उनको संयुक्त करने में अच्छी भूमिका अवश्य निभाती हैं। वे विभिन्न कणों को सम्यग् गति, प्रकाश और उत्क्षेपण बल प्रदान करती हैं। कुछ छन्द रश्मियां विभिन्न कणों वा क्वाण्टाज् को प्राथमिक प्राण रश्मियों के साथ विशेषरूप से संयुक्त करके अधिक बल व गति प्रदान करती हैं।

इति 30.7 समाप्तः

अथ ३०.८ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. देवनीथं शंसति ।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर देवनीथ-संज्ञक (अथर्व.२०.१३५.६-१०) (प्रजापति व इन्द्रदेवताक) छन्द रश्मियों की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन्। तां ह जरितः प्रत्यायंस्तामु ह जरितः प्रत्यायन्।।६।।

छन्द स्वराडार्ष्यनुष्टुप् दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। यहाँ आदित्य और अङ्गिरा के विषय में खण्ड ४.१७ द्रष्टव्य है। आदित्य प्रकाशित लोकों का नाम है एवं अङ्गिरा पृथिवी आदि लोकों का नाम है। इस सन्दर्भ में लोक के स्थान पर कण का ग्रहण करना अधिक उपयुक्त है। इस छन्द रश्मि के अन्य प्रभाव से प्रकाशित आदित्यरूप कण अप्रकाशित पृथिवी आदि परमाणुओं को निरन्तर वल प्रदान करते हैं। वे ही उनके अन्दर प्रविष्ट होकर उन्हें नाना प्रकार के मार्ग और गतियों से युक्त करते हैं।

(२) तां ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णंस्तामु ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्ण। अहानेतरसं न वि चेतनानि यज्ञानेतरसं न पुरोगवामः।।७।।

छन्द भुरिगार्षी त्रिष्टुप् दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वे प्रकाशित कण विभिन्न प्रकार के वलों को प्रत्यक्ष प्राप्त किए हुए होते हैं और उनको वह वल, प्राणरूप आदित्य रश्मियां प्रत्यक्ष प्रदान करती हैं। {अहानेतरसम् = अहानि+आ+इतरसम् (इतरत्र)। यज्ञानेतरसम् = यज्ञान्+आ+इतरसम् (इतरत्र) (प्रो.विश्वनाथ विद्यालंकार भाष्य)} विभिन्न प्रकार के परमाणु आदि पदार्थ प्राणरश्मियों के विना सक्रिय नहीं हो सकते एवं उन्हीं के संगम के विना आगे गति नहीं कर सकते। इसके प्रभाव से प्राणरश्मियों के साथ संगत होकर ये क्रियाएं सम्यग् रूप से होने लगती हैं।

(३) उत श्वेत आशुपत्वा उतो पद्याभिर्यविष्ठः। उतेमाशु मानं पिपर्ति।।८।।

छन्द भुरिग् गायत्री। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से आशुगति से पतनशील प्राण रश्मियां गतिशील, समृद्ध एवं अत्यन्त संगमनीय होकर समुचित मार्गों के द्वारा सभी परमाणु आदि पदार्थों को परिपूर्ण करती हैं।

(४) आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेऽनु त इदं राधः प्रति गृभ्णीह्यङ्गिरः। इदं राधो विभु प्रभु इदं राधो बृहत्पृथु।।९।।

छन्द विराडार्षी पंक्ति। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से आदित्य लोकों में विद्यमान विभिन्न जगती छन्दरश्मियों रूप आदित्य, त्रिष्टुप् छन्द रश्मिरूप रुद्र एवं गायत्री छन्द रश्मिरूप वसु आदि रश्मियां भी सभी प्रकार के वलों की साधिका प्राणरश्मियों का ही अनुगमन करती हैं। विभिन्न अप्रकाशित परमाणु आदि पदार्थ भी इन प्राण रश्मियों के द्वारा नाना प्रकार के वलों का ग्रहण करके विभिन्न कार्य करने में समर्थ और विस्तृत होते हैं।

(५) देवा॑ दद॒त्वासु॑रं॒ तद्वो॑ अस्तु॒ सुचे॑तनम्। युष्माँ॑ अस्तु॒ दिवे॑दिवे प्र॒त्येव॑ गृभायत।।१०।।

छन्द अनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {असुः = प्रज्ञानाम (निघं.३.६)} विभिन्न देव परमाणु अप्रकाशित परमाणुओं को तेजस्विता प्रदान करके निरन्तर सक्रिय करते हैं। वे अप्रकाशित परमाणु भी प्रकाशित परमाणुओं को निरन्तर अपनी ओर आकृष्ट करते रहते हैं। यहाँ महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन्निति सप्तदश पदानि......।" (आश्व.श्रौ.८.३.२५)

इस वचन को दृष्टिगत रखकर आचार्य सायण ने 'देवनीथ' के रूप में पूर्वोक्त क्रमानुसार इन्हीं ऋचाओं का ग्रहण किया है। पूर्व में हमने आश्वलायन सूत्रों में विद्यमान 'पद' शब्द से ऋचा का ग्रहण किया है और इसी क्रम से अब तक दोनों ही ग्रन्थों (यह ग्रन्थ एवं आश्वलायन श्रौतसूत्र) में पूर्ण संगति लगती चली आयी है, परन्तु यहाँ 'पद' का अर्थ ऋचा ग्रहण नहीं किया जा सकता क्योंकि इसके दसवें खण्ड की प्रथम कण्डिका में इन ऋचाओं से आगे की ऋचाओं का ग्रहण किया गया है और उन्हें ग्रहण करने में स्वयं महर्षि आश्वलायन का भी प्रमाण है, जिसकी चर्चा हम यथास्थान करेंगे। अब प्रश्न यह रह जाता है कि इन पांच ऋचाओं का विभाजन १७ पदों के रूप में कैसे होवे? इसका उत्तर यह है कि ग्रन्थकार ने स्वयं अगले खण्ड में इस विभाजन को दर्शाया है। इनको 'देवनीथ' कहने से यह संकेत मिलता है कि इन छन्द रश्मियों के प्रभाव से विभिन्न प्राण एवं प्रकाशित परमाणुओं की सक्रियता विशेष बढ़ जाती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **पूर्वोक्त प्रक्रिया के चलते दो अनुष्टुप्, एक गायत्री, एक पंक्ति और एक त्रिष्टुप् कुल ५ छन्द रश्मियों का एक समूह उत्पन्न होता है। इसके कारण निर्माणाधीन तारों में विभिन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगें विभिन्न कणों के साथ तीव्रतापूर्वक नाना प्रकार से संयुक्त और वियुक्त होने लगती हैं। इस समय क्वाण्टाज् अधिक ऊर्जा युक्त होते हैं क्योंकि उनमें प्राण रश्मियों की सक्रियता विशेष रूप से बढ़ जाती है।।**

२. आदित्याश्च ह वा अङ्गिरसश्च स्वर्गे लोकेऽस्पर्धन्त,-वयं पूर्व एष्यामो वयमिति; ते हाङ्गिरसः पूर्वे श्वः सुत्यां स्वर्गस्य लोकस्य ददृशुस्तेऽग्निं प्रजिघ्युरङ्गिरसां वा एकोऽग्निः परे ह्यादित्येभ्यः श्वः सुत्यां स्वर्गस्य लोकस्य प्रब्रूहीति; ते हाऽऽदित्या अग्निमेव दृष्ट्वा सद्यः सुत्यां स्वर्गस्य लोकस्य ददृशुस्तानेत्याब्रवीच्छ्वः सुत्यां वः स्वर्गस्य लोकस्य प्रब्रूम इति; ते होचुरथ वयं तुभ्यं सद्यःसुत्यां स्वर्गस्य लोकस्य प्रब्रूमस्त्वयैव वयं होत्रा स्वर्गं लोकमेष्याम इति; स तथेत्युक्त्वा प्रत्युक्तः पुनराजगाम।।

ते होचुः प्रावोचा३ः इति; प्रावोचमिति होवाचाथो मे प्रतिप्रावोचन्निति; नो हि न प्रत्यज्ञास्था३ः इति; प्रति वा अज्ञासमिति होवाच।।

यशसा वा एषोऽभ्यैति य आर्त्विज्येन; तं यः प्रतिरुन्धेद् यशः स प्रतिरुन्धेत्, तस्मान्न प्रत्यरौत्सीति।।

यदि त्वस्मादपोज्जिगांसेद्, यज्ञेनास्मादपोदियात्। यदि त्वयाज्यः स्वयमपोदितं तस्मात्।।८।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रकरण को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि जब पूर्वोक्त रीति से अनेक प्रकार की क्रियाओं के द्वारा आदित्यादि लोकों के निर्माण की विकृति दूर होने लगती है वा लगभग दूर हो चुकी होती है, उस समय लोक निर्माण की प्रक्रिया विधिवत् पुनः प्रारम्भ हो जाती है। यहाँ उसी स्थिति का वर्णन है। जब विशाल आदित्य लोक के निर्माण की यह क्रिया हो रही होती है, उस समय उस विशाल

लोक का सम्पूर्ण पदार्थ उष्ण होता है। उसके बाहरी भाग में विशाल ज्वालाएं उठ रही होती हैं। उस बाहरी भाग को ही यहाँ **'आङ्गिरस'** कहा गया है। उसके केन्द्रीय भाग को ही यहाँ **'आदित्य'** कहा गया है। इस केन्द्रीय भाग में प्राथमिक प्राण, मास व ऋतु रश्मियों की प्रधानता होती है, साथ ही अग्नि के परमाणु भी बहिर्भाग = आङ्गिरस की अपेक्षा अधिक होते हैं। इन दोनों ही भागों के मध्य विशाल भाग में सोमतत्त्व की प्रधानता होती है। इस विशाल लोक के केन्द्रीय एवं बाहरी भाग के बीच स्पर्धा होती है कि कौन सा भाग मध्य भागस्थ सोम पदार्थ को सम्पीडित करके स्वर्ग लोक की अवस्था को प्राप्त करे? स्वर्ग लोक का आशय इस ग्रन्थ में हम लिख चुके हैं। आङ्गिरस प्रधानता वाले बाहरी भाग में गायत्री प्रधान अग्नि तत्त्व विशेषरूप से विद्यमान होता है। हम गायत्री छन्द का अग्नि तत्त्व के साथ सम्बन्ध पूर्व में अनेकत्र बतला चुके हैं। दोनों भागों की उपर्युक्त स्पर्धा में अग्निरूप गायत्री छन्दरश्मियां बाहरी भाग से केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित होने लगती हैं। इसके साथ ही बाहरी भागस्थ विभिन्न रश्मियों से उन छन्द रश्मियों का आकर्षण निरन्तर बना रहता है। वे गायत्री छन्दरश्मियां सोम रश्मियों के सम्पीडन हेतु केन्द्रीय भागस्थ विभिन्न प्राण, मास एवं ऋतु रश्मियों को आकृष्ट करने का प्रयत्न करती हैं, जिससे सोम रश्मियां संपीडित होती हुई बाहरी भाग की ओर गमन कर सकें किन्तु वे गायत्री रश्मियां ऐसा करने में समर्थ नहीं हो पातीं। केन्द्रीय भागस्थ आदित्य संज्ञक विभिन्न प्राण, मास वा ऋतु रश्मियां अग्निरूप गायत्री छन्द रश्मियों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं और यह कार्य अति शीघ्रतापूर्वक होने लगता है, जिसके कारण मध्यभागस्थ विशाल सोम पदार्थ केन्द्रीय भाग की ओर सम्पीडित होने लगता है। इसके साथ ही वे गायत्री छन्दरश्मियां मास और ऋतु रश्मियों से युक्त बाहरी भाग की ओर भी प्रवाहित होने लगती हैं परन्तु उनका प्राणरश्मि प्रधान केन्द्रीय भाग की ओर आकर्षण सतत बना रहता है। यहाँ **'श्वः'** पद से इस बात का संकेत स्वयं ही मिलता है कि बाहरी भाग के निकट विद्यमान सोम पदार्थ का संपीडन बाद में होता है, जबकि **'सद्यः'** पद की विद्यमानता से यह संकेत मिलता है कि सोमतत्त्व के सम्पीडन की क्रिया का प्रारम्भ केन्द्रीय भाग की ओर सर्वप्रथम और अतितीव्र गति से होता है। यहाँ आङ्गिरस, आदित्य और अग्नि का पारस्परिक संवाद लेखक की शैलीमात्र है। इस संवाद को हम डॉ. सुधाकर मालवीय के शब्दों में यहाँ उद्धृत कर रहे हैं।

"{अदिति के पुत्र} आदित्य देवों और महर्षि अङ्गिरसों के मध्य स्वर्गलोक में परस्पर स्पर्धा हो गई कि हम पहले {सोमयाग का अनुष्ठान करके स्वर्ग} जायेंगे, हम.......।" तब उन अङ्गिरसों ने प्रथमतः प्रवृत्त होकर स्वर्गलोक के निमित्तभूत सोमाभिषव को कल करेंगे- ऐसा निश्चय किया। फिर उन अङ्गिरसों ने (आदित्यों के समीप अपनी) अग्नि प्रज्वलित की। अङ्गिरसों के मध्य एक अग्नि नामक महर्षि हैं। उनसे अङ्गिरसों ने कहा- हे अग्नि? तुम वहाँ जाओ और आदित्यों के समीप जाकर कल हम लोगों के द्वारा स्वर्गलोक के निमित्तभूत किए जाने वाले सोमयाग को कहो (कि हे आदित्यो! कल अङ्गिरस सोमाभिषव करेंगे। आप लोग आकर ऋत्विज कर्म करें)। उन आदित्यों ने (दूर से ही आते हुए) अग्नि को देखते ही (उनके अभिप्राय को जानकार कल होने वाले उनके यज्ञ से पूर्व में ही) स्वर्गलोक के साधनभूत सद्यः सोमयाग को (उसी समय) करने का निश्चय किया। तब उन (आदित्यों) के पास आकर अग्नि ने कहा- हे आदित्यो! अङ्गिराओं द्वारा कल अनुष्ठित होने वाले स्वर्गलोक के साधनभूत सोमाभिषव को मैं आपसे कहता हूँ (कि आप आकर उसमें ऋत्विज् कर्म करें)। उन (आदित्यों) ने कहा- अब स्वर्गलोक के साधनभूत हमारे द्वारा आज ही किए जाने वाले सोमयाग को हम लोग तुमसे कहते हैं। (इसलिए यहाँ आए हुए) आपके ही साथ ऋत्विज्कर्म करते हुए हम लोग (पहले) स्वर्गलोक जायेंगे। वह अग्नि 'वैसा ही हो'- इस प्रकार कहकर (आदित्यों से) प्रत्युत्तर प्राप्त करके पुनः (अङ्गिरसों के मध्य) आए।"।।

इस कण्डिका में भी अङ्गिरस और अग्नि का संवाद दर्शाया है, जिसे हम डा. मालवीय के शब्दों में उद्धृत कर रहे हैं-

"उन (अङ्गिराओं) ने (अग्नि से) कहा- हे अग्नि! क्या तुमने हम लोगों के अभिप्राय को आदित्यों के समक्ष बता दिया? हाँ कह दिया"- इस प्रकार कहकर पुनः (अग्नि ने) कहा- आदित्यों ने मुझे इस प्रकार प्रत्युत्तर भी दिया। (तब उस उक्ति को सुनकर उन अङ्गिरसों ने पूछा! क्या तुमने हम लोगों का आर्त्विज्य स्वीकार नहीं किया था? अग्नि ने कहा- 'हाँ हमने स्वीकार तो किया था।'

यहाँ इस संवाद का आशय मात्र यह है कि वे गायत्री छन्दरश्मियां विभिन्न प्राण, ऋतु एवं मास आदि छन्द रश्मियों से आच्छादित होकर पुनः आङ्गिरस वा अग्नितत्त्वप्रधान वाहरी भाग की ओर आती हैं, तव उनकी तेजस्विता वढ़ी हुई होती है और उनका आकर्षण केन्द्रीय भाग की ओर होता हुआ वाहरी भाग की ओर भी वना रहता है। इसी कारण वे छन्द रश्मियां वाहरी भाग की ओर पुनः आती हैं। इसके साथ ही वे केन्द्रीय भाग में भी विद्यमान रहती हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि वे छन्द रश्मियां सम्पूर्ण पदार्थ समूह में संचरित होने लगती हैं।।

जो पुरुषरूप छन्दरश्मियां ऋतु मास आदि रश्मियों के साथ संगत होकर ऋत्विजूरूप प्राप्त करती हैं, वे यश अर्थात् विभिन्न प्राण एवं मरुद् रश्मियों से आवेष्टित होकर सव ओर संचरित होने में समर्थ हो जाती हैं। इसके विपरीत जो छन्द रश्मियां इन ऋतु आदि रश्मियों से युक्त नहीं होती, वे प्राण आदि रश्मियों से भी संयुक्त नहीं हो पातीं, जिससे वे तेजहीन अवस्था को प्राप्त कर लेती हैं। इस स्थिति में वे विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को भी तेजस्विता प्रदान नहीं कर पातीं। इस कारण केन्द्रीय भाग की ओर गमन करने वाली गायत्री छन्दरश्मियां ऋतु आदि रश्मियों के साथ संयुक्त होती हैं।।

उपर्युक्तानुसार गायत्री छन्द रश्मियों के सम्पूर्ण क्षेत्र में संचरित होने के उपरान्त भी उस भाग में विद्यमान सभी परमाणु आदि पदार्थ सर्वत्र संचरित नहीं होते हैं। किसी भी निर्माणाधीन वा निर्मित लोक में कोई भी कण इतना स्वतंत्र नहीं हो सकता कि वह सर्वत्र निर्वाधरूप से विचरण कर सके। यहाँ ग्रन्थकार का कथन है कि यदि कोई परमाणु किसी अन्य परमाणु के साथ संयुक्त हो रहा होता है, उसी समय दूसरे किसी परमाणु के साथ संगत नहीं हो सकता। इस वीच कुछ समय का अन्तराल अवश्य होता है। इसका कारण यह है कि यदि कोई परमाणु पूर्व से ही ऋतुप्राणों के साथ संगत होकर किसी संयोग प्रक्रिया में संलग्न होता है, तव वह उसी समय किसी अन्य प्राण से प्रेरित ऋतुरश्मियों के साथ संगत नहीं हो सकता। इन दोनों क्रियाओं में कुछ समय का अन्तराल अवश्य होता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सृष्टि प्रक्रिया में जब तारों के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है, उस समय सम्पूर्ण पदार्थ उष्ण और प्रकाशित अवस्था को प्राप्त हो चुका होता है अर्थात् नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया प्रारम्भ होने के पूर्व भी सम्पूर्ण पदार्थ गर्म अवस्था को प्राप्त हो चुका होता है। यह उष्णता कैसे उत्पन्न होती है, यह इस ग्रन्थ में अनेकत्र लिखा जा चुका है। नाभिकीय संलयन की क्रिया उत्पन्न होने से पूर्व ही उस विशाल लोक के बाहरी भाग में अग्नि की ऊँची-२ लपटें उठ रही होती हैं। इस लोक के केन्द्रीय भाग में विभिन्न प्राथमिक प्राण, मास एवं ऋतु रश्मियों की प्रधानता होती है, जबकि बाहरी भाग में गायत्री छन्द रश्मियों की एवं मध्य विशाल भाग में संलयनीय पदार्थ का विशाल भण्डार होता है। जब पदार्थ का संलयन प्रारम्भ होता है, तो वह केन्द्रीय भाग से ही प्रारम्भ होता है। जो पदार्थ केन्द्रीय भाग
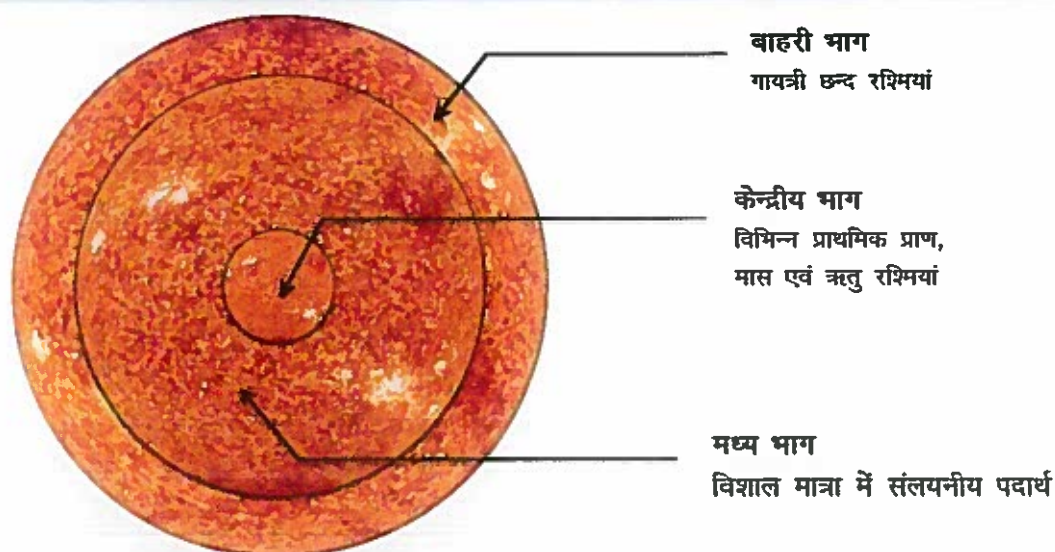
चित्र ३०.२ पदार्थ की दृष्टि से तारे के मुख्य तीन भाग

के जितने निकट होता है, वह उतना ही पहले संलयित होता है। यह संलयन की प्रक्रिया शनैः-२ अपना आकार वा विस्तार बढ़ाने लगती है।

इस सृष्टि में जब भी किन्हीं कणों वा क्वाण्टाज़् का पारस्परिक संयोग होता है, तब एक समय में दो ही कण वा क्वाण्टाज़् का संयोग हो सकता है, इससे अधिक नहीं। इस सृष्टि में अनेक अणुओं में बहुत सारे एटम्स देखे जाते हैं, उनके विषय में भी हमारा मत यह है कि वे सभी एटम्स परस्पर एक साथ संयुक्त नहीं हो सकते, बल्कि शृंखलाबद्ध होकर क्रमशः दो, तीन आदि वर्धमान क्रम में संयुक्त होते हैं। एटम्स की रचना के समय भी यही नियम लागू होता है। इसी प्रकार एक इलेक्ट्रॉन से जब कोई फोटोन संयुक्त वा उत्सर्जित होता है, तब भी एक साथ केवल एक का ही उत्सर्जन वा अवशोषण हो सकता है, अनेक का एक साथ होना सम्भव नहीं।।
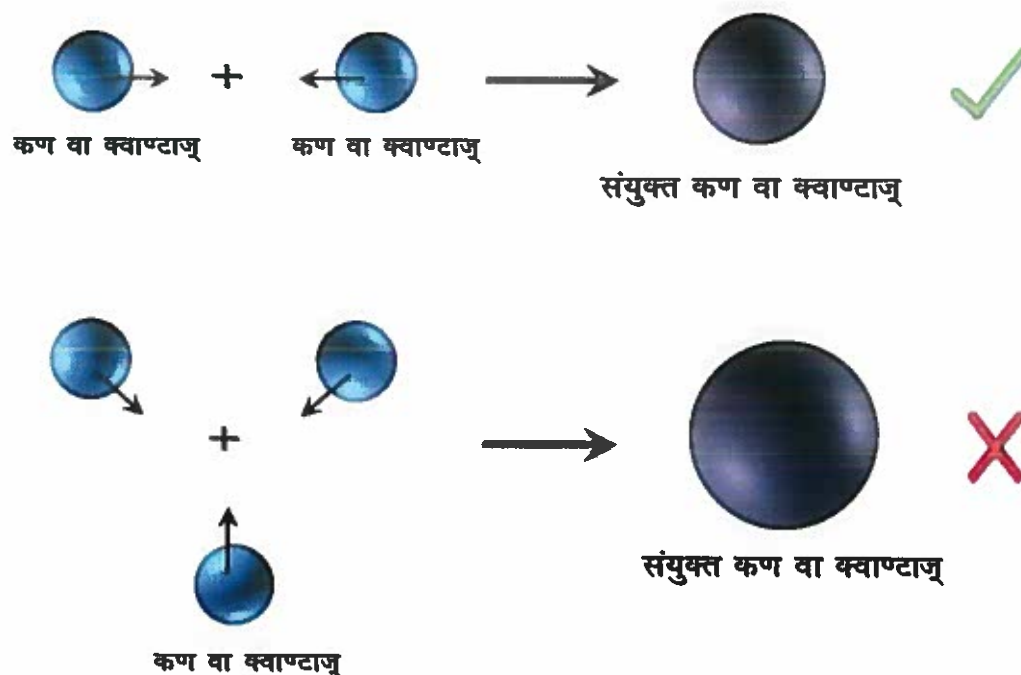
चित्र ३०.३ कणों वा क्वाण्टाज़् के संयोग का नियम

ॐ इति 30.8 समाप्तः ॐ

ॐ अथ ३०.१ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. ते हाऽऽदित्यानङ्गिरसोऽयाजयंस्तेभ्यो याजयद्भ्य इमां पृथिवीं पूर्णां दक्षिणानामददुस्तानियं प्रतिगृहीताऽतपत्, तान्यवृञ्जन् सा सिंही भूत्वा विजृम्भन्ती जनानचरत्, तस्याः शोचत्या इमे प्रदराः प्रादीर्यन्त येऽस्या इमे प्रदराः, समेव हैव ततः पुरा।।

ग्रहों के निर्माण की प्रक्रिया

व्याख्यानम्- {सिंह = सिंहः सहनाद् हिंसेर्वा स्याद् विपरीतस्य सम्पूर्वस्य वा हन्तेः संहाय हन्तीति वा (नि. ३.१८)} पूर्वोक्त प्रकरण को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि जब आदित्य-संज्ञक प्राण अर्थात् प्राथमिक प्राण रश्मियां, जिनमें सूत्रात्मा वायु भी सम्मिलित है, मास एवं ऋतु रश्मियों की प्रधानता वाले केन्द्रीय भाग का संयोग गायत्री छन्द रश्मियों से पूर्वोक्तानुसार होता है, उसके पश्चात् उन रश्मियों के साथ शनैः-२ बाहरी भाग में स्थित पदार्थ के परमाणु भी ऋतु रश्मियों से आच्छादित होकर और भी अधिक प्रदीप्त हो उठते हैं। इसके पश्चात् कुछ परमाणु बाहरी भाग से केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित होकर विभिन्न प्राण एवं मास आदि रश्मियों के साथ संगत होने का प्रयास करते हैं अर्थात् बाहरी पदार्थ केन्द्रीय पदार्थ के साथ संगत होने का प्रयास करने लगता है। उस समय केन्द्रीय भागस्थ पदार्थ तीव्र वेग और बल के साथ बाहरी जलते हुए विस्तृत पदार्थ को बाहर की ओर फेंक देता है, यही मानो आदित्यों की आङ्गिरसों के लिए दक्षिणा के समान है। **यह बाहर फेंका हुआ पदार्थ तीव्र ज्वालाओं से युक्त होता है और यही पदार्थ पृथिवी आदि लोकों में परिवर्तित होता है। यह क्रिया तारों के निर्माण की प्रक्रिया पूर्ण होने से पूर्व ही हो जाती है।** इसी कारण इस ग्रन्थ में हम कुछ स्थानों पर यह लिख चुके हैं कि पृथिवी आदि लोकों का निर्माण तारों के निर्माण के पूर्व होता है। बाहर फेंका हुआ पदार्थ तपता हुआ आदित्य लोकों के बाहरी भाग की ज्वालाओं में समा जाता है। उसके पश्चात् वे ज्वालाएं तीव्र होती जाती हैं, तब उस बाहरी भाग से भी वह पदार्थ पूर्णतया छिटककर बाहर फेंक दिया जाता है अर्थात् आदित्य लोक का बाहरी ज्वालायुक्त भाग भी पदार्थ के विशाल भाग को आङ्गिरसरूप कुछ प्राण रश्मियों के बल के प्रहार से बाहर फेंक देता है, तब बाहर फेंका हुआ पदार्थ {वि+जृम्भ् = खुलना, सर्वत्र फैल जाना, प्रकट होना (आप्टेकोष)} तीव्र बल और वेग से युक्त होकर हिंसक होता हुआ सब ओर फैलने वा बिखरने लगता है अर्थात् वह अनेक विशाल पिण्डों में परिवर्तित होकर तेजी से इधर-उधर दौड़ते हुए अन्तरिक्ष में विद्यमान नाना प्रकार के सूक्ष्म पदार्थों का भक्षण अवशोषण करने लगता है। इस प्रक्रिया में उन विशाल जलते-चमकते पिण्डों के अन्दर विद्यमान पिघला और जलता हुआ पदार्थ उन विशाल पिण्डों अर्थात् लोकों की बाहरी परत को फाड़कर प्रकृष्टरूप से उभरने लगता है अर्थात् आन्तरिक पदार्थ अन्दर से बाहर आकर उन लोकों के बाहरी तल को, जो पहले प्रायः समान अर्थात् समतल होता है, को ऊबड़-खाबड़ करने लगता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सौर मण्डल की उत्पत्ति के समय विशाल लोक का बाहरी पदार्थ ग्रहों का रूप धारण करता है, जबकि केन्द्रीय भाग सूर्यादि तारे में परिवर्तित होता है। इसकी प्रक्रिया इस प्रकार प्रारम्भ होती है कि पदार्थ के प्रबल गुरुत्व के कारण वह विशाल पदार्थ तेजी से सिकुड़ने लगता है और सिकुड़ते हुए पदार्थ में अकस्मात् विशाल विस्फोट होता है। इस विस्फोट के लिए केन्द्रीय भाग में विद्यमान नाना प्रकार की प्राण रश्मियां उत्तरदायिनी होती हैं। इस विस्फोट से ठीक पूर्व सिकुड़ता हुआ बाहरी पदार्थ

बाहर की ओर से धकेला जाता है। उस समय सम्पूर्ण लोक में ऊंची-२ ज्वालाएं उठती रहती हैं। इसके पश्चात् बाहरी पदार्थ अकस्मात् विस्फोट के द्वारा बाहर बिखर जाता है। यह बाहर बिखरा हुआ पदार्थ अतितप्त अवस्था में ग्रहों का रूप धारण करके तेजी से इधर-उधर दौड़ने लगता है। इस समय ये ग्रह अन्तरिक्ष में बिखरे हुए सूक्ष्म कॉस्मिक डस्ट (dust) को अपने साथ मिलाने लगते हैं। उस समय ये सभी ग्रह पूर्णतः पिघली हुई प्रदीप्त अवस्था में विद्यमान होते हैं। इनके तीव्र वेग से इधर-उधर दौड़ने के कारण इनके आन्तरिक भागों में भी भारी हलचल उत्पन्न होती है और इस हलचल के कारण आन्तरिक पदार्थ का कुछ अंश उन लोकों की बाहरी सतह को फोड़ता हुआ रिसकर बाहर आ जाता है। इसके कारण वे लोक पूर्वापेक्षा अधिक विषम रूप प्राप्त कर लेते हैं।।

२. तस्मादाहुर्न निवृत्तदक्षिणां प्रतिगृह्णीयान्नेन्मा शुचा विद्धा शुचा विध्यादिति।। यदि त्वेनां प्रतिगृह्णीयादप्रियायैनां भ्रातृव्याय दद्यात् परा हैव भवति।।

तारों से ग्रहों के पृथक्करण की प्रक्रिया

व्याख्यानम्- {विद्धः = फेंका हुआ, प्रेषित - आप्टेकोष} यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का मत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि जब पूर्वोक्त लोकों की आदित्य लोकों से छिटकने की प्रक्रिया चल रही होती है, उस समय वे लोक अति बल, वीर्य और ताप से युक्त होकर आदित्य लोकों के ज्वालामय भाग से बाहर आते हैं, उसके पश्चात् वे आदित्य लोकों के आकर्षण बल से निवृत्त होकर ही इधर-उधर तेजी से दौड़ते हैं। उसके पश्चात् वे दौड़ते हुए पुनः-२ आदित्य लोक के आकर्षण के प्रभाव से उसके तल की ओर लौट कर आने का बार-२ प्रयास करते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि वे आदित्य लोक के बल की सीमा से सर्वथा पृथक् नहीं होते। वे सूर्य तल की ओर आने का प्रयास करते हुए भी सूर्य के तल में नहीं गिर पाते हैं, बल्कि पृथक् ही रहकर आदित्य लोक के चारों ओर अस्थिर होकर घूमने का प्रयास करते रहते हैं। यदि कोई लोक तेजी से जलता और गति करता हुआ आदित्य लोक के तल से टकराता भी है, तो आदित्य लोक के तल को छेदकर सम्पूर्ण आदित्य लोक में भारी विक्षोभ कर सकता है। इस कारण ऐसा प्रायः नहीं होता है।।

इस उपर्युक्त प्रक्रिया में यदि ऐसी घटना कभी घटने वाली भी होती है, तो आदित्य लोक के बाहर विद्यमान आच्छादक असुर पदार्थ, जो अत्यन्त प्रतिकर्षक और प्रक्षेपक बल से युक्त होता है, उन गिरते हुए लोकों को बाहर की ओर बलपूर्वक धकेल देता है। इसके कारण वे लोक आदित्य लोक के तल से स्थायी रूप से पृथक् हो जाते हैं। इस प्रक्रिया में आदित्य लोक का आच्छादक असुर पदार्थ, जो आदित्य लोक के साथ यदा-कदा संघर्ष करता रहता है, भी क्षीणता को प्राप्त कर लेता है। इससे आदित्य लोक के साथ उसके संघर्ष की प्रक्रिया भी समाप्त वा क्षीण हो जाती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- उपर्युक्त प्रकार से छिटके हुए ग्रह अपने आकर्षण के केन्द्र रूप तारे के चारों ओर तेजी से अनिश्चित रूप से गतियां करते रहते हैं। उनकी गतियां बिना किसी निश्चित कक्षा के तारे
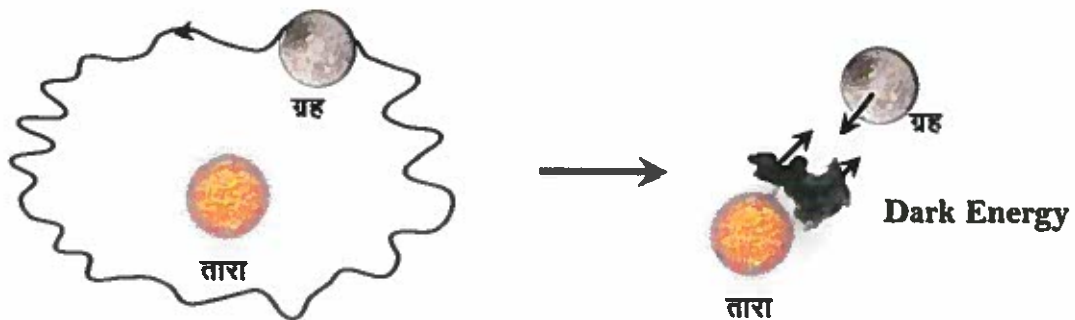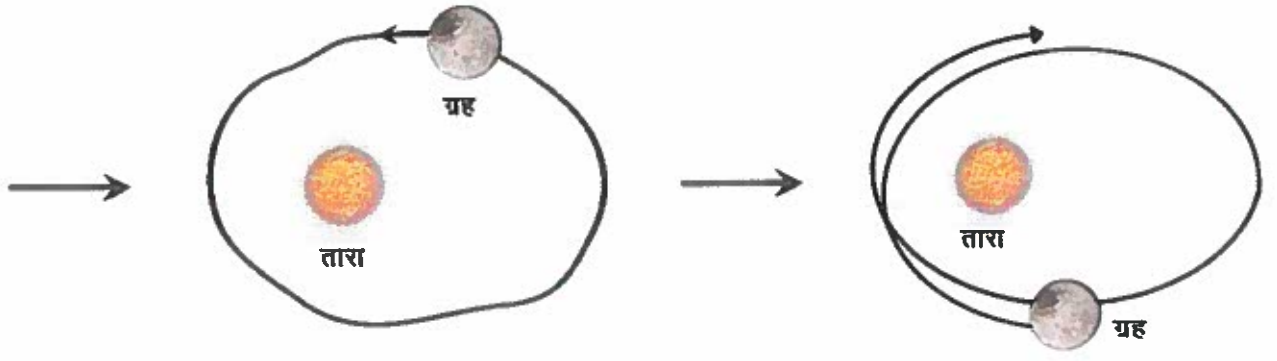
चित्र ३०.४ ग्रहों की तारों के चारों ओर कक्षा के निर्माण की प्रक्रिया

के चारों ओर डगमगाती हुई सी होती हैं परन्तु इसके साथ ही वे तीव्र और हिंसक रूप में भी होती हैं। इस प्रक्रिया में वे ग्रह तारे के गुरुत्वाकर्षण बल के प्रभाव से बार-२ तारे के तल की ओर आने का प्रयास करते हैं परन्तु वे प्रायः उस तल से दूर ही रहते हुए कांपते हुए बाहर ही जाते रहते हैं। यदि कभी कोई ग्रह तारे के तल पर टकरा जाए, तो सम्पूर्ण तारे में भारी विक्षोभ हो सकता है, ऐसी घटनाएं प्रायः ब्रह्माण्ड में नहीं होती हैं। किसी भी तारे और उसके नवनिर्मित ग्रहों के बीच अन्तरिक्ष में डार्क मैटर और डार्क एनर्जी अवरोध बनकर ग्रहों को तारे से दूर ही कर देते हैं और वे ग्रह तारे के तल पर पुनः आने का प्रयास नहीं करते, बल्कि धीरे-२ स्थायी कक्षाओं में परिक्रमण करने लग जाते हैं।।

३. अथ योऽसौ तपर्तीं३ एषोऽश्वः श्वतो रूपं कृत्वाऽश्वाभिधान्यपिहितेनाऽऽत्मना प्रतिचक्रम इमं वो नयाम इति; स एष देवनीथोऽनूच्यते।।
आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन्।।
तां ह जरितर्न प्रत्यायन्निति न हि त इमां प्रत्यायन्।।
तामु ह जरितः प्रत्यायन्निति प्रति हि तेऽमुमायन्।।
तां ह जरितर्न प्रत्यगृभ्णन्निति; न हि त इमां प्रत्यगृभ्णन्।।
तामु ह जरितः प्रत्यगृभ्णन्निति; प्रति हि तेऽमुमगृभ्णन्।।
अहा नेत सन्नविचेतनानीत्येष ह वा अह्नां विचेतयिता।।
जज्ञा नेत सन्नपुरोगवास इति; दक्षिणा वै यज्ञानां पुरोगवी, यथा ह वा इदमनोऽपुरोगवं रिष्यत्येवं हैव यज्ञोऽदक्षिणो रिष्यति; तस्मादाहुर्दातव्यैव यज्ञे दक्षिणा भवत्यत्यल्पिकाऽपि।।
उत श्वेत आशुपत्वा।।
उतो पद्याभिर्जविष्ठः।।
उतेमाशु मानं पिपर्ति।।
आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेळते।।
इदं राधः प्रतिगृभ्णीह्यङ्गिर इति; प्रतिग्रहमेव तद्राधस ऐच्छन्।।
इदं राधो बृहत्पृथु।।
देवा ददत्वावरम्।।
तद्वो अस्तु सुचेतनम्।।

युष्मे अस्तु दिवे दिवे।।
प्रत्येव गृभायतेति; प्रत्येवैनमेतदजग्रभैषम्।।
तं वा एतं देवनीथं शंसति, पदावग्राहं यथानिविदं; तस्योत्तमेन पदेन प्रणौति यथा निविदः।।६।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त रीति से विभिन्न लोकों के पृथक् रूप में अस्तित्त्व में आने के पश्चात् शेष आदित्य लोक का वर्णन करते हुए कहते हैं कि यह जो सूर्यलोक तप रहा है, वह उसी शेष भाग का रूप है। यह लोक अश्व रूप है अर्थात् यह सूर्यलोक लघु लोकों के पृथक् होने के पश्चात् अति तीव्र बल और वेग से युक्त होकर अन्तरिक्ष में यदृच्छया गमन करने लगता है। {अश्वाभिधानि = अश्वस्य बन्धनार्था रज्जुः - सायणभाष्य} यह श्वेत रूप भी है। इसका तात्पर्य यह है कि यह सतत वर्धमान बलों के साथ अपनी अभिधानीय अर्थात् आशुगामिनी बल रश्मियों के द्वारा अपने चारों ओर घूमने वाले लोकों को अपने साथ बांधे रखने का प्रयत्न करता है। इसके साथ ही वह आदित्य लोक बल रश्मियों से आच्छादित होता हुआ स्वयं अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थ को भी बांधे रखता है। यद्यपि आदित्य लोक के निर्माण की प्रक्रिया पूर्ण नहीं हुई होती है पुनरपि आकर्षण आदि के बन्धन कार्य प्रारम्भ हो जाते हैं। इस समय इस लोक के केन्द्रीय भाग में विद्यमान आदित्यसंज्ञक पदार्थों अर्थात् प्राथमिक प्राण, मास एवं ऋतु रश्मियां बाहरी पदार्थों की ओर {प्रतिचक्रमे = सम्मुखमाजगाम इति सायणः} अभिमुख होकर उसको भी अपनी ओर अर्थात् केन्द्रीय पदार्थ की ओर आकृष्ट करने लगती हैं। इसी समय पूर्व खण्ड में वर्णित 'देवनीथ' नामक पांच छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जिनके प्रभाव एवं स्वरूप आदि के विषय में हम पूर्व में लिख चुके हैं। अब आगामी कण्डिकाओं में ग्रन्थकार द्वारा इन पांच छन्द रश्मियों को १७ पदों के रूप में विभाजित करके पुनः प्रभाव और स्वरूप को दर्शाया जाएगा।।

"आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन्" (अथर्व.२०.१३५.६) का पूर्वार्ध है। "तां ह जरितः प्रत्यायन् तामु ह जरितः प्रत्यायन्" (अथर्व.२०.१३५.६) का उत्तरार्ध है। इस सम्पूर्ण छन्दरश्मि का प्रभाव हम पूर्व में दर्शा चुके हैं पुनरपि यहाँ कुछ अन्य प्रभाव इस प्रकार है कि आदित्य लोक पृथिवी आदि लोकों को निरन्तर बल प्रदान करते हुए उन्हें अपने साथ बांधे रखने का प्रयास करते रहते हैं। उसी प्रकार वे पृथिवी आदि लोक भी आदित्य लोकों के द्वारा प्रकाशित होते हुए अपने स्वयं के आकर्षण बलों द्वारा आदित्य लोक को अपने साथ बांधे रखने का प्रयास करते रहते हैं अर्थात् यह आकर्षण बल दोनों ओर से कार्य करता है परन्तु मुख्य आकर्षण बल आदित्य लोक का ही होता है। इस छन्द रश्मि के कारण ही आदित्य लोक से पृथिवी आदि लोकों के पृथक् होने की क्रिया में सहायता प्राप्त होती है, जिसके कारण बार-२ आदित्य लोक की ओर गिरते हुए लघु लोक आदित्य लोक की बाहरी सतह से दूर हो जाते हैं अर्थात् आदित्य लोक का आकर्षण भी उन्हें स्वीकार नहीं कर पाता। इस क्रिया में इस छन्द रश्मि के तृतीय पाद का विशेष योगदान रहता है, ऐसा द्वितीय कण्डिका से स्पष्ट होता है। इस पाद में ६ अक्षर हैं, हमारे मत में **यह ६ अक्षर वाला पाद आसुरी-जगती छन्दरश्मि का प्रभाव दर्शाता हुआ उन पृथिवी आदि लोकों को आदित्य लोक के तल पर नहीं आने देता**। इस पाद में 'न' अक्षर विशेष भूमिका निभाता है। इस छन्द रश्मि का चतुर्थ पाद भी ६ अक्षर का ही है परन्तु उसमें 'न' के स्थान पर 'ह' अक्षर विद्यमान है। इस कारण इस पाद का प्रभाव प्रतिषेधात्मक नहीं होता। इस कारण हमारा मत यह है कि यह पाद 'याजुषी बृहती' का प्रभाव दर्शाता है। इस कारण यह विभिन्न आदित्य अर्थात् प्राण, मास आदि रश्मियों को ग्रहण करके नाना बलों को उत्पन्न कर पदार्थ को केन्द्रीय भाग की ओर प्रेषित करने में सहायक होता है। इस छन्द रश्मि के द्वितीयार्ध का प्रभाव यह भी है कि यह रश्मि अग्नि के परमाणुओं को आकृष्ट करती और पार्थिव आदि परमाणुओं को प्रतिकर्षित करती है। इस छन्दरश्मि के पूर्वार्ध के प्रभाव से आदित्य लोक का केन्द्रीय भाग पार्थिव लोकों के उपादान कारणरूप सघन पदार्थ को धकेलकर आदित्य तल तक लाता है, यह भी ध्यातव्य है।।+।।+।।

"तां ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णन्" (अथर्व.२०.१३५.७) का प्रथम पाद है। इसका प्रभाव भी उपर्युक्त छन्द रश्मि के तृतीय भाग के समान होता है, जिसके कारण पृथिवी आदि लोकों एवं परमाणुओं के प्रति

इस रश्मि का प्रतिकर्षण वा प्रक्षेपण का भाव रहता है। "तामु ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णः" (अथर्व.२०.१३५.७) का द्वितीय पाद है। इसका प्रभाव पूर्व छन्द रश्मि के चतुर्थ पाद के समान होता है, जिसे विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं।।+।।

"अहा नेत सन्नविचेतनानि" (अथर्व.२०.१३५.७) का तृतीय पाद है। संहिता में "अहानेतरसं न वि चेतनानि" पाठ उपलब्ध होता है। इसके प्रभाव से सूर्य का केन्द्रीय भाग पूर्वोक्त आदित्य प्राणरश्मियों से विशेष प्रकाशित हो उठता है और इसी भाग के कारण प्राणरश्मियां तारों के बाहरी भागों तक प्रवाहित होती हुई सम्पूर्ण आदित्य लोक को प्रकाशित कर देती हैं अर्थात् सम्पूर्ण आदित्य लोक में कोई भी भाग अविचेतन अर्थात् अप्रकाशित नहीं रहता।।

"जज्ञा नेत सन्न पुरोगवास" यह उपर्युक्त छन्द रश्मि का ही चतुर्थ पाद है। संहिता में "यज्ञानेतरसं न पुरोगवामः" पाठ उपलब्ध होता है। इसके प्रभाव से 'जज्ञा' अर्थात् विभिन्न उत्पन्न संगमनीय परमाणु आदि पदार्थ बिना किन्हीं प्रेरक बलों के अग्रगामी नहीं होते हैं। दक्षिणा अर्थात् विभिन्न तीक्ष्ण संयोजक बल ही विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं, इसलिए ये नाना प्रकार के संयोगादि कर्मों के पुरोगामी कहलाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि आदित्य लोकों में विभिन्न प्राणादि रश्मियां पुरोगामी बनकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को बलपूर्वक अपना अनुगामी बनाती हैं। जैसे किसी गाड़ी में घोड़े अथवा बैल पुरोगामी बनकर गाड़ी को अपनी अनुगामिनी बनाते हैं, उसी प्रकार प्राणादि रश्मियां भी कार्य करती हैं। जैसे बैल अथवा घोड़ों के पुरोगामी बने बिना गाड़ी नष्ट हो जाती है अथवा चल नहीं सकती है, उसी प्रकार इस सृष्टि में बलरूप प्राणरश्मियों के अभाव में सभी प्रकार की क्रियाएं नष्ट हो जाती हैं अथवा प्रारम्भ ही नहीं होती हैं। इस कारण इस सृष्टि में प्रत्येक संयोगादि क्रिया के पीछे एक बल अवश्य कार्य करता है, चाहे वह बल छोटा ही क्यों न हो। यहाँ एक दूसरा तथ्य यह भी उपस्थित होता है कि जब भी कोई संगतीकरण की प्रक्रिया होती है, तो दो कणों वा लोकों के मध्य रश्मि आदि पदार्थ विशेष का दोनों ही ओर से आदान-प्रदान होता है, भले ही उनकी मात्राओं में कुछ भेद हो सकता है परन्तु एकपक्षीय संगतीकरण की प्रक्रिया नहीं होती।।

"उत श्वेत आशुपत्वा", "उतो पद्याभिर्जविष्ठः", उतेमाशु मानं पिपर्ति" ये तीनों पाद अथर्व.२०.१३५.८ के क्रमशः प्रथम, द्वितीय और तृतीय पाद हैं। संहिता में द्वितीय पाद में 'जविष्ठः' के स्थान पर 'यविष्ठः' पाठ विद्यमान है। इनके प्रभाव से आदित्य लोक निरन्तर अपने बल और प्रकाश के साथ समृद्ध होता हुआ श्वेत वर्ण का होता जाता है और इसके अन्दर वर्धमान होती हुई आदित्य अर्थात् प्राणादि रश्मियां आशु-पुरोगामिनी होकर विभिन्न सोम आदि रश्मियों वा परमाणु आदि पदार्थों को अपनी अनुगामी बनाती हैं। इसके कारण सभी प्रकार के पदार्थ और उनकी क्रियाएं नाना बलों से परिपूर्ण होकर केन्द्रीय भाग की ओर आकृष्ट होने लगती हैं।।+।।+।।

"आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेळते" (अथर्व.२०.१३५.९) का प्रथम पाद है। संहिता में "आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेऽनु ते" पाठ विद्यमान है। इसके प्रभाव से प्राण वा ऋतु आदि रश्मियों एवं विभिन्न मरुद् रश्मियों के प्रभाव से आदित्य लोक में विद्यमान जगती छन्दसंज्ञक आदित्य, त्रिष्टुप्संज्ञक रुद्र एवं गायत्री संज्ञक वसु छन्द रश्मियां विशेष प्रकाशित होने लगती हैं, जिससे सम्पूर्ण आदित्य लोक में इन तीनों ही प्रकार की छन्द रश्मियों का प्रभाव समृद्ध होने लगता है।।

"इदं राधः प्रतिगृभ्णीह्यङ्गिरः" (अथर्व.२.१३५.९) का द्वितीय पाद है। इसके प्रभाव से आदित्य लोक का केन्द्रीय भाग अपने निकटस्थ सघन पदार्थ को आदित्य लोक के बाहरी भाग में प्रक्षिप्त करता है, जो कालान्तर में पृथक् होकर पृथिवी आदि अप्रकाशित लोकों के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इस क्रिया का वर्णन पूर्व में भी हुआ है, जहाँ इसमें अन्य छन्द रश्मियों का योगदान दर्शाया है, वैसा ही प्रभाव इस पाद रूप रश्मि का भी समझना चाहिए।।

"इदं राधो बृहत्पृथु" (अथर्व.२०.१३५.९) के उत्तरार्ध के अग्रिम और अन्तिम के दो-२ पदों का संयुक्त रूप है। इसके प्रभाव से उपर्युक्त प्रकार से आदित्य केन्द्र द्वारा प्रक्षेपित सघन पदार्थ आदित्य तल

पर व्यापक रूप से फैल जाता है, जो बाद में पृथक् होकर अप्रकाशित लोकों का रूप धारण करता है।।

"देवा ददत्वावरम्" (अथर्व.२०.१३५.१०) का प्रथम पाद है। संहिता में "देवा ददत्वासुरम्" पाठ उपलब्ध है। इसके प्रभाव से विभिन्न प्रकार की देव अर्थात् प्राणादि रश्मियां अधिक सक्रिय होकर आदित्य लोक को 'आवरम्' अर्थात् सब ओर से आच्छादित वा व्याप्त करती हुई सर्वतः अधिक श्रेष्ठ रूप प्रदान करती हैं।।

"तद्वो अस्तु सुचेतनम्" (अथर्व.२०.१३५.१०) का दूसरा पाद है। इसके प्रभाव से आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग उनके बाहरी आङ्गिरसरूप भागों को सतत प्रकाशित करने में सहयोग पाते हैं अर्थात् केन्द्रीय भागों से प्रकाश आदि विभिन्न किरणें बाहरी भाग तक आने में इस पादरूप रश्मि के द्वारा बल प्राप्त करती हैं।।

"युष्मे अस्तु दिवे दिवे" (अथर्व.२०.१३५.१०) का तृतीय पाद है। संहिता में "युष्माँ अस्तु दिवेदिवे" पाठ विद्यमान है। इसके प्रभाव से प्राण वा ऋतु आदि रश्मियां केन्द्रीय भाग से निरन्तर प्रवाहित होती हुई बाहरी भाग तक विचरण करती रहती हैं। इसके कारण सम्पूर्ण आदित्य लोक एकसूत्र में बंधा हुआ प्रज्वलित होता रहता है।।

"प्रत्येव गृभायत" (अथर्व.२०.१३५.१०) का चतुर्थ पाद है। इसके प्रभाव से आदित्य लोकों के बाहरी आङ्गिरस भागों में केन्द्रीय आदित्यरूप प्राणरश्मियों का निरन्तर प्रक्षेपण होता रहता है और वे बाहरी भाग इन प्राणरश्मियों के बल को निरन्तर ग्रहण करते रहते हैं।।

इस प्रकार के सभी उपर्युक्त १७ पद 'देवनीथ' संज्ञक पांच ऋचाओं के ही भाग है। शेष भाग का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- जब विशाल लोक से विभिन्न ग्रहों के पृथक्-२ हो जाने पर केन्द्रीय लोक, जो शनैः-२ तारे के रूप में प्रकट होता है, तीव्र वेग और बल से युक्त होकर अन्तरिक्ष में अस्थिर अवस्था में गमन करने लगता है, उसमें नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया प्रारम्भ होकर तारे को श्वेत रूप प्रदान करती है। अस्थिर गति से विचरण करता हुआ वह तारा अपने चारों ओर घूमते हुए ग्रह आदि लोकों को अपने प्रबल गुरुत्व बल के कारण बांधे रखता है। इसके साथ ही वह तारा स्वयं भी गुरुत्व बल के कारण ही अपना आकार बनाये रखता है। उस तारे के अन्दर विभिन्न प्राण व छन्दादि रश्मियां सर्वत्र विचरण करती हुई सम्पूर्ण तारे को परस्पर जोड़े और प्रकाशित रखती हैं। उसी समय पांच छन्द रश्मियां, जिनका वर्णन पूर्व खण्ड में भी हुआ है, उत्पन्न होती हैं। तारों और ग्रहों के मध्य गुरुत्वाकर्षण बल दोनों ही ओर कार्य करता है परन्तु तारे का आकार एवं द्रव्यमान ग्रहों की अपेक्षा बहुत अधिक होने से उसका गुरुत्व बल भी बहुत अधिक होता है। इसके कारण विभिन्न ग्रह उस तारे के चारों ओर परिक्रमण करने को विवश होते हैं। विभिन्न नवनिर्मित ग्रह धीरे-२ अपने तारे की ओर बार-२ आने का प्रयास बन्द करके स्थायी कक्षा में परिक्रमण करने का प्रयास करते हैं। तारों का केन्द्रीय भाग ही विभिन्न प्रकार के बलों, नवीन कणों की उत्पत्ति एवं विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के उत्पन्न होने का स्थान है। ये पदार्थ यहीं उत्पन्न होकर सम्पूर्ण लोक के अतिरिक्त विभिन्न ग्रहों एवं अन्तरिक्ष में स्थित सूक्ष्म पदार्थों को व्याप्त करते हैं। **बिना बलों के किसी भी कण में कोई गति सम्भव नहीं है और गति के बिना किसी भी नवीन पदार्थ का उत्पन्न होना संभव नहीं है।** तारों के केन्द्रीय भाग में उत्पन्न विभिन्न पदार्थ धीरे-२ सूक्ष्म छन्द रश्मियों के द्वारा बाहरी तल तक आकर फिर अन्तरिक्ष में उत्सर्जित होने लगते हैं। यह क्रिया सतत होती रहती है।।

॥ इति ३०.९ समाप्तः ॥

꧁ अथ 30.१० प्रारभ्यते ꧂

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. भूतेच्छदः शंसति ।।
भूतेच्छद्भिर्वै देवा असुरानुपासचन्तोतेव युद्धेनोतेव मायया, तेषां वै देवा असुराणां भूतेच्छद्भिरेव भूतं छादयित्वाऽथैनानत्यायंस्तथैवैतद् यजमाना भूतेच्छद्भिरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य भूतं छादयित्वाऽथैनमतियन्ति ।।
ता अर्धर्चशः शंसति, प्रतिष्ठाया एव ।।
आहनस्याः शंसति ।।
आहनस्याद्वै रेतः सिच्यते, रेतसः प्रजाः प्रजायन्ते; प्रजातिमेव तद्दधाति ।।
ता दश शंसति; दशाक्षरा विराळन्नं विराळन्नाद् रेतः सिच्यते, रेतसः प्रजाः प्रजायन्ते; प्रजापतिमेव तद्दधाति ।।
ता न्यूङ्खयत्यन्नं वै न्यूङ्खोऽन्नाद्रेतः सिच्यते, रेतसः प्रजाः प्रजायन्ते; प्रजातिमेव तद्दधाति ।।

व्याख्यानम्- इस विषय में सर्वप्रथम हम महर्षि आश्वलायन को उद्धृत करते हैं-

"त्वमिन्द्र शर्मरिणेति भूतेच्छदः"
"तिस्र एता अनुष्टुभः..............." (आश्व.श्रौ.८.३.२७,२८)

इससे स्पष्ट होता है कि पूर्वोक्त प्रक्रिया के अन्तर्गत ही प्रजापति व इन्द्रदेवताक 'भूतेच्छद' नामक (अथर्व.२०.१३५.११-१३) तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) त्वमिन्द्र शर्मरिणा हव्यं पारावतेभ्यः। विप्राय स्तुवते वसुवनिं दुरश्रवसे वह ।।११।।

छन्द निचृदार्ष्यनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से आदित्य लोक के अन्दर इन्द्रतत्त्व विभिन्न संयोज्य परमाणुओं और उनके आश्रय स्थलों को दूर-२ पहुंचाता रहता है। वह विभिन्न परमाणुओं को अनिष्टकारी बलहीनता से मुक्त करके विविध प्रकार से प्रकाशित करता है।

(२) त्वमिन्द्र कपोताय च्छिन्नपक्षाय वञ्चते। श्यामाकं पक्वं पीलु च वारस्मा अकृणोर्बहुः ।।१२।।

छन्द अनुष्टुप्, दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {श्यामाकः = श्यायते प्राप्नोतीति श्यामाकः (उ.को.४.१६)। पीलुः = पीलति प्रतिष्टम्नोति निरुणद्धि जीवानिति पीलुः हस्ती वृक्षः काणुः परमाणवः पुष्पाणि वा (उ.को.१.३७)} इन्द्रतत्त्व च्छिन्नपक्ष अर्थात् हीनबल परमाणुओं, जो आदित्य लोकों में इतस्ततः विचरते हैं, को कपोत अर्थात् विभिन्न प्राणरश्मियों द्वारा शुद्ध गति प्रदान करने के लिए नाना प्रकार से धारण करके परिपक्व धारणा शक्तिसंपन्न होकर सर्वत्र विचरण करते हुए परमाणु आदि पदार्थों के साथ सम्बद्ध करता है।

(३) अरंगरो वावदीति त्रेधा बद्धो वरत्रया। इरामह प्रशंसत्यनिरामप सेधति ।।१३।।

छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {वरत्रा = रश्मिः (तु.म.द.ऋ.भा.४.५७.४)। अनिरा = नितरां दातुमयोग्या (तु.म.द.य.भा.११.४७)} वह इन्द्रतत्त्व तीन प्रकार की बल रश्मियों से बंधा हुआ विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को बार-२ निगलने में समर्थ होकर निरन्तर प्रकाशित होता है। वह विभिन्न संयोज्य परमाणुओं को असंयोज्य परमाणुओं से पृथक् करता है।

ये तीनों छन्दरश्मियां 'भूतेच्छद' कहलाती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये छन्द रश्मियां नाना प्रकार के ऐश्वर्यों से आच्छादित होती हैं। {भूतिः = योऽयम् (अग्निः) इदानीं स भूतिः (मै.३.८.६)} इसके साथ ही ये अग्नि तत्त्व को समृद्ध करती हुई महान् नियंत्रक बलों से सम्पन्न होती हैं।।

{उतेव = निपातसमूहः समुच्चयार्थः (सायणभाष्य)} यह भूतेच्छद आनुष्टुभ तृचरूप छन्दरश्मिसमूह इन्द्रतत्त्व के लिए वज्र रश्मियों का कार्य करता है। इस कारण इस छन्दरश्मिसमूह के द्वारा तीव्र तेजस्विनी विद्युत् उत्पन्न होकर देव एवं असुर पदार्थ के बीच संघर्ष में असुर पदार्थ को ढांपती हुई नियंत्रित करती है। इससे देव पदार्थ असुर पदार्थ पर अतिक्रमण करके वा उसे अभिभूत करके अपनी विभिन्न प्रकार की सृजन-संसर्ग क्रियाओं को संपादित करता है। यह क्रिया इस सृष्टि में, विशेषकर विशाल लोकों के निर्माण के समय दृष्टिगोचर होती है। उसी प्रकार लघु वा सूक्ष्म स्तर पर विभिन्न परमाणुओं के बीच संयोग प्रक्रिया में इन्हीं 'भूतेच्छद' छन्द रश्मियों के द्वारा सूक्ष्म असुर रश्मियों का पराभव होकर सृजन प्रक्रियाएं निरापद रूप से संपादित होती हैं।।

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

यहाँ हम सर्वप्रथम महर्षि आश्वलायन के वचन का उद्धृत करते हैं-

"यदस्या अंहुभेद्या इत्याहनस्याः" (आश्व.श्रौ.८.३.२८)

ऐतरेय ब्राह्मण के सायण भाष्य की पाद टिप्पणी में "यदस्य अंहुभेद्या..... पाठ है।

"कपृं नरो यद्ध प्राचीरजगन्तेति चैते।" (आश्व.श्रौ.८.३.३०) इन वचनों से यह प्रकट होता है कि पूर्वोक्त प्रक्रिया के अन्तर्गत ही प्रजापतिदेवताक (अथर्व.२०.१३६.१-८) छन्द रश्मियों की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती हैं-

(१) यद॑स्या अंहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपात॑सत्। मुष्काविद॑स्या एजतो गोश॒फे श॑कुलावि॑व।।१।।

छन्द निचृदनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {कृधु = ह्रस्वनाम (निघं.३.२)। मुष्कः = मुष्यत आव्रियत इति मुष्कः (उ.को.३.४१)। शकुलः = शक्नोति तरितुमिति शकुलः (उ.को.१.४१)} प्रजापतिसंज्ञक विभिन्न छन्दरश्मियां नाना बाधक असुर रश्मियों को भेदती हुई छोटे और बड़े सभी अनिष्ट पदार्थों को नष्ट करती हैं, जिससे वे दोनों छोटे और बड़े पदार्थ आकाश तत्त्वरूप {गौः = अन्तरिक्षं गौः (ऐ.४.१५)} गौ के अन्दर छिपकर कम्पायमान होते रहते हैं, मानो वे उन छन्द रश्मियों के बल को निराकृत करने के लिए निरन्तर कम्पन करते रहते हैं।

(२) यदा॑ स्थूलेन पस॑साणौ मुष्का उपाव॑धीत्। विष्व॑ञ्चा व॒स्या वर्ध॑तः सिक॑तास्वेव गर्द॑भौ।।२।।

छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {पसः = राष्ट्रं पसः (श.१३.२.६.६), (राष्ट्रम् = राष्ट्रं हरिणः - श.१३.२.६.८; श्रीर्वै राष्ट्रम् - श.६.७.३.७; राष्ट्रं सप्तदशः (स्तोमः) - तै.ब्रा.१.८.८.५)। सिकता = अग्नेरेतद् वैश्वानरस्य रेतो यत् सिकताः (श.७.१.१.१०), रेतः सिकताः (श.७.१.१.११), सिकता वा अपां पुरीषम् (श.७.५.२.५६)} आकाश तत्त्व में छिपी हुई विभिन्न असुररश्मियों को पूर्व में अनेकत्र वर्णित तेजस्वी सप्तदश स्तोमरूप छन्दरश्मिसमूह आदि विभिन्न रश्मियां नष्ट करती हैं। उस समय विशेष तेजस्वी और बलवान् रेतरूप विभिन्न रश्मि आदि पदार्थ विशेषरूप से गतिशील और समृद्ध होती हैं।

(३) यदल्पिंकास्व ॥ लिपका कर्कन्धूकेव पद्यते। वासंन्तिकमिंव तेजंनं यन्त्यवातांय वित्पंति।।३।।

छन्द आर्ष्यनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {कर्कन्धु = येन कर्म दधाति (म.द.य.भा.१६.६१), यः कर्कान् कारुकानन्तति व्यवहारे बध्नाति तत् (म.द.ऋ.भा.१.११२.६)} जब पूर्वोक्तानुसार सूक्ष्म और अतिसूक्ष्म असुर रश्मियां, जो विभिन्न प्रकार के बाधक कर्मों से युक्त होती हैं, का क्षय होता है, उस समय विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों की रक्षिका वसन्तऋतुसंज्ञक तेजस्विनी रश्मियां उन पदार्थों में व्याप्त होकर उनके कर्मों को निरापद बनाती हैं।

(४) यद्देवासों ललामगुं प्रविंष्टीमिनंमाविषुः। सकुला देंदिश्यते नारीं सत्यस्यांक्षिभुवों यथा।।४।।

छन्द भुरिगनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {ललामगुम् = येन न्यायेनेप्सां गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति तम् (म.द.य.भा.२३.२६)। विष्टीमिनम् = विशिष्टा बहवः ष्टीमा आर्द्रीभूताः पदार्था विद्यन्ते यस्मिँस्तम् (म.द.य.भा.२३.२६)} विभिन्न प्राथमिक प्राणरश्मियां सभी पदार्थों को चाहती हुई अर्थात् आकर्षित करती हुई कोमल भाव से उनके अन्दर अच्छी प्रकार प्रविष्ट होती हैं। {नारी = यज्ञनाम (निघं.३.१७)} इससे नाना प्रकार की मरुद् रश्मियां समूहरूप में तेजयुक्त होती हुई नाना प्राण रश्मियों को अपने साथ संगत करके नाना प्रकार की क्रियाओं एवं मार्गों को व्याप्त करती हैं।

(५) महानग्न्य ॥ तृप्नद्वि मोक्रंददस्थांनासरन्। शक्तिंकानना स्वंचमशंकं सक्तु पद्यम।।५।।

छन्द निचृदनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {सक्तुः = सक्तुः सचतेर्दुर्धावो भवति। कसतेर्वा स्याद् विपरीतस्य विकसितो भवति (नि.४.६), देवानां वा ऽएतद् रूपं यत्सक्तवः (श.१३.२.१.३), प्रजापतेर्वा एतद् रूपं यत् सक्तवः (तै.३.८.१४.५)} उपर्युक्त प्रकार से अग्नि के परमाणु व्यापकरूप से समृद्ध होकर अन्य परमाणुओं को विशेषरूप से तृप्त करते हैं। वे अग्नि के परमाणु निरन्तर निस्तब्ध गति करते रहते हैं। वे विभिन्न परमाणुओं में शक्ति और प्रकाश उत्पन्न करते हुए उन्हें नाना प्रकार की संयोगादि क्रियाओं और संचरण आदि गुणों से युक्त करते हैं।

(६) महानग्न्यु ॥ लूखलमतिक्रामंन्त्यब्रवीत्। यथा तवं वनस्पते निरंघ्नन्ति तथैवति।।६।।

छन्द अनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {उलूखलम् = अन्तरिक्षं वोलूखलम् (श.७.५.१.२६)} वह पूर्वोक्त महान् अग्नितत्त्व अन्तरिक्ष में गमन करता हुआ प्रकाशित होता है। वह अग्नि ही अन्तरिक्ष में नाना प्रकार से विभिन्न पदार्थों का भेदन व संयोजन करता रहता है।

(७) महानग्न्युपं ब्रूते भ्रष्टोऽ थाप्यंभूमुवः। यथैव तें वनस्पते पिप्पंति तथैवेति।।७।।

छन्द निचृदनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह व्यापक अग्नि {**अभूमुवः** = अशुद्धि को शोधने वाला (पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदीभाष्य)} परिपक्व होकर नाना प्रकार के पदार्थों को शुद्ध एवं पूर्ण करता हुआ निरन्तर नानाविध प्रकाशित होता है।

(८) महानग्न्युपं ब्रूते भ्रष्टोऽ थाप्यंभूमुवः। यथा वयो विदाह्यं स्वर्गे नमवदंह्यते।।८।। छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव तथा इस छन्द रश्मि के पूर्वार्ध का प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से उस अग्नि का तेज विभिन्न परमाणुओं को अच्छी प्रकार तपाता, झुकाता और बांधता हुआ आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों में स्थापित करता है।
(९) तदुपरान्त सौम्योबुधः ऋषि अर्थात् विशेष सक्रिय कुछ मरुद् रश्मियों से विश्वेदेवा ऋत्विजो वा देवताक एवं निचृज्जगती-छन्दस्क

कपृन्नरः कपृथमुद्दधातन चोदयत खुदत वाजसातये।
निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये।।२।। (अथर्व.२०.१३७.२, ऋ.१०.१०१.१२)

इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न आशुगामिनी प्राणरश्मियों की सेना प्राणरश्मियों के द्वारा विस्तृत किये गये पदार्थों को अच्छी प्रकार धारण करती है। वह उन पदार्थों में नाना प्रकार की छन्द वा मरुदादि रश्मियों का विभाजन करके उन्हें प्रेरणा करती हुई क्रीड़ा करती है। वह असुर रश्मियों के मर्दन में अग्रणी इन्द्र तत्त्व को निर्बाध बनाती हुई उसके द्वारा सोम रश्मियों के अवशोषण की क्रिया को विस्तृत करती है।

(१०) तदुपरान्त पूर्वोक्त भारद्वाज ऋषि से अलक्ष्मीघ्नम्-देवताक एवं निचृदनुष्टुप्-छन्दस्क

यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः।
हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः।।१।। (अथर्व.२०.१३७.१, ऋ.१०.१५५.४)

की उत्पत्ति होती है। {मण्डूरः = मण्डु+ऊरच्, मण्डु = घेरना, धारण करना, विभक्त करना - आप्टेकोष)} इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से पूर्वोत्पन्न विभिन्न छन्दरश्मियों का तीव्ररूप से धारण होकर संयोज्यहीनता आदि लक्षण दूर होते हैं। अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को आच्छादित करने वाली विभिन्न छन्दादि रश्मियों को अनुकूलता से धारण करके विभिन्न बाधक छन्द रश्मियों को इन्द्र तत्त्व पानी के बुलबुले के समान शीघ्र नष्ट करता है।

ये उपर्युक्त १० छन्दरश्मियां 'आहनस्या' कहलाती हैं। इसका कारण यह है कि ये छन्दरश्मियां पुरुषरूप में कार्य करती हुई अन्य छन्दरश्मियों के साथ संयुक्त होती हैं। यहाँ 'आहननम्' का अर्थ सब ओर से संयोग क्रिया का होना है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं।।

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

इसका व्याख्यान भी विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के निर्माण की उपर्युक्त प्रक्रिया में ही तीन अनुष्टुप् छन्द रश्मियों का एक समूह एवं ६ अनुष्टुप् व १ जगती का दूसरा रश्मि समूह उत्पन्न होता है। इस समय तारों के अन्दर विद्यमान विभिन्न प्रकार के कणों की ऊर्जा में वृद्धि होती है। विद्युत् चुम्बकीय बलों में वृद्धि होने से नाभिकीय संलयन की क्रिया में भी वृद्धि होती है। सूक्ष्म और व्यापक स्तर पर डार्क एनर्जी को नियंत्रित किया जाता है। सभी प्रकार की प्राण और मरुद् रश्मियां अधिक सक्रिय होती हैं। विभिन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगें नाना प्रकार के कणों से क्रिया करके उनका छेदन-भेदन और संयोजन करती हैं। तारों के केन्द्रीय भाग की ओर संलयनीय पदार्थ का प्रवाह तेज होता है। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

२. दधिक्राव्णो अकारिषमिति दाधिक्रीं शंसति; देवपवित्रं वै दधिक्रा, इदं वा इदं व्याहनस्यां वाचमवादीत्, तद्देवपवित्रेण वाचं पुनीते।।
साऽनुष्टुब्भवति; वाग्वा अनुष्टुप्, तत् स्वेन च्छन्दसा वाचं पुनीते।।
सुतासो मधुमत्तमा इति पावमानीः शंसति।।
देवपवित्रं वै पावमान्य, इदं वा इदं व्याहनस्यां वाचमवादीत्, तद्देवपवित्रेणैव वाचं

पुनीते; ता अनुष्टुभो भवन्ति; वाग्वा अनुष्टुप्, तत् स्वेनैव च्छन्दसा वाचं पुनीते।।
अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदित्यैन्द्राबार्हस्पत्यं तृचं शंसति।।
विशो अदेवीरभ्याचरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाह इति।।
असुरविशं ह वै देवानभ्युदाचार्य आसीत्, स इन्द्रो बृहस्पतिनैव युजाऽसुर्यं वर्णमभिदासन्तमपाहंस्तथैवैतद् यजमाना इन्द्राबृहस्पतिभ्यामेव युजाऽसुर्यं वर्णमभिदासन्तमपघ्नते।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर पूर्वोक्त वामदेव ऋषि से दधिक्राँ-देवताक एवं अनुष्टुप्-छन्दस्क

दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूंषि तारिषत्।।३।। (अथर्व.२०.१३७.३)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। {दधिक्राः = अश्वनाम (निघं.१.१४), अन्नं वै दधिक्राः (गो.उ.६.१६)। दधिक्रावा = अश्वनाम (निघं.१.१४)। सुरभि = षुर ऐश्वर्यदीप्त्योः (तुदा.) धातोर्बाहु. औणा. अभिच्। ततो मत्वर्थेऽच् (वै.को. - आ. राजवीर शास्त्री)} दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न आशुगामी और आशुकारिणी रश्मियां विभिन्न नियंत्रक बलों एवं दीप्तियों को उत्पन्न करके नाना प्रकार के संयोगादि कर्मों को विस्तृत करती हैं। वे रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों एवं संयोजक बलों से युक्त अग्नि अथवा आदित्य लोकरूप अश्व को समुचितरूप से निर्मित करने में सहायक होती हैं।

यहाँ दधिक्राँ की देवपवित्र संज्ञा भी की है। इसका तात्पर्य यह है कि दधिक्राँ-देवताक यह छन्द रश्मि एवं अन्य भी इसी देवता वाली छन्द रश्मियां विभिन्न देवपरमाणुओं को शुद्ध करती एवं उन्हें गति प्रदान कराती है। यह छन्द रश्मि पूर्वोक्त आहनस्यासंज्ञक १० छन्द रश्मियों में विशेषरूप से प्रकट होकर उन्हें भी शुद्धता और गति प्रदान करती है, साथ ही यह छन्द रश्मि उन १० छन्द रश्मियों को धारण करती हुई नाना प्रकार के पदार्थों और क्रियाओं को सम्पादित करती है।।

यह उपर्युक्त छन्दरश्मि अनुष्टुप् है और अनुष्टुप् छन्दरश्मि समस्त वाक् तत्त्व अर्थात् छन्द रश्मियों का रूप भी है। इसलिए कहा है-

"वागनुष्टुप् सर्वाणि छन्दांसि" (तै.ब्रा.१.७.५.५)
"वागनुष्टुप्" (तां.५.७.१)
"ज्यैष्ठ्यं वा अनुष्टुप्" (तां.८.१०.१०)
"अनुष्टुब्भि छन्दसां योनिः" (तां.११.५.१७)
"अनुष्टुबेव सर्वम्" (गो.पू.५.१५)

इन सब वचनों का तात्पर्य यह है कि कोई भी अनुष्टुप् छन्दरश्मि सभी छन्दरश्मियों को प्रभावित करती है। इस कारण यह उपर्युक्त अनुष्टुप् छन्दरश्मि अपने छान्दसरूप के द्वारा अन्य सभी छन्दरश्मियों को पवित्र और सक्रिय करती है।।

तदुपरान्त ययाति ऋषि अर्थात् विशेषरूप से सक्रिय सूक्ष्म प्राणरश्मि विशेष (हमारे मत में प्राण एवं धनंजय रश्मियों का विशेष योग ही ययाति ऋषि हो सकता है) से पवमानः सोमदेवताक एवं अनुष्टुप्-छन्दस्क (अथर्व.२०.१३७.४-६) तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः। पवित्रवन्तो अक्षरन्देवान्गच्छन्तु वो मदाः।।४।।

दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न सोमरश्मियां प्राणरश्मियों से युक्त होकर सक्रिय और सम्पीडित होती हुई इन्द्र तत्त्व को प्रकट करती हैं। वे सोम रश्मियां पूर्वोत्पन्न पवित्र हुई

विभिन्न छन्दरश्मियों में प्रवाहित होकर उन्हें भी अतिसक्रिय करके विभिन्न देवपरमाणुओं में व्याप्त करती हैं।

(२) इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन्। वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा।।५।।

दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {इन्दुः = उनत्त्यार्द्रीकरोति पदार्थानिति इन्दुः (उ.को.१.१२)} विभिन्न परमाणुओं को सिंचित करने वाली सोम रश्मियां विभिन्न प्राण रश्मियों के साथ संगत होकर इन्द्रतत्त्व को उत्पन्न, शुद्ध एवं गतिमान् करती हैं। फिर वह इन्द्रतत्त्व विभिन्न वाग् रश्मियों का पालक होकर अपने सम्पीडक बलों के द्वारा आदित्य लोक में विद्यमान सम्पूर्ण पदार्थ को नियंत्रित और संगत करता है।

(३) सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः। सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे।।६।।

दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से सोमरश्मियां असंख्य प्रकार की धाराओं के रूप में {समुद्रः = समुद्रः आदित्यः (नि.१३.१६ - वै.को. से उद्धृत), अन्तरिक्षनाम (निघं.१.३)} अन्तरिक्ष वा आदित्य लोक में निरन्तर गति करती हुई विभिन्न छन्दरश्मियों को प्रेरित करती हैं। वे सोमरश्मियां विभिन्न छन्दरश्मियों वा संयोज्य परमाणुओं का रक्षण करने के लिए इन्द्रतत्त्व को निरन्तर आकर्षित करती हैं।

इस विषय में महर्षि आश्वलायन ने भी इन उपर्युक्त छन्दरश्मियों की उत्पत्ति का संकेत करते हुए लिखा है-

"दधिक्राव्णो अकारिषमित्यनुष्टुप्सुतासो मधुमत्तमा इति च तिस्रः" (आश्व.श्री.८.३.३२)।।

इस कण्डिका का व्याख्यान विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं।।

इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"अवद्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदिति तिस्रः" (आश्व.श्री.८.३.३३)

इसका तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त क्रियाओं के पश्चात् तिरश्ची आङ्गिरसः ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु की तिरछी चलने वाली सूक्ष्म रश्मियों से इन्द्राबृहस्पतिदेवताक एवं त्रिष्टुप् छन्दस्क अथर्व.२०.१३७.७-९ तृच की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः।
आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त।।७।।

दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {द्रप्सः = असौ वा ऽआदित्यो द्रप्सः (श.७.४.१.२०)} विभिन्न लोकों का आकर्षक कमनीय आदित्य लोक दस प्रकार की बलवती प्राथमिक प्राण रश्मियों से युक्त होकर सब लोकों को व्याप्त करता है। वह इन्द्ररूप आदित्य लोक अनेक प्रकार की ध्वनियां उत्पन्न करता हुआ अपनी ज्योति से अन्धकार को नष्ट करता है। उस आदित्य लोक में इन्द्रतत्त्व नाना मरुद् रश्मियों को धारण करके हिंसक रश्मियों को नष्ट करता है। {स्नेहयति = वधकर्मा (निघं.२.१९)}

(२) द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ।।८।।

दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से विभिन्न किरणों से युक्त आदित्य लोक नाना प्रकार के पदार्थों की कुटिल धाराओं से युक्त होकर विषमरूप से चलता हुआ {विषुणः = विषमः (तु.नि.४.१९)} सबको निरन्तर आकृष्ट और प्रकाशित करता है। वह सबको बांधता हुआ, बलों की वर्षा करता हुआ असुर पदार्थ से भी निरन्तर संघर्ष करता है।

(३) अध॑ द्र॒प्सो अं॑शु॒मत्या॑ उ॒पस्थे॒ऽधा॑रयत्त॒न्वं॑ तित्विषा॒णः।
विशो॒ अदे॑वीर॒भ्याइ॒चर॑न्ती॒र्बृह॒स्पति॑ना यु॒जेन्द्रः॑ ससाहे॥६॥

दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह आदित्य लोक महान् ऐश्वर्य और प्रकाश रश्मियों से युक्त होकर अन्तरिक्ष में अपना तेज निरन्तर फैलाता है। वह विभिन्न छन्दादि रश्मियों से युक्त होकर अपने चारों ओर विचरती हुई असुर रश्मियों का पराभव करता है।।

जव अदेवी अर्थात् आसुरी रश्मियां विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को चारों ओर से घेरकर उन पर आक्रमण करती हैं, तव इन्द्रतत्त्व वृहस्पति अर्थात् सूत्रात्मा वायु के साथ संगत होकर उपर्युक्त तृचरूप रश्मिसमूह को उत्पन्न करता है। इसके पश्चात् इस छन्द रश्मिसमूह के द्वारा इन्द्रतत्त्व तीव्र वल उत्पन्न करके उन आसुरी रश्मियों को निराकृत वा नियंत्रित करता है।।

जव असुर रश्मियों की सेना देव पदार्थों को लक्ष्य करके उनकी ओर तेजी से बढ़ती है, तव इन्द्रतत्त्व और सूत्रात्मा वायु उपर्युक्त छन्दरश्मियों के द्वारा असुर रश्मियों से आच्छादित वा अधिगृहीत एवं क्षीण होते देव पदार्थ को वचाने के लिए असुर रश्मियों की सेना को नष्ट करते हैं। यह क्रिया आदित्य लोकों के निर्माण के समय विशाल स्तर पर होती है, उसी प्रकार सूक्ष्म स्तर पर विभिन्न परमाणुओं के संयोगादि प्रक्रिया के समय इन्द्र और वृहस्पति द्वारा उत्पन्न इन तीन छन्द रश्मियों के द्वारा संयोग प्रक्रिया में वाधक वनी सूक्ष्म असुर रश्मियों को भी नष्ट किया जाता है। सूक्ष्म स्तर पर यह क्रिया आदित्य लोकों के अन्दर विभिन्न परमाणुओं के पारस्परिक संयोग के समय घटती है, जवकि विशाल स्तर पर यह क्रिया आदित्य लोकों के वाहरी भाग में विशाल आसुर पदार्थ के साथ संघर्ष के समय घटती है। दोनों ही परिस्थितियों में ये तीन छन्दरश्मियां ही एक समान कार्य करती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों की पूर्वोक्त प्रक्रिया में ही ४ अनुष्टुप् और ३ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति तीन भागों में होती है। इनमें से एक छन्द रश्मि पूर्वोत्पन्न १० छन्द रश्मियों में व्याप्त होकर उनको धारण और गतिशील करती है। तारों के अन्दर विभिन्न आयन्स (ions) की ऊर्जा और बलों में वृद्धि होती है, जिससे उनके मध्य अन्योन्य क्रियाएं भी बढ़ने लगती हैं। तारों के अन्दर विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्रों की संख्या और तीव्रता दोनों में ही वृद्धि होती है। हमारे सूर्य तारे से दस हजार प्रकार की तरंगें निरन्तर उत्सर्जित होती रहती हैं। घूमते हुए तारे अनेक प्रकार की ध्वनि तरंगों को भी उत्पन्न करते हैं। इन तारों से उत्पन्न कुछ तरंगें डार्क एनर्जी को निष्प्रभावी बनाती रहती हैं। तारों के अन्दर सूक्ष्म कणों एवं तरंगों की धाराएं सरल रेखा में गति नहीं करती, बल्कि उनकी गति अति विचित्र और कुटिल होती है। इसी प्रकार तारे अथवा ग्रहों के परिक्रमण-मार्ग भी सर्वथा गोलाकार वा अण्डाकार नहीं होते, बल्कि वे भी विचित्र, कुटिल और विषम रीति से कम्पन करते हुए गति करते हैं। तारों के अन्दर होने वाली हर क्रिया के समय दृश्य पदार्थ का डार्क एनर्जी और डार्क मैटर से संघर्ष चलता ही रहता है।।

३. तदाहुः संशंसेऽ३त्, षष्ठेऽहा३न्, न संशंसेऽ३त्? इति। संशंसेदित्याहुः, कथमन्येष्वहःसु संशंसति, कथमत्र न संशंसेदित्यथो खल्वाहुर्नैव संशंसेत्, स्वर्गो वै लोकः षष्ठमहरसमायी वै स्वर्गो लोकः, कश्चिद्वै स्वर्गे लोके समेतीति; स यत्संशंसेत् समानं तत्कुर्यादथ यन्न संशंसतीऽ३ तत्स्वर्गस्य लोकस्य रूपं, तस्मान्न संशंसेद् यदेव न संशंसतीऽ३।।
एतानि वा अत्रोक्थानि नाभानेदिष्ठो वालखिल्या वृषाकपिरेवयामरुत् स यत्संशंसेदपैव स एतेषु कामं राध्नुयात्।।
ऐन्द्रो वृषाकपिः, सर्वाणि च्छन्दांस्यैतशप्रलापस्तत्र स काम उपाप्तो य ऐन्द्रे

जागतेऽथेदमैन्द्राबार्हस्पत्यं सूक्तमैन्द्राबार्हस्पत्या परिधानीया, तस्मान्न संशंसेन्न संशंसेत्।।१०।।

व्याख्यानम्- इस कण्डिका का व्याख्यान ६.२६.१ की प्रथम ६ कण्डिकाओं के संयुक्त व्याख्यान की भाँति विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं। यहाँ अन्तर केवल यह है कि पूर्व अध्याय में सौपर्ण-सूक्त के विषय में यह चर्चा की गयी है, जबकि यहाँ इस अध्याय में वर्णित वालखिल्य आदि विभिन्न शिल्प सूक्तों के साथ-२ उपर्युक्त इन्द्राबृहस्पति-देवताक तृचरूप रश्मिसमूह के उत्पन्न होने का निषेध किया गया है अर्थात् ये उत्पन्न तो अवश्य होती हैं परन्तु उन शिल्परूप रश्मिसमूहों के साथ संयुक्त होकर नहीं। यहाँ आचार्य सायण ने इस तृच के स्थान पर

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम्।।१।।

इत्यादि (ऋ.१.५७) सूक्त का ग्रहण किया है। सायणभाष्य की पाद टिप्पणी में भी इसी सूक्त के ग्रहण का समर्थन किया गया है। हमें यहाँ इस सूक्त का ग्रहण करना कदापि प्रासंगिक नहीं लगता। सायण द्वारा इन्द्राबृहस्पति-देवताक माने गये इस सूक्त के स्थान पर इन्द्राबृहस्पति-देवताक इस उपर्युक्त तृच का ग्रहण करना ही प्रासंगिक है। इस तृच का ग्रहण उपर्युक्त प्रसंग में महर्षि आश्वलायन ने भी किया है। खण्ड ६.१४ की अन्तिम कण्डिका के भाष्य में भी आचार्य सायण ने इस सूक्त का अनावश्यक ग्रहण किया है, जिसका निराकरण हमने वहीं कर दिया है। इस संदर्भ में इस कण्डिका का व्याख्यान पाठक स्वयं समझ सकते हैं।।

इस अध्याय में वर्णित चार शिल्पसंज्ञक छन्दरश्मिसमूह अर्थात् नाभानेदिष्ठ, वालखिल्य, वृषाकपि और एवयामरुत् षष्ठ अहन् अर्थात् आदित्य लोकों के निर्माण की प्रक्रिया के समय उत्पन्न होते हैं। यदि इनके साथ सामूहिक रूप से उपर्युक्त इन्द्राबृहस्पती-देवताक तृच की भी उत्पत्ति हो जाये, तो शिल्प संज्ञक छन्द रश्मियों के विभिन्न प्रकार के कमनीय बल विनष्ट हो सकते हैं, ऐसा ग्रन्थकार का कथन है। इस कारण इस तृच की उत्पत्ति इनसे पृथक् होती है, साथ-२ नहीं।।

इन पूर्वोक्त चार शिल्प संज्ञक छन्द रश्मि समूहों में से वृषाकपि संज्ञक रश्मि समूह इन्द्र-देवताक है और कुन्ताप सूक्तों में से पूर्वोक्त ऐतशप्रलापसंज्ञक सूक्त सभी प्रकार के छन्दों से युक्त होते हैं। यहाँ पूर्वोत्पन्न इन्द्राबृहस्पती-देवताक तृच (अथर्व.२०.१३७.७-९), जो त्रिष्टुप् छन्दस्क है, को ग्रन्थकार ने जगती छन्दस्क माना है। विभिन्न ऋचाओं का यह छन्दोभेद हम इस ग्रन्थ में अनेकत्र देख चुके हैं। सम्भव है, इस प्रकरण में अर्थात् षष्ठ अहन् के तृतीय सवन में उत्पन्न ये ऋचाएं जगती छन्दस्क प्रभाव दर्शाती हों, इस कारण इन्हें जगती छन्दस्क माना हो। यहाँ ग्रन्थकार कहते हैं कि जो यह तृच इन्द्र-देवताक और जगती-छन्दस्क प्रभाव दर्शाती है। उस प्रभाव की पूर्ति इन्द्रदेवताक वृषाकपि तथा सर्वछन्दस्क ऐतशप्रलाप छन्द रश्मियां कर लेती हैं। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"अच्छाम इन्द्रमिति नित्यमैकाहिकम्।" (आश्व.श्रौ.८.३.३४)

इसका तात्पर्य यह है कि इस अध्याय में वर्णित सभी छन्दरश्मियों की ऐकाहिक परिधानीय छन्दरश्मियों के रूप में

अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये।।१।।

इत्यादि (ऋ.१०.४३) सूक्तरूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति होती है, जिसके विषय में ६.५०.१ द्रष्टव्य है। वेद संहिता में इसका देवता इन्द्र माना है, जबकि ग्रन्थकार ने इसका देवता इन्द्राबृहस्पती माना है। यह सूक्तरूप रश्मिसमूह जगती-प्रधान है। इसकी भी उत्पत्ति अन्त में ही होती है, न कि शिल्पसंज्ञक छन्दरश्मियों

के साथ मिश्रित रूप में क्योंकि वृषाकपि और ऐतशप्रलाप छन्दरश्मियां ही इन्द्रतत्त्व और जगती छन्दरश्मियों का कार्य करती हैं, इस कारण अन्य इन्द्र वा इन्द्राबृहस्पती-देवताक एवं जगती-छन्दस्क छन्दरश्मियों की उत्पत्ति शिल्पसंज्ञक वालखिल्यादि छन्दरश्मियों के साथ सम्मिश्र अवस्था में होनी आवश्यक नहीं होती किंवा वे साथ उत्पन्न नहीं होती, बल्कि पृथक् से बाद में ही उत्पन्न होती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस अध्याय में वर्णित तारों में होने वाली विभिन्न क्रियाओं में उत्पन्न होने वाली विभिन्न छन्द रश्मियों के उत्पन्न होने का एक विशेष क्रम होता है। अनेक छन्द रश्मियां एक साथ सामूहिकरूप में उत्पन्न होती हैं, तो कुछ छन्दरश्मियां ऐसी भी होती हैं, जो सबके अन्त में उत्पन्न होकर पूर्वोत्पन्न सभी छन्द रश्मियों को धारण करती हैं। यदि ये छन्दरश्मियां अन्य छन्दरश्मियों के साथ सहसा ही उत्पन्न हो जाएं, तो सभी छन्द रश्मियों के प्रभाव को क्षीण कर सकती हैं। इस कारण तारों की उत्पत्ति का एक विशेष क्रम होता है। उपर्युक्त कण्डिकाओं में इसी विषय में कुछ चर्चा की गयी है, जिसे पाठक व्याख्यान भाग पढ़कर ही समझ सकते है। हाँ, इतना अवश्य है कि तारों के निर्माण में विद्युत् का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान होता है। तारों की उत्पत्ति, नाभिकीय संलयन आदि विभिन्न प्रकार की क्रियाएं, विभिन्न लोकों का पारस्परिक धारण और परिक्रमण आदि सर्वत्र विद्युत् की भूमिका प्रसिद्ध है।।

ॐ इति 30.१० समाप्तः ॐ

ॐ इति त्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ॐ

।। इति "ऐतरेयब्राह्मणे" षष्ठपञ्चिका समाप्ता।।६।।

।। इस प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण की छठी पञ्चिका का वैज्ञानिक व्याख्यान पूर्ण हुआ।।६।।

इति परब्रह्मणः सच्चिदानन्देश्वरस्याऽनुपमकृपाभाजेन, प्रखर वेदोद्धारकस्य परिव्राजकाचार्यप्रवरस्य श्रीमन्महर्षिदयानन्दसरस्वतिनः प्रबलार्यानुयायिवंशप्रवर्त्तकस्य भारतवर्षस्योत्तरप्रदेशस्थ-हाथरसमण्डलान्तर्गतस्य ऐंहनग्रामाभिजनस्य सिसोदिया-कुल-वैजपायेणगोत्रोत्पन्नस्य तत्रभवतः श्रीमतो देवीसिंहस्य प्रपौत्रेण, श्रीघनश्यामसिंहस्य पौत्रेण श्रीमतोः ओम्वतीदेवीन्द्रपालसिंहयोस्तनूजेन वीरप्रसवितुर्राजस्थानप्रान्तस्य जालोरमण्डलान्तर्गत-प्रकाण्डगणितज्ञ-ब्रह्मगुप्त-महाकविमाघजन्मभूर्भीनमाल-निकटस्थभागलभीमग्रामस्थ श्रीवैदिकस्वस्तिपन्थान्यास-संस्थापकेन (वेद-विज्ञान-मन्दिर-वास्तव्येन) आचार्याऽग्निव्रतनैष्ठिकेन विरचित-वैज्ञानिकभाष्यसारसमेतैतरेयब्राह्मणस्य वैज्ञानिक-व्याख्यानस्य (वेदविज्ञान-आलोकस्य) षष्ठ पञ्चिका समाप्यते।

।। ओ३म् ।।

अथ सप्तमपञ्चिका

ओ३म्। भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।
ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव।।

३१. एकत्रिंशोऽध्यायः 1977

इसमें पशु के विभाग के रूप में तारों में विद्यमान पदार्थ के ३६ विविध भागों का वर्णन है।

३२. द्वात्रिंशोऽध्यायः 1991

इसमें अग्निहोत्री के विविध प्रायश्चित कर्मों के रूप में तारों के निर्माण की प्रक्रिया में विभिन्न प्रकार की ३८ विकृतियां एवं उसका निवारण, कुछ अन्य विकृतियों का निवारण, डार्क मैटर व डार्क एनर्जी की उत्पत्ति, कण व विकिरणों की उत्पत्ति, ऊर्जा उत्सर्जन व अवशोषण, रंगों की उत्पत्ति आदि का विज्ञान वर्णित है।

३३. त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः 2045

इसमें हरिश्चन्द्र, शुनःशेप के आख्यान के रूप में तारों के केन्द्रीय भागों के निर्माण का अद्भुत् एवं गम्भीर विज्ञान वर्णित किया गया है।

३४. चतुस्त्रिंशोऽध्यायः 2101

इसमें राजसूय यज्ञ के रूप में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र रूप पदार्थों तथा तारों की उत्पत्ति का गम्भीर विज्ञान वर्णित है। कणों के संयोग-वियोग की प्रक्रिया व स्वरूप की गम्भीर वैज्ञानिक विवेचना दर्शायी है।

३५. पञ्चत्रिंशोऽध्यायः 2131

इसमें राजा के यज्ञीय पान, श्यापर्ण व राम मार्गवेय कथा के रूप में

तारों के, विशेषकर उनके केन्द्रीय भागों के निर्माण का विज्ञान दर्शाया गया है। तारे पूर्णतः collapse क्यों नहीं हो सकते, इसकी विवेचना है।

एकत्रिंशोऽध्यायः

प्राण, अपान और व्यान रश्मियां संयुक्तरूप से कार्य करते हुए अन्य छन्दादि रश्मियों के साथ मिलकर तारों के अन्दर नाना प्रकार के विवरों (holes) को उत्पन्न करती हैं। ये विवर लम्बी गुफाओं के आकार के होते हैं तथा निरन्तर अपनी आकृतियां व स्थान बदलते रहते हैं।

।। ओ३म् ।।
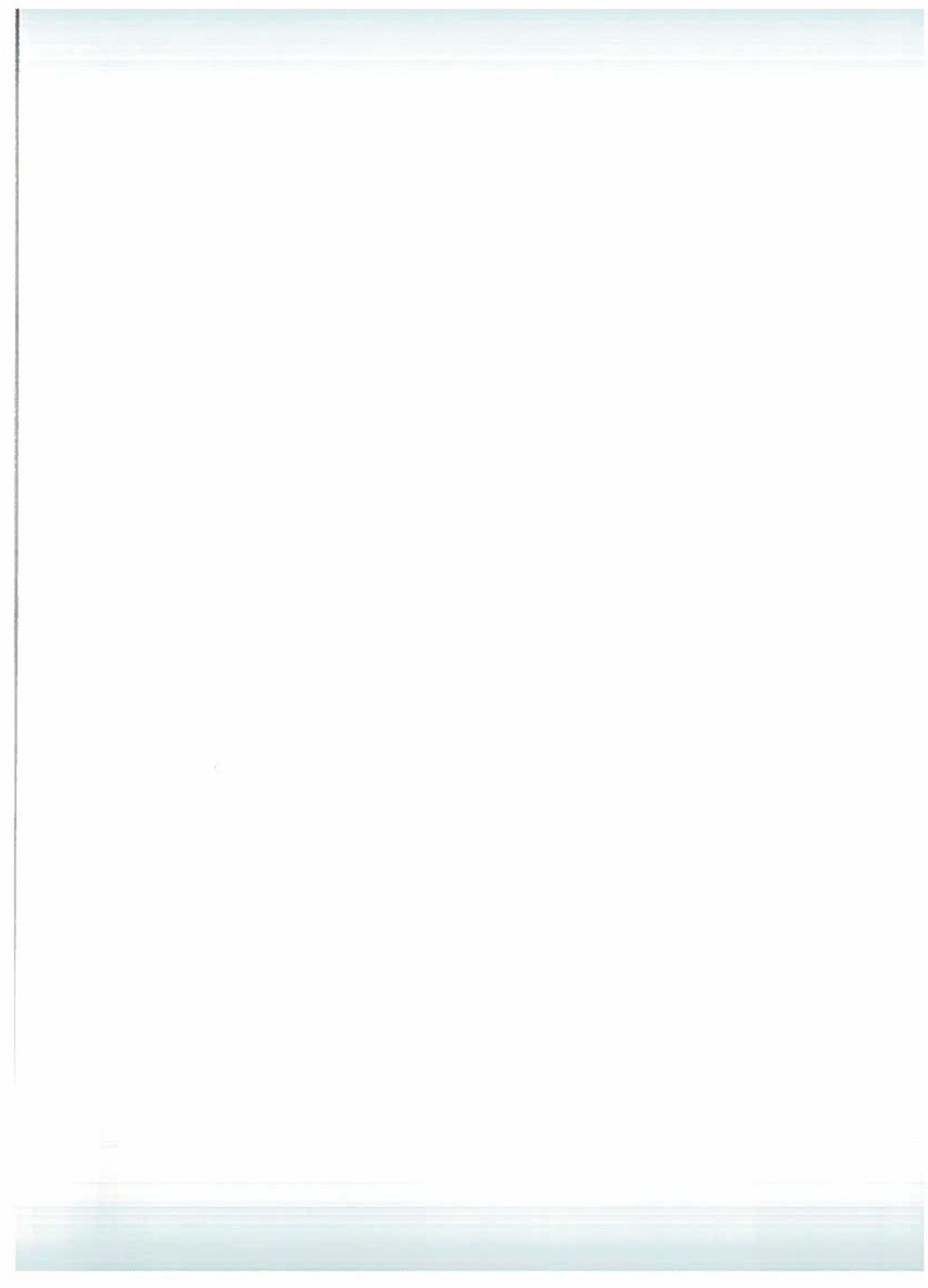
ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व।।

अनुक्रमणिका

३१.१ पशु (तारों) में विद्यमान पदार्थ का ३६ विविध भागों में वितरण एवं इसके वितरण की अनिवार्यता। 1980

ॐ अथ ३१.१ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. अथातः पशोर्विभक्तिः, तस्य विभागं वक्ष्यामः।।
हनू सजिह्वे प्रस्तोतुः, श्येनं वक्ष उद्गातुः, कण्ठः काकुद्रः प्रतिहर्तुर्दक्षिणा श्रोणिर्होतु, सव्या ब्रह्मणो, दक्षिणं सक्थि मैत्रावरुणस्य सव्यं ब्राह्मणाच्छंसिनो, दक्षिणं पार्श्वं सांसमध्वर्योः, सव्यमुपगातॄणां, सव्योंऽसः प्रतिप्रस्थातुर्, दक्षिणं दोर्नेष्टुः, सव्यं पोतुर्, दक्षिण ऊरुरच्छावाकस्य, सव्य आग्नीध्रस्य, दक्षिणो बाहुरात्रेयस्य, सव्यः सदस्यस्य, सदं चानूकं च गृहपतेर्, दक्षिणौ पादौ गृहपतेर्व्रतप्रदस्य, सव्यौ पादौ गृहपतेर्भार्यायै व्रतप्रदस्यौष्ठ एनयोः साधारणो भवति, तं गृहपतिरेवं प्रशिंष्याज्जाघनीं पत्नीभ्यो हरन्ति, तां ब्राह्मणाय दद्युः, स्कन्ध्याश्च मणिकास्तिस्रश्च कीकसा ग्रावस्तुतस्, तिस्रश्चैव, कीकसा अर्धं च वैकर्तस्योन्नेतुरर्धं चैव वैकर्तस्य, क्लोमा च शमितुस्तद्ब्राह्मणाय दद्याद् यद्यब्राह्मणः स्याच्छिरः सुब्रह्मण्यायै, यः श्वःसुत्यां प्राह तस्याजिनमिळा सर्वेषां होतुर्वा,।।

विशेष ज्ञातव्य- {प्रथम कण्डिका का उत्तरार्ध एवं द्वितीय कण्डिका के सम्पूर्ण भाग को महर्षि आश्वलायन ने अपने श्रौतसूत्र के खण्ड १२.९ में कुल १६ सूत्रों में विभाजित करके लिखा है। इन दोनों ही ग्रंथों में कोई भी पाठभेद नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि ऐतरेय ब्राह्मण के अन्तिम दस अध्याय भी उतने ही प्रामाणिक हैं, जितने कि पूर्वोक्त तीस अध्याय। आर्य समाज के विख्यात वैदिक गवेषक पं. भगवद्दत्त रिसर्च स्कॉलर ने "वैदिक वाङ्मय का इतिहास" में ऐतरेय ब्राह्मण के अन्तिम दस अध्यायों को महर्षि ऐतरेय महीदास द्वारा रचित न मानकर महर्षि शौनक प्रोक्त माना है। हम इस विषय की विशेष समीक्षा की आवश्यकता अनुभव नहीं करते कि ये दस अध्याय महर्षि ऐतरेय महीदास-प्रोक्त हैं या महर्षि शौनक-प्रोक्त? हमारे लिए दोनों ही ऋषि पूज्य हैं। इस कारण दोनों का ही मत हमारे लिए समान महत्व रखता है। हम इन १० अध्यायों को प्रक्षिप्त कहकर नहीं छोड़ सकते, उस पर भी इन दोनों कण्डिकाओं का आश्वलायन श्रौतसूत्र में उपलब्ध होना अति महत्वपूर्ण है। अब तक इस ग्रन्थ में आश्वलायन श्रौतसूत्र के अनेक वचनों को प्रमाण रूप में उद्धृत किया है परन्तु यह प्रथम अवसर है, जब सम्पूर्ण कण्डिका आश्वलायन श्रौतसूत्र में यथावत् उपलब्ध होती है। इस कारण इन १० अध्यायों की प्रामाणिकता दृढ़ता से पुष्ट होती है।

यहाँ इन कण्डिकाओं में सायण आदि भाष्यकारों ने पशु बलि और उस पशु के मांस का वितरण बड़े ही घृणित और बीभत्स ढंग से दर्शाया है। इसी प्रकार का संकेत इन भाष्यकारों ने इस ग्रन्थ के अनेक भागों में दर्शाया है, विशेषकर खण्ड २.६ में इसका अत्यन्त क्रूर स्वरूप दर्शाया है। हम यह दृढ़ता से कहना चाहते हैं कि इस ग्रन्थ में अथवा किसी भी वेद वा आर्ष ग्रन्थ में पशुबलि, मांसाहार आदि का किञ्चिन्मात्र भी विधान नहीं है, जो आर्य विद्वान् ऐसे प्रतीत होने वाले प्रसंगों को प्रक्षिप्त मानते हैं, वे भी भारी भ्रम में हैं। इसकी विशेष चर्चा भूमिका में की गयी है। अब तक के हमारे व्याख्यान के आधार पर विज्ञ पाठक स्वयं ही समझ गये होंगे कि जिन प्रसंगों को कुछ विद्वान् प्रक्षिप्त अथवा पशुबलि और मांसाहार का प्रतिपादक मानते हैं, वे कितने अंधकार में हैं और उन प्रसंगों में सृष्टिविद्या (विज्ञान) के कितने गम्भीर रहस्य छुपे हुए हैं, जिन्हें हमने उद्घाटित किया है। यहाँ भी सृष्टिविद्या के ही कुछ गम्भीर रहस्यों का उद्घाटन किया गया है।}

व्याख्यानम्- पूर्व के अनेक अध्यायों में पशुरूप संवत्सर अर्थात् आदित्य आदि लोकों के निर्माण की चर्चा की गयी है, यहाँ उसी आदित्यरूप पशु के विभागों को दर्शाया गया है। आदित्य लोकों में विद्यमान पदार्थ का विभाजन कैसे-२ होता है, इसका वर्णन अगली कण्डिका में किया गया है।।

{प्रस्तोता = अग्निः प्रस्तोता (तै.सं.३.३.२.१), अपानः प्रस्तोता (कौ.ब्रा.१७.७; गो.उ.५.४)। हनू = हनू वा एते यज्ञस्य यदधिषवणे (तै.सं.६.२.११.३; काठ.२५.६; क.४०.२)} यहाँ ग्रन्थकार ने आदित्य लोक के अन्दर विभिन्न क्षेत्रों का वर्णन किया है, जो क्रमशः निम्नानुसार है-

(१) ज्वालाओं के समान वर्तमान भेदक शक्तिसम्पन्न एवं सबको अपने अन्दर समेटने की क्षमता से युक्त भाग 'हनु' संज्ञक कहलाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जो छन्दादि रश्मियां इस प्रकार के गुणों से युक्त होती हैं, वे 'हनु' कहलाती हैं। यहाँ 'हनू' पद द्विवचनान्त होने से यह संकेत मिलता है कि इस प्रकार की छन्दादि रश्मियां दो प्रकार के स्वरूपों वाली होती हैं। उनमें से कुछ छन्दरश्मियां हिंसक गुणों से युक्त होती हैं, तो अन्य छन्द रश्मियां उत्क्षेपक वा उत्प्रेरक गुणों से युक्त होती हैं। संस्कृत-हिन्दी आप्टेकोष में 'हन्' धातु के दोनों ही प्रकार के अर्थ दिये हैं। इस प्रकार की दोनों छन्द आदि रश्मियों का विशेष सम्बन्ध अपानरूप प्रस्तोता से होता है, साथ ही इनके कारण अग्नितत्त्व की विशेष समृद्धि होती है। इनके कारण ही विभिन्न प्रकार के संयोगादि कर्मों को भी बल मिलता है क्योंकि इन रश्मियों में भेदक और संयोजक दोनों ही गुणों वाली रश्मियां विद्यमान होती हैं। इसलिए कहा गया है {प्राजापत्यः प्रस्तोता (मै.४.४.८), (प्राजापत्यो यज्ञः - काठ.३१.१५; जै.ब्रा.२.२६१; तै.ब्रा.३.७.१.२)}

(२) ये छन्द रश्मियां {श्येनः = गायत्री वै श्येनः सोमभृत् (मै.३.७.६), श्येनः शंसनीयं गच्छति (नि.४.२४), श्येन आदित्यो भवति श्यायतेर् गतिकर्मणः (नि.१४.१३), यत् संश्याययति तस्माच्छ्येनस्तच्छ्येनस्य श्येनत्वम् (गो.पू.५.१२), एतद्वै वयसामोजिष्ठं बलिष्ठं यच्छ्येनः (श.३.३.४.१५)। वक्षः = वक्षो भासोऽध्यूढम् (नि.४.१६), प्राप्तं वस्तु (म.द.ऋ.भा.१.१२४.४) वह प्रापणे।} कुछ छन्द रश्मियां अतिशीघ्र गमन करने वाली सबसे बलिष्ठ ऊपर की ओर उठती हुई होती हैं। इसमें गायत्री छन्द रश्मियों की प्रधानता होती है। ये रश्मियां विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को वहन करने वाली और सोम रश्मियों को अधिगृहीत करके उनका भरण-पोषण करने में विशेष सक्षम होती हैं। {उद्गाता = प्राण उद्गाता (कौ.ब्रा.१७.७; गो.उ.५.४; तै.आ.१०.६४.१), सूर्य उद्गाता (गो.पू.१.१३), आदित्यो वा उद्गाता (गो.पू.२.२४)} ये रश्मियां आदित्य अर्थात् आदित्य रश्मियों में विशेषरूप से विद्यमान होती हैं। इनके कारण ही आदित्य रश्मियां अतिशीघ्र गमन करती हुई ऊपर की ओर निरन्तर उठती और चमकती रहती हैं। इनमें प्राण नामक प्राणतत्त्व की भी प्रधानता होती है तथा ये आदित्य रश्मियां परमाणु आदि पदार्थों को वहन करने में भी सक्षम होती हैं।

(३) {कण्ठः = कणति येन शब्दं करोतीति कण्ठः (उ.को.१.१०३) (कण शब्दार्थः, कण गतौ)। काकुत् = वाङ्नाम (निघं.१.११)। प्रतिहर्ता = मरुतः प्रतिहर्तारः (तै.सं.३.३.२.१), व्यानः प्रतिहर्त्ता (कौ.ब्रा.१७.७; गो.उ.५.४), रौद्रो वै प्रतिहर्ता (गो.उ.३.१६), पीछे धकेलने वाला एवं दूर करने वाला (आप्टेकोष)। प्रतिहारः = विद्युतम्प्रतिहारं (जै.उ.१.३.३.१), स्तोमम्प्रतिहारम् (जै.उ.१.३.३.३)} कुछ छन्दरश्मियां श्रव्य ध्वनि से युक्त होकर गमन करती हैं। ये रश्मियां रुद्ररूप अर्थात् घोर कर्म करने वाली होती हैं। ये विद्युत् को तीव्र बनाकर असुरादि बाधक तत्त्वों को दूर धकेलती हैं तथा विभिन्न संयोगादि क्रियाओं को समृद्ध करने में विशेष क्रियाशील होती हैं। इसमें व्यान रश्मियों के साथ-२ प्राणतत्त्व आदि विभिन्न मरुद् रश्मियां भी विद्यमान होती हैं। इनमें त्रिष्टुप् छन्दरश्मियों की भी प्रधानता होती है। इसलिए कहा गया है-

"त्रिष्टुब् रुद्राणां पत्नी" (गो.उ.२.६)
"रुद्रास्त्रिष्टुभं समभरन्" (जै.उ.१.४.४.५)
"रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन छन्दसा संमृजन्तु" (तां.१.२.७)

{श्रोणी = जगती छन्द आदित्यो देवता श्रोणी (श.१०.३.२.६), श्रोणिः श्रोणतेर्गतिचलाकर्मणः श्रोणिश्चलतीव गच्छतः (नि.४.३)। होता = नाभिर्वा एषा यज्ञस्य यद्धोता (काठ.२६.१), जागतो हि होता (जै.ब्रा.१.३१८)} आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में होतासंज्ञक मन, वाक्, सभी प्राण, विशेषकर प्राण नामक प्राणतत्त्व व छन्दादि रश्मियां विद्यमान रहती हैं। छन्द रश्मियों में जगती छन्द रश्मियों की प्रधानता होती है। केन्द्रीय भाग शेष विशाल भाग से कुछ भिन्न गति से घूर्णन करता हुआ फिसलता रहता है। यह भाग सम्पूर्ण लोक को अपने साथ बांधे रखता है। इसके लिए नाभिरूप आकाश तत्त्व को यह भाग दृढ़ता

से बांधे रखता है। यह वर्णन दक्षिणा श्रोणि के रूप में किया गया है।
(५) इसी उपर्युक्त श्रोणिरूप भाग का उत्तरी भाग ब्रह्मा {ब्रह्मा = इन्द्र एव ब्रह्माऽऽसीत् (जै.ब्रा.३.३७४)} अर्थात् इन्द्रतत्त्व की प्रधानता वाला होता है।
(६) {सक्थि = सक्थि सचतेरासक्तोऽस्मिन् कायः (नि.६.२०)} आदित्य लोक में सक्थिरूप दक्षिणी भाग में मैत्रावरुण संज्ञक छन्दरश्मियों की प्रधानता होती है। हम यह जानते हैं कि मैत्रावरुण संज्ञक छन्दरश्मियां तृचरूप समूह में होती हैं, जिनका वर्णन खण्ड ६.४ में किया गया है। आदित्य लोकों के सक्थि भाग उनके केन्द्रीय भाग तथा शेष भाग से जुड़े रहकर उनके बीच में आवश्यक दूरी बनाये रखते हैं। इस विषय में खण्ड ५.१५ में विस्तार से सचित्र लिखा जा चुका है। ये सक्थि भाग उत्तर एवं दक्षिण की ओर दो भागों में विद्यमान होते हैं। इसके दक्षिणी भाग में मैत्रावरुण-संज्ञक तृचरश्मियों की प्रधानता बतलायी गयी है। ये तृचरश्मियां गायत्री-छन्दस्क होने से अन्य छन्दरश्मियों को प्राणापान एवं प्राणोदान से संयुक्त करती हुई विशेष तेज और बल से युक्त करती हैं। इसके साथ ही ये मैत्रावरुण संज्ञक छन्दरश्मियां अन्य गायत्री छन्दरश्मियों का वरण करती हुई इस सक्थि भाग में पर्याप्त बल को उत्पन्न करने एवं अग्नि तत्त्व को समृद्ध करने में सहायक होती हैं। मैत्रावरुण छन्दरश्मियों का गायत्री छन्दरश्मियों से सम्बन्ध बतलाते हुए ऋषियों का कथन है-

"मैत्रावरुणं वृणीते, गायत्रीं तच्छन्दसां वृणीते" (काठ.२६.६; क.४१.७)

इस बात से हम अवगत हैं कि मैत्रावरुण तृचरूप रश्मियों की उत्पत्ति प्राणापान वा प्राणोदान से होती है, इस कारण इनके प्रभाव से प्राणापान व प्राणोदान की प्रधानता भी स्वयं सिद्ध है।
(७) उपर्युक्त सक्थि के उत्तरी भाग में ब्राह्मणाच्छंसी (६.४ में वर्णित) नामक तृचरूप छन्दरश्मिसमूह की प्रधानता होती है। ये छन्दरश्मियां इन्द्रतत्त्व द्वारा उत्पन्न होती हैं। इसी कारण ब्राह्मणाच्छंसी का सम्बन्ध इन्द्र से बतलाते हुए ऋषियों ने कहा है- ऐन्द्रो ब्राह्मणाच्छंसी (तै.ब्रा.१.७.६.१; श.६.४.३.७) ये ब्राह्मणाच्छंसी छन्दरश्मियां गायत्री- छन्दस्क होने पर भी त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के प्रति आकर्षण का विशेष भाव रखती हैं, इसी कारण ऋषियों का कथन है-

"ब्राह्मणाच्छंसिनं वृणीते, त्रिष्टुभं तच्छन्दसां वृणीते।" (काठ.२६.६; क.४१.७)

इस कारण आदित्य लोक के उत्तरी भाग में तीक्ष्ण तेज और बलों की विद्यमानता होती है।

इस प्रकार ये दोनों ही सक्थिरूप भाग गायत्री और त्रिष्टुप् आदि छन्द रश्मियों के प्रभाव से अत्यन्त सुदृढ़ होकर आदित्य लोक के दोनों भागों को थामने के लिए अत्यन्त बलवान् स्तम्भरूप में विद्यमान होते हैं, जो सम्पूर्ण आदित्य लोक के अक्ष के भाग के रूप में विद्यमान होते हैं।
(८) {पार्श्वः = स्पृशति येन स पार्श्वः (उ.को.५.२७)। अंस = बाहुमूलम् (तु.म.द.य.भा.२५.३)। अध्वर्युः = प्राणापानावेवाध्वर्यू (गो.पू.२.११), द्यौरध्वर्युः (मै.१.६.१), आदित्य एवऽध्वर्युः (ष.२.५)} आदित्य लोक के दक्षिणी ध्रुव के निकटवर्ती क्षेत्र, जो उसके स्कन्ध एवं बाहुमूल के समान होता है, में अध्वर्युतत्त्व की प्रधानता होती है। इसका तात्पर्य यह है कि इस क्षेत्र में प्राणापान-रश्मियों एवं प्रकाशित, अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के परमाणु, जिनमें भी प्रकाशित परमाणुओं की अधिकता हो, की प्रधानता होती है। इस क्षेत्र में विभिन्न परमाणुओं के मध्य संसर्ग की क्रिया भी अपेक्षाकृत अधिक तेज है।
(९) इसी प्रकार उत्तरी भाग के पार्श्वरूप भागों में उपगाता संज्ञक पदार्थों की प्रधानता होती है। {उपगाता = आर्त्तवा उपगातारः (तै.ब्रा.३.१२.६.४), विश्वे देवा उपगातारः (तै.सं.३.३.२.१), ते य एवेमे मुख्याः प्राणा एत एवोद्गातारश्चोऽपगातारश्च (जै.उ.१.६.३.५)} इसका तात्पर्य यह है कि उन भागों में सभी मुख्य प्राण रश्मियों एवं ऋतु रश्मियों की प्रधानता होती है। इसके साथ ही इन भागों में सभी प्रकार के देव पदार्थ अन्य भागों की अपेक्षा अधिकता में विद्यमान होते हैं।
(१०) उपर्युक्त भाग के उत्तरी अंसरूप भाग में प्रतिप्रस्थातारूप पदार्थ की प्रधानता होती है। {प्रतिप्रस्थाता = शार्दूलो प्रतिप्रस्थाता (काठ.१२.१०), व्याघ्रो प्रतिप्रस्थाता (मै.२.३.६)} इसका तात्पर्य यह है कि इस भाग में विद्यमान पदार्थ तीक्ष्ण भेदक-शक्ति-सम्पन्न होता है। ये भेदक शक्तियां इन्द्र और सोम तत्त्व के पारस्परिक मिश्रण से उत्पन्न होती हैं। इसका संकेत करते हुए ऋषियों का कथन है-

"यत्र वा अद इन्द्रः सोमोऽत्यपवत ततः शार्दूलः समभवत् तस्मादाह सोमस्य त्विषिरसीति" (काश. ७.२.४.३ - ब्रा.उ.को से उद्धृत)

"यत्र वै सोम इन्द्रमत्यपवत स यत्ततः शार्दूलः समभवत्तेन सोमस्य त्विषिः" (श.५.३.५.३)

ये तीक्ष्ण पदार्थ विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को अपने साथ धारण वा वहन करने में किंवा

उनको अपना अनुकरण कराने में विशेष सक्षम होते हैं। इसी कारण महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है-

"कृतानुकर एव प्रतिप्रस्थाता" (श.२.५.२.३४)

(११) {दोः = भुजस्य बलम् (म.द.ऋ.भा.५.६१.५), दाम्यत्युपशाम्यति यो येन वा स दोः (उ.को.२.७०)। नेष्टा = नयतीति नेष्टा (उ.को.२.६७)} आदित्य लोक के दक्षिणी भाग की ओर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को वहन करने वाली नेष्टारूप विद्युत् की प्रधानता होती है। यह विद्युत् दक्षिणी ध्रुव पर विद्यमान बाहुरूप बलों का कार्य करती है। यह विद्युत् अपनी रश्मियों के द्वारा विभिन्न पदार्थों और लोकों का नियमन करने में सहयोग करती है।

(१२) सव्य अर्थात् उत्तरी ध्रुव की ओर विद्यमान विभिन्न पदार्थों का शोधक एवं गमयिता अग्नितत्त्व पोतारूप में दूसरी बाहु के समान कार्य करता है। ये दोनों बाहुरूप अग्नि और इन्द्र नामक पदार्थ परस्पर एक-दूसरे से जुड़े हुए नाना प्रकार के यजन कर्मों को सम्पादित करते हैं। इसी कारण कहा गया है- "एतौ (नेष्टापोतारौ) सः सचन्ताविव यजतः" (क.४०.४)

ये दोनों नेष्टा और पोता संज्ञक विद्युत् और अग्निरूप पदार्थ आदित्य लोकों के बाहु वा बलरूप विद्यमान रहकर इन लोकों के अक्ष का कार्य करते हैं। इसलिए कहा गया है-

"प्रतिष्ठे वा इन्द्राग्नी" (कौ.ब्रा.३.६; ५.४, शां.आ.२.१३)

"ओजोभृतौ/बलौ वा एतौ देवानां यदिन्द्राग्नी" (तै.सं.६.५.४.१; तै.ब्रा.१.६.४.४)

"इन्द्राग्निभ्यां वा इमौ लोकौ विधृतौ" (तै.सं.५.३.२.१)

(१३) {ऊरुः = बहाच्छादनं स्वीकरणं वा (म.द.य.भा.४.२७), अनुष्टुप्छन्दो विश्वे देवा देवतोरू (श.१०.३.२.६)} आदित्य लोक के दक्षिण भाग में केन्द्रीय भाग के ऊपर विद्यमान पूर्वोक्त सक्थिरूप भागों को आच्छादित करता हुआ भाग 'ऊरू' कहलाता है, जो आदित्य लोक के विशाल भाग के आभ्यान्तर भाग के छोर पर स्थित होता है। इस भाग में अनुष्टुप् छन्दरश्मियां ही ऊरू अर्थात् ओजरूप बल के रूप में स्थित होकर सक्थिरूप भागों को बल प्रदान करती हैं। इस भाग में पूर्वोक्त अच्छावाक नामक तृचरूप छन्दरश्मि समूहों की प्रधानता होती है। ये अच्छावाक छन्द रश्मियां गायत्री छन्दस्क होते हुए भी अनुष्टुप् छन्द रश्मियों से विशेष सम्बन्ध रखने के कारण आदित्य लोकों में स्थित अनुष्टुप् छन्द रश्मियों के साथ संगत होती हुई इनके द्वारा अन्य छन्द रश्मियों को अनुकूलता से थामने में सक्षम होती हैं। इसी कारण महर्षि जैमिनी का कथन है-

"आनुष्टुभो हि अच्छावाकः" (जै.ब्रा.१.३१६)

"ईर्म इव वा एषा होत्राणां यदच्छावाकः" (जै.ब्रा.२.३७८)

"ईर्म" शब्द का अर्थ करते हुए महर्षि यास्क का कथन है-

"ईर्म इति बाहुनाम समीरिततरो भवति" (नि.५.२५)

इसका आशय यह है कि अच्छावाक छन्द रश्मियां होतृरूप विभिन्न ऋत्विज् रूप रश्मियों की बाहुरूप होकर उन्हें निरन्तर प्रेरित करती हुई दूर-२ तक फैली हुई होती हैं। यहाँ ऋत्विज् से तात्पर्य मैत्रावरुण आदि सभी ऋत्विज् रूप रश्मियों का ग्रहण करना चाहिए।

(१४) उपर्युक्त उरु का उत्तरी भाग आग्नीध्र तत्त्व प्रधान होता है। आग्नीध्र के विषय में ऋषियों का कथन है-

"त्रैष्टुभम् आग्नीध्रम्" (मै.३.४.४; काठ.२१.१२)

इसका तात्पर्य यह है कि इस क्षेत्र में त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की विशेष प्रधानता होती है, जिसके कारण विद्युत् कणों की भी अधिकता होती है।

(१५) आदित्य लोक के दक्षिणी बाहुरूप क्षेत्र वा रश्मियां आत्रेय प्रधान होती हैं। हम पूर्व में 'दोः' को बाहु अर्थ में ग्रहण कर चुके हैं, जहाँ नेष्टा की प्रधानता बतलायी गयी है। यहाँ पुनः बाहु के प्रयोग के विषय में हमारा मत यह है कि यह बाहु 'दोः' रूप बाहु के अग्रभाग में स्थित रश्मियां होती हैं। इनके ही द्वारा 'दोः' रूप बाहु विभिन्न परमाणुओं को नियंत्रित और गृहीत करने में सक्षम होते हैं। इन रश्मियों में आत्रेय अर्थात् सूत्रात्मा वायु प्रधानता वाली रश्मियां बहुलता से विद्यमान होती हैं। 'दोः' संज्ञक बाहुरूप रश्मियों में नेष्टारूप विद्युत् की प्रधानता बतलायी गयी है और यह विद्युत् भी सूत्रात्मा वायु रश्मियों के कारण ही आकर्षण और धारण का गुण प्राप्त करती है।

(१६) आदित्य लोक के उत्तरी भाग में विद्यमान उपर्युक्त बाहुरूप क्षेत्रों में सदस्यरूप रश्मियों की प्रधानता होती है। सदस्य के विषय में महर्षि तित्तिर का कथन है।

"सदस्या ऋतवोऽभवन्" (तै.ब्रा.३.१२.६.४)

इसका तात्पर्य यह है कि इस भाग में ऋतु रश्मियां प्रधान होती हैं, जिसके कारण विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के संयोगादि की प्रक्रिया एवं ऊष्मा की मात्रा अधिक होती है।

(१७) {अनूकम् = अनूकमेवास्य सामिधेन्यः (श.११.२.६.३), बृहतीछन्दो बृहस्पतिर्देवतानूकम् (श.१०.३.२.३)। सदः = ऐन्द्रं वै सदः (काठ.२५.१०; क.४०.३)। गृहपति = अग्निर्गृहपतिरिति हैक आहुः। सोऽस्य लोकस्य (पृथिव्याः) गृहपतिः (ऐ.५.२५), अयं वै लोको गृहपतिः (गो.पू.४.१; श.१२.१.१.१), तप आसीद् गृहपतिः (तै.ब्रा.३.१२.६.३)} आदित्य लोक में विभिन्न पार्थिव और आग्नेय परमाणु जहाँ तीव्र तप्त होते हैं, उस क्षेत्र में इन्द्र तत्त्व की प्रधानता होने के साथ-२ विभिन्न सामधेनी रश्मियों की प्रधानता भी होती है। हम खण्ड १.१ में सामिधेनी छन्द रश्मियों का वर्णन कर चुके हैं। इन सामिधेनी रश्मियों के छन्द गायत्री एवं त्रिष्टुप् होने से इन्द्र और अग्नि तत्त्व दोनों ही प्रमुखता से विद्यमान होते हैं। इसके साथ ही यहाँ बृहती छन्द रश्मियों की भी प्रचुरता होती है। इसके कारण यह भाग अपेक्षाकृत अधिक सघन होता है। 'सदः' का पृथिवी से सम्बन्ध बतलाते हुए अन्य आचार्यों का भी कथन है-

"सदः पृथिव्याः" (मै.३.८.१; काठ.२४.१०)
"सदो हीयम्" (तै.आ.५.६.७)

(१८) {पादः = दिशः पादाः (तै.सं.७.५.२५.१), प्रतिष्ठा वै पादः (श.१३.८.३.८)} आदित्य लोक के दक्षिणी ध्रुव की ओर विद्यमान दो आधाररूप बिन्दुओं, जिन्हें हमारी दृष्टि में दो उपदिशा कहा जा सकता है तथा जो दक्षिण पूर्व और दक्षिण-पश्चिम दिशा कहलाती हैं, में अग्नि और पृथिवी के परमाणुओं को नाना प्रकार के तेज और बलों से युक्त करने वाला सूक्ष्म विद्युदग्नि प्रचुरता से विद्यमान होता है। 'व्रतम्' शब्द का अर्थ करते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है- "वीर्यं वै व्रतम्" (श.१३.४.१.१५)। यहाँ विद्युदग्नि ही व्रतरूप वीर्य को प्रदान करने वाला है। इसलिए इनका पालक और रक्षक बतलाते हुए ऋषियों ने कहा है-

"अग्निर्वै देवानां व्रतपतिः" (तै.सं.१.६.७.२; मै.१.८.६; श.१.१.१.२)

(१९) इसी प्रकार उपर्युक्तानुसार उत्तरी भाग की दोनों उपदिशा अर्थात् उत्तर-पूर्व एवं उत्तर-पश्चिम, जो पादरूप ही होती हैं, वे गृहपति अर्थात् अग्नि एवं पृथिवी के परमाणुओं की भार्यारूप अर्थात् भरणीया शक्तिरूप पदार्थों से समृद्ध होती हैं और विभिन्न प्रकार के प्राण और सोम रश्मियां ये पदार्थ ही हो सकते हैं।

(२०) {ओष्ठः = ओषति यो दहति येन वा स ओष्ठः (उ.को.२.४)। उपयामः = इयं (पृथिवी) वाऽउपयामः (तै.सं.६.५.८.३; काठ.२६.१०; क.४२.२), उपयाममधरेणौष्ठेन (प्रीणामि) (मै.३.१५.२)} उपर्युक्त व्रतपद नामक (जो विद्युदग्नि रूप व्रतपति का ही सूचक है) अग्नि तत्त्व की उष्णता पूर्वोक्त उत्तरी और दक्षिणी दोनों ही दिशाओं की उपदिशाओं में सामान्यरूप से विद्यमान होती है।

(२१) {जघनम् = हन्ति येन यद् वा हन्यते तत् जघनम् (उ.को.५.३२)} आदित्य लोक में अग्नि तत्त्व का उपर्युक्तवत् वितरण {प्रशिंष्य = (प्र+शिष्लृ विशेषणे)} पूर्वोक्त गृहपति अर्थात् आग्नेय और पार्थिव परमाणुओं का रक्षक वायु ही करता है। उस वायु की रश्मियां उस अग्नि तत्त्व का वहन करके सर्वत्र संचरित करती रहती हैं। वे वायु रश्मियां ब्राह्मण रूप अर्थात् सदैव प्राणापान की अधिकता वाली ही होती हैं। इसके कारण ही आदित्य लोकों में ऊर्जा के संचरण की क्रियाएं संचालित और रक्षित होती हैं। इसमें विद्युदग्नि की ही भूमिका होती है। इसके बिना यह संचरण कदापि संभव नहीं होता।

(२२) {कीकसा = कङ्कते चञ्चलं भवतीति कीकसम् (उ.को.३.११७)। स्कन्धः = स्कन्दते गच्छति चेष्टते शुष्यति वा येन तत् स्कन्धः (उ.को.४.२०८)} तीन मुख्य प्राण रश्मियां अर्थात् प्राण, अपान एवं व्यान रश्मियां आदित्य लोकों में विभिन्न प्रकार की ध्वनियां उत्पन्न करते हुए गमनागमन क्रियाएं करती हुई छन्दादि रश्मियों को निरन्तर शासित करती हैं अर्थात् विभिन्न छन्दादि रश्मियों को नियंत्रित व प्रेरित करने में इन तीन प्राण रश्मियों की सर्वाधिक भूमिका होती है। ये ही प्राण रश्मियां ग्रावस्तुतरूप सूक्ष्म वाग् रश्मियों से निरन्तर संगत होती हुई अपने कार्यों को संपादित करती हैं। ग्रावस्तुत् के विषय में महर्षि जैमिनी का कथन है- "अर्बुदो ग्रावस्तुत्" (जै.ब्रा.३.३७४), (अर्बुदम् = वाग्वा अर्बुदम् - तै.ब्रा.३.८.१६.३) खण्ड ६.१ की प्रथम कण्डिका के व्याख्यान के अनुसार

प्रैते वंदन्तु प्र व॒यं व॑दाम॒ ग्राव॑भ्यो॒ वाचं॑ वदता॒ वद॑द्भ्यः।

यदद्रयः पर्वताः साकमाशवः श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः।।११।।

इत्यादि (ऋ.१०.६४) सूक्तरूप रश्मिसमूह को भी ग्रावस्तुत कहा जाता है, जिनके साथ यहाँ इन तीन मुख्य प्राण रश्मियों का विशेष संगम होता है। इनके कारण आदित्य लोकों में विभिन्न प्रकार के मेघरूप पदार्थ समूह उत्पन्न और संचरित होते रहते हैं।

(२३) पूर्वोक्त भागों {उन्नेता = विष्णुर्वा उन्नेता (जै.ब्रा.२.६८)। अर्धम् = वर्धकम् (म.द.ऋ.भा.४.३२.१)। कर्तः = कूपनाम (निघं.२.२३)} में ही मेघरूप पदार्थों में नाना प्रकार के कूप अर्थात् गुफारूप मार्गों को भी पूर्वोक्त प्राणापान-व्यान नामक रश्मियां उत्कृष्ट विद्युत् के बलों द्वारा उत्पन्न करती हैं। ये कूपरूप मार्ग निरन्तर बढ़ते और फैलते रहते हैं।

(२४) {क्लोमा = क्लोमा वरुणः (श.१२.६.१.१५), (वरुणः = अथ यत्रैतत् प्रदीप्ततरो भवति तर्हि हैष (अग्निः) भवति वरुणः - श.२.३.२.१०)} पूर्वोक्त कूपरूप मार्गों में {शमिता = यजमानः (तु.म.द.य.भा.२८.१०)} तीव्र प्रज्वलित अग्नि जलता हुआ नाना प्रकार के परमाणुओं का निरन्तर यजन और विभाजन करता रहता है। वे यजमानरूपी परमाणु ब्राह्मणरूप ही होते हैं अर्थात् उनमें विद्युत् बलों की विद्यमानता अवश्य होती है। जिन परमाणुओं में ऐसा नहीं होता, उनमें संयोजन और विभाजन की क्रिया नहीं होती।

(२५) {सुब्रह्मण्या = ब्रह्म वै सुब्रह्मण्या (कौ.ब्रा.२७.६; जै.ब्रा.३.३०७), वाग्वै सुब्रह्मण्या (ऐ.६.३; जै.ब्रा.२.७८)। शिरः = अथ यज्ञायज्ञीयं शिर एव तत् (जै.ब्रा.१.२५४), शिरो हविर्धानं (मै.३.८.८), श्रीः वै शिरः (श.१.४.५.५; २.१.२.८)} विभिन्न वाग् रश्मियां, विशेषकर ब्रह्मरूप गायत्री छन्दरश्मियां शिरोरूप विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों के साथ निरन्तर संगत होकर नाना प्रकार के संयोग और विभागों के कार्य को संपादित करती हैं। इस क्रिया में सूत्रात्मा वायुरूप सुब्रह्मण्या रश्मियों का भी विशेष योगदान रहता है। यहाँ 'शिर' शब्द से आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग का भी ग्रहण होता है, जहाँ पर ये क्रियाएं विशेषरूप से होती हैं।

(२६) {श्वः = श्वो बृहत् (साम) (तै.सं.३.१.७.२)} पूर्व में अनेकत्र वर्णित बृहत् सामरूप रश्मियां, जो नाना प्रकार की भेदन-शक्तियों से संपन्न होती हैं, विभिन्न प्रकार की उत्पादन क्रियाओं को सम्पादित करती हैं अर्थात् वे नाना प्रकार के नवीन तत्त्वाणुओं को उत्पन्न करती हैं। {अजिनम् = जेतुमयोग्यम् (तु.म.द.य.भा.३०.१५)} ये उत्पादन क्रियाएं और इनको सम्पन्न करने वाली रश्मियां अति तीव्र होने से अनियम्य होती हैं, वे सम्पूर्ण पदार्थ में भारी विक्षोभ उत्पन्न करती हैं। यह क्रिया भी आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों में ही विशेषकर होती है।

(२७) इडारूप विभिन्न संयोज्य परमाणु एवं छन्द रश्मियां होतारूप विभिन्न प्राणरश्मियों एवं मनस्तत्त्व के साथ निरन्तर संगत होती हुई सम्पूर्ण आदित्य लोक में विचरण करती हैं। यहाँ होता का तात्पर्य प्राण एवं मनस्तत्त्व के अतिरिक्त आदित्य लोक भी है, इसलिए कहा गया है-

"असौ वै होता योऽसौ (सूर्यः) तपति" (गो.उ.६.६)

इस प्रकार सम्पूर्ण आदित्य लोक इनसे पूरी तरह भरा होता है। यहाँ 'इडा' शब्द से सभी प्रकार की छन्द रश्मियों का ग्रहण किया गया है। हम पूर्वोक्त प्रकरणों में शिल्प संज्ञक नाभानेदिष्ठ, वालखिल्य, वृषाकपि एवं एवयामरुत् सूक्तरूप छन्द रश्मिसमूहों की आदित्य लोकों के निर्माण महती भूमिका को दर्शा चुके हैं, जिनके विषय में पूर्व अध्याय के प्रथम खण्ड में कहा गया है-

"आत्मसंस्कृतिर्वाव शिल्पानि छन्दोमयं वा एतैर्यजमान आत्मानं संस्कुरुते।"

अर्थात् ये शिल्प संज्ञक रश्मियां सम्पूर्ण आदित्य लोक में सतत विचरण करती रहती हैं। यहाँ 'आत्मा' शब्द आदित्य का सूचक है। इसी कारण कहा गया है-

"आत्मा वै वृषाकपिः" (ऐ.६.२८; गो.उ.६.८)

इस प्रकार यहाँ आदित्य लोक का सत्ताईस भागों में वर्गीकरण किया गया है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इसका भाष्यसार अगली कण्डिकाओं के साथ देखें।।

२. ता वा एताः षट्त्रिंशतमेकपदा यज्ञं वहन्ति, षट्त्रिंशदक्षरा वै बृहती, बार्हताः स्वर्गा लोकाः, प्राणांश्चैव तत्स्वर्गांश्च लोकानाप्नुवन्ति, प्राणेषु चैव तत्स्वर्गेषु च लोकेषु

प्रतितिष्ठन्तो यन्ति।।
स एष स्वर्ग्यः पशुर्य एनमेवं विभजन्ति।।
अथ येऽतोऽन्यथा तद्यथा सेळगा वा पापकृतो वा पशुं विमथ्नीरंस्तादृक्तत्।।
तां वा एतां पशोर्विभक्तिं श्रौत ऋषिर्देवभागो विदांचकार, तामु हाप्रोच्यैवास्माल्लोकादुच्चक्रामत्।।
तामु ह गिरिजाय बाभ्रव्यायामनुष्यः प्रोवाच, ततो हैनामेतदर्वाङ् मनुष्या अधीयतेऽधीयते।।१।।

व्याख्यानम्- यहाँ आदित्य लोक के उपर्युक्त २७ भागों को ३६ भाग कहा गया है। इसका कारण यह है कि कुछ भागों में दो या दो से अधिक भाग विद्यमान हैं, जैसे प्रथम भाग में 'हनू' द्विवचनान्त होने से दो भागों में विभक्त है। सत्रहवें भाग में सदस् और अनूकम् ये दो भाग एक साथ दर्शाये हैं। अठारहवें में दक्षिणी दो पादों को एक भाग के रूप में दर्शाया है। उन्नीसवें भाग में उत्तरी दो पादों को एक भाग के रूप में दर्शाया गया है। बीसवें में ओष्ठरूप दो भागों को एक भाग के रूप में दर्शाया गया है। बाईसवें भाग के एक भाग में ही पांच भागों को दर्शाया गया है। ये पांच भाग हैं- स्कन्ध, मणिका एवं तीन कीकसा। इस प्रकार नौ भाग अतिरिक्त होने से २७ भागों के स्थान पर ३६ भागों का यहाँ ग्रहण किया गया है। ये ३६ प्रकार के गुणों के युक्त भाग वा पदार्थ पृथक्-२ मार्गों और क्षेत्रों में अपना-२ प्रभाव दर्शाते हुए सम्पूर्ण आदित्य लोक में एकपदा सर्गयज्ञ को संचालित करते हैं। यहाँ एकपदा कहने का तात्पर्य यह है कि सभी प्रकार के पदार्थ एक ही प्रकार के मार्ग पर विचरण करते हैं और वह मार्ग है- आदित्य लोक में नाना प्रकार की संयोगादि प्रक्रियाओं का निरन्तर होना। इधर हम जानते हैं कि बृहती छन्दरश्मियां ३६ अक्षरों से युक्त होती हैं। ये ३६ प्रकार के पदार्थ मिलकर आदित्य लोक में बृहती छन्दरश्मियों जैसा प्रभाव दर्शाते हैं। इसके कारण वे सभी पदार्थ व्यापक क्षेत्र में फैलते हुए आदित्य लोकों को अपनी-२ मर्यादाओं में बांधे रखते हैं। आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग भी बृहती छन्द रश्मियों के द्वारा ही मर्यादायुक्त होते हैं। इन सभी ३६ प्रकार के पदार्थों द्वारा आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों का निर्माण एवं उनकी सभी प्रकार की क्रियाओं का विधिवत् संचालन हो पाता है। इन सभी ३६ प्रकार के पदार्थों के द्वारा आदित्य लोक और उनके केन्द्रीय भाग विभिन्न प्रकार की प्राण और छन्द रश्मियों से परिपूर्ण होते हैं।।

इस प्रकार ३६ विभागों व पदार्थों के द्वारा पशुरूप आदित्य लोक अपने स्वर्गलोक अर्थात् केन्द्रीय भागों के सफल निर्माण में समर्थ होते हैं। यदि ये सभी ३६ प्रकार के पदार्थ समुचित विभागों के रूप में व्यवस्थित रूप में विद्यमान न हों, तो केन्द्रीय भागों का सफल निर्माण सम्भव नहीं हो पाएगा।।

यदि आदित्य लोकों में इन ३६ प्रकार के पदार्थों का विभाग अन्यथा रूप में हो जाए, तब सम्पूर्ण आदित्य लोक अस्त-व्यस्त हो जाता है। उस समय आदित्य लोक में नाना प्रकार के पदार्थों में मंथन और विक्षोभ की अनिष्टकारी क्रियाएं होने लगती हैं। उस समय 'सेडगा' = स+इडा+गाः अर्थात् विभिन्न संयोज्य परमाणु नाना प्रकार की वागु रश्मियों से युक्त होते हुए भी सूक्ष्म असुर रश्मियों से आच्छादित हो जाते हैं, जिससे उनमें भारी विक्षोभ होने से सम्पूर्ण आदित्य लोक की क्रियाएं एवं बल विकृत हो जाते हैं। इस प्रकार आदित्य लोक का स्वरूप ही नष्ट वा विकृत हो जाता है।।

आदित्य लोकों में पदार्थ का इस प्रकार विभाजन सर्वप्रथम महर्षि श्रुत के पुत्र महर्षि देवभाग ने अपने योगबल के द्वारा जाना परन्तु वे इसका ज्ञान दूसरों को कराये बिना ही शरीर त्यागकर चले गये, जिससे यह ज्ञान संसार में अन्य किसी को विदित नहीं हो पाया।।

उसके पश्चात् मनुष्य योनि से इतर योनि अर्थात् देव, गन्धर्व आदि में उत्पन्न महर्षि बभ्रु के पुत्र महर्षि गिरिज ने इस महान् विज्ञान को अपने योग बल के द्वारा समझा, फिर उन्होंने ही समस्त संसार

में इस विज्ञान को फैलाया। उसके बाद परम्परा के द्वारा यह विज्ञान महर्षि ऐतरेय महीदास को भी प्राप्त हुआ, जो उन्होंने इस ग्रन्थ में उपर्युक्तानुसार वर्णित किया है।

इस प्रकरण में अन्तिम दो कण्डिकाएं मानव इतिहास से जुड़ी हुई हैं, जिनमें इन ऋषियों का केवल यह इतिहास वर्णित है कि उन्होंने आदित्य लोक के विभाग के इस विज्ञान को समझा। इन ऋषियों के पिता का भी नाम यहाँ वर्णित है। यहाँ ऋषियों के नाम यौगिक नहीं हैं। इस कारण ये नाम किसी प्रकार की प्राणादि रश्मियों के वाचक नहीं है। ब्राह्मण ग्रन्थों में कहीं-२ इसी प्रकार का कुछ मानव इतिहास प्राप्त होता है, अन्यथा सभी ब्राह्मण ग्रन्थों का विषय केवल सृष्टि विज्ञान ही है, जिसे नित्य इतिहास कहा जा सकता है, ऐसा जानना चाहिए।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- यहाँ किसी भी तारे के पदार्थ का ३६ प्रकार से विभाजन किया गया है।

(१) वे छन्दादि रश्मियां वा तरंगें, जिनकी भेदन शक्ति बहुत अधिक होती है तथा जो तारे के अन्दर विभिन्न पदार्थों का विखण्डन करती रहती हैं।

(२) वे किरणें वा छन्दादि रश्मियां, जो विभिन्न कणों को परस्पर जोड़ने का कार्य करती हैं। इनमें प्रेरण बल विशेषरूप से विद्यमान होता है।

(३) गायत्री छन्द एवं प्राणनामक प्राण रश्मियां धनंजय प्राण से युक्त होकर इस सृष्टि में सबसे अधिक आशुगामी रूप धारण करती हैं। ये ही विद्युत् चुम्बकीय तरंगों को विकिरण के रूप में सर्वाधिक तीव्र गति प्रदान करती हैं और अन्तरिक्ष में ये ही उन्हें वहन भी करती हैं।

(४) कुछ छन्द रश्मियां गम्भीर ध्वनि उत्पन्न करती हुई अति तप्त विद्युदावेशित तरंगों के रूप में परिवर्तित होकर डार्क एनर्जी और डार्क मैटर के दुष्प्रभावों को नष्ट करती हैं।।

(५) तारों के केन्द्रीय भाग के **दक्षिणी भाग** में विभिन्न प्राण व छन्दरश्मियों के साथ जगती छन्दरश्मियों की अधिकता होती है, जिसके कारण इस भाग में **ऊर्जा का उत्सर्जन अपेक्षाकृत अधिक होता है।**

(६) तारों के केन्द्रीय भाग के उत्तरी भाग में विद्युत् बलों की अपेक्षाकृत अधिकता होती है। तारों का यह सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग शेष विशाल भाग से भिन्न घूर्णन गति वाला होकर पहिए में bearing की भाँति घूमता रहता है।

(७) तारों के केन्द्रीय भाग और शेष विशाल भाग के बीच में उत्तर और दक्षिण दोनों ही ध्रुवों की ओर अत्यन्त बलवती छन्दादि रश्मियों का सघन रूप विद्यमान होकर दोनों ही भागों को जोड़े व थामे रखता है। इनमें से दक्षिणी भाग में ३ गायत्री छन्द रश्मियां अन्य गायत्री छन्द रश्मियों के साथ मिलकर अपेक्षाकृत तीव्र ऊष्मा को उत्पन्न करती हैं।

(८) इसी प्रकार उत्तरी भाग की ओर इसी क्षेत्र में तीन गायत्री छन्द रश्मियां अन्य रश्मियों, विशेषकर त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों को अपने साथ संयुक्त करके तीव्र विद्युत् बलों से युक्त स्तम्भ का निर्माण करती हैं। तारों के दोनों भागों के बीच एक अन्य प्रकार का पदार्थ भरा रहता है, जिस पर ही दोनों भाग फिसलते रहते हैं। उसी भाग में यह स्तम्भ और इससे पूर्व वर्णित रश्मियों के स्तम्भ विद्यमान होते हैं।

(९) तारों के दक्षिणी ध्रुव के आसपास के क्षेत्र में प्राण और अपान रश्मियों की प्रधानता के साथ-२ संयोग-वियोग की प्रक्रियाओं की भी तीव्रता होती है।

(१०) तारों के **उत्तरी ध्रुव** के आस-पास सभी प्रकार की प्राण रश्मियों एवं ऋतु रश्मियों की प्रधानता होती है। इस कारण यह **भाग अपेक्षाकृत कुछ अधिक प्रकाशित होता है।**

(११) तारे के उत्तरी भाग में ही तीव्र भेदक शक्तिसम्पन्न तरंगें भी विद्यमान होती हैं, जो विभिन्न कणों को वहन करने में भी समर्थ होती हैं।

(१२) तारों के **दक्षिणी ध्रुव से निकलने वाली विद्युत् चुम्बकीय तरंगें उस लोक तथा ग्रह आदि लोकों को नियंत्रित करने में सहयोग करती हैं। यह बाहरी सूक्ष्म पदार्थों को भी अपनी ओर आकर्षित करती हैं।**

(१३) तारों के **दक्षिणी भाग में ऊष्मा की अपेक्षाकृत अधिकता होती है।** इन दोनों ही ध्रुवों पर विद्यमान पदार्थ तारों के अन्दर संयुक्तरूप से विभिन्न प्रकार की क्रियाओं को सम्पन्न करता है।

(१४) तारों के केन्द्रीय भाग के बाहर विद्यमान पूर्वोक्त स्तम्भरूप शक्तिशाली विकिरण समूहों के ऊपरी भाग में तीन गायत्री छन्दरश्मियों का समूह विभिन्न अनुष्टुप् छन्दरश्मियों के साथ विद्यमान होता है, जो उन स्तम्भरूप भागों को बल प्रदान करता है।

(१५) इसी प्रकार तारों के उत्तरी भाग में इसी स्थान पर त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां विद्युदावेशित कणों की तीव्र

धाराओं को उत्पन्न करके इस दिशा के स्तम्भरूप भाग को दृढ़ता प्रदान करती हैं।
(१६) तारों के दक्षिणी भाग में बारहवें क्रमांक में वर्णित भाग की विद्युत् रश्मियां सूत्रात्मा वायु से जुड़ी रहती हैं, जिससे विद्युत् चुम्बकीय बलों की क्रियाशीलता उत्पन्न होती है।
(१७) तारों में उत्तरी दिशा में उपर्युक्त प्रकार के भाग में ऊष्मा एवं कणों के संयोग-वियोग की प्रक्रिया की प्रधानता होती है।
(१८) तारों में गर्म आयनों की तीव्र धाराएं निरन्तर बहती रहती हैं।
(१९) तारों के अन्दर १३ प्रकार की गायत्री और त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां कुछ आवृत्ति के साथ १७ छन्द रश्मियों में प्रकट होकर सम्पूर्ण तारे में ऊष्मा को समृद्ध करती रहती हैं।
(२०) तारों की दक्षिण-पूर्व उपदिशा में तीव्र तप्त आयनों की धाराएं प्रचुरता से बहती रहती हैं।
(२१) इसी प्रकार तारों की दक्षिण-पश्चिम दिशा में भी इसी प्रकार की धाराएं विद्यमान होती हैं।
(२२) तारों की उत्तर-पूर्व दिशा में विभिन्न प्रकार की प्राण और सोम रश्मियों की प्रधानता होती है, जिससे नवीन कण और क्वाण्टाज् भी उत्पन्न होते हैं।
(२३) इसी प्रकार की स्थिति तारों की उत्तर-पश्चिम दिशा में भी होती है।
(२४) तारों के उत्तरी भाग में ऊष्मा सामान्यरूप से संचरित होती है।
(२५) इसी प्रकार तारों के दक्षिणी भाग में भी समझें।
(२६) तारों के अन्दर सर्वत्र ही विद्युत् एवं उसकी भी उत्पादिका प्राणापानादि रश्मियां व्याप्त रहकर ऊष्मा संचरण की क्रिया को संपादित करती हैं। इनके बिना ऊष्मा का संचरण सम्भव नहीं हो सकता।
(२७) तारों के अन्दर कुछ रश्मियां विभिन्न प्रकार के बलों का मूल आधाररूप होती हैं। हमारे मत में दैवी छन्दरश्मियां इस कोटि में मानी जा सकती हैं।
(२८) कुछ रश्मियां निरन्तर श्रव्य ध्वनियों को उत्पन्न करती रहती हैं।
(२९) प्राण नामक प्राथमिक प्राणरश्मियां, जो आकर्षण बलों में प्रधानता से कार्य करती हैं, सम्पूर्ण लोक में व्याप्त होती है।
(३०) अपान नामक रश्मियां प्रतिकर्षण बलों का मूल रूप होकर तारों में व्याप्त रहती हैं।
(३१) व्यान नामक रश्मियां सम्पूर्ण चेष्टा में अपनी भूमिका निभाती हुई तारों में व्याप्त रहती हैं।
(३२) प्राण, अपान और व्यान रश्मियां संयुक्तरूप से कार्य करते हुए अन्य छन्दादि रश्मियों के साथ मिलकर **तारों के अन्दर नाना प्रकार के विवरों (holes) को उत्पन्न करती हैं। ये विवर लम्बी गुफाओं के आकार के होते हैं तथा निरन्तर अपनी आकृतियां व स्थान बदलते रहते हैं।**
(३३) तारों के अन्दर विद्युदावेशित और निरावेशित दोनों ही प्रकार के कणों की प्रचुरता होती है। इनमें संलयन व संयोजन की क्रिया सदैव आवेशित कणों के बीच ही होती है। इस क्रिया के लिए उच्च ताप की अनिवार्यता भी होती है।
(३४) तारों के केन्द्रीय भाग में प्राण, सूत्रात्मा वायु और गायत्री छन्द रश्मियों का मिश्रण नाभिकीय संलयन की प्रक्रियाओं को सम्पन्न करने में विशेष भूमिका निभाता है।
(३५) तारों के केन्द्रीय भाग में नाभिकीय संलयन की क्रियाओं को सम्पन्न करने में उपर्युक्त रश्मियों के अतिरिक्त दो तीक्ष्ण अनुष्टुप् छन्द रश्मियों की भी भूमिका होती है। नाभिकीय संलयन की यह प्रक्रिया अत्यन्त तीव्र और अनियंत्रित होती है। हाँ, इतना अवश्य है कि उसका विस्तार केन्द्रीय भाग के बाहर नहीं हो पाता।
(३६) तारों के अन्दर पूर्व अध्यायों में वर्णित अनेक प्रकार की छन्दरश्मियां और सभी प्रकार की प्राणरश्मियां निरन्तर सर्वत्र विचरण करती रहती हैं। ये तारे के सम्पूर्ण पदार्थ को परस्पर संयुक्त रखते हुए उनमें एकरूपता बनाये रखती हैं।

तारों के पदार्थ का इस प्रकार से ३६ रूपों में विभाजन किया गया है, यद्यपि विभाजन में कुछ भिन्न शैली भी अपनायी जा सकती है परन्तु जिस पदार्थ की यहाँ जिस भाग में विद्यमानता अथवा प्रधानता बतलायी गयी है, उस पदार्थ की वहीं विद्यमानता वा प्रधानता आवश्यकरूप से होती है। यदि इसमें कोई विकृति आ जाए, तो सम्पूर्ण तारा ही विकृत और अस्त-व्यस्त हो जाता है। तारों का यह सूक्ष्म और गहन विज्ञान ऋषियों के महान् योगबल का परिचायक है। इस विज्ञान को सर्वप्रथम अति प्राचीनकाल में **महर्षि श्रुत के पुत्र महर्षि देवभाग** ने अपने योगबल के द्वारा साक्षात् किया था परन्तु वे इस विज्ञान को प्रचारित करने से पूर्व ही दिवंगत हो गये थे, ऐसा ग्रन्थकार का मत है। इस घटना के

कुछ काल पश्चात् मनुष्येतर देव अथवा गंधर्व आदि योनि में उत्पन्न **महर्षि बभ्रु** के पुत्र **महर्षि गिरिज** ने अपने योगबल से इस विज्ञान को साक्षात् किया था, जिसके पश्चात् सभी मनुष्यादिकों को इस गम्भीर विज्ञान का प्रकाश हुआ। इसी परम्परा में स्वयं ग्रन्थकार भी इस विज्ञान से अवगत हो सके।।

इति ३१.१ समाप्तः

इति एकत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः
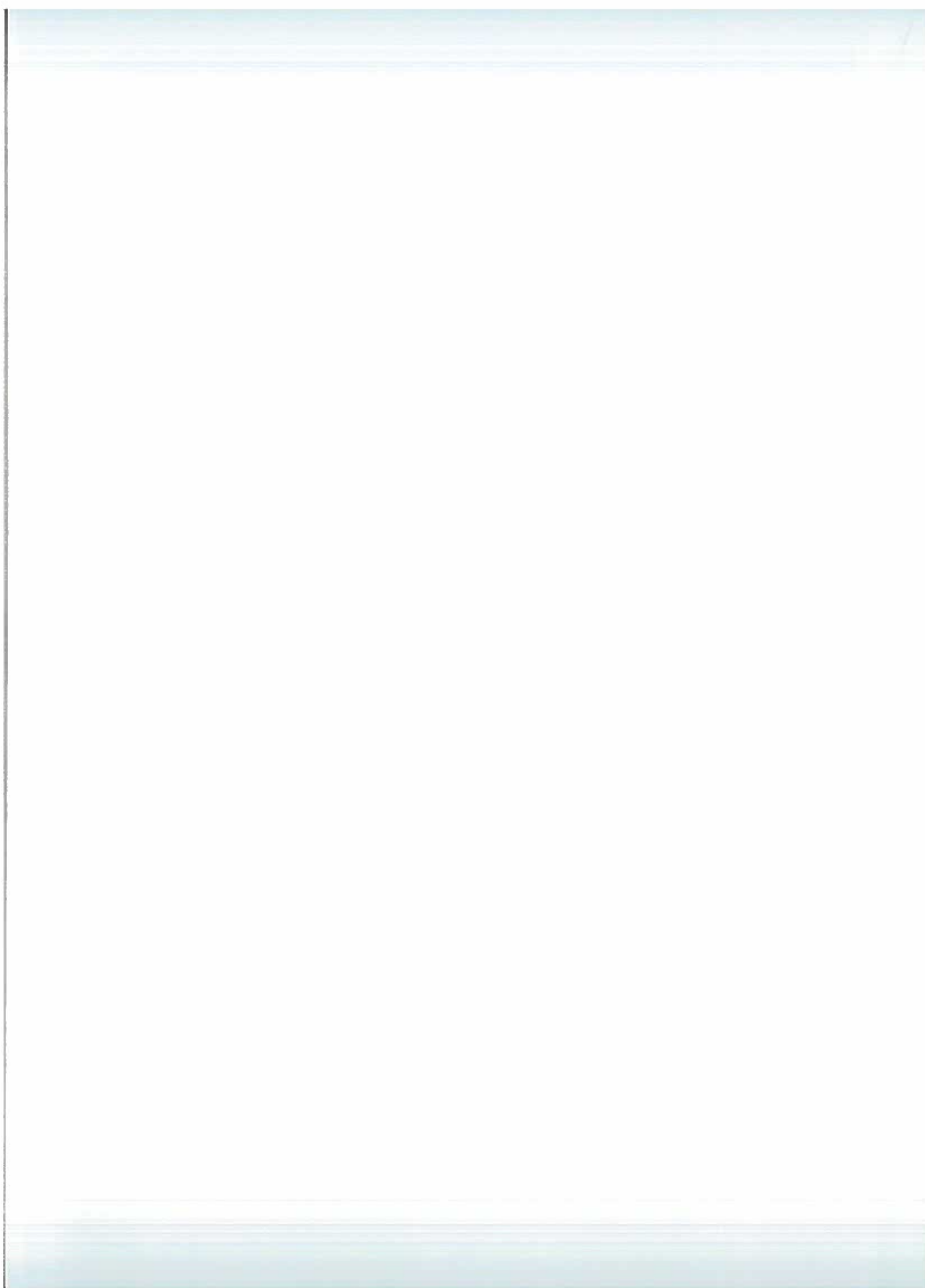
द्वात्रिंशोऽध्यायः
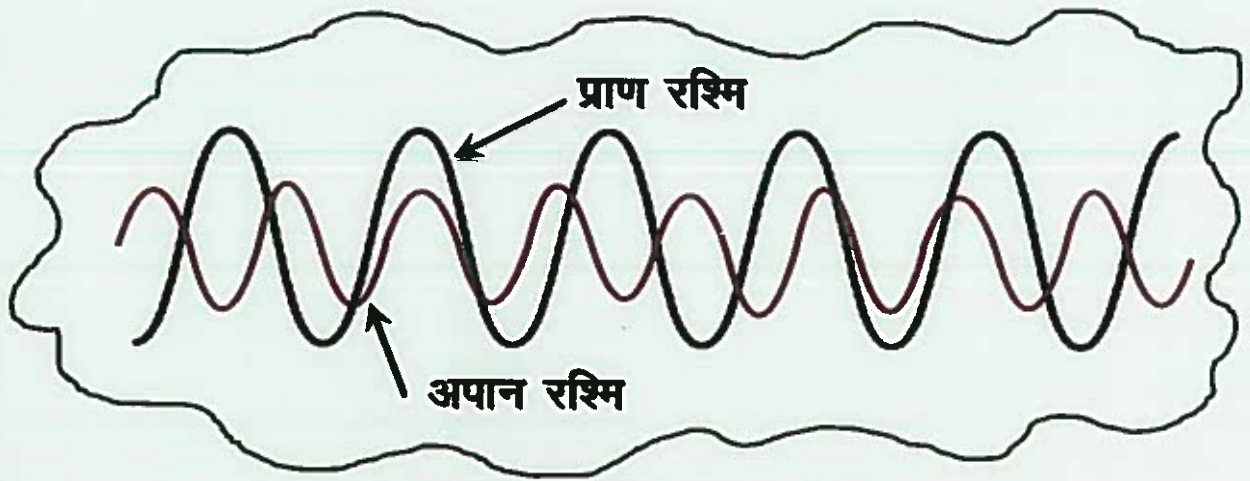
सूक्ष्मतम विद्युत्

॥ ओ३म् ॥
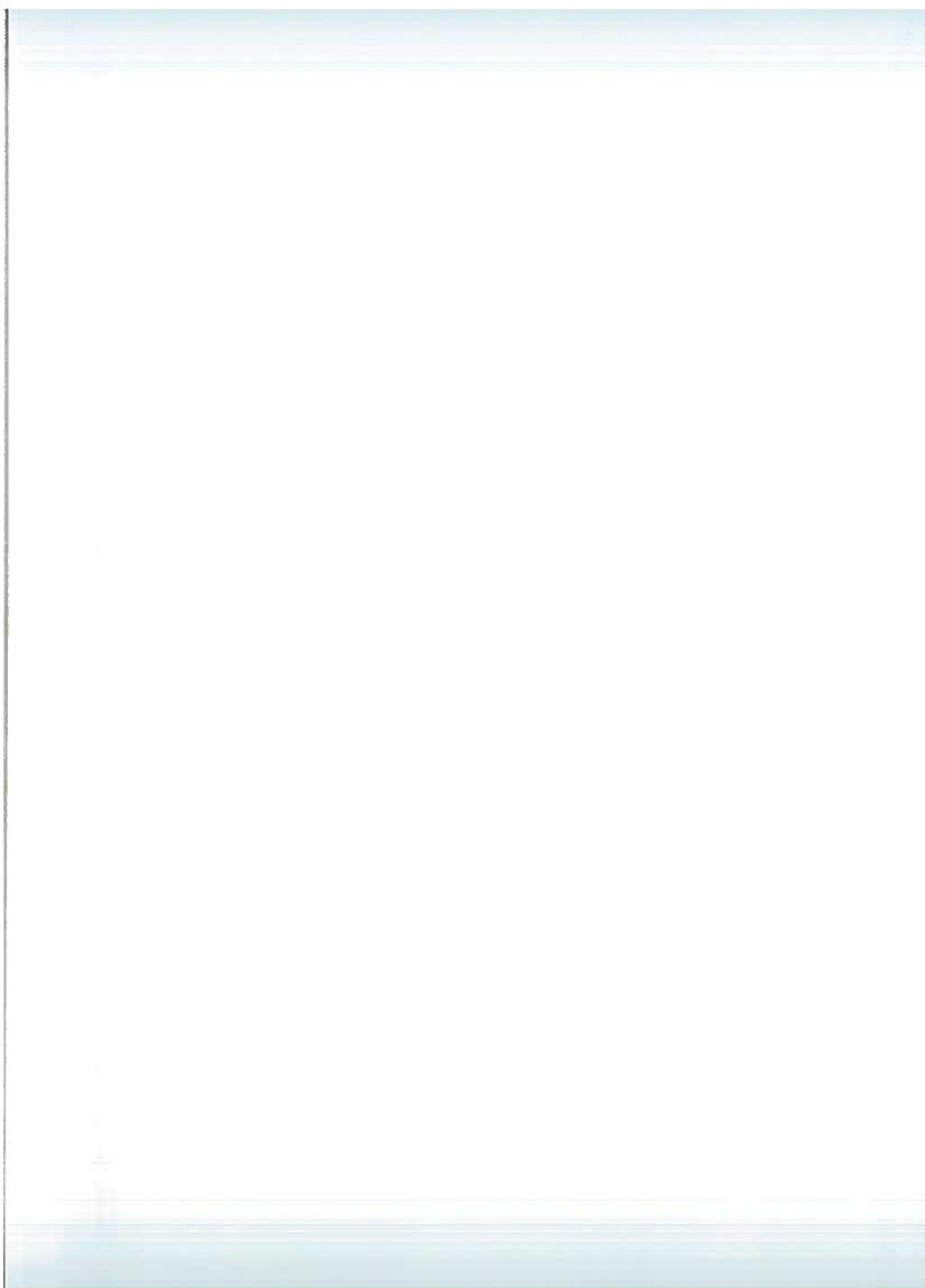
ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥

अनुक्रमणिका

३२.१ तारों की निर्माणप्रक्रिया की विभिन्न प्रकार की ३८ प्रकार विकृतियां और उनका निवारण। 1995

३२.२ पूर्वोक्त विषय। 1999

३२.३ पूर्वोक्त विषय। 2001

३२.४ पूर्वोक्त विषय। 2004

३२.५ पूर्वोक्त विषय। 2011

३२.६ पूर्वोक्त विषय। 2016

३२.७ पूर्वोक्त विषय (प्रथम खण्ड से इस खण्ड तक कुल ३८ प्रकार की विकृतियां व उनका निवारण)। 2020

३२.८ तारों की निर्माणप्रक्रिया की ८ प्रकार की विकृतियां और उनका निवारण। डार्क मैटर और डार्क एनर्जी की उत्पत्ति। 2024

३२.९ डार्क मैटर एवं डार्क एनर्जी की उत्पत्ति। इन दोनों में सूक्ष्म प्रकाश की विद्यमानता 2034

३२.१० दर्शपूर्णमास, अमावस्या। प्राण एवं छन्द रश्मियों से कण और विकिरणों की उत्पत्ति। विभिन्न क्वाण्टाज् के उत्सर्जन और अवशोषण का विज्ञान। प्रकाश के रंगों की उत्पत्ति का विज्ञान। वि.चु. तरंगों की गति में प्राण रश्मियों की उपयोगिता। 2036

३२.११ वि.चु. तरंगों के उत्सर्जन और अवशोषण का विज्ञान। तारों के निर्माण की प्रक्रिया की एक सम्भावित विकृति और उसका निवारण। 2039

ज्ञातव्य- आदित्य लोकों के निर्माण की पूर्वोक्त प्रक्रियाओं के चलते इस ब्रह्माण्ड में अनेकत्र अनेक प्रकार की विकृतियां भी उत्पन्न होती रहती हैं वा हो सकती हैं और उन विकृतियों का निराकरण भी निरन्तर होता रहता है। इस अध्याय में ऐसी ही विकृतियों और उनके निराकरण का वर्णन किया गया है।

अथ ३२.१ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. तदाहुर्य आहिताग्निरुपवसथे म्रियेत कथमस्य यज्ञः स्यादिति, नैनं याजयेदित्याहुरनभिप्राप्तो हि यज्ञं भवतीति।।
तदाहुर्य आहिताग्निरधिश्रितेऽग्निहोत्रे सान्नाय्ये वा हविःषु वा म्रियेत, का तत्र प्रायश्चित्तिरित्यत्रैवैनान्यनुपर्यादध्याद् यथा सर्वाणि संदह्येरन्, सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।
तदाहुर्य आहिताग्निरासन्नेषु हविःषु म्रियेत, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; याभ्य एव तानि देवताभ्यो हवींषि गृहीतानि भवन्ति, ताभ्यः स्वाहेत्येवैनान्याहवनीये सर्वहुन्ति जुहुयात्; सा तत्र प्रायश्चितिः।।
तदाहुर्य आहिताग्निः प्रवसन् म्रियेत, कथमस्याग्निहोत्रं स्यादित्यभिवान्यवत्सायाः पयसा जुहुयादन्यदिवैतत्पयो यदभिवान्यवत्साया अन्यदिवैतदग्निहोत्रं यत्प्रेतस्य।।
अपि वा यत एव कुतश्च पयसा जुहुयुः।।
अथाप्याहुरेवमेवैनानजस्रानजुह्वत इन्धीरन्ना शरीराणामाहर्तोरिति।।
यदि शरीराणि न विद्येरन् पर्णशरः षष्टिस्त्रीणि च शतान्याहृत्य तेषांपुरुषरूपकमिव कृत्वा तस्मिंस्तामावृतं कुर्युरथैनाञ्छरीरैराहृतैः संस्पर्श्योद्वासयेयुः।।
अध्यर्धशतं काये, सक्थिनी द्विपञ्चाशे च विंशे, चोरू द्विपञ्चविंशे, शेषं तु शिरस्युपरि दध्यात्।।
सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।१।।

व्याख्यानम्– इसी क्रम में प्रथम विकृति का वर्णन करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि 'उपवसथ' में आहिताग्नि के मरण को प्राप्त होने पर सर्गयज्ञ का क्या होता है, यह प्रश्न उपस्थित किया गया है? आचार्य सायण ने 'उपवसथ' का अर्थ 'सुत्यादिनात् पूर्वदिनम्' किया है। इसका तात्पर्य हमारी दृष्टि में यह है कि उपवसथ वह अवस्था है, जो आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग में परमाणुओं के संलयन की प्रक्रिया प्रारम्भ होने से पूर्व विद्यमान होती है। उस समय विद्यमान अग्नि को आहिताग्नि कहते हैं। उपवसथ के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है–

"त एतद्धविः प्रविशन्ति (विश्वे देवा)। तऽ एतासु वसतीवरीषूपवसन्ति स उपवसथः" (श.३.६.२.७)

वसतीवरी के विषय में महर्षि तित्तिर का कथन है–

"यज्ञो वै वसतीवरीः" (तै.सं.६.४.२.१)
"पशवो वै वसतीवरीः" (तै.सं.६.४.२.२)

इसका तात्पर्य यह है कि विभिन्न मरुद् वा छन्दादि रश्मियां जहाँ परस्पर विशेषरूप से संगत होती हैं और जहाँ सभी प्रकार के देव परमाणु हविरूप में व्याप्त रहते हैं, उस स्थान को उपवसथ कहा जाता है। यद्यपि सम्पूर्ण आदित्य लोक ही ऐसी क्रियाओं से युक्त होता है, पुनरपि उनके केन्द्रीय भागों में इस प्रकार की क्रियाएं अपेक्षाकृत अधिक होती हैं। इस कारण उसी भाग को यहाँ उपवसथ कहा गया है। आहिताग्नि के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है–

"देवान्वाऽएष उपावर्त्तते य आहिताग्निर्भवति" (श.२.४.२.११)

इससे संकेत मिलता है कि आहिताग्नि ऐसा अग्नितत्त्व है, जिसके परमाणु लौट-२ कर देव

परमाणुओं का चक्कर लगाने का प्रयास करते रहते हैं। यहाँ प्रश्न यह किया गया है कि यदि यह अग्नि किसी प्रकार से क्षीण हो जाए, तो आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में प्रारम्भ होने वाले यज्ञ अर्थात् संलयन क्रिया का क्या होगा? इसका उत्तर देते हुए कहा है कि ऐसी स्थिति में वह यज्ञक्रिया बन्द हो जाएगी क्योंकि वह तीव्र आहिताग्नि ही उस संलयन प्रक्रिया के लिए आवश्यक बल प्रदान करता है।।

{सानाय्यः = सम्+नी+ण्यत् = एकत्र करने योग्य, सोमः खलु वै सांनाय्यम् (तै.ब्रा.३.२.३.११), सोमो वै देवानां परोक्षं सांनाय्यम् (काठ.३१.२)} अब यहाँ दूसरा प्रश्न उपस्थित करते हुए कहा गया है कि आदित्य लोकों के केन्द्र में अग्निहोत्र की क्रिया प्रारम्भ हो चुकी हो अर्थात् पूर्वोक्त संलयन की क्रिया प्रारम्भ हो चुकी हो, उस समय जो परमाणु आदि पदार्थों वा सोम रश्मियों का संग्रहण होने लगता है, ठीक उसी समय पूर्वोक्त आहिताग्नि क्षीण हो जाए, तब वह पुनः कैसे प्रारम्भ होती है? {प्रायश्चित्ति = यज्ञो हि यज्ञस्य प्रायश्चित्तिः (मै.१.८.३)} यहाँ इस वचन का भी यही आशय है। इसके उत्तर में महर्षि लिखते हैं कि इस प्रकार की स्थिति बनने पर जब विभिन्न हविरूप रश्मियां भी बलहीन हो जाती हैं, तब आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागरूपी यजमान को बाहरी सोम आदि रश्मियां एवं परमाणु आदि पदार्थ निरन्तर घेरने लगते हैं अर्थात् केन्द्रीय भाग की ओर तीव्र वेग के साथ जमा होने लगते हैं, जिससे केन्द्रीय भाग में विद्यमान पदार्थ के अन्दर अग्नि पुनः तीव्र होने लगता है, जिससे ज्वलन और यजन की प्रक्रियाएं पुनः प्रारम्भ हो जाती हैं।।

यहाँ तृतीय प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि जब विभिन्न छन्द रश्मियां आदित्य लोकों के विभिन्न भागों से हविरूप परमाणु आदि पदार्थों को केन्द्रीय भाग की ओर लाकर घनीभूत कर देती हैं, उस समय वहाँ उत्पन्न पूर्वोक्त आहिताग्नि तत्त्व क्षीण हो जाए, तब वहाँ संलयन रूपी यज्ञ प्रक्रिया कैसे होती है? इसके उत्तर में महर्षि कहते हैं कि ऐसी स्थिति में परमाणुओं को संगृहीत करने वाली छन्द रश्मियां जिन-२ देवताओं वाली होती हैं, उन-२ देवतावाची शब्दों के साथ 'स्वाहा' पद संयुक्त करके सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग में व्याप्त कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई ऋचा अग्निदेवताक है, तो उस ऋचारूप छन्दरश्मि के अतिरिक्त "अग्नये स्वाहा" नामक लघु छन्दरश्मि भी उत्पन्न हो जाती है। उसी प्रकार "इन्द्राय स्वाहा", "सवित्रे स्वाहा", "बृहस्पतये स्वाहा" इत्यादि अनेकों लघु छन्दरश्मियां प्रकट होकर आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों में अग्नि, इन्द्र, सूत्रात्मा वायु, विद्युत् आदि को समृद्ध और सक्रिय करने लगती हैं। इस कारण यहाँ पुनः संलयन-यज्ञ प्रारम्भ हो जाता है। यहाँ हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रक्रिया तारों के अन्दर अनवरत चलने वाली क्रिया है। तारों के केन्द्रीय भाग में उत्पन्न अग्नि तत्त्व जब बाहर की ओर उत्सर्जित होने लगता है, तब केन्द्रीय भाग में आवश्यक मात्रा में अग्नि तत्त्व बनाये रखने के लिए भी यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है, जिसके कारण उस भाग में अग्नि तत्त्व की प्रचुरता निरन्तर बनी रहती है। इस प्रकरण से यह स्पष्ट होता है कि **जब कोई छन्द रश्मि अल्प सामर्थ्य वाली हो जाती है, तब उसके देवतावाची पद के साथ 'स्वाहा' पद से युक्त लघु छन्दरश्मि प्रकट होकर उस मूल छन्द रश्मि की शक्ति को बढ़ा देती है।।**

{अभिवान्यवत्सा = 'वा गतिगन्धनयोः - ' इति धातोरभिपूर्वस्य 'अभिवा' इति रूपम्। अन्यश्चासौ वत्सश्च 'अन्यवत्सः'। अभिप्राप्तोऽन्यवत्सो यस्याः गोः, सेयम् 'अभिवान्यवत्सा' इति आचार्य सायणः। अन्यः = अन्यो नानेयः (नि.१.६)। पयः = पयः ज्वलतो नाम (निघं.१.१७), पयः अन्ननाम (निघं.२.७), पयो हि रेतः (श.८.५.१.५६)} अब चतुर्थ प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग में विद्यमान आहिताग्नि उस भाग में अच्छी प्रकार व्याप्त होकर भी अथवा व्याप्त होते हुए किसी कारणवश क्षीण हो जाए, तब पूर्वोक्त केन्द्रीय भाग की क्रियाएं कैसे होती है? इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि {वत्सः = स्वव्याप्त्या सर्वाऽऽच्छादकः (म.द.ऋ.भा.१.९५.४), अयमेव वत्सो योऽयं (वायुः) पवते (श.१२.४.१.११), अग्निर्ह वै ब्रह्मणो वत्सः (जै.उ.२.५.१.१)} उस समय उन लोकों के अन्दर अनियंत्रित तथा सबको अपनी व्याप्ति से आच्छादित करने वाले वायु और अग्नि तत्त्व की रश्मियों से उत्पन्न ज्वलनशील एवं तेजस्वी संयोज्य परमाणुओं के द्वारा उन लोकों के केन्द्रीय भाग में भी तीव्र ऊष्मा की उत्पत्ति होने लगती है, जिससे वहाँ नाना प्रकार की संयोगादि प्रक्रियाएं पुनः होने लगती हैं। यह नवीन

उत्पन्न केन्द्रीय अग्नि भी पूर्वोक्त आहिताग्नि, जो क्षीण हो चुका था, के समान ही होता है, जिससे केन्द्रीय क्रियाएं पुनः यथावत् होने लगती हैं। यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ आदित्य लोकों में केन्द्रीय भागों की क्रियाएं सामान्य आदित्य लोकों के केन्द्रों से भिन्न होती हैं, कदाचित् ऐसी ही लोकों की ओर यहाँ संकेत किया गया है।।

यहाँ उपर्युक्त समाधान का विकल्प प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि कुछ आदित्य लोकों में उपर्युक्त विकृति उत्पन्न होने पर अन्य किसी कारण से भी तीव्र तेज और ताप से युक्त संयोज्य रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थ प्राप्त होकर उस भाग को तीव्र तेज और ताप से युक्त कर सकते हैं, जिससे सम्पूर्ण लोक ऊष्णता की दृष्टि से समृद्ध हो जाता है। इन लोकों का स्वरूप भी उपरिवर्णित आदित्य लोकों के समान ही होता है।।

इसके अनन्तर कहते हैं कि उपर्युक्त दोनों ही स्थितियों में उत्पन्न अग्नि उस आदित्य लोक में निरन्तर सर्वत्र व्याप्त होने लगता है। उसकी व्याप्ति आदित्य लोक के सभी भागों में और निरन्तर होती है। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है, जब तक कि उस लोक के सम्पूर्ण भाग को व्याप्त नहीं कर लेती। इसका तात्पर्य यह है कि ऐसा सम्भव नहीं होता है कि किसी भी आदित्य लोक के किसी भाग विशेष में ऊष्मा विद्यमान ही न हो।।

{पर्णशरः = पर्ण+शरः (पर्णः = गायत्री वै पर्णः - तै.ब्रा.३.२.१.१; सोमो वै पर्णः - श.६.५.१.१), (शरः = ऊर्वै शराः - तै.सं.६.१.३.३; वज्रो वै शरः - काठ.२३.४; क.३६.१; श.३.१.३.१३)। शरीरम् = शरीरे आदित्ये (नि.१२.३७)} यहाँ प्रश्न यह है कि यदि पूर्वोक्त प्रक्रिया के चलते ऊष्मा का वितरण सम्पूर्ण आदित्य लोक में न हो पाए अथवा आदित्य लोक का आकार ही अस्त-व्यस्त हो जाए वा बिखर जाए, तो पुनः उस बिखरे हुए पदार्थ से आदित्य लोक का निर्माण कैसे होता है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा है कि उस समय ३६० प्रकार के पर्णशर अर्थात् गायत्री छन्द रश्मियों के समूहों द्वारा निर्मित ३६० प्रकार की वज्ररूप रश्मियां उस बिखरे हुए किंवा विरलीभूत परमाणु समुदाय को पुरुषरूप अर्थात् पिण्डाकार एवं आग्नेय बनाने लगती हैं। जब यह आकृतिरूप में पुनः प्रकट हो जाता है, तब गायत्री छन्दरश्मियों से उत्पन्न वज्ररूप रश्मियां उस पदार्थ पर बार-२ प्रहार करती हुई स्पर्श करती हैं। {उद्+वस्+णिच् = बाहर निकालना} जिसके कारण यह लोक पुनः अपेक्षित ऊष्णता को भी प्राप्त कर लेता है। उसके पश्चात् आक्रामक वज्ररूप रश्मियों का आक्रमण बन्द हो जाता है, मानो वे रश्मियां ही उस लोक से बाहर चली जाती हैं।।

उपर्युक्त ३६० प्रकार की वज्र रश्मियां उस निर्माणाधीन लोक में कहाँ, कैसे प्रविष्ट होती हैं? इसकी चर्चा करते हुए कहते हैं कि १५० वज्र रश्मियां आदित्य लोक मुख्य और विशाल भाग में प्रविष्ट होकर आक्रमण करती हैं। ७०-७० वज्र रश्मियां उस लोक के सक्थिरूप दोनों भागों में क्रियाशील रहती हैं। यहाँ आदित्य लोक के सक्थिरूप भाग को पूर्व अध्याय के वर्णनानुसार समझा जा सकता है। २५-२५ वज्ररश्मियां आदित्य लोक के पूर्वोक्त दोनों ऊरू भागों तथा शेष २० वज्ररश्मियां शिरोभाग अर्थात् आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में प्रविष्ट होकर अपने पूर्वोक्त कार्यों को सम्पन्न करती हैं। इस प्रकार बिखरा हुआ लोक उस पदार्थ के पुनः संगृहीत और सघन होने से पुनः अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेता है और उसमें सभी प्रकार की संलयन आदि क्रियाएं प्रारम्भ हो जाती हैं।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न तारों के निर्माण में कई बार अनेक प्रकार की विकृतियां उत्पन्न हो जाती हैं, जैसा कि पूर्व खण्ड में भी संकेत किया गया है। यहाँ भी ऐसी ही कुछ विकृतियों का उल्लेख किया गया है। जब तारों के केन्द्रीय भाग में किसी भी कारण से ऊष्मा का क्षय हो जाए, तब तारों में होने वाली संलयन क्रिया बन्द हो जाती है। उसके पश्चात् प्रबल गुरुत्वाकर्षण बल के कारण वह बुझा हुआ सा तारा सिकुड़ने लगता है, जिसके कारण केन्द्रीय भाग में उच्च ताप और दाब की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और नाभिकीय संलयन की क्रिया पुनः प्रारम्भ हो जाती है। तारों का केन्द्रीय भाग निरन्तर विद्युत् चुम्बकीय तरंगों का उत्सर्जन करता रहता है, उस समय तारों के केन्द्रीय भाग में ताप और दाब को

संरक्षित रखने के लिए लघु छन्द रश्मियां प्रकट होती रहती हैं। कभी-२ नाभिकीय ईन्धन समाप्त होने पर तथा तारे का आकुंचन होने पर भी नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया प्रारम्भ नहीं होती, तब भी उच्च ताप और दाब के कारण केन्द्रीय भाग तप्त बने रहते हैं। पृथिव्यादि ग्रहों के भी केन्द्रीय भाग बिना किसी नाभिकीय संलयन के भी विशाल आग के गोले के रूप में विद्यमान होते हैं। कुछ तारे बिना नाभिकीय संलयन के भी अपना अस्तित्त्व (तारारूप) बनाये रखते हैं परन्तु उनका ताप अन्य तारों की अपेक्षा न्यून होता है। कभी-२ किसी कारण से तारे का पदार्थ बिखर भी जाता है अथवा अस्त-व्यस्त होने के कगार पर पहुंच जाता है, उस समय गायत्री छन्द रश्मियों से उत्पन्न तीक्ष्ण किरणें उस बिखरे वा अस्त-व्यस्त पदार्थ पर बाहर से प्रहार करके किंवा अन्दर ही उत्पन्न होकर उसे पुनः घनीभूत करती हैं। इसके कारण शनैः-२ उस पदार्थ से एक तारे का पुनरुदय हो जाता है। **इन सभी क्रियाओं में ईश्वर तत्त्व की मूल भूमिका अनिवार्य होती है।।**

इति ३२.१ समाप्तः

꧁ अथ ३२.२ प्रारभ्यते ꧂

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. तदाहुर्यस्याग्निहोत्र्युपावसृष्टा, दुह्यमानोपविशेत्, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति तामभिमन्त्रयेत।।
यस्माद्भीषा निषीदसि, ततो नो अभयं कृधि। पशून्नः सर्वान् गोपाय नमो रुद्राय मीहळुष इति तामुत्थापयेदुदस्थाद्देव्यदितिरायुर्यज्ञपतावधात्। इन्द्राय कृण्वती भागं, मित्राय वरुणाय चेत्यथास्या उदपात्रमूधसि च मुखे चोपगृह्णीयादथैनां ब्राह्मणाय दद्यात्, सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।
तदाहुर्यस्याग्निहोत्र्युपावसृष्टा दुह्यमाना वाश्येत, का तत्र प्रायश्चित्तिरित्यशनायां ह वा एषा यजमानस्य प्रतिख्याय वाश्यते, तामन्नमप्यादयेच्छान्त्यै; शान्तिर्वा अन्नं, सूयवसाद्भगवती हि भूयादिति; सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।
तदाहुर्यस्याग्निहोत्र्युपावसृष्टा, दुह्यमाना स्पन्देत, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; सा यत्तत्र स्कन्दयेत्तदभिमृश्य जपेद्यदद्य दुग्धं पृथिवीमसृप्त यदोषधीरत्यसृपद्यदापः। पयो गृहेषु पयो अघ्न्यायां, पयो वत्सेषु पयो अस्तु तन्मयीति; तत्र यत्परिशिष्टं स्यात्, तेन जुहुयाद्, यद्यलं होमाय स्याद्, यद्यु वै सर्वं सिक्तं स्यादथान्यामाहूय तां दुग्ध्वा तेन जुहुयादा त्वेव श्रद्धायै होतव्यं; सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।२।।

व्याख्यानम्- अब **पांचवां प्रश्न** उपस्थित करते हुए कहते हैं कि आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग में अनेक संयोज्य छन्दरश्मियां पूर्णतः व्याप्त होने के पश्चात् भी किसी कारण विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों का संलयन करने में अक्षम हो जाती हैं किंवा यह प्रक्रिया अकस्मात् विराम को प्राप्त हो जाती है, उस समय उन संयोज्य छन्दरश्मियों को किस प्रकार उत्तेजित वा प्रेरित करके पुनः संलयन आदि प्रक्रिया को प्रारम्भ किया जाता है? इसका उत्तर देते हुए ऋषि लिखते हैं कि ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर कुछ छन्दरश्मियों की उत्पत्ति होती है, उन छन्द रश्मियों का वर्णन अगली कण्डिका में किया गया है।।

विज्ञ पाठक इस कण्डिका का व्याख्यान ५.२७.१ की प्रथम पांच कण्डिकाओं के समान इस प्रकरण के अनुकूल स्वयं समझ सकते हैं। यही एक कण्डिका वहाँ पांच कण्डिकाओं में विभक्त होकर वर्णित है।।

विज्ञ पाठक (छठा प्रश्न) इस कण्डिका का व्याख्यान ५.२७.२ की छठी कण्डिका के व्याख्यान के समान इस प्रकरण के अनुकूल स्वयं समझ सकते हैं।।

विज्ञ पाठक (सातवां प्रश्न) इस कण्डिका का व्याख्यान ५.२७.२ की ७-१० कण्डिकाओं के समान इस प्रकरण के अनुकूल स्वयं समझ सकते हैं। वैज्ञानिक भाष्यसार में हम इस प्रकरण के अनुकूल सार प्रस्तुत कर रहे हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्रीय भाग में संलयनीय पदार्थ के पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहने एवं इस संलयन क्रिया में आवश्यक विभिन्न छन्दादि रश्मियों के प्रचुर मात्रा में व्याप्त होने के पश्चात् भी वे छन्दरश्मियां कभी-२ हीनबल हो जाती हैं। उस समय क्रमशः २ अनुष्टुप्, १ त्रिष्टुप् और १ पंक्ति, कुल

४ छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इनमें से अनुष्टुप् छन्दरश्मियां अन्य छन्दरश्मियों को अनुकूलता से धारण करके उन्हें अधिक बलवान् बनाती हैं। उसके पश्चात् त्रिष्टुप् छन्दरश्मियां इन बलों को तीक्ष्ण बनाती हुई ऊष्मा की मात्रा को भी विशेष रूप से बढ़ाती हैं। उसके पश्चात् पंक्ति छन्दरश्मि इनको तारों के सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग में फैलाकर नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया को पुनः प्रारम्भ करती हैं। इस समय विद्युत् चुम्बकीय ऊर्जा में वृद्धि होती है। इस कारण विभिन्न कण अति विक्षुब्ध होते हुए एक-दूसरे के साथ संलयित होने लगते हैं। पूर्व में छन्द रश्मियों के दुर्बल होने पर डार्क एनर्जी का जो प्रभाव बढ़ जाता है, वह अब नष्ट होने लगता है। इस कार्य में त्रिष्टुप् छन्दरश्मि की विशेष भूमिका होती है।।

इति ३२.२ समाप्तः

꧁ अथ ३२.३ प्रारभ्यते ꧂

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. तदाहुर्यस्य सायं दुग्धं सांनाय्यं दुष्येद्वाऽपहरेद्वा, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; प्रातर्दुग्धं द्वैधं कृत्वा तस्यान्यतरां भक्तिमातच्य तेन यजेत, सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।
तदाहुर्यस्य प्रातर्दुग्धं सांनाय्यं दुष्येद्वाऽपहरेद्वा, का तत्र प्रायश्चित्तिरित्यैन्द्रं वा माहेन्द्रं वा पुरोळाशं तस्य स्थाने निरुप्य तेन यजेत, सा तत्र प्रायश्चितिः।।
तदाहुर्यस्य सर्वमेव सांनाय्यं दुष्येद्वाऽपहरेद्वा; का तत्र प्रायश्चित्तिरित्यैन्द्रं वा माहेन्द्रं वेति समानं, सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।
तदाहुर्यस्य सर्वाण्येव हवींषि दुष्येयुर्वाऽपहरेयुर्वा, का तत्र प्रायश्चित्तिरित्याज्यस्यैनानि यथादेवतं परिकल्प्य तयाऽऽज्यहविषेष्ट्या यजेतातोऽन्या-मिष्टिमनुल्बणां तन्वीत यज्ञो यज्ञस्य प्रायश्चित्तिः।।३।।

व्याख्यानम्- अब यहाँ आठवां प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि सानाय्यरूपी सोमरश्मियां एवं विभिन्न संलयनीय परमाणु 'सायम्' अर्थात् आदित्य लोकों के अन्तिम भाग अर्थात् केन्द्रीय भाग में परिपूर्ण होकर भी यदि किसी प्रकार विकृति को प्राप्त हो जाएं अथवा केन्द्रीय भाग की ओर न पहुंचकर अन्यत्र चले जाएं, तब आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग का निर्माण कैसे होता है? 'सायम्' शब्द के विषय में ग्रन्थकार ने अन्यत्र कहा है-

"समागादितीः३ तत् सायमभवत्।" (ऐ.आ.२.१.५)

इससे भी यही संकेत मिलता है कि जिस स्थान पर विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थ एक-दूसरे से अच्छी प्रकार मिश्रित होते हैं, उसे 'सायम्' कहते हैं। इस प्रकार हमने यह स्थान आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग का ही प्रतीक माना है।

यहाँ यह एक प्रश्न उठ सकता है कि इस विकृति के लिए उत्तरदायी कौन है? हमारे मत में यहाँ 'सायम्' शब्द से जगती छन्द रश्मियों के उत्पन्न होने का संकेत भी मिलता है। वे जगती छन्द रश्मियां ही उस पदार्थ को फैलाते हुए क्षीण कर सकती हैं, यही इस पदार्थ की विकृति कहलाती है। इस विकृति को कैसे दूर किया जाता है? इसका उत्तर देते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि उसी समय अति तीव्र गति से 'प्रातः' अर्थात् गायत्री छन्दरश्मियां उत्पन्न होती हैं। ये तीक्ष्ण गायत्री छन्दरश्मियां बाहर से आते हुए सोम आदि पदार्थ को दो भागों में विभक्त कर देती हैं, जिसमें से एक भाग आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग की ओर आता है, तो दूसरा भाग अन्यत्र बह जाता है। फिर केन्द्रीय भाग तीव्र तेज और बलों से युक्त होकर वांछित क्रियाएं करने लगता है। इस प्रकरण से यह संकेत मिलता है कि आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों में सोम रश्मियां वा अन्य परमाणु आदि पदार्थ जब उचित परिमाण में एकत्र होते हैं, तभी संलयन आदि वांछित क्रियाएं सम्भव हो पाती हैं। इससे न्यून वा अधिक मात्रा में पदार्थ के एकत्र होने पर ये क्रियाएं बाधित वा बन्द हो जाती हैं, यहाँ उसी स्थिति की चर्चा की गयी है। उस स्थिति में जगती छन्दरश्मियां भी अधिक मात्रा में उत्पन्न होकर इन क्रियाओं को और बाधित कर देती हैं। इसके पश्चात् गायत्री छन्दरश्मियां इस अपक्रिया को नियंत्रित करने के लिए सोम आदि पदार्थ को दो भागों में बांटकर उचित परिमाण को केन्द्रीय भाग में प्रदीप्त करती हैं, जिससे स्थिति सामान्य हो जाती है।।

अब नवम प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि उपर्युक्त प्रक्रिया के उपरान्त भी यदि केन्द्रीय

भाग की ओर आता हुआ पदार्थ अपक्रिया से मुक्त न हो सके अथवा केन्द्रीय भाग की ओर न आकर दूसरी ओर ही प्रवाहित होता रहे, तब केन्द्रीय भाग की संलयन आदि क्रियाएं कैसे हो पाती हैं? इसका उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि ऐसी स्थिति में इन्द्र अथवा महेन्द्र देवता वाली {पुरोडाशः = य एभ्यो यज्ञं प्रारोचयत्तस्मात् पुरोदाशः, पुरोदाशो ह वै नामैतद् यत् पुरोडाश इति (श.१.६.२.५), आग्नेयः पुरोडाशो भवति (श.२.४.४.१२), पशवो वै पुरोडाशः (तै.सं.७.१.६.१) यजमानो वै पुरोडाशः (तै.सं.१.५.२.३)} विभिन्न छन्दरश्मियां प्रकट होकर उस केन्द्रीय भाग में विद्यमान रश्मियों को परस्पर संगत करती हुई अग्नितत्त्व में वृद्धि करती हैं, जिसके कारण उस क्षेत्र में वांछनीय स्वर्ग आदि क्रियाएं होने लगती हैं। पुरोडाश उन छन्द रश्मियों का नाम है, जो विभिन्न पदार्थों और उनकी संयोजन आदि क्रियाओं को विशेष तेजयुक्त करती हैं, उन्हीं की उत्पत्ति यहाँ बतलायी गयी है।।

अब **दसवां प्रश्न** उपस्थिति करते हुए कहते हैं कि यदि आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग का सम्पूर्ण सोम आदि उपर्युक्त पदार्थ विकृत हो जाए अथवा अन्यत्र प्रवाहित हो जाए, तब केन्द्रीय भाग के स्वरूप का निर्माण कैसे होता है? यहाँ सम्पूर्ण पदार्थ से अभिप्राय यह है कि गायत्री छन्द रश्मियां भी अपना उपर्युक्त प्रभाव न दर्शा सकें किंवा उनकी दिशा परिवर्तित हो जाए, तब केन्द्रीय भाग का समुचित स्वरूप किस प्रकार निर्मित होगा? इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि इस स्थिति में भी उपरिकण्डिका में वर्णित पुरोडाश संज्ञक छन्दरश्मियां उत्पन्न होकर उपर्युक्तानुसार प्रभाव उत्पन्न करती हैं।।

अब यहाँ **ग्यारहवां प्रश्न** उपस्थित करते हुए कहते हैं कि पूर्वोक्त पुरोडाश आदि विकृति निवारक सभी पदार्थ स्वयं विकार ग्रस्त वा शक्तिहीन हो जाएं अथवा किसी अन्य विरोधी तीक्ष्ण शक्ति के द्वारा उनकी दिशा परिवर्तित हो जाए, तब केन्द्रीय भाग का निर्माण कैसे होता है? {आज्यम् = वज्रो वा आज्यम् (तै.सं.५.२.७.४; कौ.ब्रा.१३.७; श.३.३.१.३), यजमानो वा आज्यम् (तै.ब्रा.३.३.४.४), छन्दांसि वा आज्यम् (तै.ब्रा.३.३.५.३)} इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि इस प्रकार की स्थिति बनने पर पूर्वोक्त पुरोडाश, गायत्री आदि वज्ररूप रश्मियां अध्याय १० में वर्णित विभिन्न आज्यरूप सूक्ष्म छन्द रश्मियों के साथ संगत होकर अपने दैवीय गुण को प्रखर बनाती हैं। ध्यातव्य है कि यहाँ ये आज्यरूप सूक्ष्म छन्दरश्मियां ऐसी ही विषम परिस्थिति में उत्पन्न होती हैं। ये आज्य रश्मियां स्वयं वज्ररूप एवं संगमनीय होकर उन पुरोडाश आदि छन्दरश्मियों के दैवीय प्रभाव को सब ओर से समर्थ और समृद्ध करती हैं। {उल्बण = तीव्र, जमा हुआ - आप्टेकोष} उसके पश्चात् सभी छन्दादि रश्मियां अति सघनता और अति तीव्रता को त्यागकर समुचित बलों के साथ उस आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में फैलती जाती हैं। इस प्रकार फैलकर पूर्व में दुर्बल हो चुकी पुरोडाश आदि सभी रश्मियों को समुचित बल और तेज प्रदान करके केन्द्रीय भागों की सृजन क्रियाओं को पुनः प्रारम्भ करती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्रीय भाग में होने वाली नाभिकीय संलयन की क्रियाओं की विभिन्न बाधाओं का यहाँ पुनः वर्णन किया गया है। तारों के निर्माणाधीन केन्द्रीय भाग की ओर जब संलयनीय कणों का प्रवाह होता है, तब कभी-२ डार्क एनर्जी आदि के प्रहार से संलयनीय कणों का कुछ प्रवाह किसी अन्य दिशा में होने लगता है, तो कभी-२ संलयनीय पदार्थ की मात्रा अपेक्षा से बहुत अधिक हो जाती है। इन दोनों ही परिस्थितियों में नाभिकीय संलयन की क्रिया नहीं हो पाती। उस समय तीक्ष्ण गायत्री छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर इस परिस्थिति को नियंत्रित करके केन्द्रीय भाग में विद्यमान संलयनीय पदार्थ को आवश्यक ऊष्मा व दाब प्रदान करके नाभिकीय संलयन की क्रिया को पुनः प्रारम्भ करते हुए तारे के केन्द्रीय भाग का निर्माण करती हैं। कभी-२ ये गायत्री छन्दरश्मियां भी इस कार्य में सफल नहीं हो पाती हैं, उस समय विद्युत् बलों को समृद्ध करने वाली विभिन्न छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर इस कार्य को करने में समर्थ होती हैं। जब कभी संलयनीय पदार्थ किन्हीं तीक्ष्ण प्रक्षेपक किरणों के प्रभाव से अपनी दिशा सम्पूर्णरूप से बदल लेता है, तब भी ये ही छन्द रश्मियां उन प्रक्षेपक तीक्ष्ण किरणों को नियंत्रित करके तारे के केन्द्रीय भाग के निर्माण में सहयोग करती हैं। सभी रश्मियों के इसमें असफल होने पर सूक्ष्म दैवी छन्द रश्मियां तारे के केन्द्रीय भाग के निर्माण और उसमें आ रही सभी बाधाओं को दूर करने में अपनी भूमिका निभाती हैं।।

꧁ इति ३२.३ समाप्तः ꧂

अथ ३२.४ प्रारभ्यते

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. तदाहुर्यस्याग्निहोत्रमधिश्रितममेध्यमापद्येत, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; सर्वमेवैनत्स्रुच्यभिपर्यासिच्य प्राङुदेत्याऽऽहवनीये हैतां समिधमभ्यादधात्यथोत्तरत आहवनीयस्योष्णं भस्म निरूह्य जुहुयान् मनसा वा प्राजापत्यया वर्चा तद्धुतं चाहुतं च; स यद्येकस्मिन्नुन्नीते यदि द्वयोरेष एव कल्पस्तच्चेद्व्यपनयितुं शक्नुयान्निःषिच्यैतद्दुष्टमदुष्टमभिपर्यासिच्य तस्य यथोन्नीती स्यात् तथा जुहुयात्, सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।

व्याख्यानम्- पुनः बारहवां प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि किसी भी आदित्य लोक के ऊपरी भाग अथवा उसके केन्द्रीय भाग में कुछ अमेध्य (असंगमनीय) पदार्थ प्रविष्ट हो जाएं, तो वे पदार्थ उस आदित्य लोक की केन्द्रीय वा अन्य क्रियाओं को वाधित करेंगें। ये अमेध्य पदार्थ क्या-२ हो सकते हैं? इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"व्यापन्नानि हवींषि केशनखकीटपतङ्गैरन्यैर्वा बीमत्सैः।"

"भिन्नसिक्तानि च।"

"अपोऽभ्यवहरेयुः।" (आश्व.श्री.३.१०.२०-२२)

{केशः = केशा रश्मयः (नि.१२.२५)। नखः = नह्यति बध्नाति रुधिरादिकमिति नखः (उ.को.५.२३)। कीटः = कीट्+अच् (कीट = कीट वर्णे)। पतंगः = पतंगाः अश्वनाम (निघं.१.१४), पतति गच्छतीति पतंगः (उ.को.१.११६)। बीभत्सः = (बध संयमने)} इसका तात्पर्य यह है कि आदित्य लोक वा उनके केन्द्रीय भाग में आने वाली विभिन्न हविरूप रश्मियों वा परमाणु आदि पदार्थों में जिन अमेध्य पदार्थों के गिरने की चर्चा की गयी है, वे इस प्रकार हो सकते हैं-

(१) केश- {क्लिश्यति येन स केशः (उ.को.५.३३) (क्लिश उपतापे, क्लिशू विबाधने)} ये वे रश्मियां हैं, जो अन्य संयोज्य रश्मियों वा परमाणु आदि पदार्थों की संयोज्यता में वाधा उत्पन्न करती हैं। ये किरणें तेजयुक्त होती हुई अपने तीक्ष्ण वलों से संयोज्य पदार्थों के कार्यों को वाधित करती हैं। तेजयुक्त होने के कारण इनको असुर रश्मि नहीं माना जा सकता।

(२) नख- ये रश्मियां प्रवल आकर्षण वलों से युक्त होने के कारण अन्य संयोज्य रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को अपने साथ वांधकर उनके संयोजक गुण को नष्ट करने का प्रयास करती हैं।

(३) कीट- ये रश्मियां भी अन्य संयोज्य पदार्थों को आच्छादित, आकर्षित वा वांध करके उनके संयोजक गुण को धीरे-२ क्षीण करती हैं।

(४) पतंग- ये रश्मियां विशेष वल और गति से युक्त होकर संयोज्य पदार्थों पर आक्रमण करके उनकी संयोग प्रक्रिया को वाधित करती हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य भी ऐसी रश्मियां वा परमाणु आदि पदार्थ हो सकते हैं, जो संयोज्य पदार्थों की संयोजकता को वाधित वा नष्ट करने का प्रयास करते हैं। इनके कारण वाधित अथवा विदीर्ण हुआ संयोज्य पदार्थ इधर-इधर विखरने लगता है, जिससे आदित्य लोक के निर्माण की प्रक्रिया क्षीण होने लगती है। यहाँ प्रश्न यह किया गया है कि ऐसी स्थिति में यह निर्माण प्रक्रिया पुनः कैसे प्रारम्भ होती है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि वह सम्पूर्ण अमेध्य अवांछित पदार्थ 'स्रुक्' अर्थात् उस आदित्य लोक में ही सर्वत्र सूक्ष्मांश होकर व्याप्त हो जाता है, फिर प्रकृष्ट गति से उठता हुआ आहवनीय अर्थात् केन्द्रीय भाग में विद्यमान तीव्र जलते और दहकते पदार्थ में ही समाहित हो जाता है। उसके पश्चात् केन्द्रीय भाग की उत्तर दिशा की ओर, जहाँ ऊष्ण प्रदीपक तेजयुक्त पदार्थ विद्यमान होता है और

उस पदार्थ के सभी विकार निर्मूल हो चुके होते हैं, उस भाग में बाहर से आये हुए उपर्युक्त अमेध्य पदार्थ को संगत किया जाता है। इस समय प्राजापत्यो हिरण्यगर्भ ऋषि {हिरण्यम् = प्राणा वै हिरण्यम् (श.७.५.२.८)} अर्थात् प्राणों के गर्भरूप मनस्तत्त्व से 'कः'-देवताक एवं विराट् त्रिष्टुप्-छन्दस्क

प्रजा॑पते॒ न त्वदे॒तान्य॒न्यो विश्वा॑ जा॒तानि॒ परि॒ ता ब॑भूव।
यत्का॑मास्ते जुहु॒मस्तन्नो॑ अस्तु व॒यं स्या॑म॒ पत॑यो रयी॒णाम्॥१०॥ (ऋ.१०.१२१.१०)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियां तीव्र तेज और बल से युक्त होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से उस केन्द्रीय भाग के उत्तरी भाग की ओर आया हुआ अमेध्य पदार्थ वहाँ विद्यमान तेजस्वी पदार्थ को कोई बाधा नहीं पहुंचाता, बल्कि जो-२ भी संयोजक कर्म अपेक्षित होते हैं, उन-२ से स्वयं भी युक्त हो जाता है, जिससे वहाँ अन्य अनेकों छन्दादि रश्मियां एवं परमाणु आदि पदार्थ एकत्र होने लगते हैं। इससे वह बाहर से आया हुआ अमेध्य पदार्थ केन्द्रीय भाग में आहुत न होता हुआ भी आहुत के ही समान हो जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि वह अमेध्य पदार्थ आदित्य लोक के उस उत्तरी भाग में आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग से पृथक् रहकर भी स्वयं एक केन्द्र का निर्माण कर लेता है अर्थात् एक ही विशाल आदित्य लोक में दो ऐसे केन्द्रों का निर्माण हो जाता है, जहाँ परमाणुओं के संलयन आदि की क्रिया हो सकती है। इस अवस्था की प्राप्ति के पूर्व इन दोनों ही केन्द्रों में आकर्षण-विकर्षण होकर दोलन चलता रहता है। इस अवस्था में पर्याप्त विकर्षण बल उत्पन्न होने पर वह नवीन केन्द्र आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग से परे भी हट सकता है, तब सम्पूर्ण आदित्य लोक ही दो लोकों में परिवर्तित हो जाता है। यदि आकर्षण बल प्रबल हो जाए तो दोनों केन्द्र मिलकर एक विशाल आदित्य लोक का निर्माण भी हो सकता है। ये दोनों ही विकल्प संभव हैं। हमारे मत में अमेध्य पदार्थ के मेध्य होने तथा उसकी विद्यमानता वाला केन्द्र वा लोक जब पृथक् हो जाता है, तब उस लोक में ऊष्मा और तेजस्विता की मात्रा मूल लोक की अपेक्षा न्यूनतर होती है, कदाचित् इस लोक में संलयन आदि क्रियाएं उत्पन्न नहीं हो पातीं एवं मूल लोक में संलयन आदि क्रियाएं सुचारुरूप से प्रारम्भ हो जाती हैं। यहाँ उद्धृत ऋचा, जो नवीन केन्द्र का निर्माण करने में सहायक होती है, के विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"प्रजापते न त्वदेतान्यन्य इति च वल्मीकवपायां वा सांनाय्यं मध्यमेन पलाशपर्णेन जुहुयात्।" (आश्व.श्रौ. ३.१०.२३)

{वल्मीकः = (वल संवर्णे संचरणे च) मार्गः (तु.म.द.य.भा.२५.८)। प्राजापत्यो वै वल्मीकः (तै.ब्रा.३.७.२.१)। पलाशः = ब्रह्म वै पलाशः (श.१.३.३.१९; ५.२.४.१८), सोमो वै पलाशः (कौ.ब्रा.२.२; श.६.६.३.७)। पर्णः = गायत्री वै पर्णः (तै.ब्रा.३.२.१.१), सोमो वै पर्णः (श.६.५.१.१)} महर्षि आश्वलायन के इस कथन से यह संकेत मिलता है कि "प्रजापते न त्वदेतानि......।" छन्दरश्मि आदित्य लोक के मध्य में विद्यमान गायत्री छन्दरश्मि प्रधान सोम रश्मियों के साथ उस पूर्वोक्त अमेध्य पदार्थ का संगमन कराती है। इस छन्द रश्मि के कारण वह अमेध्य पदार्थ यज्ञरूपी प्रजापति के मार्गों में संगृहीत होने लगता है, जिसके कारण उपर्युक्त दोनों विकल्पों में से कोई भी एक विकल्प सिद्ध हो जाता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- जब कॉस्मिक मेघ में किसी तारे का निर्माण हो रहा होता है और उस प्रक्रिया में उस तारे के केन्द्र का निर्माण हो चुका होता है अर्थात् उसमें नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया होने लगती है, तब कभी-२ एक विकृति भी उत्पन्न हो जाती है। वह विकृति यह होती है कि कॉस्मिक मेघ में विद्यमान कुछ ऐसी तीक्ष्ण तरंगें, जो नाभिकीय संलयन की क्रिया को बाधित करने में समर्थ होती हैं, तारे की सीमा में प्रविष्ट होती हुई केन्द्रीय भाग की ओर बढ़ती हैं। इसके कारण तारे के निर्माण की प्रक्रिया बाधित हो सकती है। उस समय एक विराट् त्रिष्टुप् छन्द रश्मि उत्पन्न होकर उस तीक्ष्ण बाधक रश्मि आदि पदार्थ को तारे के उत्तरी ध्रुव की ओर प्रक्षिप्त कर देती है। तारे के उस भाग में अन्य भागों की अपेक्षा अधिक तेजस्वी विद्युत् कणों की प्रचुरता विद्यमान होती है। वह विराट् त्रिष्टुप् छन्द रश्मि बाधक तेजस्वी पदार्थ को तारे के उत्तरी ध्रुव की ओर विद्यमान पदार्थ के साथ अच्छी प्रकार संगत करती है। इस कारण उस भाग में भी एक पृथक् सघन केन्द्र बनने लगता है।
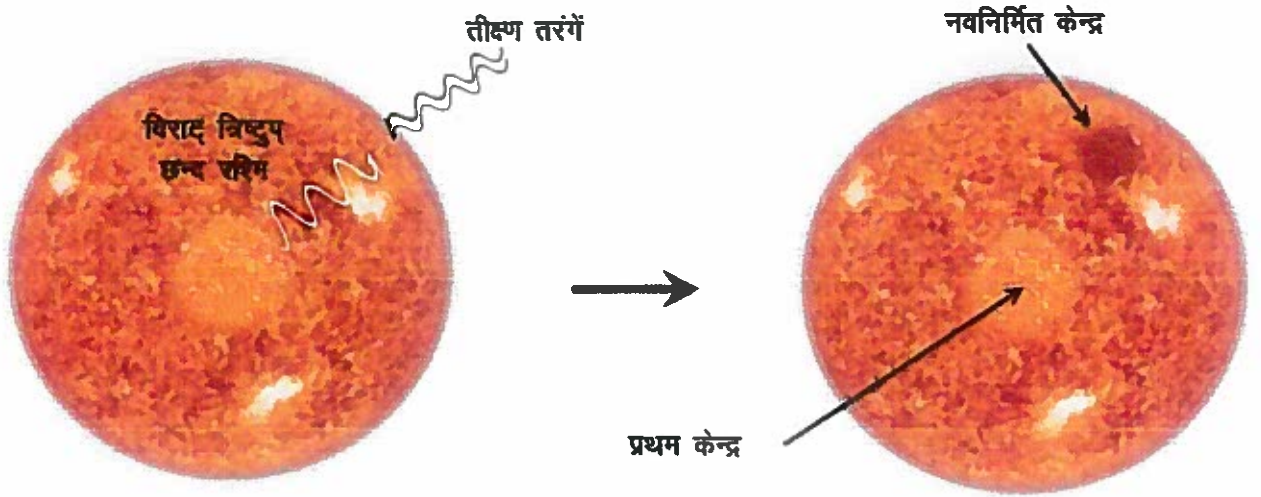
चित्र ३२.१

इसके पश्चात् तारे के मूल केन्द्र और इस नवनिर्मित केन्द्र में परस्पर आकर्षण-प्रतिकर्षण की क्रमिक प्रक्रिया प्रारम्भ होती है, जिससे दोनों केन्द्र एक-दूसरे की ओर एक विपरीत दिशा में दोलन करने लगते हैं। कभी प्रबल आकर्षण होने के कारण वे दोनों मिलकर एक भी हो सकते हैं, जिससे एक विशाल तारे का निर्माण होता है और वे किसी तीव्र प्रक्षेपक बल के द्वारा दोनों पृथक् भी हो सकते हैं, जिससे एक निर्माणाधीन तारा विखण्डित होकर दो तारों के रूप में परिवर्तित हो सकता है, जिसमें से एक तारा नाभिकीय संलयन की क्रिया से युक्त होता है और दूसरा तारा धूमिल प्रकाशयुक्त नाभिकीय संलयन क्रियाओं से रहित ही होता है।।
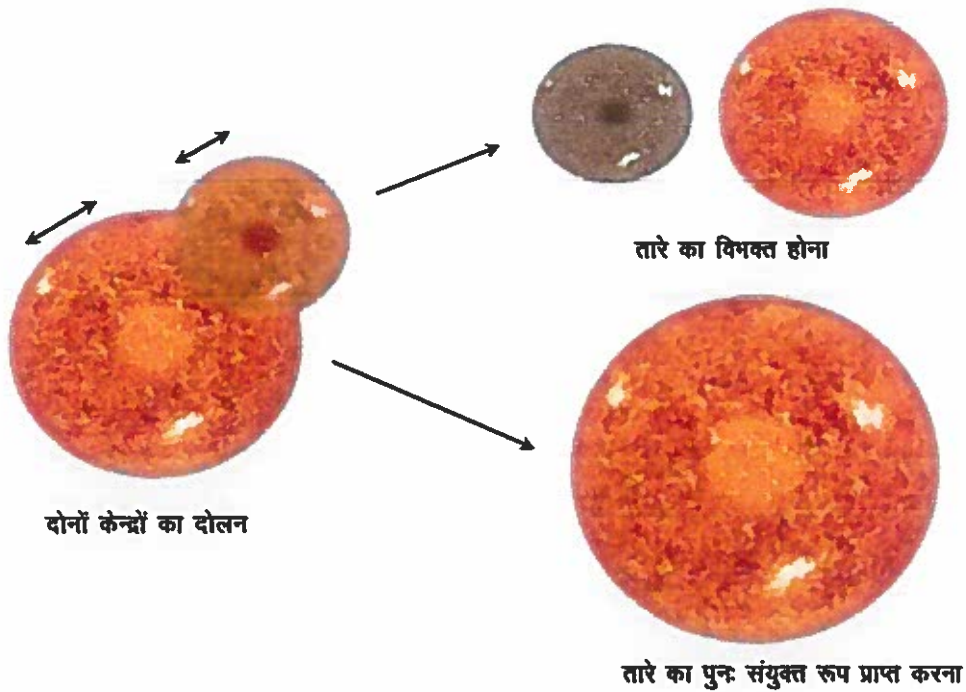
चित्र ३२.२

२. तदाहुर्यस्याग्निहोत्रमधिश्रितं स्कन्दति वा विष्यन्दते वा, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति,

तदद्भिरुपनिनयेच्छान्त्यै; शान्तिर्वा आपोऽथैनद्दक्षिणेन पाणिनाऽभिमृश्य जपति।। दिवं तृतीयं देवान्यज्ञोऽगात्, ततो मा द्रविणमाष्टान्तरिक्षं तृतीयं पितॄन् यज्ञोऽगात् ततो मा द्रविणमाष्ट; पृथिवीं तृतीयं मनुष्यान् यज्ञोऽगात् ततो मा द्रविणमाष्ट।। ययोरोजसा स्कभिता रजांसीति वैष्णुवारुणीमृचं जपति; विष्णुर्वै यज्ञस्य दुरिष्टं पाति, वरुणः स्विष्टं, तयोरुभयोरेव शान्त्यै।।
सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।

व्याख्यानम्- {आप = वज्रो वाऽआपः (जै.ब्रा.२.६७), आपो वै मरुतः (ऐ.६.३०; कौ.ब्रा.१२.८), यज्ञो वा आपः (कौ.ब्रा.१२.१; श.१.१.१.१२), आपो वै यज्ञः (ऐ.२.२०)} अब तेरहवां प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि आदित्य लोक के ऊपरी भाग अथवा केन्द्रीय भाग की ओर आता हुआ देव पदार्थ यदि किसी प्रतिरोधी प्रहार के कारण बिखरने लगे अथवा किसी अन्य दिशा में बहने लगे, तब तारे के केन्द्रीय भाग का निर्माण कैसे होता है? इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि उस ऐसे पदार्थ को नियंत्रित करने के लिए प्रशस्त बलयुक्त तेजस्विनी मरुद् रश्मियां उत्पन्न होती हैं और ये मरुद् रश्मियां उस बहते वा बिखरते हुए पदार्थ को सब ओर से व्याप्त और नियंत्रित करती हैं। {जपः = ब्रह्म वै जपः (कौ.ब्रा. ३.७)} इन्हीं मरुद् रश्मियों से अगली कण्डिका में वर्णित वाग्रूप ब्रह्म अर्थात् एक ऋचा उत्पन्न होती है।।

इस कण्डिका में एक ऋचा को उद्धृत किया है, जो अतिच्छन्दा प्रतीत होती है तथा इसका देवता यज्ञ प्रतीत होता है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से बहते वा बिखरते हुए पदार्थ में संसर्ग प्रक्रिया तीव्र वेग से प्रारम्भ होती है। अन्य प्रभाव से {तृतीयम् = बहुदेवत्यं तृतीयमहः (कौ.ब्रा.२०.४)} आदित्य लोक का केन्द्रीय भाग नाना प्रकार की संगतिरूप क्रियाओं से परिपूर्ण होकर स्वर्ग लोक के प्रकाशित स्वरूप को प्राप्त होने लगता है। उसमें सभी देव परमाणु संगत होने लगते हैं। बहता-बिखरता हुआ परमाणु समुदाय भी आदित्य लोक को प्राप्त होने लगता है। आकाश तत्त्व भी विभिन्न पितररूप परमाणुओं अर्थात् सूक्ष्म असुर रश्मियों से आच्छादित परमाणुओं को संगत करके नाना प्रकार के पदार्थ के साथ केन्द्रीय भाग में व्याप्त होने लगता है। इसी के साथ ऋतु रश्मियां भी इस भाग में व्याप्त होने लगती हैं। इसके पश्चात् विभिन्न पार्थिव परमाणु मनुष्य अर्थात् सबको बाहर से आच्छादित करने वाली सूत्रात्मा वायु रश्मियों के साथ इस भाग में प्रविष्ट होने लगते हैं। {द्रविणम् = धननाम (निघं.२.१०) बलनाम (निघं.२.६)} इस प्रकार केन्द्रीय भाग नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों और बलों से व्याप्त हो जाता है।।

तदुपरान्त मेधातिथि ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से विष्णु और वरुणदेवताक एवं त्रिष्टुप् छन्दस्क -

ययोरोजसा स्कभिता रजांसि यौ वीर्यैर्वीरतमा शविष्ठा।
यौ पत्येते अप्रतीतौ सहोभिर्विष्णुमगन्वरुणं पूर्वहूतिः।।१।। (अथर्व.७.२५.१)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। इस छन्द रश्मि के विषय में ३.३८.२ द्रष्टव्य है। इस छन्द रश्मि के विष्णु-देवताक प्रभाव से संसर्ग प्रक्रिया की सभी बाधक रश्मियों का नियंत्रण वा नाश होता है, जबकि वरुण-देवताक प्रभाव से संलयन और संगमन आदि क्रियाएं सुगमतापूर्वक होने लगती हैं। इस प्रकार इन दोनों के प्रभाव से यह छन्द रश्मि बहते और बिखरते पदार्थ को नियंत्रित और संगत करती है। इस प्रकार केन्द्रीय भाग में संलयन आदि क्रियाएं समुचितरूप से होने लगती हैं।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के निर्माण के समय संघनित होता हुआ पदार्थ कभी-२ तारों के केन्द्रीय भाग की ओर न जाकर तारे के बाहर ही किसी असुरादि पदार्थ के प्रहार से बिखरने वा बहने लगता

है। उस समय एक अतिच्छन्दा एवं एक त्रिष्टुप् छन्दरश्मि उत्पन्न होकर उस बहते और बिखरते पदार्थ को नियंत्रित करके तारे के अन्दर व्याप्त करने लगती है, जिससे तारे के केन्द्रीय भाग में पर्याप्त ताप और दाव उत्पन्न होकर नाभिकीय संलयन की प्रक्रियाएं प्रारम्भ हो जाती हैं और तारे का निर्माण सफलतापूर्वक होने लगता है।।

३. तदाहुर्यस्याग्निहोत्रमधिश्रितं प्राङुदायन् स्खलते वाऽपि वा भ्रंशते, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; स यद्युपनिवर्तयेत् स्वर्गाल्लोकाद् यजमानमावर्तयेदत्रैवास्मा उपविष्टायैतमग्निहोत्रपरीशेषमाहरेयुस्तस्य यथोन्नीती स्यात्, तथा जुहुयात्; सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।
तदाहुरथ यदि स्रुग्भिद्येत, का तत्र प्रायश्चित्तिरित्यन्यां स्रुचमाहृत्य जुहुयादथैनां स्रुचं भिन्नामाहवनीयेऽभ्यादध्यात् प्राग्दण्डां प्रत्यक्पुष्करां; सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।
तदाहुर्यस्याऽऽहवनीये ह्याग्निर्विद्येताथ गार्हपत्य उपशाम्येत् का तत्र प्रायश्चित्तिरिति, स यदि प्राञ्चमुद्धरेत् प्राऽऽयतनाच्च्यवेत, यत्प्रत्यञ्चमसुरवद्यज्ञं तन्वीत, यन्मन्थेद् भ्रातृव्यं यजमानस्य जनयेद्, यदनुगमयेत् प्राणो यजमानं जह्यात् सर्वमेवेनं सह भस्मानं समोप्य, गार्हपत्यायतने निधायाथ प्राञ्चमाहवनीयमुद्धरेत्; सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।४।।

व्याख्यानम्- अब यहाँ चौहदवां प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि पूर्वोक्त प्रक्रिया में रोका हुआ पदार्थ आदित्य लोक के निर्मित हो रहे केन्द्रीय भाग की ओर आते हुए भी किसी भी प्रकार प्राप्त प्रकृष्ट वेग से निर्माणाधीन आदित्य लोक के अन्दर ही किसी अन्य दिशा में छिटक जाए अथवा उसी दिशा में एकत्रित होने लग जाए, तब केन्द्र का निर्माण कैसे होता है? इसका उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि यदि पूर्वोक्त आपः अर्थात् तीव्र मरुद् रश्मियां उस पदार्थ को वहन करती हुई {उपनिवर्तयेत = (उप+नि+वृत्+णिच्) (वृतु वर्तने, वृतु भासार्थः भाषार्थो वा)} उस लौटाये हुए पदार्थ के साथ पूर्वापेक्षा अधिक प्रदीप्त हो उठती हैं, तो वे रश्मियां अपने साथ लाये पदार्थ के साथ अन्य परमाणु आदि पदार्थों को भी अपनी ओर आकृष्ट करती हुई तीव्र आकर्षण बलों को उत्पन्न करती हैं। वह आकर्षण बल इतना प्रबल हो जाता है कि वह एक नये केन्द्र बिन्दु का निर्माण करने लगता है। धीरे-२ यह भाग विशाल बलों से युक्त होता हुआ पूर्व में निर्मित हो रहे केन्द्रीय भाग में से पदार्थ को अपनी ओर आकृष्ट करने लगता है, जिससे पूर्व केन्द्र बिन्दु समाप्त होकर यह नया केन्द्र-बिन्दु ही शेष रह जाता है। फिर इसी बिन्दु पर चारों ओर से पदार्थ एकत्र होने लगता है, जिससे सभी वांछित केन्द्रीय क्रियाएं पूर्व भाग में समाप्त होकर यहीं प्रारम्भ होने लगती हैं।।

अब पन्द्रहवां प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि इस खण्ड की प्रथम कण्डिका में दर्शायी गयी स्थिति में यदि बाहरी अमेध्य पदार्थ निर्माणाधीन आदित्य लोक से टकराकर उस स्रुक् रूपी आदित्य लोक को अगर तोड़ दे, तब फिर आदित्य लोक का निर्माण कैसे होता है? इसका उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि ऐसी स्थिति में कोई दूसरा बड़ा स्रुक् अर्थात् लोक उस बिखरे हुए पदार्थ को अपनी ओर आकृष्ट व संगत कर लेता है अथवा उस आदित्य लोक का बड़ा और शक्तिशाली भाग अपने किसी दूसरे आहवनीय अर्थात् केन्द्रीय भाग का निर्माण कर लेता है। {दण्डः = वज्रो वै दण्डः (श.३.२.१.३२)। पुष्करः = अन्तरिक्षनाम (निघं.१.३), बादलों का समूह (आप्टेकोष)।} इन दोनों ही स्थितियों में उस भाग का दण्ड अर्थात् वज्ररूप तीक्ष्ण रश्मिसमूह नवीन केन्द्रीय भाग की ओर अथवा अन्य आकर्षक विशाल आदित्य लोक की ओर गमन करता है एवं उसके पीछे-२ सम्पूर्ण पदार्थ, जो अन्तरिक्ष में सूक्ष्मरूप से बिखरकर छोटे-२ मेघों के समूह में परिवर्तित हो जाता है, उसका अनुगामी बनकर उसके साथ ही एकत्र होने लगता है। इस प्रकार पुनः आदित्य लोक का निर्माण हो जाता है। हमारे मत में यहाँ भी तीन विकल्प हो सकते हैं, जिनमें से प्रथम यह है कि विखण्डित आदित्य लोक ही अन्य नवनिर्मित केन्द्र के

साथ पुनः यथावत् रूप प्राप्त कर ले और धीरे-२ सम्पूर्ण विखरे हुए पदार्थ को अपने साथ समाहित कर ले। दूसरा विकल्प यह है कि सम्पूर्ण बिखरा हुआ आदित्य लोक किसी अन्य विशाल लोक में समाहित हो जाए एवं तीसरा विकल्प यह है कि कुछ विखरा हुआ भाग विशाल आदित्य लोक में चला जाए और शेष भाग एक नये आदित्य का रूप धारण कर ले। ये तीनों ही विकल्प हो सकते हैं, ऐसा हमारा मत है।।

अव महर्षि सोलहवां प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि किसी आदित्य लोक का आहवनीय अग्नि अर्थात् केन्द्रीय भाग निरन्तर प्रज्वलित होता रहे एवं गार्हपत्य अग्नि अर्थात् उसका अन्य विशाल भाग किसी प्रकार निर्वल हो जाए। यहाँ निर्वल होने का तात्पर्य यह है कि उस विशाल भाग में विद्यमान ऋतु व छन्दादि रश्मियों के हीनबल होने पर ऊष्मा में क्षीणता आ जाए, तव उस आदित्य लोक का क्या होता है? इसका उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि ऐसी स्थिति में पांच प्रकार की परिस्थितियां जन्म ले सकती हैं-

(१) यदि आहवनीय अग्नि अर्थात् आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग, जो तीव्र ऊष्मा से युक्त होता है, की ऊष्मा आदि ऊर्जा प्राङ् अर्थात् प्रकृष्ट वेग से वाहर की ओर निकलने लगती है। यह क्रिया इतनी तीव्र वेग से होती है कि उस केन्द्रीय भाग का सम्पूर्ण पदार्थ की शीघ्रता से वहिर्गमन करने लगता है अर्थात् उस आदित्य लोक में विस्फोट हो सकता है।

(२) {प्रति = वीप्सायाम् (म.द.ऋ.भा.१.१६६.७), व्याप्तौ (म.द.य.भा.२०.३७)} केन्द्रीय आहवनीय अग्नि धीरे-२ वाहर की ओर निकलने लगे और पुनः लौट-२ कर अपने क्षेत्र में ही व्याप्त होने लगे अर्थात् वह केन्द्रीय भाग तरल पदार्थ की भाँति उवलने लगे, ऐसी परिस्थिति भी उत्पन्न हो सकती है। ऐसी स्थिति में उस आदित्य की रश्मियां अन्तरिक्ष में अत्यल्प मात्रा में ही उत्सर्जित हो पाती हैं, जिससे वह आदित्य लोक असुर अर्थात् अप्रकाशित लोक के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

(३) यदि आदित्य लोक के गार्हपत्यरूपी विशाल भाग में कोई वाहरी तीक्ष्ण रश्मियां भारी मंथन क्रिया को प्रारम्भ कर दें, तो उस क्षेत्र में असुर पदार्थ के नाना रूपों की उत्पत्ति होने लगती है, जिससे उस भाग में सभी प्रकार की संयोगादि प्रक्रियाएं वाधित वा अस्त-व्यस्त होने लगती हैं। इसके कारण उस भाग में से संलयनीय परमाणु आदि पदार्थों की आपूर्ति केन्द्रीय भाग की ओर विधिवत् नहीं हो पाती, जिससे वह भाग भी धीरे-२ मृत हो जाता है और सम्पूर्ण आदित्य लोक ही मृतवत् हो जाता है।

(४) यह विकल्प हमने तृतीय विकल्प में ही दर्शा दिया है कि सम्पूर्ण तारा ही मृतवत् हो जाता है क्योंकि वहां कोई भी संलयन, संयजन क्रिया नहीं होती है।

(५) इस परिस्थिति में प्रथम परिस्थिति को ही कुछ संशोधित रूप में प्रस्तुत किया गया है अर्थात् जव आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में विस्फोट होता है, तव वह केन्द्रीय भागस्थ पदार्थ वाहरी गार्हपत्य नामक विशाल भाग के पदार्थ में समाहित हो जाएगा, उसके वाद वह पदार्थ विभिन्न सूक्त वा ऋतु रूप रश्मियों से चारों ओर से आच्छादित होने लगेगा। इससे सम्पूर्ण विखरा हुआ परमाणु समुदाय उसी को केन्द्र विन्दु मानकर उसी की ओर तेजी से प्रवाहित होने लगेगा, जिससे पुनः एक नवीन लोक का निर्माण धीरे-२ हो जाएगा तथा सम्पूर्ण विखरा हुआ पदार्थ उसी में समाहित हो जाएगा।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- किसी भी तारे के निर्माण के समय किसी वाहरी प्रहार के कारण केन्द्र विन्दु की ओर वहता हुआ पदार्थ कभी-२ अन्य दिशा में भी वहने लगता है। ऐसी स्थिति में उस तारे का केन्द्र बिन्दु परिवर्तित हो जाता है। कभी-२ निर्माणाधीन तारे से कोई वाहरी विशाल बलवान् पदार्थ समूह टकरा जाता है, तो वह निर्माणाधीन तारा बिखर भी सकता है। वैसी स्थिति में वह बिखरा हुआ पदार्थ या तो किसी बड़े निर्माणाधीन तारे की ओर आकृष्ट होकर उसी में समाहित हो जाता है अथवा पदार्थ पुनः संघनित होकर नये केन्द्र का निर्माण करता है, जो धीरे-२ विखरे हुए पदार्थ को भी अपने साथ समाहित कर लेता है अथवा कुछ विखरा हुआ भाग अन्य विशाल तारे में समाहित होकर, शेष भाग नये तारे के रूप में परिवर्तित हो जाता है। यदि किसी तारे के केन्द्रीय भाग में तीव्र ऊर्जा का उत्पादन होता रहे और बाहरी भाग विभिन्न छन्दादि रश्मियों की दुर्बलता से क्षीण ऊष्मा वाला हो जाए, तव ऐसी स्थिति में पांच परिस्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं-

(१) केन्द्रीय भाग की तीव्र ऊर्जा से तारे में विस्फोट हो सकता है।

(२) यह विखण्डित तारा पुनः धीरे-२ संघनित होकर नये तारे को जन्म दे सकता है।
(३) केन्द्रीय भाग की ऊर्जा धीरे-२ क्षीण होकर तारा मृत हो सकता है। यह स्थिति तब बनती है, जब तारे के विशाल बाहरी भाग में नाना प्रकार की अनिष्ट व तीक्ष्ण रश्मियों के प्रहार से संलयनीय कणों का केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है।
(४) चौथा विकल्प भी लगभग इसी प्रकार का होता है। इसमें भी संलयन और संयोजन की क्रियाएं बाधित हो जाती हैं।
(५) तारे का केन्द्रीय भाग एक उबलते तरल भाग में परिवर्तित हो जाता है और सम्पूर्ण तारा प्रायः अप्रकाशित दिखाई देता है।

नोट- व्याख्यान भाग में उपर्युक्त पांचों परिस्थितियों को क्रमशः एक, पांच, तीन, चार, एवं दो के क्रम में दर्शाया गया है। यह ध्यान रहे।।

ॐ इति ३२.४ समाप्तः ॐ

अथ ३२.५ प्रारभ्यते

**** तमसो मा ज्योतिर्गमय ****

१. तदाहुर्यस्याग्नावग्निमुद्धरेयुः, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; स यद्यनुपश्येदुदूह्य पूर्वमपरं निदध्याद् यद्यनानुपश्येत् सोऽग्नयेऽग्निवतेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत्, तस्य याज्यानुवाक्ये 'अग्निनाऽग्निः समिध्यते' 'त्वं ह्यग्ने अग्निनेत्याहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नयेऽग्निवते स्वाहेति; सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।

तदाहुर्यस्य गार्हपत्याहवनीयौ मिथः संसृज्येयातां, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; सोऽग्नये वीतयेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत्, तस्य याज्यानुवाक्ये 'अग्न आयाहि वीतये' यो अग्निं देववीतय इत्याहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये वीतये स्वाहेति; सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।

तदाहुर्यस्य सर्व एवाग्नयो मिथः संसृज्येरन्, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; सोऽग्नये विविचयेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत्, तस्य याज्यानुवाक्ये 'स्वर्णवस्तोरुषसामरोचि' 'त्वामग्ने मानुषीरीळते विश इत्याहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये विविचये स्वाहेति, सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।

तदाहुर्यस्याग्नयोऽन्यैरग्निभिः संसृज्येरन्, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति, सोऽग्नये क्षामवतेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत्, तस्य याज्यानुवाक्ये 'अक्रन्ददग्निस्तनयन्निव द्यौर्'- 'अधा यथा नः पितरः परास' इत्याहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये क्षामवते स्वाहेति, सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।५।।

व्याख्यानम्- अब महर्षि सत्रहवां प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि किसी विशेष घटनावश निर्माणाधीन आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग में विद्यमान आहवनीय अग्निमय पदार्थ बाहरी विशाल गार्हपत्य अग्नियुक्त पदार्थ को अकस्मात् तेजी से अपनी ओर किसी क्षेत्र विशेष में आकर्षित करता है, तब केन्द्रीय भाग किस प्रकार से अपनी क्रियाओं को संतुलित बनाये रखता है? हमारे मत में यह घटना आदित्य लोक की किसी अन्य लोक के साथ होने वाली टक्कर अथवा आदित्य लोक की निर्माण प्रक्रिया में अकस्मात् किसी विकृति के कारण उत्पन्न होती है। यद्यपि केन्द्रीय भाग बाहरी पदार्थ को आकृष्ट करता ही है परन्तु अकस्मात् किसी स्थान विशेष पर एक साथ और तीक्ष्ण रूप से यह क्रिया नहीं होती, बल्कि समान रूप से सब ओर यह क्रिया होती रहती है। यहाँ अकस्मात् तीव्र क्रिया की ही चर्चा की गयी है। यहाँ उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि बाहरी आग्नेय पदार्थ तीक्ष्णरूप से आकर्षित होने पर केन्द्रीय आग्नेय पदार्थ उसी स्थान पर यदि तीव्र रूप से उत्तेजित होकर प्रकाशित होने लग जाए, तो वह पदार्थ वहाँ से ऊपर उठकर बाहर भाग की ओर छिटक जाता है और उसके स्थान पर बाहरी एवं प्रबल वेग से आकर्षित पदार्थ स्थापित हो जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि पदार्थ का परस्पर स्थानान्तरण हो जाता है। यदि बाहरी भाग के तीव्र आकृष्ट होने तथा उसके केन्द्रीय भाग में आने पर केन्द्रीय पदार्थ विशेषरूप से विक्षुब्ध नहीं होता, तो वह बाहर की ओर छिटककर नहीं जाता अर्थात् दोनों ही पदार्थ उस केन्द्रीय भाग का ही अंग बन जाते हैं। उस समय काण्वो मेधातिथि ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से अग्निदेवताक एवं गायत्री-छन्दस्क-

अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा। हव्यवाड् जुह्वास्यः।।६।। (ऋ.१.१२.६)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से बाहर से आया हुआ गार्हपत्य अग्नि विभिन्न संयोज्य परमाणुओं के साथ केन्द्रीय भाग के आहवनीय अग्नि के साथ मिलकर तीव्रता से प्रकाशित होने लगता है। {जुहूः = जुह्वति याभिः क्रियाभिः (तु.म.द.ऋ.भा.१.५८.४), तस्यासावेव द्यौर्जुहूः (श.१.३.२.४), जुहूर्वै यज्ञमुखम् (मै.३.१.१), द्यौरसि जन्मना जुहूर्नाम (मै.१.१.१२), वाग् जुहूः (तै.आ. २.१७.१)} इसका तात्पर्य यह है कि बाहर से आया हुआ आग्नेय पदार्थ नाना प्रकार की संयोज्य वाग् रश्मियों से युक्त होकर नानाविध संगत होकर आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग का पूर्णतः अंग बन जाता है। इस छन्द रश्मि को ग्रन्थकार ने पुरोऽनुवाक्या कहा है। {पुरोऽनुवाक्या = प्राण एव पुरोऽनुवाक्या (श. १४.६.१.१२), पृथिवीलोकमेव पुरोऽनुवाक्यया (जयति) (श.१४.६.१.६)} इससे स्पष्ट है कि यह छन्दरश्मि प्राण नामक प्राणरश्मियों से विशेष युक्त होकर विभिन्न पार्थिव परमाणुओं को, साथ ही आकाश तत्त्व को नियंत्रित करने में सहायक होती है।

तदुपरान्त विरूप आङ्गिरस ऋषि अर्थात् विविध रूपों से युक्त सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न विशेष प्रकार की रश्मियों से अग्निदेवताक एवं ककुम्मती गायत्री छन्दस्क-

त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्त्सता। सखा सख्या समिध्यसे।।१४।। (ऋ.८.४३.१४)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियों के साथ संगत होकर उपर्युक्त गार्हपत्य और आहवनीय दोनों प्रकार का अग्नि तीव्ररूप से प्रकाशित होता हुआ नानाविध गति और रूपों को उत्पन्न करता है। इस छन्द रश्मि को ग्रंथकार ने याज्या कहा है। {याज्या = इयं (पृथ्वी) याज्या (श.१.७.२.११), अपानो याज्या (श.१४.६.१.१२)} इसका तात्पर्य यह है कि यह छन्द रश्मि अपानरूप होकर पूर्वोक्त छन्द रश्मि के साथ संयुक्त होकर विविध रूपों में अग्नि तत्त्व को प्रकाशित करती है। उस समय आठ कपालों वाले अर्थात् मनस्तत्त्व, सूत्रात्मा वायु, धनंजय, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान इन आठ प्रकार की प्राण रश्मियों से युक्त अग्नि के परमाणु संपूर्ण क्षेत्र में व्याप्त होने लगते हैं। यहाँ मनस्तत्त्व के स्थान पर छन्द रश्मियों का ग्रहण करना अधिक उचित प्रतीत होता है। इसी समय "अग्नये अग्निवते स्वाहा" छन्द रश्मि की भी उत्पत्ति होती है। इसके प्रभाव से दोनों प्रकार के अग्नि परस्पर मिश्रित होकर अग्नि के विभिन्न प्रकार के परमाणुओं को उत्पन्न करने लगते हैं। इस छन्द रश्मि का देवता अग्नि एवं छन्द याजुषी बृहती है। इस कारण इसके प्रभाव से आग्नेय परमाणुओं के संघनित एवं व्यापक होने में विशेष सहायता मिलती है। इस प्रकार आदित्य लोक का केन्द्रीय भाग सभी वांछनीय क्रियाओं से युक्त हो जाता है।।

अब अठारहवां प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि यदि किसी आदित्य लोक के अन्दर केन्द्रीय भागस्थ पदार्थ एवं बाहरी विशाल भाग में स्थित पदार्थ, जिन्हें क्रमशः आहवनीय और गार्हपत्य अग्नि कहा जाता है, यदि किसी विशेष घटनावश दोनों परस्पर मिलने लग जाएं, तो आदित्य लोक का केन्द्रीय भाग कैसे अपने समुचित स्वरूप को बनाये रख सकेगा? यहाँ ग्रन्थकार यह कहना चाहते हैं कि आदित्य लोक के इन दोनों भागों के मध्य एक मर्यादा अर्थात् सीमा होती है, जिसमें से बाहरी पदार्थ धीरे-२ अन्दर की ओर रिसता हुआ जाता रहता है, जिससे दोनों भागों का स्वरूप भी पृथक्-२ बना रहता है। यहाँ दर्शायी हुई दुर्घटना के फलस्वरूप दोनों भागों में अस्त-व्यस्तता हो जाती है। इस उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि उस समय पूर्वोक्त भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि रूप प्राण रश्मियों से अग्निदेवताक एवं गायत्री छन्दस्क-

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि।।१०।। (ऋ.६.१६.१०)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से आदित्य के केन्द्रीय भाग में विद्यमान विभिन्न छन्द रश्मियों में होता रूप अग्नि प्रकाशित होता हुआ नाना प्रकार की व्याप्ति, गति एवं

संयोज्यता आदि गुणों से युक्त हो उठता है। इस छन्द रश्मि को भी यहाँ पुरोऽनुवाक्या कहा है। इसी समय पूर्वोक्त काण्वो मेधातिथि ऋषि से अग्निदेवताक एवं गायत्री छन्दस्क-

यो अ॒ग्निं दे॒ववी॑तये ह॒विष्माँ॑ आ॒विवा॑सति। तस्मै॑ पावक मृळय॥६॥ (ऋ.१.१२.६)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {विवासति = परिचरणकर्मा (निघं. ३.५)} विभिन्न देव परमाणुओं को उत्पन्न करने के लिए संयोजक अग्नि आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग में सब ओर विचरण करता है। यहाँ इस छन्द रश्मि को याज्या कहा है। याज्या एवं पुरोऽनुवाक्या के स्वरूप को पूर्ववत् समझें। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का भी कथन है-

"मिथश्चेद्विविचये"।

"गार्हपत्याहवनीययोर्वीतये"। (आश्व.श्रौ.३.१३.५-६)

इस समय केन्द्रीय भाग में "अग्नये वीतये स्वाहा" इस अग्निदेवताक एवं याजुषी निचृद् बृहती छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है। जिसके प्रभाव से दोनों प्रकार की अग्नियां तीव्रता से पृथक् होकर अपने-२ क्षेत्रों में पुनः व्याप्त होने लगती हैं। यहाँ भी अष्टाकपाल, जिसके विषय में हम ऊपरी कण्डिका में लिख चुके हैं, से युक्त अग्नि के परमाणु पूर्वापेक्षा अधिक व्यापक होने लगते हैं, जिससे आदित्य लोक की सभी क्रियाएं समुचित रूप से पुनः प्रारम्भ हो जाती हैं॥

अब उन्नीसवां प्रश्न उपस्थित करते हुए महर्षि लिखते हैं कि कभी-२ किसी आदित्य लोक में विद्यमान सभी प्रकार की अग्नियां परस्पर मिश्रित हो जाती हैं। इन अग्नियों के विषय में एक ऋषि का कथन है- "देवानां वा एतान्यायतनानि यद् गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्निश्चाहवनीयश्च" (काठ.संक.१५-१६ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत)।

इनमें से हम आहवनीय और गार्हपत्य अग्नि के विषय में अवगत हो चुके हैं। दक्षिणाग्नि के विषय में ऋषियों का कथन है-

"तस्य योऽग्नेस्तृतीयो भागस्तं देवपितरः पर्यगृह्णन् दक्षिणतोऽनयन् स दक्षिणाग्निरभवत् तद् दक्षिणाग्नेर् दक्षिणाग्नित्वम्।" (काठ. संक.१५.१-३ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत)

"यजुर्वेदाद्दक्षिणाग्निः (अजायत)।" (ष.४.१ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत)

"अन्तरिक्षं दक्षिणाग्निः।" (काठ.संक.६ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत)

"दक्षिणाग्नय एवान्नं परिदाय प्रैति" (मै.१.५.१४)

इसका तात्पर्य यह है कि दक्षिणाग्नि वह अग्नि है, जो विभिन्न देव अर्थात् प्राण रश्मियों और पितर अर्थात् ऋतु रश्मियों के द्वारा उत्पन्न और वहन किया जाता है। यह अग्नि आदित्य लोक के अन्दर आकाश तत्त्व के विशेष सम्पर्क में रहता हुआ विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों का केन्द्रीय भाग की ओर वहन करता है। साथ ही केन्द्रीय भाग में उत्पन्न अग्नि आदि के परमाणुओं को बाहर की ओर ले जाता है। इस अग्नि में यजुः संज्ञक रश्मियों की बहुलता होती है। यह अग्नि सम्पूर्ण आदित्य लोक में व्याप्त रहता है।

जब ये तीनों प्रकार के अग्नि परस्पर अस्त-व्यस्त होकर मिलने लगते हैं, तब इन लोकों की केन्द्रीय क्रियाएं कैसे सम्पन्न होती है? यहाँ यह प्रश्न किया गया है। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि उस समय पूर्वोक्त वसिष्ठ ऋषि से अग्निदेवताक एवं निचृत्त्रिष्टुप् छन्दस्क-

स्व१र्ण वस्तो॑रु॒षसा॑मरोचि य॒ज्ञं त॑न्वा॒ना उ॒शिजो॒ न मन्म॑।
अ॒ग्निर्जन्मा॑नि दे॒व आ वि वि॒द्वान्द्र॒वद् दू॒तो दे॑व॒यावा॒ वनि॑ष्ठः॥२॥ (ऋ.७.१०.२)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में विभिन्न प्राण रश्मियां नाना प्रकार की संगमनीय क्रियाओं को सम्पन्न करके सुन्दर वर्णयुक्त अग्नि के परमाणुओं को सब ओर फैलाती हैं। वे अग्नि के परमाणु विभिन्न देव परमाणुओं को व्याप्त करके अति तीव्रतापूर्वक नाना प्रकार से उनका विभाजन करते हुए दूर-२ तक गमन करते हैं। यहाँ इस ऋचा को पुरोऽनुवाक्या कहा है।

तदनन्तर पूर्वोक्त आत्रेय ऋषि से अग्निदेवताक एवं निचृज्जगती छन्दस्क-

त्वामग्ने मानुषीरीळते विशो होत्राविदं विविचिं रत्नधातमम्।
गुहा सन्तं सुभग विश्वदर्शतं तुविष्वणसं सुयजं घृतश्रियम्॥३॥ (ऋ.५.८.३)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से आदित्य लोकों के शुद्ध तेजस्वी भाग में विद्यमान विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ संयोजक अग्नि के परमाणुओं द्वारा नाना प्रकार के रमणीय विभागों को प्राप्त करते हैं। ये अग्नि के परमाणु भी सब ओर प्रकाशित होते हुए अच्छे संयोजक बलों से युक्त होकर विभिन्न वज्ररूप रश्मियों का आश्रय लेकर सम्पूर्ण अन्तरिक्ष को व्याप्त करते हैं। यहाँ पूर्व ऋचा को पुरोऽनुवाक्या और इस ऋचा को याज्या कहा है। इनका आशय भी पूर्ववत् समझें। यहाँ पूर्व की भाँति उत्पन्न अष्टाकपाल पुरोडाश रश्मियां अग्नितत्त्व के नाना प्रकार के विभाग करने के लिए उत्पन्न होती हैं। इस समय केन्द्रीय भाग में "अग्नये विविचये स्वाहा" इस याजुषी बृहती छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है। इसका देवता अग्नि है। इसके प्रभाव से विभिन्न अग्नियों का पृथक्-२ विभाजन होकर अपनी-२ मर्यादाओं में पुनर्स्थापन होता है। इसके कारण आदित्य लोकों की सभी क्रियाएं पुनः यथावत् प्रारम्भ हो जाती हैं॥

अब बीसवां प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि यदि किसी आदित्य लोक की अग्नियां अन्य किसी पृथिव्यादि लोक की अग्नियों के साथ मिल जाएं अर्थात् आदित्य और पृथिवी लोक के निर्माण के समय पदार्थ परस्पर मिल जाए, तो फिर लोक निर्माण की प्रक्रिया कैसे हो पाती है? इसका उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि उस समय वत्सप्रिर्भालन्दन ऋषि अर्थात् {दनः = दानमनसः (नि.६.३१)} मनस्तत्त्व से परिपूर्ण एवं अग्नि तथा वायु तत्त्वों को अपने तेज से परिपूर्ण करने की प्रवृत्ति वाले सूक्ष्म प्राण विशेष से अग्निदेवताक एवं निचृत्त्रिष्टुप् छन्दस्क-

अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन्।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः॥४॥ (ऋ.१०.४५.४)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से आदित्य लोक का अग्नि विद्युत् की भाँति घोष करता हुआ और उसमें मिश्रित हुआ पार्थिव लोक भी जलता और गम्भीर घोष उत्पन्न करता हुआ आदित्य लोक में अच्छी प्रकार संयुक्त और निरुद्ध होता है। वे दोनों शीघ्रता से जलते हुए सम्पूर्ण रूप से प्रकाशित होते हैं।

तदुपरान्त पूर्वोक्त वामदेव ऋषि से अग्निदेवताक एवं त्रिष्टुप् छन्दस्क -

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः।
शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन्॥१६॥ (ऋ.४.२.१६)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {परासः = प्रकृष्टा (म.द.य.भा. १६.४६)} अग्नि तत्त्व प्रकृष्ट तेजस्वी ऋतु एवं प्राण रश्मियों के द्वारा पार्थिव लोक के पदार्थ को अच्छी प्रकार विदीर्ण करता हुआ अरुण वर्ण के प्रकाश से युक्त करता है। इनमें से प्रथम ऋचा को पुरोऽनुवाक्या एवं द्वितीय ऋचा को याज्या कहा है। इनका आशय भी पूर्ववत् समझना चाहिए। इस समय आदित्य के केन्द्रीय भाग में "अग्नये क्षामवते स्वाहा" इस अग्निदेवताक एवं याजुषी बृहती छन्दस्क रश्मि की उत्पत्ति होती है, जिसके प्रभाव से आदित्य लोकस्थ अग्नि पृथिवी लोकस्थ पदार्थ को अपने में समाहित करता हुआ प्रकाशित करता है। इस समय भी पूर्वोक्त अष्टाकपाल पुरोडाशरूपी तेजस्विनी रश्मियां पार्थिव पदार्थयुक्त आदित्य लोक को सब ओर से व्याप्त करती हैं और दोनों लोक मिलकर एक आदित्य लोक के ही रूप में प्रकाशित होने लगते हैं॥

वैज्ञानिक भाष्यसार- जब कभी किसी तारे की अन्य किसी तारे से टक्कर होती है अथवा कोई अन्य तारा किसी तारे के निकट से गुजरता है, उस समय तारे के केन्द्रीय भाग में बाहरी भागस्थ पदार्थ का कुछ भाग तीव्र वेग से गिरता है। उस समय यदि केन्द्रीय भाग का पदार्थ विक्षुब्ध होकर ऊपर की ओर उछलने लगे, तो वह पदार्थ छिटककर बाहरी भाग में चला जाता है और बाहरी पदार्थ केन्द्रीय भाग से निकले हुए पदार्थ के स्थान में स्थापित होकर केन्द्रीय भाग का अंग बन जाता है। यदि बाहरी पदार्थ का प्रहार बहुत अधिक तीक्ष्ण न हो, तो केन्द्रीय भाग का पदार्थ उछलकर बाहरी भाग में नहीं आता और बाहरी भाग का पदार्थ केन्द्रीय भाग का अंग अवश्य बन जाता है। उस समय दो गायत्री छन्दरश्मियां उत्पन्न होकर बाहरी पदार्थ सहित सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग को ऊष्मा प्रदान करके एक समान बना देती है। उसी समय एक बृहती छन्द रश्मि उत्पन्न होकर बाहरी पदार्थ को केन्द्रीय पदार्थ के साथ अच्छी प्रकार बांध देती है और तीव्रगामी विद्युत् चुम्बकीय तरंगें उत्पन्न होने लगती हैं।

कभी-२ किसी घटनावश कोई तारा इस प्रकार सिकुड़ता है कि उसके नाभिकीय संलयन वाले क्षेत्र और बाहरी विशाल क्षेत्र में स्थित पदार्थ परस्पर मिश्रित होने लगता है। उस समय दो गायत्री छन्द रश्मियां एवं एक बृहती छन्द रश्मि उत्पन्न होकर तारे के दोनों भागों के पदार्थ को पृथक् करके उसका यथावत् स्वरूप बनाये रखती हैं। इसके साथ ही ये रश्मियां तारे के ताप को और अधिक बढ़ाती हैं।

इसी प्रकार की किसी दुर्घटनावश कभी-२ सम्पूर्ण तारा ही ऐसा विक्षुब्ध होता है कि सम्पूर्ण पदार्थ परस्पर मिश्रित होने लगता है, वैसी स्थिति में एक त्रिष्टुप्, एक बृहती एवं एक जगती ये तीन छन्दरश्मियां उत्पन्न होकर विभिन्न छन्दरश्मियों को नियंत्रित करके तारे को व्यवस्थित और पूर्व रूप प्रदान करती हैं।

जब किसी तारे के अन्दर कोई ग्रह टकराकर गिर जाता है, उस समय दो त्रिष्टुप् एवं एक बृहती छन्द रश्मि उत्पन्न होकर तीव्र ताप और बलों को उत्पन्न करती हैं। उसी समय गिरा हुआ ग्रह सम्पूर्णरूप से जलकर उस तारे का ही भाग बन जाता है।

इन तारों के अन्दर जो विद्युत् चुम्बकीय तरंगें विद्यमान होती हैं, उनके क्वाण्टाज् में प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान धनजंय एवं सूत्रात्मा वायु के अतिरिक्त विभिन्न छन्द रश्मियां विद्यमान होती हैं। इनमें से धनंजय रश्मियां ही क्वाण्टाज् को अति तीव्र वेग प्रदान करती हैं।।

॥ इति ३२.५ समाप्तः ॥

अथ ३२.६ प्रारभ्यते

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. तदाहुर्यस्याग्नयो ग्राम्येणाग्निना संदह्येरन्, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; सोऽग्नये संवर्गायाष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत्, तस्य याज्यानुवाक्ये 'कुवित्सु नो गविष्टये', 'मा नो अस्मिन् महाधन इत्याहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये संवर्गाय स्वाहेति; सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।

तदाहुर्यस्याग्नयो दिव्येनाग्निना संसृज्येरन्, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; सोऽग्नयेऽप्सुमतेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत्, तस्य याज्यानुवाक्ये 'अप्स्वग्ने सधिष्टव', 'मयो दधे मेधिरः पूतदक्ष इत्याहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नयेऽप्सुमते स्वाहेति, सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।

तदाहुर्यस्याग्नयः शवाग्निना संसृज्येरन्, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; सोऽग्नये शुचयेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत्, तस्य याज्यानुवाक्ये 'अग्निः शुचिव्रततम',-'उदग्ने शुचयस्तवेत्याहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये शुचये स्वाहेति; सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।

तदाहुर्यस्याग्नय आरण्येनाग्निना संदह्येरन्, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; समेवाऽऽरोपयेदरणी वोल्मुकं वा मोक्षयेद्, यद्याहवनीयाद्यदि गार्हपत्याद्, यदि न शक्नुयात्, सोऽग्नये संवर्गायाष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत्, तस्योक्ते याज्यानुवाक्ये आहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये संवर्गाय स्वाहेति, सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।६।।

व्याख्यानम्- {ग्रामः = ग्रसतेऽत्ति यो वा ग्रस्यते स ग्रामः, शालासमुदायः प्राणिनिवासो वा; सङ्ग्रामो युद्धं वा (उ.को.१.१४३), ब्रह्माण्डसमूहः (तु.म.द.य.भा.१६.४८), छन्दांसीव खलु वै ग्रामः (तै.सं.३.४.६.२)} अब इक्कीसवां प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि किसी आदित्य लोक के अन्दर विद्यमान सभी प्रकार की अग्नियां ब्रह्माण्ड में स्थित विभिन्न प्रकार की तीक्ष्ण संघातक छन्द रश्मियों से उत्पन्न अग्नि में मिलकर तीव्ररूप से दहक उठें, तब उस आदित्य लोक का क्या होता है? ध्यातव्य है कि ब्रह्माण्ड में कभी-२ और कहीं-२ तीव्र भेदक शक्तिसम्पन्न रश्मियां किसी अन्य लोक के विस्फोट आदि से उत्पन्न हो सकती हैं। वे तीक्ष्ण रश्मियां जब किसी आदित्य लोक पर तेजी से प्रहार करें, तब यह उपर्युक्त अनिष्ट स्थिति उत्पन्न हो सकती है। यहाँ महर्षि उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि उस समय विरूप ऋषि अर्थात् विविध रूपों में व्यवहार करने वाली प्राण रश्मिविशेष से अग्निदेवताक निम्न छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं-

(१) कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम्। उरुकृदुरु णस्कृधि।।११।। (ऋ.८.७५.११)

छन्द निचृद् गायत्री। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से अग्नि तत्त्व विभिन्न प्रकार की किरणों को उत्पन्न करने के लिए अनेक प्रकार की छन्द व मरुद् रश्मियों को धारण करके समृद्ध होने लगता है।

(२) मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा। संवर्गं सं रयिं जय।।१२।। (ऋ.८.७५.१२)

छन्द गायत्री। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {महाधन = संग्रामनाम (निघं.२.१७)} इस कण्डिका में उठाये गये प्रश्न के अनुसार आदित्य लोक के साथ तीक्ष्ण रश्मियों के संग्राम में आदित्य लोक की अग्नियां अपने-२ संवर्ग अर्थात् समूह में नाना प्रकार की छन्द रश्मियों को नियंत्रित बनाये रखकर लोक का सतत निर्वहन करने में समर्थ होती हैं।

यहाँ ग्रन्थकार ने प्रथम ऋचा को पुरोऽनुवाक्या एवं द्वितीय को याज्या कहा है। इसका तात्पर्य पूर्ववत् समझें। यहाँ महर्षि आश्वलायन का भी कथन है-

"ग्राम्येण संवर्गाय" (आश्व.श्रौ.३.१३.७)

यहाँ ग्रन्थकार का भी यही कथन है कि इस घटना के समय आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में "अग्नये संवर्गाय स्वाहा" इस याजुषी बृहती छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है। इसका देवता अग्नि होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से आदित्य लोक की तीनों अग्नियां अपने-२ समूह को संरक्षित और सक्रिय करने में समर्थ होती हैं। यहाँ भी पूर्वोक्तवत् अष्टाकपाल पुरोळाश संज्ञक आग्नेय रश्मियां सम्पूर्ण लोक में व्याप्त होने लगती हैं, जिससे आदित्य लोक की सभी क्रियाएं सामान्य होने लगती हैं।।

अब बाईसवां प्रश्न उपस्थित करते हुए महर्षि कहते हैं कि जब किसी आदित्य लोक की विभिन्न अग्नियों पर अन्तरिक्ष में विद्यमान तीव्र विद्युत् तरंगों का प्रहार होता है, तब आदित्य लोक अपना स्वरूप कैसे बनाये रखता है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि उस समय विरूप आङ्गिरस ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न विविध रूपों का निर्माण करने वाली सूक्ष्म प्राण रश्मियों से निचृद् गायत्री छन्दस्क एवं अग्निदेवताक-

अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे। गर्भे सञ्जायसे पुनः।।६।। (ऋ.८.४३.६)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से अग्नितत्त्व विभिन्न प्राण रश्मियों और परमाणु आदि पदार्थों में रहता हुआ अपनी ऊष्णता को अनुकूलता से बनाये रखता है। वह केन्द्रीय भाग में रहता हुआ निरन्तर यथावत् प्रकट होता रहता है।

तदुपरान्त पूर्वोक्त गाथिनो विश्वामित्र ऋषि से अग्निदेवताक एवं निचृत्त्रिष्टुप् छन्दस्क -

मयो दधे मेधिरः पूतदक्षो दिवः सुबन्धुर्जनुषा पृथिव्याः।
अविन्दन्नु दर्शतमप्स्व१न्तर्देवासो अग्निमपसि स्वसॄणाम्।।३।। (ऋ.३.१.३)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियां आदित्य लोक में विद्यमान विभिन्न तन्मात्राओं की धाराओं में तेजस्वी अग्नि को उत्पन्न करती हैं। बाहर से आने वाली विद्युत् किरणें अन्तरिक्ष में जन्म लेने वाले सब लोकों को अपने बल से बांधने वाले आदित्य लोक की रश्मियों को अपने अन्दर धारण और संगत कर लेती हैं।

यहाँ भी पूर्ववत् प्रथम ऋचा पुरोऽनुवाक्या और द्वितीय ऋचा याज्या संज्ञक होती हैं, जिनका प्रभाव पूर्ववत् समझ सकते हैं। इस समय "अग्नयेऽप्सुमते स्वाहा" याजुषी निचृद्बृहती छन्दरश्मि उत्पन्न होकर बाहरी तीक्ष्ण विद्युत् तरंगों को आदित्य लोक के साथ संगत करके बांधने में सहायक होती हैं। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"वैद्युतेनाप्सुमते" (आश्व.श्रौ.३.१३.८)

इसका भी आशय यही है कि वैद्युत तरंगें आदित्य लोक पर आघात करके इन छन्द रश्मियों के प्रभाव से उसी में समा जाती हैं। यहाँ भी पूर्वोक्तवत् अष्टाकपाल पुरोळाश संज्ञक अग्नि के परमाणुओं की व्याप्ति होती है, जिसके कारण सम्पूर्ण तारे की क्रियाएं यथावत् चलती रहती हैं।।

अब महर्षि तेईसवां प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि {शवः = बलनाम (निघं.२.६), धननाम

(निघं.२.१०), शवसो महतो बलस्य (नि.१२.२१), बलम् वै शवः (श.७.३.१.२६), (शवति गतिकर्मा - निघं.२.१४, परिचरणकर्मा - निघं.३.५)} किसी आदित्य लोक के विभिन्न प्रकार के अग्नि बाहर से आने वाले तीव्र बल और वेग से युक्त कणों की धाराओं, जो आदित्य लोक के बाहर सब ओर विचरण करने लगती हैं, से मिश्रित होने लग जाएं, तब आदित्य लोक का स्वरूप कैसे बना रहता है? ध्यातव्य है कि सामान्य स्थिति में ये तीक्ष्ण विकिरण आदित्य लोक की ओर नहीं आते, बल्कि किसी बाहरी विशाल लोक में विस्फोट आदि के कारण कभी-२ ऐसी दुर्घटना हो सकती है। यहाँ इस उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि उस समय पूर्वोक्त विरूप आंगिरस ऋषि से अग्निदेवताक निम्नलिखित छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है-

(१) अग्निः शुचिंव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कविः। शुची रोचत आहुतः।।२१।। (ऋ.८.४४.२१)

छन्द गायत्री। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से विभिन्न अग्नियां अत्यन्त तेजस्वी परन्तु नियंत्रित अवस्था को प्राप्त करती हैं तथा बाहर से आने वाली विकिरणों को भी तेजस्वी बनाकर अपने नियंत्रण में रखती हैं।

(२) उदंग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते। तव ज्योतींष्यर्चयः।।१७।। (ऋ.८.४४.१७)

छन्द निचृद् गायत्री दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से उस आदित्य लोक पर ऊंची-२ शुक्ल ज्वालाएं सर्वत्र प्रकाशित होने लगती हैं।।

इनमें से ग्रन्थकार ने प्रथम ऋचा को पुरोऽनुवाक्या एवं द्वितीय ऋचा को याज्या कहा है, जिनके विषय में पूर्ववत् समझ सकते हैं। इसके साथ ही आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में "अग्नये शुचये स्वाहा" इस याजुषी निचृद् बृहती छन्दरश्मि की उत्पत्ति होती है, जिसके प्रभाव से सम्पूर्ण आदित्य लोक पृथक्-२ और समुचित क्षेत्रों में यथावत् व्यवस्थित रहता हुआ सबको प्रकाशित करता है। इस समय भी पूर्ववत् अष्टाकपाल पुरोळाश रश्मियां सम्पूर्ण आदित्य लोक को व्याप्त करती हैं। यहाँ महर्षि आश्वलायन का भी कथन है- "शुचये संसर्जनेऽग्निनाऽन्येन" (आश्व.श्री.३.१३.४)

इसका आशय भी यह है कि उस बाहरी अग्नि के साथ मिलकर आदित्य लोक और अधिक प्रकाशित हो उठता है परन्तु इस अधिक तेजस्विता के रहते हुए भी उसकी सृजन क्रियाएं यथावत् चलती रहती हैं।।

अब चौबीसवां प्रश्न उपस्थित करते हुए महर्षि कहते हैं कि किसी आदित्य लोक पर जब अति दूरस्थ किसी विशाल आदित्य लोक से उत्सर्जित अति तेजस्विनी तरंगें तीक्ष्ण प्रहार करती हैं तथा इससे सम्पूर्ण आदित्य लोक सहसा ही बड़े वेग से दहकने लग जाए, तब उस आदित्य लोक के स्वरूप का क्या होता है? इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि {उल्मुकम् = ओषति दहतीति (उ.को.ब्रा.३.८४)। अरणी = अरो वै विष्णुस्तस्य वा एषा पत्नी यदरणी (काठ.संक.२१.२-३ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत), (विष्णुपत्नी = पंक्तिर्विष्णोः पत्नी - गो.उ.२.६)} ऐसी स्थिति होने पर {विष्णुः = व्यापको व्यानो धनंजयो वा (तु.म.द.ऋ.भा.६.२१.६)} व्यान और धनंजय प्राण रश्मियों से रक्षित दो पंक्ति छन्द रश्मियों के मध्य आदित्य लोक के सबसे अधिक जलते हुए भाग को रखा जाता है अर्थात् वे दोनों पंक्ति छन्द रश्मियां उस अति तीव्र दहकते भाग को दोनों ओर से आच्छादित कर लेती हैं। यहाँ प्रश्न यह उठ सकता है कि वे कौनसी पंक्ति छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं? इस विषय में हमारा मत यह है कि पूर्व कण्डिका में वर्णित गायत्री एवं निचृद् गायत्री छन्द रश्मियां, जिनकी पुरोऽनुवाक्या एवं याज्या के रूप में उत्पत्ति की चर्चा यहाँ भी की गयी है, वे ही क्रमशः प्राजापत्या पंक्ति एवं निचृद् प्राजापत्या पंक्ति छन्द रश्मियों के रूप में यहाँ व्यवहार करती हुई उस क्षेत्र को आच्छादित करने का प्रयास करती हैं। यदि वे दोनों छन्द रश्मियां उस आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग एवं अन्य भाग में ऐसा करने में समर्थ नहीं हो पाती हैं अर्थात् तीव्र दहकते भाग को सब ओर फैलाकर नियंत्रित नहीं कर पाती हैं, तब आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में

"अग्नये संवर्गाय स्वाहा" इस याजुषी बृहती छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है, जो आदित्य लोक के सम्पूर्ण पदार्थ को उपर्युक्त दोनों पंक्ति छन्द रश्मियों के साथ इस छन्द रश्मि के मिलने से बांधने वा नियंत्रित करने में समर्थ होती हैं। उस समय ही पूर्वोक्त अष्टाकपाल पुरोळाश रश्मियां सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हो जाती हैं और लोक की सभी प्रक्रियाएं यथावत् चलती रहती हैं। ध्यातव्य है कि यहाँ जिन छन्द रश्मियों को पंक्ति कहा है, उन्हीं छन्द रश्मियों को पूर्व कण्डिका में गायत्री कहा गया है। इस कारण इनका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा परिवर्तित हो जाता है। पूर्व कण्डिका में इनका प्रभाव तेज को और अधिक बढ़ाने वाला होता है, जबकि यहाँ इनके प्रभाव से तेज में वृद्धि न होकर अधिक तेजस्वी बना हुआ पदार्थ सर्वत्र फैलकर संयोगादि प्रक्रिया को भी विस्तृत करता है क्योंकि यहाँ दर्शायी गयी दुर्घटना से सम्पूर्ण तारा अधिक दहकने लगता है, इस कारण यहाँ तेज में वृद्धि की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि न्यूनता की आवश्यकता होती है, जिससे कि आदित्य लोक अपनी क्रियाओं को यथावत् बनाये रख सके। इस कारण यहाँ वे गायत्री छन्द रश्मियां ही प्राजापत्या पंक्ति छन्द रश्मियों की भाँति व्यवहार करती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के निर्माण के समय होने वाली कुछ अन्य दुर्घटनाओं की चर्चा करते हुए महर्षि पुनः लिखते हैं कि जब कभी किसी तारे से कोई तीक्ष्ण भेदक शक्तिसम्पन्न विकिरण तेजी से टकराते हैं, तब उस तारे का ताप बहुत अधिक बढ़ जाता है, जिससे उसकी क्रियाएं विक्षुब्ध हो उठती हैं। उस समय दो गायत्री छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जो तारे के ताप को नियंत्रित करती हैं, साथ ही उस तारे के विभिन्न क्षेत्रों को मर्यादित रखने के लिए बृहती छन्द रश्मियां भी उत्पन्न होती हैं। इससे तारे का स्वरूप यथावत् बना रहता है।।

कभी-२ किसी तारे के ऊपर तीव्र विद्युत् तरंगों का भारी प्रहार होता है, उसके कारण भी तारे का पदार्थ विक्षुब्ध और बाधित होने लगता है। उस समय तारे के अन्दर एक गायत्री और एक त्रिष्टुप् छन्द रश्मि उत्पन्न होकर उस विक्षोभ को नियंत्रित करती है तथा एक बृहती छन्द रश्मि उत्पन्न होकर उस तारे के विभिन्न भागों को संरक्षित रखने में सहायक होती है, जिससे तारे का स्वरूप यथावत् बना रहता है।

कभी-२ तारे से ब्रह्माण्ड के अन्य भाग से तेजी से आते हुए तीव्र बलयुक्त विद्युत् आवेशरहित कणों की धाराएं तीव्रता से टकराती हैं। उससे भी तारे का पदार्थ विक्षुब्ध व अस्त व्यस्त होने लगता है। उस स्थिति में दो गायत्री छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर सम्पूर्ण पदार्थ को नियन्त्रित करती हैं। इसी समय तारे के केन्द्रीय भाग में एक बृहती छन्द रश्मि उत्पन्न होकर उस केन्द्रीय भाग को संरक्षित रखती है, इससे तारा अपना स्वरूप बनाये रखता है।

कभी-२ तारे पर ब्रह्माण्ड में अति दूरस्थ किसी विशाल लोक के विस्फोट आदि से उत्पन्न अति तीक्ष्ण बल व वेग से सम्पन्न तरंगें आक्रमण करती हैं, इससे भी सम्पूर्ण तारा अति तीव्रता से दहक उठता है। ऐसी स्थिति में तारे का सम्पूर्ण पदार्थ विक्षुब्ध हो उठता है। उस समय दो पंक्ति छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर उस दहकते पदार्थ को आच्छादित करके उस ताप को नियन्त्रित करती हैं। इसी समय तारे के केन्द्रीय भाग में एक बृहती छन्दरश्मि उत्पन्न होकर तारे के केन्द्रीय पदार्थ को संरक्षित व नियन्त्रित करती है। इस प्रकार तारा अपना स्वरूप यथावत् बनाए रखता है।।

इति ३२.६ समाप्तः

अथ ३२.७ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. तदाहुर्य आहिताग्निरुपवसथेऽश्रु कुर्वीत, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; सोऽग्नये व्रतभृतेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत्, तस्य याज्याऽनुवाक्ये 'त्वमग्ने व्रतभृच्छुचिर्'-व्रतानि बिभ्रद् व्रतपा अदब्ध इत्याहुतिं, वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये व्रतभृते स्वाहेति, सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।
तदाहुर्य आहिताग्निरुपवसथेऽव्रत्यमापद्येत, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; सोऽग्नये व्रतपतयेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत्, तस्य याज्यानुवाक्ये 'त्वमग्ने व्रतपा असि'-'यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानीत्याहुतिं' वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये व्रतपतये स्वाहेति, सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।
तदाहुर्य आहिताग्निरमावास्यां पौर्णमासीं वाऽतीयात्, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; सोऽग्नये पथिकृतेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत्, तस्य याज्यानुवाक्ये 'वेत्था हि वेधो अध्वन', 'आ देवानामपि पन्थामगन्मेत्याहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये पथिकृते स्वाहेति, सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।
तदाहुर्यस्य सर्व एवाग्नय उपशाम्येरन्, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; सोऽग्नये तपस्वते जनद्वते पावकवतेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत् तस्य याज्यानुवाक्ये 'आयाहि तपसा जनेष्वा नो याहि तपसा जनेष्वित्याहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये तपस्वते जनद्वते पावकवते स्वाहेति, सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।७।।

व्याख्यानम्- {अश्रुः = अथ यदश्रु संक्षरितमासीत्सोऽश्मा पृश्निरभवदश्रुर्ह वै तमश्मेत्याचक्षते परोऽक्षम् (श.६.१.२.३), अश्नुते व्याप्नोतीति अश्रु (उ.को.५.२६), अथ यदश्रु संक्षरितमासीत्सोऽश्रुरभवदश्रुर्ह वै तमश्व इत्याचक्षते परोऽक्षम् (श.६.१.१.११), अश्रुष्वेव (प्रजापतेः) अश्वोऽजायत (काठ.संक.१७.७ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत)। अक्रमा = मेघनाम (निघं.१.१०)} अब पच्चीसवां प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि किसी निर्माणाधीन आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग के निर्माण की प्रक्रिया पूर्ण होने से कुछ पूर्व ही वहाँ विद्यमान संयोज्य पदार्थ आशुगामी मेघों के रूप में परिवर्तित हो जाए अर्थात् वह पदार्थ स्थिरता एवं केन्द्रीकरण की स्थिति को प्राप्त न होकर आशुगति से इतस्ततः विचलित होने लगे, उस समय उस आदित्य लोक का निर्माण पूर्ण कैसे हो पाता है? इसका उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि इस समय पुरोऽनुवाक्या और याज्या संज्ञक दो छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"अग्निर्व्रतभृत्।"

"त्वमग्ने व्रतभृच्छुचिरग्ने देवाः इहावह। उप यज्ञं हविश्च नः। व्रतानि बिभ्रद्व्रतपा अदब्धो यजानो देवाँ अजरः सुवीरः। दधद्रत्नानि सुमृळीको अग्ने गोपाय नो जीवसे जातवेद इति।" (आश्व.श्रौ.३.१२.१३,१४)

इसका तात्पर्य यह है कि आदित्य के केन्द्रीय भाग में विभिन्न क्रियाओं का पोषण व रक्षण करने वाली दो छन्द रश्मियां निम्नानुसार उत्पन्न होती हैं-

(१) त्वमग्ने व्रतभृच्छुचिरग्ने...................हविश्च नः।" यह ऋचा किसी भी वेद संहिता में नहीं है किन्तु महर्षि आश्वलायन ने अपने उपर्युक्त सूत्र में इसे दिया है। सायण भाष्य की पाद टिप्पणी के

अनुसार यह ऋचा तैत्तिरीय ब्राह्मण २.४.१.११ एवं शांखायन श्रौतसूत्र ३.४.१२, ५.८ में भी विद्यमान है। इसका देवता अग्नि और छन्द गायत्री है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से विभिन्न कर्मों का भरण-पोषण करने वाला अग्नि केन्द्रीय भागस्थ विभिन्न परमाणुओं में सर्वत्र व्याप्त होकर उन्हें नानाविध संगत करता है।

(२) "व्रतानि बिभ्रद्व्रतपा................जीवसे जातवेदः।" यह ऋचा भी किसी वेद संहिता में उपलब्ध नहीं है परन्तु आश्वलायन श्रौतसूत्र के उपर्युक्त सूत्र एवं उपरि उद्धृत तैत्तिरीय ब्राह्मण और शांखायन श्रौतसूत्र में यह ऋचा विद्यमान है। इसका देवता अग्नि तथा छन्द त्रिष्टुप् है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से केन्द्रीय भाग में विभिन्न प्राण रश्मियां, छन्द रश्मियों के साथ संगत होकर तीक्ष्ण और रमणीय अग्नि को उत्पन्न करती हैं। वह किसी से न दवने वाला बलवान् अग्नि विभिन्न परमाणुओं को संगत करता हुआ नाना प्रकार के परमाणुओं को उत्पन्न करता है। ये क्रियाएं निरन्तर एवं सहज भाव से होती रहती हैं।

इन ऋचाओं में से प्रथम ऋचा पुरोऽनुवाक्या एवं द्वितीय ऋचा याज्या का प्रभाव दर्शाती है। इस प्रभाव को पूर्ववत् समझें। इसी समय केन्द्रीय भाग में "अग्नये व्रतभृते स्वाहा" यह याजुषी बृहती छन्द रश्मि उत्पन्न होती है, जिसके कारण अग्नि तत्त्व की उपर्युक्त क्रियाएं और उसके तेज सतत पुष्ट होते रहते हैं। इस समय भी पूर्वोक्त अष्टाकपाल पुरोळाश रश्मियां संपूर्ण लोक को व्याप्त करती हैं और आदित्य लोक यथावत् अपने स्वरूप को बनाये रखता है।।

अव छब्बीसवां प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि किसी निर्माणाधीन आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग के निर्माण की प्रक्रिया पूर्ण होने के ठीक पूर्व ही किन्हीं बाधाओं के कारण संलयन आदि क्रियाएं प्रारम्भ न हो पाएं, तव आदित्य लोक का निर्माण कैसे होगा?

इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि उस समय वत्सः काण्व ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न एक सूक्ष्म वायु विशेष से **अग्निदेवताक एवं आर्ची भुरिग् गायत्री छन्दस्क-**

त्वम॑ग्ने व्रत॒पा अ॑सि दे॒व आ मर्त्ये॒ष्वा। त्वं य॒ज्ञेष्वीड्यः॑।।१।। (ऋ.८.११.१)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से अग्नि के परमाणु सतत परिवर्तनशील परमाणुओं को सब ओर से प्रकाशित और संगत करते हुए नाना प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करते हैं।

तदुपरान्त आप्त्यस्त्रितः ऋषि अर्थात् व्यापक प्राण, अपान और व्यान रश्मियों के समूह से अग्निदेवताक एवं त्रिष्टुप् छन्दस्क-

यद्वो॑ व॒यं प्र॑मि॒नाम॑ व्र॒तानि॑ वि॒दुषां॑ देवा॒ अवि॑दुष्टरासः।
अ॒ग्निष्टद्विश्व॒मा पृ॑णाति वि॒द्वान्येभि॑र्दे॒वाँ ऋ॒तुभिः॑ क॒ल्पया॑ति।।४।। (ऋ.१०.२.४)

ऋचा उत्पन्न होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से अग्नि तत्त्व विभिन्न ऋतु एवं प्राण रश्मियों से समर्थ होकर सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग को परिपूर्ण करता है, जिसके कारण आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में स्थित पदार्थ को हिंसित करने वाली शक्तियां नष्ट होने लगती हैं।

उपर्युक्त दोनों रश्मियां क्रमशः पुरोऽनुवाक्या और याज्या के रूप में कार्य करती हैं, जिनका प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसी समय केन्द्रीय भाग में "अग्नये व्रतपतये स्वाहा" इस याजुषी बृहती छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है, जिसके प्रभाव से केन्द्रीय भाग में {व्रतम् = व्रतं कर्मनाम (निघं.२.१), वीर्यं वै व्रतम् (श.१३.४.१.१५), अन्नं वै व्रतम् (श.७.५.१.२५; तां.२२.४.५)} नाना प्रकार के संयोजक तेजस्वी बलों की उत्पत्ति होकर संयोजन, संलयन आदि क्रियाएं समृद्ध होने लगती हैं। इस समय भी पूर्वोक्त अष्टाकपाल पुरोळाश रूपी रश्मियां सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हो जाती हैं। यहाँ महर्षि आश्वलायन का भी कथन है-

"व्रतातिपत्तौ व्रतपतये" (आश्व.श्रौ.३.१३.२), यहाँ अतिपत्तिः = असफलता (आप्टे)

इसका तात्पर्य यह है कि आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग की सम्पूर्ण क्रियाओं को पूर्ण और संरक्षित करने के लिए इन उपर्युक्त छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है।।

अब सत्ताईसवां प्रश्न प्रस्तुत करते हुए महर्षि लिखते हैं कि {अमावास्या/पौर्णमासी = तस्य (संवत्सरस्य) एते प्राणापाना यत् पौर्णमास्यश्चामावास्याश्च (जै.ब्रा.२.३६४), देवानां वा एते सदोहविर्धाने यत् पौर्णमासी चामावस्या च................. उभे पुण्याहे उभे यज्ञिये (मै.१.६.६), ब्रह्म वै पौर्णमासी क्षत्रममावास्या (कौ.ब्रा.४.८), (ब्रह्म = ब्रह्मैव मित्रः - श.४.१.४.१, ब्रह्म वै गायत्री - ऐ.४.११; मै.४.७.३; जै.ब्रा.१.२६३)। क्षत्रम् = क्षत्रं वै वरुणः (कौ.ब्रा.७.१०; श.४.१.४.१), क्षत्रं वै त्रिष्टुप् (कौ.ब्रा.७.१०; जै.ब्रा.१.२६३)} किसी आदित्य लोक के अन्दर विभिन्न हवियों का आधान करने वाली प्रमुख रश्मियों में से प्राण एवं अपान तथा गायत्री एवं त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की क्रियाएं समुचित रूप से संपादित न हो रही हों किंवा ये स्वयं एक-दूसरे का अतिक्रमण करने लगें, तब उस आदित्य लोक का क्या होगा? ध्यातव्य है कि प्राण एवं अपान तथा गायत्री एवं त्रिष्टुप् रश्मियों की विभिन्न लोकों में अतिमहत्वपूर्ण एवं सर्वाधिक संयुक्त भूमिका होती है। इस कारण इनकी सभी क्रियाएं परस्पर एक-दूसरे के साथ समन्वित होती हुई ही होती हैं। इनके पारस्परिक अतिक्रमण से सम्पूर्ण लोक पर संकट आ खड़ा होता है। इसी प्रकार प्राण एवं अपान रश्मियों को भी समझें। इस उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि ऐसी परिस्थिति में पूर्वोक्त भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि से अग्निदेवताक एवं निचृद्गायत्री छन्दस्क-

वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा। अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो।।३।। (ऋ.६.१६.३)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {वेधाः = मेधाविनाम (निघं.३.१५), इन्द्रो वै वेधाः (ऐ.६.१०; गो.उ.२.२०)} विभिन्न क्रियाओं में प्रकाशित होता हुआ इन्द्रतत्त्व सूत्रात्मा वायु रश्मियों से विशेषरूप से संगत होकर वेग के साथ नाना मार्गों को प्रकाशित करता हुआ संयोजक कर्मों को समृद्ध करता है।

तदुपरान्त पूर्वोक्त आप्त्यस्त्रित ऋषि से अग्निदेवताक एवं त्रिष्टुप् छन्दस्क-

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनु प्रवोळ्हुम्।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात्सेदु होता सो अध्वरान्त्स ऋतून्कल्पयाति।।३।। (ऋ.१०.२.३)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से अग्नितत्त्व विभिन्न देव परमाणुओं के मार्गों को सब ओर से व्याप्त करता हुआ उन परमाणुओं को वहन करने में समर्थ होता है। वह अग्नितत्त्व विभिन्न प्राण और ऋतु रश्मियों के द्वारा समर्थ होकर देव परमाणुओं का विशेषरूप से यजन करता है।

ये उपर्युक्त दोनों ऋचाएं क्रमशः पुरोनुवाक्या और याज्या का प्रभाव दर्शाती हैं, जिनको हम पूर्ववत् समझ सकते हैं। इसी समय आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में "अग्नये पथिकृते स्वाहा" इस याजुषी बृहती छन्दरश्मि की उत्पत्ति होती है, जिसके प्रभाव से अग्नितत्त्व विभिन्न परमाणुओं के मार्गों को बनाता हुआ, उन्हें अच्छी प्रकार क्रियाशील कराता है। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का भी कथन है-

"यदि तृतीयाद्यमावास्यां पौर्णमासीं वा.....।"

"अग्निः पथिकृत्।"

"वेत्था हि वेधो अध्वन आ देवानामपि पन्थामगन्मेति। अनड्वान्दक्षिणा (आश्व.श्रौ.३.१०.१०-१२)

यहाँ भी पूर्ववत् अष्टाकपाल पुरोळाश रश्मियां सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हो जाती हैं। ध्यातव्य है कि महर्षि आश्वलायन के उपर्युक्त वचनों से ग्रन्थकार के मत की ही पुष्टि होती है। इस प्रकार आदित्य लोक अपना स्वरूप यथावत् बनाये रखता है।।

अब अट्ठाईसवां प्रश्न उपस्थित करते हुए महर्षि कहते हैं कि यदि किसी आदित्य लोक की तीनों अग्नियां अर्थात् आहवनीय अग्नि, गार्हपत्य अग्नि एवं दक्षिणाग्नि सभी शान्त हो जाएं और सम्पूर्ण आदित्य लोक ही ठण्डा होने लगे, तब उस लोक का क्या होता है? इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि इस स्थिति में भी पुरोऽनुवाक्या और याज्या संज्ञक दो छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इन छन्द रश्मियों को महर्षि आश्वलायन ने उद्धृत किया है, जो इस प्रकार हैं-

"आयाहि तपसा जनेष्वग्ने पावको अर्चिषा। उपेमां सुष्टुतिं मम। आ नो याहि तपसा जनेष्वग्ने पावक दीद्यत्। हव्या देवेषु नो दधदिति। प्रणीतेऽनुगते प्राग्घोमादिष्टिः।" (आश्व.श्रौ.३.१२.२७) इस सूत्र के अनुसार दो छन्द रश्मियां निम्नानुसार उत्पन्न होती हैं-

(१) आयाहि तपसा.....................सुष्टुतिं मम।" इसका छन्द गायत्री देवता अग्नि है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से शोधक अग्नितत्त्व अपनी तेजस्विनी रश्मियों के साथ सम्पूर्ण तारे में व्याप्त होकर तारे में ताप और प्रकाश को समृद्ध करता है।

(२) "आ नो याहि..................नो दधत्।" इसका छन्द भी गायत्री और देवता अग्नि है। इसके प्रभाव से पावक अग्नितत्त्व विभिन्न हव्य मास रश्मियों को धारण करता हुआ सभी परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त होकर ऊष्मा को समृद्ध करता है।

ये दोनों ऋचाएं क्रमशः पुरोऽनुवाक्या और याज्या संज्ञक हैं, जिनका प्रभाव पूर्ववत् समझ सकते हैं। ये दोनों ही ऋचाएं किसी भी वेद संहिता में उपलब्ध नहीं हैं। इस समय आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में "अग्नये तपस्वते जनद्वते पावकवते स्वाहा" इस आर्चीगायत्री छन्दरश्मि की उत्पत्ति होती है, जिसके प्रभाव से अग्नितत्त्व शोधन की क्रिया के साथ-२ संयोग और सृजन की प्रक्रिया और ऊष्मा उत्पादन की क्रियाएं समृद्ध और सशक्त होती हैं। इस छन्दरश्मि की उत्पत्ति का संकेत महर्षि आश्वलायन ने भी इस प्रकार किया है-

"तत इष्टिरग्निस्तपस्वाञ्जनद्वान्पावकवान्।" (आश्व.श्रौ.३.१२.२६)

यहाँ भी पूर्वोक्तवत् अष्टाकपाल पुरोळाश रश्मियां सम्पूर्ण आदित्य लोक को व्याप्त करती हैं। इस प्रकार आदित्य लोक अपने स्वरूप को यथावत् बनाये रखता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- किसी भी तारे के केन्द्रीय भाग के निर्माण के समय जब पदार्थ संघनित हो रहा होता है, उस समय पदार्थ केन्द्रीभूत न होकर बिखरता हुआ इधर-उधर डगमगाने लगे, तब उसको समुचितरूप प्रदान करने के लिए एक गायत्री, एक त्रिष्टुप् एवं एक बृहती छन्दरश्मि उत्पन्न होती है, जिनसे संघनित होता पदार्थ तीव्ररूप से आकर्षण बल से युक्त होकर केन्द्रीभूत होने लगता है। इसके साथ ही उच्च ताप और दाब की भी स्थिति उत्पन्न होकर नाभिकीय संलयन की क्रियाएं भी प्रारम्भ होने लगती हैं।

जब किसी प्रकार नाभिकीय संलयन की क्रियाएं उत्पन्न होने योग्य ताप एवं दाब का निर्माण न हो पाए, तो पुनः अन्य एक-२ गायत्री-त्रिष्टुप् और बृहती छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जिनके कारण निर्माणाधीन केन्द्रीय भाग में ताप और दाब की मात्रा इतनी बढ़ जाती है कि नाभिकीय संलयन की क्रिया प्रारम्भ होने लगती है।

कभी-२ निर्माणाधीन तारों में ऐसी भी विकृति आ जाती है, जब उनके अन्दर विभिन्न प्रकार की प्राण व छन्द रश्मियों, जो प्रायः युग्मरूप में कार्य करती हैं, के युग्म शिथिल होने लगते हैं, जिसके कारण विद्युत् चुम्बकीय बल नष्ट होने लगते हैं। इससे सम्पूर्ण तारे के अस्तित्त्व पर ही संकट उपस्थित हो जाता है। विभिन्न कणों का क्षय होने लगता है। उस समय एक गायत्री, एक त्रिष्टुप् एवं एक बृहती छन्द रश्मि उत्पन्न होती है। इनकी उत्पत्ति से युग्म रूप में कार्यरत नाना प्रकार की रश्मियां पुनः सक्रिय होकर विद्युत् चुम्बकीय आदि बलों को समृद्ध करके तारे के निर्माण की प्रक्रिया को गति देती हैं।।

कभी-२ किन्हीं कारणों से अथवा नाभिकीय ईन्धन के समाप्त होने पर कोई तारा ठण्डा होने लगता है, उस समय तीन गायत्री छन्दरश्मियां उत्पन्न होकर तारे के अन्दर विद्यमान विभिन्न कणों को ऊर्जा और बल प्रदान करके संघनित करने लगती हैं, जिसके कारण धीरे-२ वह मृत तारा पुनर्जीवित होने लगता है।।

इति ३२.७ समाप्तः

ॐ अथ ३२.८ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. तदाहुर्य आहिताग्निराग्रयणेनानिष्ट्वा नवान्नं प्राश्नीयात्, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; सोऽग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं पुरोळाशं निर्वपेत्, तस्य याज्यानुवाक्ये 'वैश्वानरो अजीजनत्' 'पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यामित्याहुतिं' वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये वैश्वानराय स्वाहेति; सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।
तदाहुर्य आहिताग्निर्यदि कपालं नश्येत्, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; सोऽश्विभ्यां द्विकपालं पुरोळाशं निर्वपेत्, तस्य याज्यानुवाक्ये 'अश्विना वर्तिरस्मद्'– 'आ गोमता नासत्या रथेनेत्याहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादश्विभ्यां स्वाहेति, सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।
तदाहुर्य आहिताग्निर्यदि पवित्रं नश्येत्, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; सोऽग्नये पवित्रवतेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत्, तस्य याज्यानुवाक्ये 'पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते'–'तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पद इत्याहुतिं वाहवनीये जुहुयादग्नये पवित्रवते स्वाहेति, सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।
तदाहुर्य आहिताग्निर्यदि हिरण्यं नश्येत्, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; सोऽग्नये हिरण्यवतेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत्, तस्य याज्यानुवाक्ये 'हिरण्यकेशो रजसो विसार'–'आ ते सुपर्णा अमिनन्तँ एवैरित्याहुतिं वाहवनीये जुहुयादग्नये हिरण्यवते स्वाहेति, सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।

व्याख्यानम्– अब उनतीसवां प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि {आग्रयणः = अङ्गति प्राप्नोति येन तस्यायम् (म.द.य.भा.१३.५८), आत्मा वा आग्रयणः (श.४.२.२.५), आग्रयणो द्वादशकपालो भवति (मै. ४.३.२), प्रजापतिर्वा आग्रायणः (मै.४.६.४; ८.८; काठ.२७.६) संवत्सराद्वा एतदधिप्रजायते यदाग्रयणम् (गो.उ.१.१७)। नव = न वननीया नावाप्ता वा (नि.३.१०)} आदित्य लोकों का आहिताग्नि अर्थात् केन्द्रीय भाग में विद्यमान अग्नि संपूर्ण आदित्य लोक में विचरता हुआ नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को उत्पन्न वा संगत करने में सक्षम होने के पूर्व ही यदि वह लोक किन्हीं बाहरी अवांछित वा असंयोजनीय परमाणु आदि पदार्थों का भक्षण करने लगता है अर्थात् उन्हें अपने में समाहित करने लगता है, तो ऐसी स्थिति में आदित्य लोक अपने स्वरूप को कैसे निर्मित करता वा बनाये रखता है? इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि उस समय भी दो छन्दरश्मियां उत्पन्न होती हैं। ये छन्दरश्मियां किसी वेद संहिता में उपलब्ध नहीं हैं, बल्कि इनको महर्षि आश्वलायन ने निम्न प्रकार उद्धृत किया है–

"वैश्वानरो अजीजनदग्निर्नो नव्यसीं मतिम्। क्ष्मया वृधान ओजसा। पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्याम्। पर्जन्याय प्रगायत प्रवाता वान्ति पतयन्ति विद्युत इति।" (आश्व.श्रौ.२.१५.२)

इस सूत्र के अनुसार निम्नलिखित दो छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं–

(१) "वैश्वानरो अजीजनत्..................वृधान ओजसा।" इसका देवता वैश्वानर अग्नि तथा छन्द गायत्री है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों का वाहक अग्नितत्त्व अपने सम्पीडक बलों के द्वारा पार्थिव परमाणुओं को समृद्ध करता हुआ नूतन दीप्तियों को प्राप्त करता है।

(२) "पृष्टो दिवि पृष्टो................. विद्युते।" इसका छन्द निचृदनुष्टुप् और देवता अग्नि है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {पृष्टः = सिक्तः स्थितः (म.द.य.भा.३३.६२)। पर्जन्यः = क्रन्दतीव हि पर्जन्यः (श.६.७.३.२), पर्जन्यो वा अग्निः (श.१४.६.१.१३), वृषा पर्जन्यः (मै.२.४.८; काठ.११.१०) परो जेता वा। परो जनयिता वा। प्रार्जयिता वा रसानाम् (नि.१०.१०)} अग्नि तत्त्व प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के पदार्थों को सिक्त करता हुआ आदित्य लोक में गम्भीर घोषों को उत्पन्न करता है। वह बाधक पदार्थों को नियंत्रित करता हुआ विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को अनुकूल और श्रेष्ठ गति प्रदान करता है, जिससे वे परमाणु आदि पदार्थ नाना प्रकार की गतियों से युक्त हो जाते हैं।

इन दोनों ऋचाओं में से प्रथम ऋचा पुरोऽनुवाक्या एवं द्वितीय ऋचा याज्या का प्रभाव दर्शाती है, जिसे पूर्ववत् समझ सकते हैं। इस समय "अग्नये वैश्वानराय स्वाहा" इस याजुषी पंक्ति छन्द रश्मि की भी आदित्य के केन्द्रीय भाग में उत्पत्ति होती है। इसके प्रभाव से सबका वाहक अग्नि सम्यग् रूप से क्रियाशील हो उठता है।

इन सब छन्दरश्मियों के प्रभाव से द्वादशकपालरूप पुरोळाश रश्मियां संपूर्ण आदित्य लोक को व्याप्त करती हैं। यहाँ द्वादशकपाल, अग्नि के ऐसे परमाणुओं का नाम है, जिनमें बारह प्रकार के प्राण विद्यमान होते हैं। ये बारह प्राण इस प्रकार हैं- प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय, सूत्रात्मा वायु एवं छन्द रश्मियां। इन द्वादश कपाल रश्मियों को ही आग्रयण कहा जाता है। ये अग्नि के परमाणु अष्टाकपाल पुरोळाश संज्ञक अग्नि के परमाणुओं से अधिक समृद्ध होते हैं। अग्नि तत्त्व के विषय में विशेष जानकारी हम पूर्वपीठिका में दे चुके हैं।।

अब तीसवां प्रश्न उपस्थित करते हुए महर्षि कहते हैं कि जब किसी आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग के निर्माण के समय कपालरूप रश्मियां ही नष्ट वा निष्क्रिय हो जाएं, तब उस लोक का निर्माण कैसे होता है? हमने यहाँ सर्वत्र कपाल का अर्थ प्राणापानादि रश्मियां ग्रहण किया है। ये रश्मियां ही विभिन्न प्रकार के पदार्थों को बल और तेज प्रदान करती हुई बाधक रश्मियों में व्याप्त होकर उनको नियंत्रित करती हैं। हमारे कथन की पुष्टि निम्न आर्ष वचन से भी होती है-

"कपालैश्छन्दांसि (भ्रातृव्यस्याप्नोति)।" (काठ.१०.१)

इससे संकेत मिलता है कि जो भी छन्द रश्मियां सूक्ष्म वा विशाल स्तर पर आसुर रश्मियों को नियंत्रित करती हैं, वे इन प्राणादि रश्मियों के द्वारा ही ऐसा कर पाती हैं। यहाँ प्रश्न यही है कि यदि ऐसी ये प्राणादि रश्मियां किसी कारणवश अदृश्य वा दुर्बल हो जाएं, तो उस लोक का निर्माण कैसे होगा? इसका उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि उस पूर्वोक्त राहूगणपुत्रो गोतम ऋषि से उषादेवताक एवं उष्णिक् छन्दस्क -

अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत्। अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम्।।१६।। (ऋ.१.९२.१६)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {दस्रः = दस्रौ दर्शनीयौ (नि.६.२६)। वर्तिः = मार्गः (म.द.ऋ.भा.६.४९.५)} विभिन्न प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणु विभिन्न छन्द रश्मियों के द्वारा तेजस्वी रूप प्राप्त करके एवं दर्शनीय स्वरूप वाले होकर अपने-२ मार्गों में निरन्तर एवं नियंत्रित होकर गमन करते हैं।

तदनन्तर पूर्वोक्त वसिष्ठ ऋषि से अश्विनौ-देवताक एवं निचृत्त्रिष्टुप् छन्दस्क -

आ गोमता नासत्या रथेनाश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम्।
अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना।।१।। (ऋ.७.७२.१)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वे प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणु विभिन्न छन्द रश्मियों से नित्य युक्त होकर तेजस्वी रमणीय रूप प्राप्त करके आशुगमन करते हुए संपूर्ण लोक को व्याप्त करते हैं। वे विभिन्न प्राण रश्मियों के द्वारा विस्तार, दीप्ति और बल को प्राप्त करके नाना प्रकार से संगत होते हैं।

ये दोनों ऋचाएं क्रमशः पुरोऽनुवाक्या एवं याज्या का व्यवहार करती हैं, जिसका प्रभाव पूर्ववत् समझ सकते हैं। इसी समय "अश्विभ्यां स्वाहा" इस दैवी पंक्ति छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है, जिसके प्रभाव से प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के परमाणु विभिन्न प्राण रश्मियों के विशेष सक्रिय होने के कारण सक्रिय हो उठते हैं। यह दैवी छन्द रश्मि आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग में उत्पन्न होती है। इस समय द्विकपाल पुरोळाश रश्मियां उत्पन्न होती हैं। हमारे मत में प्राण एवं अपान का युग्म रूप ही द्विकपाल पुरोळाश रश्मियों का रूप है। इसके व्याप्त और सक्रिय होने से अन्य सभी प्राण रश्मियां सक्रिय होकर सम्पूर्ण लोक के विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को सक्रिय कर देती हैं और सम्पूर्ण आदित्य लोक अपने यथावत् स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।।

अब इकतीसवां प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि {पवित्रम् = अन्तरिक्षं वै पवित्रम् (काठ.२६.१०; क.४१.८), अग्निर्वाव पवित्रम् (तै.ब्रा.३.३.७.१०), आपो वै पवित्रम् (जै.ब्रा.१.१२१), एतद्वा अछिद्रं पवित्रं यत् सूर्यस्य रश्मयः (मै.३.६.३; ४.४.२)।} यदि किसी आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में विद्यमान अग्नि आदि तन्मात्राएं, आकाश तत्त्व एवं विभिन्न प्राणादि रश्मियां अदृश्य अथवा अस्त-व्यस्त हो जायें, तब उस आदित्य लोक का क्या होगा? 'पवित्र' के विषय में महर्षि यास्क का कथन है-

"मन्त्रः पवित्रमुच्यन्ते। रश्मयः पवित्रमुच्यते। आपः पवित्रमुच्यन्ते। अग्निः पवित्रमुच्यते। वायुः पवित्रमुच्यते। सोमः पवित्रमुच्यते। सूर्यः पवित्रमुच्यते। इन्द्रः पवित्रमुच्यते।।" (नि.५.६)

इससे संकेत मिलता है कि इस परिस्थिति में आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में विद्यमान सभी प्रकार के पदार्थ अर्थात् विभिन्न तन्मात्राएं सोम और अग्नि रश्मियां, पावक वायु अर्थात् प्राणादि रश्मियां एवं इन्द्र तत्त्व सभी कुछ अस्त-व्यस्त हो जाते हैं, जिसके कारण सम्पूर्ण लोक का अस्तित्त्व ही संकटग्रस्त हो सकता है। ऐसी स्थिति को दर्शाता हुआ ही उपर्युक्त प्रश्न उठाया गया है। इसका उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि ऐसी परिस्थिति में पवित्र ऋषि अर्थात् विभिन्न प्राण व सोम रश्मियों से पवमानः सोमो-देवताक निम्नलिखित छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है-

(१) पवित्रं ते वितंतं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत।।१।। (ऋ.९.८३.१)

छन्द निचृज्जगती, दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियां, समर्थ पवित्र और विस्तृत होती हैं। वे अन्य सभी रश्मियों को सब ओर से व्याप्त करके बांधती व सक्रिय करती हैं। ये रश्मियां अवांछित और बाधक पदार्थों को दूर रखकर वांछनीय सभी पदार्थों को व्याप्त करती हैं।

(२) तपोष्पवित्रं वितंतं दिवस्पदे शोचन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन्।
अवन्त्यस्य पवीतारमाशवो दिवस्पृष्ठमधि तिष्ठन्ति चेतसा।।२।। (ऋ.९.८३.२)

छन्द विराड्जगती, दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से सोम रश्मियां केन्द्रीय भाग में तप्त और विस्तृत होती हुई स्थायी दीप्ति को प्राप्त करती हैं, साथ ही विभिन्न प्राण व सोम रश्मियां पावक अग्नि, इन्द्र आदि पदार्थों को सतत सक्रियता प्रदान करती हैं।

इनमें से प्रथम ऋचा पुरोऽनुवाक्या एवं द्वितीय ऋचा याज्या का प्रभाव दर्शाती है, जिसे पाठक पूर्ववत् समझ सकते हैं। इसके साथ ही केन्द्रीय भाग में "अग्नये पवित्रवते स्वाहा" इस याजुषी पंक्ति छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है, जिसके प्रभाव से केन्द्रीय पदार्थ परस्पर संगत और विस्तृत होते रहते हैं, साथ ही पवित्र नामक सभी उपर्युक्त पदार्थ सक्रिय होकर अग्नि तत्त्व को समृद्ध करते हैं। इस समय भी पूर्वोक्त अष्टाकपाल पुरोडाश रश्मियां संपूर्ण आदित्य लोक में व्याप्त हो जाती हैं तथा संपूर्ण आदित्य लोक यथावत् स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।।

अब बत्तीसवां प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में विद्यमान अग्नि एवं विभिन्न परमाणुओं का संयोजक बल दोनों ही व्यापक और विरल हो जाएं और इससे केन्द्रीय

भाग की तेजस्विता और सक्रियता न्यून वा नष्ट हो जाए, तब उस लोक का स्वरूप कैसे बना रहता है? इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि उस समय पूर्वोक्त राहूगणो गोतम ऋषि प्राण रश्मियों से अग्निदेवताक निम्नलिखित छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है-

(१) हिर॑ण्यकेशो॒ रज॑सो विसा॒रेऽहि॒र्धुनि॒र्वात॑इव॒ ध्रजी॑मान्।
शुचि॑भ्राजा उ॒षसो॒ नवे॑दा॒ यश॑स्वतीरप॒स्युवो॒ न स॒त्याः॥१॥ (ऋ.१.७६.१)

छन्द विराट् त्रिष्टुप्, दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {विसारम् = विशेषेण स्थिरत्वम् (तु.म.द.भा.)} विभिन्न परमाणु तेजस्विनी रश्मियों के साथ विशेष रूप से स्थिर क्रियाओं को प्राप्त करने लगते हैं। {अहिः = मेघनाम (निघं.१.१०), अही गोनाम (निघं.२.११), द्यावापृथिव्योर्नाम (निघं.३.३०)} विभिन्न प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणु तीव्रता से कांपते हुए तीव्र तेजस्वी रश्मियों से युक्त होकर नाना प्रकार की प्राण रश्मियों एवं क्रियाओं को निरन्तर प्राप्त करते रहते हैं।

(२) आ ते॑ सुप॒र्णा अ॑मिनन्तँ॒ एवैः॑ कृ॒ष्णो नो॑नाव वृष॒भो यदी॒दम्।
शि॒वाभि॒र्न स्मय॑माना॒भिरागा॒त्पत॑न्ति॒ मिहः॑ स्त॒नय॑न्त्य॒भ्रा॥२॥ (ऋ.१.७६.२)

छन्द निचृत्त्रिष्टुप्, दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से विभिन्न कर्मों की पालिका प्राण व मरुद् रश्मियां आदित्य लोक में सब ओर प्रक्षिप्त होती हुई अपनी व्याप्तियों के द्वारा अति प्रशंसित वर्षक बलों से सबको युक्त करती हैं। उस समय आदित्य लोक में नाना क्रियाओं को सहज बनाने वाली विभिन्न कमनीय रश्मियां सब ओर व्याप्त होकर मेघरूप पदार्थों को संसिक्त और ध्वनियुक्त करती हैं।

ये उपर्युक्त ऋचाएं क्रमशः पुरोऽनुवाक्या और याज्या का प्रभाव दर्शाती हैं, जिसे पूर्ववत् समझ सकते हैं। इसके साथ ही केन्द्रीय भाग में "अग्नये हिरण्यवते स्वाहा" इस याजुषी पंक्ति छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है, जिसके छान्दस प्रभाव के अतिरिक्त अग्नितत्त्व तेजस्वी और सक्रिय होने लगता है। इस समय पूर्वोक्त अष्टाकपाल पुरोळाश रश्मियां सम्पूर्ण तारे को व्याप्त करती हैं। इसके कारण आदित्य लोक अपनी सम्पूर्ण क्रियाओं को यथावत् सम्पादित करने में सक्षम होता है॥

वैज्ञानिक भाष्यसार- निर्माणाधीन तारों में कुछ अन्य बाधाओं और उनके निवारण की पुनः यहाँ चर्चा की गयी है। जब किसी तारे के केन्द्रीय भाग में कुछ ऐसे पदार्थ आने लगते हैं, जिनका संलयन संभव नहीं होता, उस समय एक गायत्री, एक अनुष्टुप् और एक पंक्ति छन्दरश्मि उत्पन्न होती है, जिससे तारों के अन्दर सम्पूर्ण पदार्थ में गम्भीर घोष उत्पन्न होने लगते हैं। केन्द्रीय भाग अधिक क्रियाशील और तापयुक्त हो उठता है, जिससे संपूर्ण पदार्थ संलयित होने लगता है। उस समय ऐसे विकिरण उत्पन्न होने लगते हैं, जिनमें प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल धनंजय, देवदत्त, सूत्रात्मा वायु एवं छन्दरश्मियां सभी विद्यमान होते हैं। इन विकिरणों के कारण नाभिकीय बलों में भारी वृद्धि होने से असंलयनीय पदार्थ भी संलयित होने लगते हैं।

यदि किसी तारे के निर्माण के समय विभिन्न प्राणरश्मियां किसी कारणवश दुर्बल और निष्क्रिय हो जाएं, जिससे विभिन्न प्रकार के बल क्षीण हो जाएं, ऐसी स्थिति में उष्णिक्, त्रिष्टुप् एवं दैवी पंक्ति छन्दरश्मियां उत्पन्न होकर सभी प्राणरश्मियों को सक्रिय करके विभिन्न कणों और विकिरणों को बल प्रदान करती हैं, जिससे वे सभी पदार्थ पुनः सक्रिय होकर तारे का यथाविध निर्माण करने लगते हैं।

यदि कभी तारे के निर्माण के समय सभी प्रकार के पदार्थ पर्याप्त संपीडक एवं गुरुत्व बल के अभाव में बिखरने लगें, तो ऐसी स्थिति में दो जगती और एक पंक्ति छन्दरश्मि उत्पन्न होकर सभी पदार्थों में पुनः सभी प्रकार के बलों को उत्पन्न करके उनकी पारस्परिक संयोग-वियोग आदि प्रक्रियाओं को तीव्र करती हैं। पुनः गुरुत्व बल बढ़ने से पदार्थ संघनित होता हुआ तारे के निर्माण की समुचित परिस्थितियां उत्पन्न करने लगता है।

कभी-२ तारों के निर्माणाधीन केन्द्रीय भागों में विद्यमान पदार्थ अपनी दुर्बलतावश अपनी ऊष्मा को खोने लगता है, जिससे नाभिकीय संलयन की क्रिया प्रारम्भ नहीं हो पाती है। ऐसी स्थिति में दो

त्रिष्टुप् और एक पंक्ति छन्द रश्मि उत्पन्न होकर विभिन्न कणों और विकिरणों को तीव्र बल और विस्तार प्रदान करके तारे के निर्माण की प्रक्रिया को यथावत् बनाये रखने में समर्थ होती हैं।।

२. तदाहुर्य आहिताग्निर्यदि प्रातरस्नातोऽग्निहोत्रं जुहुयात्, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; सोऽग्नये वरुणायाष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत्, तस्य याज्यानुवाक्ये 'त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् 'स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोतीत्याहुतिं वाहवनीये जुहुयादग्नये वरुणाय स्वाहेति, सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।
तदाहुर्य आहिताग्निर्यदि सूतकान्नं प्राश्नीयात्, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; सोऽग्नये तन्तुमतेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत्, तस्या याज्यानुवाक्ये 'तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि'-'अक्षानहो नह्यतनोत सोम्या' इत्याहुतिं वाहवनीये जुहुयादग्नये तन्तुमते स्वाहेति; सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।
तदाहुर्य आहिताग्निर्जीवे मृतशब्दं श्रुत्वा, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; सोऽग्नये सुरभिमतेऽष्टाकपालं पुरोळाशं निर्वपेत्, तस्य याज्यानुवाक्ये 'अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयान्साध्वीमकर्देववीतिं नो अद्येत्याहुतिं' वाहवनीये जुहुयादग्नये सुरभिमते स्वाहेति; सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।
तदाहुर्य आहिताग्निर्यस्य भार्या गौर्वा यमौ जनयेत्, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; सोऽग्नये मरुत्वते त्रयोदशकपालं पुरोळाशं निर्वपेत्, तस्य याज्यानुवाक्ये 'मरुतो यस्य हि क्षये'ऽरा इवेदचरमा अहेवेत्याहुतिं वाहवनीये जुहुयादग्नये मरुत्वते स्वाहेति, सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।

व्याख्यानम्– अब तैंतीसवां प्रश्न प्रस्तुत करते हुए महर्षि लिखते हैं कि आदित्य लोक के निर्माण की प्रक्रिया में जब अतिशीघ्रता से केन्द्रीय भाग का निर्माण हो रहा होता है एवं गायत्री छन्दादि रश्मियों के द्वारा अग्नि तत्त्व का जन्म होता है, उस समय अग्नि तत्त्व के शुद्ध रूप में प्रकट होने से पूर्व ही विभिन्न पदार्थों में संयोगादि प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाए, तब आदित्य लोक का निर्माण कैसे होता है? इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि उस समय पूर्वोक्त वामदेव ऋषि प्राण से वरुण एवं अग्नि देवता वाली एवं भुरिक् पंक्ति छन्दस्क –

त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत्।।४।। (ऋ.४.१.४)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से प्रदीप्ततर अग्नि {वरुणः = यः प्राणः सः वरुणः (गो.उ.४.११), व्यानो वरुणः (श.१२.९.१.१६), अपानो वरुणः (श.८.४.२.६)} उत्पन्न करने के लिए प्राण, अपान एवं व्यान रश्मियां सक्रिय होकर अन्य प्राण व छन्दादि रश्मियों को प्रेरित करती हैं, जिससे बाधक असुर रश्मियां दूर होकर अत्यन्त प्रकाशमान और संगमनीय अग्नि तत्त्व उत्पन्न होकर नाना प्रकार के परमाणुओं को उत्पन्न और वहन करने लगता है।

तदुपरान्त अग्निदेवताक एवं स्वराट् पंक्ति छन्दस्क–

स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ।
अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि।।५।। (ऋ.४.१.५)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से अग्नि तत्त्व विशेष दाहयुक्त होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को अतिशय निकटता से गति, व्याप्ति और दीप्ति प्रदान करता है। वह उन परमाणुओं में सहज संयोजक बलों को भी उत्पन्न करता है।

ये उपर्युक्त दोनों ऋचाएं क्रमशः पुरोऽनुवाक्या और याज्या का प्रभाव दर्शाती हैं, जिसे पूर्ववत् समझ सकते हैं। इस समय लोक के निर्माणाधीन केन्द्रीय भाग में "अग्नये वरुणाय स्वाहा" इस याजुषी बृहती छन्द रश्मि की भी उत्पत्ति होती है, जिसके प्रभाव से प्राणापान, व्यान रश्मियां विभिन्न छन्दादि रश्मियों को संपीडित करके अग्नि तत्त्व को उत्पन्न समृद्ध और प्रदीप्त करती हैं। इसके लिए यहाँ भी पूर्वोक्त अष्टकपाल पुरोळाश रश्मियां सम्पूर्ण पदार्थ में व्याप्त हो जाती हैं और आदित्य लोक का निर्माण यथावत् सम्पन्न होने लगता है।।

अब चौंतीसवां प्रश्न प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि आदित्य लोक की निर्माण प्रक्रिया के समय उत्पन्न अग्नि तत्त्व उस समय तक उत्पन्न संयोज्य परमाणु आदि पदार्थों का ही भक्षण करने लग जाए अर्थात् वे परमाणु अग्नि तत्त्व के साथ मिलकर इस प्रकार दग्ध होने लग जाएं कि उनकी पारस्परिक संयोग प्रक्रिया ही नष्ट होने लगे, तब उस आदित्य लोक का निर्माण कैसे होता है? इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि उस समय देवा ऋषि अर्थात् विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों से सौचीकोऽग्निदेवताक निम्न छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है-

(१) तन्तुं तन्वन्रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान्।
अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्।।६।। (ऋ.१०.५३.६)

का छन्द निचृज्जगती। दैवत एवं छान्दस प्रभाव से ऐसा अग्नि, जो विभिन्न परमाणुओं को शृंखलाबद्धरूप से बांधता हुआ संगत करता है, सम्पूर्ण पदार्थ में व्याप्त होकर तीव्रता से उत्सर्जित और अवशोषित होने लगता है। अन्य प्रभाव से वह उपर्युक्त अग्नि विभिन्न परमाणुओं का ताना-बाना बुनता हुआ ज्योतिर्मयी किरणों के रूप में प्रकट होता है। वह अपने तेज के द्वारा विभिन्न तेजस्वी मार्गों को उत्पन्न और रक्षित करते हुए नाना प्रकार की बाधक रश्मियों को दूर करके नाना देव परमाणुओं को प्रकट करता है।

(२) अक्षानहो नह्यतनोत सोम्या इष्कृणुध्वं रशना ओत पिंशत।
अष्टावन्धुरं वहताभितो रथं येन देवासो अनयन्नभि प्रियम्।।७।। (ऋ.१०.५३.७)

छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह पूर्वोक्त अग्नि {अक्षाः = परिधयः (मै.४.५.६)} सोम रश्मियों को परिधियों में बांधता हुआ तेजस्वी रश्मियों के रूप में प्रकट और विस्तृत करता है। वह अग्नि अष्टकपालरूप आठ प्रकार की रश्मियों से सब ओर से बंधा हुआ नाना प्रकार के देव परमाणुओं का आकर्षण और वहन करता है।

उपर्युक्त दोनों ऋचाएं क्रमशः पुरोऽनुवाक्या और याज्या संज्ञक प्रभाव दर्शाती हैं, जिसे पूर्ववत् समझ सकते हैं। इसी समय आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में "अग्नये तन्तुमते स्वाहा" इस याजुषी बृहती छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है, जिसके कारण नाना प्रकार के परमाणु संयोजक बलों को समृद्ध करते हुए परस्पर संयुक्त होने लगते हैं। इस समय भी इस क्रिया के लिए पूर्वोक्त अष्टाकपाल पुरोळाश रश्मियां सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हो जाती हैं, जिससे आदित्य लोक का निर्माण यथोचितरूप से होने लगता है।।

अब पैंतीसवां प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि आदित्य लोक के निर्माण की प्रक्रिया के समय विभिन्न छन्द व मरुद् रश्मियों के प्राण रश्मियों के साथ संयुक्त होकर सक्रिय और सबल होते समय 'मृतम्' पदयुक्त रश्मियां यदि विशेष सक्रिय होकर प्राण रश्मियों के प्रभाव को न्यून करने लगें, तब उस आदित्य लोक का निर्माण कैसे होता है? इसका उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि इस समय बुधगविष्ठिरावात्रेयावृषी अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न विशेष सक्रिय वाक् तत्त्व में स्थिरतापूर्वक सतत

व्याप्त दो सूक्ष्म प्राण रश्मियों से अग्निदेवताक एवं निचृत्त्रिष्टुप् छन्दस्क-

अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उ लोके।
युवा कविः पुरुनिःष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः।।६।। (ऋ.५.१.६)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्द प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {सुरभि = प्राणा वै सुरभयः (तै.ब्रा.३.९.७.४) (षुर ऐश्वर्यदीप्त्योः)} अग्नि तत्त्व अपनी कारणरूप प्राण रश्मियों में विद्यमान रहता हुआ अतिशयरूप से संयोजक बलों से युक्त होकर नाना प्रकार के संयोज्य पदार्थों का विभाग और आकर्षण करता हुआ उन्हें विशेषरूप से धारण और प्रदीप्त करता है।

तदुपरान्त पूर्वोक्त देवा ऋषि से पूर्वोक्त सौचीकोऽग्निः देवताक एवं त्रिष्टुप् छन्दस्क-

साध्वीमकर्देववीतिं नो अद्य यज्ञस्य जिह्वामविदाम गुह्याम्।
स आयुरागात्सुरभिर्वसानो भद्रामकर्देवहूतिं नो अद्य।।३।। (ऋ.१०.५३.३)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से पूर्वोक्त सौचीक अग्नि विभिन्न देव परमाणुओं में व्याप्त होकर सहजतया एवं गुप्तरूप से नाना प्रकार की संगमनीय रश्मियों को और उनकी आच्छादिका संगमनीय प्राणरश्मियों को संगत करके तीव्र ज्वालाओं और नियंत्रक बलों को उत्पन्न करता है। इससे वे देव परमाणु सहजतापूर्वक परस्पर संगत होने लगते हैं।

उपर्युक्त दोनों ऋचाएं क्रमशः पुरोऽनुवाक्या एवं याज्या का प्रभाव दर्शाती हैं, जिसे पूर्ववत् समझ सकते हैं। इसी समय "अग्नये सुरभिमते स्वाहा" इस याजुषी पंक्ति छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है, जिसके प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियां अग्नि तत्त्व को उत्पन्न और सक्रिय करती हैं। इस समय भी पूर्वोक्तवत् अष्टाकपाल पुरोळाश रश्मियां सम्पूर्ण लोक में व्याप्त होकर आदित्य लोक के निर्माण की प्रक्रिया को समुचित रूप प्रदान करती हैं।।

अब छत्तीसवां प्रश्न प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि किसी आदित्य लोक की निर्माण प्रक्रिया में विभिन्न बलों का भरण-पोषण करने वाली प्राण एवं छन्दरश्मियां अपने पृथक्-२ यम अर्थात् नियंत्रक बलों को उत्पन्न करने लग जायें अर्थात् इनका पारस्परिक संयोजन और संगमन न हो पावे, तब उस लोक का निर्माण कैसे होता हैं? इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि ऐसी स्थिति में पूर्वोक्त राहूगणो गोतम ऋषि प्राण रश्मियों से मरुद् देवताक एवं गायत्री छन्दस्क-

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः। स सुगोपातमो जनः।।१।। (ऋ.१.८६.१)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां व्यापक प्राण रश्मियों के साथ मिलकर नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को अच्छी प्रकार उत्पन्न व रक्षित करती हैं।

तदुपरान्त पूर्वोक्त श्यावाश्व आत्रेय ऋषि प्राण रश्मियों से मरुद् देवताक एवं त्रिष्टुप छन्दस्क-

अराइवेदचरमा अहेव प्रप्र जायन्ते अकवा महोभिः।
पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः।।५।। (ऋ.५.५८.५)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {अचरमाः = नान्त्यावयवाः (म.द.भा.)} विभिन्न मरुद् रश्मियां चक्रों के अवयव के समान नित्य एवं अशब्द प्राण रश्मियों के साथ मिलकर अन्तरिक्ष में नाना प्रकार के परमाणुओं को उत्पन्न करती हैं। वे एक-दूसरे को परस्पर अच्छी प्रकार संसिक्त करके अपनी दीप्ति से समान रूप से नाना कार्यों को वेगपूर्वक आरम्भ करती हैं।

उपर्युक्त दोनों रश्मियां क्रमशः पुरोऽनुवाक्या एवं याज्या का प्रभाव दर्शाती हैं, जिसे पूर्ववत् समझ

सकते हैं। इसी समय "अग्नये मरुत्वते स्वाहा" इस याजुषी बृहती छन्द रश्मि की उत्पत्ति केन्द्रीय भाग में होती है। इसके कारण अग्नि तत्त्व मरुद् रश्मियों से युक्त होकर किंवा प्राण और मरुद् रश्मियां मिलकर सम्पूर्ण पदार्थ को सक्रिय करने लगती हैं। इस समय त्रयोदश कपाल पुरोळाश रश्मियां सम्पूर्ण पदार्थ को व्याप्त करती हैं। यहाँ त्रयोदश कपाल का तात्पर्य यह है कि पूर्वोक्त द्वादश कपाल रश्मियों के साथ एक 'ओम्' छन्द रश्मि विशेष सक्रिय हो उठती है। यही छन्द रश्मि विभिन्न प्राण एवं मरुद् वा छन्द रश्मियों को परस्पर संगत और नियंत्रित करती है। यद्यपि यह छन्द रश्मि सर्वत्र, सदैव कार्य करती है परन्तु इस परिस्थिति में उसकी क्रियाशीलता कुछ विशेष होने से ही यहाँ त्रयोदश कपाल पुरोळाश रश्मियों के निर्वपन की चर्चा की गयी है। इससे आदित्य लोक के निर्माण की प्रकिया यथावत् होने लगती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के निर्माण की प्रक्रिया में ही आई हुई विभिन्न विकृतियों एवं उनके निवारण की चर्चा यहाँ पुनः की गयी है। जब किसी तारे के केन्द्रीय भाग वा अन्यत्र अन्य भाग में ताप की मात्रा इतनी ही होती है कि उससे पदार्थ विभिन्न प्रकार की रासायनिक वा स्थूल भौतिक क्रियाओं को जन्म दे सके, तब उस पदार्थ से तारे का निर्माण संभव नहीं हो पाता है। उस समय दो पंक्ति एवं एक बृहती छन्दरश्मि उत्पन्न होकर प्राण, अपान और व्यान रश्मियों को सक्रिय करके सूक्ष्म कणों को भी संयोजित वा संलयित करने लगती हैं। वे इस मार्ग में बाधक बनी असुर रश्मियों को नष्ट वा नियंत्रित करती हैं।

यदि कभी तारों के निर्माण की प्रक्रिया में नाभिकों के विखण्डन की ही प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाए, तब भी तारे का निर्माण सम्भव नहीं हो पाता है। ऐसी स्थिति में दो जगती एवं एक बृहती छन्द रश्मि उत्पन्न होकर विभिन्न प्राण रश्मियों को सक्रिय करके विभिन्न कणों का संलयन होने योग्य ताप और दाब को उत्पन्न करती हैं। इस समय पदार्थ का संलयन प्रारम्भ होने से तारे के निर्माण की प्रक्रिया सफलतापूर्वक प्रारम्भ हो जाती है।

यदि कभी तारे के निर्माण की प्रक्रिया में प्राण रश्मियां दुर्बल होकर छन्द वा मरुदादि रश्मियां ही सक्रिय रहती हैं, तब भी तारे का निर्माण सम्भव नहीं हो पाता है। उस स्थिति में दो त्रिष्टुप् और एक पंक्ति छन्दरश्मि उत्पन्न होकर विभिन्न प्राण रश्मियों को सक्रिय करके उन्हें छन्द वा मरुदादि रश्मियों के साथ संयुक्त करके नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को तारे के निर्माण हेतु आवश्यक बल और तेज प्रदान करती हैं, जिससे तारे का निर्माण यथावत् होने लगता है।

जब कभी तारों के निर्माण की प्रक्रिया के प्रारम्भ में प्राण और छन्द रश्मियां दोनों ही परस्पर पृथक्-२ बलों को ही उत्पन्न करती हैं, तब भी वे किसी भी कण वा विकिरण को उत्पन्न नहीं कर सकतीं। ऐसी स्थिति में किसी भी लोक का निर्माण सम्भव नहीं है। उस समय एक गायत्री, एक त्रिष्टुप् एवं एक बृहती छन्द रश्मि उत्पन्न होती हैं, साथ ही इस समय **'ओम्'** छन्द रश्मि विशेष सक्रिय होकर प्राण व छन्द रश्मियों को परस्पर एकसूत्र में बांधकर नाना प्रकार के कणों एवं विकिरणों को उत्पन्न करती है, जिससे शनैः-२ किसी तारे आदि के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ होने लगती है।।

३. तदाहुरपत्नीकोऽप्यग्निहोत्रमाहरे३त्। नाऽऽहरे३त्।।
आहरेदित्याहुः।।
यदि ना हरेदनद्धा पुरुषः।।
कोऽनद्धा पुरुष इति, न देवान्न पितॄन् मनुष्यानिति।।
तस्मादपत्नीकोऽप्यग्निहोत्रमाहरेत्।।
तदेशाऽभि यज्ञगाथा गीयते।।
यजेत् सौत्रामण्यामपत्नीकोऽप्यसोमपः।
'मातापितृभ्यामनृणार्थाद्यजेति' वचनाच्छ्रुतिरिति।।
तस्मात् सौम्यं याजयेत्।।८।।

व्याख्यानम्- {पत्नी = पत्नी धाय्या (ऐ.३.२३), प्राणो वै धाय्या (कौ.ब्रा.१५.४)} अब महर्षि सैंतीसवां

प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि यदि कहीं सर्ग प्रक्रिया में पत्नी अर्थात् धाय्या संज्ञक प्राण रश्मियां उत्पन्न न हों अथवा उत्पन्न होकर भी किसी कारणविशेष से निष्क्रिय हो जाएं, क्या तब भी सृजन प्रक्रियाएं चलती रहती हैं अथवा बन्द हो जाती हैं? हम जानते हैं कि धाय्यासंज्ञक छन्द (प्राण) रश्मियां अन्य छन्द रश्मियों को धारण और संरक्षित करती हुई उन्हें बल प्रदान करती हैं। यहाँ ऐसी ही रश्मियों के अभाव की चर्चा की गयी है। इस उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि उपर्युक्त धाय्या संज्ञक प्राण रश्मियों के अभाव में भी विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों में संयोगादि प्रक्रिया चलती रहती है अर्थात् सर्वथा बन्द नहीं होती। हमारे मत में इस स्थिति में लोक निर्माण की प्रक्रिया सम्भव नहीं होगी परन्तु सम्पूर्ण पदार्थ जगत् में कुछ न कुछ सृजन प्रक्रियाएं निरन्तर अवश्य चलती रहती हैं। {अद्धा = सत्यनाम (निघं.३.१०), प्रसिद्धम् (म.द.य.भा.३३.३६), साक्षात् (म.द.ऋ.भा.३.५४.५)} यदि उन परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों में पारस्परिक संसर्ग प्रक्रिया सर्वथा बन्द हो जाए, तो वे सभी पुरुषरूपी पदार्थ अर्थात् विभिन्न छन्दादि रश्मियां निरन्तरता को प्राप्त नहीं हो सकतीं एवं न ही वे किसी भी प्रकार से प्रत्यक्ष हो सकतीं। इस कारण संसर्ग आदि क्रिया कुछ न कुछ मात्रा में अवश्य होती रहती है।।+।।+।।

{पितरः = ऊष्मभागा हि पितरः (तै.ब्रा.१.३.१०.६), उशन्तो हि पितरः (मै.१.१०.१८; काठ.३६.१२), अन्तभाजो वै पितरः (कौ.ब्रा.१६.८)। मनुष्यः = अनृतसंहिता मनुष्याः (ऐ.१.६), अच्छन्ना इव हि प्रत्यक्षं निरुक्ता इव मनुष्याः (जै.ब्रा.१.२७४)} यहाँ महर्षि प्रश्न उपस्थित करते हैं कि असंयोजनीय, अनद्धा संज्ञक रश्मि आदि पदार्थ कौन होते हैं? इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि वे ऐसी रश्मियां न देव, न पितर और न मनुष्य श्रेणी को ही प्राप्त कर पाती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि बिना किसी संयोगादि प्रक्रिया के सम्पूर्ण पदार्थ प्रकाश, ऊष्मा, बल एवं नियमित वा अनियमित रूप से गतिशीलता आदि किसी गुण से युक्त नहीं हो पाता और न वह किसी भी प्रकार से प्रत्यक्ष वा व्यक्त होने योग्य होता है। इस कारण सृष्टि निर्माण में इस पदार्थ की कोई उपयोगिता नहीं होती। इसलिए महर्षि कहते हैं कि बिना धाय्या संज्ञक प्राण रश्मियों के भी संयोग की प्रक्रिया यत्किंचित् अवश्य चलती रहती है।।+।।

{ऋणः = प्रापकः (म.द.ऋ.भा.६.१२.५), (ऋणोति गतिकर्मा - निघं.२.१४) (ऋणु गतौ)। सौत्रामणि = सूत्राणि यज्ञोपवीतादीनि मणिना ग्रन्थिना युक्तानि ध्रियन्ते यस्मिँस्तस्मिन् (म.द.य.भा.१६.३१), सोमो वै सौत्रामणी (श.१२.७.२.१२), स यो भ्रातृव्यवानुत्स्यात्स सौत्रामण्या यजेत (श.१२.७.३.४)} इस विषय में महर्षि एक गाथा को उद्धृत करते हैं जिसका आशय यह है कि जो छन्द रश्मियां धाय्या संज्ञक रश्मियों से युक्त नहीं होती तथा जो प्राण रश्मियां सोम अर्थात् मरुद् रश्मियों से युक्त नहीं होती, वे भी परस्पर सूत्रात्मा वायु रश्मियों के द्वारा कुछ न कुछ मात्रा एवं प्रभाव के साथ संगत अवश्य होती हैं परन्तु वे संगत होकर भी प्रकाशित रूप को प्राप्त नहीं कर सकतीं। इस कारण वे सूक्ष्म असुर रश्मियों के रूप में परिवर्तित हो जाती है। यहाँ इस गाथा में किसी अन्य आर्ष वचन को उद्धृत करते हुए कहा है- "मातापितृभ्यामनृणार्थाद्यज" {पिता = मनः पितरः (श.१४.४.३.१३), पितरः प्रजापतिः (गो.उ.६.१५)} इसका तात्पर्य यह है कि विभिन्न प्राण व छन्द रश्मियां मनस्तत्त्वरूपी पिता और वाक् तत्त्वरूपी माता से उत्पन्न होने के कारण उनके ही गुणों को बनाये रखने के लिए अर्थात् उनसे दूर न होने के लिए प्रत्येक रश्मि हर परिस्थिति में न्यूनाधिक संगमन क्रियाएं अवश्य करती हैं। चाहे इस क्रिया से सृष्टि का निर्माण हो सके वा न हो सके परन्तु रश्मियां स्वभाव से संगमनीय ही होती हैं। इस कारण सोम रश्मियों में स्थित विभिन्न प्राण वा छन्द रश्मियां धाय्या संज्ञक रश्मियों के अभाव में भी संगत अवश्य होती हैं।।+।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सृष्टि के उपादान कारण प्रकृतिरूप पदार्थ से जब मन और वाक् नामक प्राथमिक और सूक्ष्मतम पदार्थों की उत्पत्ति होती है, उसके पश्चात् इनसे विभिन्न प्राण, छन्द और मरुद् रश्मियों की उत्पत्ति होती है। विभिन्न छन्द रश्मियों के विभिन्न समूहों को आच्छादित और धारण करने वाली एक-२ छन्द रश्मि अवश्य उत्पन्न होती है। यह छन्द रश्मि ही अपने द्वारा आच्छादित छन्द रश्मियों को नाना प्रकार की क्रियाएं करके विभिन्न कणों और विकिरणों आदि पदार्थों को उत्पन्न करने के लिए प्रेरित करती है। इस प्रक्रिया में प्राण और छन्द रश्मियों एवं प्राण और मरुद् रश्मियों के पारस्परिक युग्म भी अवश्य बनते हैं। इनके बने बिना विभिन्न कण और विकिरण उत्पन्न नहीं हो सकते। यदि ये क्रियाएं न

हों अर्थात् ये युग्म न बनें एवं धारक छन्द रश्मियां भी उत्पन्न न हों, तब भी सभी प्रकार की उत्पन्न रश्मियां विभिन्न प्रकार की संयोग प्रक्रियाएं अवश्य करती हैं परन्तु उनकी ऐसी क्रियाओं से दृश्य पदार्थ उत्पन्न नहीं हो सकता बल्कि डार्क मैटर और डार्क एनर्जी का ही निर्माण होता है, जिनसे ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति भी सम्भव नहीं होती।

ॐ इति ३२.८ समाप्तः ॐ

अथ ३२.९ प्रारभ्यते

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. तदाहुर्वाचाऽपत्नीकोऽग्निहोत्रं कथमेव जुहोति।।
निविष्टे मृता पत्नी नष्टा वाऽग्निहोत्रं कथमग्निहोत्रं जुहोति?।।
पुत्रान् पौत्रान्नप्तॄनित्याहुरस्मिंश्च लोकेऽमुष्मिंश्चास्मिँल्लोकेऽयं स्वर्गोस्वर्गेण स्वर्गं लोकमारुरोहेत्यमुष्यैव लोकस्य संततिं धारयति, यस्यैषां पत्नीं नेच्छेत्, तस्मादपत्नीकस्याऽऽधानं कुर्वन्ति।।
अपत्नीकोऽग्निहोत्रं कथमग्निहोत्रं जुहोति? श्रद्धा पत्नी, सत्यं यजमानः; श्रद्धा सत्यं तदित्युत्तमं मिथुनं, श्रद्धया सत्येन मिथुनेन स्वर्गाँल्लोकाञ्जयतीति।।६।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रसंग में ही अगला अर्थात् अड़तीसवां प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि पूर्वोक्त प्रकरण में जब धाय्या छन्द रश्मियां उत्पन्न नहीं होती, ऐसी स्थिति में अन्य छन्द रश्मियां किस प्रकार परस्पर बंधी रहती हैं और बिना बंधी हुई इन छन्द रश्मियों से प्राण रश्मियां कैसे संगत होकर नाना प्रकार के सृजन कर्मों को संपादित कर सकती हैं? हम यहाँ अग्निहोत्र से तात्पर्य संयोगादि कर्म ही ग्रहण कर रहे हैं। हमारे कथन की पुष्टि इन आर्ष वचनों से भी होती है-

"प्रजननं वा एतद् यदग्निहोत्रम्" (काठ.६.७)
"प्राजापत्यम् अग्निहोत्रम्" (श.१२.४.२.१)
"यज्ञमुखं वाऽअग्निहोत्रम्" (तै.सं.१.६.१०.२)
"सृष्टिर्वा एतद्यदग्निहोत्रम्" (काठ.६.७)

अग्निहोत्र के इसी आशय को हमने पूर्व में भी ग्रहण किया है।।

उपर्युक्त प्रश्न को ही अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जब संयोगोन्मुख छन्द रश्मियों की धाय्या संज्ञक छन्द रश्मियां मृत हो जाती हैं अर्थात् उनका प्राण रश्मियों के साथ संसर्ग नहीं होता, तब वे कैसे अन्य सृजन प्रक्रियाओं को संपादित करने और इसके अभाव में कैसे नाना प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करने में सक्षम होती हैं?।।

{स्वर्गो लोकः = वाजो वै स्वर्गो लोकः (तां.१८.७.१२), स्वर्गो वै लोको यज्ञः (कौ.ब्रा.१४.१), ओमिति वै स्वर्गो लोकः (ऐ.५.३२), अपरिमितो वै स्वर्गो लोकः (ऐ.६.२३)} उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि उपर्युक्त परिस्थिति में विभिन्न बलों की उत्पादिका प्राणापानादि प्राथमिक प्राण रश्मियां एवं उनसे उत्पन्न अपने बलों से पवित्र होने वाली विभिन्न छन्द रश्मियां इस लोक अर्थात् अप्रकाशित पदार्थ के अन्दर एवं अन्य लोक अर्थात् प्रकाशित हो चुके पदार्थ के अन्दर सक्रिय होने लगती हैं। यद्यपि पत्नीरहित होने का अर्थ यह है कि इन प्राण और छन्द रश्मियों का पारस्परिक संयोग नहीं हो पाता है। उस समय यह अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थ स्वर्गरूप ही होता है अर्थात् यह पदार्थ अप्रकाशित रहता हुआ भी अपरिमित क्षेत्र में व्याप्त रहता है। इस समय इस सम्पूर्ण पदार्थ में 'ओम्' छन्द रश्मियां भी पूर्णतः व्याप्त होती हैं, जिसके कारण ही विभिन्न प्राणापानादि एवं छन्दादि रश्मियां स्वर्ग लोक अर्थात् विभिन्न संयोजक बलों को उत्पन्न करती हैं। यह सृजन प्रक्रिया निरन्तरता प्राप्त कर लेती है और इस सृजन प्रक्रिया से पूर्वोक्त **अपत्नीक पदार्थ भी संसर्ग करके आसुर पदार्थों को उत्पन्न करने में समर्थ होता है।** यह बात हम पूर्वखण्ड में स्पष्ट कर चुके हैं कि इन सृजन प्रक्रियाओं से देव पदार्थ की उत्पत्ति नहीं होती। इस

कारण यहाँ स्वर्ग लोक का तात्पर्य आदित्य लोक नहीं समझना चाहिये, ऐसा हमारा मत है।।

{श्रद्धा = श्रद्धा वा आपः (तै.ब्रा.३.२.४.१), आपश्श्रद्धा (काठ.३१.३)। सत्यम् = स (प्रजापतिः) वाचस्सत्यं निरमिमीत भूर्भुवस्स्वरिति (काठ.६.७), आपः सत्ये (प्रतिष्ठिताः) (ऐ.३.६; गो.उ.३.२)} अब यहाँ इस प्रसंग को स्पष्ट करते हुए प्रश्नोत्तर की शैली में ही पुनः समझाते हैं कि पूर्वोक्त अपत्नीक पदार्थ में सृजन प्रक्रिया कैसे होती है? इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि यहाँ विभिन्न प्राण रश्मियां ही पत्नी का कार्य करती हैं और 'भूः' 'भुवः', 'स्वः' रश्मियां (हमारे मत में 'ओम्' छन्द रश्मि भी) यजमान (पुरुष) का कार्य करती हैं। इन दोनों का मिथुन श्रेष्ठ मिथुन होता है और इस मिथुन के द्वारा ही विभिन्न सृजन क्रियाओं एवं बलों को उत्पन्न व नियंत्रित किया जाता है। इस प्रकार आसुर पदार्थ उत्पन्न होने लगता है। यहाँ हमारा मत यह भी है कि **आसुर पदार्थ सर्वथा प्रकाशहीन नहीं होता अर्थात् यह साम्यावस्थारूप प्रकृति जैसा नितान्त अन्धकारमय नहीं होता** अन्यथा यहाँ स्वर्गलोक शब्द का प्रयोग नहीं होता।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- जब विभिन्न प्राणरश्मियां छन्द रश्मियों के साथ संयुक्त नहीं होती हैं एवं इसी प्रकार जब विभिन्न छन्दरश्मियां धारिका छन्दरश्मियों के साथ संयुक्त नहीं होती हैं, **तब ऐसी छन्द एवं प्राण रश्मियां 'ओम्', 'भूः', 'भुवः', 'स्वः', सूक्ष्मरश्मियों के साथ मिलकर डार्क एनर्जी और डार्क मैटर को उत्पन्न करती हैं।** यहाँ डार्क एनर्जी एवं डार्क मैटर यद्यपि अन्धकारमय पदार्थ होता है परन्तु इसे नितान्त अन्धकारमय नहीं माना जा सकता। हाँ, इतना अवश्य है कि यह पदार्थ कभी भी किसी दृश्य पदार्थ को उत्पन्न नहीं कर सकता। **नितान्त अन्धकारयुक्त पदार्थ इस सृष्टि का मूल उपादान कारण 'प्रकृति' ही होता है।** इससे उत्पन्न कोई भी सूक्ष्मतम पदार्थ कुछ न कुछ दीप्ति से अवश्य युक्त होता है।।

❀ इति ३२.९ समाप्तः ❀

अथ ३२.१० प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. तदाहुर्यद्दर्शपूर्णमासयोरुपवसति, न ह वा अव्रतस्य देवा हविरश्नन्ति; तस्मादुपवसत्युत मे देवा हविरश्नीयुरिति।।
पूर्वां पौर्णमासीमुपवसेदिति पैङ्ग्यमुत्तरामिति कौषीतकं; या पूर्वा पौर्णमासी साऽनुमतिर्योत्तरा सा राका।।
या पूर्वाऽमावास्या सा सिनीवाली, योत्तरा सा कुहूः।।
यां पर्यस्तमियादभ्युदियादिति सा तिथिः।।
पूर्वां पौर्णमासीमुपवसेदनिर्ज्ञाय पुरस्तादमावास्यायां चन्द्रमसं यदुपैति, यद् यजते, तेन सोमं क्रीणन्ति, तेनोत्तरामुत्तरामुपवसेदुत्तराणि ह वै सोमो यजते, सोममनु देवतमेतद्वै देवसोमं यच्चन्द्रमास्तस्मादुत्तरामुपवसेत्।।१०।।

व्याख्यानम्– {दर्श-पूर्णमास = उदान एव पूर्णमा उदानेन ह्ययं पुरुषः पूर्यतऽइव, प्राण एव दर्शो ददृश इव ह्ययं प्राणस्तदेतावन्नादश्चान्नप्रदश्च दर्शपूर्णमासौ (श.११.२.४.५), एतद्वै देवानामास्यं यद् दर्शपूर्णमासौ (तै. सं.२.५.६.३), एतौ वै देवानां॰ हरी यद् दर्शपूर्णमासौ (तै.सं.२.५.६.२), एष वै देवयानः पन्था यद् दर्शपूर्णमासौ (तै.सं.२.५.६.२), एष वै देवरथो यद् दर्शपूर्णमासौ (तै.सं.२.५.६.१), मन एव पूर्णमाः। पूर्णमिव हीदं मनो वागेव दर्शो, ददृशऽइव हीयं (वाक्) (श.११.२.४.७)}

यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का मत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि इस सृष्टि के सभी सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु आदि पदार्थ दर्शपूर्णमास संज्ञक विभिन्न पदार्थों के साथ अति निकटता से बसते हैं। इस क्रम में सबसे निकट वास मनस्तत्त्व एवं 'ओम्' छन्द रश्मि रूप सूक्ष्मतम वाक् तत्त्व से होता है। तदुपरान्त दूसरा निकट सम्बन्ध प्राण एवं उदान (हमारे मत में अपान भी) से होता है। ये दोनों ही प्रकार के युग्म विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के मुखरूप होते हैं अर्थात् इन्हीं के द्वारा कोई भी परमाणु आदि पदार्थ किसी भी अन्य रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थ को अपने में अवशोषित कर पाता है। ये दोनों प्रकार के युग्म ही उन परमाणु आदि पदार्थों के रथ के समान वाहक एवं ये ही मार्ग रूप भी होते हैं। इसके साथ ही ये दोनों प्रकार के युग्म ही उन परमाणु आदि पदार्थों की हरणशील रश्मियों के रूप में भी होते हैं। इस कारण इन दोनों युग्मों के साथ प्रत्येक परमाणु आदि पदार्थ का निकटता से वास करना अनिवार्य होता है। इन युग्मों के ही कारण विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ व्रती अर्थात् वीर्यसम्पन्न हो पाते हैं और फिर वे इसी तेज बल के द्वारा अन्य परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों रूप हवियों का भक्षण कर पाते हैं। इस कारण इन उपर्युक्त युग्मरूप पदार्थों के बिना वे हविरूप पदार्थों का भक्षण नहीं कर सकते। यहाँ हवि से तात्पर्य मास रश्मियां ही है, जो विभिन्न पदार्थों के संधान का कार्य करती हैं। इस कारण सभी परमाणु आदि पदार्थ इन मासरूप अथवा विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थरूप हवियों को प्राप्त करके इस सृष्टि में नाना प्रकार की सृजन क्रियाओं को सम्पादित करने के लिए उपर्युक्त दोनों युग्मों के साथ वास करते हैं अन्यथा सृष्टि प्रक्रिया का संचालन सम्भव नहीं है।।

{अनुमतिः = गायत्री अनुमतिः (मै.४.३.५; काठ.१२.८), या द्यौः साऽनुमतिः सो एव गायत्री (ऐ. ३.४८; तु.ऐ.३.४७)। राका = त्रिष्टुब् राका (मै.४.३.५), या राका सा त्रिष्टुप् (ऐ.३.४७), योषाः सा राका (ऐ.३.४८)। पिङ्ग = लालिमा लिये भूरा रंग - आप्टेकोष। कुषितः = (कुष् = खींचना, फाड़ना, निचोड़ना, चमकना - आप्टेकोष)} जब कोई परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ पहले उदान रश्मि के साथ

संयुक्त होकर प्राण रश्मि के साथ संयुक्त होता है, उस समय अनुमति अर्थात् गायत्री छन्द रश्मियां उत्पन्न होने लगती हैं, जिससे पिंगल अर्थात् हल्की लालिमा लिए भूरे रंग की उत्पत्ति होती है, यह महर्षि पैंगी का मत है। हमने यहाँ 'पैंगी' शब्द से दो अर्थों का ग्रहण किया है। एक अर्थ आधिदैविक है, तो दूसरा अर्थ अनित्य ऐतिहासिक है। छन्दशास्त्र के प्रणेता आचार्य पिंगल के मत में गायत्री रश्मियों का वर्ण श्वेत होता है। इस कारण ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ जो वर्ण की उत्पत्ति होती है, उसमें श्वेत वर्ण प्रधान होते हुए पिंगल वर्ण भी उत्पन्न होने लगता है। वर्णों की उत्पत्ति कैसे होती है, इसका गम्भीर विज्ञान यहाँ दर्शाया गया है। अब महर्षि कौषीतकि का मत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि यदि उदान रश्मि किसी परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ के साथ प्राण रश्मि की अपेक्षा बाद में संगत होती हैं, तब राका अर्थात् त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर तीक्ष्ण चमकीला तेज उत्पन्न करती हैं। यह तेज आचार्य पिंगल के अनुसार लाल रंग का होता है। इसके साथ ही इससे तीक्ष्ण बल उत्पन्न होते हैं। ये बल अत्यन्त आकर्षक, सम्पीडक और भेदक होते हैं। यहाँ भी हमने 'पैंगी' के समान 'कौषीतकि' शब्द के दो अर्थ ग्रहण किये हैं। हमारे मत में यहाँ 'पूर्वा' तथा 'उत्तरा' शब्दों का अर्थ दिशावाची भी ग्रहण किया जा सकता है। तदनुसार पाठक स्वयं समझ सकते हैं।।

{अमावस्या = तस्य (संवत्सरस्य) एते प्राणापान यत् पौर्णमास्यश्चामावास्याश्च (जै.ब्रा.२.३६४), ब्रह्म वै पौर्णमासी क्षत्रममावस्या (कौ.ब्रा.४.८)} जब कोई परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ अपान रश्मि से पहले अथवा पूर्व दिशा में जुड़ें और उसके बाद अथवा उत्तर दिशा में प्राण रश्मि के साथ जुड़ें {सिनीवाली = जगती सिनीवाली (तै.सं.३.४.६.६; मै.४.३.५)। कुहूः = अनुष्टुप् कुहूः (तै.सं.३.४.६.६)} तब वहाँ जगती छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। आचार्य पिंगल के अनुसार जगती छन्द रश्मियां गौर वर्ण को उत्पन्न करती हैं। इन रश्मियों से युक्त परमाणु संयोग-वियोग की प्रक्रियाओं को तीव्रता से विस्तृत करता है। यदि अपान रश्मियां प्राण रश्मियों की अपेक्षा किसी परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ से बाद में अथवा उत्तर दिशा में संगत होवें, तब कुहू अर्थात् अनुष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं और ये अनुष्टुप् छन्द रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों को अनुकूलता से धारण और प्रकाशित करती हुई तेज और बलों को समृद्ध करती हैं। आचार्य पिंगल के अनुसार पिशंग अथवा सुनहरा रंग अनुष्टुप् छन्द रश्मियों से उत्पन्न होता है।।

{तिथिः = अत्+इथिन् पृषो. वा ङीप् - आप्टेकोष} जब किसी परमाणु आदि पदार्थ के चारों ओर अथवा उसके सम्मुख दिशा की ओर से उदान, अपान वा प्राण रश्मियां उस पर प्रक्षिप्त होती हैं, तब वह परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ गति के सातत्य को प्राप्त कर लेता है।।

{चन्द्रमा = अथैष एव वृत्रो यश्चन्द्रमाः (श.१.६.४.१३,१८), अन्नमु चन्द्रमाः (श.८.३.३.११), असौ वै सोमो राजा विचक्षणश्चन्द्रमाः (कौ.ब्रा.४.४; ७.१०), एष (चन्द्रमाः) वै रेतः (श.६.१.२.४), चन्द्रमा उ वै सोमः (श.६.५.१.१), चन्द्रमा धाता (तै.सं.३.४.६.६), चन्द्रमा ब्रह्मा (गो.पू.१.१३)} इस प्रकरण का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि जब कोई परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ पूर्व दिशा से अथवा पहले उदान रश्मियों से युक्त होता है और उसके पश्चात् एवं सम्मुख दिशा से अपान नामक प्राण रश्मियों अथवा सिनीवाली संज्ञक जगती छन्द रश्मियों से पूर्ण रूप से प्रकाशित नहीं होता हुआ तेजस्विनी और संयोजक बलों से युक्त सोम रश्मियों में व्याप्त होता है। इसके साथ ही अपान रश्मियां भी उस परमाणु आदि पदार्थ के साथ संयुक्त होती हुई प्राण रश्मियों के साथ सहभागिनी बनकर संयोजक और धारक बलों को उत्पन्न करती हैं। ऐसी स्थिति में जब वह परमाणु आदि पदार्थ अन्य ऐसे ही पदार्थों के साथ यजन करता है, तब वह विभिन्न सोम रश्मियों का विनिमय करता है। इसके पश्चात् जब वह परमाणु आदि पदार्थ अपनी उत्तर दिशा से अथवा बाद में उदान रश्मियों के साथ एवं इससे पूर्व अपान रश्मियों के साथ संयुक्त होता है, तब वह विभिन्न सोम रश्मियों का अपने साथ यजन करने लगता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि अपान और उदान (हमारी दृष्टि में यहाँ पौर्णमासी से प्राण का भी ग्रहण हो सकता है) एवं प्राण रश्मियां किसी रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थ के साथ संगत होने के पश्चात् ही उन पदार्थों की सोम रश्मियों के साथ संगति होती है। ये सोम रश्मियां प्राण रश्मियों का ही अनुकरण करती हैं, जिसके कारण वे प्रकाशित और कमनीय रूप प्राप्त करके नाना प्रकार के संयोज्य पदार्थों को उत्पन्न करती हैं और उनके निकट ही सतत निवास वा विचरण भी करती हैं।

इस प्रकार इस खण्ड में किसी परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ के साथ प्राणोदान आदि रश्मियों के संगत होने के विभिन्न क्रमों और उनके प्रभाव का विवेचन किया गया है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में प्रत्येक मूल कण, क्वाण्टा अथवा उनसे भी सूक्ष्म छन्दादि रश्मियां मनस्तत्त्व एवं **'ओम्'** छन्दरश्मि से व्याप्त व निर्मित होती हैं। इसके पश्चात् उनका निकट सम्बन्ध प्राण, अपान आदि प्राथमिक प्राण रश्मियों से होता है। इन दोनों से ही प्रत्येक सूक्ष्म पदार्थ सदैव निकटता से संगत रहता है। प्राणादि रश्मियों के द्वारा ही प्रत्येक कण वा विकिरण अपने बलों को प्राप्त करता है और इनके द्वारा ही उनके मार्ग भी निर्धारित होते हैं। इन्हीं के माध्यम से प्रत्येक कण और विकिरण अनेक प्रकार की संयोग-वियोगादि क्रियाओं को करके नाना प्रकार के पदार्थों का निर्माण करने में सक्षम होता है। जब कोई कण अथवा क्वाण्टा पहले उदान फिर बाद में प्राण रश्मि के साथ संयुक्त होता है, तो उससे गायत्री छन्दरश्मियां उत्सर्जित होकर श्वेत और भूरे रंग की दीप्ति को उत्पन्न करती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि इस रंग की विद्युत् चुम्बकीय तरंगें इस गायत्री छन्द रश्मि को उत्सर्जित करती हैं और उनके क्वाण्टाज् की पूर्व दिशा में उदान और उत्तर दिशा में प्राणरश्मियां विद्यमान होती हैं। ये क्वाण्टाज् तीव्र बलों से युक्त होते हैं। जब कोई कण वा क्वाण्टा उत्तर दिशा से उदान और पूर्व दिशा से प्राणरश्मि से संयुक्त होता है, साथ ही पहले प्राण एवं बाद में उदान से संयुक्त होता है, तो त्रिष्टुप् छन्दरश्मियों को उत्पन्न करके चमकीले लाल रंग की दीप्ति को उत्पन्न करता है। ये रश्मियां विशेष बलयुक्त होती हैं। इससे संकेत मिलता है कि लाल रंग की विद्युत् चुम्बकीय तरंगें त्रिष्टुप् छन्दरश्मियों को उत्सर्जित करती हैं और उनके क्वाण्टा की उत्तर दिशा में उदान और पूर्व दिशा में प्राण रश्मि संगत होती है। जब कोई कण अथवा क्वाण्टा पहले पूर्व दिशा में अपान रश्मि के साथ तथा तत्पश्चात् उत्तर दिशा में प्राण रश्मि के साथ संयुक्त होता है, तो उससे जगती छन्द रश्मियां उत्सर्जित होकर गोरे रंग की दीप्ति को उत्पन्न करती हैं। रश्मियों की यही व्यवस्था इस रंग की विद्युत् चुम्बकीय तरंगों में समझनी चाहिए। इस स्थिति में कण और क्वाण्टाज् तीव्र गति से उत्सर्जित और अवशोषित होने का स्वभाव रखते हैं। यदि किसी कण और क्वाण्टाज् से अपान रश्मियां उत्तर की दिशा में तथा प्राण रश्मियों के बाद में संगत होवे, तब वे कण और क्वाण्टाज् अनुष्टुप् छन्दरश्मियों को उत्पन्न करके सुनहरे रंग की दीप्ति को उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार सुनहरे रंग की विद्युत् चुम्बकीय तरंगों में प्राण आदि रश्मियों के संयोग की इसी प्रकार की व्यवस्था जाननी चाहिए। जब किसी कण अथवा क्वाण्टा के चारों ओर अथवा उसकी **गति की सम्मुख दिशा की ओर प्राण, अपान एवं उदान रश्मियां निरन्तर प्रक्षिप्त होवें, तो वह कण अथवा क्वाण्टा सतत गति को प्राप्त करता है।** इस प्रकार प्राण, अपान और उदान रश्मियों के साथ संयोग की उपर्युक्त नाना प्रकार की व्यवस्थाओं के चलते इस सृष्टि में अनेक प्रकार के पदार्थों का निर्माण निरन्तर होता रहता है।।

ॐ इति ३२.१० समाप्तः ॐ

꧁ अथ ३२.११ प्रारभ्यते ꧂

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. तदाहुर्यस्याग्निमनुद्धृतमादित्योऽभ्युदियाद्वाऽभ्यस्तमियाद्वा प्रणीतो वा प्राग्घोमादुपशाम्येत् का तत्र प्रायश्चित्तिरिति।।
हिरण्यं पुरस्कृत्य सायमुद्धरेज्ज्योतिर्वै शुक्रं हिरण्यं, ज्योतिः शुक्रमसौ, तदेव तज्ज्योतिः शुक्रं पश्यन्नुद्धरति, रजतमन्तर्धाय प्रातरुद्धरेदेतद् रात्रिरूपम्, पुरा संभेदाच्छायानामाहवनीयमुद्धरेन्मृत्युर्वै तमश्छाया, तेनैव तज्ज्योतिषा मृत्युं तमश्छायां तरति, सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।

व्याख्यानम्- अब उनतालीसवां प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि जब किसी पार्थिव आदि अणु से संयुक्त किसी अग्नि के परमाणु को कहीं अन्यत्र संयुक्त करने के लिए बाहर की ओर खींचा जाता है, उस समय अग्नि के परमाणु के बाहर खींचे जाने अथवा उठने से पूर्व ही उस पार्थिव आदि अणु को आदित्य अर्थात् विभिन्न मास नामक रश्मियां अथवा प्राणापान आदि कारण-प्राण रश्मियां अथवा ऋतु रश्मियां व्याप्त कर लें अथवा उस अग्नि के परमाणु में से ही उसमें विद्यमान प्राण रश्मियां किसी प्रकार बहिर्गत किंवा दुर्बल हो जाएं अथवा उस पर मास रश्मियां प्रक्षिप्त की जाएं अथवा वह अग्नि का परमाणु बाहर खींच भी लिया जाए परन्तु वह बाहर आकर किसी अन्य परमाणु के साथ संयुक्त होने के पूर्व ही शान्त अर्थात् दुर्बल हो जाए, तब वह संयोग प्रक्रिया कैसे सम्पन्न होती है?।।

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि {सायम् = वरुणस्य सायमासवोऽपानः (तै.ब्रा.१.५.३.१)। हिरण्यम् = प्राणो वै हिरण्यम् (श.७.५.२.८)} वरुण अर्थात् प्रदीप्ततर अग्निमयी अवस्था में सम्पीडक अपान रश्मियों की प्रधानता में अथवा सायम् = सायं सवन अर्थात् जागत अवस्था में स्थित अग्नि के परमाणुओं को खींचने अर्थात् बाहर निकालने के लिए हिरण्य अर्थात् तेजस्विनी प्राण रश्मियों को अग्रगामी बनाकर विभिन्न बलों को उत्पन्न करने की आवश्यकता होती है। इस क्रिया में कार्यरत प्राण रश्मियां अति शीघ्रकारी, शोधक एवं बलकारिणी होती हैं। {शुक्रः = शुक्राह्यापः (तै.ब्रा.१.७.६.३)} ये प्राण रश्मियां सबको अपने में समाहित करने वाली किंवा सबमें समाहित होकर सबको ज्योतिर्मय बनाने वाली होती हैं। इन ज्योतिर्मय प्राण रश्मियों के द्वारा ही उस अग्नि के परमाणु को आकर्षित किया जाता है। ये हिरण्य संज्ञक प्राण रश्मियां संयोजक गुणों से युक्त होती हैं। इसलिए कहा है-

"मेध्यः हिरण्यम्" (काठ.२०.८; क.३१.१०)

अग्नि के परमाणुओं में जो भी तेज विद्यमान होता है, वह इन प्राण रश्मियों के कारण ही होता है। ऐसी ही तेजस्विनी प्राण रश्मियों को अग्रणी बनाकर ही उपर्युक्त परिस्थिति में अग्नि के परमाणुओं को आकर्षित वा उत्सर्जित किया जा सकता है। अब अन्य परिस्थिति के विषय में महर्षि कहते हैं कि जब वे अग्नि के परमाणु प्रातः अर्थात् प्रकृष्ट गति {प्रातः = देवस्य सवितुः प्रातः प्रसवः प्राणः (तै.ब्रा.१.५.३.१)} एवं नियंत्रक-उत्पादक बलों से सम्पन्न होते हैं तथा प्राण एवं गायत्री छन्द रश्मियों की प्रधानता होती है, उस समय रात्रिरूप रजत अर्थात् अपान रश्मियों को अन्दर धारण की हुई बल रश्मियों के द्वारा अग्नि के परमाणुओं को आकर्षित किया जाता है। {छाया = छो छेदने+यः (उ.सूत्र.४.११०)। तमः = तमः तनोतेः (नि.२.१६)। संभेदः = टुकड़े-२ करना, - आप्टेकोश} यहाँ 'छाया' शब्द का अर्थ मृत्यु अर्थात् बाधक सूक्ष्म असुर रश्मियां है। ये असुर रश्मियां किसी भी संयोग प्रक्रिया को बाधित करती हैं। इनके द्वारा यह प्रक्रिया हो जाए तथा इसकी विशेष व्याप्ति होने लग जाए, इसके पूर्व ही ज्योतिरूप प्राण रश्मियां इन बाधक रश्मियों को नियंत्रित करके अग्नि के परमाणुओं को तारने में सक्षम व सफल हो

जाती हैं, जिससे उस अग्नि के परमाणुओं का आकर्षण और उसकी अगली संयोग प्रक्रिया सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जाती है। यहाँ यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि यह तो ज्योतिरूप प्राण रश्मियों द्वारा असुर रश्मियों का नियंत्रण करके अग्नि के परमाणुओं को आकर्षित करने की चर्चा है, रात्रिरूप अपान द्वारा अग्नि के परमाणुओं को आकर्षित करने और असुर रश्मियों को नियंत्रित करने का कोई संकेत नहीं है, तब अपान द्वारा आकर्षण की उपर्युक्त प्रक्रिया कैसे सम्भव है? इसके उत्तर में हमारा मत है कि अपान और प्राण रश्मियां सदैव साथ-२ रहती हैं। यह उपर्युक्त चर्चा केवल प्रधानता के आधार पर की गयी है। इसका संकेत करते हुए एक तत्त्ववेत्ता ऋषि का कथन है-

"अपानेन वै प्राणो धृतः" (मै.४.५.६)

"अपानो वै यन्ताऽपानेन ह्ययं यतः प्राणो न पराङ् भवति" (ऐ.२.४०)

इस प्रकार उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर यहाँ स्पष्ट हो जाता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- प्रकाश के उत्सर्जन और अवशोषण के विज्ञान को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जब प्रकाश रश्मियां गौर वर्ण की होती हैं, तब उन रश्मियों को उत्सर्जित अथवा अवशोषित करने के लिए ऐसी छन्दरश्मियों की आवश्यकता होती है, जिनमें प्राण नामक प्राण रश्मियों की प्रधानता होती है। ये प्राण नामक प्राण रश्मियां किसी क्वाण्टा में विद्यमान प्राण रश्मियों को आकृष्ट करने तथा डार्क एनर्जी के किसी भी संभावित प्रभाव को रोकने में सक्षम होती हैं। जब प्रकाश की रश्मियां श्वेत अथवा हल्की लालिमा लिए होती हैं, उस समय उनके उत्सर्जन अथवा अवशोषण के लिए ऐसी छन्दादि रश्मियों की आवश्यकता होती है, जिनमें प्राण की अपेक्षा अपान रश्मियों की प्रधानता होती है। ध्यातव्य है कि प्राण और अपान दोनों ही रश्मियां एकाकी नहीं रहती, बल्कि अपान रश्मियां सदैव ही प्राण रश्मियों को धारण किए रहती हैं। **इन दोनों का संयुक्तरूप ही विद्युत् का सूक्ष्मतम रूप कहलाता है।** विद्युत् का यह रूप ही प्रकाश वा सभी विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के उत्सर्जन एवं अवशोषण की प्रक्रिया में बाधक बनी सूक्ष्म डार्क एनर्जी को नियंत्रित करता है।
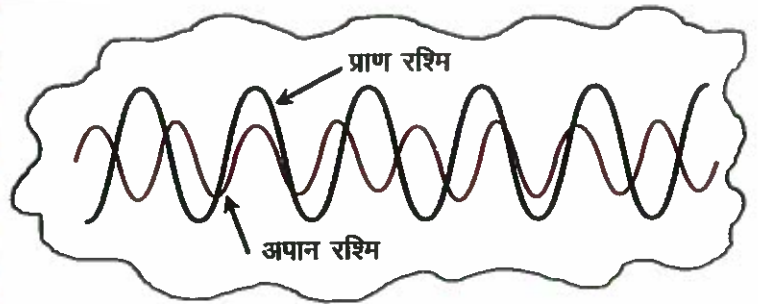
सूक्ष्मतम विद्युत्

चित्र ३२.३

२. तदाहुर्यस्य गार्हपत्याहवनीयावन्तरेणानो वा रथो वा श्वा वा प्रतिपद्येत, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति? नैनन्मनसि कुर्यादित्याहुरात्मन्यस्य हि ता भवन्तीति, तच्चेन्मनसि कुर्वीत, 'गार्हपत्यादविच्छिन्नामुदकधारां हरेत्तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहीत्याहवनीयात्, सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।
तदाहुः कथमग्नीनन्वादधानोऽन्वाहार्यपचनमाहारयेऽत्, नाऽऽहारयेऽत्? इति।।
आहारयेदित्याहुः, प्राणान् वा एषोऽभ्यात्मन् धत्ते, योऽग्नीनाधत्ते तेषामेषोऽन्नादतमो भवति, यदन्वाहार्यपचनस्तस्मिन्नेतामाहुतिं जुहोत्यग्नयेऽन्नादायान्नपतये स्वाहेति।।
अन्नादो हान्नपतिर्भवत्यश्नुते प्रजयाऽन्नाद्यं य एवं वेद।।
अन्तरेण गार्हपत्याहवनीयौ होष्यन् संचरेतैतेन ह वा एनं संचरमाणमग्नयो विदुरयमस्मासु होष्यतीत्येतेन ह वा अस्य संचरमाणस्य गार्हपत्याहवनीयौ पाप्मानमपहतः सोऽपहतपाप्मोर्ध्वः स्वर्गं लोकमेतीति वै ब्राह्मणमुदाहरन्ति।।
तदाहुः कथमग्नीन् प्रवत्स्यन्नुपतिष्ठेत, प्रोष्य वा, प्रत्येत्याहरहर्वेति?

तूष्णीमित्याहुः; तूष्णीं वै श्रेयस आकाङ्क्षन्ते, अथाप्याहुरहरहर्वा एते यजमानस्या-श्रद्धयोद्वासनात् प्रप्लावनाद् बिभ्यति, तानुपतिष्ठेतैवाभयं वोऽभयं मेऽस्त्वित्यभयं हैवास्मै भवत्यभयं हैवास्मै भवति।।११।।

व्याख्यानम्– अब चालीसवां प्रश्न प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि {अनः = यज्ञो वा अनः (श.१.१.२.७), अन्तरिक्षरूपमिव वा एतद् यदनः (श.४.३.४.१ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत), भूमा वा अनः (श.१.१.२.६), (भूमा = भूमा वै सहस्रम् - श.३.३.३.८, व्यापकः - म.द.ऋ.भा.६.६२.८)} किसी आदित्य लोक की आहवनीय अग्नि अर्थात् केन्द्रीय भाग और गार्हपत्य अग्नि अर्थात् शेष विशाल भाग के मध्य में विद्यमान सन्धि भाग में अनः अर्थात् आकाश तत्त्व किंवा अवकाश विस्तृत हो जाए और उनमें विभिन्न रमणीय रश्मि आदि पदार्थ तीव्रगामी होते हुए व्यापक स्तर पर संयोगादि क्रियाओं को करने लगे {वा श्वा = वाऽश्वा - इति सायणभाष्यम्} अथवा विभिन्न आशुगामी एवं तीव्र बलयुक्त रश्मियां तीव्रता से व्याप्त होने लगें, तब उस आदित्य लोक का स्वरूप कैसे बना रह पायेगा? क्या इन परिस्थितियों में आदित्य लोक के दोनों भागों की क्रियाएं इससे बाधित नहीं होंगी? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि ऐसा विचार करना उचित नहीं क्योंकि आदित्य लोक के दोनों भागों के मध्य स्थित सन्धिभाग में ऐसी सब क्रियाएं होती ही हैं। दोनों भागों के मध्य विभिन्न रश्मि अथवा परमाणु आदि पदार्थों की आवागमन तीव्रता और व्यापकता से सदैव होता ही है क्योंकि ऐसा हुए बिना आदित्य लोकों का स्वरूप ही नष्ट हो जाएगा। यदि ऐसा एक सीमा से अधिक होने लग जाये, तो उस परिस्थिति में महर्षि आश्वलायन का भी ग्रन्थकार के मत के समर्थन में कथन है-
"गार्हपत्याहवनीययोरन्तरं भस्मराज्योदकराज्या च संतनुयात्तन्तुं तन्वन्नजसो भानुमन्विहीति"। (आश्व.श्रौ.३.१०.१५)

इसका आशय यह है कि उपर्युक्त परिस्थिति में

तन्तुं तन्वन्रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान्।
अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्।।६।। (ऋ.१०.५३.६)

इस छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है, जिसके विषय में ७.६.२ द्रष्टव्य है। यह छन्द रश्मि आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग एवं बाहरी विशाल भाग, दोनों को सिंचित करती हुई धारारूप में प्रवाहित होती रहती है, जिसके कारण सम्पूर्ण आदित्य लोक में विद्यमान रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थ एक ताने-बाने में बुने रहते हैं और सम्पूर्ण आदित्य लोक अपने स्वाभाविक स्वरूप को बनाये रखता है।।

अब इकतालीसवां प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि {अन्वाहार्यपचन = अन्तरिक्षलोकोऽन्वाहार्यपचनः (दक्षिणाग्निः) (जै.ब्रा.१.५१)} जब विभिन्न प्रकार की अग्नियों का किसी आदित्य लोक के अंदर अनुकूलता से आधान होने की प्रक्रिया हो रही होती है, उस समय आदित्य लोक का सन्धिभाग, जो दक्षिणाग्नि भी कहलाता है, (यह चर्चा हम ७.६.१ में कर चुके हैं) क्या सम्पूर्ण रूप से प्रज्वलित होता है वा नहीं? {आहरणम् = अभिज्वलनम् इति सायणभाष्यम्)} क्या सन्धि भागस्थ सम्पूर्ण आकाश तत्त्व अग्नि तत्त्व से व्याप्त होता है वा नहीं?।।

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि हाँ, यह भाग और सम्पूर्ण आदित्य लोक प्रकाशित और प्रज्वलित हो उठता है। इसका कारण बताते हुए कहते हैं कि जब किसी आदित्य लोक में विभिन्न ऋतु आदि प्राण रश्मियां और इनसे उत्पन्न अग्नि तत्त्व का सम्पूर्ण लोक में आधान होता है, इसके साथ ही जब विभिन्न प्राणादि रश्मियों का केन्द्रीय भाग में विशेष आधान होता है, तब उससे सम्पूर्ण लोक ही प्रज्वलित और प्रकाशित होता है। यह दक्षिणाग्नि भाग अर्थात् आदित्य लोक का सन्धि भाग विभिन्न संयोज्य रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों का प्रकृष्टता से भक्षण करता है। यही वह स्थान है, जहाँ से संपूर्ण संलयनीय वा संगमनीय पदार्थ आदित्य लोक के गार्हपत्य अग्निरूप विशाल भाग से केन्द्रीय भाग

की ओर निरन्तर प्रवाहित होता है। इसके साथ ही केन्द्रीय भाग से विभिन्न कण और विकिरणों का बाहर की ओर गमन भी इसी माध्यम से होता है। उस समय "अग्नये अन्नादाय अन्नपतये स्वाहा" इस साम्नी उष्णिक् छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है। {साम = तद् यत् संयन्ति तस्मात् साम (जै.उ.१.११.१.७), साम देवानामन्नम् (तां.६.४.१३), सर्वं तेजः सामरूप्यं ह शश्वत् (तै.ब्रा.३.१२.६.२)} इसके प्रभाव से संयोज्य और संलयनीय परमाणुओं की रक्षा एवं आदान-प्रदान में समर्थ अग्नि तत्त्व प्रकाशित हो उठता है। यह छन्द रश्मि आदित्य लोक के सन्धि स्थान में विद्यमान सभी देव पदार्थों को निरन्तर व्याप्त, नियंत्रित और प्रकाशित करती है।।

इस प्रकार सम्पूर्ण आदित्य लोक ही प्रकाशित बना रहता है। इस प्रकार की स्थिति बनने पर आदित्य लोक का केन्द्रीय भाग विभिन्न संयोज्य परमाणुओं का भक्षण करने वाला और सम्पूर्ण आदित्य लोक विभिन्न संयोज्य परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों का रक्षण वा पालन करने वाला होकर नाना प्रकार के नवीन तत्त्वों को उत्पन्न करता है, जिसमें से अनेक तत्त्व उस आदित्य लोक के द्वारा ही अवशोषित होते रहते हैं और कुछ अन्य तत्त्व आदित्य लोक से बाहर अन्तरिक्ष में उत्सर्जित होते रहते हैं।।

किसी आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग और शेष विशाल भाग के मध्य में विद्यमान संधिभाग में विभिन्न संगमनीय परमाणु निरन्तर बाहरी और केन्द्रीय भाग की ओर संचरित होते रहते हैं। यहाँ आहवनीय और गार्हपत्य दोनों अग्नियों का यह सोचना कि वह संचरित पदार्थ उनमें होम करेगा, यह लेखक के समझाने की शैलीमात्र है, जिसका आशय यह है कि उस भाग में संचरित परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ केन्द्रीय और बाहरी भाग के प्रभाव से संधिभाग में विचरण करते हुए बाधक असुर रश्मियों के प्रभाव से मुक्त होने लगते हैं अर्थात् इस भाग में उनका संयोजक बल इतना समृद्ध हो जाता है कि उन पर असुर रश्मियों का प्रक्षेपक वा प्रतिकर्षक बल प्रभावी नहीं रहता। वे ऐसे परमाणु असुर रश्मियों से मुक्त एवं शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करके केन्द्रीय भाग में प्रविष्ट होते रहते हैं। ग्रन्थकार ने यह विज्ञान उस समय के अन्य महर्षियों से जाना था और वे महर्षि इसके लिए किसी अन्य प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थ अथवा वेद संहिता को उद्धृत किया करते थे, ऐसा ग्रन्थकार का मत है।।

अब बयालीसवां प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि यदि किसी आदित्य लोक में व्याप्त अग्नियां किसी प्रकार बहिर्गमन कर जाएं अथवा आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में उत्पन्न अग्नि के सक्रिय होने के उपरान्त अन्य भाग में व्याप्त अग्नि दुर्बल हो जाए, इसके पश्चात् केन्द्रीय अग्नि के दुर्बल होने अथवा सबल होने की परिस्थिति में आदित्य लोक का स्वरूप कैसे बना रहता है? इस केन्द्रीय भाग का अग्नि निरन्तर कैसे अपना तेज बनाये रखता है? कैसे वह विभिन्न परमाणुओं में प्रविष्ट होकर उनको सक्रिय और सबल बनाता है? इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि यह सब प्रक्रिया तूष्णीम् रूप से होती है। तूष्णीम् प्रक्रिया के विषय में महर्षि जैमिनी का मत है-

"यदा वै तूष्णीमास्ते प्राणमेव वागप्येति" (जै.ब्रा.२.५०)

इस प्रक्रिया को तूष्णींशंस कहा जाता है। इस प्रक्रिया के विषय में खण्ड २.३१ द्रष्टव्य है। इस प्रक्रिया के द्वारा 'ओम्', 'भूः', 'भुवः', सुवः' वाग् रश्मियां विशेष सक्रिय हो उठती हैं। ये वाग् रश्मियां ही विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों को बल प्रदान करती हैं। {श्रेयः = क्षत्रं वै श्रेयः (मै.४.२.६), यदा वै श्रियोऽन्तं गच्छत्यथ पापीयान् भवति (मै.२.२.६)}

इसी तूष्णींशंस प्रक्रिया से विभिन्न श्रेयस् अर्थात् नियंत्रक और भेदक बलसमूहों का आकर्षण होता है। ये बल विभिन्न वाक् एवं प्राण रश्मियों से उत्पन्न होते हैं। इन बलों के कारण विभिन्न परमाणु अपनी क्रियाओं से च्युत नहीं होते हैं अर्थात् असुर रश्मियां उनके कार्यों को बाधित नहीं कर पाती हैं। इसके आगे कहते हैं कि विभिन्न संयोज्य देव परमाणु यदि अश्रद्धा अर्थात् तेजहीनता से ग्रस्त हो जाएं, तो केन्द्रीय भाग के अग्नि का निर्वासन अर्थात् अकस्मात् पलायन हो सकता है, जिसके कारण सम्पूर्ण आदित्य लोक कम्पायमान होने लगेगा। उस कम्पायमान लोक को स्थिर करने के लिए और केन्द्रीय भाग के अग्नि एवं सम्पूर्ण लोक में व्याप्त अग्नि के पलायन वा दुर्बलता को रोकने के लिए "अभयं वोऽभयं मेऽस्तु" की उत्पत्ति होती है। इसका छन्द दैवी स्वराट् त्रिष्टुप् अथवा प्राजापत्या गायत्री अथवा याजुषी अनुष्टुप् है। इन तीनों के ही प्रभाव से आदित्य लोक में विद्यमान सभी परमाणु आदि पदार्थ, साथ ही

सम्पूर्ण आदित्य लोक स्थिरता और व्यवस्था को प्राप्त होने लगता है। हमें इसका देवता अग्नि प्रतीत होता है। इस कारण इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सम्पूर्ण आदित्य लोक में सभी प्रकार के अग्नि समृद्ध होने लगते हैं और सम्पूर्ण आदित्य लोक समुचितरूप से अपने स्थायी स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। यहाँ पाठकों को तूष्णींशंस के विषय में अवश्य पढ़ लेना चाहिए, तभी यह विज्ञान स्पष्ट हो पाएगा।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्रीय भाग के ऊपर विद्यमान सन्धि भाग में निरन्तर भारी हलचल होती रहती है। यह सन्धिभाग दोनों भागों के बीच प्रवाहित होने वाले पदार्थों का एक माध्यम होता है। यदि कभी किसी विशेष परिस्थिति में इसमें विद्यमान पदार्थ अव्यवस्थित हो जाए अथवा उसके मध्य अवकाश क्षेत्र बढ़कर पदार्थ विरलता को प्राप्त कर ले, ऐसी परिस्थिति में तारे की क्रियाएं बाधित हो सकती हैं। उस समय एक जगती छन्द रश्मि उत्पन्न होकर उस सन्धिक्षेत्र के अतिरिक्त अन्य दोनों क्षेत्रों में भी तेजी से सर्वत्र संचरित होने लगती है। यह छन्द रश्मि व्यापक धाराओं के रूप में प्रवाहित होकर सम्पूर्ण आदित्य लोक को परस्पर समन्वित रखती है। तारों के केन्द्रीय भाग में उत्पन्न विभिन्न कण और विकिरण सन्धिभाग से होकर सम्पूर्ण तारे में व्याप्त हो जाते हैं। इनमें से कुछ कण और विकिरण तारे में विद्यमान पदार्थ के द्वारा ही अवशोषित कर लिये जाते हैं और कुछ कण एवं विकिरण उत्सर्जित होकर सुदूर अन्तरिक्ष में चले जाते हैं। तारों के सन्धिभाग में ऊपरी भाग की अपेक्षा अधिक ताप और दाब विद्यमान होता है। यहाँ से संचरित होने वाला प्रत्येक कण इस सामर्थ्य को प्राप्त कर लेता है कि वह डार्क एनर्जी के सूक्ष्म प्रभावों को निराकृत करके संलयनीय सामर्थ्य प्राप्त कर केन्द्रीय भाग में प्रविष्ट होकर उसी की परिधि में एक नये तत्त्व के रूप में जमा होता रहता है। तारों के अन्दर विद्यमान ऊष्मा आदि ऊर्जा को संरक्षित करने के लिए विभिन्न प्राण एवं छन्दरश्मियां सतत बल प्रदान करती रहती हैं। ब्रह्माण्ड में किसी भी पदार्थ का अस्तित्त्व इन्हीं के युग्मों पर निर्भर रहता है। **जहाँ कहीं बल और ऊर्जा की कमी होने लगती है, वहाँ चेतन ईश्वर तत्त्व की प्रेरणा से ये ही रश्मियां उनकी निरन्तर पूर्ति करती रहती हैं।** इनका विज्ञान इतना सूक्ष्म है कि किसी भी आधुनिक तकनीक के द्वारा इसका साक्षात् करना सम्भव नहीं है।।

ॐ इति ३२.११ समाप्तः ॐ

ॐ इति द्वात्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ॐ

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

“

विभिन्न फोटोन व इलेक्ट्रॉन आदि का संलयन नहीं होता और नहीं प्राय: प्रोटोन, न्यूट्रॉन आदि ही संलयित होते हैं, बल्कि इनसे बड़े कणों का ही संलयन होता है। इसका कारण यह है कि जो कण स्पष्टत: तरंग व कण द्वैत प्रवृत्ति दर्शाते हैं, उनका संलयन नहीं होता है।

”

।। ओ३म् ।।

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व।।

अनुक्रमणिका

३३.१ शनुःशेप आख्यान-विशेष ज्ञातव्य, इक्ष्वाकु, हरिश्चन्द्र, पर्वत, नारद, पुत्र महिमा। तारों के निर्माण का विज्ञान विशेषकर उनके केन्द्रीय भाग के निर्माण का विज्ञान। विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ एवं अयास्य छन्द रश्मियां। 2050

३३.२ पूर्वोक्त विषय 2056

३३.३ पूर्वोक्त विषय 2060

३३.४ पूर्वोक्त विषय 2067

३३.५ पूर्वोक्त विषय 2086

३३.६ पूर्वोक्त विषय 2094

विशेष ज्ञातव्य – इस अध्याय में वर्णित **शुनःशेप आख्यान** वैदिक वाङ्मय के आख्यानों में से सर्वाधिक प्रसिद्ध और विवादास्पद आख्यान है। यह आख्यान इस ब्राह्मण के अतिरिक्त वाल्मीकि रामायण एवं नवीन एवं कथित पुराण आदि ग्रन्थों में कुछ भेद के साथ वर्णित है। आचार्य सायणादि पौराणिक विचारधारा वाले प्रख्यात माने जाने वाले विद्वानों ने इस आख्यान को मानव इतिहास के रूप में ग्रहण करके इससे नरमेध अर्थात् नरवलि एवं सन्तान के विक्रय आदि दूषित और घृणित मानसिकताओं वा परम्पराओं को स्वीकार किया है। उधर, अनैतिहासिक मान्यता वाले **ऋषि दयानन्द सरस्वती** आदि विद्वानों ने अपने ऋग्वेद-भाष्य में वा अन्यत्र किन्हीं प्रसंग-विशेषों में इसकी आध्यात्मिक व्याख्या की है। **ऋषि दयानन्द सरस्वती** ने ऐतरेय के इस आख्यान पर कहीं कोई चर्चा नहीं की है, वल्कि उन्होंने अपने ऋग्वेद-भाष्य में **शुनःशेप ऋषि** से उत्पन्न मन्त्रों का आध्यात्मिक शैली में भाष्य किया है। अनेक आर्य विद्वानों ने इस ब्राह्मण के आख्यान का सरल हिन्दी अनुवाद, जिसमें नरवलि और सन्तान विक्रय जैसे प्रसंग भी भासित होते हैं, प्रस्तुत करके उसके कुछ अंशों, यहाँ तक कि कुछ शब्दों को ही लेकर अपना आध्यात्मिक सार प्रस्तुत कर दिया है। किसी भी आर्य विद्वान् ने इस सम्पूर्ण अध्याय का अक्षरशः आध्यात्मिक व्याख्यान वा संपूर्ण सार प्रस्तुत नहीं किया है। आर्य समाज के विख्यात वैदिक विद्वान् पं. भगवद्दत रिसर्च-स्कॉलर एवं पं. शिवशंकर काव्यतीर्थ निरुक्त शास्त्र में **शुनःशेप** प्रकरण के संकेत को समझने में भी भयंकर भूल कर बैठे हैं। निरुक्त शास्त्र में यह प्रकरण इस प्रकार है-

तस्मात्पुमान्दायादोऽदायादा स्त्री। इति विज्ञायते। {मै.४.६.४} तस्मात्स्त्रियं जातां परास्यन्ति न पुमांसम्। {काठ.संक.२७.९} इति च। स्त्रीणां दानविक्रयातिसर्गा विद्यन्ते न पुंसः। पुंसोऽपीत्येके। शौनःशेपे दर्शनात्। इस प्रकरण का भाष्य करते हुए पं.भगवद्दत रिसर्च स्कॉलर लिखते हैं-

"नहीं पुत्रियाँ {दाय में भाग वाली} यह कई {धर्मशास्त्रकार} कहते हैं इसलिए पुमान् (दायाद) दाय को अदन करने वाला = भोगने वाला {है} अदायादा स्त्री {है} यह {ब्राह्मण ग्रन्थ से} विज्ञान जाना जाता है। इसलिए {कन्या संज्ञा के पश्चात्} स्त्री {संज्ञा को} प्राप्त होने पर अर्थात् विवाह के तत्काल पश्चात् {स्त्री को} परे कर देते हैं, नहीं पुमान् को, यह भी {ब्राह्मण में है}। स्त्रियों के दान विक्रय और (अतिसर्ग) त्याग {इतिहास में} विद्यमान हैं, नहीं पुरुष के। पुरुष के भी {दान, विक्रय और त्याग} हैं, यह कई धर्मशास्त्रकार {कहते हैं}, **शुनःशेप के {आख्यान} में देखे जाने से।"**

इस भाष्य से यह स्पष्टतः सिद्ध हो रहा है कि वैदिक वाङ्मय में स्त्रियों के दान, विक्रय और त्याग का विधान है और यह भी संकेत मिलता है कि कुछ शास्त्रकार पुरुषों के भी दान, विक्रय और त्याग को स्वीकार करते हैं और इसके लिए **महर्षि यास्क** शुनःशेप के त्याग का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए प्रतीत हो रहे हैं। इस बात को ही लेकर पं. शिवशंकर काव्यतीर्थ ने **महर्षि यास्क** द्वारा स्त्री और पुरुषों के विक्रय, दान और त्याग को स्वीकार करना बताकर अपने "वैदिक इतिहासार्थ-निर्णय" नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ में **महर्षि यास्क** की आलोचना की है एवं **महर्षि यास्क** के मत को चिन्त्य बताया है। ये दोनों विद्वान् वेदादि शास्त्रों के विशेष मर्मज्ञ माने जाते हैं, जिन्होंने **ऋषि दयानन्द सरस्वती** की वेदार्थ की यौगिक शैली का आश्रय लेकर वैदिक सिद्धान्तों और वैदिक विज्ञान को एक दृष्टि प्रदान की है परन्तु खेद का विषय है कि ऐसे मूर्धन्य विद्वान् भी यहाँ इस प्रकरण में **'स्त्री'** और **'पुंस्'** शब्दों का रूढ़ अर्थ ही ग्रहण करके **महर्षि यास्क** को ही अपयश का भागीदार बना बैठे। इन आर्य विद्वानों की कथा क्या कहें निरुक्त-शास्त्र के विख्यात प्राचीन टीकाकार आचार्य दुर्ग, जो शताब्दियों से निरुक्त शास्त्र के विद्वानों के लिए प्रमाणरूप में माने जाते रहे हैं, ने भी इस प्रकरण को समझने में भारी भूल कर दी। सम्भवतः आचार्य दुर्ग को ही प्रमाण मान कर अनुवर्ती वैदिक विद्वानों ने इस प्रकरण के विषय में नितान्त भ्रान्त होकर **'अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः'** के समान निरुक्त शास्त्र के साथ-२ समस्त वैदिक साहित्य की भारी क्षति की है। इस ग्रन्थ में शतशः स्थानों पर हमने विभिन्न कणों व तरंगों, प्राण रश्मियों के **'स्त्री'** और **'पुंस्'** रूप की विवेचना करके सम्पूर्ण सृष्टि का इन दो स्वरूप वाले पदार्थों के मेल से निर्मित होना सिद्ध किया है और इस आशय के गम्भीर विज्ञान का भी विस्तृत विवेचन किया है। ऐसी स्थिति में हम इस प्रकरण में **'स्त्री'** और **'पुंस्'** शब्दों का रूढ़ अर्थ नारी और नर ग्रहण करना कदापि स्वीकार नहीं कर सकते। हमें इस प्रकरण में भी यौगिक अर्थों का ही आश्रय लेना होगा अन्यथा हम वैदिक वाङ्मय के साथ कदापि न्याय नहीं कर सकते। वेद अथवा शाखा ग्रन्थों के अर्थ के रूढ़िवाद के जाल से जिन **ऋषि दयानन्द सरस्वती** ने हमें मुक्त करने का प्रयास किया था, उसी रूढ़िवाद में हमारे मूर्धन्य आर्य विद्वान् भी वह चले, यह वड़े दुःख का विषय है। अब हम इस अध्याय पर अपनी शैली में वैज्ञानिक व्याख्यान

लिखना प्रारम्भ करते हैं, जिससे **इक्ष्वाकु, हरिश्चन्द्र राजा, जाया, पुत्र, पर्वत, नारद, अजीगर्त, शुनःशेप, वरुण, विश्वामित्र** आदि अनेक शब्दों का आधिदैविक स्वरूप प्रकाशित होकर इस आख्यान के अर्थ का रूढ़िवाद पूर्णतः समाप्त हो जाएगा और सृष्टि विज्ञान का एक महत्वपूर्ण प्रकरण पूर्व प्रकरणों से सुसंगत होते हुए संसार के समक्ष प्रकाशित होगा।।

ॐ अथ ३३.१ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. हरिश्चन्द्रो ह वैधस ऐक्ष्वाको राजाऽपुत्र आस, तस्य ह शतं जाया बभूवुस्तासु पुत्रं न लेभे, तस्य ह पर्वतनारदौ गृह ऊषतुः, स ह नारदं पप्रच्छ।।
यं न्विमं पुत्रमिच्छन्ति, ये विजानन्ति, ये च न।
किंस्विद् पुत्रेण विन्दते, तन्म आचक्ष्व नारदेति।।
स एकया पृष्टो दशभिः प्रत्युवाच।।
ऋणमस्मिन् संनयत्यमृतत्वं च गच्छति।
पिता पुत्रस्य जातस्य, पश्येच्चेज्जीवतो मुखम्।।
यावन्तः पृथिव्यां भोगा, यावन्तो जातवेदसि।
यावन्तो अप्सु प्राणिनां, भूयान्पुत्रे पितुस्ततः।।
शश्वत् पुत्रेण पितरोऽत्यायन् बहुलं तमः।
आत्मा हि जज्ञ आत्मनः स इरावत्यतितारिणी।।
किं नु मलं, किमजिनं, किमु श्मश्रूणि, किं तपः।
पुत्रं ब्राह्मण इच्छध्वं, स वै लोकोऽवदावदः।।
अन्नं ह प्राणः, शरणं ह वासो, रूपं हिरण्यं, पशवो विवाहाः।
सखा ह जाया, कृपणं ह दुहिता, ज्योतिर्ह पुत्रः परमे व्योमन्।।
पतिर्जायां प्रविशति, गर्भो भूत्वा स मातरम्।
तस्यां पुनर्नवो भूत्वा, दशमे मासि जायते।।
तज्जाया जाया भवति, यदस्यां जायते पुनः।
आभूतिरेषा भूतिर्बीजमेतन्निधीयते।।
देवाश्चैतामृषयश्च, तेजः समभरन् महत्।
देवा मनुष्यानब्रुवन्नेषा वो जननी पुनः।।
नापुत्रस्य लोकोऽस्तीति, तत्सर्वे पशवो विदुः।
तस्मात्तु पुत्रो मातरं, स्वसारं चाधिरोहति।।
एष पन्था उरुगायः सुशेवो, यं पुत्रिण आक्रमन्ते विशोकाः।
तं पश्यन्ति पशवो वयांसि च, तस्मात्ते मात्राऽपि मिथुनीभवन्ति।।
इति हास्मा आख्याय।।१।।

व्याख्यानम्- {इक्ष्वाकुः = इक्षुम् इच्छाम् आकरोति इति (आप्टेकोष), इक्षुः = इष्यते स इक्षुः (उ.को.३.१५७)। जाया = जाया गार्हपत्यः (अग्निः) (ऐ.८.२४)। नारदः = नरस्य धर्मो नारं तत् ददाति इति (आप्टेकोष)। पर्वतः = पर्वति पूर्णो भवतीति पर्वतः (उ.को.३.११०), मेघनाम (निघं.१.१०), पर्ववान् पर्वतः पर्व पुनः पृणातेः प्रीणातेर्वा (नि.१.२०)। मेघः = यज्ञस्य मेघो हविर्धानं (तै.आ.२.१४.१)}

आदित्य लोकों के निर्माण की प्रक्रिया में संभावित विकृतियों और उनके निवारण की प्रक्रियाओं के वर्णन के पश्चात् आदित्य लोकों के निर्माण की कुछ अन्य प्रक्रियाओं का वर्णन करते हुए नाना प्रकार के विज्ञान को उद्घाटित करते हैं। यहाँ 'इक्ष्वाकु' शब्द का अर्थ है, ऐसा सूक्ष्म प्राण, जो विभिन्न गतिशील सूक्ष्मातिसूक्ष्म रश्मि आदि पदार्थों को अपनी ओर आकर्षित करता है अथवा किये रहता है। इसके साथ ही यह उन सब पदार्थों को अपने सूक्ष्म किन्तु व्यापक बल से गति एवं बल भी प्रदान करता है। इस प्रकार मनस्तत्त्व ही इक्ष्वाकु कहलाता है, ऐसा हमारा मत है। इसी मनस्तत्त्व से उत्पन्न वेधा अर्थात् सूत्रात्मा वायु हरिश्चन्द्र नामक सूक्ष्म ऋषि प्राणों को उत्पन्न करता है। पाणिनीय अष्टाध्यायी ६.१.१४८ 'प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रावृषी' के अनुसार 'हरिश्चन्द्र' शब्द ऋषि वाचक है। यह एक ऐसा ऋषि प्राण है, जो कमनीय सोम रश्मियों, जो उदान प्राण से सम्पृक्त होती हैं, के रूप में विद्यमान होता है। चन्द्रमा का सोम और उदान रश्मियों से सम्बन्ध बतलाते हुए कहा गया है-

"चन्द्रमा उदानः।" (जै.उ.४.११.१.६)

"चन्द्रमा उ वै सोमः।" (श.६.५.१.१)

ये सोम रश्मियां राजा के रूप में अर्थात् प्रकाशमान अवस्था में प्रकट होती हैं। इनसे अनेकों गार्हपत्य अर्थात् ऋतु प्राणसम्पन्न रश्मि आदि पदार्थ, जो किसी भी आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग एवं सन्धि भाग के बाहर विद्यमान विशाल भाग का निर्माण करते हैं, उत्पन्न होते हैं। इन्हीं पदार्थों में नाना प्रकार की क्रियाएं उत्पन्न होकर नाना प्रकार के परमाणुओं को उत्पन्न करती हैं। {पुत्रः = पुत्ररूप सूर्य की उत्पत्ति करने हारा (तु.म.द.ऋ.भा.७.४१.२, सं.वि.गृहाश्रम प्रकरण), बलस्योत्पादकः (तु.म.द.ऋ.भा.३.१८.४)} इतना होने पर भी उन परमाणुओं में आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग के निर्माण में समस्त आवश्यक बलों की उत्पत्ति नहीं हो पाती, जिसके कारण आदित्य लोक के निर्माण की प्रक्रिया अवरुद्ध हो जाती है। ऐसी स्थिति में उस पदार्थ में पर्वत एवं नारद नामक दो प्रकार की ऋषि प्राण रश्मियां प्रकट हो जाती हैं। वे रश्मियां सम्पूर्ण पदार्थ को आच्छादित और व्याप्त कर लेती हैं (वस आच्छादने, वस निवासे)। यहाँ पर्वत उन ऋषि प्राणों का नाम है, जो विभिन्न हविरूप मास रश्मियों को धारण करते हुए नाना प्रकार की क्रियाओं को विभिन्न संयोजक आदि बलों से तृप्त और पूर्ण करते हैं, तथा नारद उन ऋषि प्राण रश्मियों को कहते हैं, जो विभिन्न देव परमाणुओं को नर अर्थात् विभिन्न आशुगामिनी मरुद् रश्मियों से युक्त करके उन्हें बलवान् और आशुगामी बनाती हैं। यहाँ ग्रन्थकार हरिश्चन्द्र रूपी ऋषि प्राण रश्मियों एवं नारद रूपी ऋषि प्राण रश्मियों के काल्पनिक संवाद के द्वारा आदित्य लोक के निर्माण की प्रक्रिया को समझाते हुए कहते हैं कि हरिश्चन्द्र ऋषि प्राण रश्मियां नारदरूप प्राण रश्मियों की ओर आकर्षित होती हुई उनसे निम्नानुसार प्रश्न करती हैं।।

आदित्य लोक के विशाल भाग में विद्यमान विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ, चाहे वे विशुद्धरूप से प्रकाशित हो चुके हों अथवा नहीं हो चुके हों, सभी पुत्ररूप बल को प्राप्त करके आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग की ओर गमन करने अथवा केन्द्रीय भाग का निर्माण करने का प्रयत्न क्यों करते हैं अर्थात् सभी परमाणुओं का प्रवाह केन्द्रीय बिन्दु की ओर ही क्यों होता है? वे वहाँ जाकर क्या प्राप्त करते हैं? हे नारद! आप हमें यह बतलाइये। **ध्यान रहे, यह संवाद ऐतिहासिक नहीं है, बल्कि यह गम्भीर विज्ञान को सरलता से समझाने की ग्रन्थकार की शैली का एक उत्कृष्ट उदाहरण मात्र है।** यह प्रश्न एक गाथा के रूप में किया गया है, जिसका उत्तर नारद नामक ऋषि प्राण, दस गाथाओं के रूप में निम्नलिखितानुसार देते हैं।।+।।

{मुखम् = मुख्यज्योतिर्मयाद्यक्षणरूपम् (तु.म.द.य.भा.३१.१२)। अमृतम् = आदित्योऽमृतम् (श.१०.२.६.१६), अग्निरमृतम् (श.१०.२.६.१७)} जब ऋतु प्राण रश्मियों रूपी पितरों से सम्पन्न परमाणु गतिशील एवं बलवान् अग्निरूप पुत्र को उत्पन्न करके उसके ज्योतिर्मय एवं विभिन्न परमाणुओं का भक्षण करने में समर्थ रूप को प्राप्त कर लेते हैं, उस समय ये ऋतु रश्मियां एवं उनसे समृद्ध परमाणु आदि पदार्थ अग्नि तत्त्व में विशेष व्याप्ति और गति आदि गुणों को उत्पन्न करते हैं। इससे वे परमाणु आदि पदार्थ आदित्य के केन्द्रीय भाग में व्याप्त होकर निरन्तर प्राण रश्मियों से समृद्ध रहकर निरापद बलों से युक्त हो जाते हैं अर्थात् उन परमाणुओं में फिर बलहीनता की स्थिति उत्पन्न नहीं होती है। इस प्रकार वे सभी परमाणु आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में ही विद्यमान और प्रकाशित होते रहते हैं।।

{भोजनम् = धननाम (निघं.२.१०)। जातवेदः = वायुर्वै जातवेदा वायुर्हीदं सर्वं करोति यदिदं किञ्च (ऐ.२.३४)} विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ ऋतुसंज्ञक पितर प्राण रश्मियों से युक्त होकर आकाश वा पार्थिव परमाणुओं के रूप में जितने पालन, अवशोषण एवं संयोजन आदि व्यवहारों को प्राप्त करते हैं एवं विभिन्न वायु वा प्राण रश्मियों में इसी प्रकार के जितने व्यवहारों को प्राप्त करते हैं अथवा विभिन्न व्यापक तन्मात्राओं वा उदक परमाणुओं में उसी प्रकार के जितने व्यवहारों को प्राप्त करते हैं, उनसे अधिक इस प्रकार की क्रिया और बलों को आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग के उत्पादक पुत्ररूप अग्नि के परमाणुओं में प्राप्त करते हैं। इसका आशय यह है कि जितने तीव्र क्रिया और बल आदि व्यवहार आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों में विद्यमान होते हैं, उतने अन्य किसी भी भाग में विद्यमान नहीं होते हैं।।

{इरावती = नदीनाम (निघं.१.१३), इरावतीं परुष्णीत्याहुः पर्ववती (भास्वती) कुटिलगामिनी (नि.९.२५)। शश्वत् = शश्वन्ती शश्वद्गामिनी विश्वगामिनी बहुगामिनी वा (नि.१३.३७ - वै.को. से उद्धृत), शश्वत् बहुनाम (निघं.३.१)} वे ऋतुसंज्ञक पितर प्राणों से सम्पन्न परमाणु आदि पदार्थ अपने से उत्पन्न बलवान् आशुगामी अग्निरूप पुत्र के द्वारा सब ओर व्याप्त एवं निरन्तर आशुगमनकर्त्ता अतिशय विद्यमान, व्यापक बाधकतमरूप आसुरी रश्मियों का निरन्तर अतिक्रमण करते हैं। इसका आशय यह है कि आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग में तेजस्वी अग्नि के उत्पन्न होने पर वहाँ विद्यमान असुर तत्त्व निष्प्रभ हो जाता है। आत्मरूप अर्थात् व्यापक गतियों से युक्त ऋतु प्राण रश्मियां व्यापक गतियों से युक्त केन्द्रीय भाग के अग्नि तत्त्व को निरन्तर प्रकट करती हैं। इसका आशय यह भी है कि निर्माणाधीन आदित्य लोक का सम्पूर्ण पदार्थ ही उस आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग को प्रकट करने में अपनी भूमिका निभाता है अर्थात् पदार्थ का कुछ भाग ही केन्द्रीय भाग का निर्माण नहीं कर सकता। उस केन्द्रीय भाग में उत्पन्न अग्नि तत्त्व निरन्तर प्रकाशित कुटिल मार्गों से सतत गमन करता हुआ विभिन्न प्रकार के संयोजक बलों और संयोज्य परमाणुओं को उत्पन्न वा प्राप्त करके विभिन्न बाधक तत्त्वों से तारता हुआ निरन्तर संलयित करता रहता है।।

'मल' अर्थात् अशुद्धिरूप वह पदार्थ, जिसका शोधन करना अनिवार्य होता है, ऐसे बाधक असुरादि पदार्थों से किसी भी लोक का निर्माण कैसे हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता है। इस प्रकार का पदार्थ न केवल आदित्य लोकों के निर्माण में अक्षम होता है, अपितु किसी भी लोक के निर्माण में भी सर्वथा अक्षम होता है। यह पदार्थ किसी भी प्रकार के संयोगादि कर्मों में न केवल अक्षम होता है, बल्कि वह उनमें बाधक भी होता है, जिसे दूर किये बिना किसी भी संयोग वा संपीडन आदि कर्म का होना संभव नहीं होता है, इसी कारण इस पदार्थ को यहाँ 'मल' कहा गया है। अब महर्षि दूसरे प्रकार के पदार्थ की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि यह पदार्थ 'अजिन' रूप होता है। इसका तात्पर्य यह है कि यह पदार्थ नियंत्रण में लाने के अयोग्य अत्यन्त विक्षुब्धरूप में विद्यमान होता है। इस प्रकार के पदार्थ के परमाणु अनियम्य गति और बल से युक्त होने के कारण सम्पीडन और संयोजन में समर्थ नहीं होते हैं। इस कारण ऐसे परमाणु भी किसी भी लोक के निर्माण में सक्षम नहीं होते हैं। तीसरे प्रकार के पदार्थों को यहाँ "श्मश्रु" कहा है। आदित्य लोकों के ऊपरी भाग में स्थित विभिन्न छन्दादि रश्मियां "श्मश्रु" कहलाती हैं। "श्मश्रु" रश्मियों का आदित्य से सम्बन्ध बतलाते हुए कहा गया है-

"आदित्याञ्श्मश्रुभिः (प्रीणामि)" (मै.३.१५.१)

इसका आशय है कि श्मश्रु-संज्ञक छन्द रश्मियां आदित्य लोकों के बाहर वर्तमान होकर उन लोकों को कान्ति और तृप्ति से युक्त करती हैं पुनरपि ये रश्मियां आदित्य लोकों का निर्माण करने में समर्थ नहीं होती हैं। अब चतुर्थ पदार्थ के विषय में महर्षि लिखते हैं कि केवल संताप गुण से युक्त परमाणु आदि पदार्थ भी आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग का निर्माण करने में समर्थ नहीं होता है। {अवदावदः = दोषराहित्यान्निन्दानर्ह इत्यर्थः (सायणभाष्यम्)} इस कारण आदित्य लोक के निर्माण में रत सम्पूर्ण बल एवं तेज से युक्त परमाणु आदि पदार्थ पुत्ररूप केन्द्रीय अग्नि को उत्पन्न करने का प्रयत्न करता है, जो तीव्र संताप एवं समुचित विक्षोभयुक्त बलों से समृद्ध होता है। इस प्रकार का वह पदार्थ सम्पूर्ण लोक को बाधक रश्मि आदि पदार्थों से मुक्त करके परस्पर संयोजन और संलयन क्रियाओं से युक्त कर देता है,

जिससे आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग का निर्माण समुचितरूप से होने लगता है।।

आदित्य लोक में विद्यमान विभिन्न प्राण रश्मियां अन्नरूप होती हैं। इसका आशय यह है कि वे प्राण रश्मियां संयोजक बल उत्पन्न करके स्वयं ही परस्पर संयुक्त होकर नाना प्रकार के संयोज्य परमाणु आदि पदार्थों को उत्पन्न करती हैं। इसका दूसरा आशय यह है कि विभिन्न संयोज्य बल और संयोज्य परमाणु आदि पदार्थ किसी भी लोक निर्माण की प्रक्रिया के लिए प्राण रूप होते हैं अर्थात् वे ही उस प्रक्रिया को बल और गति प्रदान करते हैं। विभिन्न देव परमाणु उन बलप्रद प्राण रश्मियों के शरण अर्थात् आश्रय स्थान रूप होते हैं। यहाँ देव परमाणुओं को ही वासः कहा है। इसकी पुष्टि निम्नलिखित प्रमाणों से भी होती है-

"सर्वदेवत्यं वै वासः" (तै.ब्रा.१.१.६.११; काठ.२४.६)

यहाँ "शरणं ह वासः" का दूसरा आशय यह भी है कि वे प्राण रश्मियां, जो सभी परमाणु आदि पदार्थों को सदैव आच्छादित किये रहती हैं, उन सभी परमाणु आदि पदार्थों की आश्रयरूप होती हैं।

विभिन्न प्रकार की तेजस्विनी रश्मियां विभिन्न पदार्थों को रूप वा आकृतियां प्रदान करती हैं अथवा विभिन्न पदार्थों के रूप उनकी गति व प्रकाश गुण के ही कारण बनते हैं।

विभिन्न प्रकार के पशु अर्थात् मरुद् व छन्दादि रश्मियां विभिन्न परमाणुओं को विविध प्रकार से वहन करती हैं अर्थात् उन परमाणुओं की विभिन्न प्रकार की गतियां इन छन्द वा प्राणादि रश्मियों के कारण ही उत्पन्न होती हैं।

{सखा = प्राणो वै सखा भक्षः (श.१.८.१.२३), सखा भक्षितः (काठ.३४.१६)} जाया अर्थात् आदित्य लोकों में गार्हपत्य अग्निरूपी विशाल पदार्थ सम्पूर्ण आदित्य लोक के साथ प्रकाशित होता है वा सम्पूर्ण लोक को प्रकाशित करता है। यह पदार्थ विभिन्न प्राकर की अवशोष्य प्राणादि रश्मियों से युक्त होता हुआ नाना प्रकार के परमाणुओं को निरन्तर उत्पन्न करता रहता है। {कृपणः = कल्पतेऽसौ कृपणः (उ.को.२.८०), (कल्पते अर्चतिकर्मा - निघं.३.१४, कृपू सामर्थ्ये)} दुहिता अर्थात् किसी भी आदित्य लोक में स्थित दीप्तियुक्त उष्ण मेघस्थ पदार्थ अनेक प्रकार की ज्वालाओं से युक्त होकर प्रकाश व ऊष्मा आदि को उत्पन्न करने में समर्थ होता है।

यहाँ इन उपर्युक्त सभी पदार्थों के नाना प्रकार के गुणों का विवेचन करने के पश्चात् महर्षि कहते हैं कि यद्यपि ये सभी उपर्युक्त पदार्थ नाना प्रकार के गुणधर्मों से युक्त होते हैं और आदित्य लोकों के निर्माण में अपनी-२ भूमिका का निर्वहन भी करते हैं, पुनरपि वे सभी पदार्थ आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग को उत्पन्न करने योग्य अग्नि तत्त्व के अभाव में तारे को सम्पूर्ण रूप से सम्पादित करने में समर्थ नहीं होते हैं। यह केन्द्रीय अग्नि तत्त्व ही {व्योम = इमे वै लोकाः परमं व्योम (श.७.५.२.१८)} सम्पूर्ण आदित्य लोकों में तीव्रतम ज्योति एवं विद्युत् रूप होकर उनके केन्द्रीय भाग का निर्माण करके सम्पूर्ण लोक को सतत प्रकाशमान करने में समर्थ होता है। यद्यपि इस अग्नि तत्त्व की उपस्थिति में उपर्युक्त सभी पदार्थों की अपनी-२ भूमिका होती है, पुनरपि इसके अभाव में लोक निर्माण की प्रक्रिया पूर्णता को प्राप्त नहीं होती है।।

{माता = वायुः (तु.म.द.ऋ.भा.३.२६.१४), माता अन्तरिक्षं, निर्मीयन्तेऽस्मिन् भूतानि (नि.२.८)। पतिः = पालकः सूत्रात्मा वायुः (तु.म.द.ऋ.भा.५.४६.३)} यहाँ महर्षि इस प्रसंग में वर्णित पुत्रसंज्ञक बलवान् अग्नितत्त्व की उत्पत्ति का विज्ञान समझाते हुए कहते हैं कि जब पति अर्थात् सूत्रात्मा वायु जायासंज्ञक गार्हपत्य अग्निरूप पदार्थ में प्रविष्ट होकर उनमें विद्यमान ऋतु प्राण रश्मियों को व्याप्त और धारण कर लेता है, तब वे ऋतु प्राण रश्मियां सूत्रात्मा वायु के गर्भ अर्थात् तेजरूप सामर्थ्य को प्राप्त करके माता का रूप धारण कर लेती हैं। इसका आशय यह है कि वे ऋतु प्राण रश्मियां अन्य विभिन्न वायु रश्मियों एवं आकाश तत्त्व के साथ मिश्रित होकर उत्पादन सामर्थ्य से युक्त हो जाती हैं। उसके पश्चात् उन मातृरूपा ऋतु प्राण रश्मियों पर विभिन्न मास रश्मियों का प्रक्षेपण होता है। वे मास रश्मियां बारह प्रकार की होती हैं। ये मास रश्मियां जहाँ ईन्धन का कार्य करती हैं, वहीं संधानक का कार्य भी करती हैं। इन मास रश्मियों का ऋतु रश्मियों के ऊपर क्रमशः प्रक्षेपण होता है। इस क्रम में जब दशमी मास रश्मियों का ऋतु रश्मियों में आधान हो चुका होता है, उस समय सूत्रात्मा वायु रश्मियां, ऋतु रश्मियों के साथ मिश्रित होकर एक नवीन रूप धारण करके पुत्ररूप अग्नि तत्त्व को उत्पन्न करती हैं।

इस कार्य में विभिन्न प्राण एवं छन्दादि रश्मियों की भी भूमिका होती है। यही पुत्ररूप अग्नि केन्द्रीय भाग का निर्माण करने लगता है। यह इस अग्नि के उत्पन्न होने का विज्ञान है।।

ये ऋतु संज्ञक प्राण रश्मियां जाया इस कारण कहलाती हैं, क्योंकि इनके अन्दर ही वार-२ पुत्ररूप अग्नि उत्पन्न होता है। ये ऋतु प्राण रश्मियां सम्पूर्णरूपेण नियंत्रक शक्तिसम्पन्न अग्निरूप होती हैं, जिनमें भूति अर्थात् सूत्रात्मा वायु अपने तेजरूप सामर्थ्य को धारण कराता है अर्थात् उन ऋतु प्राण रश्मियों में सम्पीडन और संयोजक वलों का बीजारोपण करके पुत्ररूप अग्नि को उत्पन्न करता है। यहाँ सूत्रात्मा वायु को भूति इस कारण कहा गया है, क्योंकि यह नियंत्रक और संयोजक बलों से विशेष सम्पन्न अर्थात् ऐश्वर्यरूप होता है। इसके साथ ही ऋतु रश्मियों को 'आभूति' इस कारण कहा है, क्योंकि यह सूत्रात्मा वायु रश्मियों से सब ओर से व्याप्त होकर पुत्ररूप अग्नि तत्त्व को उत्पन्न करने में समर्थ होता है।।

इस गाथा में उपर्युक्त प्रक्रिया से पूर्व होने वाली सूक्ष्म प्रक्रिया का वर्णन करते हुए कहते हैं कि देव अर्थात् मनस्तत्त्व एवं 'ओम्' छन्द रश्मिरूप वाक् तत्त्व तथा ऋषि अर्थात् विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियां अपने व्यापक व महान् तेजरूप सामर्थ्य को ऋतु प्राण रश्मियों एवं उनसे सम्पृक्त विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों में सम्यग् रूप से भरती हैं। इसके पश्चात् वे मन एवं वाक् रूपी देव पदार्थ {मनुष्यः = मेधाविनाम (निघं.३.१५)} मनुष्य अर्थात् मनस्तत्त्व से उत्पन्न सूत्रात्मा वायु को उन ऋतु प्राण रश्मियों को जाया रूप प्रदान करने अर्थात् पुत्रसंज्ञक पूर्वोक्त अग्नि की उत्पत्ति हेतु अपने तेज से भरने के लिए प्रेरित करते हैं। इसका आशय यह है कि यहाँ अग्नि तत्त्व की उत्पत्ति हेतु सूत्रात्मा वायु रश्मियों द्वारा ऋतु प्राण रमिश्यों को प्रेरित करने के पीछे मन एवं वाक् तत्त्व की मूल प्रेरणा रहती है।।

उपर्युक्त पुत्ररूप अग्नि तत्त्व के बिना कोई भी दृश्यमान लोक, विशेषकर आदित्य लोक उत्पन्न नहीं हो सकता किंवा इसके बिना वह दीर्घकाल तक जीवित नहीं रह सकता। इस अग्नि के रहते हुए ही सभी प्रकार के दृश्य परमाणु उत्पन्न और विद्यमान रह पाते हैं। इसी कारण वह पुत्ररूप अग्नि तत्त्व आकाश एवं वायु मिश्रित उत्पादिका शक्तिरूपी माता अर्थात् ऋतु प्राण रश्मियां एवं उनसे व्याप्त पदार्थ तथा अच्छे प्रकार प्रक्षेपण करने की क्रियारूप स्वसा अर्थात् विभिन्न सामर्थ्यो का वाहक होता है।।

{उरुगायः = उरुगायस्य विष्णोर्महागतेः (नि.२.७), (गयः = धननाम - निघं.२.१०, गृहनाम - निघं.३.४, प्राणा वै गयाः - श.१४.८.१५.७)} अन्त में कहते हैं कि उपर्युक्त ६ गाथाओं में जो प्रक्रिया बतलायी गयी है, वह प्रक्रिया विष्णु अर्थात् आदित्य लोक के सहज निर्माण के मार्ग को प्रशस्त करती है। वह आदित्य लोक इस प्रक्रिया के द्वारा अनेक प्रकार की प्राण रश्मियों, ग्राहक बलों एवं परमाणु आदि पदार्थों से समृद्ध होता है। इन प्रक्रियाओं के द्वारा ही वह आदित्य लोक 'सुशेव' अर्थात् अच्छे प्रकार के प्रजनन कर्म अर्थात् विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को उत्पन्न करने वाले स्थान एवं बलों से युक्त होता है। उपर्युक्त पुत्ररूप अग्नि तत्त्व से सम्पन्न आदित्य लोक विशेषरूप से प्रदीप्त होती हुई ज्वालाओं को सब ओर से उत्पन्न करता है। उस अग्नि तत्त्व को विभिन्न छन्द व प्राणादि रश्मियां सब ओर से प्राप्त करती हुई कमनीय तेज, बल एवं वेग से युक्त करती हैं। इस कारण वे छन्द, मरुत् आदि रश्मियां विभिन्न प्रकार के संयोज्य परमाणु, व्यापनशील वेग, बलादि गुण एवं पूर्वोक्त माता अर्थात् आकाश एवं वायु मिश्रित उत्पादन सामर्थ्य से विशेष युक्त ऋतु प्राण रश्मियों, जिनमें सूत्रात्मा वायु रश्मियों का भी संगम हो चुका होता है, के साथ संगत हो जाती हैं। इस प्रकार इस प्रक्रिया का व्याख्यान जो नारद ऋषि के कल्पित वचन से प्रारम्भ हुआ था, यहाँ पूर्ण होता है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- कॉस्मिक मेघों से जब तारों का निर्माण प्रारम्भ होता है, तब पदार्थ धीरे-२ संपीडित वा संघनित होकर गर्म होने लगता है और वह एक गर्म विशाल लोक के रूप में परिवर्तित हो जाता है किन्तु ऐसा होने पर भी वह तारे का रूप धारण नहीं कर पाता। जब तक तारे के केन्द्रीय भाग में नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया प्रारम्भ नहीं होती, तब तक वह लोक तारे के रूप में परिवर्तित नहीं हो पाता। उस ऐसे लोक में विद्यमान पदार्थ प्रबल गुरुत्व बल के कारण केन्द्रीय भाग की ओर ही निरन्तर

आकर्षित होकर प्रवाहित होने का प्रयास करते हैं। उस केन्द्रीय भाग में पहुंचकर वे प्रबल आकर्षण बलों से युक्त हो जाते हैं तथा अत्यन्त ऊष्ण वैद्युत अवस्था को उत्पन्न करते हैं। इस अवस्था में डार्क एनर्जी का कोई प्रक्षेपक, प्रतिकर्षक और बाधक प्रभाव नहीं रहता अर्थात् डार्क एनर्जी केन्द्रीय भाग से पूर्णत निराकृत हो जाती है और यह डार्क एनर्जी-विहीन क्षेत्र ही उस तारे का केन्द्रीय भाग बन जाता है, जिसमें विद्यमान विभिन्न प्रकार के कण प्रबल विद्युत् चुम्बकीय बलों से युक्त होकर परस्पर संगत होने लगते हैं। इस भाग में विद्यमान प्रबल ताप कुटिल मार्गों के द्वारा सतत प्रवाहित होता रहता है। डार्क मैटर और डार्क एनर्जी से किसी भी प्रकार के लोक अथवा दृश्य कणों की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। ये दोनों ही पदार्थ दृश्य पदार्थ की संयोग आदि क्रियाओं में बाधा उत्पन्न करते हैं, जिन्हें प्रबल ऊष्मायुक्त विद्युत् चुम्बकीय बलों के द्वारा किंवा उच्च ऊष्मायुक्त विद्युदावेशित कणों के प्रहार के द्वारा नियंत्रित किया जाता है। जब तारों में विभिन्न प्रकार के कण आवश्यकता से अधिक उत्तेजित वा विक्षुब्ध अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं, तब उनका सम्पीडन वा संघनन असम्भव होता है, जिससे तारे के निर्माण की प्रक्रिया अस्त-व्यस्त वा अवरुद्ध हो जाती है। तारों के बाहरी भाग में विद्यमान विभिन्न प्रकार की छन्दादि रश्मियां उन तारों को रूप और रंग प्रदान करती हैं, परन्तु वे तारों के केन्द्रीय भाग में विद्यमान रश्मियों की अपेक्षा न्यून बलों से युक्त होती हैं। तारों के केन्द्रीय भाग के ऊपर विद्यमान विशाल पदार्थ समूह में इतना उच्च ताप विद्यमान नहीं होता, जिससे कि नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो सके। इस कारण यह प्रक्रिया केवल केन्द्रीय भाग में ही होती है। तारों के अन्दर विभिन्न प्रकार के कण, विभिन्न प्राण व छन्द रश्मियों से ही उत्पन्न होते और उनसे ही व्याप्त रहते हैं। विभिन्न छन्दादि रश्मियां संघनित पदार्थ के अन्दर ऊष्मा और प्रकाश को उत्पन्न करती हैं। विभिन्न ऋतु रश्मियों में जब सूत्रात्मा वायु रश्मियां प्रविष्ट हो जाती हैं, तब उनके साथ विभिन्न प्राण एवं मास रश्मियां आकाश तत्त्व के साथ सम्पीडित होकर क्वान्टाज् का निर्माण करती हैं और ये क्वाण्टाज् इतनी ऊर्जा से युक्त होते हैं कि विभिन्न **कणों के संलयन** हेतु उन्हें आवश्यक बल प्रदान करते हैं। **इस प्रक्रिया को भी मन एवं ओम् छन्द रश्मि के मिथुन की अनिवार्य प्रेरणा होती है।** तारों के केन्द्रीय भाग का ईन्धन समाप्त होने की स्थिति में तारा मृत हो जाता है। इस मृत तारे में किसी भी प्रकार के कणों की उत्पत्ति की प्रक्रिया प्रायः बन्द हो जाती है। केन्द्रीय भाग में उत्पन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगें सम्पूर्ण तारे के ताप को संरक्षित करती हुई उन्हें प्रबल ज्वालाओं से युक्त करती हैं अन्यथा वह तारा शनैः-२ शीतल एवं अन्धकारपूर्ण अवस्था को प्राप्त कर लेता है।।

꧁ इति 33.१ समाप्तः ꧂

अथ 33.2 प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. अथैनमुवाच,-वरुणं राजानमुपधाव, पुत्रो मे जायतां तेन त्वा यजा इति।। तथेति; स वरुणं राजानमुपससार, पुत्रो मे जायतां तेन त्वा यजा इति; तथेति; तस्य ह पुत्रो जज्ञे रोहितो नाम।।

व्याख्यानम्- {रोहितः = रोहितं वै नामैतच्छन्दो यत् पारुच्छेपमेतेन वा इन्द्रः सप्त स्वर्गाँल्लोकानरोहत् (ऐ.५.१०), एतद्वा आसां (गवाम्) बीजं यद्रोहितं रूपम् (मै.४.२.१४)} पूर्वोक्त हरिश्चन्द्र नामक रश्मियों अर्थात् उदान मिश्रित सोम रश्मियों को पूर्वोक्त नारद नामक प्राण रश्मियां, ऋतु संज्ञक प्राण रश्मियों के साथ मिलकर पूर्वोक्त पुत्र संज्ञक अग्नि तत्त्व को उत्पन्न करके आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग को वरुण अर्थात् प्राणापान एवं व्यान से युक्त विद्युदग्नि के साथ संगत करके उसे उज्ज्वल और तेजस्वी बनाने के लिए प्रेरित करती हैं।।

उन्हीं नारदरूप प्राण रश्मियों की प्रेरणा से अति तेजस्वी हरिश्चन्द्र रश्मियां अर्थात् उदान मिश्रित सोम रश्मियां प्राणापानव्यान रश्मियों के चारों ओर व्याप्त होकर अति निकटता से गति करने लगती हैं। उनकी इस गति का उद्देश्य पुत्र संज्ञक अग्नि तत्त्व को उत्पन्न करके आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग को उत्पन्न करना होता है। इसी कारण वे उपर्युक्त सोम रश्मियां प्राणापानादि रश्मियों के साथ निकटता से संगत होने लगती हैं। उनके इस संगम से रोहित नामक रक्तवर्णीय अग्नि तत्त्व उत्पन्न होता है, जो आदित्य लोक के निर्माण का बीजरूप होता है। वस्तुतः यह अग्नि रोहित नामक छन्द रश्मियों, जो उपर्युक्त हरिश्चन्द्र एवं वरुण संज्ञक सूक्ष्म रश्मियों से उत्पन्न होती हैं, से उत्पन्न होता है। ये रोहित छन्द रश्मियां विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को उत्पन्न करने में बीजरूप होती हैं। रोहित छन्द रश्मियां, वे छन्द रश्मियां हैं, जो परुच्छेप ऋषि नामक शक्तिशाली ऋषि प्राण रश्मियों से उत्पन्न होती हैं। ये रश्मियां ऋ.१.१२७-१३९, इन १३ सूक्तों में वर्णित हैं, जिनमें से यहाँ रोहित उन छन्द रश्मियों का नाम है, जिनका वर्णन खण्ड ५०.१०, ५.१२-१३ में किया गया है। इन खण्डों में आदित्य लोकों के निर्माण की प्रक्रिया के अन्तर्गत ही इन छन्द रश्मियों की उत्पत्ति दर्शायी गयी है। इन छन्द रश्मियों के विषय में वे खण्ड ही द्रष्टव्य हैं। इन छन्द रश्मियों के उत्पन्न होने पर आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग को उत्पन्न करने में समर्थ पूर्वोक्त पुत्ररूप अग्नि तत्त्व की उत्पत्ति होने लगती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न तारों के निर्माण कि प्रक्रिया में जब तेजस्विनी सोम रश्मियां प्राणापानादि रश्मियों से विशेष संयुक्त होती हैं, तब अनेकों प्रकार की अति शक्तिशाली छन्द रश्मियां उत्पन्न होने लगती हैं। उस समय **देवदत्त** नामक प्राण रश्मियों का उत्कर्ष भी प्रारम्भ होता है, इससे तारों का केन्द्र एक बिन्दुरूप में प्रारम्भ होने लगता है। उसके पश्चात् वे सभी क्रियाएं प्रारम्भ हो जाती हैं, जो खण्ड ५०.१०, ५.१२-१३ में वर्णित की गयी हैं, जिनके विषय में पाठक वहीं वैज्ञानिक भाष्यसार में देख सकते हैं।।

२. तं होवाचाजनि वै ते पुत्रो यजस्व माऽनेनेति; स होवाच, यदा वै पशुर्निर्दशो भवत्यथ स मेध्यो भवति, निर्दशो न्वस्त्वथ त्वा यजा इति; तथेति।।
स ह निर्दश आस तं होवाच निर्दशो न्वभूद्यजस्व माऽनेनेति; स होवाच, यदा वै

पशोर्दन्ता जायन्तेऽथ स मेध्यो भवति; दन्ता न्वस्य जायन्तामथ त्वा यजा इति; तथेति।।
तस्य ह दन्ता जज्ञिरे; तं होवाचाज्ञत वा अस्य दन्ता यजस्व माऽनेनेति; स होवाच, यदा वै पशोर्दन्ताः पद्यन्तेऽथ स मेध्यो भवति; दन्ता न्वस्य पद्यन्तामथ त्वा यजा इति, तथेति।।
तस्य ह दन्ताः पेदिरे; तं होवाचापत्सत वा अस्य दन्ता, यजस्व माऽनेनेति; स होवाच, यदा वै पशोर्दन्ताः पुनर्जायन्तेऽथ स मेध्यो भवति; दन्ता न्वस्य पुनर्जायन्तामथ त्वा यजा इति, तथेति।।
तस्य ह दन्ताः पुनर्जज्ञिरे; तं होवाचाज्ञत वा अस्य पुनर्दन्ता, यजस्व माऽनेनेति; स होवाच, यदा वै क्षत्रियः सान्नाहुको भवत्यथ स मेध्यो भवति; सन्नाहं नु प्राप्नोत्वथ त्वा यजा इति, तथेति।।
स ह सन्नाहं प्रापत्, तं होवाच, सन्नाहं नु प्राप्नोद्यजस्व माऽनेनेति, स तथेत्युक्त्वा पुत्रमामन्त्रयामास; ततायं वै मह्यं त्वामददाद्धन्त त्वयाऽहमिमं यजा इति।।
स ह नेत्युक्त्वा धनुरादायारण्यमुपातस्थौ; स संवत्सरमरण्ये चचार।।२।।

व्याख्यानम्- जब हरिश्चन्द्र नामक तेजस्विनी सोम रश्मियां पूर्वोक्त वरुण संज्ञक प्राणापानादि रश्मियों से प्रेरित होकर पूर्वोक्त रोहित नामक पारुच्छेपी छन्द रश्मियों को उत्पन्न करती हैं, तब वे वरुण नामक प्राणादि रश्मियां उन पारुच्छेपी छन्द रश्मियों को अपने साथ संगत करने का प्रयास करती हैं। ये पारुच्छेपी छन्द रश्मियां ही हरिश्चन्द्र रूपी सोम रश्मियों की पुत्ररूपा कही गयी हैं। यद्यपि पारुच्छेपी छन्द रश्मियां परुच्छेप संज्ञक तीव्र बलयुक्त ऋषि प्राण रश्मियों से उत्पन्न होती हैं, पुनरपि यहाँ इनकी उत्पत्ति में हरिश्चन्द्र सोम रश्मियों की भी भूमिका होने से इन्हें हरिश्चन्द्र की पुत्ररूपा कहा गया है। यहाँ हरिश्चन्द्ररूपी सोम रश्मियां वरुण संज्ञक प्राण रश्मियों एवं पारुच्छेपी छन्द रश्मियों के पारस्परिक संगम में बाधा उत्पन्न करती हैं। यहाँ संवाद की शैली में ग्रन्थकार ने लिखा है कि हरिश्चन्द्र रश्मियां वरुण रश्मियों को रोहित संज्ञक छन्द रश्मियों के साथ संगत होने से रोकते हुए उनसे कहती हैं कि रोहित रश्मियों के निर्दश होने पर इन्हें अपने साथ संगत कर लेना। यहाँ 'निर्दश' का तात्पर्य यह है कि जब रोहित छन्द रश्मियां दस मास रश्मियों के साथ नितराम् सम्पृक्त हो जाती हैं, उस समय ही वे वरुण संज्ञक रश्मियों के साथ संयुक्त होकर आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग के निर्माण में समर्थ अग्नि तत्त्व को उत्पन्न कर सकती हैं। ध्यातव्य है कि पूर्व खण्ड में भी दस मास रश्मियों के उत्पन्न होने पर पुत्ररूप अग्नि तत्त्व की उत्पत्ति बतलायी है। यहाँ "निर्" का प्रयोग 'नितराम्' के अर्थ में किया गया है। यहाँ इस संवाद की शैली में हरिश्चन्द्र नामक रश्मियों ने वरुण रश्मियों के समक्ष रोहित रश्मियों के साथ संगत होने के लिए यह शर्त रखी है।।

तदुपरान्त दस मास रश्मियां उत्पन्न होकर उन रोहित संज्ञक छन्द रश्मियों को अच्छी प्रकार चमकाने और बांधने का कार्य करती हैं। उन ऐसी रोहित रश्मियों को वरुण रश्मियां पुनः अपने साथ संगत करने का प्रयास करती हैं परन्तु इस बार भी हरिश्चन्द्र नामक तेजस्विनी सोम रश्मियां बाधक बनकर रोहित रश्मियों को वरुण रश्मियों के साथ संगत होने से रोकती हैं। {दन्तः = दाम्यत्युपशाम्यति यो येन वा स दन्तः (उ.को.३.८६), येन दंशति सः (म.द.ऋ.भा.६.७५.११)} मानो संवाद की शैली में हरिश्चन्द्र रश्मियां वरुण रश्मियों के समक्ष एक अन्य शर्त और रखते हुए कहती हैं कि जब रोहित छन्द रश्मियां विशेष नियंत्रण एवं छेदन-भेदन युक्त क्षमता से सम्पन्न नहीं होतीं, तब तक वे वरुण रश्मियों के साथ संगमनीय नहीं होती। इसका तात्पर्य यह है कि केवल दस मास रश्मियों का उत्पन्न होना ही वरुण रश्मियों के साथ संगत होने के लिए पर्याप्त नहीं है, बल्कि उन छन्द रश्मियों का

इन दस मास रश्मियों के साथ संगत होकर पर्याप्त तीव्रता को प्राप्त करना भी आवश्यक होता है। इस कारण ही दस मास रश्मियों के साथ रोहित रश्मियों के संगत होने के उपरान्त भी हरिश्चन्द्र रश्मियां वरुण रश्मियों को रोहित रश्मियों के साथ संगत नहीं होने देती हैं।।

तदुपरान्त पूर्वोक्त रोहित छन्द रश्मियां भेदक और नियंत्रक बलों से युक्त होने लगती हैं, तब पूर्वोक्त वरुण रश्मियां उन्हें अपने साथ संगत करने का प्रयास करती हैं परन्तु हरिश्चन्द्र नामक सोम रश्मियां पुनः इस प्रयास में बाधक बन जाती हैं। इसमें ग्रन्थकार पुनः इस संयोजन के लिए एक और शर्त हरिश्चन्द्र रश्मियों के द्वारा कहलवाते हैं। वह यह है कि जब रोहित छन्द रश्मियों की भेदन-छेदन शक्ति विशेष गतिशील हो जाए अर्थात् विशेष शक्तिशाली हो जाए, तब वे रोहित रश्मियां वरुण रश्मियों के साथ संगमनीय हो पाती हैं। उसके पश्चात् हरिश्चन्द्र सोम रश्मियां उन रोहित रश्मियों को विशेष तीक्ष्ण बनाने का प्रयत्न करती हैं।।

तदुपरान्त वे रोहित छन्द रश्मियां गतिशील एवं तीक्ष्ण भेदक व नियंत्रक शक्तिसम्पन्न होने लगती हैं। {अपत्सत वै = पतिता इति सायणभाष्यम्} तब पूर्वोक्त वरुण रश्मियां उन रोहित रश्मियों को अपने साथ संगत करने का प्रयास करती हैं किन्तु पुनः हरिश्चन्द्र नामक सोम रश्मियां इस कार्य में बाधक बन जाती हैं। अब पुनः ग्रन्थकार हरिश्चन्द्र सोम रश्मियों के माध्यम से एक ओर शर्त रखते हुए कहते हैं कि इन रोहित छन्द रश्मियों के छेदक-भेदक और नियंत्रक बल बार-२ उत्पन्न होकर तीक्ष्ण और व्याप्त होने लगते हैं, तभी वे रोहित रश्मियां वरुण रश्मियों के साथ संगत हो सकती हैं। इस कारण हरिश्चन्द्र सोम रश्मियां पुनः उन रोहित छन्द रश्मियों को बार-२ उत्पन्न, व्याप्त और गतिशील करने का प्रयास करने लगती हैं अर्थात् उन रोहित छन्द रश्मियों की पुनः-२ आवृत्ति होने लगती है।।

उसके पश्चात् वे रोहित छन्द रश्मियां बार-२ उत्पन्न तीक्ष्ण और व्याप्त होने लगती हैं। {अज्ञत वै = जातेति सायणः} उस समय वरुण रश्मियां उन रोहित रश्मियों को अपने साथ संगत करने का पुनः प्रयास करती हैं किन्तु हरिश्चन्द्र छन्द रश्मियां पुनः इसमें बाधक हो जाती हैं। अब ग्रन्थकार हरिश्चन्द्र सोम रश्मियों के माध्यम से एक ओर शर्त बतलाते हुए कहते हैं कि जब वे रोहित छन्द रश्मियां सम्यग् रूप से बन्धक बलों से युक्त होकर क्षत्रियरूप हो जाती हैं अर्थात् विशेष भेदक क्षमतायुक्त हो जाती हैं तथा विभिन्न बाधक पदार्थों को नष्ट करने में सक्षम हो जाती हैं, तभी वे वरुण रश्मियों के साथ संगत हो सकती हैं। उसके पश्चात् हरिश्चन्द्र सोम रश्मियां उन्हें इन गुणों से सम्पन्न करने का प्रयास करती हैं।।

तदुपरान्त वे रोहित छन्द रश्मियां उपर्युक्त प्रकार के तीक्ष्ण बंधक एवं भेदक बलों से युक्त हो जाती हैं, तब वरुण रश्मियां उन्हें अपने साथ संगत करने का प्रयास करती हैं। {हन्त = हन्तेति चन्द्रमा (जै.उ.३.२.१.२)} उस समय हरिश्चन्द्र सोम रश्मियां उन रोहित छन्द रश्मियों को सब ओर से आकर्षित और प्रकाशित करती हुई वरुण रश्मियों के साथ संगत करने का प्रयास करने लगती हैं। उस समय वे रोहित रश्मियां चन्द्रमा के समान तेजस्विनी हो जाती हैं। वैसी स्थिति में उनको वरुण रश्मियों के साथ संगत करने के लिए वरुण रश्मियों के अतिरिक्त हरिश्चन्द्र सोम रश्मियों का प्रेरक बल भी कार्य करने लगता है।।

इस उपर्युक्त प्रक्रिया के चलते हुए भी वे रोहित छन्द रश्मियां अपनी विस्तृत और तेजस्विनी वज्ररूप रश्मियों सहित देदीप्यमान होती हुई वरुण रश्मियों के साथ संगत न होकर उनसे दूर चली जाती हैं। {संवत्सरः = ऋतवः संवत्सरः (तै.ब्रा.३.६.६.१), षडहो वा उ सर्वः संवत्सरः (कौ.ब्रा.१६.१०)। रणः = रणाय रमणीयाय संग्रामाय (नि.४.८), रणाय रमणीयाय (नि.६.२७)} वे रोहित छन्द रश्मियां कमनीय संघातक बलों से दूर होकर वरुण एवं हरिश्चन्द्र रश्मियों से पृथक् हो जाती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि वे रोहित छन्द रश्मियां इतने तीक्ष्ण बलों से युक्त हो जाती हैं कि वे किसी प्रकार के संघात, संघनन को संपादित नहीं कर पातीं और विभिन्न संवत्सरों में विचरण करने लगती हैं। यहाँ संवत्सर का तात्पर्य ऋतु रश्मियां तथा विभिन्न अहन् रूपी नाग आदि प्राण रश्मियों के उत्कर्ष का काल है, जिनकी चर्चा इस ग्रन्थ के बीसवें (२०) अध्याय में की गई है। यद्यपि ये छन्द रश्मियां षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण रश्मियों

के उत्कर्ष काल में उत्पन्न होती हैं परन्तु वे पूर्वोत्पन्न अहन् रूपी चरणों में विचरण करने लगती हैं। यहाँ उनमें से प्रथम संवत्सर वा अहन् अर्थात् नाग प्राण के उत्कर्ष काल में विचरण की चर्चा की गयी है। उस समय ऋतु रश्मियों में वसन्त ऋतु रश्मियों की प्रधानता होती है। वस्तुतः वसन्त ऋतु रश्मियां ही प्राथमिक ऋतु रश्मियां हैं। इसी कारण महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं-

"तस्य (संवत्सरस्य) वसन्त एव द्वारं हेमन्तो द्वारं तं वा एतं संवत्सरं स्वर्गं लोकं प्रपद्यते" (श.१.६.१.१६)

उधर महर्षि तित्तिर का कथन है-

"मुखं वा एतद् ऋतूनां यद् वसन्तः" (तै.ब्रा.१.१.२.६-७)

इस प्रकार वे रोहित छन्द रश्मियां नाग प्राण के उत्कर्ष काल की अवस्था तथा वसन्त ऋतु रश्मियों में विचरण करने लगती हैं। यह विचरण काल एक वर्ष, हमारे विचार से एक दिव्य वर्ष अर्थात् ३६० मानव वर्ष तक रहता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त तारों की निर्माण प्रक्रिया में जब विभिन्न पूर्वोक्त शक्तिशाली छन्दरश्मियां उत्पन्न हो जाती हैं, तब उनकी तीव्रता और संयोज्यता विभिन्न चरणों में क्रमबद्धरूप से उत्पन्न और समृद्ध होती है। वे छन्द रश्मियां प्राण, अपान और व्यान रश्मियों से जब तक संयुक्त नहीं होती, तब तक प्रबल विद्युत् चुम्बकीय बलों की उत्पत्ति नहीं होती। इस क्रम में सर्वप्रथम वे छन्दरश्मियां दस मास रश्मियों से युक्त होकर सूक्ष्म आकर्षण बलों को उत्पन्न करती हैं। उसके पश्चात् वे तीक्ष्ण छेदक और भेदक बलों से धीरे-२ विशेषतया युक्त होती जाती हैं। वे छेदक और भेदक बल किंवा वे छन्द रश्मियां बार-२ उत्पन्न और व्याप्त होने लगती हैं और वे बल अति तीव्र भेदक और बंधक बलों में परिवर्तित हो जाते हैं। वस्तुतः इन छन्द रश्मियों और उनके कारण समस्त कॉस्मिक पदार्थ में बलों की तीव्रता विशेष बढ़ जाती है। इस कारण वे कण परस्पर संघात वा संलयन को प्राप्त नहीं हो पाते और वे तीक्ष्ण छन्द रश्मियां सम्पूर्ण कॉस्मिक पदार्थ में विचरण करने लगती हैं। यह विचरण छः चरणों में सम्पन्न होता है। इनमें से प्रथम चरण में **ये छन्द रश्मियां वसन्त प्राण रश्मियों से समृद्ध होकर नाग प्राण रश्मियों की प्रधानता वाले रश्मि आदि पदार्थों में ३६० वर्ष तक विचरण करती रहती हैं।** उस समय तक उस निर्माणाधीन तारे में नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया प्रारम्भ नहीं हो पाती। विशेष परिज्ञानार्थ व्याख्यान भाग पठनीय है।।

൶ इति ३३.२ समाप्तः ൷

꧁ अथ 33.3 प्रारभ्यते ꧂

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. अथ हैक्ष्वाकं वरुणो जग्राह, तस्य होदरं जज्ञे तदु ह रोहितः शुश्राव सोऽरण्याद् ग्राममेयाय, तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-
नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित शुश्रुम।
पापो नृषद्वरो जन, इन्द्र इच्चरतः सखा, चरैवेति।।
चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह द्वितीयं संवत्सरमरण्ये चचार; सोऽरण्याद् ग्राममेयाय; तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-
पुष्पिण्यौ चरतो जङ्घे, भूष्णुरात्मा फलग्रहिः।
शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः, श्रमेण प्रपथे हतश्चरैवेति।।
चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह तृतीयं संवत्सरमरण्ये चचार; सोऽरण्याद् ग्राममेयाय तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-
आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगश्चरैवेति।।
चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह चतुर्थं संवत्सरमरण्ये चचार; सोऽरण्याद् ग्राममेयाय तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-
कलिः शयानो भवति, संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति, कृतं संपद्यते चरंश्चरैवेति।।
चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह पञ्चमं संवत्सरमरण्ये चचार; सोऽरण्याद् ग्राममेयाय, तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-
चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरंश्चरैवेति।।

व्याख्यानम्- {उदरम् = समुद्रं उदरम् (तै.सं.७.५.२५.२), प्रजापतेर्वा एतदुदरं यत्सदः (जै.ब्रा.१.७१; तां. ६.४.११), प्रतिष्ठोदरमन्नाद्यानाम् (ऐ.आ.१.५.१)। ग्रामः = छन्दांसीव खलु वै ग्रामः (तै.सं.३.४.६.२)। पुरुषः = पुरुषो वै यज्ञः (जै.उ.४.२.१), पुरुषो वै संवत्सरः (श.१२.२.४.१), गायत्री वै पुरुषः (ऐ.४.३)}
जब रोहित छन्द रश्मियां पूर्वोक्तानुसार एक दिव्य वर्ष तक विचरण करती हैं, तब वरुण रश्मियां हरिश्चन्द्र सोम रश्मियों को सब ओर से जकड़ लेती हैं और उस समय वे सप्तदश स्तोमरूप गायत्री छन्दरश्मि समूह को उत्पन्न करती हैं। सप्तदश स्तोमरूप छन्दरश्मियों के विषय में ४.१६.१ द्रष्टव्य है। ये छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर विशेष तेज और बल को उत्पन्न करने के साथ-२ विशाल आकाशरूप उदर को प्रकट करती हैं। उस आकाशरूप उदर में समाहित सप्तदश स्तोमरूप गायत्री छन्दरश्मियां वरुण एवं हरिश्चन्द्र रूपी रश्मियों के साथ मिलकर विशेष आकर्षण बल उत्पन्न करती हैं। उनके आकर्षण के कारण सुदूर विचरण करने वाली रोहित छन्द रश्मियां उन हरिश्चन्द्र और वरुण रश्मियों की ओर आने लगती हैं। उस समय वे रोहित छन्द रश्मियां, गायत्री छन्द रश्मियों के द्वारा विभिन्न यजनशील रश्मियों की ओर आकर्षित होती हुई आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग के निर्माण की ओर उन्मुख होती हैं। उस समय उन

रोहित रश्मियों के मार्ग में विद्यमान इन्द्र तत्त्व उन्हें मार्ग में ही रोक लेता है और ग्रन्थकार की शैली में उन रोहित छन्दरश्मियों से कहता है- {श्रान्तः = तपसा हतकिल्विषः (तु.म.द.ऋ.भा.४.३३.११)। श्रीः = श्रीर्वै पशवः श्रीः शक्वर्यः (तां.१३.२.२)}

"जो पदार्थ तप अर्थात् अति ऊष्मायुक्त एवं विभिन्न बाधक आसुरी पदार्थों से विमुक्त हो चुके होते हैं, वे ही श्री अर्थात् अति शक्तिसम्पन्न एवं प्राणवती अवस्था को प्राप्त करके आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग का निर्माण करने में सफल होते हैं। वे ही पदार्थ श्री अर्थात् नाना प्राण रश्मियों में आश्रित होकर अनुकूलतापूर्वक केन्द्रीय विन्दु की ओर प्रवाहित होते हैं अर्थात् जो परमाणु आदि पदार्थ निरन्तर गमन शक्तिसम्पन्न होते हैं, वे ही उपर्युक्त गुणों से सुभूषित हो पाते हैं। {वरः = वर इव वै स्वर्गो लोकः (जै.ब्रा.२.६६), वरो वरयितव्यो भवति (नि.१.७)} इसके विपरीत जो परमाणु आदि पदार्थ नाना प्रकार की आशुगामिनी मरुद् रश्मियों में विद्यमान होकर अनेक कमनीय बलों से युक्त होते हुए आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग में विद्यमान होते हैं, वे भी क्षीणगति अवस्था के प्राप्त होने पर बाधक असुरादि रश्मियों से युक्त हो जाते हैं, जिससे उनके सभी बल और तेज आदि गुण निष्प्रभ होकर निष्क्रियता की अवस्था को उत्पन्न करते हैं। वस्तुतः इन्द्र तत्त्व उन्हीं परमाणु आदि पदार्थों के साथ संगत होता है, जो सतत शीघ्रगन्ता क्रियाशील और व्यापक रूप से प्रकाशमान होते हैं।"

वह इन्द्र तत्त्व उन रोहित रश्मियों को रोकते हुए वापिस लौटाकर पूर्ववत् विचरण करने के लिए बाध्य करता है।।

उस ब्राह्मणरूप अर्थात् व्यापक बलों से समृद्ध इन्द्र तत्त्व की प्रेरणा पर वे रोहित रश्मियां अगले एक दिव्य वर्ष तक द्वितीय ऋतु अर्थात् ग्रीष्म ऋतु रश्मियों के साथ संगत होकर खण्ड ५.१ में वर्णित द्वितीय अहन् अर्थात् उदान प्राण के उत्कर्षयुक्त पदार्थ में विचरण करती रहती हैं। उसके पश्चात् वे रोहित रश्मियां पुनः पूर्वोक्त गायत्री छन्द रश्मिसमूह के द्वारा आकर्षित होकर वरुण एवं हरिश्चन्द्र रश्मियों की ओर आकर्षित होने लगती हैं परन्तु पुनः पूर्ववत् इन्द्र तत्त्व उन्हें रोकते हुए ग्रन्थकार की शैली में निम्न प्रकार कहता है-

"जो परमाणु आदि पदार्थ सतत गतिमान, क्रियावान् एवं व्याप्तिवान् होते रहते हैं, उनकी जंघायें अर्थात् भेदन व मारक क्षमता भी सतत विकसित होती रहती है तथा उनके आत्मा अर्थात् आकार-आयतन आदि भी फलग्रहि अर्थात् उत्पादन प्रक्रिया वा सामर्थ्य को ग्रहण करने की क्षमता से सम्पन्न करते रहते हैं अथवा वह क्षमता सतत प्रभावशाली होती रहती है। इस कारण उनमें उत्पादन प्रक्रिया का निरन्तर विकास होता रहता है। ऐसे परमाणुओं के सभी बाधक असुरादि पदार्थ प्रसुप्त वा शान्त किंवा नियंत्रित वा निष्प्रभावी हो जाते हैं। ऐसा क्यों हो जाता है, यह बतलाते हुए कहा है कि उस परिस्थिति में श्रम अर्थात् ताप और गति की उच्च अवस्था उत्पन्न हो जाती है, जिससे सभी प्रकार की असुरादि रश्मियां मृतवत् वा नष्ट किंवा नियंत्रित हो जाती हैं।"

इस कारण वह इन्द्र तत्त्व रोहित छन्द रश्मियों को पुनः वापिस लौटाकर पूर्ववत् स्थानों में विचरण करने के लिए बाध्य करता है।।

पूर्व दो पंक्तियों का व्याख्यान पूर्ववत् समझें। हाँ, यहाँ इतना भेद अवश्य है कि यहाँ रोहित छन्द रश्मियां तृतीय संवत्सर अर्थात् वर्षा ऋतु प्राण रश्मियों से व्याप्त होकर तृतीय अहन् अर्थात् कृकल प्राण के उत्कर्ष काल (खण्ड ५.३ में वर्णित) में अवस्थित पदार्थ समूह में पुनः एक दिव्य वर्ष तक विचरण करती हैं। यहाँ इन्द्र तत्त्व का कथन निम्नानुसार है-

"जो परमाणु आदि पदार्थ शान्त होकर बैठ जाते हैं अर्थात् निष्क्रिय हो जाते हैं, उनसे होने वाला भग अर्थात् संयोगादि कर्म भी शान्त वा निष्क्रिय हो जाता है, जो परमाणु सक्रिय होकर विभिन्न क्रियाओं को करने के लिए उठ खड़े होते हैं, उनसे हो सकने वाले संगति कर्म भी दृढ़तापूर्वक सम्पन्न होने लगते हैं अर्थात् सभी प्रकार की संयोगादि क्रियाएं प्राणवती हो उठती हैं। जो परमाणु पूर्ण शान्त होकर सो जाते हैं अर्थात् पूर्ण निष्क्रिय हो जाते हैं, उनके संयोगादि कर्म भी पूर्ण विराम को प्राप्त कर लेते हैं। जो परमाणु आदि पदार्थ सतत गतिमान, व्याप्तिमान् और क्रियावान् हो जाते हैं, उनसे होने वाली नाना प्रकार की यजन क्रियाएं भी ऐसी ही गतिमती और व्याप्तिमती हो जाती हैं।"

इस कारण वह इन्द्र तत्त्व उन रोहित रश्मियों को पुनः वापिस लौटाकर विचरण करने के लिए

वाध्य करता है।।

प्रथम दो पंक्तियों का व्याख्यान पूर्ववत् समझें। हाँ, यह भेद अवश्य है कि यहाँ रोहित छन्द रश्मियां एक दिव्य वर्ष तक शरद् ऋतु प्राण रश्मियों के साथ संगत होकर चतुर्थ अहन् अर्थात् खण्ड ५.४ में वर्णित अर्थात् सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष काल में अवस्थित पदार्थ में विचरण करने लगती हैं। यहाँ इन्द्र तत्त्व का कथन निम्नानुसार है। {कलिः = कलन्ते स्पर्द्धमाना भाषन्ते यत्र स कलिः (उ.को.४.११६)। द्वापरः = द्वावपरौ यस्मिन् सः (तु.म.द.य.भा.३०.१८)। कृतम् = निष्पादितं प्रकाशितं वा (म.द.य.भा.१६.३१), शोधितम् (म.द.ऋ.भा.१.३४.८)}

"जो परमाणु आदि पदार्थ शब्द उत्पन्न करते हुए चमकते और परस्पर स्पर्धा करते हुए, साथ ही स्पर्धा में एक-दूसरे को फेंकते, धकेलते रहते हैं, उनका परस्पर संगम नहीं हो पाता अर्थात् उनकी यजन क्रियाएं सो जाती हैं अर्थात् शान्त हो जाती हैं। वस्तुतः इन परमाणुओं का पारस्परिक संघर्षण और उत्तेजन इस प्रकार का होता है कि वे परस्पर एक-दूसरे के साथ संगत हो ही नहीं पाते। इसी को यहाँ "कलि का सोना" कहा गया है। द्वापर अर्थात् जो परमाणु आदि पदार्थ दो प्रकार के भिन्न-२ और अनिश्चित मार्गों पर निरन्तर गमन करते रहते हैं, वे भी परस्पर संगत नहीं हो पाते हैं। इसका कारण यह है कि वे परमाणु यजन कर्मों हेतु निश्चित मार्गों और बलों से च्युत होकर यदृच्छया विचरण करने लग जाते हैं। त्रेता अर्थात् तीनों प्रकार के अग्नि अर्थात् आहवनीय, गार्हपत्य एवं दाक्षिणाग्नि, जब एक साथ आदित्य लोक निर्माण की प्रक्रिया के लिये उठ खड़ी होती हैं, तब आदित्य लोक का निर्माण सफलतापूर्वक सम्पन्न होने लगता है। त्रेता के विषय में भगवान् मनु का कथन है-

"पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताऽग्निर्दक्षिणः स्मृतः। गुरुराहवनीयस्तु साऽग्नित्रेता गरीयसी।" (मनुस्मृति २.२३१)

हमने 'त्रेता' का अर्थ भगवान् मनु के इसी श्लोक को आधार मानकर किया है। इस कारण वह इन्द्र तत्त्व पुनः रोहित छन्द रश्मियों को वापिस लौटाकर समुचित क्षेत्र में विचरण के लिए बाध्य करता है।।

प्रथम दो पंक्तियों का व्याख्यान पूर्ववत् समझें। भेद केवल यह है कि यहाँ रोहित छन्द रश्मियां एक दिव्य वर्ष तक हेमन्त ऋतु प्राण रश्मियों के साथ संगत होकर खण्ड ५.६ में वर्णित पंचम अहन् अर्थात् व्यान प्राण के उत्कर्ष काल में अवस्थित पदार्थ में विचरण करती हैं। यहाँ इन्द्र तत्त्व का कथन निम्नानुसार है-

{मधु = मिथुनं वै मधु प्रजा मधु (ऐ.आ.१.३.४), प्राणो वै मधु (श.६.१.३.३०), येन मन्यते तत् (म.द.य.भा.१६.७६)। स्वादुम् = मिथुनं वै स्वादु (ऐ.आ.१.३.४), प्रजा वै स्वादुः (ऐ.आ.१.३.४)} जो परमाणु आदि पदार्थ निरन्तर गतिशील, व्याप्तियुक्त एवं सतत सक्रिय रहते हैं, वे मिथुनरूप मधु को प्राप्त करते हैं। वे ही विशेष प्राणवान् होकर प्रकाशित होने में समर्थ होते हैं। इसका तात्पर्य है कि गति व व्याप्तिरूप गुणों से विहीन परमाणु कभी भी पास्परिक संयोग करने में समर्थ नहीं हो पाते। इस प्रकार वे नवीन तत्त्वों को उत्पन्न करने में अक्षम होते हैं। वे ऐसे ही गति आदि गुणों से सम्पन्न परमाणु आदि पदार्थ 'स्वादु-उदुम्बर' नामक पदार्थ को प्राप्त करते हैं। यहाँ उदुम्बर के विषय में ऋषियों का कथन है-

"ऊर्गुदुम्बरः।" (तै.सं.५.२.७.४; काठ.८.२; तां.६.४.११)

"उदुम्बर ऊर्जा।" (तै.सं.७.४.१२.१; काठ.४४.१)

इन वचनों से सिद्ध होता है कि उदुम्बर एक प्रकार की ऐसी ऊर्जा का रूप है, जो अन्नत्व अर्थात् संयोजक गुणों से युक्त होती है। यह ऊर्जा कैसे उत्पन्न होती है, इसका संकेत निम्न आर्ष वचनों से मिलता है-

"अथास्य (प्रजापतेः) इन्द्र ओज आदायोदङ्ङुदक्रामत्स उदुम्बरोऽभवत्।" (श.७.४.१.३६)

"माꣳसेभ्य एवास्योर्गस्रवत्स उदुम्बरोऽभवत्।" (श.१२.७.१.६)

"देवा यत्रोर्जं व्यभजन्त तत उदुम्बरा उदतिष्ठत्।" (मै.१.६.५; ३.१.६)

"प्रजापतिर्देवेभ्य ऊर्ज्जं व्यभजत्तत उदुम्बरः समभवत्।" (जै.ब्रा.१.७०; तां.६.४.१)

इन वचनों से इस ऊर्जा विशेष की उत्पत्ति का एक गम्भीर रहस्य प्रकट होता है। जब इन्द्र तत्त्व

मन एवं वाक् तत्त्व के तीव्र व सम्पीडक बल के साथ ऊर्ध्वगमन करता है, उस समय इन्द्र तत्त्व के साथ विद्यमान मास रश्मियां एक विशेष प्रकार की ऊर्जा को उत्पन्न करती हैं। यह क्रिया उस समय विशेष रूप से होती है, जब विभिन्न देव परमाणुओं के मध्य ऊर्जा का विभाजन हो रहा होता है और ऐसा होकर संयोग-वियोग-संघात की प्रक्रिया चल रही होती है। इस उदुम्बर-ऊर्जा को विशेष स्वादु कहा गया है, यह भी यही संकेत करता है कि यह ऊर्जा विभिन्न परमाणुओं की संयोग-वियोगादि प्रक्रिया में अपनी विशेष भूमिका निभाती है। इससे यह प्रमाणित होता है कि जो परमाणु आदि पदार्थ गति व व्याप्ति आदि गुणों से युक्त होते हैं, वे ही इस संयोजक व विभाजक उदुम्बर नामक ऊर्जा को प्राप्त करके संयोगादि कर्मों को सम्पादित कर पाते हैं। वे ऐसे परमाणु आदि पदार्थ ही श्रेष्ठ सूर्यत्व को प्राप्त कर पाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ऐसे पूर्वोक्त गुणसम्पन्न परमाणु ही विद्युत् व ऊष्मा प्रकाशादि गुणों से सम्पन्न होकर आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग का निर्माण करने में सक्षम होते हैं। जो परमाणु मन्दगति वा निष्क्रिय होते हैं, वे उपर्युक्त गुणों वा कर्मों से सम्पन्न नहीं हो पाते।"

इस कारण इन्द्र तत्त्व रोहित छन्द रश्मियों को पुनः वापिस लौटाकर पूर्ववत् विचरण करने के लिए बाध्य करता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के निर्माण की पूर्वोक्त प्रक्रिया के चलते नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया प्रारम्भ होने में एक दीर्घकाल व्यतीत होता है। पूर्वोक्त तीव्र भेदक छन्दरश्मियां, जो केन्द्रीय भाग में उत्पन्न होती हैं, वे सम्पूर्ण निर्माणाधीन तारे में विचरण करने लगती हैं। वे ३६०-३६० वर्ष के काल में छः चरणों वा आवृत्तियों में अर्थात् कुल २१६० वर्ष तक बार-२ केन्द्रीय भाग की ओर दोलन करती रहती हैं। इससे पूर्व केन्द्रीय भाग में तीव्र तेज व बलयुक्त गायत्री छन्दरश्मियां उत्पन्न होकर प्रकाश व ऊष्मा के साथ कुछ रिक्त स्थान को भी उत्पन्न करती हैं। उस रिक्त स्थान में गायत्री आदि छन्दरश्मियां सूक्ष्म सोमरश्मियों तथा प्राणापानादि रश्मियों के साथ विद्यमान रहकर सुदूर विचरणशील तीव्र भेदक आदि बलों से युक्त छन्दरश्मियों को बार-२ आकृष्ट करने का प्रयत्न करती हैं परन्तु बाहरी भाग किंवा मार्ग में विद्यमान प्रबल विद्युत् उन्हें वहीं रोक लेती वा वापिस लौटा देती है। वस्तुतः उस समय तक वे भेदक बलयुक्त रश्मियां पर्याप्त ऊष्णता व गति आदि गुण से युक्त नहीं होती हैं तथा इनसे व्याप्त विभिन्न कण भी ऐसे ही होने से वे केन्द्रीय भाग की ओर आने में समर्थ नहीं हो पाते हैं। उनमें भेदन-क्षमता एवं सम्पीडन-क्षमता आदि भी पर्याप्त नहीं होती है। इस कारण वे कण डार्क एनर्जी के प्रहार के कारण सम्पीडित नहीं हो पाते हैं, जिससे केन्द्रीय भाग का निर्माण नहीं हो पाता है। विभिन्न संयोग व संघनन आदि की क्रियाएं तीव्र गुरुत्व अथवा विद्युत् चुम्बकीय बलों के कारण उत्पन्न हो पाती हैं, अन्यथा वे कण यदृच्छया गमनागमनादि कर्मों में ही रत रहते हैं। कभी-२ कणों की ऊर्जा इतनी अधिक होती है कि उनका संयोग-सम्पीडन नहीं हो पाता, बल्कि वे परस्पर टकराते व तीव्रगत्या इतस्ततः विचरण करते रहते हैं। जब तक वे कण संयोगार्थ समुचित ऊर्जा से सम्पन्न नहीं होते हैं, तब तक वे संयोग वा संलयनादि कर्मों में प्रवृत्त नहीं हो पाते हैं। जब तक तारों में पर्याप्त ऊष्मा का प्रादुर्भाव नहीं होता, तब तक नाभिकीय संलयन प्रारम्भ नहीं हो पाता। **विभिन्न फोटोन व इलेक्ट्रॉन आदि का संलयन नहीं होता और नहीं प्रायः प्रोटोन, न्यूट्रॉन आदि ही संलयित होते हैं, बल्कि इनसे बड़े कणों का ही संलयन होता है। इसका कारण यह है कि जो कण स्पष्टतः तरंग व कण द्वैत प्रवृत्ति दर्शाते हैं, उनका संलयन नहीं होता है।** यद्यपि आयनादि कण भी डी. ब्रॉग्ली के नियमानुसार द्वैत प्रवृत्ति दर्शाते हैं, पुनरपि उनकी यह प्रवृत्ति स्पष्ट नहीं होती, साथ ही संलयन के ठीक समय वा ठीक पूर्व कोई भी संलयनीय पदार्थ, तरंग वा कण इन दोनों प्रकार का व्यवहार नहीं कर सकता। इस नियम से **विशेष परिस्थिति में फोटोन्स, इलेक्ट्रॉन्स, प्रोटॉन्स आदि का भी संलयन होता है परन्तु तारों के निर्माण की प्रक्रिया वा तारों के अन्दर नहीं होता है।** इस संलयन क्रिया हेतु अनिवार्य शर्त है- कणों की निरन्तर व व्यापक गति एवं समुचित ऊर्जा का होना, अन्यथा यह क्रिया सम्भव नहीं होती है।।

२. चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह षष्ठं संवत्सरमरण्ये चचार; सोऽजीगर्तं सौयवसिमृषिमशनया परीतमरण्य उपेयाय।।

व्याख्यानम्- इस कण्डिका के पूर्वार्ध का व्याख्यान पूर्ववत् समझें। यहाँ वे रोहित छन्द रश्मियां आगामी एक दिव्य वर्ष तक शिशिर ऋतु प्राण रश्मियों के साथ संगत होकर षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण (खण्ड ५.६ में वर्णित) के उत्कर्ष काल में अवस्थित पदार्थ में विचरण करता है। उस विचरण काल में ही उन छन्द रश्मियों का सम्पर्क अजीगर्त ऋषि प्राण रश्मियों से होता है।

{अजीगर्तम् = अज्यै गमनाय गर्तं यस्य सः (आप्टे कोश), (गर्तम् = गृहनाम निघं.३.४, रथोऽपि गर्त उच्यते गृणातेः स्तुतिकर्मणः नि.३.५)। परीतः = (परि+इ+क्त) पर्यावृत्तेति आप्टे।}

यहाँ अजीगर्त ऋषि प्राण रश्मियां वे रश्मियां हैं, जिनके गमनागमनार्थ गृहसंज्ञक विभिन्न ऋतु रश्मियां शोभन रथ अर्थात् वाहन का कार्य करती हैं। ये ऋतु रश्मियां अजीगर्त नामक ऋषि प्राण रश्मियों को निगलती हुई निरन्तर वहन करती हैं। अजीगर्त रश्मियां स्वयं भी ग्राहक बलों से युक्त होकर अन्य रश्मि आदि पदार्थों को आकर्षित करने में विशेष प्रवृत्त होती हैं। ये अजीगर्त रश्मियां सुयवस अर्थात् अच्छी प्रकार मिश्रणामिश्रण कर्मों को सम्पादित करने वाली मासादि रश्मियों से उत्पन्न होती हैं। यहाँ 'आदि' शब्द का तात्पर्य यही है कि मास रश्मियों के अतिरिक्त जो भी सूत्रात्मा वायु आदि रश्मियां सन्धानक गुणों से युक्त होती हैं, उनसे भी अजीगर्त ऋषि प्राण रश्मियां उत्पन्न होती हैं। रोहित छन्द रश्मियों के सम्पर्क में आने के पूर्व अजीगर्त रश्मियां अशना अर्थात् बाधक आसुर रश्मियों से आच्छादित व आक्रान्त थीं। रोहित रश्मियां उन ऐसी अजीगर्त रश्मियों के निकटता से सम्पर्क में आती हैं।।

ज्ञातव्य- इसका वैज्ञानिक भाष्यसार आगामी कण्डिकाओं के साथ द्रष्टव्य है।

३. तस्य ह त्रयः पुत्रा आसुः, शुनःपुच्छः शुनःशेपः शुनोलाङ्गूल इति, तं होवाच, ऋषेऽहं ते शतं ददाम्यहमेषामेकेनाऽऽत्मानं निष्क्रीणा इति; स ज्येष्ठं पुत्रं निगृह्णान उवाच, नन्विममिति; नो एवेममिति कनिष्ठं माता; तौ ह मध्यमे संपादयांचक्रतुः शुनःशेपे, तस्य ह शतं दत्त्वा स तमादाय सोऽरण्याद् ग्राममेयाय।।
स पितरमेत्योवाच,-तत हन्ताहमनेनाऽऽत्मानं निष्क्रीणा इति; स वरुणं राजानमुपससारानेन त्वा यजा इति; तथेति, भूयान् वै ब्राह्मणः क्षत्रियादिति वरुण उवाच; तस्मा एतं राजसूयं यज्ञक्रतुं प्रोवाच, तमेतमभिषेचनीये पुरुषं पशुमालेभे।।३।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त अजीगर्त ऋषि प्राण रश्मियों से तीन प्रकार की रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जो निम्नानुसार हैं-

(१) शुनःपुच्छः - {शुनः = शुनः वायुः शु एत्यन्तरिक्षे (नि.६.४०), (शुः क्षिप्रनाम - निघं.२.१५)। पुच्छः = शरत्पुच्छम् (मै.४.६.१८, तै.ब्रा.३.११.१०.३), यज्ञाऽयज्ञीयं पुच्छम् (तै.सं.४.१.१०.५; मै.२.७.८)} ये रश्मियां अन्तरिक्ष में आशुगामिनी होती हैं तथा सहजतापूर्वक गमन करती हुई संयोगवियोगादि बलों से सम्पन्न तीक्ष्ण शरत् ऋतु रश्मियों के रूप में किंवा उनसे सम्पृक्त अवस्था में विद्यमान होती हैं। ये रश्मियां आशुगति करते हुए निरन्तर सहजतया समृद्ध होती जाती हैं। ये रश्मियां ज्येष्ठरूप होने से तीनों पुत्र वा पालकरूप रश्मियों में सर्वाधिक व्यापक व श्रेष्ठ होती हैं।

(२) शुनःशेपः - ये रश्मियां मध्यम बल व विस्तार से युक्त होती हैं। ये रश्मियां प्रजनन-उत्पादन क्षमता से विशेष सम्पन्न होती हैं। ये रश्मियां जब किसी अन्य रश्मि आदि पदार्थ से संयुक्त होती हैं, उस समय अपना तेज-बल उस रश्मि को प्रदान करके स्वयं शान्त जैसी हो जाती हैं। ये रश्मियां अन्य रश्मि से संयुक्त होते समय उन्हें स्पर्श मात्र करके अपना बल संचरित कर देती हैं।

(३) शुनःलाङ्गूलः - वामन शिवराम आप्टे ने अपने संस्कृत-हिन्दी कोश में 'लाङ्गलम्' तथा 'लाङ्गूलम्' दोनों को क्रमशः 'लङ्ग्+कलच्' पृषो. वृद्धिः तथा 'लङ्ग्+ऊलच्' पृषो. से निष्पन्न माना है। {लाङ्गूलम् = लाङ्गलं लगतेर्लाङ्गूलवद्वा लाङ्गूलं लगतेर्लङ्गतेर्लम्बतेर्वा (नि.६.२६), (लम्बु = चिपकना, दोलायमान होना, नीचे वा पीछे गिरना, बिछना वा बिछाना, पिछड़ना - आप्टेकोश)} ये ऐसी रश्मियां होती हैं, जो

अन्तरिक्ष में शीघ्रतया दोलन करती हुई किसी अन्य रश्मि के पीछे चिपक कर पिछड़ती हुई गति करती हैं अर्थात् उस रश्मि का अनुसरण करती रहती हैं। ये कनिष्ठ वल व विस्तार युक्त होती हैं।

इन उपर्युक्त तीनों प्रकार की वलवती रश्मियों को रोहित नामक तीक्ष्ण वलवती छन्द रश्मियां अपने वल से आकृष्ट करने का प्रयास करती हैं। इसके साथ ही {शतम् = एषा वाव यज्ञस्य मात्रा यच्छतम् (तां.२०.१५.१२)} वे रोहित छन्द रश्मियां उन अजीगर्त ऋषि प्राण रश्मियों, जो आसुर रश्मियों से आच्छादित व परतंत्र होकर संयोजक गुणों से हीन हो चुकी होती हैं, को संयोजक वलों से कुछ सीमा तक युक्त करती हैं। इससे वे अजीगर्त रश्मियां कुछ सीमा तक आसुर प्रभाव से मुक्त होने लगती हैं तथा इस प्रभाव से वे अपनी पुत्ररूप शुनःपुच्छ रश्मियों को रोहित छन्द रश्मियों की ओर जाने से रोक कर अपने साथ संयुक्त कर लेती हैं। रोहित रश्मियां इन तीनों रश्मियों को इस कारण आकर्षित करती हैं, जिससे वे स्वयं वरुण अर्थात् प्राणापानादि के पाश से मुक्त रहें और हरिश्चन्द्र सोम रश्मियों के साथ संगत हो सकें। उधर अजीगर्त रश्मियों से उत्पन्न कनिष्ठ वलयुक्त शुनःलाङ्गूल नामक रश्मियां माता अर्थात् आकाश तत्त्व से मिश्रित होकर उसी में व्याप्त होने लगती हैं। इस कारण रोहित छन्द रश्मियां उन रश्मियों को भी आकर्षित व संगत नहीं कर पातीं। यहाँ आकाश तत्त्व के साथ अन्य कुछ ऐसी रश्मियां भी विद्यमान होती हैं, जो शुनःलाङ्गूल रश्मियों को रोहित रश्मियों के साथ संगत नहीं होने देती हैं। इसके पश्चात् मध्यम रश्मियों (शुनःशेप नामक) को रोहित छन्द रश्मियां अपने साथ संयुक्त कर ही लेती हैं। उन शुनःशेप रश्मियों को अपने साथ संयुक्त करके वे रोहित छन्द रश्मियां आदित्य लोक के विशाल क्षेत्र को त्यागकर केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित होने लगती हैं, जहाँ वरुण रश्मियों ने हरिश्चन्द्र सोम रश्मियों को अपने साथ जकड़ रखा था। इसके साथ ही जहाँ गायत्र्यादि अनेक प्रकार के छन्द भी विद्यमान थे। यहाँ अजीगर्त व रोहित रश्मियों का संवाद ग्रन्थकार की शैलीमात्र है।।

यहाँ पूर्ववत् संवाद शैली में इस विषय को विस्तार देते हुए कहते हैं, जिसका आशय है कि रोहित छन्द रश्मियां अपनी कारणरूपा हरिश्चन्द्र सोम रश्मियों के निकट आकर प्रकाशित होने लगती हैं और उनके साथ संगत होने का प्रयास करती हैं। पूर्वोक्त वरुण रश्मियों के निकट आकर शुनःशेप नामक इन रश्मियों को उन वरुण रश्मियों के साथ संगत करने का प्रयास करती हैं। ऐसा करके रोहित छन्द रश्मियां स्वयं को वरुण रश्मियों से मुक्त रखने का भी प्रयास करती हैं। तव वरुण रश्मियां पूर्वोक्त क्षत्ररूपी रोहित छन्द रश्मियों के स्थान पर ब्राह्मणरूपी शुनःशेप ऋषि प्राण रश्मियों को अपने साथ संगत करने का प्रयास करती हैं, क्योंकि तीक्ष्ण वल सम्पन्न क्षत्ररूप रश्मियों की अपेक्षा ब्राह्मण अर्थात् व्यापक विद्युत् वलसम्पन्न रश्मियां अधिक संगमनीय होती हैं। ब्राह्मण नामक रश्मियों के विषय में ऋषियों का कथन है-

"ब्राह्मणो हि रक्षसामपहन्ता" (श.१.१.४.६)
"ब्राह्मणो व्रतभृत्" (तै.सं.१.६.७.२)
"य उ वै कश्च यजते ब्राह्मणीभूयेवैव यजते" (श.१३.४.१.३)
"ब्रह्मणो हि जायते यो यज्ञाज् जायते" (श.३.२.१.४०)
"गायत्रो वै ब्राह्मणः" (ऐ.१.२८)

इन वचनों से भी परिलक्षित होता है कि शुनःशेप रश्मियां विभिन्न वरणीय क्रिया व वलों से युक्त होकर एवं केन्द्रीय भागस्थ गायत्री छन्द रश्मियों के साथ संगत होकर आसुरी रश्मियों को नियन्त्रित वा नष्ट करके संगमनीय वलों से युक्त होने लगती हैं। इसी कारण पूर्वोक्त वरुण रश्मियां क्षत्ररूपा रोहित छन्द रश्मियों को छोड़कर शुनःशेप ऋषि प्राण रश्मियों को अपने साथ संगत करने लगती हैं। {राजसूयः = यद्वै राजसूयं स वरुणसवः (काठ.३७.६)} उस समय वरुण रश्मियां हरिश्चन्द्र रश्मियों को आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में तीव्र तेज की उत्पत्ति करने हेतु सम्पीडित करने लगती हैं। इसके साथ ही उन्हें नाना रश्मि आदि पदार्थों के साथ संगत करने हेतु प्रेरित भी करती हैं। इस समय हरिश्चन्द्र सोम रश्मियां तीव्रता से देदीप्यमान होने लगती हैं। इस प्रक्रिया में वे वरुण रश्मियां शुनःशेप संज्ञक रश्मियों को पशु व पुरुष दोनों रूपों में अपने साथ व्याप्त करने लगती हैं। यहाँ शुनःशेप रश्मियों को पशुरूप इस कारण कहा, क्योंकि ये रश्मियां गायत्र्यादि छन्द व प्राणापानादि मरुद् रश्मियों से सम्पन्न वा संगत होती हैं तथा पुरुषरूप इस कारण कहा क्योंकि ये संगमनीयरूप को प्राप्त करके पुरुष संवत्सररूपी आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग के निर्माण की ओर प्रवृत्त होती हैं। ये शुनःशेप रश्मियां इन पशु व पुरुष दोनों ही रूपों में वर्तमान रहकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को सर्वतः सिंचित करने लगती हैं। इन ऐसी शुनःशेप

रश्मियों को **वरुण** रश्मियां अपने साथ दृढ़ता से संयुक्त करने का प्रयास करती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्तानुसार २१६० वर्ष तक तीक्ष्ण भेदक बलसम्पन्न छन्द रश्मियां समस्त कॉस्मिक मेघस्थ पदार्थ में विचरण करने के पश्चात् कुछ अन्य संयोज्य सूक्ष्म रश्मियों को अपने साथ संगत करके निर्माणाधीन तारे के केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित होने लगती हैं। वहाँ वे रश्मियां सोम तथा प्राण रश्मियों के साथ-२ गायत्री आदि छन्दरश्मियों के साथ संगत होकर तीव्र प्रकाश व ऊष्मा को उत्पन्न करने लगती हैं। इस कारण तारों के केन्द्रीय भाग के निर्माण के प्रारम्भ में सहसा तीव्र ऊर्जा उत्पन्न होने लगती है। विशेष जानकारी हेतु व्याख्यान भाग पठनीय है।।

इति 33.3 समाप्तः

अथ 33.4 प्रारभ्यते

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. तस्य ह विश्वामित्रो होताऽऽसीज्जमदग्निरध्वर्युर्वसिष्ठो ब्रह्माऽयास्य उद्गाता; तस्मा उपाकृताय नियोक्तारं न विविदुः; स होवाचाजीगर्तः सौयवसिर्मह्यमपरं शतं दत्ताहमेनं नियोक्ष्यामीति; तस्मा अपरं शतं ददुस्तं स निनियोज।।
तस्मा उपाकृताय नियुक्तायाऽऽप्रीताय पर्यग्निकृताय विशसितारं विविदुः; स होवाचाजीगर्तः सौयवसिर्मह्यमपरं शतं दत्ताहमेनं विशसिष्यामीति; तस्मा अपरं शतं ददुः, सोऽसिं निःशान एयाय।।
अथ ह शुनःशेप ईक्षांचक्रेऽमानुषमिव वै मा विशसिष्यन्ति, हन्ताहं देवता उपधावामीति स प्रजापतिमेव प्रथमं देवतानामुपससार, कस्य नूनं कतमस्यामृतानामित्येतयर्चा।।

व्याख्यानम्- {विश्वामित्रः = श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिर्यदेनेन सर्वतः शृणोत्यथो यदस्मै सर्वतो मित्रं भवति तस्माच्छ्रोत्रं विश्वामित्र ऋषिः (श.८.१.२.६), (श्रोत्रम् = वागिति श्रोत्रम् - जै.उ.४.११.१.११, श्रोत्रं पंक्तिः - श.१०.३.१.१), वाग्वै विश्वामित्रः (कौ.ब्रा.१०.५)} अब पूर्वोक्त राजसूय यज्ञ अर्थात् आदित्य के केन्द्रीय भाग के निर्माण करने हेतु एवं उसे देदीप्यमान बनाने हेतु होने वाली प्रक्रिया को व्यापकता से स्पष्ट करना आरम्भ करते हैं। इस क्रियारूप यज्ञ में विश्वामित्र नामक रश्मियां होता की भूमिका निभाती हैं। यहाँ होता का तात्पर्य उन पंक्ति छन्द रश्मियों से है, जो रोहित संज्ञक छन्द रश्मियों में विद्यमान होती हैं। ये पंक्ति छन्द रश्मियां विभिन्न प्राणादि रश्मियों वा परमाणु आदि पदार्थों को विस्तार और आदान-प्रदान करने में विशेषरूप से प्रवृत्त होती हैं। इन छन्द रश्मियों की आकाश तत्त्वरूपी श्रोत्र से विशेष अभिक्रिया होती है, जिसके कारण ये रश्मियां नाना प्रकार के संयोग, सम्पीडन आदि कर्मों को समृद्ध करती हैं। {जमदग्निः = चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिर्यदेनेन जगत् पश्यति, अथो मनुते, तस्माच्चक्षुर्जमदग्निर्ऋषिः (श.८.१.२.३), (चक्षुः = चक्षुरुष्णिक् - श.१०.३.१.१; यच्चक्षुः स बृहस्पतिः - गो.उ.४.११; त्रैष्टुभं चक्षुः - तां.२०.१६.५), जमत् = ज्वलतो नाम (निघं.१.१७) जमत्+अग्निपदयोः समासः} जमदग्नि अर्थात् उष्णिक् एवं त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां बृहस्पतिरूपी सूत्रात्मा वायु रश्मियों के साथ मिश्रित होकर अग्नि की ज्वालाओं के रूप में सक्रिय होती हैं। इनमें से त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां रोहित छन्द रश्मियों में विद्यमान होती हैं। ये सभी जमदग्निरूप रश्मियां इस उपर्युक्त प्रक्रियारूपी यज्ञ में अध्वर्यु की भूमिका निभाती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि आग्नेय ज्वालाओं से युक्त ये छन्द रश्मियां, विशेषकर त्रिष्टुप् प्रधानता वाली ये रश्मियां आदित्य लोक के इस केन्द्रीय महायज्ञ में बाधक बन सकने वाली असुरादि रश्मियों को दूर करके यज्ञ प्रक्रिया को निर्बाध बनाती हैं। {वसिष्ठः = अयं पुरो भूस्तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनो गायत्री वासन्ती, गायत्र्या गायत्रं, गायत्रादुपांशुरुपांशोस्त्रिवृत् त्रिवृतो रथन्तरं वसिष्ठ ऋषिः (काठ.१६.१६), अग्निर्वै देवानां वसिष्ठः (ऐ.१.२८), (अग्निः = अग्निर्हि गायत्री - जै.ब्रा.३.१८४)} वसिष्ठ अर्थात् सबको बसाने में श्रेष्ठ गायत्री छन्द रश्मियां, जो रोहित छन्द रश्मियों में विद्यमान होती हैं, साथ ही आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में पूर्वोक्तानुसार सप्तदश स्तोमरूप रश्मियों के रूप में भी विद्यमान होती हैं, ब्रह्मा का कार्य करती हैं। इसका तात्पर्य है कि ये छन्द रश्मियां इस उपर्युक्त राजसूय यज्ञ प्रक्रिया को सबल, समृद्ध, और व्यापक बनाती हैं। इसके साथ ही ये छन्द रश्मियां सम्पूर्ण प्रक्रिया को नियंत्रित भी करती हैं। यहाँ वसिष्ठ ऋषि का तात्पर्य प्राण नामक प्राण रश्मियां भी हैं, जो इस प्रक्रिया में विशेष नियंत्रक की भूमिका निभाती हैं। {अयास्यः = स प्राणो वा अयास्यः (जै.उ.२.३.२.८), स एवाऽयास्यः आस्ये धीयते तस्मादयास्यः यद्वेवा आस्ये रमते तस्माद्वेवाऽयास्यः (जै.उ.२.४.२.८)} अयास्य अर्थात् सभी संयोजनीय प्रकाशित परमाणु एवं

प्राण रश्मियां उद्गाता का कार्य करती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये प्राण रश्मियां विभिन्न साम रश्मियों को उच्चता से प्रकाशित करती हैं तथा अन्य प्राण व छन्दादि रश्मियों को भी विशेष तेजस्वी बनाकर संयोजक बलों से युक्त करती हैं।

इन उपर्युक्त चारों प्रकार के पदार्थों के सक्रिय होने के पश्चात् भी पूर्वोक्त शुनःशेप ऋषि प्राण रश्मियां, जो वरुण रश्मियों को सौंपी गयी थीं, इस पूर्वोक्त यज्ञ प्रक्रिया में नियुक्त नहीं हो पाती हैं अर्थात् वे रश्मियां इतस्ततः प्रवाहित वा दोलायमान होने लगती हैं, जिससे केन्द्रीय भाग के निर्माण की प्रक्रिया विधिवत् प्रारम्भ नहीं हो पाती है। उस समय रोहित छन्द रश्मियों में विद्यमान उपर्युक्त विश्वामित्र आदि रश्मियां, जो होता आदि का कार्य कर रही होती हैं, शुनःशेप प्राण रश्मियों की कारणरूप पूर्वोक्त अजीगर्त ऋषि प्राण रश्मियों को अनेकों प्रकार की अपनी सूक्ष्म रश्मियों के द्वारा संगतीकरण सामर्थ्य से और अधिक सम्पन्न करती हैं, जिसके कारण वे रश्मियां असुर रश्मियों के बंधन से पूर्वापेक्षा अधिक मुक्त हो जाती हैं। ये ऐसी अजीगर्त रश्मियां अपनी पुत्ररूपा शुनःशेप रश्मियों को आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में होने वाली क्रियाओं में नियुक्त कर देती हैं। इसके साथ ही उन शुनःशेप रश्मियों का इतस्तत प्रवाहित होना एवं दोलायमान होना रुक जाता है।।

जब वे शुनःशेप प्राण रश्मियां वरुण संज्ञक रश्मियों के साथ आबद्ध होकर विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों की संयोगादि प्रक्रियाओं में नियुक्त होने लगती हैं, तब वे शुनःशेप रश्मियां रोहित छन्द रश्मियों के साथ भी आबद्ध हो जाती हैं। उस समय आप्रियदेवताक-

समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित्। दूतो हव्या कविर्वह।।१।। इत्यादि (ऋ.१.१८८)

सूक्तरूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति होती है। इस सूक्त के विषय में २.४.१ द्रष्टव्य है। ये छन्द रश्मियां ब्रह्मवर्चस् अर्थात् प्राणापान और उनसे निर्मित विद्युत् को विशेषरूप से तृप्त वा प्राप्त करती हैं। इनके द्वारा विभिन्न अन्य रश्मियां भी तृप्त और सक्रिय होने लगती हैं। इन आप्रिय संज्ञक छन्द रश्मियों के विषय में ऋषियों का कथन है-

"तद्यद् आप्रीणाति तस्मादाप्रियो नाम" (कौ.ब्रा.१०.३)
"आप्रीभिराप्नुवन् तदाप्रीणामाप्रित्वम्" (तै.ब्रा.२.२.८.६)
"प्राणा वा आप्रियः" (कौ.ब्रा.१८.१२)
"तेजो वै ब्रह्मवर्चसमाप्रियः" (ऐ.२.४)

इन आप्रिय संज्ञक छन्द रश्मियों के कारण वे शुनःशेप प्राण रश्मियां आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में उत्पन्न वैद्युत तेज से सम्पन्न अग्नि तत्त्व के चारों ओर परिक्रमण करने लगती हैं पुनरपि वे शुनःशेप रश्मियां नाना प्रकार की क्रियाओं को सम्पन्न करने योग्य तीक्ष्णता वा विभागों को प्राप्त नहीं कर पाती हैं। उस समय रोहित छन्द रश्मियों में विद्यमान विश्वामित्र आदि रश्मियां पुनः अनेकों बार पूर्वोक्त अजीगर्त रश्मियों को स्पन्दित करके बल व तेज प्रदान करती हैं। जिसके कारण वे अजीगर्त रश्मियां असुर रश्मियों से मुक्त होकर तीक्ष्ण वज्ररूप रश्मियों को उत्पन्न करने लगती हैं। वे इस प्रकार उत्पन्न, तीक्ष्ण तेजयुक्त वज्र रश्मियां प्रबल हो उठती हैं। **ध्यातव्य है कि यहाँ और इससे पूर्व जहाँ 'शतम्' पद प्रयुक्त हुआ है, वहाँ 'शतम्' का अर्थ संख्यावाची 'एक सौ' शब्द भी माना जा सकता है,** जिससे यह संकेत मिलता है कि रोहित छन्द रश्मियां किंवा उनसे उत्पन्न विश्वामित्र आदि रश्मियां अजीगर्त रश्मियों को एक सौ बार स्पंदित करके तेजयुक्त करती हैं, जिसके कारण वे आसुर रश्मियों के प्रभाव को क्रमशः दूर करने में सक्षम होती जाती हैं।।

{ईक्षांचक्रे = (ईक्ष ईशिषे - नि.६.६, आलोकते - तु.म.द.य.भा.१७.६८)। मानुषः = पशवो मानुषाः (क.४१.६), यन्मन्द्रं मानुषं तत (तै.सं.२.५.११.१), (मन्द्रा = मन्द्रा वाङ्नाम - निघं.१.११)}
इसके अनन्तर वे शुनःशेप ऋषि प्राण रश्मियां प्रबल तेज और बल से युक्त होने लगती हैं, क्योंकि उनके दुर्बल रहने पर वे उन रश्मियों की भाँति विखण्डित हो सकती वा बिखर सकती हैं, जो शुद्ध छन्द रूप तेज और बल से युक्त नहीं होती। इस कारण वे शुनःशेप रश्मियां चन्द्रमा के तुल्य तेज को धारण करते

हुए विभिन्न देव पदार्थों के प्रति प्रवाहित होने लगती हैं। इस क्रम में वे सर्वप्रथम प्रजापति {प्रजापतिः = प्रजापतिर्वै सप्तदशः (तां.२.१०.५), हिरण्मयः प्रजापतिः (श.१०.१.४.६), प्रजापतिर्वै ब्रह्म (गो.उ.५.८)} अर्थात् सप्तदश स्तोमरूपी गायत्री छन्दरश्मियों, जिनको हम प्रथम कण्डिका में ब्रह्म संज्ञक भी लिख चुके हैं, की ओर प्रवाहित होने लगती हैं। उस समय उन शुनःशेप आजीगर्तिः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः ऋषि रश्मियों से प्रजापतिदेवताक एवं त्रिष्टुप् छन्दस्क-

कस्य॑ नू॒नं क॑त॒मस्या॒मृता॑नां॒ मना॑महे॒ चारु॑ दे॒वस्य॒ नाम॑।
को नो॑ म॒ह्या अदि॑तये॒ पुन॑र्दात्पि॒तरं॑ च दृ॒शेयं॑ मा॒तरं॑ च॥१॥ (ऋ.१.२४.१)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {नाम = नामानि (प्राणस्य) दामानि (ऐ.आ.२.१.६), (दाम = दमनसाधनम् - म.द.ऋ.भा.१.१६२.८)} विभिन्न कमनीय एवं नित्य प्राण रश्मियों के विभिन्न बन्धक बल अच्छी प्रकार से प्रकाशित होने लगते हैं। इनके कारण शुनःशेप रश्मियां ऋतु रश्मियों तथा मातृरूप सूक्ष्म वाक् एवं अन्तरिक्ष रश्मियों के द्वारा आकर्षित होने लगती हैं। ये शुनःशेप रश्मियां अपने से उत्पन्न इस छन्द रश्मि के द्वारा ही प्रजापतिरूप गायत्री छन्द रश्मियों को प्राप्त करती हैं।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्रीय भाग के निर्माण के प्रारम्भ में अर्थात् नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया के प्रारम्भिक चरण में पंक्ति छन्दरश्मियां तेजस्विनी ज्वालाओं और आकाश तत्त्व के साथ मिश्रित होकर विभिन्न कणों के संयोग, संपीडन और संघनन की प्रक्रिया को तीव्र करती हैं। त्रिष्टुप् और सूत्रात्मा वायु रश्मियां विभिन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगों एवं विद्युत् कणों को तीव्र शक्तिशाली बनाकर डार्क एनर्जी को निष्प्रभावी करके गुरुत्व बल को प्रबल बनाकर संघनन प्रक्रिया को तीव्र करती हैं। गायत्री छन्दरश्मियां और प्राणरश्मियां इन सब पदार्थों को तीव्र शक्तिशाली और तेजस्वी बनाती हैं। इसके पश्चात् **धीरे-२ तारों का केन्द्र बिन्दु इधर-उधर दोलन करने लगता है।** उसके पश्चात् ११ विभिन्न प्रकार की गायत्री छन्दरश्मियां और एक त्रिष्टुप् छन्दरश्मि उत्पन्न होकर केन्द्रीय भाग में विद्युदावेशित कणों के मध्य विद्युत् चुम्बकीय बलों को निरन्तर प्रबलतर बनाने लगती हैं। इस समय केन्द्रीय भाग में विद्यमान पदार्थ प्रकाश व ऊष्मा से युक्त प्रबल विद्युत् चुम्बकीय और गुरुत्व बलों से युक्त होकर धीरे-२ सघन और सघनतर होता जाता है। इसके विस्तृत परिज्ञान के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पठनीय है॥

२. तं प्रजापतिरुवाचाग्निर्वै देवानां नेदिष्ठस्तमेवोपधावेति सोऽग्निमुपससाराग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानामित्येतयर्चा॥
तमग्निरुवाच, सविता वै प्रसवानामीशे तमेवोपधावेति; स सवितारमुपससाराभि त्वा देव सवितरित्येतेन तृचेन॥
तं सवितोवाच, वरुणाय वै राज्ञे नियुक्तोऽसि, तमेवोपधावेति; स वरुणं राजानमुपससारात उत्तराभिरेकत्रिंशता॥

व्याख्यानम्- तदुपरान्त वे प्रजापति संज्ञक गायत्री छन्द रश्मियां शुनःशेप रश्मियों को अग्नि तत्त्व की ओर प्रवाहित होने के लिए प्रेरित करती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि उन गायत्री छन्द रश्मियों की प्रेरणा से शुनःशेप रश्मियां अग्नि तत्त्व को समृद्ध करने लगती हैं। {अग्निः = आयुर्वाऽग्निः (श.६.७.३.७), (आयुः = आयुः अन्ननाम - निघं.२.७; यज्ञो वा आयुः - तां.६.४.४; अन्नमु वा ऽआयुः - श.६.२.३.१६; आयुर्वा उष्णिक् - ऐ.१.५)} ऐसा करने के लिए वे रश्मियां विभिन्न उष्णिक् छन्द रश्मियों की ओर प्रवाहित होते हुए संगमनीय बलों को प्राप्त करती हैं। उष्णिक् छन्द रश्मियों से उत्पन्न अग्नि तत्त्व विभिन्न देव परमाणुओं के अति निकट अवस्थित रहकर उन सभी परमाणुओं को संगमनीय और उष्ण बनाने में सहयोग करता है। इस समय शुनःशेप रश्मियों से अग्निदेवताक एवं त्रिष्टुप् छन्दस्क-

अ॒ग्नेर्व॒यं प्र॑थ॒मस्या॒मृता॑नां॒ मना॑महे॒ चारु॑ दे॒वस्य॒ नाम॑।
स नो॑ म॒ह्या अदि॑तये॒ पुन॑र्दात्पि॒तरं॑ च दृ॒शेयं॑ मा॒तरं॑ च॥२॥ (ऋ.१.२४.२)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से संगमनीय उष्णिक् छन्द रश्मियों रूपी विस्तृत एवं प्रकाशित अग्नि तत्त्व सुन्दर दमनशील बलों को उत्पन्न करता है, जिसके कारण शुनःशेप रश्मियां ऋतु एवं वाग् रश्मियों के साथ संगत होकर आकाश तत्त्व के साथ नाना प्रकार की बंधनादि अभिक्रियाएं प्रकट करती हैं। इसके कारण विभिन्न परमाणुओं के मध्य नाना प्रकार के संयोजक बल समृद्ध होने लगते हैं। ये शुनःशेप रश्मियां अपने से उत्पन्न इस छन्द रश्मि के द्वारा ही इस उपर्युक्त अग्नि तत्त्व को प्राप्त करती हैं।।

तदुपरान्त उन शुनःशेप रश्मियों को पूर्वोक्त उष्णिक् छन्द रश्मियों से उत्पन्न संयोजक अग्नि तत्त्व सविता तत्त्व की ओर प्रवाहित होने के लिए प्रेरित करता है। {सविता = सविता वै प्रसविता (कौ.ब्रा.६.१४), सविता वै प्रसवानामीशे (ऐ.१.३०), आदित्य एव सविता (गो.पू.१.३३), यज्ञ एव सविता (गो.पू.१.३३), प्राणो वै सविता (ऐ.१.१६), ऊष्णमेव सविता (गो.पू.१.३३)} यहाँ 'सविता' का तात्पर्य है- आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में विद्यमान ऊष्णता के मध्य विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियां, जो संयोजक बलों से प्रचुरता से युक्त हो चुकी होती हैं। ये सवितृरूप प्राण रश्मियां विभिन्न उत्पन्न और उत्पादक छन्दादि रश्मियों को नियंत्रित करती हैं। वे शुनःशेप रश्मियां ऐसी ही प्राण रश्मियों की ओर प्रवाहित होने लगती हैं। उस समय उन शुनःशेप रश्मियों से सवितृदेवताक एवं गायत्री छन्दस्क, जिसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव को यथावत् समझा जा सकता है,

अ॒भि त्वा॑ देव सवित॒रीशा॑नं॒ वार्या॑णाम्। सदा॑वन्भा॒गमी॑महे॥३॥
यश्चि॒द्धि त॑ इ॒त्था भगः॑ शशमा॒नः पु॒रा नि॒दः। अ॒द्वे॒षो हस्त॑यो॒र्द॒धे॥४॥
भग॑भक्तस्य ते व॒यमुद॑शेम॒ तवाव॑सा। मू॒र्धानं॑ रा॒य आ॒रभे॑॥५॥ (ऋ.१.२४.३-५)

तृच की उत्पत्ति होती है। इस तृच के विषय में ५.१७.३ द्रष्टव्य है। वे शुनःशेप रश्मियां इस तृचरूप रश्मिसमूह के द्वारा ही उन प्राण रश्मियों को प्राप्त करती हैं।।

तदनन्तर पूर्वोक्त सवितृरूप प्राण रश्मियां वरुण संज्ञक प्राणादि रश्मियों के द्वारा नियंत्रित शुनःशेप रश्मियों को उन्हीं वरुण रश्मियों की ओर प्रवाहित होने के लिए प्रेरित करती हैं, जिसके कारण शुनःशेप रश्मियां वरुण रश्मियों की ओर अग्रसर होने लगती हैं। उस समय शुनःशेप रश्मियों से ३१ छन्द रश्मियां निम्नानुसार क्रमशः उत्पन्न होती हैं। इनमें सर्वप्रथम वरुण-देवताक एवं त्रिष्टुप्-छन्दस्क (ऋ.१.२४.६-१५) की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) न॒हि ते॑ क्ष॒त्रं न सहो॒ न म॒न्युं वय॑श्च॒नामी प॒तय॑न्त आ॒पुः।
नेमा आपो॑ अनिमि॒षं चर॑न्ती॒र्न ये वात॑स्य प्रमि॒नन्त्यभ्व॑म्॥६॥

छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {क्षत्रम् = क्षत्रं वरुणः (श.४.१.४.१, गो.उ.६.७)} वे शुनःशेप रश्मियां वरुण रश्मियों के निकट चलायमान होती हुई पूरी तरह व्याप्त न होकर सम्पीडक बलों से युक्त तेज से पूर्णरूपेण युक्त नहीं हो पाती हैं। अतः वे वरुण रश्मियों के चारों ओर निरन्तर विचरण करती हुई असुरादि बाधक रश्मियों को पूर्णतः नष्ट नहीं कर पाती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि वे ऐसा करने का प्रयास तो करती हैं परन्तु वे पूर्ण सफल नहीं हो पाती हैं।

(२) अ॒बु॒ध्ने राजा॒ वरु॑णो॒ वन॑स्यो॒र्ध्वं स्तूपं॑ ददते पू॒तद॑क्षः।

नीचीनाः स्युरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः।।७।।

इसके प्रभाव से वे पवित्र बलयुक्त देदीप्यमान वरुण रश्मियां {अबुध्ने = (अन्तरिक्षासादृश्ये स्थूलपदार्थे) बुध्नमन्तरिक्ष बद्धा अस्मिन् धृता आप इति (नि.१०.४४)} आकाश के समान सूक्ष्म आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में विद्यमान रश्मि आदि पदार्थ में किरणों के उत्कृष्ट समूह के रूप में वर्तमान होती हैं। वे वरुण रश्मियां अपने परितः विद्यमान एवं अपने अन्दर व्याप्त पदार्थों को सब ओर से धारण और व्याप्त करती हैं।

(३) उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽ करुतापवक्ता हृदयाविधश्चित्।।८।।

इसके प्रभाव से {हृदयम् = हृदयं वै स्तोमभागाः (श.८.६.२.१५), पुत्रो हि हृदयम् (तै.ब्रा.२.२.७.४), प्राणो वै हृदयम् (श.३.८.३.१५)} आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में सप्तदश स्तोमरूपी गायत्री छन्द रश्मियां मन्द तेज वा अपक्रियाओं से युक्त पदार्थों को नियंत्रित करती हैं, वैसे ही तेजस्विनी वरुण रश्मियां आदित्य लोक की केन्द्रीय क्रियाओं को विस्तार देती हुई नाना प्रकार के परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को विभिन्न मार्गों में धारण करती हैं। वे वरुण रश्मियां मार्ग वा गति से हीन पदार्थों को मार्ग वा गति प्रदान करती हैं।

(४) शतं ते राजन्भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु।
बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत्।।९।।

इसके प्रभाव से {निर्ऋतिः = निर्ऋतिः पृथिवीनाम (निघं.१.१), पाप्मा वै निर्ऋतिः (श.७.२.१.३), घोरा वै निर्ऋतिः (श.७.२.१.११)। भिषज् = अपूतो ह्येषोऽमध्यो यो भिषक् (तै.सं.६.४.९.२)} वे प्रकाशित वरुण रश्मियां अशुद्ध और असंयोज्य रश्मि आदि पदार्थों को अनेकों प्रकार से बल और विस्तार से युक्त करती हैं। वे उनको अति तीक्ष्णता और असुरादि रश्मियों से मुक्त करके नाना बाधाओं से दूर करती हुई प्रकाशित व सक्रिय करती हैं।

(५) अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति।।१०।।

इसके प्रभाव से {ऋक्षः = ऋषति गच्छतीति ऋक्षः (उ.को.३.६७), सप्तर्षीन् उ ह स्म वै पुरऽर्क्षा इत्याचक्षते (श.२.१.२.४)} प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, धनंजय एवं सूत्रात्मा वायु रश्मियां उत्कर्ष को प्राप्त होती हुई तेजहीन पदार्थों में व्याप्त होकर उन्हें प्रकाशित करने लगती हैं। वे ऐसी वरुण संज्ञक प्राण रश्मियां आसुरी रश्मियों के प्रभाव से मुक्त रहकर निरन्तर प्रकाशित और सक्रिय रहती हैं।

(६) तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः।।११।।

इसके प्रभाव से व्यापक प्रकाशित पूर्वोक्त वरुण रश्मियां मास आदि विभिन्न हविरूप रश्मियों के साथ सतत और सम्यक् संगत होने लगती हैं। वे पूर्वोक्त ब्रह्मा संज्ञक गायत्री छन्द रश्मियों में व्याप्त होती हुई संयोज्य उष्णिग् रश्मियों को शीघ्रता से प्रकाशित करती हैं।

(७) तदिन्नक्तं तद्दिवा मह्यमाहुस्तदयं केतो हृद आ वि चष्टे।
शुनःशेपो यमह्वद् गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु।।१२।।

इसके प्रभाव से विभिन्न प्रकाशित और अप्रकाशित रश्मि आदि पदार्थ गायत्री स्तोम रश्मियों सहित वरुण रश्मियों के द्वारा सब ओर से प्रकाशित और सक्रिय होते हैं। प्रकाशित वरुण रश्मियां उनको आसुर रश्मियों से मुक्त करके शुनःशेप रश्मियों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं।

(८) शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतस्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः।
अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद्विद्वाँ अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान्॥१३॥

इसके प्रभाव से वे शुनःशेप रश्मियां प्राणापान एवं व्यान इन तीन आदित्य रूप प्राण रश्मियों रूपी वरुण से आकृष्ट होकर विभिन्न गमनीय मार्गों में नियमित निर्बाध गमन करने लगती हैं। वे वरुण रश्मियां उनको आसुरी पदार्थों की बाधाओं से मुक्त करती रहती हैं।

(९) अव ते हेळो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः।
क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि॥१४॥

इसके प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियों के रूप में रमण करने वाली पूर्वोक्त तेजस्विनी और विशेष सक्रिय वरुण रश्मियां बाधक रश्मियों को अच्छी प्रकार शिथिल और विनष्ट करती हैं। वे विभिन्न वज्ररूप एवं संगमनीय मास रश्मियों के साथ मिलकर विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों को उत्तेजित वा सक्रिय करती हैं।

(१०) उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम॥१५॥

इसके प्रभाव से वे वरुण रश्मियां शुनःशेप रश्मियों सहित सभी रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को सभी प्रकार के आसुरी बन्धनों से मुक्त करके शुद्ध और अविनाशी कर्मों में प्रवृत्त करती हैं।

इसके पश्चात् पूर्वोक्त शुनःशेप ऋषि रश्मियों से वरुणदेवताक एवं गायत्री छन्दस्क (ऋ.१.२५) सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम्। मिनीमसि द्यविद्यवि॥१॥

इसके प्रभाव से वे प्रकाशित वरुण रश्मियां अपने में व्याप्त विभिन्न छन्दादि रश्मियों को नियमितरूप से क्रियाशील रखती हैं।

(२) मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः। मा हृणानस्य मन्यवे॥२॥

इसके प्रभाव से वे वरुण रश्मियां विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को निर्बलता से मुक्त करती परन्तु उन्हें नष्ट न करते हुए सदैव अपने साथ व्याप्त, प्रकाशित और प्रज्वलित करती हैं।

(३) वि मृळीकाय ते मनो रथीरश्वं न सन्दितम्। गीर्भिर्वरुण सीमहि॥३॥

इसके प्रभाव से वे वरुण रश्मियां विभिन्न आशुगामिनी रश्मियों को पवित्र वाग् रश्मियों के द्वारा निरन्तर अपने साथ बांधती और नाना प्रकार की क्रियाओं को करने में सहजतापूर्वक प्रवृत्त कराती हैं।

(४) परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्यइष्टये। वयो न वसतीरुप॥४॥

इसके प्रभाव से वे वरुण रश्मियां बाधक तीक्ष्ण आसुरी रश्मियों को छिन्न-भिन्न करके दूर-२ बिखेर देती

हैं।

(५) कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे। मृळीकायोरुचक्षसम्॥५॥

इसके प्रभाव से शुनःशेप आदि व्यापक प्रकाशित रश्मियां सबकी वाहिका क्षत्ररूप वरुण रश्मियों के द्वारा अच्छी प्रकार धारण और सिद्ध करती हैं।

(६) तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः। धृतव्रताय दाशुषे॥६॥

इसके प्रभाव से वे वरुण रश्मियां विभिन्न क्रियाओं को धारण करतीं, नाना प्रकार के कमनीय वर्णों से युक्त होकर प्रकृष्ट दानादि कर्मों के द्वारा सभी रश्मि आदि पदार्थों में व्याप्त होती हैं।

(७) वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्। वेद नावः समुद्रियः॥७॥

इसके प्रभाव से {वीनाम् = विमानानां सर्वलोकानां पक्षिणां वा (म.द.भा.)} अन्तरिक्ष में विद्यमान वे वरुण रश्मियां आकाश तत्त्व के द्वारा गमन करने वाली विभिन्न छन्दादि रश्मियों को नौका के समान मार्ग उपलब्ध कराती हैं।

(८) वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते॥८॥

इसके प्रभाव से विभिन्न कर्मों को करने वाली नाना उत्पन्न पदार्थों से युक्त वरुण रश्मियां बारह मास रश्मियों के निकट वा उनके योग से नाना पदार्थों को उत्पन्न करती हैं।

(९) वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः। वेदा ये अध्यासते॥९॥

इसके प्रभाव से {ऋष्वः सर्वत्रागमनशीलः (तु.म.द.भा.)} वे वरुण रश्मियां सर्वत्र गमनागमनशील व्यापक बल और विस्तार से युक्त विभिन्न वायु वा छन्द रश्मियों को सब ओर से धारण करके विभिन्न मार्ग प्रदान करती हैं।

(१०) नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः॥१०॥

इसके प्रभाव से {पस्त्यम् = गृहनाम (निघं.३.४)} विविध कर्मकर्मा नियामक वरुण रश्मियां प्रकाशशील स्थानों को उत्पन्न करने के लिए विभिन्न रश्मियों के साथ सब ओर व्याप्त होती हैं।

(११) अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति। कृतानि या च कर्त्वा॥११॥

इसके प्रभाव से वे वरुण रश्मियां विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों को सब ओर से धारण और आकर्षित करके विविध विचित्र रूपों में सक्रिय करती हैं।

(१२) स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत्। प्र ण आयूंषि तारिषत्॥१२॥

इसके प्रभाव से आदित्य संज्ञक विभिन्न मास रश्मियां आदित्य संज्ञक विभिन्न प्राण रश्मियों के साथ मिलकर सभी देव परमाणुओं वा रश्मियों को संयोज्यता आदि गुणों से परिपूर्ण करके नाना सुमार्गों में धारण करती हैं।

(१३) बिभ्र॑द् द्रा॒पिं हि॑र॒ण्ययं॒ वरु॑णो वस्त नि॒र्णिज॑म्। परि॒ स्पशो॒ नि षे॑दिरे।।१३।।

इसके प्रभाव से वरुण रश्मियां स्पर्शवान् वायु तत्त्व में निरन्तर स्थित होकर शुद्ध तेज को धारण करती हुई विभिन्न परमाणुओं को सब ओर से शुद्ध तेज से युक्त करती हुई धारण करती हैं।

(१४) न यं दिप्स॑न्ति दि॒प्सवो॒ न द्रुह्वा॑णो॒ जना॑नाम्। न दे॒वम॒भिमा॑तयः।।१४।।

इसके प्रभाव से {दिप्सन्ति = विरोद्धुमिच्छन्ति। अत्रोभयत्र वर्णव्यत्ययेन धकारस्य दकारः (म.द.भा.)} विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों की संयोगादि क्रियाओं को अवरुद्ध करने वाली आसुरी रश्मियां वरुण देव रश्मियों के द्वारा विरोधी कर्म से मुक्त होती हैं।

(१५) उ॒त यो मानु॑षे॒ष्वा यश॑श्च॒क्रे असा॒म्या। अ॒स्माक॑मु॒दरे॒ष्वा।।१५।।

इसके प्रभाव से वे वरुण रश्मियां उदररूप अन्तरिक्ष में व्याप्त सभी प्रकार के शुद्ध परमाणु आदि पदार्थों को सब ओर से उत्पन्न और सतेज करती हैं।

(१६) परा॑ मे यन्ति धी॒तयो॒ गावो॒ न गव्यू॑ती॒रनु॑। इ॒च्छन्ती॑रुरु॒चक्ष॑सम्।।१६।।

इसके प्रभाव से विभिन्न वाग् रश्मियां वा परमाणु आदि पदार्थ अपने विविध समूहों को उत्पन्न करने के लिए नाना प्रकार के धारक कर्मों एवं प्रकाशादि गुणों को अच्छी प्रकार सब ओर से प्राप्त करते हैं।

(१७) सं नु वो॑चावहै॒ पुन॒र्यतो॑ मे॒ मध्वाभृ॑तम्। होते॑व॒ क्षद॑से प्रि॒यम्।।१७।।

इसके प्रभाव से {क्षदसे = अविद्यारोगान्धकारविनाशकाय बलाय (म.द.भा.)} पूर्वोक्त होता संज्ञक छन्द रश्मियां नाना तमोनिवारक बलों को सब ओर से धारण करके कमनीय प्राण रश्मियों के द्वारा निरन्तर प्रकाशित और प्रेरित होती हैं।

(१८) दर्शं॒ नु वि॒श्वद॑र्शतं॒ दर्शं॒ रथ॒मधि॒ क्षमि॑। ए॒ता जु॑षत मे॒ गिरः॑।।१८।।

इसके प्रभाव से वे वरुण रश्मियां सबको प्रकाशित व आकर्षित करती हुई नाना प्रकार की दर्शनीय, रमणीय वाक् रश्मियों का निरन्तर सेवन करती हैं।

(१९) इ॒मं मे॑ वरुण श्रुधी॒ हव॑म॒द्या च॑ मृळय। त्वाम॑व॒स्युरा च॑के।।१९।।

इसके प्रभाव से {चके = चक तृप्तौ} वे वरुण रश्मियां सबका रक्षण और तृप्ति करती हुई मास रश्मियों के साथ निरन्तर सबको व्याप्त करती हैं।

(२०) त्वं विश्व॑स्य मेधिर दि॒वश्च॒ ग्मश्च॑ राजसि। स याम॑नि॒ प्रति॑ श्रुधि।।२०।।

इसके प्रभाव से सूत्रात्मा वायुयुक्त वरुण रश्मियां प्रकाशित और अप्रकाशित सभी प्रकार के परमाणुओं के सभी प्रकार के मार्गों को प्रकाशित और निर्मित करती हैं।

(२१) उदु॑त्त॒मं मु॑मुग्धि नो॒ वि पाशं॑ मध्य॒मं चृ॑त। अवा॑ध॒मानि॑ जी॒वसे॑।।२१।।

इसके प्रभाव से वे वरुण रश्मियां विभिन्न प्रकार के परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को असुरादि रश्मियों के बंधन से मुक्त करने के लिए उन असुरादि रश्मियों को नष्ट करती हैं।

इन उपर्युक्त कुल ३१ छन्द रश्मियों के द्वारा ही शुनःशेप रश्मियां वरुण रश्मियों के प्रति प्रवाहित होती हैं। इन छन्द रश्मियों के गायत्री एवं त्रिष्टुप् छन्दस्क होने के कारण केन्द्रीय पदार्थ के बल और तेज व्यापक रूप से समृद्ध होते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तदुपरान्त उन केन्द्रीय भागों में ऊष्णता के साथ-२ विद्युत् चुम्बकीय बलों की प्रबलता बढ़ने लगती है। उन बलों से आकाश तत्त्व में सकुंचन वा ऐंठन (distortion) होने लगती है। उसके साथ विभिन्न प्राण रश्मियां छन्द रश्मियों को आकृष्ट करती हुई उन विद्युत् बलों को और भी अधिक बढ़ाकर विभिन्न कणों को संघनित करने लगती हैं। इस प्रक्रिया में २४ गायत्री एवं ११ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है, जिससे केन्द्रीय भागों में विद्यमान पदार्थ में विद्युत् चुम्बकीय बल और ऊष्मा की निरन्तर समृद्धि होती जाती है, जिसके कारण डार्क एनर्जी का प्रभाव समाप्त वा न्यून और न्यूनतर होने लगता है। विभिन्न कण और तरंगें शुद्ध और संयोज्य रूप को निरन्तर प्राप्त करने लगती हैं। विभिन्न कण और क्वाण्टाज् दोनों की ऊर्जा में निरन्तर वृद्धि होने लगती है परन्तु वे कण और तरंग विनाश को प्राप्त नहीं होते। हाँ, परस्पर संगत अवश्य होते हैं। सभी सूक्ष्म वा स्थूल रश्मि वा कणों को गति और बल प्रदान करने में मूलतः प्राण रश्मियों की भूमिका होती है। इस समय केन्द्रीय भाग का पदार्थ विचित्र रूप और रंगों से युक्त होता है। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पठनीय है।।

३. तं वरुण उवाचाग्निर्वै देवानां मुखं सुहृदयतमस्तं नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति; सोऽग्निं तुष्टावात उत्तराभिर्द्वाविंशत्या।।

व्याख्यानम्- उसके पश्चात् वे वरुण रश्मियां उपर्युक्तानुसार समृद्ध, सशक्त और प्रदीप्त हुई शुनःशेप रश्मियों को पुनः पूर्वोक्त संयोज्य अग्नि तत्त्व की ओर प्रवाहित होने के लिए प्रेरित करती हैं, क्योंकि अग्नि तत्त्व ही सभी देव परमाणुओं का मुखरूप है। {मुखम् = खनत्यन्नादिकमनेनेति मुखम् (उ.को.५.२०)} इसका आशय यह है कि विभिन्न देव परमाणु अग्नि के कारण ही देवत्व को प्राप्त कर पाते हैं अर्थात् उनमें ऊष्मा, प्रकाशादि गुण अग्नि तत्त्व के ही कारण उत्पन्न होते हैं। यहाँ अग्नि तत्त्व का तात्पर्य विद्युत् भी है, जिसके कारण ही विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों की संयोग-वियोग, आकर्षण-प्रतिकर्षण और प्रक्षेपण आदि क्रियाएं होती हैं। जहाँ विद्युत् की विद्यमानता होती है, वहाँ प्रकाश और ऊष्मा की भी यत्किंचिद् विद्यमानता अवश्य होती है। इस कारण ही अग्नि को देवों का मुख कहा गया है। यह अग्नि सुहृदय रूप होता है अर्थात् यह प्राण रश्मियों से समृद्ध रश्मिरूप अवस्था में विद्यमान होता है। वरुण रश्मियां शुनःशेप रश्मियों को इस ऐसे अग्नि को और अधिक प्रकाशित करने के लिए प्रेरित करती हैं। ग्रन्थकार यहाँ अपनी शैली में वरुण रश्मियों के द्वारा शुनःशेप रश्मियों से कहलवाते हैं कि तुम्हारे (शुनःशेप रश्मियों) द्वारा अति प्रदीप्त अग्नि के प्रकट होने पर मैं (वरुण रश्मि समूह) तुम्हें अपने बंधन से मुक्त कर दूंगा। उस समय शुनःशेप रश्मियां अग्निदेवताक (ऋ.१.२६) सूक्त को निम्न क्रमानुसार उत्पन्न करती हैं-

(१) वसि॑ष्वा॒ हि मि॑येध्य॒ वस्त्रा॑ण्यूर्जां पते। सेमं नो॑ अध्व॒रं य॑ज।।१।।

छन्द आर्ची उष्णिक्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व संयोजक वल और पराक्रमों का रक्षण और प्रक्षेपण करता हुआ विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को आच्छादित और धारण करके नानाविध यजन कर्मों को सिद्ध करता है।

(२) नि नो॒ होता॒ वरे॑ण्यः॒ सदा॑ यविष्ठ॒ मन्म॑भिः। अग्ने॑ दि॒वित्म॑ता॒ वचः॑।।२।।

छन्द निचृद्गायत्री। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से संयोगादि क्रियाओं में सर्वाधिक अग्रणी विद्युदग्नि विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के साथ संगत होकर उन्हें नाना प्रकार से प्रकाशित और सक्रिय करके संगमनीय बनाता है।

(३) आ हि ष्मा॑ सू॒नवे॑ पि॒तापिर्यज॑त्या॒पये॑। सखा॒ सख्ये॒ वरे॑ण्यः॥३॥

छन्द प्रतिष्ठा गायत्री। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह अग्नि अपने कारणरूप ऋतु प्राण रश्मियों एवं कार्यरूप विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त होकर नाना प्रकार के यजन कर्म करने में समर्थ होता है।

(४) आ नो॑ ब॒र्ही रि॒शाद॑सो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा। सीद॑न्तु॒ मनु॑षो यथा॥४॥

छन्द गायत्री। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {अर्यमा = सूत्रात्मा वायु (म.द.य.भा. ३४.५७)} वह अग्नि तत्त्व असुर रश्मियों को नियंत्रित करने वाली वरुण रश्मियों, प्राण एवं सूत्रात्मा वायु रश्मियों के समान विभिन्न छन्दादि रश्मियों वा आकाश तत्त्व में व्याप्त होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को शुद्ध रूप प्रदान करता है।

(५) पू॒र्व्य हो॑तर॒स्य नो॒ मन्द॑स्व स॒ख्यस्य॑ च। इ॒मा उ॒ षु श्रु॑धी॒ गिरः॑॥५॥

छन्द विराड्गायत्री। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाला सूक्ष्म विद्युदग्नि होतारूप बनकर सूक्ष्म वाग् रश्मियों का निरन्तर आदान-प्रदान करके नाना प्रकाशादि कर्मों को करता है।

(६) यच्चि॒द्धि शश्व॑ता॒ तना॑ दे॒वंदे॑वं॒ यजा॑महे। त्वे इद्धू॑यते ह॒विः॥६॥

छन्द निचृद्गायत्री। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह अग्नि प्राणादि कारण रश्मियों से निरन्तर उत्पन्न और विस्तृत होता हुआ मास रश्मियों के द्वारा विभिन्न देव परमाणुओं का यजन करता है।

(७) प्रि॒यो नो॑ अस्तु वि॒श्पति॒र्होता॑ म॒न्द्रो वरे॑ण्यः। प्रि॒याः स्व॒ग्नयो॑ व॒यम्॥७॥

छन्द विराड् गायत्री। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से सुष्ठु गुणों से युक्त अग्नि तत्त्व सबका कमनीय होतारूप होकर विभिन्न परमाणुओं की पालिका वाग् रश्मियों के द्वारा निरन्तर उत्पन्न और आकृष्ट किया जाता है।

(८) स्व॒ग्नयो॒ हि वार्यं॑ दे॒वासो॑ दधि॒रे च॑ नः। स्व॒ग्नयो॑ मनामहे॥८॥

छन्द आर्ची उष्णिक्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियों से उत्पन्न वह पूर्वोक्त अग्नि तत्त्व नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को धारण करता है।

(९) अथा॑ न उ॒भये॑षा॒ममृ॑त॒ मर्त्या॑नाम्। मि॒थः स॑न्तु॒ प्रश॑स्तयः॥९॥

छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह अग्नि नित्य और अनित्य सभी प्रकार के परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को परस्पर संयुक्त और प्रकाशित करता है।

(१०) विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः। चनो धाः सहसो यहो।।१०।।

छन्द गायत्री। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {यहुः = अपत्यनाम (निघं.२.२)} वह अग्नि अपने कारणरूप सूक्ष्म विद्युदग्नि के व्यापक बलों के द्वारा नाना प्रकार की छन्दादि रश्मियों से युक्त होकर विविध यजनकर्मों को सम्पादित करता है।

तदनन्तर शुनःशेप ऋषि से (ऋ.१.२७), जिसकी प्रथम बारह (१२) छन्द रश्मियां अग्निदेवताक एवं गायत्री छन्दस्क एवं १३ वीं छन्द रश्मि विश्वेदेवादेवताक एवं त्रिष्टुप् छन्दस्क, जिनके दैवत और छान्दस प्रभावों को पाठक यथावत् समझ सकते हैं, की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः। सम्राजन्तमध्वराणाम्।।१।।

इसके प्रभाव से {वालम् = वालं पर्व, वृणोतेः (नि.११.३१)। वारवन्तम् = अश्वमिव त्वा वालवन्तम्। वाला दंशवारणार्था भवन्ति। दंशो दशतेः (नि.१.२०)} वह अग्नि तत्त्व अपनी वज्र एवं संयोजक रश्मियों के द्वारा विभिन्न पालक और आशुगामी तथा देदीप्यमान किरणों के रूप में प्रकट होकर नाना प्रकार की यजन क्रियाओं को प्रकाशित करता है।

(२) स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः। मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात्।।२।।

इसके प्रभाव से प्राण रश्मियों का पुत्ररूप अग्नि तत्त्व अपने बल के द्वारा विस्तृत गमन और सेचन बलयुक्त होकर नाना प्रकार की क्रियाओं को सम्पादित करता है।

(३) स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः। पाहि सदमिद्विश्वायुः।।३।।

इसके प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व विभिन्न बाधक असुरादि रश्मियों को संयोज्य परमाणुओं से दूर करके उनके संयोगादि कर्मों की निरन्तर रक्षा करता है।

(४) इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम्। अग्ने देवेषु प्र वोचः।।४।।

इसके प्रभाव से गायत्री आदि छन्द रश्मियों से युक्त वह अग्नि तत्त्व विभिन्न देव परमाणुओं में व्याप्त होकर उन्हें संयोग और विभागादि गुणों से युक्त करके नानाविध प्रकाशित करता है।

(५) आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु। शिक्षा वस्वो अन्तमस्य।।५।।

इसके प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व उत्तम और मध्यम सभी प्रकार के संयोजक बलों में विद्यमान रहकर विभिन्न पदार्थों का नानाविध सेवन और आदान - प्रदान करता है।

(६) विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ। सद्यो दाशुषे क्षरसि।।६।।

इसके प्रभाव से विचित्र वर्णों से युक्त अग्नि तत्त्व की तरंगें आकाश में पृथक्-२ मार्गों से गति करती हुई विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को निकटता व शीघ्रता से सब ओर से संसिक्त करती हैं।

(७) यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः। स यन्ता शश्वतीरिषः।।७।।

इसके प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व विभिन्न अनित्य कणों को नाना प्रकार के संघात और संयोगों में सुरक्षित

रखते हुये प्रेरित करता है। वह उन संयोज्य परमाणुओं को सतत नियंत्रित भी करता है।

(८) नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित्। वाजो अस्ति श्रवाय्यः।।८।।

इसके प्रभाव से {कयस्य = चिकेति जानाति योद्धुं शत्रून्पराजेतुं यः स कयस्तस्य (म.द.भा.)} सम्पीडक बलों से युक्त विद्युदग्नि सब ओर गति करता हुआ नाना बाधक पदार्थों को नियंत्रित करके विभिन्न परमाणुओं को संयोजक बलों से युक्त करता है।

(९) स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता। विप्रेभिरस्तु सनिता।।९।।

इसके प्रभाव से सबका प्रकाशक अग्नि तत्त्व सूत्रात्मा वायु रश्मियों से युक्त बलों के द्वारा विभिन्न परमाणुओं का तारक और विभाजक होकर नाना प्रकार की क्रियाओं को सम्पादित करता है।

(१०) जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय। स्तोमं रुद्राय दृशीकम्।।१०।।

इसके प्रभाव से वह अग्नि विभिन्न परमाणुओं में प्रकाशित और व्याप्त होकर उन्हें संयोज्य, प्रकाश्य और घोरकर्मा समूह के रूप में प्रकट करता है।

(११) स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः। धिये वाजाय हिन्वतु।।११।।

इसके प्रभाव से वह केन्द्रीय अग्नि नाना प्रकार से परमाणुओं को कंपाता हुआ महान् तेजयुक्त करके अपने विभिन्न संयोजक बलों से तृप्त और संगत करता है।

(१२) स रेवाँइव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः। उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः।।१२।।

इसके प्रभाव से वह अग्नि नाना प्रकार की मरुद् और छन्द रश्मियों से युक्त होकर व्यापक प्रकाश उत्पन्न करता हुआ नाना किरणों के समूह में गमन करता तथा विभिन्न कमनीय बलों से युक्त होकर देव परमाणुओं में व्याप्त रहता है।

(१३) नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः।
यजाम देवान्यदि शक्नवाम मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः।।१३।।

इसके प्रभाव से आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों में {अर्भकः = ह्रस्वनाम (निघं.३.२), अर्भके अवृद्धे (नि. ४.१५)} विभिन्न देव परमाणु व्यापक यजन कर्म करने के लिए सूक्ष्म संयोजक वज्र रश्मियों से व्याप्त होकर समर्थ होते हैं। वे विभिन्न प्राणादि रश्मियों के साथ सब ओर से संगत और प्रकाशित होकर निर्बाध यजन क्रियाओं को सम्पादित करते हैं।

इन उपर्युक्त २३ छन्द रश्मियों के द्वारा शुनः शेप रश्मियां अग्नि तत्त्व को और अधिक तीव्रता प्रदान करती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में जहाँ कहीं भी विद्युदावेश एवं विद्युत् चुम्बकीय तरंगें विद्यमान होती हैं, वहाँ कुछ न कुछ मात्रा में प्रकाश और ऊष्मा भी विद्यमान होती है। तारों के केन्द्रीय भाग के निर्माण की उपर्युक्त प्रक्रिया में २२ गायत्री और १ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जिनके प्रभाव से केन्द्रीय भाग में ऊष्मा तथा विद्युत् चुम्बकीय बलों की प्रबलता और अधिक बढ़ती जाती है, जिसके कारण विभिन्न नाभिकों के बीच बन्धन बल और अधिक बढ़ने लगता है। डार्क एनर्जी का प्रभाव और भी कम होने

लगता हैं। ये नाभिक प्रोटॉन रूपी हाइड्रोजन के नाभिक भी हो सकते हैं तथा अन्य बड़े नाभिक भी हो सकते हैं। दोनों ही प्रकार के नाभिकों का संलयन एक ही प्रकार की प्रणाली से होता है। इस संलयन प्रक्रिया में जहाँ विभिन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की उत्पत्ति होती है, वहाँ विभिन्न तरंगों का योगदान भी होता है। उस समय नाना प्रकार के रंगों का प्रकाश उत्पन्न होता है। विभिन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के संयोग से विभिन्न प्रकार के परमाणु परस्पर संयुक्त होते हैं, तो कोई प्रकाशित और अन्य तीव्र भेदन क्षमता से युक्त होते हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग पढ़ें।।

४. तमग्निरुवाच, विश्वान्नु देवान् स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति; स विश्वान् देवांस्तुष्टाव, नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्य इत्येतयर्चा।।
तं विश्वे देवा ऊचुरिन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठः सहिष्ठः सत्तमः पारयिष्णुतमस्तं नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति; स इन्द्रं तुष्टाव यच्चिद्धि सत्य सोमपा इति चैतेन सूक्तेनोत्तरस्य च पञ्चदशभिः।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त पूर्वोक्त अग्नि तत्त्व शुनःशेप रश्मियों को सभी प्रकार के देव परमाणुओं को प्रकाशित करने के लिए प्रेरित करता है, जिससे शुनःशेप रश्मियां वरुण रश्मियों के वंधन से मुक्त हो सकें। उस समय शुनःशेप रश्मियां

नमो॑ मह॒द्भ्यो नमो॑ अर्भ॒केभ्यो॒ नमो॒ युव॑भ्यो॒ नम॑ आशि॒नेभ्यः॑।
यजा॑म दे॒वान्यदि॑ श॒क्नवा॑म॒ मा ज्याय॑सः॒ शंस॒मा वृ॑क्षि देवाः।।१३।। (ऋ.१.२७.१३)

को पुनः उत्पन्न करती हैं। इस छन्द रश्मि के विषय में पूर्व कण्डिका द्रष्टव्य है। वे शुनःशेप रश्मियां इस त्रिष्टुप् छन्द रश्मि के द्वारा ही सभी देव परमाणुओं को प्रकाशित करती हैं।।

तदुपरान्त सभी प्रकार के देव परमाणु शुनःशेप रश्मियों से प्रकाशित होते हुए उन शुनःशेप रश्मियों को इन्द्र तत्त्व की ओर प्रवाहित होने के लिए प्रेरित करते हैं। इन्द्र तत्त्व सभी प्रकार के देव पदार्थों में ओजस्वी, बलवान् और सहस्वान् होता है। ये तीन शव्द तीन प्रकार के वलों की ओर संकेत करते हैं, जो इस प्रकार हैं-
(१) ओजस् - यह बल सम्पीडन का कार्य करता है।
(२) बल - (बलम् = बल प्राणने धान्यावरोधे च) बलं कस्मात् बलं भरं भवति, बिभर्तेः (नि.३.६)। यह उस बल का नाम है, जो विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों का धारण व आकर्षण करने में समर्थ होता है। इसको क्वचित् प्रतिकर्षक बल भी कह सकते हैं।
(३) सहस् - प्रतिरोधक बल को सहस् कहा जाता है। क्वचित् संपीडक एवं अन्य वलों को भी सहस् कहा जाता है।

इन्द्र तत्त्व इन तीनों ही वलों से सर्वाधिक युक्त होता है। इस कारण यह विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को विभिन्न आसुरी बाधक रश्मियों एवं दुर्बलता आदि दोषों से पार लगाने में सक्षम होता है। सभी देव परमाणुओं से प्रेरित वे शुनःशेप रश्मियां इस इन्द्र तत्त्व को प्रकाशित करने के लिए इन्द्र-देवताक एवं पंक्तिश्छन्दस्क (ऋ.१.२९) सूक्त, जिसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझा जा सकता है, को निम्न क्रमानुसार उत्पन्न करती हैं-

(१) यच्चि॒द्धि स॑त्य सोमपा अना॒श॒स्ताइ॑व॒ स्मसि॑। आ तू न॑ इन्द्र शंसय॒ गोष्वश्वे॑षु शु॒भ्रिषु॑ स॒हस्रे॑षु तुवीमघ।।१।।

इसके प्रभाव से {सत्यम् = सत्यं वै शुक्रं (श.३.६.३.२५), सत्यं वै हिरण्यम् (गो.उ.३.१७)} शीघ्रकारी

तेजस्वी इन्द्र तत्त्व अनेक सोम रश्मियों का भक्षण करके नाना प्रकार के परमाणुओं को अपने साथ संयुक्त करता है। वह हीनतेज और हीनवल परमाणु आदि पदार्थों को विभिन्न तेजस्विनी और आशुगामिनी रश्मियों से संयुक्त करके सब ओर से प्रकाशित व तीक्ष्ण करता है।

(२) **शिप्रिन्वाजानां पते शचीवस्तव दंसना। आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ।।२।।**

इसके प्रभाव से {शिप्री = शत्रूणामाक्रोशकः (म.द.ऋ.भा.१.८१.४)} आसुरी रश्मियों के प्रति तीव्र आक्रामक नाना तेज, बल और क्रियाओं से युक्त इन्द्र तत्त्व हजारों प्रकार की तेजस्विनी {दंसः = कर्मनाम (निघं. २.१)} क्रियाशील सूक्ष्म रश्मियों के व्यापक बलों के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को सब ओर से तीक्ष्ण तेजयुक्त करता है।

(३) **नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने। आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ।।३।।**

इसके प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व हिंसक और तेजस्वी होकर बाधक रश्मियों एवं विभिन्न पदार्थों की दुर्बलता का निवारण करके अपनी असंख्य तेजस्विनी और व्यापक बल रश्मियों के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को सब ओर से तीक्ष्णता प्रदान करता है।

(४) **ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः। आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ।।४।।**

इसके प्रभाव से वह पूर्वोक्त इन्द्र तत्त्व असंयोज्य असुरादि रश्मियों को दूर करता और संयोज्य रश्मियों को सक्रिय करता है। शेष भाग का प्रभाव पूर्ववत्।

(५) **समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया। आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ।।५।।**

इसके प्रभाव से अति प्रदीप्त तेजयुक्त इन्द्र तत्त्व वार-२ पतनशील असुरादि रश्मियों के प्रहार को नष्ट करता है। शेष भाग पूर्ववत्।

(६) **पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि। आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ।।६।।**

इसके प्रभाव से {कुण्डृणाच्या = यया कुटिलां गतिमञ्चति प्राप्नोति तया (म.द.भा.)} वह पूर्वोक्त इन्द्र तत्त्व कुटिल गतियों से युक्त विभिन्न वायु रश्मियों पर स्थित होता है। शेष पूर्ववत्।

(७) **सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम्। आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ।।७।।**

इसके प्रभाव से {कृकदाश्वम् = कृकं हिंसनं दाशति ददाति तं शत्रुम्। अत्र दाशधातोर्बाहुलकादौणादिक उण्प्रत्ययस्ततोऽमिपूर्व इत्यत्र वा छन्दसि इत्यनुवृत्तौ पूर्वसवर्णविकल्पेन यणादेशः (म.द.भा.)} वह इन्द्र तत्त्व सब ओर से आक्रामक और हिंसक असुरादि तीक्ष्ण रश्मियों को नष्ट करता है। शेष पूर्ववत्।

इसके उपरान्त शुनःशेप रश्मियां (ऋ.१.३०) सूक्त की प्रथम पन्द्रह छन्द रश्मियों को उत्पन्न करती हैं, जिनके देवता एवं छन्द इस प्रकार हैं- इन्द्रः। १-१०, १२-१५ गायत्री छन्दः, ११ पाद निचृद् गायत्री। इनका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझा जा सकता है तथा इनकी उत्पत्ति और अन्य प्रभाव निम्नानुसार है-

(१) **आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम्। मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः।।१।।**

इसके प्रभाव से {क्रिविः = कृणोति हिनस्ति येन तत् (म.द.य.भा.१०.२०)} विभिन्न वेगयुक्त सोम रश्मियां अनेक कर्म करने वाले व्यापक और तीक्ष्ण इन्द्र तत्त्व को सब ओर से परिपूर्ण करती हैं।

(२) शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम्। एदु निम्नं न रीयते।।२।।

इसके प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व {रीयते = गतिकर्मा (निघं.२.१४)} सैकड़ों, हजारों प्रकार की प्रकाश रश्मियों के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त होकर उन्हें सब ओर से आश्रय प्रदान करता है।

(३) सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे। समुद्रो न व्यचो दधे।।३।।

इसके प्रभाव से वह पूर्वोक्त इन्द्र तत्त्व आकाश तत्त्व में विद्यमान परमाणु आदि पदार्थों को धारण करके अनेक प्रकार के बल और क्रियाओं से युक्त करता है।

(४) अयमु ते समतसि कपोतइव गर्भधिम्। वचस्तच्चिन्न ओहसे।।४।।

इसके प्रभाव से {कपोतः = पारावतः (म.द.भा.), (पारावतः = परावति दूरदेशे भवः - तु.म.द.ऋ.भा. ५.५२.११)} वह इन्द्र तत्त्व सुदूर स्थित नाना प्रकार की तेज धारिका वायु रश्मियों को अच्छे प्रकार प्राप्त करके निरन्तर गति करता रहता है।

(५) स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते। विभूतिरस्तु सूनृता।।५।।

इसके प्रभाव से {राधा = राध इति धननाम (निघं.२.१०)} वह इन्द्र विभिन्न वायु रश्मियों का वहन करता हुआ नाना प्रकार के परमाणुओं को सिद्ध और रक्षित करता है। वह अनेकों प्रकार के प्रकाश और नियंत्रण बलों को निरन्तर सक्रिय और समृद्ध करता है।

(६) ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतक्रतो। समन्येषु ब्रवावहै।।६।।

इसके प्रभाव से असंख्य कर्म करने वाला वह इन्द्र तत्त्व नाना युग्मों को परस्पर संगत और प्रकाशित करता हुआ उन्हें अन्य संयोज्य परमाणुओं के साथ स्थापित करता हुआ गति कराता है।

(७) योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये।।७।।

इसके प्रभाव से {तवः = बलनाम (निघं.२.९), (तवतेर्वा वृद्धिकर्मणः - नि.९.२५)} वह व्यापक बलों से युक्त इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणुओं वा रश्मि आदि को नाना संयोग वा संघर्षों में आकर्षित और प्रकाशित करके रक्षण गति आदि गुणों से युक्त करता है।

(८) आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः। वाजेभिरुप नो हवम्।।८।।

इसके प्रभाव से वह इन्द्र हजारों प्रकार के रक्षण एवं गत्यादि गुणों के द्वारा विभिन्न संयोज्य परमाणु आदि पदार्थों को सब ओर से आकर्षित ओर व्याप्त करता है।

(९) अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम्। यं ते पूर्वं पिता हुवे।।९।।

इसके प्रभाव से सबका पालक और रक्षक इन्द्र तत्त्व सनातन कारणरूप प्राण रश्मियों एवं प्रकाश तत्त्व के द्वारा अनेक प्रकार के रूपों को प्राप्त करके आशुगामी वाहक रश्मियों के रूप में प्रकट होकर नाना परमाणु आदि पदार्थों को अनुकूलतापूर्वक आकर्षित और प्रेरित करता है।

(१०) तं त्वा वयं विश्ववारा शास्महे पुरुहूत। सखे वसो जरितृभ्यः।।१०।।

इसके प्रभाव से व्यापक प्राण रश्मियों से प्रकाशित वा आकर्षित इन्द्र तत्त्व सबका वरण करके उन्हें बसाने वाला नाना प्रकार से प्रकाशित और प्रसारित करता है।

(११) अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपाव्नाम्। सखे वज्रिन्त्सखीनाम्॥११॥

इसके प्रभाव से सूक्ष्म सोम रश्मियों का पान करने वाला वज्र रश्मियों से युक्त इन्द्र तत्त्व नाना उत्पन्न संगमनीय एवं भेदक शक्तिसम्पन्न परमाणुओं को निरन्तर रक्षित और व्याप्त करता है।

(१२) तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन्तथा कृणु। यथा त उश्मसीष्टये॥१२॥

इसके प्रभाव से उस पूर्वोक्त इन्द्र तत्त्व को विभिन्न संयोज्य परमाणु आदि पदार्थ निरन्तर प्राप्त और धारण करते हैं।

(१३) रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः। क्षुमन्तो याभिर्मदेम॥१३॥

इसके प्रभाव से {क्षुः = अन्ननाम (निघं.२.७)} वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न बलवान् मरुद् रश्मियों के द्वारा नाना संयोजक बलों से युक्त होकर विभिन्न पदार्थों को तीव्र उत्तेजक बल और क्रियाओं से युक्त करता है।

(१४) आ घ त्वावान्त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः। ऋणोरक्षं न चक्र्योः॥१४॥

इसके प्रभाव से वह धर्षणशील एवं व्याप्ति और गति से युक्त इन्द्र तत्त्व सूत्रात्मा वायु रश्मियों के द्वारा अपनी वज्ररूप रश्मियों के युग्मों को आधार वा आश्रय प्रदान करता है अर्थात् वज्र रश्मियां, जो युग्म रूप से गमन करती हैं, सूत्रात्मा वायु रश्मियों के द्वारा धारण की जाती हैं। यहाँ यह संकेत मिलता है कि ये **वज्र रश्मियां संयोजक गुणों से युक्त होती हैं।**

(१५) आ यद्दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम्। ऋणोरक्षं न शचीभिः॥१५॥

इसके प्रभाव से असंख्य कर्म करने वाला इन्द्र तत्त्व अपनी संयोज्य तेजस्विनी रश्मियों के द्वारा नाना प्रकार के आकर्षण आदि कर्मों को सुदृढ़ता प्रदान करता है।

इस प्रकार कुल २२ छन्द रश्मियां शुनःशेप रश्मियों से उत्पन्न होती हैं। इन्हीं रश्मियों के द्वारा शुनःशेप रश्मियां इन्द्र तत्त्व को प्राप्त करती हैं॥

वैज्ञानिक भाष्यसार- तदुपरान्त निर्माणाधीन तारे के केन्द्रीय भाग में तीव्रतर-तीव्रतम विद्युत् चुम्बकीय बलों की उत्पत्ति होने लगती है। इन बलों के कारण सम्पीडन, संयोजन, संलयन आदि गुणों में भारी वृद्धि होने लगती है। डार्क एनर्जी का प्रभाव क्षीण से क्षीणतर होने लगता है। इस समय सात पंक्ति तथा पन्द्रह गायत्री छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इससे विभिन्न प्रकार के बलों के साथ-२ प्रकाश व ऊष्मा की मात्रा भी विशेषरूप से बढ़ कर नाभिकीय संयोजन की क्रियाएं होने लगती हैं, इससे नवीन-२ तत्त्वाणुओं का निर्माण होने लगता है। विद्युत् की अनेकों प्रकार की विचित्र गतियों व बलों का प्रादुर्भाव होने लगता है। अनेक विचित्र रूप-रंगों की उत्पत्ति होती है। नाभिकीय संलयन के लिए उत्तरदायी प्रबल विद्युत् चुम्बकीय बलों में सूत्रात्मा वायु रश्मियों की अहम भूमिका होती है। विशेष परिज्ञानार्थ व्याख्यान भाग द्रष्टव्य है॥

५. तस्मा इन्द्रः स्तूयमानः प्रीतो मनसा हिरण्यरथं ददौ, तमेतया प्रतीयाय शश्वदिन्द्र

इति॥

तमिन्द्र उवाचाश्विनौ नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति; सोऽश्विनौ तुष्टावात उत्तरेण तृचेन॥

तमश्विना ऊचतुरुषसं नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति; स उषसं तुष्टावात उत्तरेण तृचेन॥

तस्य ह स्मर्च्यृच्युक्तायां वि पाशो मुमुचे, कनीय ऐक्ष्वाकस्योदरं भवत्युत्तमस्यामेवर्च्युक्तायां वि पाशो मुमुचेऽगद ऐक्ष्वाक आस॥

व्याख्यानम्- तत्पश्चात् शुनःशेप द्वारा पूर्वोक्त इन्द्रतत्त्व को प्रकाशित करने पर वह इन्द्र तत्त्व तृप्त होकर अपने मनस् रूपी तेज के द्वारा उन शुनःशेप रश्मियों का तेजस्वी वाहक रूप धारण करके इतस्ततः विचरने लगता है। इसका आशय है कि शुनःशेप रश्मियां इन्द्र तत्त्व की तेजस्विनी किरणों पर सवार होकर विचरने लगती हैं। उस समय शुनःशेप रश्मियां इन्द्र-देवताक तथा त्रिष्टुप् छन्दस्क-

शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि।
स नो हिरण्यरथं दंसनावान्त्स नः सनिता सनये स नोऽदात्॥१६॥ (ऋ.१.३०.१६)

को उत्पन्न करती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {शाश्वसद्भिः = अतिशयेन प्राणवद्भिश्चरैः (म.द.भा.)। पोप्रुथद्भिः = अतिशयेन स्थूलैश्चरैः कार्यैः। अत्र प्रोथृपर्याप्तावित्यस्माद्यङ्लुगन्ताच्छतृ-प्रत्यय उपधाया उत्वं च वर्णव्यत्ययेन (म.द.भा.)} वह इन्द्र तत्त्व अव्यक्त शब्दयुक्त विस्तृत प्राण रश्मियों के द्वारा नाना प्रकार के परमाणुओं को प्रकृष्टता प्रदान करता है। वह विभिन्न रमणीय तेजस्विनी रश्मियों के द्वारा उन परमाणु आदि पदार्थों का नाना प्रकार से विभाजन करके नाना क्रियाओं को सम्पादित करता है। वे शुनःशेप रश्मियां इसी छन्द रश्मि के द्वारा इन्द्र तत्त्व पर आरोहण करती हैं। इससे सिद्ध है कि पहले यह छन्द रश्मि उत्पन्न होती है। इससे इन्द्र तत्त्व और अधिक तीक्ष्ण तेजयुक्त हो जाता है। तत्पश्चात् शुनःशेप रश्मियां उस इन्द्र तत्त्व पर सवार होती हैं॥

तदुपरान्त वह तेजस्वी इन्द्र तत्त्व उन शुनःशेप रश्मियों को अश्विनौ अर्थात् विभिन्न प्रकाशित एवं अप्रकाशित परमाणुओं तथा वायु व विद्युत् की ओर प्रवाहित होने हेतु प्रेरित करती हैं, जिससे वे शुनःशेप रश्मियां वरुण रश्मियों के तीव्र बन्धन से मुक्त हो सकें। उस समय शुनःशेप रश्मियां अश्विनौ-देवताक एवं गायत्री छन्दस्क (ऋ.१.३०.१७-१९) तृच, जिसके दैवत व छान्दस प्रभाव को यथावत् समझा जा सकता है, को निम्न क्रमानुसार उत्पन्न करती हैं-

(१७) आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया। गोमद्दस्रा हिरण्यवत्॥१७॥

इसके प्रभाव से विभिन्न प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणु बल और वेग से युक्त होकर नाना प्रकार की तेजस्विनी छन्दादि रश्मियों के द्वारा सब ओर गमनागमन में समर्थ होते हैं।

(१८) समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः। समुद्रे अश्विनेयते॥१८॥

इसके प्रभाव से वे उपर्युक्त प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणु अविनाशी प्राण रश्मियों के साथ समान रूप से युक्त होकर अन्तरिक्ष में व्यापक वेग और बल से समृद्ध होकर दूर-२ तक गमन करते हैं।

(१९) न्यघ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः। परि द्यामन्यदीयते॥१९॥

इसके प्रभाव से वे पूर्वोक्त प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणु अहिंस्य रूप प्राप्त करके आदित्य लोक के केन्द्रीय भागों में सब ओर परिभ्रमण करते हुए व्याप्त होते हैं।

इन तीन छन्द छन्द रश्मियों के द्वारा ही शुनःशेप रश्मियां प्रकाशित व अप्रकाशित परमाणुओं को तीव्रता से प्रकाशित करती हुई उनमें व्याप्त भी हो जाती हैं।।

उसके पश्चात् वे प्रकाशित व अप्रकाशित परमाणु उन शुनःशेप रश्मियों को उषा देवता की ओर प्रवाहित होने के लिए प्रेरित करते हैं। इससे धीरे-२ शुनःशेप रश्मियां वरुण रश्मियों के वन्धन से मुक्त हो जाती हैं। उस समय शुनःशेप रश्मियां उषादेवताक तथा गायत्री छन्दस्क तृच (ऋ.१.३०.२०-२२) जिसके देवत व छान्दस प्रभाव को पाठक यथावत् समझ सकते हैं, की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार करती हैं-

(२०) कस्त॑ उषः कधप्रिये भुजे मर्तो॑ अमर्त्ये। कं न॑क्षसे विभावरि।।२०।।

इसके प्रभाव से {कधप्रिये = कथनं कथा प्रिया यस्यां सा। अत्र वर्णव्यत्ययेन थकारस्य स्थाने धकारः (म.द.भा.)} विभिन्न प्राण रश्मियां अन्य प्राण रश्मियों को प्राप्त करके आदित्य लोक के केन्द्रीय पदार्थ में विभिन्न वाग् रश्मियों को तृप्त करती हुई शोभन वर्णयुक्त प्रकाश को उत्पन्न करती हैं।

(२१) वयं हि ते अम॑न्मह्यान्तादा प॑राकात्। अश्वे न चित्रे अरुषि।।२१।।

इसके प्रभाव से उस समय केन्द्रीय भाग में विभिन्न आशुगामी रश्मियां विचित्र अरुण वर्ण के प्रकाश को सब ओर उत्पन्न करती हैं।

(२२) त्वं त्येभि॒रा ग॑हि वाजे॑भिर्दुहितर्दिवः। अ॒स्मे र॒यिं नि धा॑रय।।२२।।

इसके प्रभाव से आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में उत्पन्न कमनीय एवं शोभन प्रकाश रश्मियां नाना प्रकार की प्राण एवं मरुद् रश्यिमों को धारण करती हुई सम्पूर्ण क्षेत्र में व्याप्त होती हैं।

इन तीनों छन्द रश्मियों के प्रभाव से आदित्य लोक का केन्द्रीय भाग अरुण वर्ण के सुन्दर प्रकाश वा ऊष्णता से भर जाता है। इन्हीं तीन छन्द रश्मियों के द्वारा शुनःशेप रश्मियां उषारूप शोभन तेज युक्त हो जाती हैं।।

इस प्रकरण को आगे बढ़ाते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि उपर्युक्त तृच की एक-२ छन्द रश्मि जैसे-२ उत्पन्न होती जाती है, वैसे-२ वरुण रश्मियों का एक-२ वन्धन शुनःशेप रश्मियों से मुक्त होता जाता है। उधर इन छन्द रश्मियों के क्रमशः उत्पन्न होने से पूर्वोक्त हरिश्चन्द्र सोम रश्मियां भी वरुण रश्मियों के वन्धन से क्रमशः मुक्त होती जाती हैं तथा उस समय आदित्य लोक का उदर रूप केन्द्रीय आकाश तत्त्व क्रमशः संकुचित होता जाता है। इसका आशय है कि वाहरी विशाल पदार्थ क्रमशः संघनित होने लगता है, जिससे केन्द्रीय भाग में उत्पन्न हुआ विरल भाग (अवकाश) शनैः-२ न्यूनतर होता जाता है। जव उपर्युक्त तीनों छन्द रश्मियां उत्पन्न हो जाती हैं, उस समय शुनःशेप रश्मियां तथा सोम (हरिश्चन्द्र) रश्मियां दोनों ही वरुण रश्मियों से मुक्त होने से आदित्य लोक का केन्द्र सुनिश्चित होकर पदार्थ तेजी से संघनित होने लगता है। {अगदः = (गदः = गर्जन, गड़गड़ाहट, वाक्य - आप्टेकोश) (गद व्यक्तायां वाचि, गदी देवशब्दे)} उस समय हरिश्चन्द्र सोम रश्मियां अगदरूप हो जाती हैं अर्थात् ये गर्जनादि ध्वनियों से मुक्त हो जाती हैं। ऐसी निःशब्द हरिश्चन्द्र सोम रश्मियां उस संकुचित क्षेत्र में विचरने लगती हैं तथा शुनःशेप रश्मियां भी विभिन्न वन्धनों से मुक्त होकर उस क्षेत्र में अपने पूर्ण उत्पादक तेज व वल के साथ-२ नाना परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों के साथ भी संयोजित होने लगती हैं।

प्रश्न- यहाँ ७.१४.१ में **वरुण** रश्मियों के रूप में प्राण, अपान व व्यानादि रश्मियों का मिश्रण ग्रहण

किया गया है, जिसे विद्युदग्नि का ही रूप कहा गया है। विद्युदग्नि तथा इनके उत्पादक प्राणापानादि तत्त्व होते हैं, जिनके बिना कोई भी छन्द व सोम रश्मियां सर्ग प्रक्रिया में कुछ भी नहीं कर सकतीं, तब ऐसी स्थिति में इन वरुण रश्मियों द्वारा **हरिश्चन्द्र** सोम रश्मियों एवं **शुनःशेप** रश्मियों का जकड़ना तथा उन दोनों ही प्रकार की रश्मियों का **वरुण** पाश से मुक्त होने का इतना बड़ा प्रयास करना तथा अन्ततः उससे मुक्त होने पर ही आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग के निर्माण की प्रक्रिया विधिवत् प्रारम्भ होना, यह सम्पूर्ण प्रक्रिया असंगत प्रतीत होती है। इसको कैसे सुसंगत एवं वैज्ञानिक समझा जाए?

उत्तर- स्थूल दृष्ट्या यह प्रक्रिया वास्तव में अवैज्ञानिक एवं असंगत प्रतीत होती है परन्तु हम इसके विज्ञान को गम्भीरता से इस प्रकार समझ सकते हैं-

यद्यपि प्राण, अपान व व्यान रश्मियां प्रत्येक क्रिया व बल का आवश्यक किंवा अनिवार्य भाग हैं तथापि कभी-२ ये इस रूप में मिश्रित होती हैं, जिनका बन्धक बल अति तीव्र होता है। उस समय यह त्रिक विभिन्न सूक्ष्म रश्मियों को ही बांध लेती हैं, जिससे वे रश्मियां अपने बलों को खोने लगती हैं। उनकी स्वाभाविक क्रियाओं व गुणों में अवरोध आने लगता है, जिसके कारण सर्ग प्रक्रिया में उनकी उचित व स्वाभाविक भूमिका का निर्वहन नहीं हो पाता। **महर्षि याज्ञवल्क्य** का **वरुण** रश्मियों के विषय में कथन है-

"वरुण्यो वै ग्रन्थिः" (श.१.३.१.१६)
"वरुण्यो हि ग्रन्थिः" (श.५.२.५.१७)
"वारुणो वै पाशः" (तै.ब्रा.३.३.१०.१)

इन वचनों से संकेत मिलता है कि प्राणापानाव्यान रश्मियां जब **वरुण** रूप में प्रकट वा समन्वित होती हैं, उस समय वे अन्य रश्मियों को इस प्रकार जकड़ लेती हैं कि वे पाशबद्ध रश्मियां अपने-२ प्रभावों से विहीन वा दुर्बल हो जाती हैं। वे रश्मियां गांठरूप में प्रकट होकर मानो **वरुण** रश्मियों के बलों में जकड़ जाती हैं। जब उनकी उस पाश से मुक्ति होती है, तभी वे संयोजक-वियोजक गुणों-बलों से युक्त होकर अपने स्वाभाविक कार्यों को सम्पादित कर पाती हैं। इसी कारण कहा है-

"निर्वरुणत्वाय एव यवाः" (तां.१८.६.१७)

इस प्रकार पूर्वोक्त **हरिश्चन्द्र** सोम रश्मियां एवं **शुनःशेप** रश्मियां प्राणापानादि रश्मियों के इसी **वरुण** रूप द्वारा पाशबद्ध किये जाने से आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग के निर्माण में सक्षम नहीं हो पातीं। जब वे पाशमुक्त हो जाती हैं, तब उनका शुद्ध स्वरूप प्रकट होकर इन क्रियाओं को करने में सक्षम हो जाता है। यही विज्ञान इस सम्पूर्ण प्रकरण में दर्शाया गया है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त प्रक्रिया के पश्चात् एक त्रिष्टुप् और ६ गायत्री छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इस समय तक तारों के केन्द्रीय भाग डार्क एनर्जी आदि विभिन्न बाधक तत्त्वों के प्रभाव से पूरी तरह मुक्त हो जाते हैं, जिसके कारण गुरुत्व बल अत्यन्त प्रबल हो उठता है और सम्पूर्ण पदार्थ तेजी से घनीभूत होने लगता है तथा केन्द्रीय भाग में हल्के लालमिश्रित पीत वर्ण के प्रकाश की उत्पत्ति हो जाती है। ऊष्मा और दाब में अत्यधिक वृद्धि के कारण विभिन्न कणों का संलयन तेजी से होने लगता है। हम इस प्रकरण में पूर्व में जिस संलयन की चर्चा करते रहे हैं, वह संलयन अत्यल्प मात्रा में होता है, जबकि इस समय संलयन की प्रक्रिया अपने उत्कर्ष को प्राप्त करने लगती है।

इति 33.४ समाप्तः

ॐ अथ ३३.५ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. तमृत्विज ऊचुस्त्वमेव नोऽस्याह्नः संस्थामधिगच्छेत्यथ हैतं शुनःशेपोऽञ्जःसवं ददर्श तमेताभिश्चतसृभिरभिसुषाव, 'यच्चिद्धि त्वं गृहे गृह इत्यथैनं द्रोणकलशमभ्य-वनिनायोच्छिष्टं चम्वोर्भरेत्येतयर्चाऽथ हास्मिन्नन्वारब्धे पूर्वाभिश्चतसृभिः स स्वाहाकाराभिर्जुहवांचकाराथैनमवभृथमभ्यवनिनाय, 'त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वानित्येताभ्यामथैनमत ऊर्ध्वमग्निमाहवनीयमुपस्थापयांचकार', 'शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्रादिति।।

व्याख्यानम्- {अञ्जःसवः = 'अञ्जसा' ऋजुमार्गेण 'सवः' सोमाभिषवो यस्मिन् यागे सोऽञ्जःसवः, इति सायणभाष्यम्), (अञ्जसा = स्वच्छन्देन वेगवत्त्वेन - म.द.ऋ.भा.६.१६.३), (अञ्जः = सर्वैः कमनीयः - म.द.ऋ.भा.१.१६०.२; व्यक्तागमनशीलः - म.द.ऋ.भा.१.३२.२)} तदुपरान्त पूर्वखण्ड में वर्णित विश्वामित्र, वसिष्ठ आदि वे छन्दादि रश्मियां, जो होता, ब्रह्मा आदि के रूप में उत्पन्न होती हैं, वरुण पाश से मुक्त शुनःशेप रश्मियों को निर्माणाधीन आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में व्याप्त करके नाना प्रकार के संघात, संगमन आदि कर्मों को करने के लिए प्रेरित करती हैं। उन सब रश्मियों से प्रेरित वे शुनःशेप रश्मियां विभिन्न सोम रश्मियों को स्वतंत्रतापूर्वक तीव्र कमनीय बल एवं वेग के द्वारा स्पष्ट और व्यक्तरूप से प्रकाशित करने लगती हैं। उस समय वे शुनःशेप रश्मियां 'इन्द्रयज्ञसोमा' देवताक तृचरूप (ऋ.१.२८.५-८) छन्द रश्मियों को निम्न क्रमानुसार उत्पन्न करती हैं-

(१) यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे। इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः।।५।।

छन्द अनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {उलूखलम् = अन्तरिक्षं, वोलूखलम् (श. ७.५.१.२६), योनिरुलूखलम् (श.७.५.१.३८)। उलूखलम् = उलूखलं कायति शब्दयति यस्तत्संबुद्धौ, विद्वन् (म.द.भा)। दुन्दुभिः = परमा वा एषा वाग् या दुन्दुभौ (तै.ब्रा.१.३.६.२-३), एषा वै परमा वाग्या सप्तदशानां दुन्दुभीनाम् (श.५.१.५.६)} वे शुनःशेप रश्मियां योनिरूप अन्तरिक्ष में पूर्वोक्त सप्तदश स्तोमरूप गायत्री छन्दरश्मियों रूपी परमा वाक् के द्वारा नाना प्रकार की छन्दादि रश्मियों को नियंत्रित और प्रकाशित करती हुई नाना संयोजक बलों से युक्त करती हैं।

(२) उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित्। अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल।।६।।

छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे शुनःशेप नामक वायु रश्मियां विभिन्न आग्नेय रश्मियों को केन्द्र बिन्दु की ओर पहुँचाती हुई, उस योनिरूप अन्तरिक्ष में सोम रश्मियों को अवशोषित करके इन्द्र तत्त्व को समृद्ध करती हैं।

(३) आयजी वाजसातमा ता ह्युच्चा विजर्भृतः। हरीइवान्धांसि बप्सता।।७।।

छन्द गायत्री। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से यजन कर्मों में श्रेष्ठ वे हरिश्चन्द्र एवं शुनःशेप रश्मियां विभिन्न छन्दादि रश्मियों का विभाजन करती हुई नाना प्रकार के संयोज्य परमाणु आदि

पदार्थों का भक्षण करती हैं। वे कमनीय व्यवहारों के द्वारा नाना उत्कृष्ट यजन कर्मों को सिद्ध करती हैं।

(४) ता नो॑ अ॒द्य व॑नस्पती ऋ॒ष्वावृ॒ष्वेभि॑: सोतृ॒भि॑:। इन्द्रा॑य॒ मधु॑मत्सुतम्।।८।।

छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वे व्यापक शुनःशेप और हरिश्चन्द्र रश्मियां विभिन्न संपीडक एवं व्यापक रश्मियों के द्वारा नाना प्रकार की किरणों को उत्पन्न करके इन्द्र तत्त्व को समृद्ध और प्राणयुक्त करती हैं।

इन चारों छन्द रश्मियों के द्वारा शुनःशेप रश्मियां हरिश्चन्द्र सोम रश्मियों को सम्पीडित करती हैं। उसके पश्चात् इन शुनःशेप रश्मियों से इन्द्रयज्ञसोमा देवता वाली एवं गायत्री छन्दस्क-

उच्छि॒ष्टं च॒म्वो॑र्भर॒ सोमं॑ प॒वित्र॒ आ सृ॑ज। नि धे॑हि॒ गोरधि॑ त्व॒चि।।६।। (ऋ.१.२८.९)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से शुनःशेप और हरिश्चन्द्र रश्मियों के युग्म समूहरूप में नियंत्रित परमाणु आदि पदार्थों को विभिन्न वाग् रश्मियों से आच्छादित करके पूर्ण रूप से धारण करते हैं। इस छन्द रश्मि के द्वारा शुनःशेप रश्मियां सोम रश्मियों को द्रोणकलश में धारण करती हैं। {द्रोणकलशः = द्वयं वावेदं ब्रह्म चैव क्षत्रं च। तदुभयं द्रोणकलशे (जै.ब्रा.१.७८), प्रजापतेर्वा एतत् पात्रं यद् द्रोणकलशः (मै.४.८.८), प्राणा वै द्रोणकलशः (तां.६.५.१५), यज्ञो वै द्रोणकलशः (श.४.५.८.५)} इसका तात्पर्य यह है कि शुनःशेप रश्मियां विभिन्न सोम रश्मियों को विभिन्न प्राण रश्मियों के साथ संगत करके ब्रह्म एवं क्षत्र रूप अर्थात् अग्नि और इन्द्र तत्त्व में प्रतिष्ठित करती हैं अर्थात् ये सोम रश्मियां अग्नि और इन्द्र के रूप में प्रकट होती हैं अथवा उनमें प्रतिष्ठित-प्रक्षेपित की जाती हैं और वे अग्नि और इन्द्र तत्त्व उन सोम रश्मियों को भली प्रकार से धारण करते हैं। ये इसी प्रकरण में शुनःशेप रश्मियां इन्द्रयज्ञसोमा-देवताक एवं अनुष्टुप् छन्दस्क चतुर्ऋच (ऋ.१.२८.१-४), जिनके दैवत एवं छान्दस प्रभाव को यथावत् समझा जा सकता है, को निम्न क्रमानुसार उत्पन्न करती हैं-

(१) यत्र॒ ग्रावा॑ पृ॒थुबु॑ध्न ऊ॒र्ध्वो भव॑ति॒ सोत॑वे। उ॒लूख॑लसुताना॒मवेद्वि॑न्द्र जल्गुलः।।१।।

इसके प्रभाव से {जल्गुलः = अतिशयेन गृणीहि अत्र गृ शब्द इत्यस्माद्यङ्लुगन्ताल्लेट् 'बहुलं छन्दसि' (पा.अ.७.१.१०३), इत्युपधाया उत्वं च (म.द.भा.)} आदित्य लोक के विशाल अन्तरिक्ष के श्रेष्ठ केन्द्रीय भाग में विभिन्न प्राण एवं छन्दादि रश्मियां तीव्र सम्पीडक इन्द्र तत्त्व को उत्पन्न करती हैं। उस केन्द्रीय भागरूपी उलूखल में निरन्तर नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थ तीव्रता से सम्पीडित और संलयित होने लगते हैं। इस प्रक्रिया में अतिशय मात्रा में शब्द उत्पन्न होते रहते हैं।

(२) यत्र॒ द्वावि॑व ज॒घना॑धिषव॒ण्या॑ कृ॒ता। उ॒लूख॑लसुताना॒मवेद्वि॑न्द्र जल्गुलः।।२।।

इसके प्रभाव से उस केन्द्रीय भाग में इन्द्र तत्त्व आदित्य लोक की दोनों जंघाओं रूप सुदृढ़ भागों के मध्य अतिशय घोष करते हुए परमाणु आदि पदार्थों को संपीडित करता है। आदित्य लोक की जंघाओं के विषय में हम पूर्व में अनेकत्र लिख चुके हैं।

(३) यत्र॒ नार्य॑पच्य॒वमु॑पच्य॒वं च॒ शिक्ष॑ते। उ॒लूख॑लसुताना॒मवेद्वि॑न्द्र जल्गुलः।।३।।

इसके प्रभाव से {अपच्यवम् = त्यागम् (म.द.भा.)। उपच्यवम् = प्रापणम् (म.द.भा.)} वह इन्द्र तत्त्व केन्द्रीय भाग में विभिन्न पदार्थों को संलयित वा संपीडित करने के लिए विभिन्न आशुगामिनी मरुद् रश्मियों का आदान-प्रदान कराता है।

(४) यत्र॒ मन्थां॑ विब॒ध्नते॑ र॒श्मीन्यमि॑त॒वा इ॑व। उ॒लूख॑लसुताना॒मवेद्वि॑न्द्र जल्गुलः।।४।।

इसके प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न रश्मियों को नियंत्रित करके विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को मथता और उन्हें बांधते हुए नियंत्रित करके निरन्तर घोष करता रहता है।

इन छन्द रश्मियों की उत्पत्ति स्वाहाकार के साथ होती है तथा ये रश्मियां इस सूक्त की अन्य छन्द रश्मियों के ठीक पूर्व उत्पन्न होती हैं। उस समय शुनःशेप रश्मियां हरिश्चन्द्र सोम रश्मियों को इन छन्द रश्मियों के द्वारा ही स्पर्श करती हैं। उसी समय

त्वं नो॑ अग्ने॒ वरु॑णस्य वि॒द्वान्दे॒वस्य॒ हेळोऽव॑ यासिसीष्ठाः।
यजि॑ष्ठो॒ वह्नि॑तमः॒ शोशु॑चानो॒ विश्वा॒ द्वेषां॑सि॒ प्र मु॑मुग्ध्य॒स्मत्।।४।।

स त्वं नो॑ अग्नेऽव॒मो भ॑वो॒ती नेदि॑ष्ठो अ॒स्या उ॒षसो॒ व्यु॑ष्टौ।
अव॑ यक्ष्व नो॒ वरु॑णं॒ ररा॑णो वी॒हि मृ॑ळी॒कं सु॒हवो॑ न एधि।।५।।

इत्यादि (ऋ.४.१.४-५) ऋगुद्वय की उत्पत्ति वामदेव अर्थात् मनस्तत्त्व से समृद्ध प्राण नामक प्राण रश्मियों से होती है। इन दोनों छन्द रश्मियों के विषय में ७.६.२ द्रष्टव्य है। {अवभृथः = तद् यदपोऽभ्यवहरन्ति तस्मादवभृथः (श.४.४.५.१), यो ह वायमपामावर्त्तः स हावभृथः स हैष वरुणस्य पुत्रो वा भ्राता वा (श. १२.६.२.४), वरुण्यो वा अवभृथः (श.४.४.५.१०), शोधनम् (म.द.य.भा.१६.२८)। अवनिनाय = प्रक्षिप्तवान् (सायणभाष्यम्)} पूर्वोक्त (ऋ.१.२८.१-४) छन्द रश्मियों तक वर्णित क्रियाओं के पश्चात् केन्द्रीय भाग में विद्यमान पदार्थ के 'अवभृथ' नामक कर्म करने के उद्देश्य से ही ये उपर्युक्त दो छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। यहाँ 'अवभृथ' कर्म का तात्पर्य यह है कि उस समय आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में विद्यमान विभिन्न छन्दादि रश्मियां शुद्धरूप को प्राप्त करती हैं अर्थात् वे भी शुनःशेप और हरिश्चन्द्र सोम रश्मियों की भाँति सभी अनावश्यक बंधनों से मुक्त हो जाती हैं। उस समय वे छन्दादि रश्मियां विभिन्न प्राण रश्मियों का भक्षण करने लगती हैं और इसके लिए वे प्राण रश्मियां उन छन्दादि रश्मियों के चारों ओर परिक्रमण करने लगती हैं। इन सभी छन्द रश्मियों में पूर्वोक्त वरुण रश्मियां इस प्रकार विद्यमान रहती हैं कि वे छन्दादि रश्मियां विभिन्न परमाणुओं को परस्पर बांधने में समर्थ हो सकें। इन सभी क्रियाओं के द्वारा आहवनीय अग्निरूप केन्द्रीय पदार्थ प्रेरित और उत्तेजित होने लगता है। उस समय "कुमार आत्रेयो वृशो वा जार उभौ वा" ऋषि {वृशः = (वृश वरणे = आच्छादन करना - सं.धा.को. - पं.युधिष्ठिर मीमांसक, छांटना-चुनना - आप्टेकोश)। कुमारः = अतिचपलो वेगवान् (तु.म.द.य.भा.१७.४८)} अर्थात् सूत्रात्मा वायु रश्मियों से उत्पन्न ऐसी वेगवान् और अति चपल रश्मियां, जो विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को उपयुक्त क्रियाओं के लिए छांटती और आच्छादित करती हैं, से अग्निदेवताक एवं त्रिष्टुप् छन्दस्क -

शुन॑श्चि॒च्छेपं॒ निदि॑तं स॒हस्रा॒द्यूपा॑दमुञ्चो॒ अश॑मिष्ट॒ हि षः।
ए॒वास्मद॑ग्ने॒ वि मु॑मुग्धि॒ पाशा॒न्होत॑श्चिकित्व इ॒ह तू नि॒षद्य॑।।७।। (ऋ.५.२.७)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से अग्नि तत्त्व शुनःशेप रश्मियों, जो वरुण रश्मियों से मुक्त होने के उपरान्त भी असंख्य प्रकार की मिश्रित और अमिश्रित, अवांछनीय रश्मियों से युक्त हो जाती हैं, को उनसे मुक्त करता है, जिससे वे शुनःशेप रश्मियां समुचितरूप से नियंत्रित अवस्था को प्राप्त होती हैं। पूर्वखण्ड में वर्णित होता रूप पंक्ति रश्मियां विभिन्न परमाणुओं को विभिन्न अनावश्यक बधनों से मुक्त करने में सहयोग करती हैं।

यह छन्द रश्मि हरिश्चन्द्र सोम रश्मियों को आहवनीय अग्निरूप केन्द्रीय भाग की ओर विशेष प्रेरित करती है। इस प्रकार शुनःशेप और हरिश्चन्द्र दोनों ही प्रकार की रश्मियां आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में अन्य रश्मियों के साथ सक्रिय हो उठती हैं।।

नोट- इसका वैज्ञानिक भाष्यसार आगामी कण्डिकाओं के भाष्यसार के साथ देखें।।

२. अथ ह शुनःशेपो विश्वामित्रस्याङ्कमाससाद; स होवाचाजीगर्तः सौयवसिर्ऋषे पुनर्मे पुत्रं देहीति; नेति होवाच विश्वामित्रो, देवा वा इमं मह्यमरासतेति, स ह देवरातो वैश्वामित्र आस, तस्यैते कापिलेय बाभ्रवाः।।

स होवाचाजीगर्तः सौयवसिस्त्वं वेहि विह्वयावहा स होवाचाजीगर्तः सौयवसिः-

आङ्गिरसो जन्मनाऽस्याजीगर्तिः श्रुतः कविः।
ऋषे पैतामहात्तन्तोर्माऽपगाः पुनरेहि मामिति;

स होवाच शुनःशेपः-

अदर्शुस्त्वा शासहस्तं न यच्छूद्रेष्वलप्सत।
गवां त्रीणि शतानि त्वमवृणीथा मदङ्गिरः।।

स होवाचाजीगर्तः सौयवसिः

तद्वै मा तात तपति, पापं कर्म मया कृतम्।
तदहं निह्नुवे तुभ्यं प्रतियन्तु शता गवामिति।।

स होवाच शुनःशेपः-

यः सकृत्पापकं कुर्यात् कुर्यादेनत्ततोऽपरम्।
नापागाः शौद्रान्न्यायादसंधेयं त्वया कृतमिति।।

असंधेयमिति ह विश्वामित्र उपपपाद; स होवाच विश्वामित्रः-

भीम एव सौयवसिः शासेन विशिशासिषुः।
अस्थान्मैतस्य पुत्रो भूर्ममैवोपेहि पुत्रतामिति।।

स होवाच शुनःशेपः-

स वै यथा नो ज्ञपयाऽऽराजपुत्र तथा वद।
यथैवाऽऽङ्गिरसः सन्नपेयां तव पुत्रतामिति।।

स होवाच विश्वामित्रः-

ज्येष्ठो मे त्वं पुत्राणां स्यास्तव श्रेष्ठा प्रजा स्यात्।
उपेया दैवं मे दायं तेन वै त्वोपमन्त्रये; इति।।

स होवाच शुनःशेपः-

संज्ञानानेषु वै ब्रूयात् सौहार्द्याय मे श्रियै।
यथाऽहं भरतऋषभोपेयां तव पुत्रतामिति।।

अथ ह विश्वामित्रः पुत्रानामन्त्रयामास-

मधुच्छन्दाः शृणोतन ऋषभो रेणुरष्टकः।
ये के च भ्रातरः स्थ नास्मै ज्यैष्ठ्याय कल्पध्वमिति।।५।।

व्याख्यानम्- {कपिलः = कामयतेऽसौ कपिलः (उ.को.१.५५)। बभ्रूः = धारकः पोषको वा (म.द.ऋ.भा. ५.३०.१४), बभ्रूणाम् = बभ्रु वर्णानां हरणानां भरणानामिति वा (नि.६.२८), सोमो वै बभ्रुः (श.७.२.४.२६), बभ्रुः पिङ्गलो भवति (मै.२.५.१)} तदुपरान्त शुनःशेप रश्मियां पंक्ति छन्द रश्मियों, जो रोहित छन्द रश्मिसमूह में विद्यमान होती हैं, उन ऐसी विश्वामित्र रूपी रश्मियों में अति निकटता से आश्रित हो जाती

हैं। इसी बात को यहाँ 'शुनःशेप का विश्वामित्र की गोद में बैठ जाना' कहा है। तब पूर्वोक्त अजीगर्त ऋषि रश्मियां, जो शुनःशेप रश्मियों की उत्पादिका होती हैं, अपनी पुत्ररूप शुनःशेप रश्मियों को पंक्ति छन्द रश्मियों से अपनी ओर आकर्षित करने लगती हैं परन्तु पंक्ति छन्द रश्मियों के प्रबल बल के कारण वे अजीगर्त रश्मियां शुनःशेप रश्मियों को आकर्षित नहीं कर पाती हैं, क्योंकि शुनःशेप रश्मियां विभिन्न देव पदार्थों अर्थात् पूर्वखण्ड में वर्णित अग्नि, सविता, वरुण, इन्द्र एवं विश्वेदेवा आदि के द्वारा चरणबद्ध प्रबलता को प्राप्त करते हुए विश्वामित्ररूपी पंक्ति छन्द रश्मियों में आश्रित हुई होती हैं। इस कारण शुनःशेप रश्मियों का बंधन प्रबल होता है। इसी कारण शुनःशेप रश्मियों को यहाँ 'देवरात' कहा गया है। उस समय शुनःशेप रश्मियां कपिलरूप अर्थात् कमनीय बलों एवं भूरे रंग से युक्त होती हैं तथा वे एक अन्य रूप में भी विद्यमान होती हैं। इस रूप में वे धारण और पोषण गुणों से युक्त पिंगल रंग अर्थात् पीले और लाल मिश्रित वर्ण वाली होकर सोम रश्मियों से संयुक्त होती हैं। शुनःशेप रश्मियों के ये दो रूप विश्वामित्र संज्ञक पंक्ति छन्द रश्मियों के सान्निध्य से प्रकट होते हैं।।

उसके पश्चात् सुयवस् अर्थात् मास रश्मियों से उत्पन्न पूर्वोक्त अजीगर्त रश्मियां एवं शुनःशेप की पूर्वोक्त मातृरूप आकाश रश्मियां, दोनों ही विश्वामित्ररूपी पंक्ति रश्मियों के साथ संगत शुनःशेप रश्मियों को पुनः अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न करती हैं। यहाँ संवाद के रूप में अजीगर्त और शुनःशेप रश्मियों के इस विषय में दर्शाया गया है। इस समय ग्रन्थकार अजीगर्त रश्मियों के द्वारा शुनःशेप रश्मियों से कहलाते हुए लिखते हैं-

"हे पुत्र! तुम जन्म से अङ्गिरा गोत्र में उत्पन्न {आङ्गिरस} हो। तुम अजीगर्त के पुत्र ऋषिरूप से प्रसिद्ध हो। अतः हे ऋषि! तुम अपने पिता-पितामह की सन्तान अङ्गिरा वंश को मत छोड़ो। इसलिए तुम पुनः हमारे पास आ जाओ।"

इस संवाद का आशय यह है कि वे शुनःशेप रश्मियां सूत्रात्मा वायु रश्मिरूप अङ्गिराओं से उत्पन्न मास रश्मियों तथा उनसे उत्पन्न अजीगर्त नामक पूर्वोक्त ऋषि रश्मियों और शुनःशेप रश्मियों की पूर्वोक्त मातृरूपा आकाश रश्मियों के संयोग से उत्पन्न होती हैं। ये शुनःशेप रश्मियां सूक्ष्म ध्वनियां उत्पन्न करती हुई क्रान्तदर्शी तेज से संयुक्त होकर प्रवाहित हो रही होती हैं। ऐसी शुनःशेप रश्मियों को उनकी मातृ-पितृरूपा रश्मियां बार-२ विश्वामित्र संज्ञक पंक्ति रश्मियों से अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करती हैं परन्तु वे शुनःशेप रश्मियां उन दोनों ही रश्मियों की ओर आकृष्ट नहीं होतीं, बल्कि विश्वामित्र रश्मियों के साथ ही संयुक्त रहती हैं। अब ग्रन्थकार शुनःशेप रश्मियों द्वारा अपने पितृरूप अजीगर्त रश्मियों से कहलवाते हुए लिखते हैं-

"{इस प्रकार अजीगर्त के कहने पर} उन शुनःशेप ने कहा - हे तात! आपके हाथ में {मेरे वधार्थ गृहीत} तलवार सभी ने देखी है, जिसे कोई शूद्र भी नहीं लेता। हे अङ्गिरा गोत्र में उत्पन्न तात! आपने तो मेरे निमित्त तीन सौ गाएँ भी प्राप्त कर ली हैं।"

इसका आशय यह है कि अजीगर्त रश्मियां रोहित रश्मियों से उत्सर्जित सूक्ष्म रश्मियों से सौ-सौ आवृत्तिरूप में तीन बार स्पंदित होकर, जो आसुर तत्त्व के बंधन से मुक्त हुई थीं, जिसका वर्णन पूर्व में कर चुके हैं, वे अजीगर्त रश्मियां ऐसी तीक्ष्ण तेजस्विनी रश्मियों के द्वारा शुनःशेप रश्मियों को आकृष्ट करके विखण्डित करने में समर्थ होती हैं। {शूद्रः = असुर्य्यः शूद्रः (तै.ब्रा.१.२.६.७)} इस प्रकार का छेदक विखण्डक प्रभाव असुर रश्मियों वा उनसे उत्पन्न इसी प्रकार की रश्मियों में भी विद्यमान नहीं होता, पुनरपि ऐसी घातक रश्मियों के अनिष्ट आकर्षण बलों के द्वारा भी शुनःशेप रश्मियां विश्वामित्र रश्मियों के प्रभाव से आकृष्ट नहीं होती और विश्वामित्र संज्ञक पंक्ति रश्मियों के साथ ही संगत बनी रहती हैं।।

तदनन्तर पुनः पूर्वोक्त अजीगर्त प्राण रश्मियां ग्रन्थकार की शैली में शुनःशेप रश्मियों से कहती हैं-

वे तीक्ष्ण तेज रश्मियां जिनके द्वारा हमने तुम्हारे विखण्डन व नियमन का प्रयास किया था, हमें ही तीव्र तप्त कर रही हैं। हे तात! अर्थात् विविध क्षेत्रों व रूपों में व्याप्त शुनःशेप रश्मियो! उन तीक्ष्ण रश्मियों के कारण हम बार-२ गिरते हुए तीव्र तप्त हो चुकी हैं। हमें रोहित छन्द रश्मियों द्वारा तीन सौ बार जो स्पन्दित किया गया है किंवा तीन सौ वा अनेकों रश्मि समूहों द्वारा तीन बार आसुर रश्मियों से

मुक्त करके शुद्ध किया गया है, उन शोधक रश्मियों के स्पन्दनों को हम अपने अन्दर समाहित किए हुए हैं। उन्हें हम तुम्हें देती है। इस कारण तुम हमारे पास आ जाओ।''

इस कथन का आशय यह है कि अजीगर्त रश्मियों से जो तीक्ष्ण तेजयुक्त रश्मियां उत्पन्न होती हैं और वे रश्मियां शुनःशेप रश्मियों को आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग की क्रियाओं में नियुक्त करती हैं। उन्हीं तीक्ष्ण रश्मियों के कारण वे अजीगर्त रश्मियां स्वयं भी तप्तावस्था को प्राप्त हो जाती हैं। उस तप्तावस्था के कारण वे अजीगर्त रश्मियां वार-२ दोलन करने लगती हैं। वे रोहित रश्मियों के द्वारा पूर्वोक्तानुसार तीन सौ वार किंवा अनेक सूक्ष्म रश्मियों के द्वारा तीन वार स्पन्दित होकर उन सूक्ष्म रश्मियों, जो रोहित रश्मियों के द्वारा उत्पन्न होती हैं, को अपने अन्दर गुप्तरूप में संगत रखती हैं। वे अजीगर्त रश्मियां इन्हीं गुप्त सूक्ष्म रश्मियों को शुनःशेप रश्मियों की ओर प्रक्षिप्त करके उन शुनःशेप रश्मियों को विश्वामित्र संज्ञक पंक्ति छन्द रश्मियों से पृथक् करके अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करती हैं।।

उस समय शुनःशेप रश्मियां अजीगर्त रश्मियों का प्रतिरोध करते हुए विश्वामित्र छन्द रश्मियों से पृथक् नहीं होती हैं। उस समय शुनःशेप रश्मियां ग्रन्थकार की शैली में कहती हैं, जिसका आशय इस प्रकार है-

जो रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थ एक वार आसुर रश्मियों से ग्रस्त हो जाता है, वह पुनः वार-२ अन्य आसुर रश्मियों से भी ग्रस्त होता रहता है। वह भले ही कुछ सीमा तक पूर्णतः आसुर रश्मियों से मुक्त हो भी जाए, तव भी आसुर रश्मियां उसे वार-२ ग्रस्त करने का प्रयत्न कर सकती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जिन पदार्थों में आसुर पदार्थों से मुक्त होने का अपना स्वयं का सामर्थ्य नहीं होता तथा जो अन्य तीव्र तेजयुक्त रश्मि आदि पदार्थों के द्वारा उन वाधक रश्मियों से मुक्त होती हैं, वे उन मोचक रश्मि आदि पदार्थों के अभाव में पुनः आसुर रश्मियों से ग्रस्त हो सकती हैं। इसके साथ ही जो रश्मियां किन्हीं अन्य रश्मियों को विखण्डित करने में समर्थ वा प्रवृत्त होती हैं तथा कुछ काल तक इस कार्य में असफल रहने के उपरान्त भी वे रश्मियां जिनको विखण्डित करने का यत्न कर चुकी होती हैं; वे दोनों प्रकार की रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थ परस्पर संगमनीय नहीं होते, जैसे शूद्र अर्थात् असुर रश्मियां देव रश्मियों के साथ कभी संगत नहीं होती हैं। इसी कारण शुनःशेप रश्मियां अजीगर्त रश्मियों के साथ संगत नहीं होती हैं और विश्वामित्र छन्द रश्मियों में ही आश्रित वनी रहती हैं।।

{उपपपाद = उप+पद् = निकट आना, आक्रमण करना (आप्टे)। इति = इव (म.द.य.भा.१२.६४)} इसके पश्चात् ग्रन्थकार विश्वामित्र छन्द रश्मियों के द्वारा शुनःशेप रश्मियों से कहलवाते हैं कि - ''हे शुनःशेप! ये अजीगर्त रश्मियां तुम्हारे साथ संगत होने योग्य नहीं हैं, क्योंकि जव ये तीक्ष्ण तेजयुक्त रश्मियों के साथ तुम्हारे विखण्डन हेतु उद्यत थीं, तव ये वहुत भयानक प्रतीत हो रही थीं। इस कारण हे शुनःशेप! तुम इसके पुत्र न वन कर मेरे पुत्र वनो।''

इसका आशय यह है कि विश्वामित्र नामक पंक्ति छन्द रश्मियां शुनःशेप तथा अजीगर्त रश्मियों के मध्य आकर्षण व प्रतिकर्षण की पूर्वोक्त प्रक्रिया के चलते अजीगर्त रश्मियों के निकट आकर उन पर आक्रमण करते हुए शुनःशेप रश्मियों को प्रकाशित उत्तेजित करने लगती हैं। विश्वामित्र छन्द रश्मियों के प्रहार से तीक्ष्ण अजीगर्त रश्मियां कम्पायमान हो उठती हैं। {पुत्रम् = पुत्रो हि हृदयम् (तै.ब्रा.२.२.७.४), (हृदयम् = श्लक्ष्णं हृदयम् - श.६.१.२.४०)} उस समय विश्वामित्र रश्मियां शुनःशेप रश्मियों को अजीगर्त रश्मियों के साथ संगत होने से रोककर अपने साथ संगत करने लगती हैं। ध्यातव्य है कि शुनःशेप रश्मियां विश्वामित्र संज्ञक पंक्ति छन्द रश्मियों के आश्रित हो ही चुकी होती हैं, पुनरपि वे उनके साथ पूर्णतः संगत व अंगीकृत नहीं हो पाती हैं, ऐसा इस प्रकरण से संकेत मिलता है। यहाँ 'पुत्र' का आशय यह भी है कि वे विश्वामित्र रश्मियां उन शुनःशेप रश्मियों को आदित्य के केन्द्रीय भाग में पुत्ररूप पूर्वोक्त अग्नि तत्त्व को उत्पन्न व समृद्ध करने हेतु प्रेरित करती हैं।।

तदुपरान्त अपनी ओर आकर्षित करती हुई विश्वामित्र रश्मियों को शुनःशेप रश्मियां पूर्ववत् शैली में कहती हैं-

''हे विश्वामित्र रश्मियो! जैसे आपने राजपुत्ररूप को त्याग ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया, वैसे हम

अंगिरा गोत्र में उत्पन्न होकर आपका पुत्रत्व कैसे प्राप्त करें?''

इस कथन का आशय है कि {ब्राह्मणः = ब्राह्मणो हि रक्षसामपहन्ता (श.१.१.४.६), गायत्रो वै ब्राह्मणः (ऐ.१.२८), ब्रह्मणो हि जायते यो यज्ञाज्जायते (श.३.२.१.४०)} विश्वामित्र रश्मियां, जो पूर्व में तीव्र प्रकाशमान् थीं किन्तु जिनमें संयोज्यता का गुण न्यून था, ऐसी पंक्तिरूप विश्वामित्र छन्दरश्मियां आदित्य के **केन्द्रीय भाग में विद्यमान गायत्री छन्दरश्मियों के साथ संगत होकर आसुर रश्मियों को नष्ट वा पूर्ण नियन्त्रित करके संयोजक गुणों से समृद्ध हो जाती हैं, ऐसी अवस्था को प्राप्त पंक्ति छन्द रश्मियों को यहाँ विश्वामित्र कहा गया है, यह महत्वपूर्ण रहस्य है।** ऐसी ये विश्वामित्र रश्मियां शुनःशेप रश्मियों को और अधिक प्रकाशित व गतिमान् करने लगती हैं। इसके प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियों से उत्पन्न मास पुनः उन मास से उत्पन्न अजीगर्त रश्मियों द्वारा उत्पन्न शुनःशेप रश्मियां विश्वामित्र रश्मियों की ओर और अधिक आकर्षण का भाव प्रकट करने लगती हैं।।

उस समय विश्वामित्र रश्मियों के द्वारा शुनःशेप रश्मियों से कहलवाते हुए लिखते हैं-

''हे शुनःशेप रश्मियो! तुम मुझसे उत्पन्न सभी पुत्ररूप रश्मियों में सर्वश्रेष्ठ व ज्येष्ठ होओ! तुमसे उत्पन्न प्रजारूप पदार्थ भी श्रेष्ठत्व को प्राप्त करें। मैं दैव द्वारा प्रदत्त भाग तुम्हें सौपता हूँ, उसे प्राप्त करो। मैं तुम्हें पुत्ररूप में आमन्त्रित करता हूँ।''

इसका आशय यह है कि {ज्येष्ठः = यद्वै ज्येष्ठं तद्वै महत् (ऐ.आ.१.३.७), प्रजापतिर्वाव ज्येष्ठः (तै.सं.७.१.१.४)}

विश्वामित्र रश्मियों से जो-जो रश्मियां उत्पन्न हुई होती हैं, उन सबकी अपेक्षा विश्वामित्र रश्मियां शुनःशेप रश्मियों को व्यापक व समृद्ध बनाने तथा शुनःशेप रश्मियों से उत्पन्न होने वाली रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को भी श्रेष्ठ तेजयुक्त बनाने के लिए उद्यत होती हैं। विश्वामित्र रश्मियां अपने संयोजक बल से प्रभाव से शुनःशेप रश्मियों को विशेष संयोजक गुणों से युक्त करने तथा अधिक तेजयुक्त करके अपने साथ और भी निकटता से संगत करने लगती हैं। यहाँ **'मन्त्र'** का तात्पर्य वाक् रश्मियां भी है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि विश्वामित्र रश्मियां शुनःशेप रश्मियों को गायत्री आदि छन्द रश्मियों के साथ तेजी से संगत करने लगती हैं, जिस कारण ही वे शुनःशेप रश्मियां अधिक तेजस्विनी एवं संयोजनीय होने लगती हैं।।

अब पुनः {श्रीः = अथ यत् प्राणा अश्रयन्त तस्मादु प्राणाः श्रियः (श.६.१.१.४), श्रीः पृष्ठ्यानि (कौ.ब्रा.२१.५), श्रियै पाप्मा (निवर्त्तते) (श.१०.२.६.१९)। ऋषभः = बलिष्ठः (म.द.य.भा.१८.२७), गतिमान् पशुः (म.द.य.भा.१४.९), वीर्यं वा ऋषभः (तां.१८.६.१४)} ग्रन्थकार शुनःशेप रश्मियों के द्वारा कहलवाते हैं। जिसका आशय यह है कि विश्वामित्र रश्मियों एवं शुनःशेप रश्मियों के परस्पर निकटता से संगत होते समय {हृदयम् = हृदयं वै स्तोमभागाः (श.८.६.२.१५)} विश्वामित्र रश्मियां शुनःशेप रश्मियों को और अधिक उत्तेजित करने लगती हैं, जिसके कारण वे शुनःशेप रश्मियां स्तोम अर्थात् तीव्र तप्त विकिरण समूहों का रूप धारण करके आदित्य के केन्द्रीय भाग में होने वाली विभिन्न क्रियाओं के लिए आधारभूत प्राण रश्मियों के रूप में प्रकट होकर नाना बाधक आसुरी रश्मियों से मुक्त होने लगती हैं। उधर, विश्वामित्र छन्द रश्मियां बल, वीर्य और आशुगति से प्रचुरता से समृद्ध होकर उन शुनःशेप रश्मियों को धारण और पुष्ट करती हुई उनका पुत्रवत् आलिंगन करके पुत्ररूप पूर्वोक्त अग्नि तत्त्व को उत्पन्न करने के लिए प्रेरित करती हैं। यहाँ इस गाथा का हिन्दी अनुवाद करते हुए डॉ. सुधाकर मालवीय का कथन तथा आचार्य सायण के भाष्य का आशय इस प्रकार है-

हमारे विषय में एकमत हुए अपने पुत्रों से मेरे सौहार्द और धनलाभ के लिए आप उन्हें अवगत करा दें। हे भरतवंश में श्रेष्ठ! जैसे मैं आपकी पुत्रता प्राप्त करुं, वैसे आप मुझे पुत्रों के सामने स्वीकार करें।

यहाँ इसका आशय है कि शुनःशेप रश्मियां विश्वामित्र छन्द रश्मियों से उत्पन्न विभिन्न रश्मियों के मध्य विश्वामित्र रश्मियों के द्वारा श्रेष्ठता प्राप्त करने का प्रयत्न करती हैं।।

इसके पश्चात् विश्वामित्र रश्मियां अपनी पुत्ररूप रश्मियों को अपनी ओर आकर्षित करने लगती हैं। इनमें से चार प्रकार की प्राण रश्मियां प्रमुख हैं-

(१) मधुच्छन्दा = {मधु = मिथुनं वै मधु, प्रजा मधु (ऐ.आ.१.३.४)} ये रश्मियां, वे प्राण रश्मियां हैं, जो विभिन्न रश्मियों वा परमाणुओं के मिथुनों को आच्छादित, प्रकाशित और प्रेरित करती हुई नाना संयोगादि क्रियाओं को संपादित करने में समर्थ होती हैं।
(२) ऋषम = ये प्राण रश्मियां श्रेष्ठ वल, तेज और गति से युक्त होती हैं तथा वृषारूप वनकर योषारूप विभिन्न रश्मियों के साथ युग्म वनाती हैं।
(३) रेणुः = {रेणुः = रिणाति गच्छति हिनस्ति हन्यते वा स रेणुः (उ.को.३.३८)} ये प्राण रश्मियां विभिन्न पदार्थों में व्याप्त होकर उनका छेदन-भेदन करने में समर्थ होती हैं।
(४) अष्टकः = {अष्टकः = पर्वैतत्संवत्सरस्य यदष्टका (श.६.२.२.२४), अश्नुते सा अष्टका (उ.को.३.१४८), (पर्व = अर्धमासाः पर्वाणि - तै.सं.७.५.२५.१)} ये वे प्राण रश्मियां हैं, जो आदित्य लोक के विभिन्न सन्धि भागों को व्याप्त करती हैं तथा जो अपनी इस व्याप्ति में अर्धमास रश्मियों से निरन्तर संगत रहती हैं।

इन चार प्राण रश्मियों, जो विश्वामित्र पंक्ति रश्मियों की पुत्ररूपा होती हैं, के अतिरिक्त भी अन्य अनेकों ऐसी रश्मियां भी इनकी भ्रातरूपा होती हैं। {भ्राता = भ्राता भरतेर्हरतिकर्मणो हरते भागं भर्तव्यो भवतीति वा (नि.४.२६)} ये भ्रातृरूप रश्मियां इन उपर्युक्त चारों रश्मियों के विभिन्न कर्मों में सहायक होती हैं। विश्वामित्र रश्मियां {कल्पते अर्चतिकर्मा (निघं.३.१४ - वै.को. से उद्धृत)} अपनी व्यापक सामर्थ्य के द्वारा शुनःशेप रश्मियों को इन सभी प्राण रश्मियों की अपेक्षा व्यापक और वलवती वनाने के लिये उन्हें अपने तेज आदि के द्वारा समर्थ वनाने का प्रयत्न करती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत ६ अनुष्टुप् और ३ गायत्री छन्दरश्मियां उत्पन्न होती हैं, जिनके कारण तारों के केन्द्रीय भाग में विद्युत् चुम्बकीय बलों की प्रबलता और अधिक बढ़ने लगती है। संलयनीय परमाणु चारों ओर से केन्द्रीय भाग की ओर आने लगते हैं और पदार्थ का संघनन और संपीडन भी तीव्र होने लगता है। अनुष्टुप् छन्द रश्मियां अन्य सभी छन्द रश्मियों को अनुकूलतापूर्वक धारण करती हुई उन्हें और अधिक प्रभावी बनाती हैं। इसके कारण केन्द्रीय भाग का ताप और गुरुत्वीय बल निरन्तर बढ़ने लगता है। तारों के केन्द्रीय भाग के उत्तरी और दक्षिणी दोनों ध्रुवों तथा बाहरी विशाल भाग के मध्य तीव्र घोष होने लगते हैं। उस समय दो पंक्ति छन्द रश्मियां भी उत्पन्न होती हैं, जो डार्क एनर्जी के प्रभाव को नष्ट करके ऊष्मा की और अधिक वृद्धि करती हैं, जिससे संलयन की क्रिया और अधिक व्यापक होने लगती है। **केन्द्रीय भाग में पीले, लाल और भूरे रंग का प्रकाश उत्पन्न होता है, सूक्ष्म ध्वनियां भी निरन्तर उत्पन्न होती रहती हैं।** अनेक प्रकार की छन्द रश्मियों में निरन्तर आकर्षण और प्रतिकर्षण की क्रियाएं होते हुए आकर्षण बलों की वृद्धि और प्रतिकर्षण बलों की न्यूनता होती रहती है। इन सभी क्रियाओं में पंक्ति छन्द रश्मियों की विशेष भूमिका होती है। इस खण्ड के विशेष परिज्ञान के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पठनीय है, अन्यथा विषय पूर्णतः स्पष्ट नहीं हो सकता है।।

ॐ इति ३३.५ समाप्तः ॐ

ॐ अथ ३३.९ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. तस्य ह विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्रा आसुः पञ्चाशदेव ज्यायांसो मधुच्छन्दसः पञ्चाशत्कनीयांसः।।
तद्ये ज्यायांसो न ते कुशलं मेनिरे ताननु व्याजहारान्तान् वः प्रजा भक्षीष्टेति त एतेऽन्ध्राः पुण्ड्राः शबरा पुलिन्दा मूतिबा इत्युदन्त्या बहवो वैश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त विश्वामित्र संज्ञक पंक्ति छन्द रश्मियों से १०१ प्रकार की पुत्ररूपा सूक्ष्म प्राण रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इनमें से ५० रश्मियां पूर्वोक्त मधुच्छन्दा ऋषि रश्मियों से ज्येष्ठ अर्थात् विस्तृत सामर्थ्यशाली होती हैं और ५० रश्मियां मधुच्छन्दा ऋषि प्राण रश्मियों से अल्प सामर्थ्य वाली होती हैं।।

{कुशलः = कोशति श्लिष्यति व्यवहर्तुं जानातीति वा कुशलः (उ.को.१.१०६)। मेनिरे = (मन ज्ञाने, मन्यते अर्चतिकर्मा - निघं.३.१४)। व्याजहारः = (वि+आङ्+हृ)। अन्ध्रावः = अन्धु धातु से वृधिवपिभ्यां रन् (उ.को.२.२८), से रन् प्रत्यय होकर अन्ध्रम् शब्द सिद्ध होता है, जिसका अर्थ है अन्धयति तत् अन्ध्रम् (अन्धः = अन्ननाम - निघं.२.७; अन्धसः = मन्त्रपूतस्य वाचा स्तुतस्य - नि.१३.६)। पुण्ड्रः = पुण्डति खण्डयतीति पुण्ड्रः (उ.को.२.१३)। शबरः = शवरः (शवति गतिकर्मा - निघं.२.१४, परिचरणकर्मा - निघं.३.५ - वै.को. से उद्धृत, शव+अर - उ.को.३.१३१), (शवः = बलनाम - निघं.२.९; बलं वै शवः - श.७.३.१.२६)। पुलिन्दः = पोलति महान् भवतीति पुलिन्दः (उ.को.४.८६), (पुल महत्वे = ढेर होना, ऊंचा होना, बढ़ना - सं.धा.को. - पं. युधिष्ठिर मीमांसक)। मूतिबा = मूल प्रतिष्ठायाम्+इट्+क्वनिप् - हमारे मत में यहाँ मूल के लकार को तकार तथा प्रत्यय के वकार को बकार निपातित है)। दस्युः = दस्युः दस्यतेः क्षयार्थाद्, उपदस्यन्त्यस्मिन् रसा उपदासयति कर्माणि (नि.७.२३)}

पंक्ति छन्द रश्मिरूप विश्वामित्र रश्मियों से, जो १०१ प्रकार की पुत्ररूपा रश्मियां उत्पन्न होती हैं, उनमें से मधुच्छन्दा प्राण रश्मियों से अधिक विस्तृत और सामर्थ्यशालिनी पचास रश्मियां शुनःशेप रश्मियों से भी अधिक शक्तिशालिनी और व्यापक होती हैं। इसलिए वे शुनःशेप रश्मियों के साथ संश्लिष्ट नहीं होतीं, बल्कि पृथक् ही रहती हैं। वे अपनी पितृरूपा विश्वामित्र रश्मियों की प्रेरणा का उल्लघंन करके उनकी उपेक्षा ही करती हैं। वे शुनःशेप रश्मियों के द्वारा संदीप्त वा प्रकाशित भी नहीं होती, तब विश्वामित्र संज्ञक पंक्ति छन्द रश्मियां उन सभी ५० प्रकार की रश्मियों को पकड़कर दूर हटातीं और उन्हें दूर ही धारण किये रखती हैं। वे विश्वामित्र रश्मियां उन ऐसी ५० प्रकार की रश्मियों को और उनसे भी उत्पन्न अन्य रश्मि आदि पदार्थों को आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग की सीमा के बाहर संधि क्षेत्र में धकेल देती हैं। वहाँ वे सभी रश्मियां ५ प्रकार के रश्मि आदि पदार्थों में परिवर्तित हो जाती हैं, वे पांच पदार्थ निम्न प्रकार के हैं-

(१) अन्ध्र = वह रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थ, जो आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग की बाहरी सीमा के निकट विद्यमान रहकर केन्द्रीय भाग में विद्यमान उच्च अग्नि को अनावश्यक रूप से बाहर की ओर रिसने से रोकता है, उसे अन्ध्र कहा गया है। यह पदार्थ विभिन्न छन्द रश्मियों के द्वारा पवित्र और प्रकाशित होता हुआ संयोजक गुणों से युक्त भी होता है, जो सन्धि क्षेत्र में विद्यमान विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों के साथ संगत होकर उन्हें भी शुद्ध रूप प्रदान करता है। ये शुद्ध हुए पदार्थ सीमा को पार करके केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित होते हैं।

(२) पुण्ड्रा = ये रश्मि आदि पदार्थ भेदक शक्तिसम्पन्न होकर सन्धि क्षेत्र में आने वाले विभिन्न कणों का

भेदन करके संलयनीय परमाणुओं को पृथक् करते रहते हैं।

(३) शबरः = ये रश्मियां विशेष वल और गति से सम्पन्न होकर सन्धि भाग में विद्यमान विभिन्न संलयनीय परमाणुओं के चारों ओर चक्कर लगाती हुई उन्हें वलसम्पन्न करके उन्हें केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित करने में अपनी भूमिका निभाती हैं।

(४) पुलिन्दा = ये रश्मियां केन्द्रीय भाग में व्यापक रूप से विद्यमान रहकर वाहरी भाग से आने वाले परमाणु आदि पदार्थों को केन्द्रीय सीमा के पास संचित करती रहती हैं।

(५) मूतिबा = ये रश्मियां केन्द्रीय भाग में संलयनीय परमाणुओं वा रश्मि आदि पदार्थों को प्रतिष्ठा अर्थात् आधार प्रदान करती हैं। ये उन परमाणुओं को उचित वल और वेग प्रदान करके संलयनीय रूप प्रदान करने में सहयोग करती हैं।

इन पांच प्रकार के पदार्थों के अतिरिक्त भी विश्वामित्र संज्ञक पंक्ति छन्द रश्मियों से अनेक ऐसे पदार्थों की भी उत्पत्ति होती है, जो दस्युरूप होते हैं अर्थात् संलयनीय परमाणुओं के साथ विद्यमान वाधक परमाणु आदि पदार्थों को नष्ट करते हुए सन्धि क्षेत्र में दूर-२ तक फैले और ऊपर की ओर उठे हुए होते हैं। ये पदार्थ संलयनीय परमाणुओं को समुचित और निरापदरूप प्रदान करने में सहयोग करते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्रीय भाग में विद्यमान अति शक्तिशालिनी पंक्ति छन्द रश्मियों से उत्पन्न १०१ प्रकार की रश्मियों में से ५० प्रकार की रश्मियां, जो अधिक व्यापक व तीक्ष्ण होती है, तारों के संधि भाग की ओर धकेल दी जाती हैं। यह कार्य पंक्ति छन्द रश्मियों के द्वारा ही होता है। इन रश्मियों में से कुछ रश्मियां तारे के केन्द्रीय भाग में विद्यमान ऊष्मा के क्षय को रोकने में सहायक होती हैं, क्योंकि वे ऊष्मा के अनावश्यकरूप से बहिर्गमन में अवरोध उत्पन्न करती हैं, साथ ही वे सन्धि भाग में विद्यमान विभिन्न कणों को संलयनीय रूप प्रदान करने में भी सहयोग करती हैं। कुछ रश्मियां तारों के सन्धि भाग में कुछ नाभिकों किंवा आयनों का विखण्डन करके उन्हें संलयनीय आयनों के रूप में परिवर्तित करती हुई सम्पूर्ण क्षेत्र में व्याप्त करती हैं। कुछ रश्मियां विभिन्न आयनों को तीव्र बल और गति से सम्पन्न करती हैं। कुछ रश्मियां इन संलयनीय नाभिकों को तारों के केन्द्रीय भाग की सीमा के पास संचित करती रहती हैं। पांचवें प्रकार की रश्मियां संलयनीय नाभिकों को आधार प्रदान करके केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित होने में सहयोग करती हैं। इनके अतिरिक्त भी अन्य अनेकों रश्मियां तारे के सन्धि भाग में विद्यमान डार्क एनर्जी आदि अवरोधक पदार्थों को नष्ट वा नियंत्रित करती हैं। ये रश्मियां सन्धि भाग में दूर-२ तक फैलकर तारे के बाहरी भाग की ओर उठी हुई होती हैं।।

२. स होवाच मधुच्छन्दाः पञ्चाशता सार्धं-

यन्नः पिता संजानीते तस्मिंस्तिष्ठामहे वयम्।
पुरस्त्वा सर्वे कुर्महे त्वामन्वञ्चो वयं स्मसीति।।

अथ ह विश्वामित्रः प्रतीतः पुत्रांस्तुष्टाव।।

ते वै पुत्राः पशुमन्तो वीरवन्तो भविष्यथ।
ये मानं मेऽनुगृह्णन्तो वीरवन्तमकर्त मा।।
पुर एत्रा वीरवन्तो देवरातेन गाथिनाः।
सर्वे राध्याः स्थ पुत्रा एष वः सद्विवाचनम्।।
एष वः कुशिका वीरो देवरातस्तमन्वित।
युष्मांश्च दायं म उपेता विद्यां यामु च विद्मसि।।
ते सम्यञ्चो वैश्वामित्राः सर्वे साकं सरातयः।
देवराताय तस्थिरे धृत्यै श्रैष्ठ्याय गाथिनाः।।
अधीयत देवरातो रिक्थयोरुभयोर्ऋषिः।

जह्नूनां चाऽऽधिपत्ये दैवे वेदे च गाथिनाम्।।
तदेतत्परऋक्शतगाथं शौनःशेपमाख्यानम्।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त पंक्ति छन्द रश्मियों से उत्पन्न मधुच्छन्दा ऋषि प्राण रश्मियां और उनसे कनिष्ठ अर्थात् कम व्यापक और अल्प सामर्थ्य वाली ५० प्रकार की रश्मियों को प्रेरित करते हुए ग्रन्थकार के शब्दों में शुनःशेप रश्मियों से कहती हैं- हम अपनी पितृरूपा विश्वामित्र संज्ञक पंक्ति रश्मियों की प्रेरणा के अनुकूल वर्तते हुए तुम्हारा ही अनुकरण करेंगी। इसका आशय यह है कि वे मधुच्छन्दा आदि ५१ प्रकार की रश्मियां पंक्ति छन्द रश्मियों से प्रेरित होकर शुनःशेप रश्मियों का अनुकरण करती हुई आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में सर्वत्र प्रवाहित होने लगती हैं। इसके साथ ही वे सभी रश्मियां शुनःशेप रश्मियों के साथ मिलकर नाना प्रकार की संलयन आदि क्रियाओं को संपादित करने लगती हैं।।

तदनन्तर वे **विश्वामित्र** संज्ञक पंक्ति रश्मियां अपनी पुत्ररूपा उन ५१ रश्मियों के अभिमुख होकर प्रवाहित होती हुई उन्हें और भी अधिक प्रकाशित व सक्रिय करने लगती हैं।।

इसके पश्चात् वे ५१ रश्मियां {वीरः = प्राणा वै दश वीराः (श.१२.८.१.२२), अत्ता हि वीरः (श.४.२.१.६), वीरो वीरयत्यमित्रान् वेतेर्वा स्याद् गतिकर्मणो वीरयतेर्वा (नि.१.७)} अपनी कारणरूपा पंक्ति छन्द रश्मियों की प्रेरणा से प्राणापानादि दश प्राण रश्मियों एवं विभिन्न मरुद् एवं छन्द रश्मियों से युक्त होकर विशेष आकर्षण वलों से युक्त वा समर्थ होती हैं। ये ऐसी समर्थ हुई सभी रश्मियां पंक्ति छन्द रश्मियों को अनुकूलता से धारण करती हुई उन्हें भी इन प्राणादि रश्मियों से युक्त करके अधिक सक्रिय व प्रकाशित करने लगती हैं।।

{विवाचः = विवाक् संग्रामनाम (निघं.२.१७)} इसके पश्चात् विभिन्न गाथा अर्थात् वाग् रश्मियों एवं वीरसंज्ञक सभी प्राण रश्मियों से सम्पन्न और समृद्ध होकर देवरात संज्ञक शुनःशेप रश्मियों का अनुगमन करती हुई मधुच्छन्दा आदि सभी रश्मियां नाना प्रकार के संघातों को जन्म देने लगती हैं। इसके साथ ही वे रश्मियां नाना प्रकार के पदार्थों को संशोधित और उत्पन्न करने में भी समर्थ होने लगती हैं। ये रश्मियां शुनःशेप रश्मियों को अग्रगामिनी बनाकर विभिन्न बाधक एवं अनावश्यक पदार्थों को नष्ट करने में भी समर्थ होने लगती हैं।।

{कुशिकः = कुशिको राजा बभूव। क्रोशतेः शब्दकर्मणः, क्रंशतेर्वा स्यात् प्रकाशयतिकर्मणः, साधु विक्रोशयितार्थानामिति वा (नि.२.२५)। रातिः = दानक्रिया (म.द.ऋ.भा.३.३०.७), वेगादीनां दानम् (म.द.ऋ.भा.१.३४.१)। विद्या = विद्या वै धिषणा (तै.ब्रा.३.२.२.२)} वे मधुच्छन्दा आदि ५१ रश्मियां कुशिकरूप होकर नाना प्रकार से प्रकाशित और उत्तेजित होती हुई ध्वनियों को उत्पन्न करने लगती हैं। इसके साथ ही वे सबको कंपाने वाली देवरातसंज्ञक शुनःशेप रश्मियों के साथ समन्वित होती हैं। वे शुनःशेप रश्मियां पंक्ति छन्द रश्मियों के साथ संगमन करती हुई नाना प्रकार की वाग् रश्मियों एवं अन्य विभिन्न प्रकार की ऐसी रश्मियों एवं वलों से युक्त होती हैं, जो उन पंक्ति छन्द रश्मियों से प्राप्त होती हैं। {धिषणा = धृष्णोति प्रागल्भ्यं ददाति स धिषणः (उ.को.२.८३), धृष्णोति कार्येषु यया सा अग्नेर्ज्वालाप्रेरितां वाक् (तु.म.द.ऋ.भा.१.२२.१०), धिषणे द्यावापृथिव्योर्नाम (निघं.३.३०)} वे शुनःशेप रश्मियां केन्द्रीय भाग में विद्यमान विभिन्न प्रकाशित एवं अप्रकाशित परमाणुओं के रूप में परिवर्तित होकर किंवा उनको उत्पन्न वा संगत करके अग्नि की ज्वालाओं को उत्पन्न करती हैं अर्थात् तीव्र ताप को उत्पन्न करती हैं।।

विश्वामित्र रश्मियों से उत्पन्न और विभिन्न वाग् रश्मियों से सम्पन्न वे मधुच्छन्दा आदि रश्मियां नाना प्रकार के वेग आदि गुणों से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को युक्त करने में समर्थ होकर देवरात संज्ञक शुनःशेप रश्मियों के साथ-२ सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग में विचरण करती हैं। वे उन शुनःशेप रश्मियों के संरक्षण में नाना प्रकार के श्रेष्ठ धारण आदि गुणों से युक्त होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को अपने साथ धारण करके उनकी सभी क्रियाओं को श्रेष्ठता प्रदान करती हैं।।

{रिक्थम् = धननाम (निघं.२.१०), रिणक्ति पृथक् करोतीति यत्तद् रिक्थम् (उ.को.२.७), रिच वियोजनसंपर्चनयोः = एकत्र करना, अलग-२ करना, जोड़ना बांधना (सं.धा.को. - पं.युधिष्ठिर मीमांसक)। जह्नुः = जहाति दोषानीति जह्नुः (उ.को.३.३६)} देवरातसंज्ञक शुनःशेप रश्मियां अजीगर्त एवं विश्वामित्र दोनों ही प्रकार की रश्मियों के संयोजन और वियोजन रूप दोनों ही प्रकार के गुणों को धारण करती हैं। ये रश्मियां विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को संयुक्त और वियुक्त करने के साथ-२ उन्हें बांधने और संचित करने में भी समर्थ होती हैं। इसके साथ ही विभिन्न बाधक रश्मि आदि पदार्थों को नष्ट करने वाली एवं विभिन्न छन्दादि रश्मियों और प्राणापानादि रश्मियों से संरक्षित और पालित होती हैं। इस कारण इनमें उन सभी रश्मियों के गुण विद्यमान होते हैं।।

इस आख्यान का उपसंहार करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि खण्ड ७.१६ एवं ७.१७ में शुनःशेप ऋषि रश्मियों से १०० से अधिक कुल १०४ छन्द रश्मियां उत्पन्न और प्रकाशित होती हैं। वे सभी छन्द रश्मियां शुनःशेप रश्मियों से उत्पन्न होने के कारण शौनःशेप कहलाती हैं। इन सभी में भी शुनःशेप रश्मियों के गुण भी विद्यमान होते हैं। अन्य गुण एवं प्रभावों के विषय में उपर्युक्त दोनों खण्ड द्रष्टव्य हैं।।

ज्ञातव्य - इन कण्डिकाओं का वैज्ञानिक भाष्यसार आगामी कण्डिकाओं के भाष्यसार के साथ देखें।।

३. तद्धोता राज्ञेऽभिषिक्तायाऽऽचष्टे।।
हिरण्यकशिपावासीन आचष्टे; हिरण्यकशिपावासीनः प्रतिगृणाति। यशो वै हिरण्यं, यशसैवैनं तत्समर्धयति।।
ओमित्यृचः प्रतिगरः; एवं तथेति गाथायाः; ओमिति वै दैवं, तथेति मानुषं, दैवेन चैवैनं तन्मानुषेण च पापादेनसः प्रमुञ्चति।।
तस्माद्यो राजा विजिती स्यादप्ययजमान आख्यापयेतैवैतच्छौनःशेपमाख्यानं, न हास्मिन्नल्पं चनैनः परिशिष्यते।।
सहस्रमाख्यात्रे दद्याच्छतं प्रतिगरित्र एते चैवाऽऽसने श्वेतश्चाश्वतरीरथो होतुः।।
पुत्रकामाः हाप्याख्यापयेरल्लँभन्ते ह पुत्राल्लँभन्ते ह पुत्रान्।।६।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त होता संज्ञक विश्वामित्र अर्थात् पंक्ति छन्द रश्मियां आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग के निर्माण के समय सम्पूर्ण पदार्थ को अभिसिंचित करते हुए शुनःशेप रश्मियों को प्रेरित करके पूर्वोक्त १०४ छन्द रश्मियों को उत्पन्न कराती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि शुनःशेप रश्मियां रोहित छन्द रश्मियों में विद्यमान विश्वामित्र अर्थात् होता संज्ञक पंक्ति छन्द रश्मियों की प्रेरणा किंवा रोहित छन्द रश्मियों की प्रेरणा से ही इन शताधिक छन्द रश्मियों को उत्पन्न करने में समर्थ हो पाती हैं।।

{हिरण्यकशिपु = दिवो (रूपम्) हिरण्यकशिपु (तै.ब्रा.३.६.२०.२ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत)। कशिपुः = आसनम् (सायणभाष्य, पादटिप्पणी-३)। यशः = अन्ननाम (निघं.२.७), आदित्यो यशः (श.१२.३.४.८), प्राणा वै यशः (श.१४.५.२.५), पशवो यशः (श.१२.८.३.१), यशो वै सोमो राजा (ऐ.१.१३), सोमो वै यशः (तै.ब्रा.२.२.८.८)} जब पूर्वोक्त विश्वामित्र संज्ञक होता रूप पंक्ति छन्द रश्मियां पूर्वोक्तानुसार शुनःशेप रश्मियों के द्वारा शताधिक पूर्वोक्त छन्द रश्मियों को उत्पन्न कराती हैं, उस समय वे पंक्ति छन्द रश्मियां दिव् अर्थात् विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों में प्रतिष्ठित होती हैं, जिसके कारण वे विशेष तेजस्विनी होती हैं। उसी अवस्था में प्रतिगरण भी करती हैं। 'प्रतिगर' शब्द के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है-

"गृणाति ह वाऽ एतद्धोता यच्छ्ंसति।
तस्मा एतद् गृणते प्रत्येवाध्वर्युरागृणाति तस्मात्प्रतिगरो नाम।" (श.४.३.२.१)
"मदो वै प्रतिगरः।" (श.४.३.२.५)

इन वचनों का तात्पर्य यह है कि जब विश्वामित्र रश्मियां पूर्वोक्तानुसार शुनःशेप रश्मियों से पूर्वोक्त शताधिक छन्द रश्मियों को उत्पन्न करा रही होती हैं, उसी समय इन विश्वामित्र रश्मियों की प्रेरणा से खण्ड ७.१६ में वर्णित जमदग्नि संज्ञक एवं अध्वर्युरूपा त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां, जो रोहित छन्द रश्मियों के अन्दर ही विद्यमान होती हैं, प्रतिगर का कार्य करती हैं। प्रतिगरण क्रिया के विषय में अगली कण्डिका का व्याख्यान द्रष्टव्य है। इस क्रिया के फलस्वरूप विभिन्न छन्द रश्मि आदि पदार्थ अतिसक्रिय हो उठते हैं। ये अध्वर्युरूपा त्रिष्टुप् एवं उष्णिक् छन्द रश्मियां भी विश्वामित्र रश्मियों की भाँति तेजस्विनी प्राथमिक प्राण रश्मियों में प्रतिष्ठित रहती हैं। यहाँ 'हिरण्य' शब्द को यशोरूप कहा है। इससे संकेत मिलता है कि ये विश्वामित्र एवं जमदग्नि नामक पंक्ति और त्रिष्टुबादि रश्मियां पूर्वोक्त प्राथमिक प्राण रश्मियों के अतिरिक्त तेजस्वी एवं संयोजक गुणों से युक्त सोम, विभिन्न छन्द, मरुत् एवं आदित्य संज्ञक १२ मास रश्मियों के संयुक्त मिश्रण में भी प्रतिष्ठित होती हैं अर्थात् ये सभी रश्मियां केन्द्रीय भाग में परस्पर मिश्रितरूप में विद्यमान रहती हैं। इनके द्वारा ही केन्द्रीय भाग की विभिन्न क्रियाएं समृद्ध होती हैं। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का भी कथन है-

"संस्थिते मरुत्वतीये दक्षिणत आहवनीयस्य हिरण्यकशिपावासीनोऽभिषिक्ताय पुत्रामात्यपरिवृताय राज्ञे शौनःशेपमाचक्षीत।"

"हिरण्यकशिपावासीन आचष्टे हिरण्यकशिपावासीनः प्रतिगृणाति यशो वै हिरण्यं यशसैवैनं तत्समर्धयति।" (आश्व.श्रौ.६.३.६-१०) यह कथन ग्रन्थकार के मन्तव्य की ही पुष्टि करता है।।

यहाँ 'प्रतिगर' शब्द का आशय स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि 'ओम्' छन्द रश्मि ही प्रतिगर कहलाती है। इससे संकेत मिलता है कि जब विश्वामित्र संज्ञक होतारूप पंक्ति छन्द रश्मियां शुनःशेप रश्मियों से पूर्वोक्तानुसार अनेकों छन्द रश्मियों को उत्पन्न कर रही होती हैं, उस समय जमदग्नि संज्ञक अध्वर्युरूपा त्रिष्टुबादि छन्द रश्मियां 'ओम्' छन्द रश्मियों को उत्सर्जित करती हैं। ये 'ओम्' छन्द रश्मियां शुनःशेप रश्मियों से उत्पन्न छन्द रश्मियों के अन्त में उत्पन्न होकर संगत हो जाती हैं, जिससे वे छन्द रश्मियां और अधिक सक्रिय एवं वलवती होती हैं। इसी प्रकार इस खण्ड में दर्शायी हुई पांच गाथाओं में होने वाली विभिन्न क्रियाओं एवं उनमें क्रियाशील विभिन्न रश्मियों के अन्त में भी 'ओम्' छन्द रश्मियां प्रकट होती हैं, जिससे वे सभी क्रियाएं भी अधिक समृद्ध और वलवती होती हैं। ये 'ओम्' छन्द रश्मियां दैवी गायत्री छन्द रश्मि के रूप वाली होती हैं। यहाँ 'दैवम्' से तात्पर्य यह है कि ये रश्मियां प्रजापतिरूप (देव) परमात्मा के द्वारा मनः रूप प्रजापति (देव) के अन्दर उत्पन्न होती हैं, इस कारण ये देव कहलाती हैं। ये रश्मियां ही अन्य सभी रश्मियों का रस अर्थात् साररूप होती हैं। इनके विना कोई भी रश्मि ब्रह्मत्व अर्थात् वल एवं विस्तार को प्राप्त नहीं कर सकती। इन रश्मियों के विषय में ऋषियों का कथन है-

"अथैकस्यैवाऽक्षरस्य रसं नाऽशक्नोदादातुम्। ओमित्येतस्यैव।
सेयं वागभवत्। ओमेव नामैषा। तस्या उ प्राण एव रसः।" (जै.उ.१.१.१.६-७)
"एतद् एवाक्षरं त्रयी विद्या।" (जै.उ.१.४.४.१०)

"ओमिति ब्रह्म। ओमितीद्ं सर्वम्। ओमित्येतदनुकृति ह स्म वा अप्यो श्रावयत्याश्रावयन्ति। ओमिति सामानि गायन्ति। ओं शोमिति शस्त्राणि शंसन्ति। ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति। ओमिति ब्रह्मा प्रसौति। ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति। ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्नवानीति। ब्रह्मैवोपाप्नोति।" (तै.आ.७.८.१; तै.उ.१.८.१)

इन वचनों से हमारे उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है। 'ओम्' रश्मियों को मानुषरूप भी कहा है। {मानुषः = पशवो मानुषाः (क.४१.६), यन्मन्द्रं मानुषं तत् (तै.सं.२.५.११.१)} इसका तात्पर्य यह है कि ये 'ओम्' रश्मियां प्रत्येक छन्द वा मरुदादि रश्मि के साथ एवं दैव अर्थात् प्राथमिक प्राण रश्मियों के साथ अवश्य ही संगत होती हैं। इस संगति के द्वारा वे उन छन्दादि रश्मियों को सूक्ष्म वाधक रश्मियों से मुक्त रखती हैं। इससे संकेत मिलता है कि जो प्राण रश्मियां और छन्दादि रश्मियां असुरादि वाधक तत्त्वों को दूर वा नष्ट करने में समर्थ होती हैं, **इसका सबसे मूल कारण इन रश्मियों का 'ओम्' रश्मि के साथ संगत**

होना है। हमारे मत में **'ओम्'** छन्द रश्मियां असुरादि रश्मियों में भी व्याप्त होती हैं, पुनरपि वहाँ इन रश्मियों के कारण असुरादि रश्मियों को प्रक्षेपक आदि बलों की प्राप्ति होती है, न कि संयोजक बलों की। ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ **'ओम्'** छन्द रश्मियों की व्याप्ति दैवी छन्द रश्मियों की अपेक्षा भिन्न होती है। इस कारण ही दैवी और आसुरी छन्द रश्मियों का प्रभाव भिन्न-२ होता है। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का मत निम्नप्रकार है-

"ओमित्यृचः प्रतिगर एवं तथेति गाथायाः।"

"ओमिति वै दैवं तथेति मानुषं दैवेन चैवैनं तन्मानुषेण च पापादेनसः प्रमुञ्चति।" (आश्व.श्रौ.६.३.११-१२)।।

{यजमानः = आहवनीयभाग्यजमानः (क.३.६ - वै.को. से उद्धृत), संवत्सरो यजमानः (श.११.२.७.३२)} उपर्युक्त कारण से ब्रह्माण्डस्थ कोई भी देदीप्यमान लोक और उसमें विद्यमान विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थ नाना प्रकार के नियंत्रक बलों से युक्त हों परन्तु वे लोक अयजमान रूप हों, तब भी पूर्वोक्तवत् शुनःशेप रश्मियां नाना प्रकार की छन्द रश्मियों को उत्पन्न करके पूर्वोक्त सभी क्रियाओं को सम्पादित करती हैं। यहाँ **'अयजमान'** शब्द का तात्पर्य **'पूर्वोक्त राजसूय यज्ञ न करने वाला'** है अर्थात् जिन लोकों में विभिन्न परमाणुओं का संलयन नहीं होता पुनरपि वे प्रकाशित लोक के रूप में विद्यमान होते हैं, ऐसे ही लोकों को यहाँ **अयजमान विजित राजा** कहा गया है। इन लोकों में **शुनःशेप** रश्मियों और उनसे उत्पन्न विभिन्न छन्द रश्मि आदि पदार्थों की पूर्वोक्त सभी क्रियाएं यथावत् होने से लोक में विद्यमान बाधक असुरादि रश्मियां नष्ट वा निष्कासित हो जाती हैं, जिससे लोक अपने स्वरूप को प्रकाशित बनाये रखता है।।+।।

हरिश्चन्द्र सोम रश्मियां **शुनःशेप** आख्यान के आख्याता अर्थात् **शुनःशेप** ऋषि रश्मियों को पूर्वोक्त अनेकों छन्द रश्मियां उत्पन्न करने के लिए प्रेरित करने वाली **विश्वामित्रसंज्ञक** होतारूप पंक्ति रश्मियों को एक सहस्र बार बलपूर्वक स्पन्दित करती हैं तथा पूर्वोक्त प्रतिगर्ता **जमदग्निसंज्ञक** अध्वर्युरूप त्रिष्टुप् एवं उष्णिक् रश्मियों को **हरिश्चन्द्र** रश्मियां एक सौ बार स्पंदित करती हैं। ये होता एवं अध्वर्युरूप दोनों ही प्रकार की रश्मियां तेजस्वी प्राण रश्मियों में प्रतिष्ठित होती हैं। इसी मत को **महर्षि आश्वलायन** ने भी व्यक्त करते हुए लिखा है-

"सहस्रमाख्यात्रे दद्यात्।"
"शतं प्रतिगरित्रे।"
"यथास्वमासने।" (आश्व.श्रौ.६.३.१४-१६)

होतारूप पूर्वोक्त **विश्वामित्र** रश्मियां विशेष व्यापक आशुगामिनी विभिन्न छन्दादि रश्मियों से उत्पन्न रमणीय श्वेतवर्णीय किरणों पर सवार होकर चलती हैं। होता एवं अध्वर्यु रूप इन रश्मियों को **हरिश्चन्द्र** सोम रश्मियां इस प्रकार की क्रियाओं के लिए प्रभावी बनाने में अपनी भूमिका निभाती हैं।।

जो लोक पुत्रकाम होते हैं अर्थात् {पुत्रः = पुत्ररूप सूर्य की उत्पत्ति करनेहारा (सं.वि. गृहाश्रमप्रकरण)} जो लोक आदित्य लोक के रूप में प्रतिष्ठित होने की ओर अग्रसर होते हैं, उनमें इस अध्याय में वर्णित सभी प्रकार की क्रियाएं और रश्मि आदि पदार्थ अवश्य उत्पन्न होते हैं, अन्यथा वे लोक आदित्य के स्वरूप को प्राप्त नहीं कर पाते।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्रीय भाग में विद्यमान अतिशक्तिशालिनी पंक्ति छन्द रश्मियों से उत्पन्न ५१ प्रकार की अल्पसामर्थ्य एवं अल्प विस्तार वाली रश्मियां तारों के केन्द्रीय भाग में ही विद्यमान रहती हैं। वे अन्य तीक्ष्ण रश्मियों के साथ उस भाग में ही संगत और प्रकाशित होती रहती हैं। तारों के केन्द्र में विभिन्न प्रकार की ऐसी क्रियाएं भी होती हैं, जो केन्द्रीय भाग में आने वाले सभी नाभिकों को शुद्ध रूप प्रदान करती हैं अर्थात् अनावश्यक पदार्थ केन्द्रीय भाग में प्रविष्ट नहीं हो पाते। उस समय केन्द्रीय भाग में भारी उथल-पुथल के साथ ध्वनि तरंगें भी उत्पन्न होती रहती हैं। विभिन्न छन्द रश्मियां प्राण रश्मियों में प्रतिष्ठित होकर निरन्तर तीव्रतर ऊर्जा को उत्पन्न करती हैं। इस प्रक्रिया में भाग लेने वाली सभी छन्द व प्राण रश्मियां **'ओम्'** रश्मि के साथ अवश्य ही संयुक्त रहती हैं। **'ओम्'** रश्मि ही सभी प्रकार की रश्मियों को बल और तेज प्रदान करते हुए परस्पर संगत और समन्वित भी रखती है। इस क्रिया में

विभिन्न रश्मियों में से निरन्तर **'ओम्'** रश्मियां उत्सर्जित और अवशोषित होती रहती हैं। **'ओम्'** रश्मि के बिना कोई भी रश्मि बल और विस्तार को प्राप्त नहीं कर सकती। उधर इन प्राण और छन्दादि रश्मियों के बिना किसी कण और क्वाण्टाज़् के निर्माण की कल्पना नहीं की जा सकती। डार्क एनर्जी और डार्क मैटर में भी **'ओम्'** रश्मियां विद्यमान होती हैं, किन्तु उनकी संयोजन व्यवस्था दृश्य पदार्थ की व्यवस्था से भिन्न होती है। ब्रह्माण्ड में कुछ ऐसे तारे भी विद्यमान होते हैं, जिनमें नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया नहीं होती पुनरपि वे अपने प्रकाशित रूप को बनाये रखते हैं। इन दोनों ही प्रकार के तारों में इस अध्याय में वर्णित सभी क्रियाएं कुछ भेद के साथ अवश्य होती हैं। विशेष जानकारी हेतु व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

ॐ इति ३३.६ समाप्तः ॐ

ॐ इति त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ॐ

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

34

molecule
atom
nucleus
H
C
proton
electron
nucleus
quark
neutrons
protons
quark
छन्द रश्मियां
सूक्ष्म प्राण एवं
मरुद् रश्मियां
मनस्तत्व
महत्तत्व
मूल प्रकृति
काल
सर्व प्रेरक व
नियंत्रक ईश्वर तत्व

।। ओ३म् ।।
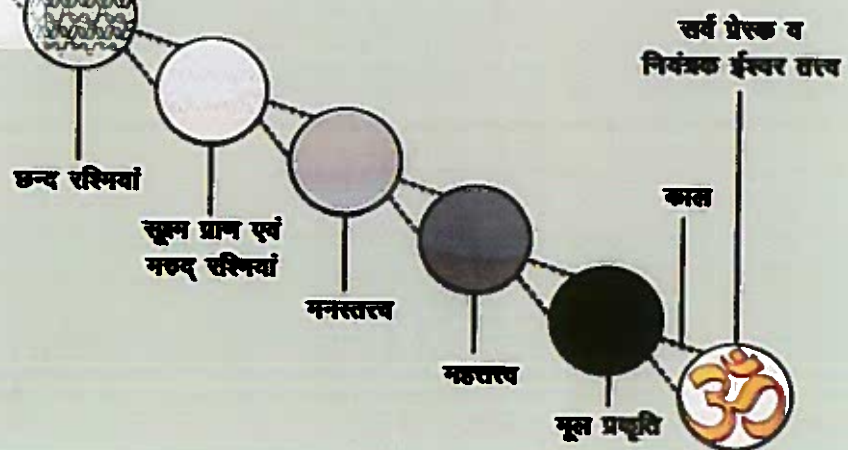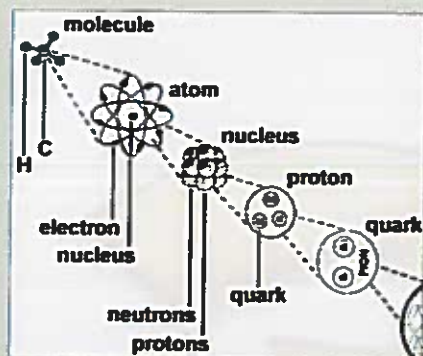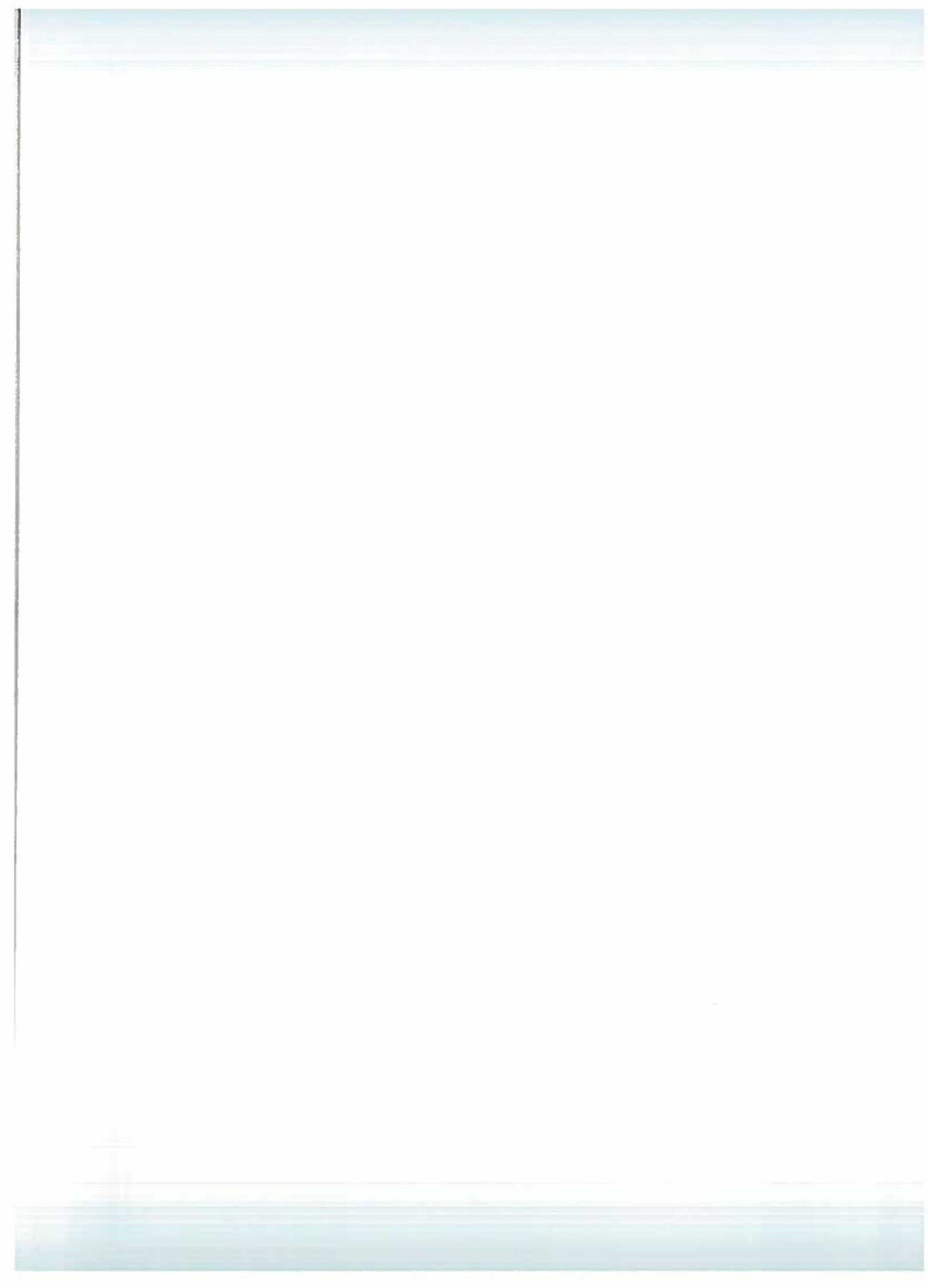
ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व।।

अनुक्रमणिका

३४.१	प्रजापति की चार सन्तान-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। हुताद एवं अहुताद पदार्थ। यज्ञ का क्षत्रिय से भयभीत होना और ब्राह्मण के निकट आना। सृष्टि प्रक्रिया के प्रारम्भ होने का विज्ञान-डार्क मैटर, डार्क एनर्जी एवं गुरुत्वाकर्षण बल। तारों की उत्पत्ति का विज्ञान।	2104
३४.२	ब्राह्मण, क्षत्रियों का देवयजन। तारों के निर्माण का विज्ञान।	2109
३४.३	इष्टापूर्तस्यापरिज्यानी होम। तारों के केन्द्रीय भाग का विज्ञान।	2112
३४.४	सौजात ऋषि का मत। तारों के केन्द्रीय भाग का विज्ञान।	2114
३४.५	क्षत्रिय पदार्थों का आहवनीय स्थान। तारों के केन्द्रीय भाग का विज्ञान।	2117
३४.६	दीक्षित क्षत्रिय पदार्थ और उनकी होम प्रक्रिया। दो कणों के संयोग और वियोग का विज्ञान। इस प्रक्रिया में दोनों ही कणों के स्वरूप का संरक्षण।	2121
३४.७	विभिन्न सूक्ष्म कणों और तरंगों के संयोग-वियोग की प्रक्रिया और स्वरूप का सूक्ष्म विज्ञान।	2124
३४.८	विभिन्न पदार्थों के संयोग में ब्रह्मरूप पदार्थों का अनिवार्य संयोग। सूक्ष्म कणों के संयोग-वियोग और स्वरूप का विज्ञान।	2127

अथ ३४.१ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. प्रजापतिर्यज्ञमसृजत यज्ञं सृष्टमनु ब्रह्मक्षत्रे असृज्येतां; ब्रह्मक्षत्रे अनु द्वय्यः प्रजा असृज्यन्त हुतादश्चाहुतादश्च; ब्रह्मैवानु हुतादः क्षत्रमन्वहुताद एता वै प्रजा हुतादो यद्ब्राह्मणा, अथैता अहुतादो यद्राजन्यो वैश्यः शूद्रः।।
ताभ्यो यज्ञ उदक्रामत् तं ब्रह्मक्षत्रे अन्वैतां, यान्येव ब्रह्मण आयुधानि तैर्ब्रह्मान्वैद्यानि क्षत्रस्य तैः क्षत्रमेतानि वै ब्रह्मण आयुधानि यद्यज्ञायुधान्यथैतानि क्षत्रस्याऽऽयुधानि यदश्वरथः कवच इषुधन्व।।
तं क्षत्रमनन्वाप्य न्यवर्तताऽऽयुधेभ्यो ह स्मास्य विजमानः पराङेवैत्यथैनं ब्रह्मान्वैत्, तमाप्नोत्, तमाप्त्वा परस्तान्निरुध्यातिष्ठत् स आप्तः परस्तान्निरुद्धस्तिष्ठञ्ज्ञात्वा स्वान्यायुधानि ब्रह्मोपावर्तत; तस्माद्धाप्येतर्हि यज्ञो ब्रह्मण्येव ब्राह्मणेषु प्रतिष्ठितः।।
अथैनत् क्षत्रमन्वागच्छत्तदब्रवीदुप माऽस्मिन् यज्ञे ह्वयस्वेति; तत् तथेत्यब्रवीत्; तद्वै निधाय स्वान्यायुधानि ब्रह्मण एवाऽऽयुधैर्ब्रह्मणो रूपेण ब्रह्म भूत्वा यज्ञमुपावर्तस्वेति, तथेति, तत्क्षत्रं निधाय स्वान्यायुधानि ब्राह्मण एवाऽऽयुधैर्ब्रह्मणो रूपेण ब्रह्म भूत्वा यज्ञमुपावर्तत; तस्माद्धाप्येतर्हि क्षत्रियो यजमानो निधायैव स्वान्यायुधानि ब्रह्मण एवाऽऽयुधैर्ब्रह्मणो रूपेण ब्रह्म भूत्वा यज्ञमुपावर्तते।।१।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रकरण को दृष्टिगत रखते हुए ग्रन्थकार इस प्रक्रिया के प्रारम्भ की ओर लौटते हुए कहते हैं कि प्रजापति परमात्मा सर्गप्रक्रिया विशेषकर, आदित्य लोकों के निर्माण की प्रक्रिया को प्रारम्भ करता है, तब वह सर्वप्रथम इस सर्ग प्रक्रिया के अनुकूल ब्रह्म और क्षत्र संज्ञक दो प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करता है, किंवा इन दोनों ही प्रकार के पदार्थों को सर्ग प्रक्रियार्थ विविध प्रकार से प्रेरित करता है। {ब्रह्म = अथामूर्त्तं वायुश्चान्तरिक्षं च (श.१४.५.३.४), अथामूर्त्तं प्राणश्च यश्चायमन्तराकाशः (श.१४.५.३.८), तस्य मन एव ब्रह्मा (कौ.ब्रा.१७.७), ब्रह्म वाक् (जै.ब्रा.१.८२), ब्रह्मैता व्याहृतयः (तै.सं.१.६.१०.२), वाग्वै ब्रह्म (ऐ.६.३; जै.ब्रा.१.१०२; श.२.१.४.१०), ब्रह्म वै गायत्री (मै.४.७.३; ऐ.४.११; कौ.ब्रा.३.५; जै.ब्रा.१.२६३), ओमिति ब्रह्म (तै.आ.७.८.१; तै.उ.१.८.१)। क्षत्र = क्षत्रं वै त्रिष्टुप् (कौ.ब्रा.७.१०; जै.ब्रा.१.२६३), ब्रह्म वा अग्निः, क्षत्रं सोमः (कौ.ब्रा.६.५), क्षत्रं वा अनुष्टुप् (ऐ.आ.१.१.३)} इसका तात्पर्य यह है कि इस निर्माण प्रक्रिया में सर्वप्रथम ब्रह्म तत्त्व की उत्पत्ति होती है अर्थात् मन एवं 'ओम्' रश्मि रूपी वाक् के पश्चात् प्राण, अपान एवं सूत्रात्मा रश्मियां, पुनः भूरादि व्याहृति रश्मियां एवं छन्दों में गायत्री छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है। इस अवस्था को सृष्टि का प्रातःसवन भी कहते हैं। इसलिए कहा है- "ब्रह्म वै प्रातःसवनम्" (कौ.ब्रा.१६.४)। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत ही वाद में अग्नि तत्त्व की उत्पत्ति होती है। इसी कारण कहा है-

"अग्निर्वै प्रातःसवनम्" (कौ.ब्रा.१२.६)
"आग्नेयं वै प्रातस्सवनम्" (जै.उ.१.१२.३.२)।

सृष्टि की यह अवस्था अव्यक्तवत् होती है, इसी कारण कहा गया है-

"अनिरुक्तं प्रातःसवनम्" (तां.१८.६.७)

इस प्रथम तत्त्व ब्रह्म के कथन के पश्चात् दूसरे तत्त्व, क्षत्र के विषय में लिखते हैं। इस क्षत्ररूपी

तत्त्व के अन्तर्गत अनेक प्रकार के पदार्थों का समावेश होता है। इस चरण में सोम, इन्द्र तत्त्व, अनुष्टुप् तथा त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। ये पदार्थ ब्रह्मरूपी उपर्युक्त पदार्थों के पश्चात् उत्पन्न होते हैं, इसलिए कहा गया है-

"ब्रह्म हि पूर्वं क्षत्रात्" (तां.११.१.२)

ये क्षत्र संज्ञक पदार्थ ब्रह्म संज्ञक पदार्थों से ही उत्पन्न होते हैं, इसलिए महर्षि तित्तिर का कथन है-

"ब्रह्मणः क्षत्रं निर्मितम्" (तै.ब्रा.२.८.८.६)

इसी प्रकार महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है-

"सैषा क्षत्रस्य योनिर्यद् ब्रह्म" (श.१४.४.२.२३)

यहाँ विज्ञ पाठक स्वयं इस बात पर विचार कर सकते हैं कि ब्रह्मरूपी किस पदार्थ से क्षत्ररूपी किस पदार्थ की उत्पत्ति हो सकती है, पुनरपि हम इतना स्पष्ट अवश्य करना चाहते हैं कि ब्रह्मरूप जिस अग्नि पदार्थ की चर्चा की गयी है, वह क्षत्ररूप सोम पदार्थ से भी सूक्ष्म तत्त्व है। इस चरण को माध्यन्दिन सवन भी कहते हैं। यह चरण ब्रह्मरूप प्रातःसवन की अपेक्षा व्यक्त अर्थात् मूर्तरूप होता है। ब्रह्मरूपी पदार्थ बलरूप प्रेरक होते हैं और क्षत्ररूपी पदार्थ विशेष क्रियाशील होते हैं। इनमें क्रियाओं की तीक्ष्णता अधिक होती है, इसी आशय से महर्षि याज्ञवल्क्य ने लिखा है-

"अभिगन्तैव ब्रह्म कर्त्ता क्षत्रियः" (श.४.१.४.१)

इस चरण में क्रियाशीलता के साथ-२ व्यक्त तेज की भी वृद्धि होती है एवं विभिन्न मरुद् व छन्द रश्मियां परस्पर नियंत्रित और संगत भी होने लगती हैं।

इन दोनों ही प्रकार के पदार्थों की उत्पत्ति के पश्चात् दो प्रकार के पदार्थ उत्पन्न होते हैं, जिनमें से ब्रह्मसंज्ञक पदार्थों के तत्काल पश्चात् ही ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ की उत्पत्ति होती है-

"ब्राह्मणा ह वै विप्राः" (जै.ब्रा.३.८४)

"ब्राह्मणो व्रतभृत्" (तै.सं.१.६.७.२; मै.१.४.५; काठ.३१.१५)

"ब्राह्मणो हि रक्षसामपहन्ता" (श.१.१.४.६)

इन वचनों का तात्पर्य यह है कि ब्रह्मरूप पदार्थों से उत्पन्न और उनका अनुगमन करने वाले ये पदार्थ क्षत्रिय वा क्षत्ररूप पदार्थों में विविध प्रकार से व्याप्त होकर नाना प्रकार की क्रियाओं को पुष्ट करते तथा आसुर पदार्थों को नष्ट करते हैं। ये पदार्थ आग्नेयरूप ही होते हैं तथा इन पदार्थों को ग्रन्थकार ने 'हुताद' कहा है, क्योंकि ये विभिन्न हवियों का भक्षण करते हैं। इसका आशय यह है कि ये पदार्थ मास रश्मियों को अपने साथ संयुक्त करके उनके द्वारा नाना प्रकार की रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को अवशोषित वा आकर्षित करने में सक्षम होते हैं। इनके पश्चात् क्षत्ररूप पदार्थों से राजन्य रूप पदार्थों की उत्पत्ति उनके तुरन्त पश्चात् होती है। ये पदार्थ इन्द्र तत्त्व, त्रिष्टुप एवं अनुष्टुप् छन्द रश्मियों से युक्त होने के कारण तीव्र तेजस्वी होते हैं। इनको ग्रन्थकार ने 'अहुताद' कहा है। इससे संकेत मिलता है कि ये पदार्थ मास रश्मियों का साक्षात् अवशोषण नहीं करते, बल्कि जहाँ भी अवशोषण वा संयोजन करना आवश्यक होता है, ये ब्राह्मण नामक पदार्थों के माध्यम से ही कर सकते हैं।

इन दोनों प्रकार के पदार्थों की उत्पत्ति के पश्चात् वैश्य और शूद्र संज्ञक पदार्थों की उत्पत्ति होती है। {वैश्यः = जगतीछन्दा वै वैश्यः (तै.ब्रा.१.१.६.७), जागतो वै वैश्यः (ऐ.१.२८), वैश्वदेवो हि वैश्यः (तै.ब्रा.२.७.२.२), विड् वै यवः (श.१३.२.६.८), विट् तृतीयसवनम् (कौ.ब्रा.१६.४)} इसका तात्पर्य यह है कि सर्ग के इस तृतीय चरण = तृतीयसवन में जगती छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इसके साथ ही सभी प्रकार के देव पदार्थों की उत्पत्ति होकर संयोग-वियोग आदि की क्रियाएं भी तीव्र होने लगती हैं। विट् संज्ञक पदार्थ अर्थात् विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ भी 'अहुताद' कहलाते हैं, क्योंकि ये भी साक्षात् मास रश्मियों वा अन्य परमाणु आदि पदार्थों का भक्षण वा अवशोषण नहीं करते। इस समय विभिन्न छन्द रश्मियां सूक्तों का रूप भी धारण करने लगती हैं। इसलिए ग्रन्थकार ने अन्यत्र कहा है-

"विट् सूक्तम्" (ऐ.२.३३, ३.१६)

यहाँ ब्रह्म, क्षत्र और विट् नामक अन्य पदार्थों की भी चर्चा करना प्रासंगिक है। पूर्व में अनेकत्र वर्णित त्रिवृत् स्तोम रश्मियों को ब्रह्म कहते हैं, इसी कारण कहा है-

"ब्रह्म वै त्रिवृत्" (तां.२.१६.४)

पञ्चदश स्तोम रश्मियों को क्षत्र कहते हुए ग्रन्थकार ने कहा है-

"क्षत्रं पंचदशः" (ऐ.८.४)

उधर सप्तदश स्तोम को विट् कहते हुए कहा गया है-

"विट् सप्तदशः" (तां.१८.१०.६; जै.ब्रा.२.३२)

उधर दसवें अध्याय में आहाव संज्ञक रश्मियों को ब्रह्म, निविद् संज्ञक रश्मियों को क्षत्र कहा है और विट् संज्ञक सूक्त के विषय में तो हम अवगत हो ही चुके हैं।

इन सबकी उत्पत्ति क्रमशः ही होती है। अब चौथे पदार्थ को ग्रन्थकार ने शूद्र कहा है। {शूद्रः = असुर्यः शूद्रः (तै.ब्रा.१.२.६.७), आनुष्टुभः शूद्रः (जै.ब्रा.२.१०२), तपो वै शूद्रः (श.१३.६.२.१०), एकविंश स्तोममनु शूद्रः (जै.ब्रा.२.३२)} यह पदार्थ तीव्ररूप से तप्त ज्वालारूप होता है अर्थात् इस चरण में विभिन्न पदार्थ तीव्र संतप्त अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। इन पदार्थों में अनुष्टुप् छन्द रश्मियां और एकविंश स्तोम रश्मियां प्रधानता से विद्यमान होती हैं। जैसा कि हम पूर्व में अनेकत्र लिख चुके हैं कि एकविंश स्तोम रश्मियां आदित्य रूप को प्राप्त कराती हैं। इसी कारण ग्रन्थकार ने कहा है-

"एकविंशो वै प्रजापतिर्द्वादशमासाः पञ्चर्त्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंशः" (ऐ.१.३०)

"शौद्रो वर्ण एकविंशः" (ऐ.८.४)

इन वचनों से यह स्पष्ट होता है कि पदार्थ की शूद्ररूप अवस्था के उत्पन्न होने पर ही आदित्य लोक के निर्माण की प्रक्रिया पूर्णता की ओर अग्रसर होती है। शूद्र को 'असुर्य्य' कहने से यह संकेत मिलता है कि सभी आदित्य आदि लोक असुर पदार्थ द्वारा ही धारण किये जाते हैं।।

पूर्वोक्त प्रंसग को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि जब आदित्य लोक के निर्माण की प्रक्रिया किसी कारण से मध्य में ही बन्द वा मन्द हो जाती है, तब पूर्वोक्त ब्रह्म एवं क्षत्र संज्ञक दोनों ही पदार्थ इस सर्ग प्रक्रिया को पुनः संचालित वा समृद्ध करने के लिए अनुकूलतापूर्वक सम्पूर्ण पदार्थ में व्याप्त होने लगते हैं। दोनों ही प्रकार के पदार्थ अपने-२ आयुधों को लेकर सक्रिय हो उठते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये दोनों पदार्थ अपने-२ अंगभूत साधनों के साथ सक्रिय होते हैं। इस क्रम में पूर्वोक्त ब्रह्म संज्ञक पदार्थ अपने अंगभूत मन, वाक्, प्राणापान भूरादि व्याहृतियां और गायत्री छन्दादि रश्मियों के साथ सक्रिय और व्याप्त होने लगता है। अन्य अग्नि आदि पदार्थ भी सक्रिय होने लगते हैं। महर्षि तित्तिर ब्रह्मसंज्ञक पदार्थ के यज्ञ आयुधों के विषय में लिखते हैं- "यो वै दश यज्ञायुधानि वेद मुखतोऽस्य यज्ञः कल्पते स्फ्यश्च कपालानि चाग्निहोत्रहवणी च शूर्पं च कृष्णाजिनं च शम्या चोलूखलं च मुसलं च दृषच्चोपला चैतानि वै दश यज्ञायुधानि" (तै.सं.१.६.८.२-३)

इसका आशय यह है कि ब्रह्मसंज्ञक पदार्थ के निम्नलिखित दस साधन होते हैं और उनका स्वरूप निम्नानुसार होता है।

(१) स्फ्य = इस पदार्थ के विषय में ऋषियों का कथन है-

"वज्रो वै स्फ्यः" (तै.सं.२.१.५.७; मै.२.१.६;४.१.१०; क.३६.१; तै.ब्रा.१.७.१०.५; श.१.२.५.२०)

इससे संकेत मिलता है कि विभिन्न प्रकार की वज्र रश्मियां ही 'स्फ्य' कहलाती हैं और वे ब्रह्म संज्ञक पदार्थ का प्रथम साधन होती हैं। यह शब्द "स्फायी वृद्धौ" धातु से निष्पन्न होता है, इस कारण ये वज्र रश्मियां व्यापक होती चली जाती हैं।

(२) कपाल = विभिन्न प्राण रश्मियों की पालना और रक्षणा शक्ति ही कपाल कहलाती है।

(३) अग्निहोत्रहवणी = लौकिक यज्ञ में प्रयुक्त स्रुवा की भाँति काम करने वाली विभिन्न रश्मियां, विशेषकर मास रश्मियां इस श्रेणी में आती हैं।

(४) शूर्प = {शूर्प = शृणाति हिनस्तीति शूर्पम् (उ.को.३.२६)} इसका आशय है कि भेदक शक्तिसम्पन्न रश्मियां शूर्प कहलाती हैं।

(५) कृष्णाजिन = अजेय आकर्षण बलों से युक्त विभिन्न रश्मियां कृष्णाजिन कहलाती हैं। ये संगमनीय गुणों से युक्त होती हैं। इनके विषय में कहा गया है-

"तयोर् (अहोरात्रयोः) वा एतद्रूपः यत् कृष्णाजिनस्य"। (मै.३.६.६) इससे संकेत मिलता है कि प्राण और अपान रश्मियां ही कृष्णाजिन कहलाती हैं।

(६) शम्या = विभिन्न नियंत्रित वायु रश्मियां शम्या कहलाती हैं।

(७) उलूखल = आकाश रश्मियां उलूखल कहलाती हैं।
(८) मूसल = सम्पीडक वलों से युक्त रश्मियां मूसल कहलाती हैं।
(९) दृषद = विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को विदीर्ण करने वाली रश्मियां दृषद कहलाती हैं।
(१०) उपल = {उपल = उपल मेघनाम (निघं.१.१०)} विभिन्न सेचक बलों से युक्त रश्मिसमूह उपल कहलाते हैं।

इस प्रकार ब्रह्म संज्ञक पदार्थ के ये दस साधन रूप पदार्थ हैं, जिनके साथ ब्रह्मसंज्ञक पदार्थ सर्ग प्रक्रिया को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। क्षत्र संज्ञक पदार्थ के आयुधरूप साधन ग्रन्थकार ने निम्न प्रकार दर्शाये हैं और उनका स्वरूप भी निम्न प्रकार है-
(१) अश्व = अति व्यापक वल और वेग से युक्त रश्मियां अश्व कहलाती हैं।
(२) रथ = तीक्ष्ण वज्र रश्मियां ही रथ कहलाती हैं।
(३) कवच = इस विषय में महर्षि यास्क का कथन है-

"कु अञ्चितं भवति, काञ्चितं भवति, कायेऽञ्चितं भवतीति वा" (नि.५.२५) अर्थात् पदार्थ में विद्यमान ऐसी रश्मियां, जो कुटिल गतियों से युक्त होती हैं।
(४) इषु = {इषुः = ईषतेर्गतिकर्मणो वधकर्मणो वा (नि.९.१८), वीर्यं वा ऽइषुः (श.६.५.२.१०)} तीव्र तेज और गति से युक्त हिंसक रश्मियां इषु कहलाती हैं।
(५) धन्व = {धन्व = अन्तरिक्षनाम (निघं.१.३), धन्वतेर्गतिकर्मणः, वधकर्मणो वा धन्वन्त्यस्माद् इषवः (नि.९.१६), वज्रो वै धनुः (मै.४.४.३)} इसका तात्पर्य है कि तीक्ष्ण हिंसक वज्र रश्मियों से युक्त आकाश रश्मियां धन्व वा धनु कहलाती हैं।

इस पांच प्रकार के साधनों के साथ क्षत्ररूप पदार्थ सर्ग प्रक्रिया को प्रारम्भ वा तीव्र करने का प्रयास करते हैं।।

जव क्षत्ररूपी पदार्थ उपर्युक्त पांच आयुधों वा साधनों को लेकर सर्ग प्रक्रिया को प्रारम्भ वा तीव्र करने का प्रयास करते हैं, तव अन्तरिक्षस्थ पदार्थ क्षत्र संज्ञक पदार्थ की साधनभूत तीक्ष्ण और हिंसक रश्मियों के प्रभाव से कम्पायमान होने लगते हैं, जिससे सम्पूर्ण पदार्थ में तीव्र विक्षोभ और विखण्डन होने लगता है। इस कारण वह क्षत्ररूप पदार्थ संयोगादि क्रियाओं में प्रवृत्त नहीं हो पाता, वल्कि और भी वियुक्त, विखण्डित और प्रसृत होने लगता है। इसका अर्थ यह है कि कोई भी सृजन प्रक्रिया क्षत्र संज्ञक पदार्थों से अनायास प्रारम्भ नहीं हो सकती। यदि ऐसा कभी और कहीं होने भी लगे, तो सर्ग प्रक्रिया का विध्वंस ही हो जाएगा। इसी को यहाँ यज्ञ का भयभीत होकर भागना कहा गया है। जव पूर्वोक्त ब्रह्म संज्ञक पदार्थ सर्ग प्रक्रिया में अपने पूर्वोक्त साधनों के साथ प्रवृत्त होते हैं, तो वे ब्रह्म संज्ञक पदार्थ सभी पदार्थों में व्याप्त होकर उन्हें संगत करने लगते हैं। वे ब्रह्म संज्ञक पदार्थ विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों के पलायन मार्ग को अवरुद्ध कर देते हैं, जिससे वे पदार्थ ब्रह्म संज्ञक पदार्थों की ओर आकृष्ट होने लगते हैं। इस कार्य में ब्रह्म संज्ञक पदार्थों के साधनरूप पदार्थ ही उन परमाणु आदि पदार्थों को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। इस कारण सर्वत्र ही संयोगादि प्रक्रिया ब्रह्म संज्ञक पदार्थों में ही प्रतिष्ठित होती है। यहाँ तात्पर्य यह है कि संयोगादि प्रक्रिया का मूल आधार ये ब्रह्म संज्ञक पदार्थ ही होते हैं। उन्हीं पर आधृत यह कर्म अन्य किसी के साथ संयुक्त होता है, न कि ब्रह्म संज्ञक पदार्थ के अभाव में ऐसा होता है। मन, वाक्, प्राथमिक प्राण, व्याहृति व गायत्री छन्द ही सर्गोत्पत्ति को प्रारम्भ करने वाले पदार्थ हैं। यहाँ उसी प्रारम्भिक क्रम की चर्चा है। यहाँ संगतीकरण की प्रक्रिया ब्रह्म संज्ञक पदार्थों में भी ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों में विशेष होती है। यहाँ ब्रह्म और क्षत्र का वर्गीकरण सापेक्ष भी मानना चाहिए, कार्य-कारण एवं अन्न-प्राण आदि की भाँति।।

इसके पश्चात् ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों ही प्रकार के पदार्थों में काल्पनिक संवाद के द्वारा आगे की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है। इस संवाद को डॉ. सुधाकर मालवीय ने निम्न प्रकार दर्शाया है- "इस {ब्राह्मण द्वारा यज्ञ की प्राप्ति} के वाद इस {ब्राह्मणजाति} का क्षत्रियजाति ने अनुगमन किया। उन्होंने उन {ब्राह्मणजाति} के प्रति कहा - 'हे ब्राह्मण, तुम मुझ {क्षत्रिय जाति} को इस यज्ञ में संयोजित करो। 'ब्राह्मणजाति ने कहा - वैसा ही हो। {किन्तु} हे क्षत्रिय, उस {यज्ञ की प्राप्ति} के लिए तुम्हें {धनुष आदि} आयुध कहीं रख कर ब्राह्मणजाति के योग्य स्फ्य, कपाल आदि लेकर शान्ति और श्रद्धा से युक्त रूप एवं

वेष में ब्राह्मण सदृश होकर यज्ञ के पास आओ।'' 'ठीक है।' ऐसा कहकर उन क्षत्रियजाति ने अपने {धनुष आदि} आयुधों को छोड़कर ब्राह्मण जाति के ही {स्फ्य, कपाल आदि} आयुधों से युक्त होकर ब्राह्मण के {शान्त} रूप में ब्राह्मण होकर यज्ञ को प्राप्त किया। {सृष्टि के आदि में इस प्रकार होने के कारण} इसलिए आज भी क्षत्रिय यजमान अपने आयुधों को रखकर ब्राह्मणों के {स्फ्य, कपाल आदि} आयुधों से युक्त होकर ब्राह्मण जाति के वेष में ब्राह्मण होकर यज्ञ का अनुष्ठान करता है''।

इस संवाद का आशय इस प्रकार है कि जब ब्रह्म एवं ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ सर्ग प्रक्रिया का प्रारम्भ कर देते हैं, तब क्षत्र एवं क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ भी ब्रह्म एवं ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों का अनुगमन करके सर्ग प्रक्रिया में भाग लेने का प्रयास करते हैं। फिर ये पदार्थ ब्रह्म वा ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों के साथ संगत होकर अपने साधनरूप पदार्थों की अतितीक्ष्णता को न्यून कर लेते हैं। इसका आशय है कि उनकी संगति से इनकी विध्वंसक तीक्ष्णता न्यून हो जाती है। इस समय ब्रह्म और क्षत्र संज्ञक वा ब्राह्मण एवं क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों के युग्म बनने लगते हैं, मन-वाक्, इन्द्र-अग्नि, प्राण-वाक्, परमाणु-आकाश, त्रिष्टुप्-गायत्री आदि अनेकों प्रकार के युग्म बनकर तीक्ष्ण पदार्थों की तीक्ष्णता कम होकर समुचित बल एवं गतिशीलता प्राप्त होती है। यह प्रक्रिया सृष्टि के प्रारम्भ में एवं सृष्टिकाल में कभी भी इसी प्रकार के युग्मों के उत्पन्न होने से ही सम्पन्न होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- महाप्रलय काल के पश्चात् जब सृष्टि प्रक्रिया का प्रारम्भ होता है, तब मन, प्राण एवं छन्दादि रश्मियों की उत्पत्ति किस प्रकार होती है, यह हम इस ग्रन्थ में पूर्व में लिख चुके हैं। यहाँ उसी प्रकरण को अन्य प्रकार से उपस्थित किया गया है। सृष्टि प्रक्रिया का प्रारम्भ उत्पन्न पदार्थों में सबसे सूक्ष्म पदार्थ महत्, अहंकार अथवा मनस्तत्त्व एवं **'ओम्'** छन्द रश्मि से होता है। **'ओम्' छन्द रश्मि ईश्वर तत्त्व द्वारा इस सृष्टि में उत्पन्न सबसे सूक्ष्म कम्पन है।** सर्वप्रथम संयोगादि प्रक्रिया इन पदार्थों में ही प्रारम्भ होती है। उसके पश्चात् यह प्रक्रिया प्राण रश्मियों में उत्पन्न होती है। छन्द रश्मियों में गायत्री छन्द रश्मि सर्वप्रथम उत्पन्न होती है। इन पदार्थों को **'ब्रह्म'** वा **'ब्राह्मण'** भी कहा गया है। ये सभी पदार्थ डार्क एनर्जी आदि सभी बाधक रश्मियों से मुक्त होते हैं। इन सबकी पारस्परिक क्रियाओं से सूक्ष्म परन्तु व्यापक भेदक शक्तिसम्पन्न रश्मियां उत्पन्न होती हैं, **इन्हीं के द्वारा आकाश तत्त्व की भी उत्पत्ति होती है। इसी समय ही विद्युत् के सबसे सूक्ष्म और प्रारम्भिक रूप की उत्पत्ति होती है।** सूक्ष्म और सबसे कम ऊर्जा वाली विद्युत् चुम्बकीय तरंगें भी इन्हीं पदार्थों से उत्पन्न होती हैं। यह पदार्थ की ऐसी अवस्था होती है, जिसको किसी वैज्ञानिक तकनीक के द्वारा नहीं जाना जा सकता। इस पदार्थ से अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों और तीक्ष्ण तेजस्वी विद्युत् की उत्पत्ति होती है। इस समय प्रकाश व ऊष्मा रश्मियों की भी उत्पत्ति होने लगती है। इन पदार्थों को **'क्षत्रिय'** वा **'क्षत्र'** कहा जाता है। इस समय कुछ सूक्ष्म मूल कणों की भी उत्पत्ति होने लगती है। इन क्षत्रिय संज्ञक कणों वा विकिरणों की उत्पत्ति पूर्वोक्त ब्रह्म वा ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों से होती है और ये पदार्थ उनका ही अनुगमन करते हैं। विभिन्न मूलकणों और तीव्र वा मध्यम ऊर्जा वाली विद्युत् चुम्बकीय तरंगों में विभिन्न प्रकार की अन्योऽन्य क्रियाएं ब्रह्मरूप सूक्ष्म पदार्थों के माध्यम से ही सम्पन्न होती हैं। इन दोनों ही प्रकार के पदार्थों की उत्पत्ति के पश्चात् जगती छन्द रश्मियां एवं अन्य मूल कण, नाभिक एवं एटम्स उत्पन्न होने लगते हैं। इस समय ही विभिन्न छन्द रश्मियां सूक्तरूप रश्मि समूहों के रूप में प्रकट होने लगती हैं और समूचे ब्रह्माण्ड में अनेकत्र कॉस्मिक मेघों का निर्माण होने लगता है। पदार्थ की इस अवस्था को **'वैश्य'** कहा जाता है। इसके पश्चात् इन तीनों ही पदार्थों के योग से पदार्थ की चौथी **'शूद्ररूप'** अवस्था उत्पन्न होती है, जिसमें पदार्थ तीव्र ज्वालाओं से युक्त होकर अन्ततः तारों के रूप में प्रकट होता है। **ये सभी तारे एवं अन्य ग्रह आदि लोक डार्क मैटर एवं डार्क एनर्जी के द्वारा धारण किये जाते हैं। इसके साथ ही गुरुत्व बल की विशेष भूमिका होती है।** केवल गुरुत्व बल इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को धारण नहीं कर सकता, क्योंकि इसके प्रबल, प्रबलतर एवं प्रबलतम होने से सम्पूर्ण पदार्थ एक विशालतम पिण्ड के रूप में परिवर्तित हो सकता है। इसको रोकने के लिए डार्क मैटर एवं डार्क एनर्जी का होना अनिवार्य है।।

॥ इति ३४.१ समाप्तः ॥

꧁ अथ ३४.२ प्रारभ्यते ꧂

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. अथातो देवयजनस्यैव याच्ञस्तदाहुर्यद्ब्राह्मणोराजन्यो वैश्यो दीक्षिष्यमाणः क्षत्रियं देवयजनं याचति; कं क्षत्रियो याचेदिति।।
दैवं क्षत्त्रं याचेदित्याहुरादित्यो वै दैवं क्षत्त्रमादित्य एषां भूतानामधिपतिः।।
स यदहर्दीक्षिष्यमाणो भवति, तदहः पूर्वाह्ण एवोद्यन्तमादित्यमुपतिष्ठेतेदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमम्। देव सवितर्देवयजनं मे देहि देवयज्याया इति देवयजनं याचति।।
स यत्तत्र याचित उत्तरां सर्पत्यों तथा ददामीति हैव तदाह।।
तस्य ह न काचन रिष्टिर्भवति, देवेन सवित्रा प्रसूतस्योत्तरोत्तरिणीं ह श्रियमश्नुतेऽश्नुते ह प्रजानामैश्वर्यमाधिपत्यं य एवमुपस्थाय याचित्वा देवयजनमध्यवसाय दीक्षते क्षत्त्रियः सन्।।२।।

व्याख्यानम्- अब देवयजन की याचना के विषय में लिखते हैं {याचना = (टुयाचृ याच्ञायाम्। याचति वधकर्मा - निघं.२.१९)। दीक्षितः = यज्ञाद् ह वा एष पुनर्जायते यो दीक्षते (ऐ.७.२२), यदह दीक्षते तद्विष्णुर्भवति (श.३.२.१.१७), देवगर्भो वा एष यद्दीक्षितः (कौ.ब्रा.७.२), गर्भो वा एष भवति यो दीक्षते (श.३.२.१.६), एष (आदित्यः) दीक्षितः (गो.पू.२.१)} अर्थात् विभिन्न देव पदार्थों का यजन कहाँ और कैसे होता है, इस विषय में यहाँ चर्चा की गयी है। कौन-कौन से पदार्थ परस्पर संगत होते हैं और वे कैसे बाधक पदार्थों का नाश करते हैं, इस विषय को प्रस्तुत करते हुए ग्रन्थकार लिखते हैं कि पूर्वोक्त ब्राह्मण, राजन्य एवं वैश्य नामक पदार्थ दीक्षित क्षत्रियरूप पदार्थ की ओर आकृष्ट व प्रवाहित होने लगते हैं। यहाँ आदित्य लोक का गर्भरूप केन्द्रीय भाग, जिसमें नाना प्रकार के संयोजनादि कर्म संपादित होते रहते हैं, दीक्षित होता हुआ क्षत्रिय कहलाता है, क्योंकि इसी के अन्दर नाना प्रकार के देव परमाणुओं का जन्म और धारण होता है। जब विभिन्न पदार्थ इसकी ओर प्रवाहित होते हैं, तब उस केन्द्रीय भाग में विद्यमान तीक्ष्ण तेज और बलयुक्त पदार्थ ही असुरादि बाधक रश्मियों का नाश करते हैं, जिससे बाहर से आने वाले विभिन्न पदार्थ निर्बाधरूप से संयजन करने में समर्थ होते हैं। यहाँ प्रश्न यह उपस्थित किया गया है कि विभिन्न पदार्थ इस केन्द्रीय भाग की कामना करते हैं परन्तु केन्द्रीय भागस्थ क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ किसकी कामना करता है? साथ ही वह किसके द्वारा देवयजन प्रक्रिया को सम्पादित करता और अनिष्ट असुरादि रश्मियों को नष्ट वा नियंत्रित करता है?।।

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि केन्द्रीय भागस्थ क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ दिव्य क्षत्रियरूप पदार्थ की कामना करते हैं। यहाँ आदित्य को ही दिव्य क्षत्रिय कहा गया है। {क्षत्रम् = मित्रः क्षत्रं क्षत्रपतिः (तै.ब्रा.२.५.७.४; श.११.४.३.११), क्षत्रं वरुणः (कौ.ब्रा.७.१०; श.४.१.४.१; गो.उ.६.७), अपरिमितो वै क्षत्रियः (ऐ.८.२०)} इसका आशय यह है कि आदित्यरूप १२ मास रश्मियां एवं कारणरूप प्राथमिक प्राण रश्मियां, विशेषकर प्राण, अपान, व्यान, समान एवं उदान रश्मियां {आदित्यः = त्रैष्टुभो वा एष य एष तपति (कौ.ब्रा.२५.४), त्रैष्टुब्जागतो वा आदित्यः (तां.४.६.२३), जगती छन्द आदित्यो देवता श्रोणी (श.१०.३.२.६)} एवं त्रिष्टुप्, जगती आदि छन्द रश्मियां ही केन्द्रीय भागस्थ सम्पूर्ण पदार्थ को ऐसा निरापद बंधक बल प्रदान करती हैं, जो न केवल बाहरी पदार्थ को निरन्तर अपनी ओर आकृष्ट करता है, अपितु आभ्यान्तर पदार्थ को भी परस्पर दृढ़ता से बांधे रखता है। इस कारण यह पदार्थ ही केन्द्रीय भाग के साथ-२ सम्पूर्ण आदित्य लोक एवं अन्य लोकों को भी अपने साथ दृढ़ता से बांधे रखता

है। इसी कारण यह सम्पूर्ण पदार्थ और इनके कारण सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग ही आदित्य रूप होकर सभी पदार्थों एवं लोकों का अधिपति कहलाता है।।

{पूर्व्यमहः = ब्रह्म वै पूर्व्यमहः (तां.११.११.६)} केन्द्रीय भाग की ओर पूर्वोक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यरूप पदार्थों में से जो तेजस्वी क्षत्रियरूप पदार्थ होते हैं, वे अहन् रूप तेजस्वी केन्द्रीय भाग में विद्यमान ब्रह्मरूप पूर्वोक्त पदार्थों और उत्कृष्ट गतियुक्त किंवा ऊर्ध्व दिशा की ओर उन्मुख आदित्यरूप मास वा प्राणादि रश्मियों के साथ संगत होते हैं। उस समय 'सौर्यो विभ्राट् ऋषि' अर्थात् केन्द्रीय भागस्थ विशेषरूप से प्रकाशमान प्राण एवं मास रश्मियों से सूर्यदेवताक एवं विराड्-जगती छन्दस्क-

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत्।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम्।।३।। (ऋ.१०.१७०.३)

की उत्पत्ति होती है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से केन्द्रीय भागस्थ पदार्थ अत्यन्त ज्योतिर्मय, आकर्षक एवं सम्पीडक बलों से युक्त होकर सम्पूर्ण लोक को प्रकाशित और निरन्तर प्रेरित करता हुआ अन्य लोकों को भी दूर-२ आकर्षित और प्रकाशित करता है। इसके अतिरिक्त "देव सवितर्देवयजनं मे देहि देवयज्यायै" छन्द रश्मि की भी उत्पत्ति होती है। यह ऋचा अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं है। इसका देवता सविता एवं छन्द आर्ची गायत्री किंवा साम्नी बृहती प्रतीत होता है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से विभिन्न प्रेरक और सम्पीडक बल तथा प्राणादि रश्मियां नाना प्रकार के परमाणुओं के समुचित विभाग वा संलयन करते हुए तीव्र तेजस्विनी किरणों को उत्पन्न करते हैं। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न देव परमाणुओं की यजन क्रिया निरन्तर समृद्ध और व्यापक होने लगती है। उनके तेज और बल भी तीव्र होने लगते हैं। इस प्रकार इन दोनों ऋचाओं के प्रभाव से विभिन्न पदार्थ सुगमतापूर्वक केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित होने में सक्षम होते हैं और बाधक रश्मियों से मुक्त होते हैं।।

इन पदार्थों में क्षत्र संज्ञक पदार्थों का अनुकरण करते हुए अन्य पदार्थ भी उत्तरोत्तर उसी के साथ केन्द्रीय भाग की ओर अग्रसर होते रहते हैं। वे क्षत्र संज्ञक पदार्थ ही वैश्य पदार्थों को धारण करते हुए गति करते हैं।।

जब उपर्युक्तानुसार क्षत्रिय एवं वैश्य संज्ञक पदार्थ उपर्युक्त दोनों छन्द रश्मियों के सहयोग से केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित होकर विभिन्न प्राण एवं मास रश्मियों से संयुक्त होते हैं, तब वे बाधक असुरादि रश्मियों से किसी भी प्रकार की क्षति को प्राप्त नहीं करते, बल्कि वे विभिन्न प्राण, मास एवं विद्युत् रश्मियों के साथ संगत होकर उत्तरोत्तर उन्हीं का आश्रय प्राप्त करते हैं और वे निरन्तर उस केन्द्रीय भाग में विद्यमान विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त होकर बाधक असुरादि रश्मियों को नष्ट करते हुए सम्पूर्ण पदार्थ को नियंत्रित रखने में समर्थ होते हैं। वे निरन्तर तीव्र सक्रिय होते हुए दीक्षित क्षत्रिय का रूप प्राप्त करने में समर्थ होते है अर्थात् वे केन्द्रीय भाग में नाना प्रकार के परमाणुओं को उत्पन्न करके तेजस्वी रश्मियों का निरन्तर उत्सर्जन और संवर्धन करते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के विशाल क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म कण और तरंगें केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित होती हैं। उन कणों में से जो कण प्रबलतर आकर्षण से युक्त होते हैं, वे अन्य कणों को भी अपने साथ केन्द्रीय भाग की ओर ले चलते हैं। केन्द्रीय भाग का प्रबल गुरुत्वाकर्षण बल इस प्रबल आकर्षण के लिए उत्तरदायी होता है। **केन्द्रीय भाग में विद्यमान इस गुरुत्वाकर्षण बल के लिए विभिन्न प्राण एवं मास रश्मियों के अतिरिक्त त्रिष्टुप् आदि छन्द रश्मियां उत्तरदायी होती हैं।** इनके कारण गुरुत्वाकर्षण बल इतना प्रबल हो जाता है कि कोई भी पदार्थ तेजी से आकृष्ट होता हुआ इसकी ओर खिंचा चला आता है। इसके कारण ही तारे का न केवल सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग, अपितु सम्पूर्ण तारा ही एक लोक के रूप में बंधा हुआ रहता है। इसके साथ ही अन्य लोक भी इस तारे के प्रबल आकर्षण बल के कारण अपनी-२ कक्षाओं में स्थापित रहते हैं। इस समय तारे के अन्दर १ जगती एवं १ गायत्री वा बृहती छन्द रश्मियां भी बार-२ प्रकट होती रहती हैं, जिसके कारण तारों में होने वाली नाभिकीय संलयन

की क्रियाएं और भी तीव्र होकर विभिन्न किरणों को निरन्तर उत्पन्न करती रहती हैं।।

ॐ इति ३४.२ समाप्तः ॐ

❧ अथ 34.3 प्रारभ्यते ❧

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. अथात इष्टापूर्तस्यापरिज्यानिः क्षत्रियस्य यजमानस्य; स पुरस्ताद्दीक्षाया आहुतिं जुहुयाच्चतुर्गृहीतमाज्यमाहवनीय इष्टापूर्तस्यापरिज्यान्यै।।
पुनर्न इन्द्रो मघवा ददातु, ब्रह्म पुनरिष्टं पूर्तं दात् स्वाहेति।।
अथानूबन्ध्यायै समिष्टयजुषामुपरिष्टात् पुनर्नो अग्निर्जातवेदा ददातु।
क्षत्रं पुनरिष्टं पूर्तं दात् स्वाहेति।।
सैषेष्टापूर्तस्यापरिज्यानिः क्षत्रियस्य यजमानस्य, यदेते आहुतिं तस्मादेते होतव्ये।।३।।

व्याख्यानम्- {इष्टम् = इष्टानि कान्तानि वा, क्रान्तानि वा, गतानि वा, मतानि वा, नतानि वा (नि.१०.२६)। ज्यानिः = जिनाति वयोहीनो भवतीति ज्यानिः (उ.को.४.४६)} इसके अनन्तर विभिन्न संयोज्य क्षत्र परमाणुओं से उत्पन्न पदार्थों के इष्टापूर्त के अपरिज्यानि का वर्णन करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि क्षत्र संज्ञक पदार्थों से उत्पन्न विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ विभिन्न कमनीय गुणों से युक्त होकर नाना प्रकार के विरुद्ध बलों का उल्लंघन करते और प्रकाशित होते हुए केन्द्रीय भाग की ओर आकृष्ट होकर उधर ही गमन कर रहे होते हैं किंवा केन्द्रीय भाग में पहुंच चुके होते हैं। उन क्षत्र संज्ञक परमाणुओं एवं अन्य वैश्य आदि परमाणुओं की गति, स्थिति और कमनीयता आदि गुणों की पूर्णता में किसी भी प्रकार की न्यूनता वा क्षति न होवे, इस प्रकार की व्यवस्था का वर्णन यहाँ किया गया है। इसके लिए उन परमाणु आदि पदार्थों के दीक्षित होने अर्थात् केन्द्रीय भाग में पूर्णतः व्याप्त होने से पूर्व उस आहवनीय रूप केन्द्रीय भाग में आज्य रूप रश्मियों को चार वार प्रक्षिप्त किया जाता है। आज्य रश्मियां कुछ विशेष तेजस्विनी गायत्री रश्मियों को कहते हैं। इनके विषय में खण्ड २.३७ की प्रथम कण्डिका द्रष्टव्य है। ये आज्य रश्मियां केन्द्रीय भाग की ओर जाते हुए पदार्थ में से असुरादि बाधक रश्मियों को दूर करती हैं। इसके साथ ही वे विशेष संगमनीय होती हैं। इनके विषय में ऋषियों का कथन है-

"अयातयामः ह्येतत् प्राजापत्यं यदाज्यम्"। (काठ.३०.१)
"आज्येन वै वज्रेण देवा वृत्रमघ्नन्।" (काठ.२४.६; २६.१)
"एष वाव यज्ञो यदाज्यम्।" (तै.सं.२.६.३.१)
"काम आज्यम्।" (तै.ब्रा.३.१.४.१५; ५.१५; तै.आ.१०.६४.१)

इसका तात्पर्य यह है कि ये आज्य संज्ञक गायत्री छन्द रश्मियां विशेष कमनीय तेजस्विनी और अपने कार्यों में अच्युत रूप होती हैं। ये आज्य रश्मियां कुछ अनुष्टुप् छन्द रश्मियों में व्याप्त वा फैली हुई होती हैं। इसका संकेत करते हुए ग्रन्थकार ने अन्यत्र लिखा है-

"अनुष्टुबायततानि ह्याज्यानि" (ऐ.आ.१.१.२)

इस प्रकार इन आज्य रश्मियों की चार वार आहुतियों के द्वारा वाहर से केन्द्रीय भाग की ओर आने वाले सभी परमाणु आदि पदार्थ अपेक्षित वल और तेज से युक्त होकर नानाविध संयोजनादि क्रियाओं को सम्पादित करने में स्थायी रूप से समर्थ हो जाते हैं अर्थात् उनके वल क्षीण नहीं होने पाते।।

इसी समय "पुनर्न इन्द्रो मघवा ददातु, ब्रह्म पुनरिष्टं पूर्तं दात् स्वाहा" ऋचा की उत्पत्ति होती है। इस ऋचा में २२ अक्षर हैं। इसका देवता इन्द्र एवं छन्द विराड् गायत्री है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व विशेष तेजस्वी होता है तथा इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व ब्रह्मरूप पदार्थों के साथ वार-२ संगत होकर केन्द्रीय भाग में विद्यमान पदार्थों में उत्तम क्रियाओं को सम्पादित करने में तीव्रता लाता है। हमारे मत में यह रश्मि पूर्वोक्त आज्य संज्ञक गायत्री छन्द रश्मि के रूप में उत्पन्न होती है

और यह चार बार आवृत्त होती है।।

तदनन्तर उन सब पदार्थों को विशेषरूप से बांधने और संगत करने के लिए "पुनर्नो अग्निर्जातवेदा ददातु क्षत्रं पुनरिष्टं पूर्तं दात् स्वाहा" की उत्पत्ति होती है। उपर्युक्त ऋचा के साथ-२ यह ऋचा भी किसी वेद संहिता में उपलब्ध नहीं है। इसका देवता अग्नि तथा छन्द निचृद् गायत्री है। इसके प्रभाव से अग्नि तत्त्व विशेष तेजस्वी और आकर्षण बलों से युक्त होकर केन्द्रीय भाग में आए हुए विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त हो जाता है तथा क्षत्र संज्ञक पदार्थों को बार-२ पूर्णता से संगत करके नानाविध संलयन आदि क्रियाओं के सम्पादन में प्रवृत्त करता है। इस छन्द रश्मि की भी चार बार आवृत्ति होती है। इससे विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में तीव्र बन्धक बल उत्पन्न होते हैं।।

इन उपर्युक्त दोनों ही छन्द रश्मियों की उत्पत्ति और आवृत्ति से संयोज्य क्षत्र संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों के संलयन, संयोजनादि कर्म और बल निरापद और अक्षय रूप प्राप्त करते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्रीय भाग की ओर जाते हुए विभिन्न कणों के ऊपर गायत्री छन्द रश्मियां प्रक्षिप्त होती हैं। उन छन्द रश्मियों के साथ संगत होकर ये कण केन्द्रीय भाग में पहुंचकर इतनी ऊर्जा प्राप्त कर लेते हैं, जिससे उनका संलयन निरापदरूप से हो सके। इस कार्य में गायत्री छन्द रश्मियों को सहयोग देने के लिए अनुष्टुप् छन्द रश्मियां भी उत्पन्न होती रहती हैं, जो उन गायत्री रश्मियों को अपने अन्दर धारण किये रहती हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग पढ़ें।।

ၵ इति ३४.३ समाप्तः ၸ

ॐ अथ ३४.४ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. तदु ह स्माऽऽह सौजात आराह्ळिरजीतपुनर्वण्यं वा एतद् यदेते आहुती इति; यथा ह कामयेत तथैते कुर्याद् य इतोऽनुशासनं कुर्यादितीमे त्वेव जुहुयात्।।
ब्रह्म प्रपद्ये, ब्रह्म मा क्षत्राद् गोपायतु, ब्रह्मणे स्वाहेति।।
तत्तदितीइँ।।
ब्रह्म वा एष प्रपद्यते, यो यज्ञं प्रपद्यते; ब्रह्म वै यज्ञो, यज्ञादु ह वा एष पुनर्जायते, यो दीक्षते, तं ब्रह्म प्रपन्नं क्षत्रं न परिजिनाति; ब्रह्म मा क्षत्राद् गोपायत्वित्याह, यथैनं ब्रह्म क्षत्राद् गोपायेद् ब्रह्मणे स्वाहेति तदेनत् प्रीणाति, तदेनत्प्रीतं क्षत्राद् गोपायति।।
अथानूबन्ध्यायै समिष्टयजुषामुपरिष्टात्।।
क्षत्रं प्रपद्ये, क्षत्रं मा ब्रह्मणो गोपायतु, क्षत्राय स्वाहेति; तत्तदितीइँ, क्षत्रं वा एष प्रपद्यते, यो राष्ट्रं प्रपद्यते; क्षत्रं हि राष्ट्रं, तं क्षत्रं प्रपन्नं ब्रह्म न परिजिनाति, क्षत्रं मा ब्रह्मणो गोपायत्वित्याह, यथैनं क्षत्रं ब्रह्मणो गोपायेत्, क्षत्राय स्वाहेति तदेनत्प्रीणाति, तदेनत्प्रीतं ब्रह्मणो गोपायति।।
सैषेष्टापूर्तस्यैवापरिज्यानिः क्षत्रियस्य यजमानस्य यदेते आहुती; तस्मादेते एव होतव्ये।।४।।

व्याख्यानम्- इसी विषय में महर्षि अराह्ळ के पुत्र सौजात ऋषि का कथन है कि अग्रिम कण्डिकाओं में जिन दो ऋचाओं की चर्चा की गई है, वे ऋचाएं 'अजीतपुनर्वण्य' कहलाती हैं। {अजीतपुनर्वण्यम् = नष्टमप्राप्तं वा यद्वस्तु तदेतदजीतं, तस्य पुनरपि वनसाधनं प्राप्तिकारणमजीतपुनर्वण्यम् इति सायणभाष्यम्} इसका तात्पर्य यह है कि केन्द्रीय भाग की ओर आते हुए, जो परमाणु आदि पदार्थ असुरादि रश्मियों से आक्रान्त होकर इधर-उधर भ्रमित हो जाते हैं, उन्हें असुरादि रश्मियों से मुक्त करके केन्द्रीय भाग की ओर लाने में समर्थ रश्मियां ही 'अजीतपुनर्वण्य' कहलाती हैं। इनके प्रभाव से जिन-२ परमाणु आदि पदार्थों को केन्द्रीय भाग की ओर लाना आवश्यक होता है, वे पदार्थ इन छन्द रश्मियों के द्वारा प्राप्त वा नियंत्रित होकर केन्द्रीय भाग की ओर आकर्षित होने लगते हैं। इससे संकेत मिलता है कि आगामी दोनों छन्द रश्मियां खोज-२ कर अनुकूल पदार्थों को नियंत्रित करती हुई केन्द्र की ओर आकर्षित करती हैं। इस कारण सौजात ऋषि के मत में पूर्वोत्पन्न दो छन्द रश्मियों के स्थान पर अग्रलिखित दो छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं।।

इस क्रम में सर्वप्रथम "ब्रह्म प्रपद्ये ब्रह्म मा क्षत्राद् गोपायतु, ब्रह्मणे स्वाहा" ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसका देवता ब्रह्म एवं छन्द भुरिग् आर्ची गायत्री है, जिसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से पूर्वोक्त ब्रह्म संज्ञक पदार्थ, विशेषकर प्राणापान एवं गायत्री छन्द रश्मियां विशेष सक्रिय एवं तेजयुक्त होती हैं। जहाँ-२ भी पदार्थ केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित हो रहा होता है, वहाँ-२ उसको उचित शक्ति प्रदान करने एवं असुरादि रश्मियों से मुक्त करने के लिए इसी छन्द रश्मि की चार-२ आवृत्तियां उत्पन्न होती रहती हैं। इस छन्द रश्मि के अन्य प्रभाव को विस्तार से अगली कण्डिका में दर्शाया गया है।।+।।

यहाँ उपर्युक्त छन्द रश्मि का विस्तार से प्रभाव बतलाते हुए कहते हैं कि इससे ब्रह्म संज्ञक पूर्वोक्त सभी पदार्थ प्रकृष्टता से समृद्ध और सक्रिय होते हैं। ये सभी पदार्थ संगमन, संयोजन आदि क्रियाओं में प्रत्यक्ष भूमिका निभाते हैं, ऐसा हम पूर्व में भी लिख चुके हैं। इस कारण इन तत्त्वों के समृद्ध और सक्रिय होने से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के मध्य संयोग आदि क्रियाएं भी प्रकृष्ट और समृद्ध होती हैं। उस संयोगादि प्रक्रिया से ही दीक्षित परमाणु आदि पदार्थ अर्थात् केन्द्रीय भाग में व्याप्त हो चुके अति तप्त परमाणु आदि पदार्थ बार-२ नवीन-२ रूप में प्रकट होने लगते हैं। वे विभिन्न प्राण और वाग् रश्मियों से युक्त होकर नवीन पदार्थों की उत्पत्ति प्रक्रिया की शृंखला को अनवरत आगे बढ़ाते रहते हैं। यह प्रक्रिया देश और काल दोनों ही की दृष्टि से सतत आगे बढ़ती रहती है। ये ब्रह्म संज्ञक पदार्थ अपनी उत्कृष्ट सक्रियता के कारण क्षत्ररूप पदार्थों के बल और तेज का क्षय नहीं होने देते। ब्रह्म संज्ञक पदार्थ विभिन्न वैश्यादि परमाणुओं एवं क्षत्रसंज्ञक परमाणु आदि पदार्थों की अति तीव्रता से रक्षा भी करते हैं अर्थात् क्षत्र वा क्षत्रियरूप विभिन्न पदार्थों की तीक्ष्णता को अति अनिष्टकारी विक्षोभ के स्तर तक नहीं जाने देते, बल्कि उसे समुचित और नियंत्रित रूप निरन्तर प्रदान करते रहते हैं। इसके साथ ही वे ब्रह्म संज्ञक पदार्थ इस ऋचा के अन्तिम पाद के प्रभाव से अपनी अव्यक्त क्रियाओं को समुचित रूप प्रदान करते हुए सभी प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को नियंत्रित और समुचित रूप प्रदान करते हैं।।

तदनन्तर विभिन्न पदार्थों में पर्याप्त बंधन बल उत्पन्न करने के लिए सम्यग् रूप से कमनीय और यजनीय अग्रिम छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है।।

वह छन्द रश्मि "क्षत्रं प्रपद्ये, क्षत्रं मा ब्रह्मणो गोपायतु, क्षत्राय स्वाहा" है। इसका देवता क्षत्र तथा छन्द स्वराड् आर्ची गायत्री है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से क्षत्र संज्ञक पदार्थ विशेष तेज और बलयुक्त होते हैं। जहाँ-२ भी ये पदार्थ केन्द्रीय भाग की ओर अग्रसर हो रहे होते हैं, वहाँ-२ इस छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है। इसके अन्य प्रभाव से क्षत्र संज्ञक पदार्थ प्रकृष्टतया व्याप्ति और गति से युक्त होते हैं। {राष्ट्रम् = श्रीर्वै राष्ट्रमश्वमेधः (श.१३.२.६.२), राष्ट्रं सान्नाय्यम् (हविः) (श.११.२.७.१७), सविता राष्ट्रं राष्ट्रपतिः (श.११.४.३.१४)} उधर अश्वमेध के विषय में ऋषियों का कथन है-

"प्रजापतिरश्वमेधः" (श.१३.२.२.१३)
"अग्निर्वा अश्वमेधस्य योनिरायतनम्" (तै.ब्रा.३.६.२१.३ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत)
"असावादित्योऽश्वमेधः" (श.६.४.२.१८)
"असौ वाऽ आदित्य एकविंशः सोऽश्वमेधः" (श.१३.५.१.५)
"एष वाऽश्वमेधो य एष (सूर्यः) तपति" (श.१०.६.५.८)
"एष (अश्वमेधः) वै प्रतिष्ठितो नाम यज्ञः" (तै.ब्रा.३.६.१६.२ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत)
"एष (अश्वमेधः) वा प्रभूर्नाम यज्ञः" (तै.ब्रा.३.६.१६.१ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत)
"प्रजापतिर्ह्यं सर्वङ्करोति योऽश्वमेधेन यजते" (तां.२१.४.२)
"तुरति सर्वं पाप्मानं तरति ब्रह्महत्यां योऽश्वमेधेन यजते" (श.१३.३.१.१)

ये पदार्थ ही राष्ट्ररूप में प्रकट होते हैं। उपर्युक्त प्रमाणों से यह संकेत मिलता है कि अति तेजस्वी पदार्थ, जो केन्द्रीय भाग में समाहित होने लगता है वा हो जाता है, वही राष्ट्र और अश्वमेध कहलाता है। इस छन्द रश्मि के प्रभाव से यह पदार्थ सक्रिय और समृद्ध होता है। ये ऐसे तेजस्वी केन्द्रीय क्षत्र संज्ञक पदार्थ ब्रह्म रूप पदार्थों के सुरक्षित व संरक्षित होने के कारण क्षीण नहीं हो पाते हैं अर्थात् ये पदार्थ सतत ही उत्पन्न वा प्रकट होते रहते हैं। इस प्रकार ब्रह्म संज्ञक पदार्थ क्षत्र संज्ञक पदार्थों की निरन्तर रक्षा करते रहते हैं और क्षत्र संज्ञक पदार्थ भी ब्रह्म संज्ञक पदार्थों की रक्षा करते हैं। इनकी रक्षा इस प्रकार होती है कि आदित्य लोक में, विशेषकर इस प्रसंग अर्थात् केन्द्रीय भाग में ब्रह्म संज्ञक पदार्थ अति वृद्धि को प्राप्त न होकर एक सीमा के पश्चात् वे क्षत्र संज्ञक पदार्थों में परिवर्तित हो जाते हैं। इस ऋचा के अन्तिम पाद के प्रभाव से क्षत्र संज्ञक पदार्थ तृप्त होकर ब्रह्म संज्ञक पदार्थों को अपनी ओर आकृष्ट करके उनकी अतिवृद्धि को रोकते रहते हैं अर्थात् उन्हें क्षत्र संज्ञक पदार्थ में परिवर्तित करने में सहयोगी की भूमिका निभाते हैं।।

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्वखण्ड की अन्तिम कण्डिका के व्याख्यान के समान ही समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- यहाँ ग्रन्थकार ने पूर्वोक्त प्रक्रिया के विषय में **महर्षि अराळ्ह** के पुत्र **सौजात ऋषि** के मत को उद्धृत किया है, जो यह कहना चाहते हैं कि किसी तारे के केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित होते कणों के निरापदरूप से केन्द्रीय भाग में पहुँचने और उन्हें संलयित होने के लिए पर्याप्त सामर्थ्य प्रदान करने के लिए पूर्वोक्त गायत्री छन्द रश्मियां नहीं, बल्कि अन्य गायत्री छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जो विभिन्न कणों को संलयनीय ताप और दाब उपलब्ध कराने में अपनी भूमिका निभाती हैं। यहाँ **सौजात ऋषि** के मत से यह भी संकेत मिलता है कि **कुछ तारों के अन्दर न केवल नाभिकों का संलयन होता है, अपितु कुछ फोटोन्स परस्पर संलयित होकर सूक्ष्म कणों को उत्पन्न करते हैं। साथ ही विभिन्न छन्दादि रश्मियां भी विभिन्न क्वाण्टाज् के रूप में परिवर्तित हो सकती हैं।।**

꧁ इति ३४.४ समाप्तः ꧂

ॐ अथ ३४.५ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. अथैन्द्रो वै देवतया क्षत्रियो भवति, त्रैष्टुभश्छन्दसा, पञ्चदशः स्तोमेन, सोमो राज्येन, राजन्यो बन्धुना; स ह दीक्षमाण एव ब्राह्मणतामभ्युपैति, यत्कृष्णाजिनमध्यूहति, यद्दीक्षितव्रतं चरति, यदेनं ब्राह्मणा अभिसंगच्छन्ते; तस्य ह दीक्षमाणस्येन्द्र एवेन्द्रियमादत्ते, त्रिष्टुब्वीर्यं, पञ्चदशस्तोम आयुः' सोमो राज्यं, पितरो यशस्कीर्तिमन्यो वा अयमस्मद्भवति, ब्रह्म वा अयं भवति, ब्रह्म वा अयमुपावर्तत इति वदन्तः।।
स पुरस्ताद्दीक्षाया आहुतिं हुत्वाऽऽहवनीयमुपतिष्ठेत।।
नेन्द्राद्देवताया एमि, न त्रिष्टुभश्छन्दसो न पञ्चदशात् स्तोमान्न सोमाद्राज्ञो, न पित्र्याद् बन्धोर्मा म इन्द्र इन्द्रियमादित, मा त्रिष्टुब्वीर्यं, मा पञ्चदशस्तोम आयुर्मा सोमो राज्यं, मा पितरो यशस्कीर्तिं, सहेन्द्रियेण वीर्येणाऽऽयुषा राज्येन यशसा बन्धुनाऽग्निं देवतामुपैमि, गायत्रीं छन्दस्त्रिवृतं स्तोमं सोमं राजानं ब्रह्म प्रपद्ये, ब्राह्मणो भवामीति।।
तस्य ह नेन्द्र इन्द्रियमादत्ते, न त्रिष्टुब्वीर्यं, पञ्चदशस्तोम आयुर्न सोमो राज्यं, न पितरो यशस्कीर्तिं, य एवमेतामाहुतिं हुत्वाऽऽहवनीयमुपस्थाय दीक्षते क्षत्रियः सन्।।५।।

व्याख्यानम्– यहाँ क्षत्रियत्व गुण के विषय में चर्चा करते हुए कहते हैं कि अपनी दिव्यता के कारण इन्द्र तत्त्व क्षत्रिय कहलाता है। दिव्यता का आशय यह है कि वह अपनी बलशालिनी क्रीड़ा, अति तेजस्वी होना, सबको नियंत्रित करने की इच्छा करना एवं ऐसे नियंत्रण सामर्थ्य से विशेष युक्त होना आदि गुणों के कारण इन्द्र तत्त्व क्षत्रिय कहलाता है। यह विभिन्न आघातों से रक्षा करने वाला तथा असुरादि तत्त्वों पर विशेष आघात करने वाला होता है। अब त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के क्षत्रियत्व का वर्णन करते हुए कहते हैं कि ये छन्द रश्मियां भी अपने छान्दस गुण के कारण क्षत्रिय कहलाती हैं। त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के विषय में ऋषियों का कथन है–

"तीर्णतमं छन्दः। त्रिवृद् वज्रस्तस्य स्तोभतीति वा।
यत् त्रिरस्तोभत् तत् त्रिष्टुभस्त्रिष्टुप्त्वमिति विज्ञायते" (नि.७.१२)
"त्रिवृद् वज्रस्तस्य स्तोममिवेत्यौपमिकम्" (दै.३.१६)
"वज्रस्तेन यत्त्रिष्टुप्" (ऐ.२.१६)
"त्रिष्टुब् इन्द्रस्य वज्रः" (ऐ.२.२)

(स्तोभति अर्चतिकर्मा – निघं.३.१४), स्तुम्भु – सौत्रो धातुः – धातोर्वा रूपाणि (वै. को. – आ. राजवीर शास्त्री)।

इसका तात्पर्य यह है कि आच्छादन और प्रकाशन करने वाली विभिन्न बलवती छन्द रश्मियों में त्रिष्टुप् छन्द रश्मि सर्वाधिक विस्तृत होती है तथा यह त्रिवृत् स्तोमरूपी (पूर्व में अनेकत्र हम इनके विषय में लिख चुके हैं) रश्मियों को थामती और प्रकाशित करती है। इसका बल भी अन्य छन्द रश्मियों की अपेक्षा अधिक तीव्र होता है, इसी कारण ऋषियों ने कहा है–

"बलं वै वीर्यं त्रिष्टुप्" (कौ.ब्रा.७.२; ८.२; ११.२; १६.१)

"ओजो वा इन्द्रियं वीर्यं त्रिष्टुप्।" (ऐ.१.५; ८.२)
"त्रिष्टुप् छन्दा वै राजन्यः" (तै.ब्रा.१.१.६.६)
"त्रैष्टुभो वै राजन्यः" (ऐ.१.२८; ८.२)

इसका आशय यह है कि ये छन्द रश्मियां विशेष बलवती और तेजस्विनी होने से क्षत्रिय रूप कहलाती हैं। विभिन्न स्तोमरूप रश्मिसमूहों में से पूर्व में अनेकत्र वर्णित पञ्चदश स्तोम अर्थात् १५ गायत्री छन्द रश्मियों का समूह विशेष भी अपने तीव्र तेज और ताप के कारण क्षत्रिय रूप ही होता है। इसी कारण ऋषियों का कथन है-

"क्षत्रं पञ्चदशः" (ऐ.८.४)
"तस्माद्राजन्यस्य पञ्चदश स्तोमः" (तां.६.१.८)
"त्रैष्टुभः पञ्चदशस्तोमः" (तां.५.१.१४)
"पञ्चदशो वै राजन्यः" (तै.सं.२.५.१०.१)
"वीर्यं वै बृहद् वीर्यं पञ्चदशः" (जै.ब्रा.२.४०७)

ये स्तोम रश्मियां भी वज्ररूप होकर बाधक असुरादि रश्मियों को नष्ट वा नियंत्रित करती हैं। अब सोम तत्त्व के क्षत्रियत्व के विषय में लिखते हैं कि सोम रश्मियां अपनी तेजस्विता और प्रेरक गुणों के कारण क्षत्रिय कहलाती हैं। ऐसे तेजस्वी सोम तत्त्व के विषय में महर्षि तित्तिर का कथन है- "सोमो राजा राजपतिः" (तै.ब्रा.२.५.७.३)।

ध्यातव्य है कि सोम तत्त्व को अनेकत्र अप्रकाशित एवं शीतल मरुद् रश्मियों के रूप में हमने इस ग्रन्थ में दर्शाया है। इसकी पुष्टि में महर्षि याज्ञवल्क्य का भी कथन है-

"सोमो रात्रिः" (श.३.४.४.१५)

यहाँ क्षत्ररूप सोम रात्रिरूप न होकर तेजस्वी यशरूप में विद्यमान होता है और वही उसका राजा अर्थात् क्षत्रिय रूप होता है। इसलिए कहा गया है-

"यशो वै सोमो राजा" (ऐ.१.१३)
"यशो वै सोमः" (श.४.२.४.६)

जब क्षत्र रश्मियां विभिन्न बंधक बलों से युक्त हो जाती हैं, तब वे राजन्यरूप क्षत्रिय कहलाती हैं। ये राजन्य रश्मियां विभिन्न वर्षक बलों से भी युक्त होती हैं, इसलिए कहा गया है-

"वृषा वै राजन्यः" (तां.६.१०.६)

ग्रन्थकार का कथन है- "ओजः क्षत्रं वीर्यं राजन्यः" (ऐ.८.२)

इससे संकेत मिलता है कि इस रूप में पदार्थ सम्पीडक बलों और तीक्ष्ण तेज से भी युक्त होता है।

इस प्रकार उपर्युक्त सभी क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ जब दीक्षित होने की ओर अग्रसर होते हैं अर्थात् वे केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित हो रहे होते हैं, तब वे ब्राह्मण संज्ञक पूर्वोक्त पदार्थों में व्याप्त होने लगते हैं किंवा उन्हीं का रूप प्राप्त करने लगते हैं। इसका आशय यह है कि उस समय वे पूर्वोक्त क्षत्रिय संज्ञक विभिन्न पदार्थ अपने अतिक्षोभजनक स्वरूप को त्यागकर उचित परिमाण वाले बल और गति आदि गुणों से युक्त होने लगते हैं। उस समय वे क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थ ७.१९.१ में वर्णित ब्रह्म संज्ञक पदार्थों की साधनभूता कृष्णाजिन रश्मियों से आच्छादित होने लगते हैं। जो क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ दीक्षावृत्ति लेकर गमन करते हैं अर्थात् केन्द्रीय भाग की ओर अभिमुख होकर तीव्रता से गमन करते हैं, उस समय ब्राह्मण वा ब्रह्म संज्ञक पदार्थ उनके साथ चारों ओर से संगत हो जाते हैं और इसके कारण ही वे क्षत्र संज्ञक पदार्थ निरापद और समुचित रूप से केन्द्रीय भाग में प्रविष्ट होने लगते हैं। उन ऐसे क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थों का बल इन्द्र तत्त्व के रूप में, उनका तेज त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के रूप में प्रकट होता है। इससे यह प्रतीत होता है कि अति तीव्रता से केन्द्रीय भाग में प्रविष्ट हुए वे क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थ अपने बल को कुछ सीमा तक उत्सर्जित करके इन्द्र तत्त्व और त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों को प्रकट करते हैं। इससे उनका वेग भी केन्द्रीय भाग में आकर कम हो जाता है। पञ्चदश स्तोमरूपी १५ गायत्री छन्द रश्मियों का समूह उन क्षत्र संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों की आयु का हरण करता है। {आयुः = वरुण एवायुः (श.४.१.४.१०)} इसका तात्पर्य यह है कि यह स्तोमरूपी रश्मिसमूह पूर्वोक्त वरुण संज्ञक अनिष्ट बंधक बलों से युक्त प्राणापानव्यान के एक विशेष रूप को नष्ट वा निराकृत करता

है, जिसके कारण वे क्षत्र संज्ञक परमाणु अपनी नानाविध क्रियाओं को अनुकूलता और स्वतन्त्रतापूर्वक करने में सक्षम होते हैं। उन क्षत्र संज्ञक पदार्थों की प्रकाशशीलता को सोम पदार्थ ग्रहण कर लेता है। इसका तात्पर्य यह है कि {सोमः = पशवः सोमो राजा (तै.ब्रा.१.४.७.६)} तेजस्वी क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों का तेज विभिन्न छन्दादि रश्मियों के रूप में प्रकट होकर नाना उत्पन्न परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त हो जाता है। इस प्रकार समस्त आदित्य लोक इस तेज से ही प्रकाशित होता है। इसलिए कहा है-

"संवत्सरो वै सोमो राजा" (कौ.ब्रा.७.१०)

{पितरः = अनपहतपाप्मानः पितरः (श.२.१.३.४)} केन्द्रीय भाग में विद्यमान किंवा केन्द्रीय भाग की ओर अग्रसर होते हुए ऐसे परमाणु आदि पदार्थ, जो असुरादि रश्मियों के दुष्प्रभाव से पूर्णतः मुक्त नहीं हुए होते हैं, वे क्षत्र वा क्षत्रिय संज्ञक परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों से यश अर्थात् नियंत्रक बल, कीर्ति अर्थात् प्रकाशादि गुण एवं अन्य विभिन्न तेज एवं संयोज्यता आदि गुणों को ग्रहण करते हैं और वे क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थ ब्रह्म संज्ञक पदार्थों से युक्त होकर उन्हीं जैसे होने लगते हैं। इसके साथ ही वे ब्रह्म संज्ञक पदार्थ वार-२ क्षत्र संज्ञक पदार्थों एवं उन्हीं के समान रूप वाले इन्द्र, त्रिष्टुप्, पञ्चदश स्तोम आदि उपर्युक्त पदार्थों के चारों ओर चक्कर लगाते हुए गति करते हैं। यहाँ "अयमस्मद्भवति" का तात्पर्य यह है कि वे क्षत्र संज्ञक पदार्थ ब्रह्म रूप पदार्थों के साथ संगत होकर अपने ही रूप वाले इन्द्र आदि पदार्थों से पृथक् रूप वाले हो जाते हैं।।

क्षत्र संज्ञक विभिन्न पदार्थों के केन्द्रीय भाग में पंहुचते हुए उनके उस भाग में व्याप्त होने से पूर्व अगली कण्डिका में वर्णित एक छन्द रश्मि उत्पन्न होती है।।

वह छन्द रश्मि इस प्रकार है-

"नेन्द्राद्देवताया एमि, न त्रिष्टुभश्छन्दसो न पञ्चदशात् स्तोमान्न सोमाद्राज्ञो, न पित्र्याद् बन्धोर्मा म इन्द्र इन्द्रियमादित, मा त्रिष्टुब्वीर्यं, मा पञ्चदशस्तोम आयुर्मा सोमो राज्यं, मा पितरो यशस्कीर्तिं, सहेन्द्रियेण वीर्येणाऽऽयुषा राज्येन यशसा बन्धुनाऽग्निं देवतामुपैमि, गायत्रीं छन्दस्त्रिवृतं स्तोमं सोमं राजानं ब्रह्म प्रपद्ये, ब्राह्मणो भवामि।"

यह मन्त्र 'यजुः' संज्ञक है, जिसका छन्द अष्टि एवं देवता क्षत्रम् प्रतीत होता है। यह अपने छान्दस प्रभाव से केन्द्रीय भाग में स्थित सभी क्षत्र संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों को व्याप्त और संगत करता है। इससे वे पदार्थ अपने-२ संगमनीय गुणों के साथ सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग को व्याप्त करने लगते हैं। इसके प्रभाव से पूर्वोक्त सभी क्षत्र संज्ञक पदार्थ अपने देवत्व आदि गुणों, जिनसे कि पूर्व कण्डिका में पृथक् होने की चर्चा की गयी है, से पूर्णतया पृथक् नहीं होते हैं। वे इन्द्रतत्त्व, त्रिष्टुप् छन्दरश्मि, पञ्चदश स्तोम रूप रश्मि समूह एवं पूर्वोक्त पितर आदि पदार्थों से पृथक् होते हुए भी सर्वथा पृथक् नहीं होते हैं। **उनका बल, वीर्य, आयु, राज्य, यश, कीर्ति आदि का पूर्णतः अपहरण नहीं होता है, जैसा कि पूर्व कण्डिका से भ्रम हो सकता है।** इसके विपरीत वे क्षत्र संज्ञक परमाणु आदि पदार्थ पूर्वोक्त इन्द्र, त्रिष्टुप् छन्द, पितर, सोम आदि के संगमन से बल, वीर्य, आयु, राज्य, प्रकाशादि से उचित मात्रा में युक्त होकर अग्नि तत्त्व को प्राप्त वा उत्पन्न करते हैं। इसके साथ ही वे गायत्री छन्द, त्रिवृत् स्तोमरूप रश्मि समूह, देदीप्यमान सोम रश्मियां एवं ब्रह्म संज्ञक पदार्थों के साथ संगत होकर ब्राह्मण रूप के पदार्थों के स्वरूप को भी प्राप्त करते हैं। इस प्रकार वे ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों के मिश्रित रूप को प्राप्त करते हैं।।

जो क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थ पूर्वोक्त अष्टि छन्द रश्मि को उत्पन्न करते हुए आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग में गमन कर जाते हैं अर्थात् दीक्षित हो जाते हैं, उनके बल, वीर्य, आयु एवं प्रकाशादि पूर्वोक्त गुणों का सर्वथा हरण नहीं होता, बल्कि वे सभी गुण समुचित और आवश्यक मात्रा में उन क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों में विद्यमान रहते हैं। यह उपर्युक्त अष्टि छन्द रश्मि की महत्ता है। यहाँ पूर्व कण्डिका में वर्णित विषय को स्पष्टता और दृढ़ता से दोहराया गया है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के अन्दर जो कण केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित होते हैं किंवा केन्द्रीय

भाग में प्रविष्ट हो जाते हैं, उनमें विभिन्न त्रिष्टुप्, गायत्री, मरुद् एवं प्राणादि रश्मियां विद्युत् चुम्बकीय बलों को तीव्रता प्रदान करती हैं। ये रश्मियां सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग में प्रवाहित और व्याप्त हो जाती हैं। केन्द्रीय भाग में विद्यमान कणों की ऊर्जा एवं आकर्षण आदि बल समुचित परिमाण में ही विद्यमान रहते हैं, जिसके कारण न तो कणों का स्वरूप नष्ट होता है और न वे संलयन क्रिया से पलायन कर सकते हैं। तारों के अन्दर विभिन्न प्रकार के कणों के संलयन और संयोजन के लिए पृथक्-२ मात्रा में ताप, दाब एवं विद्युत् चुम्बकीय बलों की आवश्यकता होती है। इस आवश्यकता के लिए अर्थात् ताप और दाब को नियंत्रित करने के लिए विभिन्न त्रिष्टुप् और गायत्री छन्द रश्मियां समुचित भूमिका निभाती हैं जो कण डार्क एनर्जी के प्रभाव से आवश्यक रूप से मुक्त नहीं हुए होते हैं, वे भी यहाँ उससे मुक्त हो जाते हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

ॐ इति ३४.५ समाप्तः ॐ

अथ ३४.६ प्रारभ्यते

**** तमसो मा ज्योतिर्गमय ****

१. अथाऽऽग्नेयो वै देवतया क्षत्रियो दीक्षितो भवति, गायत्रश्छन्दसा त्रिवृत्स्तोमेन ब्राह्मणो बन्धुना, सहोदवस्यन्नेव क्षत्रियतामभ्युपैति तस्य होदवस्यतोऽग्निरेव तेज आदत्ते, गायत्री वीर्यं, त्रिवृत्स्तोम आयुर्ब्राह्मणा ब्रह्म यशस्कीर्तिमन्यो वा अयमस्मद्भवति, क्षत्रं वा अयं भवति, क्षत्रं वा अयमुपावर्तत इति वदन्तः।।
सोऽनूबन्ध्यायै समिष्टयजुषामुपरिष्टाद्धुत्वाऽऽहुतिमाहवनीयमुपतिष्ठेत।।
नाग्नेर्देवताया एमि, न गायत्र्याश्छन्दसो, न त्रिवृतः स्तोमान्न ब्रह्मणो बन्धोर्मा मेऽग्निस्तेज आदित, मा गायत्री वीर्यं, मा त्रिवृत्स्तोम आयुर्मा ब्राह्मणा ब्रह्म यशस्कीर्ति; सह तेजसा वीर्येणाऽऽयुषा ब्रह्मणा यशसा कीर्त्येन्द्रं देवतामुपैमि, त्रिष्टुभं छन्दः, पञ्चदशं स्तोमं, सोमं राजानं क्षत्रं प्रपद्ये, क्षत्रियो भवामि। देवाः पितरः पितरो देवा योऽस्मि सन् यजे। स्वं म इदमिष्टं, स्वं पूर्तं, स्वं श्रान्तं, स्वं हुतम्। तस्य मेऽयमग्निरुपद्रष्टाऽयं वायुरुपश्रोताऽसावादित्योऽनुख्यातेदमहं य एवास्मि सोऽस्मीति।।
तस्य ह नाग्निस्तेज आदत्ते, न गायत्री वीर्यं, न त्रिवृत्स्तोम आयुर्न ब्राह्मणा ब्रह्म यशस्कीर्ति, य एवमेतामाहुतिं हुत्वाऽऽहवनीयमुपस्थायोदवस्यति क्षत्रियः सन्।।६।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थ जब पूर्वोक्तानुसार दीक्षित हो जाते हैं अर्थात् वे प्राण, वाक् आदि तत्वों से विशेषरूप से संयुक्त होकर आदित्य लोक के केन्द्रीय भागरूपी गर्भ में प्रविष्ट हो जाते हैं, तब वे ही अपने दिव्यत्व के कारण अर्थात् कमनीय बलशीलता, प्रकाश एवं सक्रियता आदि गुणों के कारण अग्नि तत्त्व का रूप प्राप्त करते हैं किंवा आग्नेयरूप को प्राप्त होते हैं। इसका आशय यह हुआ कि **दीक्षित क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थ ही अग्नि कहलाते हैं।** आच्छादन बल और प्रकाशन आदि गुणों से युक्त विभिन्न छन्द रश्मियों में गायत्री छन्द रश्मियां ही दीक्षित क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थों से उत्पन्न होती हैं किंवा ये दीक्षित क्षत्रिय पदार्थ गायत्री छन्द रश्मियों से भलीभाँति परिपूर्ण हो जाते हैं। स्तोमरूप रश्मिसमूहों में से त्रिवृत् अर्थात् तीन गायत्री छन्द रश्मियों का समूह विशेष दीक्षित क्षत्रियरूप होता है। त्रिवृत् स्तोम के विषय में ऋषियों का कथन है-

"त्रिवृदग्निः" (श.६.३.१.२५)
"तेजो वै त्रिवृत्" (तां.२.१७.२)
"तेजो वै त्रिवृद् ब्रह्मवर्चसम्" (तां.१७.६.३)
"ब्रह्मवर्चसं वै त्रिवृत्" (तै.ब्रा.२.७.१.१)
"ब्रह्म वै त्रिवृत्" (तां.२.१६.४; १६.१७.३; २३.७.५)

इन वचनों से स्पष्ट है कि त्रिवृत् स्तोम रश्मियां दीक्षित क्षत्रिय पदार्थ अर्थात् ब्रह्म मिश्रित आग्नेय रूप तेजस्वी क्षत्रिय पदार्थ का ही रूप होती हैं। अपने बन्धक बलों के कारण पूर्वोक्त ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ भी दीक्षित क्षत्रिय रूप ही होते हैं, क्योंकि वे दीक्षित क्षत्रिय पदार्थ भी ब्राह्मण रूप पदार्थों की भाँति आग्नेय रूप हो चुके होते हैं। इस कारण वे भी ब्राह्मण रूप ही होते हैं। इस प्रकार जब

विभिन्न ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ अपने कार्यों को पूर्ण कर रहे वा करने वाले होते हैं अर्थात् वे क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों के साथ संगत होकर उन्हें आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग की ओर ले जा रहे अथवा ले जा चुके होते हैं, तब वे ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों में व्याप्त होकर उन्हीं के समान रूप को प्राप्त कर लेते हैं। उस समय होने वाली क्रियाओं को पूर्ववत् समझाते हुए ऋषि लिखते हैं कि उन ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों का तेज अग्नि में समा जाता है अर्थात् वे अग्नि तत्त्व को उत्पन्न करते हैं। उनका बल गायत्री छन्द रश्मियों के रूप में प्रकट होता है अर्थात् वे पदार्थ उत्पादक बल और तेज से युक्त गायत्री छन्द रश्मियों को उत्पन्न करते हैं। त्रिवृत् स्तोमरूप रश्मिसमूह क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों के साथ संयुक्त ब्रह्म संज्ञक पदार्थों से प्राणापानव्यान के संयुक्त रूप विशेष से उत्पन्न बन्धक वरुण रश्मियों का हरण कर लेता है। विभिन्न ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ दीक्षित क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों के ब्रह्म अर्थात् सूक्ष्म संयोजक बल, यश अर्थात् नियंत्रक बल, कीर्ति अर्थात् प्रकाशशीलता एवं अन्य कुछ गुणों का हरण कर लेते हैं। इस प्रकार वे दीक्षित क्षत्रिय पदार्थ, जिनमें ब्राह्मणरूप पदार्थ भी मिश्रित होता है, अग्नि, गायत्री छन्द, त्रिवृत् स्तोम आदि पदार्थों से कुछ भिन्न होता है। इसके साथ ही वे क्षत्र संज्ञक पदार्थ ब्रह्म संज्ञक अग्नि आदि पदार्थों के निकट चारों ओर बार-२ चक्रण करते रहते हैं किंवा उनकी ओर आते हुए बार-२ दोलायमान होते रहते हैं तथा इनका परस्पर सम्बन्ध समन्वय सदैव बना रहता है।।

इसका व्याख्यान ७.२२.१ की पांचवीं कण्डिका एवं ७.२३.१ की दूसरी कण्डिका के समान पाठक स्वयं समझ सकते हैं।।

केन्द्रीय भाग की ओर जाते समय उस पदार्थ में "नाग्नेर्देवताया एमि, न गायत्र्याश्छन्दसो, न त्रिवृतः स्तोमान्न ब्रह्मणो बन्धोर्मा मेऽग्निस्तेज आदित, मा गायत्री वीर्यं, मा त्रिवृत्स्तोम आयुर्मा ब्राह्मणा ब्रह्म यशस्कीर्ति; सह तेजसा वीर्येणाऽऽयुषा ब्रह्मणा यशसा कीर्त्येन्द्रं देवतामुपैमि, त्रिष्टुभं छन्दः, पञ्चदशं स्तोमं सोमं राजानं क्षत्रं प्रपद्ये, क्षत्रियो भवामि" छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है। यह छन्द रश्मि भी पूर्वखण्ड की तृतीय कण्डिका के समान 'यजुः' मन्त्र के रूप में अष्टि छन्द रूप होती है। विज्ञ पाठक इस छन्द रश्मि का प्रभाव उसी कण्डिका तथा इस खण्ड की प्रथम कण्डिका के आलोक में स्वयं समझ सकते हैं। इस कण्डिका के शेष भाग का व्याख्यान इस प्रकार है-

वे दीक्षित क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थ विभिन्न देवरूप पदार्थों अर्थात् विभिन्न प्राण एवं छन्द रश्मियों तथा पितर संज्ञक ऋतु वा मास रश्मियों के साथ संगत होते हैं। {श्रान्तः = तपसा हतकिल्विषः (तु.म.द.ऋ.भा.४.३३.११)} वे दीक्षित क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ इन देव और पितररूप पदार्थों में आहुत व संगत होकर असुरादि बाधक पदार्थों से अपने तीव्र ताप द्वारा मुक्त होकर सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग को अपना बनाकर तीव्र तेज आदि से निरंतर युक्त करते हैं। यहाँ अपना बनाने का अर्थ यह है कि वे दीक्षित क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ ही केन्द्रीय भाग में पूर्णतः व्याप्त होकर परस्पर संगत होते हैं और उनकी संगति से ही उस केन्द्रीय भाग का स्वरूप प्रकट होता है। इस प्रक्रिया में विद्युदग्नि सबको निकट से आकृष्ट करने वाला होता है। विभिन्न वायु वा प्राण रश्मियां उपश्रोता होकर सबको गति प्रदान करती हैं और आदित्य अर्थात् विभिन्न तेजस्विनी रश्मियां सम्पूर्ण आदित्य लोक को प्रकट करती हैं। इन सब पदार्थों के साथ संगत होते हुए भी दीक्षित क्षत्रिय पदार्थ अपने मूल स्वरूप को सर्वथा नहीं त्यागते अर्थात् उनका वह स्वरूप भी यथावत् बना रहता है, जो ब्रह्म संज्ञक पदार्थों के संयोग से पूर्व होता है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्वखण्ड की अन्तिम कण्डिका के समान इस प्रकरण के अनुकूल विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में जब किसी सूक्ष्म पदार्थ से दूसरा सूक्ष्म पदार्थ संयोग करता है, तब वे दोनों पदार्थ मिलकर एक अन्य तीसरे पदार्थ के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। इतना होने पर भी वे संगत होने वाले दोनों सूक्ष्म पदार्थ कभी भी अपने मूल स्वरूप का सर्वथा त्याग नहीं करते। कोई भी दो कण वा तरंग जब पारस्परिक संयोगादि क्रियाएं करते हैं, तब भी यही परिणाम प्राप्त होता है। जैसे दो नाभिकों के संलयन के पश्चात् जब तीसरा सर्वथा नवीन नाभिक उत्पन्न होता है, उस स्थिति में भी दोनों

मूल नाभिक सर्वथा अपने स्वरूप का त्याग नहीं करते। यदि ऐसा होता तो नवीन उत्पन्न संयुक्त नाभिक के विखण्डित होने पर उसके उत्पादक दोनों मूल नाभिक कदापि पुनः प्रकट नहीं हो सकते, परन्तु ऐसा होता है। तारों के केन्द्रीय भाग के अन्दर नाभिकीय संलयन के समय जो-२ भी जिस-२ स्तर की क्रियाएं होती हैं, उन सबमें यही नियम कार्य करता है। संयुक्त होने वाले पदार्थ चाहे अति सूक्ष्म हों वा स्थूल, वे इसी नियम के अन्तर्गत ही संयोग और वियोग प्रक्रियाओं को जन्म देते हैं। इस खण्ड में जो **ब्राह्मण** और **क्षत्रिय** संज्ञक पदार्थों की चर्चा की गयी है, उस विज्ञान को समझने के लिए हमें पूर्वखण्ड में वर्णित **ब्राह्मण** और **क्षत्रिय** पदार्थों के स्वरूप और विशेषताओं को गम्भीरता से समझ लेना चाहिए। ऐसा करके इस खण्ड के व्याख्यान भाग को समझकर ही वैज्ञानिक सार का विज्ञान पूर्णतः समझ में आ सकता है।।
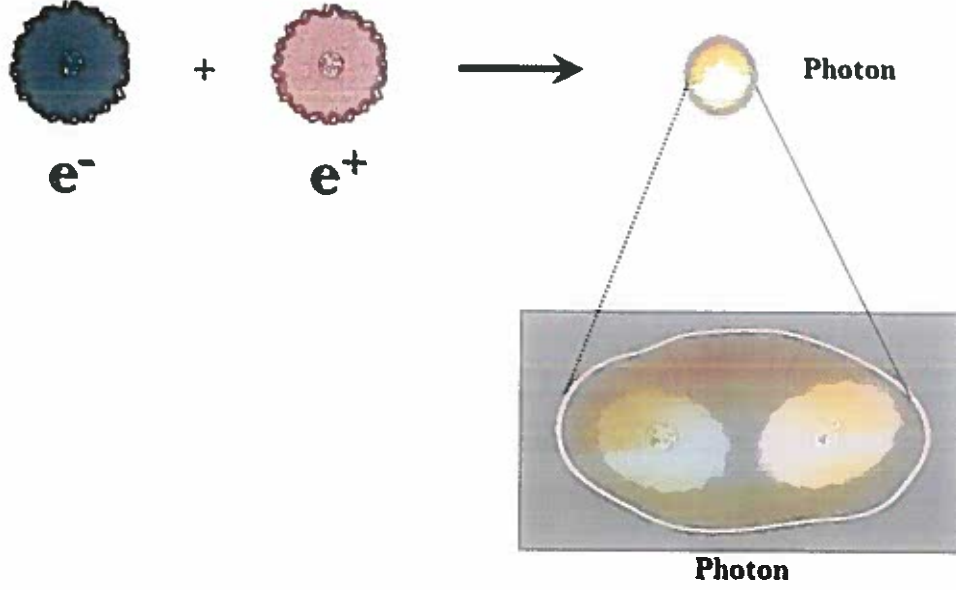
चित्र ३४.१

ॐ इति ३४.६ समाप्तः ॐ

ॐ अथ ३४.७ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. अथातो दीक्षाया आवेदनस्यैव; तदाहुर्यद् ब्राह्मणस्य दीक्षितस्य ब्राह्मणोऽदीक्षिष्टेति दीक्षामावेदयन्ति, कथं क्षत्रियस्याऽऽवेदयेदिति।।
यथैवैतद् ब्राह्मणस्य दीक्षितस्य ब्राह्मणोऽदीक्षिष्टेति दीक्षामावेदयन्त्येवमेवैतत् क्षत्रियस्याऽऽवेदयेत् पुरोहितस्याऽऽर्षेयेणेति।।
तत्तदितीइँ।।
निधाय वा एष स्वान्यायुधानि ब्रह्मण एवाऽऽयुधैर्ब्रह्मणो रूपेण ब्रह्म भूत्वा यज्ञमुपावर्तत; तस्मात् तस्य पुरोहितस्याऽऽर्षेयेण दीक्षामावेदयेयुः; पुरोहितस्याऽऽर्षेयेण प्रवरं प्रवृणीरन्।।७।।

व्याख्यानम्- इसके अनन्तर विभिन्न पदार्थों के दीक्षित होने अर्थात् उनके प्राण एवं वाग् रश्मियों से विशेष संगत होकर कार्यारम्भ करने किंवा किसी विशेष परिस्थिति को त्यागकर अगली क्रिया के आरम्भ करने के नियम की चर्चा करते हैं। यहाँ 'आवेदन' पद का का अर्थ है, किसी भी क्रिया की सब ओर उत्पत्ति एवं व्याप्ति का हो जाना। इस विषय में एक नियम प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि पूर्वोक्त ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों के इस प्रकार दीक्षित होने के लिए ब्रह्मरूप ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों का दीक्षित होना अर्थात् उनका विशेष सक्रिय होना अनिवार्य होता है अर्थात् ब्रह्मरूप सूक्ष्म पदार्थों के सक्रिय हुए विना उनकी अपेक्षा स्थूल ब्राह्मण रूप पदार्थ कभी सक्रिय नहीं होते। यहाँ यह प्रश्न किया गया है कि ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों के सक्रिय होने के लिए ब्रह्म संज्ञक पदार्थों की सक्रियता एवं प्रेरणा अनिवार्य है, तब क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों की सक्रियता किस प्रकार प्रारम्भ होती है? यहाँ इस प्रकरण में "ब्राह्मणोऽदीक्षिष्ट" यह षडक्षरा अर्थात् दैवी त्रिष्टुप् छन्द रश्मि किंवा याजुषी गायत्री छन्द रश्मि की उत्पत्ति भी मानी जानी चाहिए। इसका संकेत करते हुए महर्षि तित्तिर का कथन है-

"अदीक्षिष्टायं ब्राह्मण इति त्रिरुपाँश्वाह देवेभ्य एवैनं प्राऽऽह त्रिरुच्चैरुभयेभ्य एवैनं देवमनुष्येभ्यः प्राऽऽह" (तै.सं.६.१.४.३)।

{उपांशु = अनिरुक्तं वा ऽउपांशुः (श.१.३.५.१०), यज्ञमुखं वा ऽउपांशुः (श.५.२.४.१७)} इसका आशय यह है कि ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों को सक्रिय करने के लिए ब्रह्मरूप सूक्ष्म पदार्थ इस छन्द रश्मि को अव्यक्त एवं अपरिमित भाव से उत्पन्न करके ब्राह्मणरूप पदार्थों को प्रेरित और सक्रिय करते हैं। इस कारण यहाँ प्रश्न यह भी स्वयं उपस्थित हो जाता है कि क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों को सक्रिय करने के लिए कौनसी छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है?।।

इसका उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि जिस प्रकार ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों को सक्रिय करने की प्रक्रिया होती है, वैसी ही प्रक्रिया क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों को सक्रिय करने की भी होती है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि इन पदार्थों को सक्रिय करने के लिए भी सर्वप्रथम ब्रह्मरूप सूक्ष्म पदार्थों का सक्रिय होना अनिवार्य होता है। इस मत का समर्थन करते हुए एक अन्य ऋषि का कथन है-

"ब्राह्मणो वा एष जायते यो दीक्षते। तस्माद्राजन्यवैश्यावपि ब्राह्मण इत्येवावेदयति।" (आप.श्रौ.१०.११.६)

इसका आशय यह है कि क्षत्रिय एवं वैश्य संज्ञक पदार्थों की सक्रियता के लिए भी ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों की सक्रियता की प्रक्रिया ही दोहराई जाती है अर्थात् सबके मूल में ब्रह्म संज्ञक पदार्थों की सक्रियता एवं "ब्राह्मणोऽदीक्षिष्ट" छन्द रश्मि की उत्पत्ति अनिवार्य होती है।

{पुरोहितः = यः पुरस्तात् सर्वं जगद् दधाति, छेदनधारणाऽऽकर्षणादिगुणाँश्चापि सः (तु.म.द.ऋ.भा.१.१.१), पुरोहितः पुर एनं दधति (नि.२.१२)} ये दीक्षित क्षत्रियरूप पदार्थ पुरोहितरूप होते हैं अर्थात् उनमें छेदन, धारण, आकर्षण एवं प्रकाश आदि गुण उत्पन्न हो जाते हैं और वे ब्रह्म संज्ञक पदार्थों के अभिमुख होकर उन्हें धारण वा संगत किये रहते हैं। यहाँ ब्रह्म संज्ञक पदार्थों को ऋषि कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि दीक्षित क्षत्रियरूप पदार्थ ऋषि अर्थात् ब्रह्मरूप प्राणापानादि प्राथमिक प्राण रश्मियों के द्वारा ही पुरोहित रूप को प्राप्त करते हैं किंवा विभिन्न गुणों से युक्त होकर वे पदार्थ सक्रिय होते हैं। इन ब्राह्मण तथा क्षत्रिय संज्ञक दोनों ही पदार्थों की समान रूप से यही प्रक्रिया है।।+।।

क्षत्रियरूप किंवा क्षत्ररूप पदार्थ अपने आयुध अर्थात् साधनों को त्यागकर ब्रह्म वा ब्राह्मणरूप पदार्थों के साधनों को ग्रहण करके ही सर्ग प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हैं। इस विषय में ७.१६.१ अवश्यमेव द्रष्टव्य है। ब्रह्मरूप पदार्थों के साधनों को ग्रहण करके ही वे क्षत्र वा क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ उपर्युक्त पुरोहितरूप को प्राप्त होते हैं और वे इस रूप को {वरः = आत्मा हि वरः (क.४४.५ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत), वर इव वै स्वर्गोलोकः (जै.ब्रा.२.६६)} प्राप्त करके तथा उपर्युक्तानुसार प्राथमिक प्राणों के संयोग से पुरोहितरूप को प्राप्त कर शनैः-२ प्रवर अर्थात् अत्यन्त श्रेष्ठ आदित्य के केन्द्रीय भागरूप स्वर्गलोक को प्राप्त वा निर्मित करते हैं। यही इन पदार्थों की अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ गति वा स्थिति होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में जब भी कोई सूक्ष्म वा स्थूल क्रियाएं होती हैं, तब उनका प्रभाव सूक्ष्मतम स्तर तक होता है किंवा सूक्ष्मतम स्तर पर होने वाली सूक्ष्मतम क्रिया ही सभी स्थूल क्रियाओं को प्रेरित और उत्पन्न करती है। जब किन्हीं तत्त्वों के बीच रासायनिक संयोग होता है अर्थात् दो वा दो से अधिक आयन मिलकर किसी अणु का निर्माण करते हैं, उस समय वर्तमान भौतिक विज्ञान द्वारा ज्ञेय प्रक्रियाओं में सबसे सूक्ष्म प्रक्रिया इलेक्ट्रॉन्स के आवागमन और व्यवस्था होने के स्तर पर होती है। किसी भी अणु वा परमाणु (atom) के गुण, कर्म, स्वभाव, उनके अन्दर विद्यमान इलेक्ट्रॉनिक विन्यास पर ही निर्भर होते हैं। इस प्रकार उनके सभी स्थूल वा सूक्ष्म क्रियाकलापों के पीछे इलेक्ट्रॉनिक विन्यास ही प्रधान कारण माना जाता है। यदि वर्तमान विज्ञान इस तथ्य को जान सकता कि इलेक्ट्रॉन्स स्वयं सूक्ष्म प्राण व छन्द रश्मियों से निर्मित और प्रेरित होते हैं, तो वर्तमान भौतिक विज्ञान स्वयं इस बात को भी जान सकता था कि molecules वा atoms की सूक्ष्म वा स्थूल रासायनिक क्रियाओं के लिए मूलरूप से electrons उत्तरदायी नहीं है, बल्कि उनकी अवयवरूप छन्द वा प्राण रश्मियां उत्तरदायी हैं। वैदिक विज्ञान इससे भी आगे बढ़कर यह तथ्य प्रकाशित करता है कि स्वयं प्राण एवं छन्द रश्मियां भी **मन** एवं **'ओम्'** छन्द रश्मियों से निर्मित होती हैं। इसलिए सृष्टि की सभी प्रक्रियाएं मूलतः **मन** एवं **'ओम्'** छन्द रश्मि से ही उत्पन्न व प्रेरित होती हैं। इनसे सूक्ष्म इस सृष्टि में कोई भी ऐसा पदार्थ विद्यमान नहीं है, जो स्वयं उत्पन्न हुआ हो और इनको उत्पन्न करता हो। **इनके कारणरूप ईश्वर और प्रकृति पदार्थ अविनाशी और अनादि तत्त्व ही हैं, जो किसी भी क्रिया से प्रभावित नहीं होते।** हाँ, इनमें **ईश्वरतत्त्व अवश्य ही सभी क्रियाओं के पीछे सबसे मूल प्रेरक चेतन तत्त्व है।** विभिन्न रासायनिक वा नाभिकीय आदि क्रियाओं में इलेक्ट्रॉन्स की भूमिका की महत्ता के साथ-२ यह बात भी स्मरणीय है कि क्रिया में भाग लेने वाले इलेक्ट्रॉन्स न केवल अन्य इलेक्ट्रॉन्स को प्रभावित करते हैं, अपितु वे विभिन्न नाभिकों में विद्यमान न्यूट्रॉन, प्रोटॉन आदि कणों और उनके भी कारणरूप क्वार्क आदि सभी मूल कणों को भी प्रभावित करते हैं। इन सबके प्रभावित करने की प्रक्रिया उत्तरोत्तर सूक्ष्म स्तर पर जाती हुई मनस्तत्त्व एवं **'ओम्'** छन्द रश्मि में ही समाप्त होती है। तारों के निर्माण की प्रक्रिया के अन्तर्गत कॉस्मिक मेघों का निर्माण, उनका संघनन और संपीडन, मूल कणों और atoms का निर्माण, क्वाण्टाज़् की उत्पत्ति, तारों के केन्द्रीय भाग का निर्माण, विभिन्न कणों का उत्तरोत्तर प्रकाश एवं ऊष्मा आदि से युक्त होते जाना, अन्त में नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया प्रारम्भ होकर तारे के स्वरूप को पूर्णता प्रदान करना, इन सबमें वर्तमान विज्ञान के मूल कण, क्वाण्टाज़् आदि का खेल, तो वर्तमान विज्ञान द्वारा अन्वेषणीय है ही। इसके आगे विभिन्न छन्द व प्राण रश्मियों, मनस्तत्त्व एवं **'ओम्'** छन्द रश्मियों के सूक्ष्म और गंभीर क्रियाविज्ञान को वैदिक विज्ञान ही स्पष्ट कर सकता है। इसके लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।
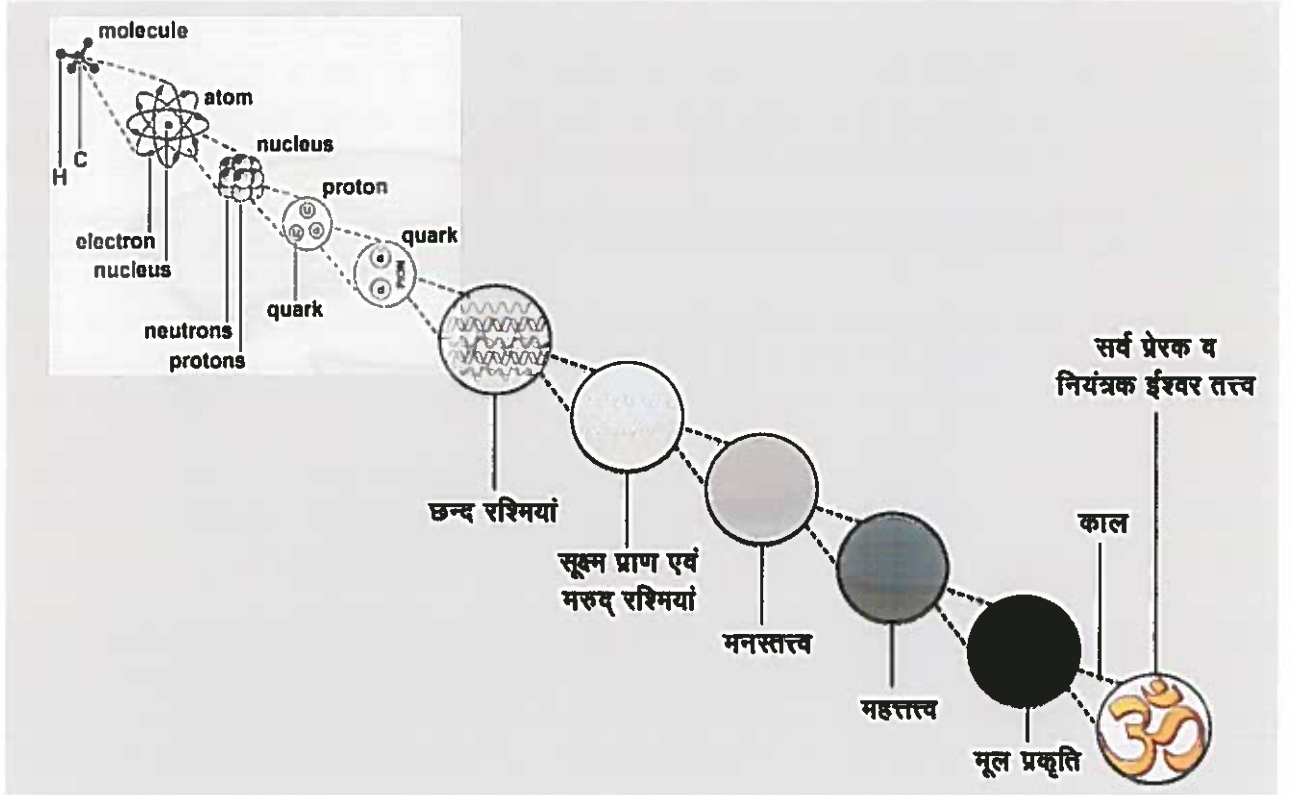
चित्र ३४.२ ईश्वर के द्वारा सृष्टि निर्माण प्रक्रिया के विभिन्न चरण

इति ३४.७ समाप्तः

ॐ अथ ३४.८ प्रारभ्यते ॐ

**** तमसो मा ज्योतिर्गमय ****

१. अथातो यजमानभागस्यैव, तदाहुः प्राश्नीयात् क्षत्रियो यजमानभागा३म्, न प्राश्नीया३त्? इति।।
यत्प्राश्नीयादहुताद्धुतं प्राश्य पापीयान् स्याद्, यन्न प्राश्नीयाद् यज्ञादात्मानमन्तरियाद्, यज्ञो वै यजमानभागः।।
स ब्रह्मणे परिहृत्यः।।
पुरोहितायतनं वा एतत्क्षत्रियस्य, यद्ब्रह्माऽर्धात्मो ह वा एष क्षत्रियस्य, यत्पुरोहित उपाह परोक्षेणैव प्राशितरूपमाप्नोति, नास्य प्रत्यक्षं भक्षितो भवति।।
यज्ञ उ ह वा एष प्रत्यक्षं यद्ब्रह्मा, ब्रह्मणि हि सर्वो यज्ञः प्रतिष्ठितो, यज्ञे यजमानो, यज्ञ एव तद्यज्ञमप्यत्यर्जन्ति, यथाऽप्स्वापो यथाऽग्नावग्निं, तद्वै नातिरिच्यते, तदेनं न हिनस्ति, तस्मात्स ब्रह्मणे परिहृत्यः।।
अग्नौ हैके जुहति; प्रजापतेर्विभान्नाम लोकस्तस्मिंस्त्वा दधामि सह यजमानेन स्वाहेति; तत्तथा न कुर्याद्, यजमानो वै यजमानभागो यजमानं ह सोऽग्नौ प्रवृणक्ति; य एनं तत्र ब्रूयाद् यजमानमग्नौ प्रावार्क्षीः प्रास्याग्निः प्राणान् धक्ष्यति, मरिष्यति यजमान इति, शश्वत्तथा स्यात्, तस्मात्तस्याऽऽशां नेयादाशां नेयात्।।८।।

व्याख्यानम्- यहाँ ग्रन्थकार प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि जब यजमान भाग अर्थात् सर्गयज्ञ किंवा आदित्य लोक के निर्माण की प्रक्रिया होती है, उस समय क्षत्रियरूप पदार्थ समग्ररूपेण व्याप्त होते हैं अथवा नहीं? अथवा क्या सर्गयज्ञ की आहुतिरूप मास रश्मियों को वे क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ साक्षात् प्राप्त कर पाते हैं अथवा नहीं?।।

इसका उत्तर देते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ के साथ-२ वैश्य और शूद्र संज्ञक पदार्थों को भी ७.१९.१ में अहुताद कहा है। इस कारण क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ हविरूप मास रश्मियों को प्रत्यक्ष प्राप्त नहीं कर पाते। इसका कारण बताते हुए ग्रन्थकार का कथन है कि यदि ऐसा हो जाए, तो क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ पाप अर्थात् असुरादि रश्मियों से युक्त हो जाए, जिसके कारण उनमें आदित्य लोक के निर्माण किंवा सृष्टि निर्माण प्रक्रिया ही सम्पन्न न हो सके। यहाँ प्रश्न यह उठ सकता है कि क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों का मास रश्मियों के साथ साक्षात् सम्पर्क होने से असुर तत्त्वों का आवरण क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों के चारों ओर कैसे उत्पन्न हो सकता है? इस विषय में हमारा मत यह है कि ब्रह्म वा ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ ही क्षत्र वा क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों को उत्पन्न करके निरन्तर आच्छादित किये रहते हैं और वे ब्रह्म संज्ञक पदार्थ ही क्षत्र संज्ञक पदार्थों के सभी प्रकार के बल, तेज और क्रियाओं के लिए उत्तरदायी होते हैं। असुरादि बाधक रश्मियों से ब्रह्म या ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ ही क्षत्रिय आदि पदार्थों को मुक्त रखते हैं। इसकी ओर संकेत करते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है-

"ब्राह्मणो हि रक्षसामपहन्ता" (श.१.१.४.६)
"ब्रह्मणो हि जायते यो यज्ञात् जायते" (श.३.२.१.४०)

इन वचनों से यह सिद्ध है कि विभिन्न सर्ग प्रक्रियाओं के पीछे तथा असुरादि बाधक रश्मियों को दूर करने के लिए ब्रह्म वा ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ ही मूल कारण होते हैं। इनके अभाव में क्षत्रिय आदि

पदार्थ बाधक असुरादि रश्मियों से आवृत्त होकर संयोगादि प्रक्रिया से दूर हो जाते हैं। इसी कारण ग्रन्थकार का कथन है कि क्षत्रिय आदि पदार्थ बिना ब्रह्म वा ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों से संयुक्त हुए हविरूप मास आदि रश्मियों से संयुक्त होने का प्रयास करते समय आवरक असुरादि रश्मियों से ग्रस्त होकर संयोगादि प्रक्रिया से दूर हो जाते हैं। इसके विपरीत यदि वे क्षत्रिय आदि पदार्थ मास आदि रश्मियों के साथ संयुक्त न होवें, तब भी संधानक गुणों से रहित होने के कारण संयोगादि प्रक्रिया से पृथक् हो जाते हैं। यहाँ इस कण्डिका से यह भी विदित होता है कि वे क्षत्रिय आदि पदार्थ अकेले ही सम्पूर्ण आदित्य लोक में व्याप्त नहीं होते हैं। यदि ऐसा हो जाए तब भी ब्रह्म वा ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों के अभाव में असुरादि बाधक रश्मियों से आच्छादित हो जाएंगे और इससे उनके मध्य संयोगादि प्रक्रिया सम्पादित नहीं हो सकेगी। इसके विपरीत यदि वे क्षत्रिय पदार्थ आदित्य लोक के किसी एक भाग तक ही सीमित रहें, तब भी सम्पूर्ण आदित्य लोक में संयोगादि प्रक्रिया की व्याप्ति न होने से लोक निर्माण रूपी यज्ञ प्रक्रिया समाप्त वा नष्ट हो जाएगी। वस्तुतः यज्ञ ही यजमान भाग है, इस कारण क्षत्रिय पदार्थों के मास रश्मियों के संयोग के बिना तथा सम्पूर्ण लोक में व्याप्ति के बिना लोक निर्माण प्रक्रिया सम्भव नहीं है।।

इस समस्या का समाधान बतलाते हुए कहते हैं कि हविरूप मास रश्मियां ब्रह्म संज्ञक पदार्थों के द्वारा आकृष्ट वा संगत होकर अन्य क्षत्रिय आदि पदार्थों के साथ ब्रह्म वा ब्राह्मण रूप पदार्थों के माध्यम से ही संयुक्त होती हैं। इसके साथ ही क्षत्रियरूप रश्मि आदि पदार्थ ब्रह्म वा ब्राह्मण रूप रश्मि आदि पदार्थों के द्वारा सब ओर से आकर्षित व संगत होकर ही सम्पूर्ण आदित्य लोक में व्याप्त होते हैं, जिससे न असुरादि रश्मियां बाधक बन पाती हैं और न सर्गयज्ञ ही अपूर्ण रह पाता है।।

जो ब्रह्म वा ब्राह्मण रूप पदार्थ होते हैं, वे क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों के पूर्वोक्त पुरोहितरूप के आयतनरूप होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि पुरोहितरूप प्राप्त क्षत्रिय पदार्थ ब्रह्म वा ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों में ही आश्रित वा व्याप्त होते हैं। इसके साथ ही उनके पुरोहित सम्बन्धी गुण ब्रह्मरूप पदार्थों से ही उत्पन्न होते हैं। यहाँ महर्षि कहते हैं कि ब्रह्म वा ब्राह्मणरूप पदार्थ क्षत्र वा क्षत्रियरूप पदार्थों के अर्ध शरीररूप होते हैं अर्थात् वे दोनों पदार्थ परस्पर मिले हुए रहते हैं और ऐसे होकर ही वे क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों को अपने साथ व्याप्त वा संगत करते हैं। {उपाह = अहशब्द उपशब्दश्च मिलित्वाऽवधारणार्थो इति सायणभाष्यम्} इस प्रकार पुरोहित स्वरूप प्रदाता ब्रह्मरूप पदार्थ मास रश्मियों का साक्षात् भक्षण करते वा उनको प्राप्त करते हैं, तो वे क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों को ही परोक्षरूप से मास रश्मियों की प्राप्ति कराते हैं। इससे वे क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ साक्षात् मास रश्मियों के साथ संगत होने के पूर्वोक्त अनिष्ट फल से भी बच जाते हैं और परोक्षरूप से मास रश्मियों के साथ संगत होकर संयोगादि गुणों को भी प्रचुरता से प्राप्त करने में समर्थ हो जाते हैं। इस क्रिया से असुरादि रश्मियों से आक्रान्त होने से भी पृथक् रहकर आदित्य लोक के निर्माणरूपी सर्ग प्रक्रिया को सम्पादित करने में समर्थ होते हैं। यहाँ इस कण्डिका का यह भी आशय है कि ब्रह्म संज्ञक पदार्थों के साथ संगत हुए क्षत्रिय रूप पदार्थ सम्पूर्ण निर्माणाधीन आदित्य लोक में व्याप्त होने पर पूर्ण व्याप्ति एवं अपूर्ण व्याप्ति इन दोनों के ही पूर्वोक्त दोषों एवं इनके कारण असुरादि रश्मियों की सम्भावित बाधा से मुक्त रहकर सर्ग प्रक्रिया में समुचित रूप से सक्रिय बने रहते हैं।।

अब उपर्युक्त ब्रह्म वा ब्राह्मण संज्ञक रश्मि आदि पदार्थों के विषय में पुनः लिखते हैं कि ये पदार्थ ही वास्तव में सर्गयज्ञ में प्रमुख भूमिका निभाते हैं, क्योंकि संयोजक गुण इन्हीं में सर्वाधिक प्रबल होता है। इस कारण ये यज्ञरूप कहलाते हैं एवं इनमें ही सभी प्रकार के यज्ञ प्रतिष्ठित होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि सृष्टि के सभी संयोज्य परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ इन्हीं ब्रह्म रूप पदार्थों में ही सदैव स्थित रहते हैं। इसके साथ-२ उनकी विभिन्न यजन क्रियाएं भी इन्हीं में स्थित होकर इन्हीं के द्वारा सम्पन्न भी होती हैं। विभिन्न संयोगादि क्रियाएं अपनी अपेक्षा स्थूल संयोगादि क्रियाओं को जन्म देती हैं और उन्हीं में समाविष्ट भी होती चली जाती हैं। इसी प्रकार विभिन्न संयोज्य परमाणु अन्य संयोज्य अणुओं में व्याप्त होकर उनको संयोज्यता आदि गुणों से युक्त करते हैं। अग्नि के विभिन्न परमाणु अग्नि के अन्य परमाणुओं से संयुक्त होकर परस्पर एक-दूसरे में समाहित हो जाते हैं, उसी प्रकार मास नामक हविरूप रश्मियां ब्रह्म संज्ञक रश्मि आदि पदार्थों के अन्दर ही समाहित हो जाती हैं अर्थात् उनसे पृथक्

न रहकर उन्हीं का भाग बन जाती हैं। इससे क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों को भी हानि नहीं होती है, क्योंकि वे मास रश्मियों से प्रत्यक्ष संगत नहीं होते हैं और वे ब्रह्म संज्ञक रश्मि आदि पदार्थों के माध्यम से मास रश्मियों से संगत भी होते हैं, जिससे वे यजन क्रियाओं को करने में समर्थ भी हो जाते हैं। इस कारण वे ब्रह्म संज्ञक रश्मि आदि पदार्थों को सब ओर से प्राप्त करके उनके माध्यम से ही सर्ग प्रक्रिया में भाग लेते हैं।।

यहाँ ग्रन्थकार एक अन्य मत को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि पूर्वखण्ड में वर्णित "ब्राह्मणोऽदीक्षिष्ट", इस छन्द रश्मि के स्थान पर "प्रजापतेर्विभान्नाम लोकस्तस्मिंस्त्वा दधामि सह यजमानेन स्वाहा।", जिसका छन्द भुरिग्गायत्री तथा देवता प्रजापति है एवं दैवत छान्दस प्रभाव यथावत्, की उत्पत्ति होती है। इसके कारण क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों के संयोग की प्रक्रिया अति तीव्र होकर अग्नि तत्त्व को अति प्रबल करती है। ब्रह्मरूप यजमान के साथ संगत क्षत्रियरूप परमाणु आदि पदार्थ लोक में अग्नि तत्त्व को विशेषरूप से धारण और सक्रिय करते हैं। इस मत का प्रतिवाद करते हुए महर्षि लिखते हैं कि ऐसा नहीं होता है कि ब्रह्मरूप यजमान ही यजमान भाग कहलाता है, अपितु दीक्षित क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थ भी यजमान और यजमान भाग कहलाते हैं। इस छन्द रश्मि के प्रभाव से वे यजमान संज्ञक पदार्थ अत्यधिक मात्रा में अग्नि तत्त्व को उत्पन्न कर सकते हैं, जिससे वह तीव्र अग्नि संयोज्य क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थों को प्राणविहीन अर्थात् नष्ट कर सकते हैं अर्थात् उनका संगमनीय गुण नष्ट हो सकता है। इसलिए इस उपर्युक्त भुरिग्गायत्री छन्द रश्मि की उत्पत्ति न होकर पूर्वोक्त विधि से "ब्राह्मणोऽदीक्षिष्ट" छन्द रश्मि की उत्पत्ति आदि प्रक्रिया से ही आदित्य लोक का निर्माण होता है अन्यथा नहीं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में विद्यमान विभिन्न कण और क्वाण्टाज् सूक्ष्म रश्मियों से सदैव आवृत्त रहते हैं। विभिन्न atoms, molecules, ions भी विद्युत् चुम्बकीय तरंग आदि से आच्छादित रहते हैं। इसके साथ ही वे उन तरंगों के द्वारा ही गतिशील और क्रियाशील भी होते हैं। इन तरंगों में कई स्तर होते हैं। सूक्ष्म तरंगें सदैव ही अपने से स्थूल तरंगों को आच्छादित व नियंत्रित करती हैं। इन तरंगों में क्रमशः छन्द रश्मि, प्राण रश्मि और अन्त में **'ओम्'** छन्द रश्मि विद्यमान होती है। जब दो या दो से अधिक कणों का संयोग होता है, तब वह संयोग क्रमशः सूक्ष्म आच्छादिका रश्मि से लेकर अपेक्षाकृत स्थूल रश्मियों में होता हुआ कणों तक पहुँचाता है। जब इनका वियोग होता है, तब भी यही क्रम रहता है। यदि ये आच्छादक रश्मियां किसी प्रकार से हट जाएं, तो उन कणों को डार्क एनर्जी आच्छादित कर लेती है, जिससे उन कणों में संयोग, संलयन आदि प्रक्रिया हो ही नहीं पाती। इसके साथ ही कभी भी ऐसा नहीं हो सकता कि कोई दो कण इन आवरक रश्मियों के बिना ही परस्पर संयोग वा संलयन क्रिया को प्राप्त कर सकें। तारों के निर्माण के समय केन्द्रीय भाग में होने वाली नाभिकीय संलयन की क्रियाएं भी इसी प्रक्रिया से गुजरती हैं। तारों के केन्द्रीय भाग में विभिन्न कणों के संलयन के लिये पृथक्-२ विशेष उच्च ताप की मात्रा अनिवार्य होती है। इस मात्रा से कम ताप होने पर केन्द्रीय भाग में नाभिकीय संलयन की क्रिया सम्पन्न वा प्रारम्भ नहीं हो सकती है और आवश्यक मात्रा से अधिक ताप होने पर नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया बहुत तेज होने से भी विकिरण का दबाव अत्यधिक हो सकता है। इसके परिणामस्वरूप तारे में विस्फोट हो सकता है। इस कारण इस ब्रह्माण्ड में अनेक श्रेणी के तारे विद्यमान हैं, जिनके केन्द्रीय भागों में भिन्न-२ प्रकार के कणों का संलयन होता है और इसके लिए उनके केन्द्रों में ताप और दाब की मात्रा भी भिन्न-२ होती हैं।।

ॐ इति ३४.८ समाप्तः ॐ

ॐ इति चतुस्त्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ॐ

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

।। ओ३म् ।।
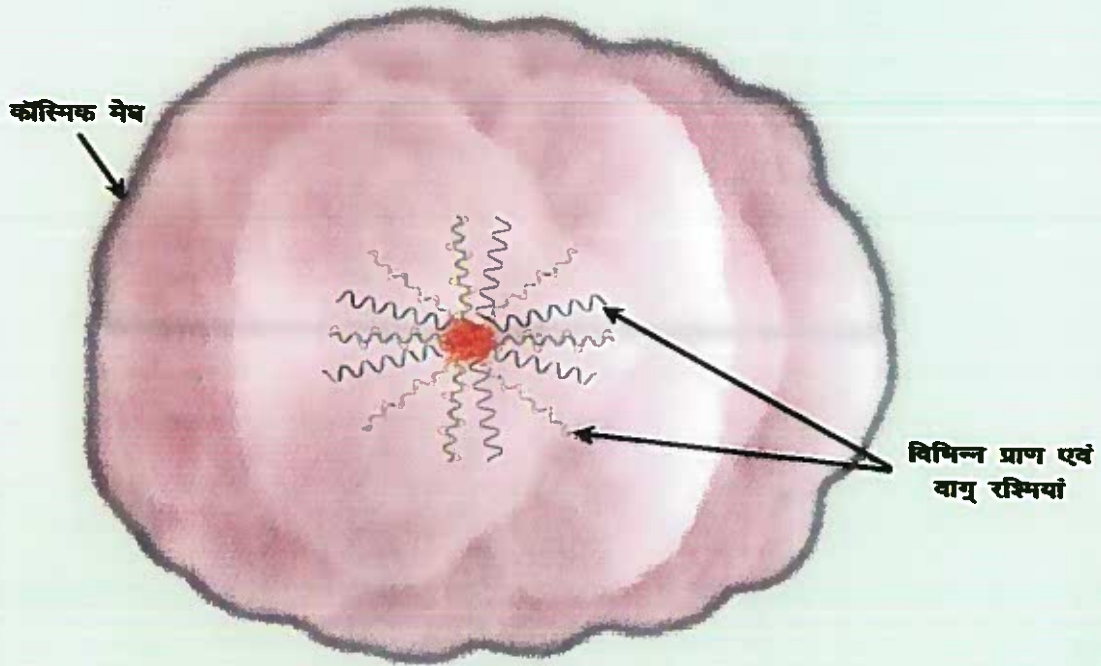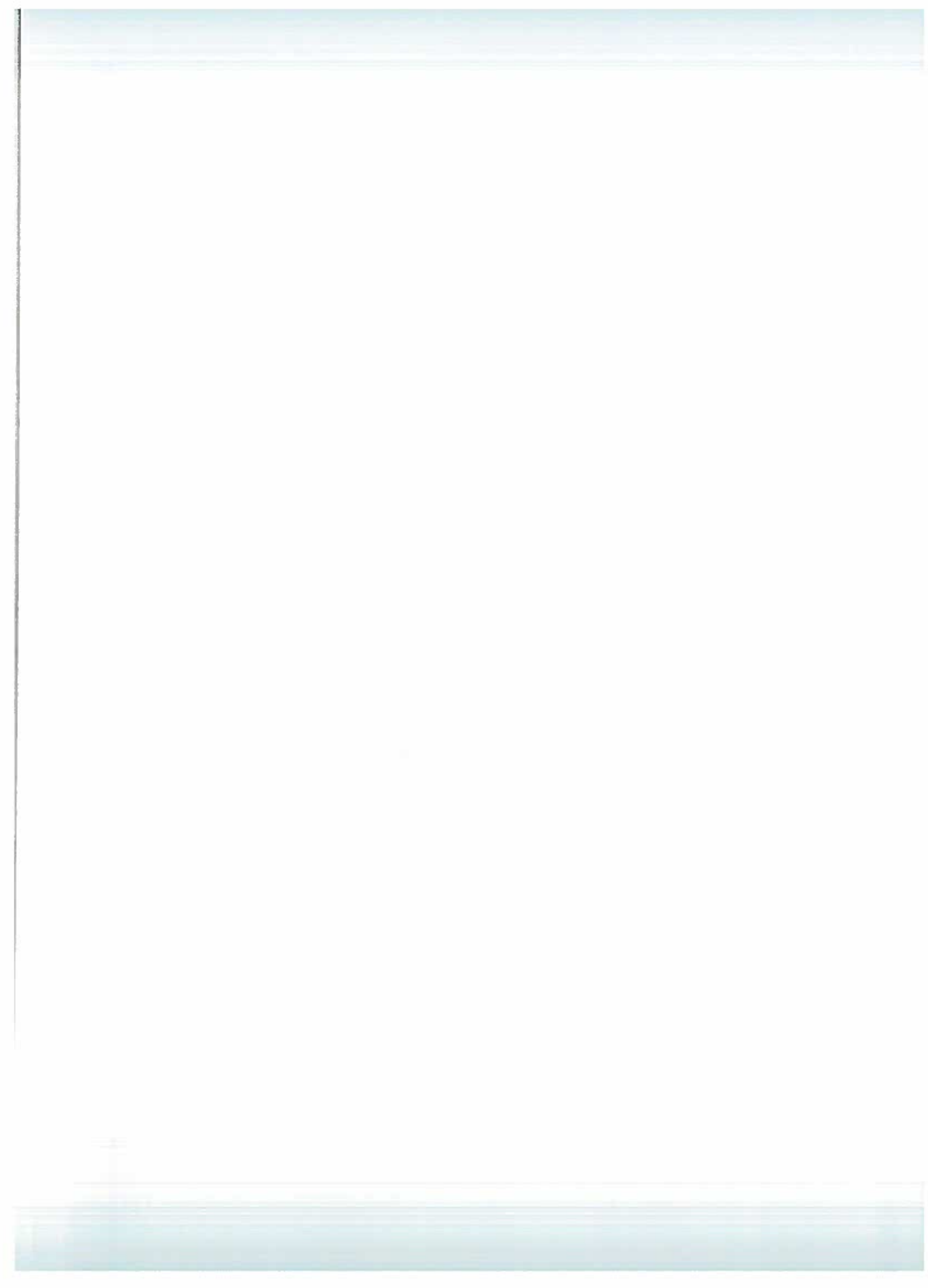
ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव।।

अनुक्रमणिका

३५.१	क्षत्रिय के सोम भक्ष से रहित होने का आख्यान। तारों के केन्द्रीय भाग के निर्माण का विज्ञान।	2134
३५.२	पूर्वोक्त विषय।	2137
३५.३	पूर्वोक्त विषय।	2139
३५.४	क्षत्रिय के भक्षरूप पदार्थ और तारों के केन्द्रीय भाग के निर्माण का विज्ञान।	2142
३५.५	क्षत्रिय पदार्थों के भक्ष का स्वरूप एवं प्रभाव। तारों के पूर्णतः collapse न हो सकने का कारण। तारों के केन्द्रीय भाग के निर्माण का विज्ञान।	2146
३५.६	क्षत्रिय पदार्थों के भक्षों का स्वरूप एवं प्रभाव। तारों के केन्द्र के निर्माण और स्वरूप का विज्ञान।	2149
३५.७	पूर्वोक्त विषय।	2153
३५.८	पूर्वोक्त विषय।	2157

अथ ३५.१ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. विश्वन्तरो ह सौषद्मनः श्यापर्णान् परिचक्षाणो विश्यापर्णं यज्ञमाजह्रे; तद्धानुबुध्य श्यापर्णास्तं यज्ञमाजग्मुस्ते ह तदन्तर्वेद्यासांचक्रिरे; तान् ह दृष्ट्वोवाच-पापस्य वा इमे कर्मणः कर्तार आसतेऽपूतायै वाचो वदितारो यच्छ्यापर्णा, इमानुत्थापयतेमे मेऽन्तर्वेदि माऽऽसिषतेति, तथेति, तानुत्थापयांचक्रुः।।
ते होत्थाप्यमाना रुरुविरे; ये तेभ्यो भूतवीरेभ्योऽसितमृगाः कश्यपानां सोमपीथमभिजिग्युः पारिक्षितस्य जनमेजयस्य विकश्यपे यज्ञे तैस्ते तत्र वीरवन्त आसुः, कः स्वित्सोऽस्माका (कम) स्ति वीरो य इमं सोमपीथमभिजेष्यतीति।।
अयमहमस्मि वो वीर इति होवाच रामो मार्गवेयः।।
रामो हाऽऽस मार्गवेयोऽनूचानः श्यापर्णीयस्तेषां होत्तिष्ठतामुवाचापि नु राजन्नित्थंविदं वेदेरुत्थापयन्तीति; यस्त्वं कथं वेत्थ ब्रह्मबन्धविति।।१।।

व्याख्यानम्– आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग के निर्माण की पूर्वोक्त प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए इसमें घटने वाली घटनाविशेष को प्रकाशित करते हुए लिखते हैं कि जब केन्द्रीय भागों में पूर्वोक्त क्षत्रिय संज्ञक विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ नाना प्रकार के ब्रह्म वा ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों के साथ संगत होकर अनेक प्रकार की यजन क्रियाएं करते हैं, उस समय सुषद्म {सद्मनी = द्यावापृथिव्योर्नाम (निघं.३.३०), (सद्म = गृहनाम - निघं.३.४, संग्रामनाम - निघं.२.१७, उदकनाम - निघं.१.१२)} अर्थात् उदक रूप में वर्तमान विभिन्न क्रियाओं, विशेषकर संगम, संघात आदि क्रियाओं के आश्रयरूप प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के परमाणुओं का जहाँ विशेष संघात होता है, उस केन्द्रीय भाग में विद्यमान विभिन्न क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थों में कुछ पदार्थ विश्वन्तर संज्ञक विद्यमान होते हैं। ये पदार्थ विशेष रूप से इन्द्र तत्त्व द्वारा समृद्ध होकर नाना प्रकार की क्रियाओं और तारक बलों से युक्त होते हैं। इस कारण ये विभिन्न क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थों को संघात, संलयन आदि क्रियाओं में विशेषरूप से तारने वाले होते हैं अर्थात् ये यजन क्रियाओं को विशेष गति प्रदान करते हैं। जैसा कि हम अवगत हैं कि कोई भी क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों के संयोग बिना संयोगादि प्रक्रियाओं को सम्पादित नहीं कर पाते हैं। {परिचक्षाणः = परिचक्षाणः आर्त्विज्ये निराकुर्वन् इति (सायणभाष्यम्)। श्यापर्णः = (पर्णः = गायत्री वै पर्णः - तै.ब्रा.३.२.१.१, सोमो वै पर्णः - श.६.५.१.१, ब्रह्म वै पर्णः - तै.ब्रा.१.७.१.६)} आदित्य लोकों के अन्दर श्यापर्ण नामक कुछ ब्रह्मरूप पदार्थ भी होते हैं। ये पदार्थ गायत्री छन्द रश्मियों से युक्त सोम रश्मियों से सम्पृक्त होकर {श्यैङ् = जाना, हिलना - डुलना, जम जाना, कुम्हलाना (आप्टेकोश)} मन्द गति में हिलते-डुलते और हीनबल एवं क्रिया से युक्त होते हैं। ऐसे दुर्बल ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों के साथ संगत होने होने योग्य नहीं होते हैं। इस कारण उपर्युक्त विश्वन्तर नामक क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ श्यापर्ण नामक ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों को अर्थात् गायत्री रश्मियुक्त दुर्बल सोम पदार्थों को संयोगादि प्रक्रिया से निराकृत करके उनके बिना ही केन्द्रीय भागों में यजन कार्य प्रारम्भ कर देते हैं। उस स्थिति में भी वे श्यापर्ण नामक गायत्र सोम रश्मियां विश्वन्तर आदि क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों की ओर प्रवाहित होती हुई उनके यजन कर्म में व्याप्त होने का प्रयास करने लगती हैं। यहाँ ग्रन्थकार विश्वन्तर नामक क्षत्रियरूप पदार्थों के कथन के माध्यम से कहते हैं कि वे श्यापर्ण नामक ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ हीनबल होने के कारण विभिन्न संयोजक क्रियाओं का पतन कराने वाले हैं। इसका आशय यह है कि इनके क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों के साथ व्याप्त होने पर उन संयोज्य क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों की यजन क्रियाएं समुचित रूप

से संपादित न होकर वार-२ स्खलन वा पतन आदि से युक्त हो सकती हैं। श्यापर्ण संज्ञक ब्राह्मणरूप पदार्थ अशुद्ध वाग् रश्मियों से युक्त होते हैं। इसका आशय यह है कि इन गायत्र सोम रश्मियों के साथ कुछ अस्पष्ट वाग् रश्मियां मिश्रित होती हैं, जिनके कारण इनके तेज और वल क्षीण हो जाते हैं। उन ऐसे श्यापर्ण संज्ञक ब्रह्मरूप पदार्थों को विभिन्न संयोज्य क्षत्रियरूप परमाणु आदि पदार्थ अपने तीक्ष्ण प्रहारों द्वारा आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग से वाहर निकाल देते हैं। ध्यातव्य है कि अशुद्ध वाग् रश्मियों का तात्पर्य यह है कि विभिन्न वाग् रश्मियां परस्पर विकृतरूप से संगत होकर प्रतिकूल वा अस्थिर प्रभावों को उत्पन्न करती हैं। यहाँ प्रश्न यह उपस्थित हो सकता है कि जो ब्रह्मरूप गायत्री छन्द रश्मियां तीव्र तेज और संयोजक वल से युक्त होती हैं, वे यहाँ हीनतेज और वल से युक्त कैसे हो जाती हैं? इस विषय में हमारा मत यह है कि कभी-२ अति मन्दगामी सोम रश्मियों के साथ ये गायत्री रश्मियां संगत होकर कुछ ऐसी रश्मियों को जन्म देती हैं, जो ब्रह्मरूप अर्थात् गायत्री रश्मियों के रूप में व्याप्त तो होती हैं, परन्तु उनका वल और तेज क्षीण हो जाता है, जिससे वे क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों की संयोगादि प्रक्रिया में सहायक न होकर वाधक वन जाती हैं। ऐसी ही रश्मियों को यहा श्यापर्ण कहा गया है।।

जव केन्द्रीय भाग से उपर्युक्त श्यापर्ण नामक गायत्र सोम रश्मियों को वाहरी भाग की ओर निष्कासित वा प्रक्षेपित किया जाता है, तव उनमें तीव्र ध्वनियां उत्पन्न होने लगती हैं अर्थात् वे रश्मियां केन्द्रीय भाग से ऊपर की ओर उठती हुई घोष उत्पन्न करने लगती हैं और यह घोष इस कारण उत्पन्न होता है कि वे रश्मियां केन्द्रीय भागस्थ क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों के इस प्रतिरोध का विरोध करती हुई उनके साथ संघर्ष करती हैं। इसी कारण तीव्र घोष उत्पन्न होता है। यहाँ ग्रन्थकार श्यापर्ण नामक रश्मियों से कहलाते हैं {जनः = एति वा एषोऽस्माल्लोकाद्यो दीक्षते, जनः ह्येति देवलोकमभ्यारोहति (मै.३.६.१)। परिक्षित् = सर्वतो निवसन् (तु.म.द.ऋ.भा.३.७.१)} कि अपने प्रवल आकर्षण आदि वल के द्वारा केन्द्रीय भाग की ओर आने वाले पूर्वोक्त दीक्षित क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों को कम्पाने वाला तथा परिक्षित् अर्थात् सम्पूर्ण आदित्य लोकों में व्याप्त इन्द्रतत्त्व जव विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों का यजन करता है, उस समय कश्यप अर्थात् कूर्म प्राणरूप ब्रह्म संज्ञक पदार्थ की अविद्यमानता किंवा अल्पता में ही यह क्रिया होने लगती है। कूर्म प्राण के स्वरूप के विषय में पूर्वपीठिका द्रष्टव्य है। उस समय उन कूर्म प्राण रश्मियों में विद्यमान असितमृग अर्थात् स्वतंत्रतापूर्वक आशुगमन-कर्त्री कुछ रश्मियां, जो विभिन्न वलों का अपहरण करने में सक्षम होती हैं, मूतवीर अर्थात् विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को कम्पाने वाले क्षत्रिय रूप पदार्थों के सोमपीथ {सोमपीथः = इन्द्रियं सोमपीथः (तै.ब्रा.१.३.१०.२)} अर्थात् वलों का हरण कर लेती हैं। इसके कारण कूर्म प्राण रश्मियों को केन्द्रीय भाग से वहिष्कृत करने की प्रक्रिया रुक जाती है। इस वात से यह संकेत मिलता है कि श्यापर्ण नामक ब्रह्मरूप पदार्थों की भाँति ही कभी-२ किसी आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में तीव्र तप्त इन्द्र तत्त्व कूर्म प्राण रश्मियों को भी वहिष्कृत करने का प्रयत्न करता है,जिसके कारण केन्द्रीय भाग की विभिन्न क्रियाएं अस्त-व्यस्त होने लगती हैं। उन क्रियाओं को पुनः व्यवस्थित करने के लिए उपर्युक्त असितमृग नामक रश्मियों की उत्पत्ति वतलायी गयी है। यहाँ श्यापर्ण नामक पदार्थों के द्वारा प्रश्नवाचक शैली में कहलवाया है कि उन्हें निष्कासित करने वाली क्षत्रियरूप तीक्ष्ण रश्मियों की तीक्ष्णता को हरण करने के लिए अथवा उन्हें नियन्त्रित करने के लिए उनके स्वयं के मध्य कौनसी ऐसी वलवती रश्मियां विद्यमान हैं? ध्यातव्य है कि इस उपर्युक्त स्थिति में निष्कासित होती हुई पूर्व रश्मियों के अन्दर ही उनके निष्कासन को रोकने में समर्थ असितमृग रश्मियां सक्रिय हो उठती हैं, तव यहाँ प्रश्न यह है कि श्यापर्ण रश्मियों में ऐसी कौनसी रश्मियां विद्यमान हैं, जो उनके निष्कासन को रोकने में समर्थ हों तथा उनको निष्कासित करने वाले क्षत्रियरूप परमाणु आदि पदार्थों के वल की अत्यधिक तीक्ष्णता को नियंत्रित कर सकें।।

{अनूचानः = ऋषीणां निधिगोप इति ह्यनुचानमाहुः (श.१.७.२.३)} यहाँ संवाद की शैली के द्वारा ही ग्रन्थकार का कथन है कि श्यापर्ण नामक पूर्वोक्त ब्रह्म रश्मियों में प्रशस्त वलयुक्त मार्गवेय राम नामक रश्मियां विद्यमान होती हैं और वे रश्मियां उस समय प्रकट होने लगती हैं, जव घोष करती हुई श्यापर्ण नामक पूर्वोक्त ब्रह्म रश्मियां केन्द्रीय भाग से वाहर निष्कासित हो रही होती हैं। ये मार्गवेय राम रश्मियां {मृगयुः = य आत्मनो मृगान् कामयते स (तु.म.द.य.भा.१६.२७)} सद्योगामी और विभिन्न परमाणु आदि

पदार्थों को हरने वाली अथवा उनको अपने साथ संयुक्त करने वाली विभिन्न मरुदादि रश्मियों से उत्पन्न होती हैं। ये रश्मियां नाना प्रकार की क्रीड़ा करने वाली और तीक्ष्ण वलयुक्त परमाणु आदि पदार्थों को भी कंपाने में सक्षम होती हैं। इन रश्मियों को अनूचान भी कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि ये रश्मियां विभिन्न ऋषि प्राण रश्मियों से समृद्ध होती हुई और नाना प्रकार के पदार्थों को अनुकूलता से प्रकाशित और सक्रिय करने में समर्थ होती हैं। यहाँ पुनः इन मार्गवेय राम रूप रश्मियों एवं विश्वन्तर नामक पूर्वोक्त क्षत्रियरूप पदार्थ के मध्य संवाद की शैली में कहते हैं, जिसका आशय यह है कि मार्गवेय राम रश्मियों को भी विश्वन्तर एवं अन्य क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थ आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग से निष्कासित करने का प्रयत्न करते हैं, तब वे मार्गवेय राम रश्मियां उन क्षत्रियरूप पदार्थों का प्रतिरोध करती हुई नाना प्रकार की ब्रह्म संज्ञक रश्मियों को किंवा क्षत्र संज्ञक पदार्थों को बांधने का प्रयत्न करती हैं अर्थात् उनमें बन्धक बल उत्पन्न होने लगते हैं।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के निर्माण के समय जब संलयनीय पदार्थ केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित होता है, तब उसमें से कुछ पदार्थ ऐसा भी होता है, जो केन्द्रीय भागस्थ पदार्थ के साथ अच्छी प्रकार मिश्रित वा संलयित होने में सक्षम नहीं हो पाता। ऐसा पदार्थ तीव्र बलसम्पन्न विद्युत् तरंगों के द्वारा बाहर की ओर प्रक्षिप्त किया जाता है। उस समय तारे के केन्द्रीय भाग एवं सन्धि भाग के मध्य तीव्र ध्वनि तरंगों को उत्पन्न करती हुई हलचल होने लगती है और पदार्थ दोनों ओर दोलन करने लगता है। दोलनयुक्त ऐसा पदार्थ वह पदार्थ होता है, जो विद्युत् चुम्बकीय बलों से पर्याप्तरूप से युक्त नहीं होता है। इस कारण उसका संलयन सम्भव नहीं होता है किन्तु ऐसे पदार्थ में भी कुछ ऐसे अंश भी विद्यमान होते हैं, जो प्रबल विद्युत् चुम्बकीय बल से युक्त होते हैं। इनके कारण ही न्यून बलयुक्त पदार्थ संधि और केन्द्रीय भाग के बीच दोलन करने लगता है। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग पढ़ना अनिवार्य है।।

ॐ इति ३५.१ समाप्तः ॐ

ॐ अथ ३५.२ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. यत्रेन्द्रं देवताः पर्यवृञ्जन् विश्वरूपं त्वाष्ट्रमभ्यमंस्त, वृत्रमस्तृत यतीन् सालावृकेभ्यः प्रादादरुर्मघानवधीद्, बृहस्पतेः प्रत्यवधीदिति; तत्रेन्द्रं सोमपीथेन व्यार्ध्यतेन्द्रस्यानु व्यृद्धिं क्षत्रं सोमपीथेन व्यार्ध्यतापीन्द्रः सोमपीथेऽभवत्, त्वष्टुराऽमुष्य सोमं तद् व्यृद्धमेवाद्यापि क्षत्रं सोमपीथेन; स यस्तं भक्षं विद्याद् क्षत्रस्य सोमपीथेन व्यृद्धस्य येन क्षत्रं समृध्यते कथं ते वेदेरुत्थापयन्तीति।।
वेत्थ ब्राह्मण त्वं तं भक्षा३म्, वेद हीति; तं वै नो ब्राह्मण ब्रूहीति; तस्मै वै ते राजन्निति होवाच।।२।।

व्याख्यानम्- {अभ्यमंस्त = हिंसितवानिति सायणभाष्यम् (अम् = टूट पड़ना, आक्रमण करना - आप्टेकोश)} जब इन्द्रतत्त्व विश्वरूप त्वष्टा अर्थात् सबके प्रकाशक आदित्य लोक पर चारों ओर से आक्रमण करता है, उस समय वह वृत्र संज्ञक आच्छादक आसुर मेघ को नष्ट वा नियंत्रित करता है। {सालावृकः = शालावृकः = शालृ+अच्+टाप्+वृकः (चमकना, पूरित होना - आप्टेकोश)} इसके साथ ही वह नियंत्रित आसुर मेघ को {वृकः = वज्रनाम (निघं.२.२०), स्तेननाम (निघं.३.२४), विद्युत् (तु.म.द. ऋ.भा.१.१०५.११)} अपनी देदीप्यमान तीक्ष्ण वज्र रश्मियों से परिपूर्ण करके {अरुः = ऋच्छति प्राप्नोतीति अरुः, आदित्यो व्रणो वा (उ.को.२.११६), (व्रणः = व्रण+अच् - व्रण् = ध्वनि करना, चोट पहुंचाना - आप्टेकोश)} नाना ऐश्वर्यों को प्राप्त आदित्य लोक को सब ओर से अपनी वज्र रश्मियों के द्वारा बांधता एवं व्याप्त करता है। {वधः = वज्रनाम (निघं.२.२०), बलनाम (निघं.२.६)} इस कारण वह आदित्य लोक एक निश्चित आकार को ग्रहण करता हुआ आसुर मेघ से पृथक् होने लगता है और आसुर मेघ इन्द्र तत्त्व के वज्र के प्रहार से दूर होने लगता है। इसके साथ ही वह इन्द्र तत्त्व सूत्रात्मा वायुरूप बृहस्पति रश्मियों को और भी अधिक तीक्ष्ण बल से युक्त करता है। इसके कारण आसुर मेघरहित उस आदित्य लोक में यजन क्रिया समृद्ध होने लगती है। इन्द्र तत्त्व की इन पांच क्रियाओं से इन्द्र तत्त्व का सोमपीथ अर्थात् बल न्यून होने लगता है अर्थात् जिस समय इन्द्र तत्त्व आच्छादक आसुर मेघ पर आक्रमण करता है, उस समय उस इन्द्र तत्त्व की जो तीक्ष्णता होती है, वह धीरे-२ कम होती जाती है और यह तत्त्व सूत्रात्मा वायु रश्मियों के साथ मिलकर संयोजक बलों को उत्पन्न और समृद्ध करता है। इसके साथ-२ ही आदित्य लोक में विद्यमान, विशेषकर केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित होते हुए क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थ अपेक्षाकृत नियंत्रित बलों से युक्त होने लगते हैं अर्थात् उनकी अति तीक्ष्णता कम होने लगती है। यहाँ बल की न्यूनता होने का आशय यह है कि ये पदार्थ अपनी अति विध्वंसक तीव्रता को त्यागकर समुचित बलों से युक्त हो जाते हैं। इन्द्र तत्त्व आदित्य लोक में विद्यमान सोम रश्मियों को अवशोषित करके अपने बल को समृद्ध करता रहता है। इस कारण आदित्य लोक में इन्द्र तत्त्व के दो रूप विद्यमान रहते हैं, जिनमें से एक तीक्ष्ण इन्द्र तत्त्व सोम रश्मियों का अवशोषण करता हुआ आदित्य लोक में असुरादि रश्मियों को नष्ट वा नियंत्रित करता है और दूसरा इन्द्र तत्त्व अपेक्षाकृत न्यून परन्तु समुचित होकर सूत्रात्मा वायु रश्मियों के साथ मिश्रित होता हुआ संयोगादि कर्मों को सम्पादित व समृद्ध करता है। उधर आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग की ओर जाते हुए किंवा केन्द्रीय भाग में पहुँच चुके क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थ न्यून बलों से ही युक्त होते हैं। {भक्षः = प्राणो वै भक्षः (श.४.२.१.२६)} उन क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों को समृद्ध करने वाली प्राण आदि रश्मियां पूर्वोक्त श्यापर्ण एवं उनमें विद्यमान पूर्वोक्त भार्गवेय राम में ही विद्यमान होती हैं, जिनके अभाव में क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ आदित्य के केन्द्रीय भाग को समुचित स्वरूप प्रदान नहीं कर सकते। यहाँ भार्गवेय द्वारा यह प्रश्न उपस्थित किया गया

है कि ऐसा होने पर भी विश्वन्तर एवं उनके अनुवर्ती क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ श्यापर्ण एवं मार्गवेय राम रश्मियों को केन्द्रीय भाग से बाहर निष्कासित करने का प्रयत्न क्यों करते हैं?।।

उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि पुनः विश्वन्तर नामक क्षत्रिय पदार्थों से कहलवाते हैं- ''हे ब्राह्मण! क्या तुम उस भक्ष्य को जानते हो? 'हां जानता हूँ' - इस प्रकार (राम ने कहा)। हे ब्राह्मण! उस (क्षत्रिय के भक्ष्य) को हम लोगों से कहो' - इस प्रकार (विश्वन्तर ने पूछा)। 'हे राजन्! उस प्रकार के आप पूछने वाले के लिए मैं कहता हूं' - इस प्रकार (राम ने कहा)।''

इस संवाद का आशय यही है कि उन पूर्वोक्त श्यापर्ण एवं मार्गवेय राम रूप रश्मियों में कुछ ऐसी संयोज्य प्राण रश्मियां विद्यमान होती हैं, जो क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों को अनुकूलतापूर्वक तेज और बल से युक्त करके उनकी क्षीणता को दूर करके आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में होने वाली विभिन्न क्रियाओं को सम्पादित करने में समर्थ बनाती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- कॉस्मिक मेघों में जब तारों के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है, उस समय डार्क एनर्जी और डार्क मैटर उस निर्माणाधीन तारे को सब ओर से आच्छादित करके छिन्न-भिन्न करने का प्रयास भी करते हैं। वस्तुतः यह प्रक्रिया निर्माणाधीन तारे को शेष कॉस्मिक मेघ से पृथक् करने के लिए होती है। यह पृथक्करण डार्क मैटर और डार्क एनर्जी के द्वारा ही किया जाता है। इस क्रिया के सम्पन्न होने के पश्चात् डार्क मैटर और डार्क एनर्जी को उस विशाल लोक से दूर करना किंवा नियंत्रित करना भी अनिवार्य होता है। इसके लिए कॉस्मिक मेघ के अन्दर गर्म विद्युदावेशित तरंगें तीक्ष्णरूप से उत्पन्न होकर डार्क मैटर और डार्क एनर्जी पर प्रहार करती हैं, जिससे उस समय गम्भीर घोष उत्पन्न होने लगते हैं। ये विद्युदावेशित तरंगें उस विशाल लोक को चारों ओर से घेरकर गुरुत्वाकर्षण बल के द्वारा संघनित होने में सहयोग करती हैं, साथ ही विद्युदावेशित तीक्ष्ण तरंगों के द्वारा उस निर्माणाधीन तारे के अन्दर अनेक प्रकार की Nucleo-Synthesis क्रियाएं होने लगती हैं। इन क्रियाओं के होने तक उष्ण-विद्युदावेशित तरंगों की ऊर्जा भी कुछ कम होने लगती है। उन तरंगों की अन्य कणों के साथ अन्योऽन्य क्रिया से विभिन्न कण वा आयन तीव्र गुरुत्वाकर्षण बल के प्रभाव से नवनिर्मित केन्द्रीय भाग की ओर तेजी से प्रवाहित होने लगते हैं। तारों के अन्दर अनेक प्रकार की विद्युत् चुम्बकीय धाराएं प्रवाहित होने लगती हैं, जिनमें से कुछ धाराएं विभिन्न आयनों से क्रिया करके अनेक प्रकार के नवीन आयनों को उत्पन्न करती हैं, तो कुछ धाराएं अति तीव्र ऊर्जा से युक्त होकर तारे के अन्दर विद्यमान विभिन्न डार्क एनर्जी तरंगों को नष्ट वा नियंत्रित करती हैं। इस समय तारों के अन्दर कुछ पदार्थों का बाहर-भीतर पूर्वोक्तानुसार दोलन भी होने लगता है। उस दोलायमान पदार्थ में कुछ ऐसी भी सूक्ष्म प्राण रश्मियां होती हैं, जो तारों के केन्द्रीय भाग में प्रविष्ट होकर उनमें नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया को सम्पादित करने में सहयोग करती हैं।।

ॐ इति ३५.२ समाप्तः ॐ

❀ अथ ३५.३ प्रारभ्यते ❀

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. त्रयाणां भक्षाणामेकमाहरिष्यन्ति, सोमं वा दधि वाऽपो वा।।
स यदि सोमं, ब्राह्मणानां स भक्षो, ब्राह्मणांस्तेन भक्षेण जिन्विष्यसि; ब्राह्मणकल्पस्ते प्रजायामाजनिष्यत,-आदाय्यापाय्यावसायी यथाकामप्रयाप्यो; यदा वै क्षत्रियाय पापं भवति ब्राह्मणकल्पोऽस्य प्रजायामाजायत, ईश्वरो हास्माद्द्वितीयो वा तृतीयो वा ब्राह्मणतामभ्युपैतोः, स ब्रह्मबन्धवेन जिज्यूषितः।।
अथ यदि दधि, वैश्यानां स भक्षो, वैश्यांस्तेन भक्षेण जिन्विष्यसि, वैश्यकल्पस्ते प्रजायामाजनिष्यतेऽन्यस्य बलिकृदन्यस्याऽऽद्यो यथाकामज्येयो; यदा वै क्षत्रियाय पापं भवति, वैश्यकल्पोऽस्य प्रजायामाजायत, ईश्वरो हास्माद् द्वितीयो वा तृतीयो वा वैश्यतामभ्युपैतोः, स वैश्यतया जिज्यूषितः।।
अथ यद्यपः, शूद्राणां स भक्षः, शूद्रांस्तेन भक्षेण जिन्विष्यसि, शूद्रकल्पस्ते प्रजायामाजनिष्यते,ऽन्यस्य प्रेष्यः कामोत्थाप्यो यथाकामवध्यो; यदा वै क्षत्रियाय पापं भवति, शूद्रकल्पोऽस्य प्रजायामाजायत, ईश्वरो हास्माद्द्वितीयो वा तृतीयो वा शूद्रतामभ्युपैतोः स शूद्रतया जिज्यूषितः।।३।।

व्याख्यानम्- {दधि = अन्नं दधि (मै.३.२.६), अपामेष रसो यद्दधि (काठ.२८.५), इन्द्रियं वा एतदस्मिन् लोके यद्दधि (ऐ.८.२०), एतद्रूपा वै पशवो यद्दधि (काठ.११.२)। आपः = आपो वै सर्वा देवताः (ऐ.२.१६), आपो वै सर्वे कामाः (श.१०.५.४.१५), आपो वै सर्वे देवाः (श.१०.५.४.१४)।} यहाँ तीन प्रकार के भक्ष अर्थात् संयोज्य पदार्थों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि आदित्य लोकों के निर्माण में सोम रश्मियां दधि अर्थात् विभिन्न संयोज्य छन्दादि रश्मियां एवं आपः अर्थात् सभी प्रकार के कमनीय देव पदार्थ ब्रह्म आदि पदार्थों के द्वारा क्रमशः विशेष आकर्षणीय होते हैं। इनमें से एक-एक पदार्थ ब्रह्म आदि पदार्थों के द्वारा क्रमशः आकर्षित और सम्बन्धित होता है। यहाँ इनके आकर्षण क्रम की एक विशेष व्यवस्था होती है। ये परस्पर एक-दूसरे को यदृच्छया आकर्षित नहीं कर सकते हैं। इस क्रम को अगली कण्डिकाओं में दर्शाया गया है।।

उपर्युक्त तीन भक्षों में से प्रथम भक्ष अर्थात् संयोज्य पदार्थ सोम की चर्चा करते हुए कहते हैं कि सोम अर्थात् सूक्ष्म मरुद् रश्मियां पूर्वोक्त ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ का भक्ष होती हैं अर्थात् ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ इन मरुद् रश्मियों के प्रति विशेष आकर्षण का भाव रखते हैं। वे ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ इन्हीं मरुद् रश्मियों के साथ संगत होकर तृप्त होते हुए अपेक्षाकृत अधिक देदीप्यामान रूप को प्राप्त करते हैं। ये ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ इन सोम रूप मरुद् रश्मियों के साथ युग्म वनाकर विशेष दीप्ति और क्रिया से युक्त होकर नाना प्रकार के उत्पादन धर्मों से युक्त होने लगते हैं। इनसे उत्पन्न पदार्थ ब्राह्मणकल्प अर्थात् ब्राह्मण रूप पदार्थ के समान गुणधर्म वाले ही होते हैं। ये ब्राह्मण रूप पदार्थ और उनसे उत्पन्न पदार्थ निम्नलिखित गुणों से सम्पन्न होते हैं।
(१) आदायी - दूसरे परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को ग्रहण करने का स्वभाव और इस स्वभाव से युक्त पदार्थ आदायी कहलाते हैं। यहाँ 'आङ्' उपसर्ग का प्रयोग यह वतलाता है कि इन पदार्थों का आकर्षण वल इनके चारों ओर प्रभावी रहता है।

(२) आपायी – दूसरे पदार्थों को सब ओर से अवशोषित करने वाले पदार्थ आपायी कहलाते हैं। आदायी पदार्थों से इनका किंचित् भेद यह है कि आदायी पदार्थ अन्य पदार्थों को आकर्षित करके अपने साथ संगत कर लेते हैं, जबकि ये आपायी पदार्थ इससे आगे बढ़कर अन्य पदार्थों को आकृष्ट करके उनको अपने अन्दर समाहित कर लेते हैं।
(३) अवसायी – निरन्तर क्रियाशील रहने के स्वभाव से युक्त होने के कारण एवं इसके साथ ही विभिन्न बाधक रश्मि आदि पदार्थों को नष्ट करने के स्वभाव वाले होने के कारण अवसायी कहलाते हैं।
(४) यथाकामप्रयाप्यः – स्वतंत्रतापूर्वक अपने बलानुसार यदृच्छया गमन करने के कारण ये पदार्थ यथाकामप्रयाप्यः कहलाते हैं। इसके साथ ही जहाँ भी इनकी व्याप्ति की आवश्यकता होती है, वहाँ व्याप्त होने में ये सक्षम होते हैं।

इस प्रकार ब्राह्मण एवं इनसे उत्पन्न पदार्थ उपर्युक्त चार प्रकार के गुणों से युक्त होते हैं। जब क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थ अपने उत्कृष्ट तेज और और बल को किंचित् खोकर बार-२ किंचित् निर्बल होने लगते हैं, तब उनका स्वरूप ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों से उत्पन्न उपर्युक्त ब्राह्मणकल्प नामक पदार्थों के समान हो जाता है। यहाँ क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों के तीक्ष्ण तेज बलों की उपर्युक्त किंचित् निर्बलता के कारण का संकेत इस प्रकार मिलता है कि जब क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों की भक्षरूप सोम रश्मियों को अपने साथ संगत वा अपने में अवशोषित करते हैं, तब उनका तीक्ष्ण तेज और बल उस अवस्था को प्राप्त करने लगता है, जो अवस्था ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों से उत्पन्न पदार्थों की होती है। इन ऐसे ब्राह्मण रूप को प्राप्त हुए क्षत्रियरूप पदार्थों से उत्पन्न द्वितीय और तृतीय क्रम के पदार्थ भी इसी उपर्युक्त ब्राह्मणत्व गुण से सम्पन्न होते हैं किंवा क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ ही ब्राह्मणरूप पदार्थों में परिवर्तित हो जाते हैं और इस प्रकार के पदार्थ उपर्युक्त चारों गुणों से युक्त होकर अन्य पदार्थों के साथ संगमनीय आदि व्यवहारों को समृद्ध करते हैं।।

अब दूसरे भक्ष दधि की चर्चा करते हुए कहते हैं कि दधिरूप पदार्थ वैश्य संज्ञक पदार्थों का भक्ष्य होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि पूर्वोक्त वैश्य संज्ञक पदार्थ विभिन्न संयोज्य छन्दादि रश्मियों को विशेषरूप से आकर्षित और संगत करते हैं और इन संयोज्य छन्दादि रश्मियों के द्वारा ही वे वैश्य संज्ञक पदार्थ तृप्त, प्रकाशित और गतिशील होते हैं। इस प्रकार ये वैश्य संज्ञक पदार्थ इन दधिरूप छन्दादि रश्मियों के साथ युग्म वा मिथुन बनाकर अनेक प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करने में सक्षम होते हैं। इनसे उत्पन्न पदार्थ वैश्यकल्प कहलाते हैं, जो वैश्य संज्ञक पदार्थों के समान ही गुणधर्म वाले होते हैं। ये गुणधर्म निम्नानुसार प्रभाव दर्शाते हैं –
(१) बलिकृत् = {बलिम् = (बल संवरणे संचरणे च)} ये वैश्य संज्ञक पदार्थ क्षत्रियरूप पदार्थों के भोगरूप होते हैं अर्थात् उन्हीं के द्वारा गतिशील रहते हैं। क्षत्रियरूप पदार्थ इन वैश्यरूप पदार्थों को आच्छादित और गतिशील करते हैं। इस कारण ये पदार्थ 'बलिकृत्' कहे जाते हैं।
(२) अन्यस्याद्य = ये पदार्थ क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों के भक्ष्यरूप होने से सदैव उनके नियंत्रण में ही रहते हैं और उन्हीं के बल आदि गुणों के द्वारा अपने नाना प्रकार के कार्यों को सम्पादित करते हैं।
(३) यथाकामज्येयः = {"ज्या ऽभिभवे इति धातुः" इति सायणभाष्यम्} ये वैश्य संज्ञक पदार्थ सदैव क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों से पराभूत रहकर उनके अनुसार ही नाना क्रियाओं को सम्पन्न करने में सहायक होते हैं और उनके द्वारा ही उत्पन्न होकर {अभिभवः = प्रबलता, उद्‌भव, विस्तार - आप्टेकोश} प्रबलता और विस्तार को प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त तीन गुणों से युक्त वैश्य संज्ञक पदार्थ अपने जैसे गुणधर्म वाले पदार्थों को ही उत्पन्न करते हैं। जब क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ पूर्व कण्डिका में वर्णितानुसार अपने तीक्ष्ण तेज और बल को त्यागकर किंचित् न्यून तेज, बल से युक्त हो जाते हैं, तब वे पूर्वोक्त वैश्यकल्प पदार्थों को ही उत्पन्न करने वाले होते हैं। ये क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ जब वैश्य संज्ञक पदार्थों के भक्षरूप दधि संज्ञक छन्दादि रश्मियों के साथ संगत होकर उन्हें अवशोषित कर लेते हैं, उस समय वे न्यून बलों से युक्त हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में वे क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ द्वितीय और तृतीय क्रम में वैश्य कल्प पदार्थों को उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं किंवा वे क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ ही बार-२ न्यून बल होने के कारण वैश्य संज्ञक पदार्थों में परिवर्तित हो जाते हैं और इसी रूप में निरन्तर बन रहते हैं।।

अब शूद्ररूप पूर्वोक्त तीव्र ज्वालाओं से युक्त पदार्थ के भक्ष की चर्चा करते हुए कहते हैं कि इसके भक्ष आप संज्ञक पदार्थ हैं अर्थात् विभिन्न कमनीय देव परमाणु इसके भक्षरूप होते हैं। इनके साथ संगत होकर शूद्ररूप पदार्थ इनके द्वारा तृप्त, प्रकाशित और गतिशील होते हैं। ये शूद्ररूप पदार्थ अपने भक्षरूप देव परमाणुओं के साथ युग्म बनाकर नाना प्रकार के उत्पादन धर्मों को समृद्ध करते हैं। इनके द्वारा उत्पन्न पदार्थ शूद्रकल्प कहलाते हैं, जो शूद्ररूप पदार्थों के तुल्य ही गुणधर्म वाले होते हैं। इन गुणों के कारण शूद्ररूप पदार्थ निम्नलिखित व्यवहारों से युक्त होते हैं-

(१) अन्यस्य प्रेष्यः = ये पदार्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य इन तीनों ही पदार्थों के द्वारा प्रेरित होकर कार्य करते हैं। इनकी प्रेरणा के अभाव में ये कोई भी कार्य करने में असमर्थ होते हैं। यहाँ तक कि इनकी उत्पत्ति भी अन्य तीनों पदार्थों से ही होती है।

(२) कामोत्थाप्य = इसका अर्थ यह है कि ये पदार्थ अन्य पदार्थों के बल और तेज के अनुसार सक्रिय होकर ऊर्ध्वगमन करने वाले होते हैं। इसका अर्थ यह है कि इनके कारणरूप ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि पदार्थ जितने तीव्र तेज बल आदि से युक्त होते हैं, तदनुसार ही इन पदार्थों की ऊर्ध्वगामी ज्वालाएं होती हैं।

(३) यथाकामवध्य = इससे तात्पर्य है कि ये पदार्थ ब्राह्मण आदि पदार्थों के द्वारा आवश्यकतानुसार संपीडित करके बलयुक्त किये जाते हैं और कहीं-२ नष्ट वा नियंत्रित भी किये जाते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त तीन गुणों से युक्त शूद्र संज्ञक पदार्थ अपने ही समान गुणधर्म वाले पदार्थों को उत्पन्न करते हैं। जब क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ शूद्ररूप पदार्थों के भक्षरूप विभिन्न देव परमाणुओं को अपना भक्ष बनाते हैं किंवा उनको अवशोषित वा संगत करने लगते हैं, उस समय वे अपने अति तीक्ष्ण बल, तेज को त्यागकर न्यून बल से युक्त होने लगते हैं, जिससे वे क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ स्वयं शूद्ररूप में परिवर्तित होकर आगामी २-३ चरणों में भी शूद्रकल्प पदार्थों को उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं और फिर इसी रूप में निरन्तर बने रहते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में विभिन्न मृदु एवं तीव्र बलों से युक्त नाना प्रकार के कण और विकिरण मिलकर और उनसे भी पूर्व विभिन्न प्राण और छन्दादि रश्मियां मिलकर अन्त में तीव्र ज्वालाओं से युक्त विशाल तारे आदि लोकों को उत्पन्न करते हैं। लोक निर्माण की इस प्रक्रिया में विभिन्न तीव्र ऊर्जायुक्त तरंगें जब अपनी ऊर्जा को कुछ मात्रा में खोने लगती हैं, तब वे ही तरंगें न्यून ऊर्जा वाली अन्य तरंगों में परिवर्तित होती रहती हैं। वे तरंगें एवं विभिन्न प्रकार के कण अपने जैसे समान गुणधर्म वाले पदार्थों को उत्पन्न करते हैं। विभिन्न कण दूसरे कणों में और विकिरण भी अन्य विकिरणों में कारणविशेष उपस्थित होने पर परिवर्तित होते रहते हैं। त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां सबसे अधिक बलवती होती हैं। वे ही क्षीणबल होने पर गायत्री, जगती आदि अन्य छन्द रश्मियों में परिवर्तित होती रहती हैं। उधर गायत्री आदि छन्द रश्मियां भी त्रिष्टुबादि छन्द रश्मियों को उत्पन्न करती हैं। विभिन्न छन्दादि रश्मियां जहां संपीडित होकर विद्युत् चुम्बकीय तरंगों को उत्पन्न करती हुई ऊर्ध्वगामी ज्वालाओं को भी उत्पन्न करती हैं, वहीं आवश्यकता होने पर ये उन ज्वालाओं को मन्द वा शान्त करने में भी समर्थ होती हैं। **सृष्टि के सभी जड़ पदार्थ एक-दूसरे में परिवर्तित हो सकते हैं और होते रहते हैं।** जो जितना सूक्ष्म पदार्थ होता है, उसकी उतनी ही अधिक व्यापकता होती है। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

ॐ इति ३५.३ समाप्तः ॐ

अथ ३५.४ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. एते वै ते त्रयो भक्षा राजन्निति होवाच; येषामाशां नेयात् क्षत्रियो यजमानः।। अथास्यैष स्वो भक्षो न्यग्रोधस्यावरोधाश्च फलानि चौदुम्बराण्याश्वत्थानि प्लाक्षाण्यभिषुणुयात्तानि भक्षयेत्, सोऽस्य स्वो भक्षः।।
यतो वा अधि देवा यज्ञेनेष्ट्वा स्वर्गं लोकमायंस्तत्रैतांश्चमसान्न्युब्जंस्ते न्यग्रोधा अभवन्, न्युब्जा इति हाप्येनानेतर्ह्याचक्षते; कुरुक्षेत्रे ते ह प्रथमजा न्यग्रोधानां तेभ्यो हान्येऽधिजाता।।
ते यन्न्यञ्चोऽरोहंस्तस्मान्न्यङ्रोहति न्यग्रोहो, न्यग्रोहो वै नाम; तन्न्यग्रोहं सन्तं न्यग्रोध इत्याचक्षते परोक्षेण; परोक्षप्रिया इवं हि देवाः।।४।।

व्याख्यानम्- पूर्वखण्ड में वर्णित तीनों ही भक्षरूप पदार्थ सामान्यरूप से क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों के लिए वर्जित हैं। आदित्य केन्द्रों की ओर प्रवहमान क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ इन पूर्वोक्त तीनों ही प्रकार के पदार्थों के साथ प्रायः संगत नहीं होते। **पूर्वखण्ड में जो चर्चा की गयी है, वह असामान्य परिस्थितियों की चर्चा है।** इसी कारण वहां उन वर्जनीयभक्षरूप पदार्थों के क्षत्रियरूप पदार्थों के साथ संगत होने को पापरूप कहा गया है। यहाँ यह वात ग्रन्थकार ने मार्गविय राम रूप पदार्थ के द्वारा राजन्य रूप विश्वन्तर से कहलवायी है।।

{न्यग्रोधः = न्यग् उपपदे रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च धातोरच् - प्रत्ययः हस्य धकारश्छान्दसः। न्यक् = नि+अञ्चु गतिपूजनयोः धातोः क्विन् (वै.को. - आ.राजवीर शास्त्री), परोक्षमिव ह वा एष सोमो राजा यन्न्यग्रोधः (ऐ.७.३१)। प्लक्षः = (प्लक्ष अदने+ घञ्)} अव क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ के भक्षरूप पदार्थ का वर्णन करते हुए कहते हैं कि इस पदार्थ के {फलम् = अन्नं वै फलम् (मै.३.१.२)} भक्षरूप पदार्थ निम्नानुसार हैं-
(१) न्यग्रोध = निश्चित वा तीव्र गति से गमन करती हुई देदीप्यमान सोम रश्मियां न्यग्रोध कहलाती हैं। इन सोम रश्मियों के अवरोध एवं फलरूप पदार्थ क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों के भक्ष कहलाते हैं। अवरोध और फल के विषय में अगले खण्ड की प्रथम कण्डिका द्रष्टव्य है।
(२) उदुम्बर = उदुम्बर के विषय में ७.१५.१ द्रष्टव्य है। इस उदुम्बर नामक पदार्थ के फलरूप पदार्थ ही क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ के भक्ष्य हैं।
(३) अश्वत्थ = तीव्र और व्यापक गति से गमन करने वाली इन्द्र वा मरुद् रश्मियों में विद्यमान पदार्थ अश्वत्थ कहलाता है। अश्वत्थ के फल संज्ञक पदार्थ इसके भक्ष कहलाते हैं। इनके विषय में ७.३२.१ भी द्रष्टव्य है।
(४) प्लक्षः = {प्लोषति दहतीति प्लक्षः (उ.को.३.६३)} इस पर टिप्पणी करते हुए उणादिकोष भाष्य के सम्पादक पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने लिखा है-
"चार्थे द्वन्द्वः (पा.अ.२.२.२६) सूत्रभाष्ये 'प्रक्षरतीति प्लक्षः' इत्युक्तम्" इस प्रकार सवको अपने अन्दर शोषित करने वाला एवं सवको जलाने वाला, जो प्रकृष्ट रूप से क्षरित होता रहता है, उस पदार्थ को प्लक्ष कहते हैं। इसके विषय में ग्रन्थकार ने आगे कहा है-
"यशसो वा एष वनस्पतिरजायत यत्प्लक्षः" (ऐ.७.३२)
"स्वाराज्यं च ह वा एतद्वैराज्यं च वनस्पतीनाम् (यत्प्लक्षः)" (ऐ.७.३२;८.१६)

इस विषय में उपर्युक्त खण्डों में ही विचार किया जाएगा।

उपर्युक्त चार प्रकार के पदार्थों के अवरोध वा फल संज्ञक भागों का संयुक्त और संपीडित रूप ही क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों का अपना भक्ष होता है। इन चारों प्रकार के पदार्थों के संपीडन से कुछ रश्मि आदि पदार्थ उत्पन्न होने वा रिसने लगते हैं। वस्तुतः वे ही क्षत्रियरूप पदार्थों के भक्ष होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये पदार्थ ही क्षत्रिय पदार्थों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से संगत वा अवशोषित होते हैं। यहाँ यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि जब सोम पदार्थ को ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों का भक्ष कहा गया है, तब यहाँ न्यग्रोधरूप देदीप्यमान सोम रश्मियों को क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों का भक्ष कैसे कहा गया है? इसके उत्तर में हमारा मत यह है कि सामान्य सोम रश्मियां ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों का भक्ष अवश्य होती हैं परन्तु जब वे ही सोम रश्मियां देदीप्यमान होकर आशुगामिनी हो चुकी होती हैं, उनके फलरूप सूक्ष्म अंश क्षत्रियरूप पदार्थों का भक्ष होते हैं और ये अंश भी जब अन्य उदुम्बर आदि पदार्थों में मिश्रित हो चुके होते हैं, तभी ये क्षत्रियरूप पदार्थों के भक्ष हो पाते हैं, अन्यथा नहीं।।

आदित्य लोकों के निर्माण की प्रक्रिया में जिस केन्द्रीय बिन्दु वा स्थान में विभिन्न प्राण रश्मियां एवं अन्य छन्दादि रश्मियां वा परमाणु आदि पदार्थ संगत होने प्रारम्भ होते हैं, उस स्थान को ही 'कुरुक्षेत्र' कहा जाता है। इस विषय में कुछ अन्य ऋषियों का कथन इस प्रकार है-

"तस्मादाहुः कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनमिति" (श.१४.१.१.२)

"ते देवा अब्रुवन्नेतावती वाव प्रजापतेर्वेदिर्यावत् कुरुक्षेत्रमिति" (तां.२५.१३.३) इन वचनों से भी यह प्रमाणित होता है कि देवरूप उपर्युक्त प्राणादि पदार्थों का यजन क्षेत्र ही कुरुक्षेत्र कहलाता है। यहाँ सायण आदि विद्वानों ने हरयाणा राज्य में स्थित कुरुक्षेत्र नामक स्थान को कुरुक्षेत्र माना है। जैसा कि पाठक अवगत हैं कि हम इस ग्रन्थ का आधिदैविक व्याख्यान कर रहे हैं, उसमें इस ऐतिहासिक स्थान का कोई महत्व नहीं हैं। इन विद्वानों की दृष्टि में कुरुक्षेत्र नामक स्थान में कभी देवों ने यज्ञ किया था। ये विद्वान् उपर्युक्त दोनों वचनों से भी इस कुरुक्षेत्र नामक स्थान का ही ग्रहण कर सकते हैं, लेकिन ऐसा करना ब्राह्मण ग्रन्थों के मूल आशय के सर्वथा विपरीत है। इन विद्वानों ने वेद अथवा ब्राह्मण ग्रन्थों के पदों की यौगिकता को किंचिदपि नहीं समझा। 'कुरुः' पद के विषय में ऋषि दयानन्द उणादिकोष भाष्य १.२४ में लिखते हैं- "यः करोति येन वा स कुरुः"

यहाँ इस प्रसंग में प्राण व छन्दादि रश्मियां ही 'कुरु' कहलाती हैं, क्योंकि सर्ग प्रक्रिया के सभी कार्यों की कर्त्री वा करण ये ही होती हैं। कोई पूर्वाग्रही विद्वान् 'कुरु' शब्द से ऐतिहासिक कुरु राजा का ही ग्रहण करे, तो हम उसके भ्रम निवारण के लिए महर्षि जैमिनी को उद्धृत करते हैं-

"अप्येतर्हि वसिष्ठाः कुरुष्वप्रयाश्चैव मुख्याश्च मन्यन्ते....."। (जै.ब्रा.२.२१७) इस प्रमाण से यह सिद्ध है कि वसिष्ठ अर्थात प्राण रश्मियां ही कुरु हैं। यहाँ कोई महानुभाव 'वसिष्ठ' शब्द से ऐतिहासिक महर्षि वसिष्ठ का ग्रहण करे, तो उन्हें कुरुवंशी कदापि सिद्ध नहीं किया जा सकता। इस कारण यहाँ प्राण तत्त्व का नाम ही कुरु एवं वसिष्ठ है। अपि च यहाँ वसिष्ठ बहुवचन में उद्धृत होने से भी किसी ऐतिहासिक ऋषि वसिष्ठ का ग्रहण करना संभव नहीं है। 'कुरुक्षेत्र' शब्द के विषय में महर्षि जैमिनी का कथन है-

"शर्यणावद्ध नाम कुरुक्षेत्रस्य जघनार्धे सरस्कम्।" (जै.ब्रा.३.६४) {शर्यणः = अन्तरिक्षदेशः (म.द. ऋ.भा.१.८४.१४)} यहाँ 'सरस्कम्' अर्थात् सरस् = वाग् रश्मियां एवं कम् = प्राण रश्मियां, दोनों से युक्त तीक्ष्ण बल सम्पन्न आकाश तत्त्व कुरुक्षेत्र नामक स्थान का आधार रूप होता है। यहाँ 'जघनार्ध' शब्द का प्रयोग यह बतलाता है कि आदित्य लोक के इस नवनिर्मित केन्द्र बिन्दु में दोनों ही प्रकार की रश्मियां तीक्ष्ण एवं व्यापक बलों से युक्त होती हैं किंवा तीक्ष्णता से एक-दूसरे में व्याप्त होने वाले बलों से युक्त होती हैं।

इस सबके लिखने का प्रयोजन यह है कि कोई विद्वान् इस प्रकरण का ऐतिहासिक अर्थ न ग्रहण करे। इस कुरुक्षेत्ररूपी केन्द्रीय स्थान में नाना प्रकार की रश्मियों एवं परमाणु आदि पदार्थों के पारस्परिक संगम से स्वर्गलोक प्रकट होता है अर्थात् ये ही स्थान आदित्य लोकों के परिपूर्ण केन्द्रीय भाग के रूप में प्रकट होते हैं। इसी क्षेत्र में मेघरूप पदार्थ पूर्णरूप से सम्पीडित हो चुके होते हैं और वे सम्पीडित मेघरूप पदार्थ ही न्यग्रोध रूप में प्रकट होते हैं। इसका आशय यह है कि इस भाग में सोम रश्मियां एवं विभिन्न उत्पन्न परमाणु आदि पदार्थ अति देदीप्यमान एवं निश्चित और निरन्तर गति से युक्त होते हैं। इस

केन्द्रीय भाग में सब ओर से मेघरूप पदार्थ मानो अधोमुख होकर लटके हुए रहते हैं और यहीं से प्रकाशित भी होते रहते हैं। सोम रश्मियां एवं विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ भी सर्वप्रथम इसी क्षेत्र में देदीप्यमान अवस्था को प्राप्त करते हैं और फिर शनैः-२ सम्पूर्ण लोक को इसी प्रकार प्रकाशित करते हैं।।

यहाँ 'न्यग्रोध' पद का निर्वचन करते हुए कहते हैं कि वे उपर्युक्त मेघरूप पदार्थ अधोमुखी होकर ही अर्थात् केन्द्रीय भागों की ओर उन्मुख होकर ही विशेषरूप से आदित्य लोकों के बीज का वपन करते हैं और फिर इसी प्रकार उन लोकों को उत्पन्न और समृद्ध भी करते हैं। उन लोकों वा उनके केन्द्रीय भागों में न्यग्रोधरूप पूर्वोक्त पदार्थ भी इसी प्रकार उत्पन्न व समृद्ध होता है। इसी कारण वह पदार्थ 'न्यग्रोह' कहलाता है, जो निश्चित और नित्य गति करता हुआ व्याप्त होता जाता है। यही पदार्थ अपने क्षेत्र में व्याप्त पदार्थ को रोकने और घेरने वाला होने से 'न्यग्रोध' कहलाता है। यह पदार्थ देदीप्यमान होता हुआ परोक्षरूप से ही उस पदार्थ को रोकने वा घेरने का कार्य करता है, जिस प्रकार कि विभिन्न देव अर्थात् प्राण वा छन्दादि रश्मियां भी परोक्षरूप से ही विभिन्न पदार्थों को आकर्षित व प्रकाशित करती हैं। इस प्रकार न्यग्रोह नामक यह पदार्थ परोक्षरूप से देदीप्यमान सोम का रूप अर्थात् न्यग्रोधरूप धारण करता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्तानुसार **विभिन्न सूक्ष्म रश्मियों अथवा विकिरणों का एक-दूसरे में परिवर्तित होना सृष्टि की सामान्य क्रिया नहीं है, बल्कि यह एक असामान्य प्रक्रिया है, जो कभी-२ और कहीं-२ ही हुआ करती है।** सामान्य प्रक्रिया यह है कि विभिन्न कण वा तरंगें अपने ही स्वरूप को बनाये रखती हैं। तारों के केन्द्रीय भाग में अथवा उनकी ओर जाते हुए विभिन्न प्रकार के कण अनेक प्रकार की तीव्र ऊर्जा से युक्त रश्मियों को अवशोषित करने वाले होते हैं। इन रश्मियों के विषय में व्याख्यान भाग पठनीय है। जब किसी कॉस्मिक मेघ के अन्दर किसी तारे का जन्म होता है, तब सर्वप्रथम एक बिन्दुरूप केन्द्रीय भाग में विभिन्न प्राण एवं वाग् रश्मियां तीक्ष्ण बलों से युक्त होकर परस्पर तेजी से संगत होने लगती हैं। शनैः-२ वह बिन्दुरूप स्थान विस्तार को प्राप्त होता हुआ कॉस्मिक मेघ को अपनी ओर तेजी से आकृष्ट करने लगता है। इसके साथ ही कॉस्मिक मेघ में से रिस-२ कर अनेकों प्रकार की रश्मियां उस केन्द्रीय भाग की ओर आने लगती हैं। धीरे-२ यह भाग अति तीव्र तप्त होता हुआ एक तारे को जन्म देने लगता है। विशेष जानकारी हेतु व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।
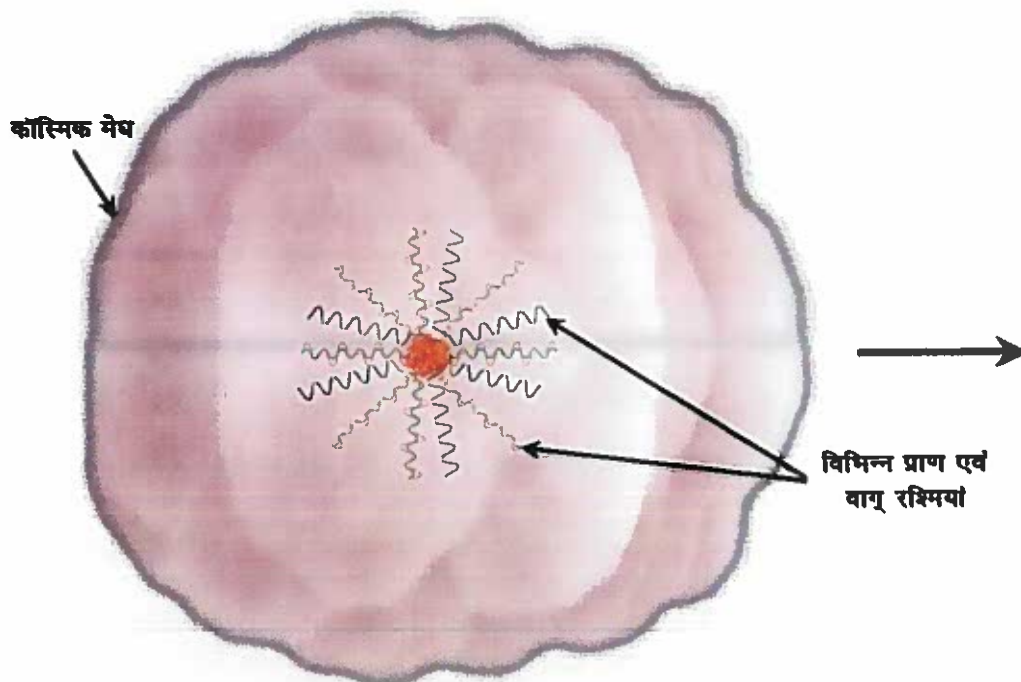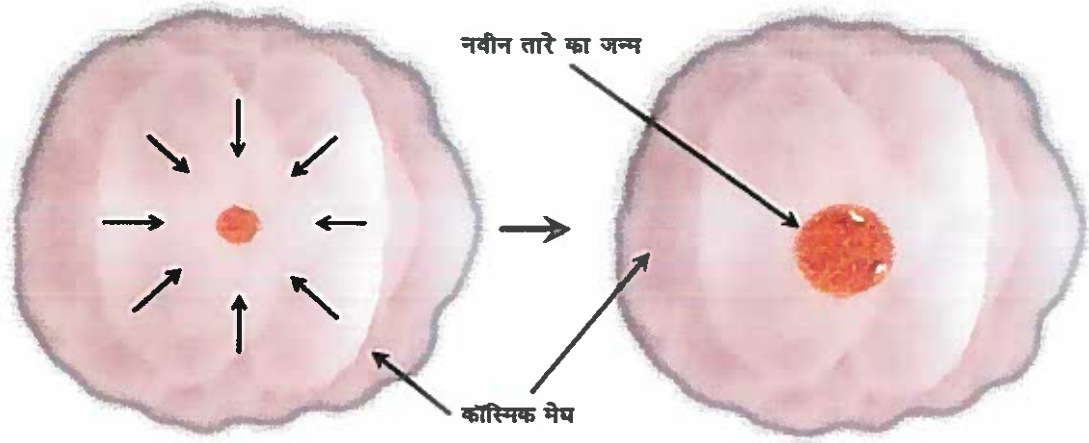
चित्र ३५.१ कॉस्मिक मेघ से तारे के निर्माण की प्रक्रिया

ॐ इति ३५.४ समाप्तः ॐ

अथ ३५.५ प्रारभ्यते

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. तेषां यश्चमसानां रसोऽवाङैत्, तेऽवरोधा अभवन्नथ य ऊर्ध्वस्तानि फलानि।। एष ह वाव क्षत्रियः स्वाद्भक्षान्नैति, यो न्यग्रोधस्यावरोधांश्च फलानि च भक्षयत्युपाह परोक्षेणैव सोमपीथमाप्नोतिः, नास्य प्रत्यक्षं भक्षितो भवति; परोक्षमिव ह वा एष सोमो राजा यन्न्यग्रोधः, परोक्षमिवैष ब्रह्मणो रूपमुपनिगच्छति यत्क्षत्रियः, पुरोधयैव दीक्षयैव प्रवरेणैव।।
क्षत्रं वा एतद्वनस्पतीनां यन्न्यग्रोधः, क्षत्रं राजन्यो, नितत इव हीह क्षत्रियो राष्ट्रे वसन् भवति प्रतिष्ठित इव, नितत इव न्यग्रोधोऽवरोहैर्भूम्यां प्रतिष्ठित इव।।
तद्यत्क्षत्रियो यजमानो न्यग्रोधस्यावरोधांश्च फलानि च भक्षयत्यात्मन्येव तत्क्षत्रं वनस्पतीनां प्रतिष्ठापयति, क्षत्र आत्मानम्।।
क्षत्रे ह वै स आत्मनि क्षत्रं वनस्पतीनां प्रतिष्ठापयति, न्यग्रोध इवावरोधैर्भूम्यां प्रति राष्ट्रे तिष्ठत्युग्रं हास्य राष्ट्रमव्यथ्यं भवति य एवमेतं भक्षं भक्षयति क्षत्रियो यजमानः।।५।।

व्याख्यानम्– पूर्वोक्त प्रकरण को आगे बढ़ाते हुए अवरोध और फल नामक अंशों के स्वरूप को बतलाते हुए कहते हैं कि सम्पीडित होते हुए मेघरूप पदार्थों का रसरूप पदार्थ, जो नीचे की ओर अर्थात् केन्द्र बिन्दु की विपरीत दिशा की ओर गमन करता है, उस सूक्ष्म रसरूप अंश को अवरोध कहते हैं और जो सूक्ष्म पदार्थ ऊर्ध्व दिशा में अर्थात् केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित होता है, वह फल कहलाता है। {रसः = वाङ्नाम (कौत्सव्य-निरुक्त-निघण्टु १०२), उदकनाम (निघं.१.१२), अन्ननाम (निघं.२.७)} यहाँ यह संकेत मिलता है, कि जब मेघरूप विशाल पदार्थ केन्द्र बिन्दु की ओर संपीडित होने लगता है, तब कुछ संयोजक एवं सेचक बलों से युक्त वाग् रश्मियां केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित होने लगती हैं, तो कुछ अन्य इन्हीं गुणों से युक्त वाग् रश्मियां विपरीत दिशा में भी प्रवाहित होती हैं। केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित रश्मियां फलरूप होकर लोक निर्माण, विशेषकर केन्द्रीय भाग के निर्माण को पूर्णता प्रदान करने में विशेष सहयोग करती हैं, इसी कारण इनको 'फल' कहते हैं। इसके अतिरिक्त जो रश्मियां विपरीत दिशा की ओर गमन करती हैं, वे आदित्य लोक के शेष भाग को केन्द्रीय भाग के ऊपर पृथक् ही रोके रखती हैं। इस कारण इन्हें 'अवरोध' कहा जाता है। यहाँ स्पष्टतः ये अवरोध नामक सूक्ष्म रश्मियां आदित्य लोकों के सन्धि भाग में उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों की ओर स्थित जंघारूप अक्षों, जिनकी चर्चा पूर्व में अनेकत्र की गयी है, में ही व्याप्त होकर उन्हें अवरोधक वा धारक बलों से युक्त करने में सहायक होती हैं। ये अवरोध एवं फल संज्ञक रश्मियां पूर्वखण्ड की द्वितीय कण्डिका में वर्णित न्यग्रोध आदि चार प्रकार के पदार्थों से सम्बन्ध रखती हैं।।

यहाँ पूर्वोक्त क्षत्रियरूप पदार्थ के भक्ष के विषय में कहते हैं कि जो परमाणु आदि पदार्थ पूर्वोक्त न्यग्रोधरूप देदीप्यमान सोम रश्मियों के अवरोध और फलरूप दोनों ही दिशाओं में प्रवाहित होने वाले सूक्ष्म अंशों को ग्रहण वा अवशोषित करते हैं, वे अपने क्षत्रियरूप समुचित तीक्ष्ण तेज और बल से सदैव युक्त रहते हैं। इसके साथ ही वे अपने भक्षरूप सूक्ष्म पदार्थों से भी निरन्तर संगत बने रहते हैं। इस प्रकार वे क्षत्रियरूप पदार्थ ब्राह्मणरूप पदार्थों की भक्षरूप सोम रश्मियों का परोक्षरूप से भक्षण करते हैं।

यहाँ परोक्षरूप इस कारण कहा गया है, क्योंकि ये पदार्थ न्यग्रोधरूप में विद्यमान सोम रश्मियों का ही भक्षण करते हैं, न कि सामान्य एवं मृदुरूप में विद्यमान सोम रश्मियों का। इस प्रकार यह प्रत्यक्ष सोम रश्मियों का प्रत्यक्ष भक्षण नहीं माना जाता। सोम रश्मियां सूक्ष्म मरुद् रश्मियों के रूप में विद्यमान होती हैं, यह बात हम इस ग्रन्थ में अनेकत्र लिख चुके हैं और मरुद् रश्मियां प्रारम्भ में न्यून तेज-ताप से युक्त होती हैं। उनका यही रूप ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों का भक्ष होता है। जब ये ही मरुद् रश्मियां किन्हीं प्रक्रिया विशेषों के चलते विशेष देदीप्यमान एवं आशुगामिनी हो जाती हैं, तब उपर्युक्तानुसार ये ही क्षत्रियरूप पदार्थों का भक्ष हो जाती हैं। इसे ही सोम का परोक्ष भक्षण कहा गया है। यह परोक्षरूप देदीप्यमान सोम ही न्यग्रोध कहलाता है। विभिन्न क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ ७.१६.१ के अनुसार परोक्षरूप से ही ब्राह्मणत्व के गुणों से युक्त होते हैं और परोक्षरूप से ही ये क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ ७.२५.१ में वर्णित दीक्षित पुरोहित एवं प्रवर रूपों को प्राप्त करते हैं अर्थात् ये सभी क्रियाएं परोक्ष ही होती हैं। इसी प्रकार क्षत्रिय पदार्थों का सोम भक्षण भी परोक्षरूप में ही होता है, इसी बात को यहाँ दृढ़ता से कहा गया है।।

{वनस्पतिः = सोमो वै वनस्पतिः (मै.१.१०.६), अग्निर्वै वनस्पतिः (कौ.ब्रा.१०.६), (वनम् = रश्मिनाम - निघं.१.५)} पूर्वोक्त न्यग्रोधरूप देदीप्यमान सोम रश्मियां विभिन्न रश्मियों के पालक और रक्षक सोम तत्त्व के बीच एवं विभिन्न आग्नेय रश्मियों के मध्य क्षत्ररूप होती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये रश्मियां नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों एवं रश्मियों के छेदन-भेदन में समर्थ होती हैं। इसके साथ ही इन गुणों से युक्त होकर वे राजन्यरूप भी होती हैं। {राजन्यः = ओजः क्षत्रं वीर्यं राजन्यः (ऐ. ८.२), वृषा वै राजन्यः (तां.६.१०.६)} इसका तात्पर्य यह है कि इन्हीं न्यग्रोधरूप सोम रश्मियों के कारण विभिन्न क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थ सम्पीडक एवं उत्पादक तेज और बल से युक्त होकर नाना पदार्थों को उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं और इन्हीं के कारण वे विशेष प्रकाशमान भी होते हैं। {राष्ट्रम् = राष्ट्रं सप्तदशः (स्तोमः) (तै.ब्रा.१.८.८.५)} विभिन्न क्षत्ररूप रश्मियां वा परमाणु आदि पदार्थ राष्ट्र अर्थात् आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग (देखें ७.२२.१) में निरन्तर संचरित होती हुई व्याप्त और प्रतिष्ठित होती हैं। इन आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग में सप्तदश स्तोमरूप गायत्री छन्द रश्मियों की विशेष विद्यमानता होती है। ये क्षत्रियरूप परमाणु आदि पदार्थ इन रश्मियों में विशेषरूप से व्याप्त होकर उस केन्द्रीय भाग को आधार प्रदान करते हैं अर्थात् उस केन्द्रीय भाग में होने वाली विभिन्न क्रियाओं को जन्म देते वा समृद्ध करते हैं। इसी प्रकार न्यग्रोधरूपी क्षत्र संज्ञक रश्मियां भी उन केन्द्रीय भागों में निरन्तर व्याप्त होती हुई {भूमि = भूमिमारभ्य प्रकृतिपर्यन्तं सर्वं जगत् (म.द.य.भा.३१.१ - ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका), यदभवत्तद् भूमिः (काठ.८.२)} वहाँ विद्यमान सभी पदार्थों में प्रतिष्ठित होती हैं। इसके साथ ही वे रश्मियां अधोमुख हुई मेघरूप पदार्थों की ओर प्रवाहित होती हुई उनमें भी निरन्तर व्याप्त और प्रतिष्ठित होती हैं। यह चर्चा हम पूर्व में कर चुके हैं। वहाँ उस विषय को और अधिक स्पष्ट किया गया है।।

विभिन्न क्षत्रियरूप परमाणु आदि पदार्थ जब संयोज्य बलों से विशेष युक्त होते हैं तथा आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित हो रहे होते हैं, तब वे पूर्वोक्त न्यग्रोधरूप रश्मियों के फल और अवरोध संज्ञक अर्थात् केन्द्रीय भाग की ओर तथा विपरीत दिशा में प्रवाहित होती हुई देदीप्यमान सोम रश्मियों का भक्षण करते हैं। ये सोम रश्मियां, सोम रश्मियों के मध्य स्वयं क्षत्ररूप होती हैं। इस कारण क्षत्रियरूप परमाणु आदि पदार्थ इन क्षत्ररूप सोम रश्मियों का भक्षण करके मानो अपने ही क्षत्ररूप को प्रतिष्ठित एवं समृद्ध करते हैं। इस प्रकार वे क्षत्ररूप सोम रश्मियां क्षत्रियरूप परमाणु आदि पदार्थों में पूर्णरूप से व्याप्त होकर निरन्तर विचरण करती रहती हैं।।

जो क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थ क्षत्र संज्ञक उपर्युक्त सोम रश्मियों का भक्षण करते हैं, वे सोम और अग्नि दोनों ही प्रकार की रश्मियों को अपने अन्दर प्रतिष्ठित करते हैं। विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को उत्पन्न करने में अग्नि और सोम दोनों ही तत्त्वों के मेल की आवश्यकता होती है। इस कारण आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों में ये दोनों ही तत्त्व विद्यमान होते हैं। इन तत्त्वों में क्षत्रियरूप पदार्थ प्रतिष्ठित रहते हैं। यहाँ इसका दूसरा आशय यह भी है कि इन केन्द्रीय भागों में ये क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ अग्नि एवं सोम अर्थात् आग्नेय और सौम्य दोनों ही प्रकार के परमाणुओं को उत्पन्न करते हैं। न्यग्रोधरूप सोम रश्मियां इन केन्द्रीय भागों के विपरीत व्याप्त होकर अवरोधक गुणों को उत्पन्न करके राष्ट्ररूप

केन्द्रीय भागों में भी दृढ़ता से प्रतिष्ठित रहती हैं। इसी कारण वह केन्द्रीय भाग स्थिरतापूर्वक अपने निश्चित स्थान को बनाये रखता है अर्थात् वह केन्द्रीय भाग विशाल आदित्य लोक में इधर-उधर डांवाडोल नहीं होता। इन सोम रश्मियों का भक्षण करके संयोज्य क्षत्रियरूप परमाणु आदि पदार्थ विभिन्न बाधक और हानिकारक पदार्थों से भी मुक्त रहते हैं, जिससे नाना प्रकार की संयोगादि क्रियाएं सुचारु रूप से चलती रहती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के निर्माण की प्रक्रिया के चलते जब कॉस्मिक मेघों का संघनन हो रहा होता है और उनका केन्द्रीय भाग भी पूर्वोक्तानुसार सुनिश्चित हो चुका होता है, उस समय गुरुत्वाकर्षण बल की विशेष भूमिका होती है और यह बल ही कॉस्मिक मेघ को निरंतर संपीडित और संघनित करता है। गुरुत्वाकर्षण बल के अतिरिक्त इस कार्य में विद्युत् चुम्बकीय बलों की भूमिका को भी हम इस ग्रन्थ में अनेकत्र स्पष्ट कर चुके हैं। इन दोनों बलों के प्रबल और प्रबलतम होने पर भी कभी भी कोई तारा सिकुड़कर शून्य आयतन को प्राप्त नहीं कर सकता। आधुनिक वैज्ञानिकों की black hole परिकल्पना के विषय में प्रख्यात भारतीय खगोलशास्त्री प्रो. A.K. Mitra ने भी अपने लेख "A new proof for non-occurrence of trapped surfaces and information paradox" जिसकी प्रति उन्होंने मुझे 25 Aug 2004 को दी, में लिखा है-

"In case it would be assumed that, the collapse would continue all the way upto R=0, then, the constraint (18) demands that M (R=0)=0 too. And this is the reason that all BHs (even if they would be assumed to exist) must have M=0"

इसका कारण वैदिक विज्ञान स्पष्ट करता है, जिसमें यह प्रकट किया गया है कि तारों के केन्द्रीय भाग और उनके ऊपर विद्यमान सन्धि भाग तथा शेष विशाल भाग के बीच कुछ सूक्ष्म किरणें, जिनका वर्णन व्याख्यान भाग में किया गया है, सुदृढ़ स्तम्भ का कार्य करती हैं। ये स्तम्भ, जो तीक्ष्ण विकिरणों की तेज और सघन धाराओं के रूप में विद्यमान होते हैं, वे केन्द्रीय भाग के उत्तरी और दक्षिण ध्रुवों पर विशेष सुदृढ़ता से स्थित होते हैं। इनके कारण ही तीक्ष्णतम गुरुत्वाकर्षण बल भी किसी भी लोक को सर्वथा संकुचित करके शून्य आयतन वाला नहीं बना सकता। इन विकिरणों का एक अन्य कार्य यह भी है कि ये तारे के विशाल भाग से आने वाले विभिन्न कणों को इतनी ऊर्जा प्रदान करते हैं, जिससे वे केन्द्र में पहुंचकर संलयन योग्य ऊर्जा को प्राप्त कर लेते हैं। ये विकिरण सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग में व्याप्त होकर उसके ताप व दाब की मात्रा को समुचित रूप प्रदान करने में सहायक होते हैं। इसके साथ ही तारे के स्वरूप व आकार को बनाये रखने में भी सहायक होते हैं। तारों के केन्द्रीय भाग में डार्क एनर्जी के किसी भी दुष्प्रभाव को नष्ट करने में इनकी विशेष भूमिका होती है। तारे के केन्द्रीय भाग को स्थायित्व प्रदान करके उसे डांवाडोल वा कम्पित होने से बचाने में भी इन्हीं विकिरणों की भूमिका होती है।।

꧁ इति ३५.५ समाप्तः ꧂

ॐ अथ ३५.६ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. अथ यदौदुम्बराण्यूर्जो वा एषोऽन्नाद्याद्वनस्पतिरजायत यदुदुम्बरो; भौज्यं वा एतद्वनस्पतीनामूर्जमेवास्मिंस्तदन्नाद्यं भौज्यं च वनस्पतीनां क्षत्रे दधाति।।
अथ यदाश्वत्थानि, तेजसो वा एष वनस्पतिरजायत यदश्वत्थः, साम्राज्यं वा एतद्वनस्पतीनां, तेज एवास्मिंस्तत्साम्राज्यं च वनस्पतीनां क्षत्रे दधाति।।
अथ यत्प्लाक्षाणि, यशसो वा एष वनस्पतिरजायत यत्प्लक्षः, स्वाराज्यं च ह वा एतद्वैराज्यं च वनस्पतीनां, यश एवास्मिंस्तत्स्वाराज्यवैराज्ये च वनस्पतीनां क्षत्रे दधाति।।
एतान्यस्य पुरस्तादुपक्लृप्तानि भवन्त्यथ सोमं राजानं क्रीणन्ति; ते राज्ञ एवाऽऽवृतौपवसथात् प्रतिवेशैश्चरन्त्यथौपवसथ्यमहरेतान्यध्वर्युः पुरस्तादुपकल्पयेताधिषवणं चर्माधिषवणे फलके द्रोणकलशं दशापवित्रमद्रीन् पूतभृतं चाऽऽधवनीयं च स्थालीमुदञ्चनं चमसं च तद्यदेतद्राजानं प्रातरभिषुण्वन्ति, तदेनानि द्वेधा विगृह्णीयादभ्यन्यानि सुनुयान्, माध्यंदिनायान्यानि परिशिष्यात्।।६ ।।

व्याख्यानम्– पूर्व खण्ड में न्यग्रोधरूप सोम रश्मियों के स्वरूप आदि की चर्चा करने के पश्चात् अन्य उदुम्बरादि पदार्थों की चर्चा प्रारम्भ करते हैं। यहाँ उदुम्बर संज्ञक संयोजक ऊर्जा विशेष का प्रसंग उठाते हुए कहते हैं कि ये सूक्ष्म रश्मियां विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों द्वारा भक्षणीय होती हैं। {भुजः = प्राणा वै भुजः (श.७.५.१.२१), पालिकाः (तु.म.द.ऋ.भा.३.२.६), भोगक्रियाः (म.द.ऋ.भा.५.७४.१०)} ये रश्मियां पालक प्राणरूप होकर नाना प्रकार के संयोग, वियोग, अवशोषण व उत्सर्जन कर्मों में अपनी अहम भूमिका निभाती हैं। ये रश्मियां विभिन्न प्रकार की अन्य रश्मियों की पालिका व रक्षिका भी होती हैं। जब क्षत्रिय संज्ञक पूर्वोक्त पदार्थ इन रश्मियों का भक्षण करते हैं, तब वे पदार्थ अपने अन्दर बल, संयोज्यता एवं गत्यादि गुणों से और भी अधिक समृद्ध व सम्पन्न होते हैं। यद्यपि क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थ पूर्वोक्त प्रक्रियाओं के चलते इन गुणों से युक्त होते ही हैं, पुनरपि यहाँ इन गुणों की समृद्धि का तात्पर्य यही है कि इन गुणों की समृद्धि एवं उत्पत्ति में इन उदुम्बर संज्ञक सूक्ष्म रश्मियों की भूमिका भी अनिवार्य होती है। इन रश्मियों के विषय में ७.१५.१ भी द्रष्टव्य है। इन रश्मियों की भूमिका आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों में विशेष होती है, अन्य भाग में न्यून होती है। इस कारण यहाँ चर्चा केवल केन्द्रीय भाग के सन्दर्भ में ही की गयी है।।

उदुम्बर रश्मियों के पश्चात् अश्वत्थ नामक रश्मियों की {अश्वत्थः = मरुतां वा एतदोजो यदश्वत्थः (तै.सं.२.३.१.५-६), अश्वत्थो वै वनस्पतीनाः सपत्नसाहो विजित्यै (तै.सं.५.१.१०.२), एष (अश्वत्थः) वै वनस्पतीनाः सपत्नसाहः (काठ.१६.१०; क.३०.८), अश्वत्थेन वनस्पतयः (अन्वाभूयन्त) (काठ.३५.१५), योऽश्नुते सः (म.द.ऋ.भा.६.४७.२४) ज्ञातव्य- हमें संहिता वा वेदभाष्य में 'अश्वत्थ' पद नहीं मिला। वहाँ 'अश्वथः' पद विद्यमान है। हमारे विचार से 'अश्वथः' पद 'अश्वत्थः' पद का ही छान्दस प्रयोग है।} की चर्चा करते हैं। ये रश्मियां विभिन्न मरुद् रश्मियों में विशेष बल एवं वेग से युक्त होकर विभिन्न किरणों आदि पदार्थों में व्याप्त होकर बाधक पदार्थों का प्रतिरोध करती हैं। हमारे मत में **सूत्रात्मा रश्मियों से मिश्रित धनंजय प्राण रश्मियां ही अश्वत्थ कहलाती हैं**। ये रश्मियां ही अग्नि के परमाणुओं को तीव्र

बल व वेग से युक्त करती हैं। ये स्वयं भी तेजयुक्त होती हैं। ये अग्नि के परमाणुओं का पालन व रक्षण करती हैं। इनके कारण ही सोम रश्मियां भी तेजस्विनी होती हैं। आदित्य के केन्द्रीय भाग में ये रश्मियां विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों को सम्यग् रूप से प्रकाशित करने में सक्षम होती हैं। जब क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थ इन अश्वत्थ रूप रश्मियों का भक्षण करते हैं, तब वे पदार्थ केन्द्रीय भाग में भली प्रकार देदीप्यमान होने हेतु अन्य तेजस्विनी रश्मियों को अपने अन्दर धारण करने में सक्षम होते हैं। इससे वह सम्पूर्ण क्षेत्र तीव्र रूप से तेजस्वी हो उठता है। इसका आशय यह कि ये रश्मियां क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थों की अन्य रश्मियों को धारण करने की क्षमता में वृद्धि करती हैं। {तेजः = तेजो वै त्रिवृत् (मै.४.४.१०), तेजः प्रातःसवन आत्मन् दधीत (तै.सं.३.२.६.२)} यहाँ "तेजसो वा एष वनस्पतिरजायत" का आशय यह भी है कि ये रश्मियां, जो मिश्ररूप में उत्पन्न होती हैं, पूर्वोक्त त्रिवृत् स्तोमरूपी तीन गायत्री छन्द रश्मियों से प्रातःसवन अवस्था में उत्पन्न होती हैं।।

अश्वत्थ रश्मियों के पश्चात् प्लक्ष रूप पदार्थ की चर्चा करते हैं। इनके विषय में ७.३०.१ भी द्रष्टव्य है। {यशः = (अशूङ् व्याप्तौ संघाते च), सप्तदशः (स्तोमः) एव यशः (गो.पू.५.१५), सोमो वै यशः (तै.ब्रा.२.२.८.८), अन्ननाम (निघं.२.७)} यहाँ ग्रन्थकार का मत है कि बाहक व शोषक रश्मियां व्याप्ति एवं संघात गुणों से युक्त होती तथा सप्तदश स्तोमरूप सत्रह गायत्री छन्द रश्मियों से युक्त संयोज्य सोम रश्मियों से उत्पन्न होती हैं। ये रश्मियां विभिन्न सोम व अग्नि तत्त्वों को विविध रूपों में प्रकाशित करके स्वाराज्य रूप प्रदान करती हैं अर्थात् अग्नि व सोम तत्त्व ही मिश्रित होकर सम्पूर्ण केन्द्र को विशेष प्रकाशमान तथा प्रकाशोत्पादक बनाते हैं। इस समय नाना परमाणु आदि पदार्थ तीव्रता से दहकते हुए सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग को स्वप्रकाशित रूप प्रदान करते हैं। जब क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थ इन प्लक्ष रश्मियों का भक्षण करते हैं, तब वे विशेषरूप से स्वप्रकाशशीलता आदि गुणों को धारण करने लगते हैं। यहाँ स्वप्रकाशशीलता का तात्पर्य यही है कि ये परमाणु निरन्तर प्रकाशमान बने रह कर ऊष्मा व प्रकाश को उत्पन्न करते रहते हैं।।

इस प्रकार इन उपर्युक्त चारों प्रकार के न्यग्रोधादि भक्षरूप पदार्थों का वर्णन किया गया है। इन चारों का सम्पीडित व मिश्रित रूप ही क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों का भक्ष्य होता है। जब ये चारों पदार्थ समुचितरूप से सम्पादित व सक्रिय हो जाते हैं, उस समय सोम राजा {सोमो राजा = द्यावापृथिव्योर्वा एष गर्भो यत्सोमो राजा (ऐ.१.२६), पशवः सोमो राजा (तै.ब्रा.१.४.७.६)} आदित्य के केन्द्रीय भाग में विशेष रूप से प्रकट होने लगता है। इसका तात्पर्य यह है कि उस समय इस लोक की गर्भरूप विभिन्न मरुद् व छन्द रश्मियां प्रकट होने लगती हैं। यहाँ खण्ड १.१२ में सोमक्रय की प्रक्रिया भी द्रष्टव्य है, जहाँ तेरहवीं प्रकार की विशेष मास रश्मियों द्वारा सोम रश्मियों को ग्रहण करने की चर्चा की गयी है। यहाँ कुछ भेद यह है कि यह प्रक्रिया केन्द्रीय भाग में हो रही है। यहाँ इसके अतिरिक्त विशेष आशय यह भी है कि यहाँ क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों को भी सोमराजा कहा गया है। जब चारों भक्षरूप न्यग्रोधादि पदार्थ उत्पन्न हो चुके होते हैं, उस समय क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों को केन्द्रीय भाग की ओर आकृष्ट किया जाने लगता है। जब ये क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थ केन्द्रीय भाग में आते वा आ चुके होते हैं, उस समय चारों भक्षरूप रश्मियां उनको सब ओर से आच्छादित करने लगती हैं। उसके पश्चात् वे भक्षरूप चारों प्रकार की रश्मियां प्रतिवेश अर्थात् क्षत्रिय पदार्थों के सम्मुख वर्तमान होकर उनमें प्रविष्ट होने लगती हैं। उनकी इस क्रिया के द्वारा क्षत्रिय पदार्थ उन्हें अपने निकट बसा कर किंवा अवशोषित करके पारस्परिक संगम-संघातों के द्वारा पदार्थसमूहों का निर्माण करने लगते हैं। ऐसा करते हुए वे क्षत्रिय पदार्थ एवं उनके चारों भक्ष पदार्थ सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग में विचरने लगते हैं। इस प्रकरण में "ते राज्ञ एवाऽऽवृतोपवसथात्" में 'ते' पद का प्रयोग चारों भक्ष संज्ञक पदार्थ के अतिरिक्त ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। वे पदार्थ भी क्षत्रिय पदार्थों को सब ओर से आच्छादित करके उनमें प्रविष्ट होते हैं। ये ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ अध्वर्यु भी कहे जाते हैं, क्योंकि क्षत्रियादि संज्ञक पदार्थों की नाना प्रकार की क्रियाओं के ये ही रक्षक होते हैं। असुरादि बाधक रश्मियों को नष्ट वा नियन्त्रित करने में मूल भूमिका इन्हीं की होती है। इस उपर्युक्त अवशोषण व विचरण की प्रक्रिया के समय उस 'अहः' अर्थात् केन्द्रीय भाग में अध्वर्युरूप ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों के साथ उनके स्वयं के भक्षरूप सोम तथा क्षत्रिय पदार्थों के भक्षरूप चारों पदार्थों के अतिरिक्त निम्नलिखित दस प्रकार के पदार्थ विद्यमान रहते वा

उत्पन्न होते हैं-

(१) अधिषवणम् = {अधिषवणम् = जिह्वाधिषवणम् (मै.३.८.८; ४.५.६), त्वगधिषवणं चर्म (काठ.२५.६; क.४०.२), हनू वा एते यज्ञस्य यदधिषवणे (तै.सं.६.२.११.३; काठ.२५.६; क.४०.२), (जिह्वा = वाङ्नाम - निघं.१.११, ज्वालेव वर्तमाना - तु.म.द.ऋ.भा.३.३५.६)} सबके आच्छादक ज्वालायुक्त किरणसमूह से युक्त विभिन्न वाग् रश्मियां, जो तीव्र भेदक और सम्पीडक बलों से युक्त होती हैं, नियंत्रक बलों से सम्पन्न होकर केन्द्रीय भाग में आने वाले क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों को संपीडित वा संलयित करती हैं।

(२) अधिषवणफलकद्वय = उपर्युक्त वाग् रश्मियों से युक्त ज्वालामय किरणसमूह केन्द्रीय भाग में दो भागों में बंटा हुआ होता है। उन दोनों भागों के बीच क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों के चारों भक्षरूप पदार्थ विद्यमान होते हैं, जो इन दोनों ही किरणपुंजों के मध्य सम्पीडित होते रहते हैं, जिससे अन्य सूक्ष्म पदार्थों की उत्पत्ति होती है। ये सूक्ष्म पदार्थ ही वास्तव में क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों का भक्ष होते हैं।

(३) द्रोणकलशः = {द्रोणकलशः = देवपात्रं द्रोणकलशः (तां.६.५.७), यज्ञो वै द्रोणकलशः (श.४.५.८.५), राष्ट्रं द्रोणकलशः (तां.६.६.१), प्राणा वै द्रोणकलशः (तां.६.५.१५), मूर्धा द्रोणकलशः (मै.४.५.६)} यह वह स्थान है, जहाँ विभिन्न प्रकार की प्राण रश्मियां एवं अन्य तेजस्विनी छन्दादि रश्मियां परस्पर संगत होकर तीव्र तेज को निरन्तर उत्पन्न करती रहती हैं। वस्तुतः आदित्य लोक का केन्द्रीय भाग ही द्रोणकलश कहलाता है, इसी कारण इसे 'मूर्धा' तथा 'राष्ट्र' शब्दों से सम्बोधित किया गया है। इसकी उत्पत्ति के विषय में तत्त्ववेत्ता महर्षियों का कथन है-

"इन्द्रो वै वृत्रमह्ँस्तस्य मूर्धानमुदरुजत् स द्रोणकलशोऽभवत्" (काठ.२८.६)

इससे संकेत मिलता है कि पूर्व में तीव्र इन्द्र तत्त्व, विशाल आच्छादक आसुर मेघ को नष्ट करके इस केन्द्रीय भाग को उत्पन्न करता है। इस भाग में क्षत्रिय पदार्थों के सम्पीडन के समय ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ भी अनिवार्यतः विद्यमान रहते हैं। इसी कारण कहा है-

"द्वयं वावेदं ब्रह्म चैव क्षत्रं च। तदुभयं द्रोणकलशे" (जै.ब्रा.१.७८)

(४) दशापवित्रम् = आचार्य सायण ने कात्यायन श्रौतसूत्र का प्रमाण देकर दशापवित्र को ऊर्णापवित्र नाम दिया है। वस्तुतः स्वयं पवित्र और दूसरे पदार्थों को पवित्र बनाने वाली प्राण और उदान रश्मियां सम्पूर्ण क्षेत्र को आच्छादित करके चारों भक्षरूप पदार्थों को छानकर पवित्र करती रहती हैं।

(५) अद्रयः = विभिन्न प्रकार की ऐसी छन्द रश्मियां, जो चारों भक्षरूप सूक्ष्म पदार्थों के क्षेत्र में मेघवत् विद्यमान होकर उन भक्ष पदार्थों को संपीडित करती रहती हैं।

(६) पूतभृत् = {पूतभृत् = वैश्वदेवो वै पूतभृत् (श.४.४.१.१२)} उन पवित्र हुए भक्षरूप पदार्थों एवं उनके भक्षक क्षत्र संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों को धारण करने वाले सभी {वैश्वदेवः = प्रजापतिर्वै वैश्वदेवम् (कौ.ब्रा.५.१), पशवो वै वैश्वदेवम् (कौ.ब्रा.१६.३), पवमानोक्थं वा एतद् यद् वैश्वदेवम् (कौ.ब्रा. १६.३)} छन्द, सूक्त आदि के रूप में विद्यमान रश्मिसमूह, जो निरन्तर पवित्र व संगत हो रहे होते हैं।

(७) आधवनीयः = {आधवनीयः = आधवनसाधनपात्रविशेषः (म.द.य.भा.१८.२१), आङ्+धुञ् (स्वा.) धातोरनीयर् प्रत्ययः - वै.को. आ.राजवीर शास्त्री), (आधवः = समन्तात्प्रक्षेपणः - तु.म.द.ऋ.भा.१.१४१. ३)} वे रश्मियां, जो उपर्युक्त भक्ष्यरूप सूक्ष्म पदार्थों को उनके भक्षकरूप क्षत्रिय आदि पदार्थों के ऊपर प्रक्षिप्त करती हैं। इसके साथ ही उनको सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग में फैलाती हुई कम्पायमान करती हैं। हमारे मत में व्यान, अपान और सूत्रात्मा वायु रश्मियों का मिश्रितरूप ही आधवनीय कहलाता है।

(८) स्थाली = {स्थाली = पत्नी स्थाली (तै.ब्रा.२.१.३.१)} 'भूः' 'भुवः', 'स्वः', एवं 'हिम्' ये चार सूक्ष्म रश्मियां इन सब क्रियाओं की रक्षिकारूप होने के साथ-२ उनको अपने में धारण करने वाली भी होती हैं।

(९) उदंचनम् = वे रश्मियां, जो संपीडित भक्षरूप रश्मियों को उत्कृष्ट आकर्षण, बल और वेग प्रदान करती हैं। हमारी दृष्टि में प्राण, अपान और उदान का मिश्रित रूप ही उदंचन कहलाता है। इसमें भी उदान की प्रधानता होती है।

(१०) चमस = ऐसी सूक्ष्म रश्मियां, जो अन्य रश्मियों का भक्षण करने के काम आती हैं। इस प्रकरण में क्षत्रिय आदि संज्ञक पदार्थों के भक्षरूप पदार्थों को अवशोषित करने में साधनरूप रश्मियां चमस कहलाती हैं। हमारी दृष्टि में मास रश्मियों से मिश्रित सूत्रात्मा वायु रश्मियां ही मूलतः चमस का कार्य करती हैं।

इन उपर्युक्त दस प्रकार के पदार्थों की विद्यमानता में सोमराजा अर्थात् क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों को सब ओर से सम्पीडित किया जाता है। सम्पीडन की यह प्रक्रिया अति तीव्रता से गायत्री छन्द

रश्मियों की प्रधानता में प्रारम्भ होती है। उस समय उसकी **मक्षरूप** चारों प्रकार की रश्मियां भी दो भागों में विभाजित होकर अपनी **मक्षकरूप क्षत्रिय** रश्मियों के द्वारा अवशोषित होने लगती हैं। इनका एक भाग गायत्री छन्द रश्मियों की प्रधानता के काल में ही अवशोषित हो जाता है, जबकि दूसरा भाग माध्यन्दिन सवन अर्थात् त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की प्रधानता की अवस्था उत्पन्न होने तक सुरक्षित एवं पृथक् ही रहता है, फिर इस त्रैष्टुभ अवस्था में वह **क्षत्रियरूप** परमाणु आदि पदार्थों के द्वारा अवशोषित होकर उन्हें तीक्ष्णता प्रदान करता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- कॉस्मिक मेघ को आच्छादित करने वाला डार्क मैटर एवं डार्क एनर्जी का संयुक्त रूप जब तीव्र उष्ण विद्युत् आवेशित तरंगों के प्रहार से नष्ट हो जाता अथवा हट जाता है, तभी निर्माणाधीन तारे के केन्द्रीय भाग के बनने की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। इस प्रक्रिया को हम अनेकत्र लिख चुके हैं। यहाँ कुछ और विशेष लिखते हैं। जब सम्पूर्ण कॉस्मिक मेघ से सूक्ष्मकण तेजी से केन्द्र बिन्दु की ओर आकर्षित होने लगते हैं, उस समय उस केन्द्र बिन्दु के आस-पास विभिन्न प्रकार की प्राण रश्मियां **'ओम्', 'भूः', 'भुवः', 'स्वः'** एवं **'हिम्'** के साथ कुछ गायत्री छन्द रश्मियां प्रचुरता से विद्यमान होती हैं। इन सबसे उत्पन्न होने वाली अनेकों प्रकार की सूक्ष्म रश्मियां भी उस समय उत्पन्न होती हैं। इसमें से **'ओम्', 'भूः', 'भुवः', 'स्वः'** आदि सबको धारण करने वाली होती हैं। इसके पश्चात् विभिन्न प्रकार की छन्द रश्मियां भी प्रकट होने लगती हैं। इन सबके संयुक्त प्रभाव से प्रबल गुरुत्वाकर्षण बल उत्पन्न होता है, जिससे कॉस्मिक मेघ का तीव्रता से आकुंचन प्रारम्भ होता है। इसी समय केन्द्रीय भाग में प्रबल विद्युत् चुम्बकीय बलों की भी उत्पत्ति होती है। इन सबके कारण संलयनीय कणों का प्रवाह तेजी से केन्द्र की ओर होने लगता है। ये संलयनीय कण केन्द्रीय भाग में जाकर विभिन्न प्रकार की रश्मियों से युक्त होने लगते हैं और इन रश्मियों के प्रभाव से ही केन्द्रीय भाग में अत्यन्त उच्च ताप उत्पन्न होकर इन कणों को संलयित करने लगता है। विशेष जानकारी के लिये व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

॥ इति ३५.६ समाप्तः ॥

ॐ अथ ३५.७ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. तद्यत्रैतांश्चमसानुन्नयेयुस्तदेतं यजमानचमसमुन्नयेत्, तस्मिन् द्वे दर्भतरुणके प्रास्ते स्यातां, तयोर्वषट्कृतेऽन्तःपरिधि पूर्वं प्रास्येद्, दधिक्राव्णो अकारिषमित्येतयर्चा सस्वाहाकारयाऽनुवषट्कृतेऽपरमा दधिक्राः शवसा पञ्च कृष्टीरिति।।
तद्यत्रैतांश्चमसानाहरेयुस्तदेतं यजमानचमसमाहरेत्, तान्यत्रोद्गृह्णीयुस्तदेनमुपोद्गृह्णीयात्, तद्यदेळां होतोपह्वयेत, यदा चमसं भक्षयेदथैनमेतया भक्षयेत्।।
यदत्र शिष्टं रसिनः सुतस्य, यदिन्द्रो अपिबच्छचीभिः।
इदं तदस्य मनसा शिवेन, सोमं राजानमिह भक्षयामीति।।
शिवो ह वा अस्मा एष वानस्पत्यः, शिवेन मनसा भक्षितो भवत्युग्रं हास्य राष्ट्रमव्यथ्यं भवति, य एवमेतं भक्षं भक्षयति क्षत्रियो यजमानः।।
शं न एधि हृदे पीतः, प्र ण आयुर्जीवसे सोम तारीरित्यात्मनः प्रत्यभिमर्शः।।
ईश्वरो ह वा एषोऽप्रत्यभिमृष्टो मनुष्यस्याऽऽयुः प्रत्यवहर्तोरनर्हन् मा भक्षयतीति; तद्यदेतेनाऽऽत्मानमभिमृशत्यायुरेव तत्प्रतिरते।।
आप्यायस्व समेतु ते, सं ते पयांसि समु यन्तु वाजा इति चमसमाप्याययत्यभिरूपाभ्यां; यद्यज्ञेभिरूपं तत्समृद्धम्।।७।।

व्याख्यानम्- उपर्युक्त प्रक्रिया के पश्चात् सूत्रात्मा एवं मास रश्मियों रूपी संयोजक चमस उत्कृष्टता से सक्रिय होने लगते हैं। उस समय संयोज्य क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थ इन रश्मियों के द्वारा अपने भक्षरूप उपर्युक्त पदार्थों का भक्षण करने लगते हैं, जिसके कारण केन्द्रीय भागरूपी क्षेत्र एक उन्नत मेघ के रूप में प्रकट होने लगता है। इस प्रक्रिया में पूर्व कण्डिका में वर्णित अद्रि संज्ञक विभिन्न छन्द रश्मियों के मेघरूप चमस पदार्थ भी उन्नत होने लगते हैं। ये उन्नत मेघरूप रश्मिसमूह सम्पूर्ण केन्द्रीय संयोज्य पदार्थरूपी मेघ को निरन्तर उन्नत करने लगते हैं। उस केन्द्रीय भाग के केन्द्रीय विन्दु के जो जितना निकट होता है, उस पदार्थ की संयोज्यता उतनी ही अधिक होती है। {दर्भः = मेध्या वै दर्भाः (श.३.१.३.१८), आपो दर्भाः (श.२.२.३.११), अपां वा एवत् तेजो वर्चः यद्दर्भाः (तै.ब्रा.२.७.६.५), पवित्रं वै दर्भाः (तै.ब्रा.१.३.७.१), दर्भा वा ओषधीनामपहतपाप्मा (ऐ.आ.१.२.३)} इस समय विभिन्न क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थ सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग में व्याप्त होकर अपनी भक्षरूप रश्मियों का तीव्रता से अवशोषण करते हुए निरन्तर अधिक तेजस्वी होने लगते हैं। ऐसे पदार्थों से पूर्णतः व्याप्त उस यजमानरूपी केन्द्रीय भाग में दो प्रकार की तारक, संगमनीय और पवित्र रश्मियां विशेषरूप से उद्भूत होती हैं। ये रश्मियां असुर रश्मियों से सर्वथा पृथक् रहती हुई सूक्ष्म तेज और बल से परिपूर्ण होती हैं। हमारी दृष्टि में असुर रश्मियों से सर्वथा मुक्त ये तेजस्विनी रश्मियां वाक्, प्राण एवं अपान रूप ही होती हैं। {वषट् = क्रिया कौशलम् (म.द.य.भा.११.३६)। अनुवषट्कार = यदवस्फूर्जति सोऽनुवषट्कारः (तै.आ.२.१४.१), संस्था अनुवषट्कारः (कौ.ब्रा.१३.५,६)} ये वषट्कृत रूप धारण करती हुई इस केन्द्रीय भाग में प्रक्षिप्त वा व्याप्त की जाती हैं। वषट्कार के विषय में ऋषियों का कथन है-

"वज्रो वै वषट्कारः" (ऐ.३.८)
"देवपात्रं वाऽएष यद् वषट्कारः" (श.१.७.२.१३)

"देवपात्रं वा एतद् यद् वषट्कारः" (ऐ.३.५)

यहाँ "दर्भतरुणके" द्विवचनान्त होने के साथ 'द्वे' संख्या का प्रयोग होने से यह संकेत मिलता है कि ये दो प्रकार के पदार्थ होते हैं। इनमें से एक पदार्थ वाग् रूप में अर्थात् 'ओम्' छन्द रश्मियों की प्रधानता से युक्त भूरादि दैवी गायत्री छन्द रश्मियां होती हैं और एक भाग प्राणापान रश्मियों का युग्म रूप होता है। ये दोनों ही भाग मिलकर वज्र वा देवपात्ररूप होकर उन क्षत्रिय आदि परमाणु वा रश्मियों की सूक्ष्म आसुरी रश्मियों से सुरक्षा करते हुए उन्हें आधार प्रदान करते हैं। इनमें से प्रथम अर्थात् वाग् रूप भाग उस केन्द्रीय भाग में विशेषरूप से व्याप्त वा प्रक्षिप्त होता है। इस प्रक्षेपण क्रिया के समय "दधिक्राव्णो अकारिषं स्वाहा" इस याजुषी पंक्ति छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है। इसके प्रभाव से विभिन्न पदार्थों को धारण करने वाली ये सूक्ष्म वाग् रश्मियां उन पदार्थों को विशेष सक्रिय करती हुई अनुवषट्कार रूप को उत्पन्न करती हुई उस क्षेत्र में विभिन्न प्राण वा छन्दादि रश्मियों को सम्यग् रूप से ताड़ित करके तीव्र घोषों से युक्त उच्च ताप को उत्पन्न करती हैं। इसके पश्चात् अर्थात् इसी प्रक्रिया के द्वितीय चरण में प्राण और अपान की युग्मरूप रश्मियों का विशेष प्रक्षेपण वा उद्भव उस क्षेत्र में होता है। इस समय "दधिक्राः शवसा पञ्च कृष्टीः स्वाहा" इस याजुषी जगती छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है, जिसके प्रभाव से सबको धारण करने वाली ये प्राणापान रश्मियां पांच प्रकार के बलों को विशेषरूप से समृद्ध करती हैं। हमारी दृष्टि में ये पांच प्रकार के बल निम्नानुसार हो सकते हैं-

(१) प्राण एवं सूक्ष्म वाग् रश्मियों के मध्य कार्यरत बल।
(२) प्राण एवं विभिन्न छन्द रश्मियों के मध्य कार्यरत बल।
(३) विभिन्न छन्द रश्मियों के मध्य कार्यरत बल।
(४) विद्युत् चुम्बकीय बल।
(५) गुरुत्वाकर्षण बल।

आदित्य लोकों के केन्द्र में ये पांचों बल सदैव तीव्ररूप से सक्रिय रहते हैं। यहाँ उपर्युक्त पांच बलों के साथ-२ पांच प्रकार के पदार्थों का भी ग्रहण किया जा सकता है। ये पदार्थ इस प्रकार हैं-

(१) प्राण रश्मियां।
(२) छन्द रश्मियां।
(३) आकाश रश्मियां।
(४) प्रकाशित परमाणु।
(५) अप्रकाशित परमाणु।

ये पांचों पदार्थ भी आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में विशेष सक्रिय होते हैं।।

तदुपरान्त सम्पूर्ण मेघरूपी पदार्थ में विद्यमान नाना प्रकार की मेघरूपी छन्दादि रश्मियों के समूह पूर्वोक्त बलों के प्रभाव से संकुचित होने लगते हैं। उसी समय यजमान संज्ञक परमाणु आदि पदार्थ भी सब ओर से और अधिक संकुचित होने लगता है। यद्यपि आकुंचन की यह क्रिया पर्याप्त समय पूर्व ही प्रारम्भ हो चुकी होती है, तदपि यह प्रसंग बतलाता है कि इस स्थिति में पहुंचकर यह प्रक्रिया और तीव्र होने लगती है, जिसके कारण नाना प्रकार के सूक्ष्म पदार्थ परस्पर संगत होकर नये-२ पदार्थ कणों को जन्म देने लगते हैं। यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि यजमान संज्ञक पदार्थों के अतिरिक्त जो 'ते' सर्वनाम का प्रयोग इस कण्डिका के साथ-२ पूर्व कण्डिका में भी विद्यमान है और उनके चमसरूपी मेघों का बहुवचनान्त प्रयोग है, वहाँ 'ते' ७.१६.१ की प्रथम कण्डिका में वर्णित विश्वामित्र वा होता आदि छन्द रश्मियों के लिये प्रयुक्त हुआ है। इससे सिद्ध होता है कि क्षत्रिय संज्ञक त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के अतिरिक्त विश्वामित्र आदि संज्ञक अन्य छन्द रश्मियों की भी यहाँ विद्यमानता मानी गयी है। यहाँ उन्हीं छन्द रश्मि समूहों के आहरण तथा पूर्वोक्त कण्डिका में उनके उन्नयन की चर्चा की गयी है। इन सभी पदार्थों को केन्द्रीय बिन्दु द्वारा उत्कृष्टता से ग्रहण वा आकर्षित किया जाता है और इन सबका आकर्षण वा ग्रहण साथ-२ ही किया जाता है। उस समय होता रूप पूर्वोक्त विश्वामित्र संज्ञक छन्द रश्मियां नाना प्रकार की संयोज्य वाग् रश्मियों अर्थात् सभी प्रकार की छन्दादि रश्मियों एवं सूक्ष्म परमाणुओं को सब ओर से आकर्षित करती हुई संगठित करने लगती हैं। जिस समय ये क्रियाएं हो रही होती हैं तथा भक्षरूप पदार्थों का उनकी भक्षकरूप रश्मियां भक्षण कर रही होती हैं, उस समय

यदत्र शिष्टं रसिनः सुतस्य, यदिन्द्रो अपिबच्छचीभिः।
इदं तदस्य मनसा शिवेन सोमं राजानमिह भक्षयामीति।।

की उत्पत्ति होती है। यह ऋचा किंचित् पाठभेद के साथ यजुर्वेद १६.३५ में इस प्रकार उपलब्ध है-

यदत्र रिप्तःरसिनः सुतस्य यदिन्द्रोऽअपिबच्छचीभिः।
अहं तदस्य मनसा शिवेन सोमः राजानमिह भक्षयामि।।

इस ऋचा का देवता सोम और छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से उस केन्द्रीय भाग में भक्षरूप पदार्थों के सम्पीडित होने से उत्पन्न सूक्ष्म रश्मियों को इन्द्र तत्त्वरूपी क्षत्रिय रश्मियों किंवा इन्द्र तत्त्व से समृद्ध परमाणु आदि पदार्थ नाना प्रकार की क्रियाओं के द्वारा अवशोषित करते हैं। वह इन्द्र तत्त्व देदीप्यमान सोम पदार्थ का भी अवशोषण करके समुचित तेज के साथ प्रकट होता है। 'शिव' शव्द के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है-

"शिवः शिव इति शमयत्येवैनम् एतद् (अग्निम्) हिंसायै तथो हैष (अग्निः) इमांल्लोकाञ्छान्तो न हिनस्ति" (श.६.७.३.१५)

{शिवः = श्यति पापमिति विग्रहे शो तनूकरणे (दिवा.) धातोर्बाहु. औणा. वन्। पृषोदरादिना रूपसिद्धिः (वै.को.-आ.राजवीर शास्त्री)} इसका आशय यह है कि केन्द्रीय भाग में वर्तमान इन्द्र तत्त्व विभिन्न क्रियाओं के पतन को रोकने हेतु असुरादि बाधक रश्मियों का नाश करके अग्नि तत्त्व की समुचित मात्रा को उत्पन्न करता है। यहाँ अग्नि तत्त्व अति तीव्र होते हुए भी नियंत्रित और अनुकूल अवस्था में विद्यमान होता है। यह इन्द्र केन्द्रीय भाग में विद्यमान सभी पदार्थों को पूर्णरूप से व्याप्त कर लेता है।।+।।

पूर्व प्रसंग को विस्तार देते हुए कहते हैं कि इस उपुर्यक्त छन्द रश्मि के साथ संगत होकर जो क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थ अपने भक्षरूप चारों पदार्थों का उपर्युक्तानुसार भक्षण करते हैं, वे परमाणु आदि पदार्थ सम्यग् रूपेण नियंत्रित तीक्ष्णता को प्राप्त करते हैं। उस नियंत्रित एवं अनुकूल तेजस्विता को प्राप्त करके वह आदित्य लोक उग्रता को प्राप्त करते हुए भी विचलित नहीं होता। इसका तात्पर्य यह है कि वह केन्द्रीय भाग अत्यन्त उच्च ताप, दाब और बलों से युक्त तीव्र क्रियाओं के चलते भी डांवाडोल नहीं होता, इस कारण क्षत्रियरूप पदार्थ अपने भक्षरूप पदार्थों को उपुर्यक्त छन्द रश्मि की विद्यमानता में ही अवशोषित करते हैं।।

उपर्युक्त ऋचा के साथ-२ "शं न एधि हृदे पीतः, प्र ण आयुर्जीवसे सोम तारीः" की भी उत्पत्ति होती है। यह ऋचा किसी भी वेदसंहिता में उपलब्ध नहीं है। इसका देवता सोम तथा छन्द प्राजापत्या निचृद् बृहती वा भुरिग् आर्ची गायत्री है, जिसके प्रभाव से यह छन्द रश्मि देदीप्यमान सोम और क्षत्रियरूप पदार्थों को तीव्ररूप से चमकाती हुई एक मर्यादित क्षेत्र में सीमित करती है। यह छन्द रश्मि आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग एवं संधि भाग की सीमा में निरंतर संचरित होती रहती है। ऐसा करके वह मानो क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थों की सीमा को निर्धारित करने में सहायक होती है। यह रश्मि उस हृदयरूपी केन्द्रीय भाग में भी अनुकूलतापूर्वक व्याप्त होकर सोम रश्मियों एवं विभिन्न क्षत्रिय पदार्थों को प्राणादि रश्मियों के साथ संगत करती हुई उनकी संयोज्यता को बढ़ाने में सहायक होती है। यह सन्धि भाग को भी निरन्तर स्पर्श करती हुई क्षत्रिय परमाणुओं को केन्द्रीय भाग की ओर आकर्षित करती रहती है।।

यहाँ ग्रन्थकार पूर्व कण्डिका में वर्णित छन्द रश्मि के सानिध्य में भक्षरूप पदार्थों के अवशोषित करने की अनिवार्यता को बतलाते हुए कहते हैं कि इस छन्द रश्मि के कारण ही क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ अपनी भक्षरूप रश्मियों को मर्यादित मात्रा में अवशोषित करते हुए मर्यादित क्षेत्र का निर्माण कर पाते हैं, जिसके कारण {मनुष्यः = मनुष्या वै विश्वेदेवाः (काठ.१९.१२)} सभी प्रकार के देव परमाणु संयोगादि क्रियाओं से निरन्तर समृद्ध होते रहते हैं। यदि यह उपर्युक्त छन्द रश्मि उत्पन्न न हो, तो भक्षरूप रश्मियां क्षत्रियरूप पदार्थों वा सभी देव परमाणुओं की संयोगादि प्रक्रियाओं को विनष्ट कर सकती हैं। इसका कारण यह है कि इस छन्द रश्मि के अभाव में विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों की क्रियाएं अनियंत्रित और उनका

कार्यक्षेत्र भी अमर्यादित वा अनिश्चित हो जाता है, जिसके कारण वे क्रियाएं अस्त-व्यस्त होकर सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग को ही अस्त-व्यस्त और अनिश्चित बना देती हैं। इस कारण उपर्युक्त छन्द रश्मि की उत्पत्ति अनिवार्यतः होती है, जिसके कारण सभी क्रियाएं अच्छी प्रकार से अनुकूलतापूर्वक सम्पन्न होकर संयोगादि कर्मों को यथावत् सम्पादित करती हैं।।

इसी उपर्युक्त प्रक्रिया के चलते दो छन्द रश्मियों की भी निम्नानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य संगथे।।१६।। (ऋ.१.९१.१६)

(२) सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः। आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व।।१८।। (ऋ.१.९१.१८)

इन दोनों ही छन्द रश्मियों के विषय में ६.१.२ द्रष्टव्य है। इन दोनों ही ऋचाओं के उत्पन्न होने पर विभिन्न भक्षरूप पदार्थ अपने भक्षकरूप पदार्थों में सब ओर से तीव्रतापूर्वक व्याप्त होने लगते हैं, जिससे सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग में विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों की संयोगादि क्रियाएं और भी अधिक समृद्ध होने लगती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्रीय भागों के निर्माण के समय जैसे-२ पदार्थ का आकुंचन होता है, वैसे-२ गुरुत्वाकर्षण बल एवं विद्युत् चुम्बकीय बलों में वृद्धि होने लगती है। जो पदार्थ केन्द्र बिन्दु के जितना निकट होता है, वहाँ ये बल उतने ही अधिक प्रबल होते हैं। इस समय प्राण एवं अपान रश्मियों का युग्म डार्क एनर्जी की सूक्ष्म रश्मियों को भी नष्ट करता रहता है। इस समय तारों के अन्दर पांच प्रकार के मुख्य बल कार्य करते हैं-

(१) प्राण एवं सूक्ष्म वायु रश्मियों के मध्य कार्यरत बल।
(२) प्राण एवं विभिन्न छन्द रश्मियों के मध्य कार्यरत बल।
(३) विभिन्न छन्द रश्मियों के मध्य कार्यरत बल।
(४) विद्युत् चुम्बकीय बल।
(५) गुरुत्वाकर्षण बल।

इन तारों के अन्दर विद्यमान पदार्थों की भी पांच श्रेणियां होती हैं-

(१) प्राण रश्मियां।
(२) छन्द रश्मियां।
(३) आकाश रश्मियां।
(४) विद्युत् चुम्बकीय तरंगें।
(५) विभिन्न प्रकार के कण।

ये सभी प्रकार के बल और पदार्थ तारों के केन्द्रीय भाग में अत्यन्त सक्रिय होते हैं। विभिन्न प्रकार की रश्मियां जहाँ तारों के अन्दर नाना प्रकार के बलों को उत्पन्न करके उच्च ताप और दाब को उत्पन्न करती हैं, वहीं कुछ छन्द रश्मियां इस ताप और दाब को नियंत्रित भी करती रहती हैं, जिसके कारण नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया व्यवस्थित चलती रहती है। कुछ छन्द रश्मियां केन्द्रीय भाग की परिधि में निरन्तर संचरित होती हुई उस परिधि को सुनिश्चित बनाये रखती हैं, जिससे केन्द्रीय भाग अन्य भाग से पृथक् रहता हुआ भी उससे जुड़ा रहता है। इसके सम्पूर्ण परिज्ञान के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

इति ३५.७ समाप्तः

अथ ३५.८ प्रारभ्यते

**** तमसो मा ज्योतिर्गमय ****

१. तद्यत्रैतांश्चमसान् सादयेयुस्तदेतं यजमानचमसं सादयेत्, तान्यत्र प्रकम्पयेयुस्तदेनमनु प्रकम्पयेदथैनमाहृतं भक्षयेन्नराशंसपीतस्य देव सोम ते मतिविद ऊमैः पितृभिर्भक्षितस्य भक्षयामीति प्रातःसवने नाराशंसो भक्ष, ऊर्वैरिति माध्यंदिने, काव्यैरिति तृतीयसवने।।
ऊमा वै पितरः प्रातःसवन, ऊर्वा माध्यंदिने, काव्यास्तृतीयसवने, तदेतत् पितॄनेवामृतान् सवनभाजः करोति।।
सर्वो हैव सोऽमृत इति ह स्माऽऽह प्रियव्रतः सोमापो यः कश्च सवनभागिति।।
अमृता ह वा अस्य पितरः सवनभाजो भवन्त्युग्रं हास्य राष्ट्रमव्यथ्यं भवति य एवमेतं भक्षं भक्षयति क्षत्रियो यजमानः।।
समान आत्मनः प्रत्यभिमर्शः, समानमाप्यायनं चमसस्य।।
प्रातःसवनस्यैवाऽऽवृता प्रातःसवने चरेयुर्माध्यंदिनस्य माध्यंदिने, तृतीयसवनस्य तृतीयसवने।।
तमेवमेतं भक्षं प्रोवाच रामो मार्गवेयो विश्वन्तराय सौषद्मनाय।।
तस्मिन् होवाच प्रोक्ते सहस्रमु ह ब्राह्मण तुभ्यं दद्मः, सश्यापर्ण उ मे यज्ञ इति।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि जब विभिन्न चमसरूपी सूत्रात्मा एवं मास रश्मियां विभिन्न क्षत्रिय आदि संयोज्य पदार्थों को प्राप्त हो जाती हैं, उस समय उन क्षत्रिय आदि पदार्थों के भक्षरूप पूर्वोक्त पदार्थ भी सब ओर से प्राप्त होने लगते हैं। इसके साथ ही ७.१६.१ में वर्णित होता आदि रूप विभिन्न छन्द रश्मियों के नाना मेघरूप समूह केन्द्रीय भाग में सब ओर से उत्पन्न वा व्याप्त होने लगते हैं किंवा उनकी भक्षरूपा सूक्ष्म रश्मियां प्रचुरता से व्याप्त होने लगती हैं। उसी समय संयोज्य क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थों की भक्षरूपा रश्मियां भी व्याप्त होने लगती हैं। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का भी कथन है- "आप्यायितांश्चमसान् सादयन्ति, ते नाराशंसा भवन्ति" (आश्व.श्रौ.५.६.३०) इसके पश्चात् आदित्य लोक के उस केन्द्रीय भाग में सभी प्रकार के भक्ष एवं भक्षकरूप पदार्थ प्रकृष्ट रूप से कम्पन करने लगते हैं और कम्पन करते हुए ही उनकी भक्षण वा संयोग क्रिया प्रारम्भ होती है और ऐसा करने के लिए विभिन्न भक्षरूप रश्मियां अपने-२ भक्षकरूप रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों की ओर सब ओर से आकर्षित होती चली जाती हैं। उस समय "नराशंस पीतस्य देव सोम ते मतिविद ऊमैः पितृभिर्भक्षितस्य भक्षयामि" छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है। यह ऋचा भी किसी संहिता में उपलब्ध नहीं है। इसका देवता सोम तथा छन्द भुरिगार्षी उष्णिक् अथवा भुरिक् प्राजापत्या त्रिष्टुप् अथवा निचृदार्ची पंक्ति है। वस्तुतः यह छन्द रश्मि तीनों ही प्रकार के प्रभाव दर्शाती है, जिसके कारण आदित्य केन्द्रों में उपर्युक्त भक्षण वा संयोज्य कर्म तीव्रता से होकर उस केन्द्रीय भाग में ऊष्मा और प्रकाश की समृद्धि होती है। इसके अन्य प्रभाव से {नराशंसः = अन्तरिक्षं वै नराशंसः (श.१.८.२.१२), नराशंसो यज्ञ इति कात्थक्यः नरा अस्मिन्नासीनाः शंसन्ति। अग्निरिति शाकपूणिः। नरैः प्रशस्यो भवति (नि.८.६)। ऊमाः = कमनीयाः (म.द.ऋ.भा.३.६.८), सर्वस्य रक्षणादिकर्त्तारः (म.द.ऋ.भा.५.५२.१२), भूतानि वै विश्व ऊमाः (ऐ.आ.१.३.४)। भूतः = देवा वै भूताः (काठ.२५.६; क.३८.४), भूतं वाव रथन्तरम् (तै.सं.३.१.७.२-३), तद् यानि तानि भूतानि ऋतवस्ते (श.६.१.३.८)} विभिन्न आशुगामी मरुद् रश्मियों द्वारा प्रकाशित आकाश

तत्त्व, अग्नि के परमाणुओं द्वारा अवशोषित देदीप्यमान सोम रश्मियां तथा विभिन्न संयोग एवं प्रकाशन क्रियाओं की पालिका पितर अर्थात् ऋतु रश्मियां {मतिः = वाग्वै मतिः (श.८.१.२.७), मेधाविनाम (निघं. ३.१५)} विभिन्न वागु एवं सूत्रात्मा वायु रश्मियों में व्याप्त होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के द्वारा सभी मक्षरूप रश्मियों को अवशोषित करने में सहयोग करती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जब आकाश एवं अग्नि के परमाणु और ऋतु रश्मियां देदीप्यमान सोम रश्मियों अर्थात् क्षत्ररूप त्रिष्टुप् रश्मियों को अवशोषित करने लगती हैं, उस समय विभिन्न परमाणु अपनी मक्षरूप रश्मियों को और भी तीव्रता से अवशोषित करने लगते हैं। इस प्रक्रिया के प्रारम्भिक काल में जब गायत्री छन्द रश्मियों की प्रधानता होती है, उस समय नाराशंस अर्थात् अग्नि एवं आकाश तत्त्व का मिश्रित रूप विभिन्न रश्मियों का भक्षण तीव्रता से करता है। यह प्रक्रिया इसी कारण प्रातःसवन की प्रक्रिया कही गयी है। इसका आशय यह है कि यह छन्द रश्मि आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग की प्रथमावस्था अर्थात् गायत्र अवस्था में ही उत्पन्न होती है। इस प्रक्रिया के अगले चरण अर्थात् माध्यंदिन सवन अर्थात् त्रैष्टुभ अवस्था में इस छन्द रश्मि के 'ऊमैः' पद के स्थान पर 'ऊर्वैः' पद विद्यमान होता है, जिसका प्रभाव यह होता है कि विभिन्न ऋतु रश्मियां और स्वयं यह छन्द रश्मि भी विभिन्न पदार्थों को विशेषरूप से आच्छादित करने लगती है, जिसके कारण विभिन्न बल और तेज तीक्ष्ण अवस्था को प्राप्त करने से सभी क्रियाएं तीक्ष्णतर होने लगती हैं। इसके अगले चरण अर्थात् तृतीयसवन अर्थात् जागत अवस्था, में 'ऊमैः' पद के स्थान पर 'काव्यैः' पद विद्यमान होता है, जिसके प्रभाव से सम्पूर्ण क्षेत्र में सूत्रात्मा वायु रश्मियां तीव्रतम रूप से सक्रिय होकर क्रान्तदर्शी तेज को उत्पन्न करती हैं। यह उस आदित्य लोक की परिपक्व अवस्था होती है।।

पूर्वोक्त प्रकरण को और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि उस कण्डिका में वर्णित ऋचा में विद्यमान 'ऊमा', 'ऊर्वा' एवं 'काव्या', तीनों ही शब्द पितरवाची हैं अर्थात् ये तीनों ही पदार्थ क्रमशः प्रातःसवन, माध्यंदिन सवन एवं तृतीय सवन की क्रियाओं के रक्षक और पोषक हैं। ये तीनों ही पितररूप पदार्थ इस लोक निर्माण प्रक्रिया के तीनों ही चरणों के द्वारा अमृतरूप प्रदान करते हैं अर्थात् ये तीनों ही इस छन्द रश्मि का भाग होकर केन्द्रीय भाग के निर्माण के प्रारम्भ से लेकर इसके पूर्ण होने तक की सभी क्रियाओं में निरन्तरता और समन्वय बनाये रखते हैं, जिसके कारण वह केन्द्रीय भाग अमृतरूपी आदित्य का रूप प्रदान करता है। यहाँ इन शब्दों को पितर कहने का तात्पर्य यह भी है कि ये तीनों ही सूक्ष्म छन्द रश्मि (दैवी उष्णिक्) रूप होकर स्वयं अमृत बने रहते हैं अर्थात् ये सभी क्रियाओं के प्रेरक का कार्य करते हैं। ये स्वयं विकृत होकर अन्य रश्मि वा पदार्थ में परिवर्तित नहीं होते। सम्भव है कि यह सम्पूर्ण छन्द रश्मि ही इसी प्रकार उत्प्रेरण का ही कार्य करती हो और स्वयं सुरक्षित भी बची रहती हो।।

यहाँ ग्रन्थकार महर्षि प्रियव्रत के मत को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि केवल 'ऊमा' आदि उपर्युक्त पितर संज्ञक पदार्थ ही अमृतरूप नहीं होते हैं, अपितु सभी प्रकार के पितर अमृतरूप ही होते हैं। जैसे- मास, प्राण, मन, वाक् आदि सभी पितररूप पदार्थ अमृतरूप ही होते हैं। पितर के विषय में ऋषियों का कथन है-

"वाक् च वै मनश्च पितरा युवाना" (श.८.६.३.२२)

"प्राणो वै पिता" (ऐ.२.३८)

ये सभी पदार्थ ऐसे पितर हैं, जो तीनों ही सवनों में भाग लेते हैं और उन सवनों की क्रियाओं को निरन्तर प्रेरित करते रहकर आदित्य रूप अमृत को प्रकट करते हैं।।

इस उपर्युक्त कथन की पुनः पुष्टि करते हुए कहते हैं कि उपर्युक्त तीनों प्रकार के 'ऊमा' आदि पितररूप पदार्थ जिन क्रियाओं में भाग लेते हैं, उन क्रियाओं में संगमनीय क्षत्रियरूप परमाणु आदि पदार्थ अपनी मक्षरूप रश्मियों का समुचित सेवन करते हैं। इस कारण केन्द्रीय भाग उग्र तेजस्विता प्राप्त करते हुए भी विचलित वा चंचल नहीं होते, बल्कि सभी प्रकार की क्रियाओं को यथाविध संपन्न करके निरन्तर प्रकाशित होते हैं।।

इन्हीं उपर्युक्त पितररूप रश्मियों एवं इस छन्द रश्मि के तीन रूपों के कारण ही पूर्वखण्ड की अन्तिम दो कण्डिकाओं में वर्णित अभिमर्श एवं आप्यायन कार्य भी समुचित प्रकार से सम्पन्न होते हैं।

इन कार्यों के विषय में वे दोनों ही कण्डिकाएं द्रष्टव्य हैं।।

उपर्युक्त प्रातःसवन अवस्था रूपी प्रथम चरण में ये सभी क्रियाएं गायत्री छन्द रश्मियों की प्रधानता में ही होती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जब इस चरण की क्रियाएं हो रही होती हैं, तब सम्पूर्ण क्षेत्र गायत्री छन्द रश्मियों से आवृत्त हो जाता है और उनके आच्छादन में ही विविध भक्षरूप पदार्थों का अवशोषण आदि कर्म समुचित रीति से सम्पन्न होता है। इसी प्रकार माध्यंदिन एवं तृतीय सवन क्रमशः त्रिष्टुप्, उष्णिक् एवं जगती छन्द रश्मियों से समझें।।

इस सम्पूर्ण प्रकरण को इस अध्याय के तृतीय खण्ड से प्रारम्भ करके यहाँ तक ग्रन्थकार ने मार्गवेय राम नामक पदार्थ के द्वारा विश्वन्तर नामक पदार्थ से कहलवाया है। इस शैली को हम सर्वत्र स्पष्ट करते रहे हैं। यहाँ इसका आशय यह भी है कि प्रशस्त बलयुक्त मार्गवेय राम नामक रश्मियां भी भक्षरूप रश्मियों को प्रकाशित करने में सहयोग करती हैं।।

अध्याय में वर्णित सभी क्रियाओं के सम्पन्न होने के पश्चात् इस अध्याय की प्रथम कण्डिका में वर्णित श्यापर्ण संज्ञक ब्राह्मण रश्मियों के अन्दर अनेक प्रकार की रश्मियां उत्पन्न होने लगती हैं। ये रश्मियां विश्वन्तर नामक क्षत्रियरूप पदार्थों में उत्पन्न होकर श्यापर्ण संज्ञक पदार्थों में प्रविष्ट होने लगती हैं, जिसके कारण वे श्यापर्ण संज्ञक पदार्थ संयोजक बलों को प्राप्त होकर विभिन्न क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों के साथ संयुक्त होने लगते हैं। इस प्रकार वे श्यापर्ण संज्ञक पदार्थ अपनी असंयोजनशीलता के कारण, जो आदित्य लोक के केन्द्र से बाहर की ओर प्रवाहित हो रहे थे, उनका यह प्रवाह रुक जाता है और सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग, जो श्यापर्ण संज्ञक रश्मियों के बिना नाना प्रकार की संयोगादि क्रियाओं को सम्पन्न कर रहा था, वह श्यापर्ण संज्ञक रश्मियों से युक्त होकर इस अध्याय में वर्णित सभी क्रियाओं को करने में समर्थ होने लगता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्रीय भाग में जब विभिन्न कणों के संलयन की क्रिया होती है, उस समय सूत्रात्मा एवं मास रश्मियां सबसे अधिक सूक्ष्म परन्तु महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वे विभिन्न कणों को आच्छादित करके उनमें प्रबल विद्युत् चुम्बकीय बल उत्पन्न करने में मूल भूमिका निभाती हैं। संलयन की क्रिया के समय सभी कणों में भारी कम्पन होने लगता है। कम्पन करते हुए वे कण एक-दूसरे के निकट आने लगते हैं। इन क्रियाओं में विभिन्न क्वाण्टाज् भी आकाश तत्त्व को Distort करके विभिन्न कणों के साथ संगत होने लगते हैं, जिससे उन कणों की ऊर्जा में वृद्धि होने लगती है। सलंयन की क्रिया तीन चरणों में सम्पन्न होती है, जिसके प्रथम चरण में गायत्री छन्द रश्मियां, द्वितीय चरण में त्रिष्टुप् एवं उष्णिक् छन्द रश्मियां और तृतीय चरण में जगती छन्द रश्मियां बहुत अधिक सक्रिय होती हैं। इस समय एक छन्द रश्मि, जो उष्णिक्, त्रिष्टुप् एवं पंक्ति तीनों ही प्रकार का प्रभाव दर्शाती है, उत्पन्न होकर नाभिकीय संलयन की सम्पूर्ण प्रक्रिया को उत्प्रेरित करते हुए समन्वय और निरन्तरता प्रदान करती है,
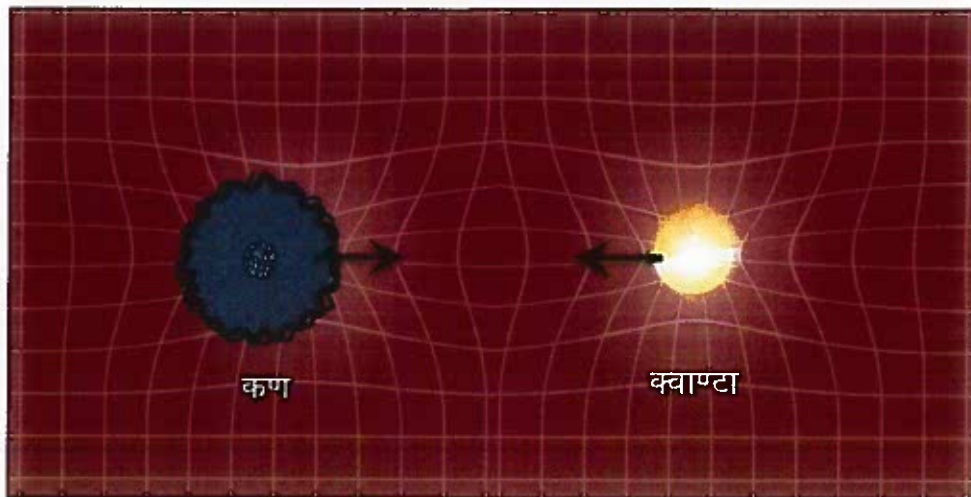
चित्र ३५.२ कण एवं क्वाण्टा के द्वारा आकाश तत्त्व का संकुचन

जबकि यह स्वयं सम्पूर्ण प्रक्रिया में सुरक्षित एवं अविकृत रहती है। इस छन्द रश्मि के प्रभाव से नाभिकीय संलयन में होने वाली इस अध्याय में वर्णित सभी प्रकार की क्रियाएं अनुकूल तेजस्विता के साथ सम्पन्न होती हैं और केन्द्र की ओर आया हुआ कोई भी पदार्थ केन्द्र से बाहर नहीं जाता।।

२. एतमु हैव प्रोवाच तुरः कावषेयो जनमेजयाय पारिक्षिताय; एतमु हैव प्रोचतुः पर्वतनारदौ सोमकाय साहदेव्याय; सहदेवाय सार्ञ्जयाय, बभ्रवे दैवावृधाय, भीमाय वैदर्भाय, नग्नजिते गान्धाराय एतमु हैव प्रोवाचाग्निः सनश्रुतायारिंदमाय, क्रतुविदे जानकये; एतमु हैव प्रोवाच वसिष्ठः सुदासे पैजवनाय; ते ह ते सर्व एव महज्जग्मुरेतं भक्षं भक्षयित्वा सर्वे हैव महाराजा आसुरादित्य इव ह स्म श्रियां प्रतिष्ठितास्तपन्ति, सर्वाभ्यो दिग्भ्यो बलिमावहन्तः।।
आदित्य इव ह वै श्रियां प्रतिष्ठितस्तपति, सर्वाभ्यो दिग्भ्यो बलिमावहत्युग्रं हास्य राष्ट्रमव्यथ्यं भवति य एवमेतं भक्ष भक्षयति क्षत्रियो यजमानो यजमानः।।८।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रकरण को और भी अधिक विस्तार देते हुए कहते हैं कि पूर्वोक्त भक्ष संज्ञक पदार्थों को तेजस्वी बनाने में कुछ ऋषि प्राण रश्मियों की भी भूमिका होती है। ग्रन्थकार ने इसका वर्णन करते हुए कहा है-

(अ) इन ऋषि प्राण रश्मियों में से तुरः कावषेय {तुरः = तुर इति यमनाम तरतेर्वा त्वरतेर्वा, त्वरया तूर्णगतिर्यमः (नि.१२.१४)। कवषः = शब्दं कुर्वन् (तु.म.द.य.भा.२६.५)} अर्थात् सूक्ष्म नियंत्रक बलों से युक्त आशुगामिनी एवं तारक गुणों से युक्त सूक्ष्म ध्वनियों को उत्पन्न करने वाली रश्मियां उन भक्षरूप पदार्थों को प्रभावित वा सक्रिय करती हैं। हमारे मत में इन रश्मियों में सूत्रात्मा वायु, धनंजय एवं प्राण नामक प्राण रश्मियों का मिश्रण होता है। इन रश्मियों के प्रभाव से परिपूर्ण भक्षरूप रश्मियां क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों को पारिक्षित जनमेजय का रूप प्रदान करती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि इन भक्षरूप रश्मियों के सेवन से विभिन्न क्षत्रियरूप परमाणु आदि पदार्थ सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग में अपनी व्याप्ति को बढ़ाते हुए अन्य परमाणु आदि पदार्थों को कंपाने वाले बलों से युक्त होने लगते हैं।

(ब) पर्वत एवं नारद नामक ऋषि रश्मियों का युग्म इन भक्षरूप पदार्थों को प्रभावित करता है। इन ऋषि रश्मियों के विषय में खण्ड ७.३३.१ द्रष्टव्य है। इनके प्रभाव से क्षत्रियरूप पदार्थ निम्नलिखित गुणों से युक्त होने लगते हैं-

(१) सोमकः = इसका तात्पर्य यह है कि ये क्षत्रियरूप पदार्थ विभिन्न प्रकार के उत्पादन कर्मों के साथ-२ प्रेरक एवं सम्पीडक बलों से युक्त होकर नाना प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करने में सक्षम होते हैं। इन गुणों को किंवा इनके रूप को साहदेव्य कहा गया है। इसका अर्थ यह है {सहदेवः = देवैः सह वर्त्तते सः (म.द.ऋ.भा.१.१००.१७)} कि इन उपर्युक्त ऋषि रश्मियों के प्रभाव से प्रभावित भक्षरूप रश्मियों के संगम से क्षत्ररूप पदार्थ नाना प्रकार की प्राथमिक प्राण रश्मियों के साथ विशेष रूप से संगत होकर सोमक रूप को प्राप्त करते हैं।

(२) सहदेवः = इस बात को हम उपर्युक्त विन्दु में वतला चुके हैं कि क्षत्ररूप पदार्थ विभिन्न प्राण रश्मियों से युक्त होने लगते हैं। इसके कारण ही वे नाना प्रकार के कमनीय वलों से युक्त होकर विभिन्न देव परमाणुओं को अपने साथ संगत करने लगते हैं और ऐसा करते हुए वे सार्ञ्जय रूप को प्राप्त करने लगते हैं। {सार्ञ्जयः = यो विविधान् न्याययुक्तान व्यवहारान् सृजति तस्याऽपत्यम् (म.द.ऋ.भा.६.४७.२५), (सार्ञ्जयः = उत्पादनम् - तु.म.द.ऋ.भा.६.२७.७, यः प्राप्ताञ्छत्रून् जयति सः - तु.म.द.ऋ.भा.४.१५.४)} इसका तात्पर्य यह है कि वे विभिन्न बाधक वा हिंसक अनिष्ट पदार्थों को नियंत्रित वा नष्ट करके उत्पत्ति क्रियाओं को समृद्ध करने में सक्षम होते हैं।

(३) बभ्रुः = {बभ्रुः = धारकः पोषको वा (म.द.ऋ.भा.५.३०.१४), बभ्रु वर्णानां हरणानां भरणानामिति वा (नि.६.२८), बभ्रुः पिङ्गलो भवति (मै.२.५.१)} बभ्रु अर्थात् इन ऋषि रश्मियों से सम्पन्न भक्षरूप

रश्मियों के अवशोषण से क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ पिंगल वर्ण से युक्त होकर नाना प्रकार के पदार्थों के धारक और पोषक होने लगते हैं। ये देववृध रूप को भी प्राप्त करने लगते हैं। {देववृध = छन्दांसि वै देवानि पवित्राणि (तां.६.६.६), बृहन्तः (पशवः) देवाः (मै.३.१३.११)} इसका तात्पर्य यह है कि क्षत्रियरूप त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां अन्य तेजस्विनी एवं तीक्ष्ण बलों से युक्त छन्द रश्मियों में परिवर्तित होने लगती हैं। ये रश्मियां शक्वरी आदि हो सकती हैं। इससे पदार्थ और भी अधिक सक्रिय और तेजस्वी होने लगता है।
(४) भीमः = अर्थात् उपर्युक्त प्रक्रिया से क्षत्रियरूप पदार्थ सबको कंपाने वाले और स्वयं भी भयंकर कंपन करने वाले होते हैं। उस समय इनका रूप वैदर्भ भी होने लगता है। {दर्भाः = ते (दर्भाः) हि शुद्धा मेध्याः (श.७.३.२.३; ६.२.१.१२), अपां वा एतत् तेजो वर्चः यद्दर्भाः (तै.ब्रा.२.७.६.५)} इसका तात्पर्य यह है कि वे परमाणु आदि पदार्थ तीक्ष्ण और विक्षुब्ध होते हुए भी विद्युत् बलों से विशेषरूप से युक्त होकर तेजस्वी होने के साथ-२ संगमनीय गुणों से भी युक्त होते हैं।
(५) नग्नजित् = {नग्नम् = नञ्+ग्ना - पदयोः समासः। नञः प्रकृतिभावः। ग्नाः वाङ्नाम (निघं.१.११)} अर्थात् उपर्युक्त प्रक्रिया के द्वारा क्षत्रियरूप पदार्थ गान्धार रूप धारण करके अर्थात् नाना प्रकार की रश्मियों से समृद्ध होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को धारण करने में सक्षम होते हुए नग्न पदार्थों अर्थात् वाग् रश्मियों से विहीन परमाणुओं को अपने नियंत्रण में करने में सक्षम होते हैं। यहाँ ध्यातव्य है कि कोई भी परमाणु वाग् रश्मियों से सर्वथा विहीन नहीं हो सकता, हाँ, वाग् रश्मियों की न्यूनता अवश्य हो सकती है। इनकी न्यूनता के कारण परमाणु तेज एवं बलहीन हो जाते हैं। ऐसे ही तेज व बल से हीन परमाणुओं को ये क्षत्रिय परमाणु नियन्त्रित करके उन्हें भी बलयुक्त करने में समर्थ होते हैं। यहाँ वाक् तत्त्व से तात्पर्य बड़ी छन्द रश्मियां मानना चाहिए।
(स) अग्नि नामक ऋषि रश्मियां पूर्वोक्त भक्षरूप रश्मियों को प्रभावित करती हैं। {अग्निः = आत्मैवाग्निः (श.६.७.१.२०), अन्नादोऽग्निः (श.२.१.४.२८)} यहाँ सूत्रात्मा वायु को ही अग्नि ऋषि कहा गया है। इनसे प्रभावित भक्षरूप रश्मियों के भक्षण से क्षत्रिय पदार्थ निम्न गुणों से युक्त हो जाते हैं-
(१) सनश्रुतः = {सनत् = सनातनम् (म.द.ऋ.भा.५.६१.५), सनये सनयाय (नि.६.२२), सनयं पुराणम् (नि.४.१९)} ये क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थ निरन्तर संगमनीय गति व तेज से युक्त होने लगते हैं अर्थात् इनके बल वा गति दोनों ही अक्षीणता को प्राप्त कर लेते हैं।
(२) अरिंदमः = ये सभी प्रतिरोधी पदार्थों को {अरिः = प्रापकः (म.द.ऋ.भा.१.१५०.१), अमित्र ऋच्छतेः (नि.५.७)} व्याप्त करके उनका दमन करने में सक्षम होते हैं।
(३) क्रतुवित् = {क्रतुम् = क्रतुं दधिक्राः कर्म वा प्रज्ञां वा (नि.२.२८), मित्र एव क्रतुः (श.४.१.४.१), वाग्वै क्रतुर्यज्ञमुखम् (तै.सं.५.३.३.५), अपानः क्रतुः (तै.सं.२.५.२.४)} ये क्षत्र परमाणु आदि पदार्थ प्राणापान रश्मियों से विशेष युक्त होकर संयोगोन्मुखी व तेजस्वी हो उठते हैं। इनकी क्रियाशीलता विशेष होती है।
(४) जानकः = ये परमाणु आदि पदार्थ अन्य विविध परमाणु आदि पदार्थों के जनक होते हैं अर्थात् इनमें उत्पादन धर्म विशेष होता है।
(द) वसिष्ठः = वसिष्ठ अर्थात् प्राण नामक प्राण रश्मियों से सम्पन्न भक्ष रश्मियों को प्राप्त क्षत्रिय पदार्थ निम्नलिखित गुणों से सम्पन्न होते हैं-
(१) सुदासः = अपनी विभिन्न क्रियाओं को अच्छी प्रकार सम्पादित करने में समर्थ होते हैं। {सुदाः = कल्याणदानः (नि.२.२४)} ये पदार्थ विभिन्न उत्तम रश्मियों को अन्य पदार्थों की ओर उत्सर्जित करके उन्हें अपने साथ सम्यग्रूपेण संगत वा आकृष्ट करने में समर्थ होते हैं।
(२) पैजवनः = {पैजवनः = पिजवनस्य पुत्रः, पिजवनः पुनः स्पर्धनीयजवो वाऽमिश्रीभावगतिर्वा (नि.२.२४)} ये पदार्थ प्रशस्त एवं स्पर्धनीय शुद्ध गति से युक्त होते हैं।

इस प्रकार चार वर्गों में विभाजित कुल पांच ऋषि प्राण रश्मियों के प्रभाव से संसिक्त वा समृद्ध सभी भक्षरूप रश्मियां विशेष समर्थ होकर विभिन्न क्षत्रिय पदार्थों को व्यापक रूप से बलसम्पन्न करती हुई प्रकाशित करती हैं। इससे आदित्य के केन्द्रीय भाग में विद्यमान सभी क्षत्रियादि परमाणु आदि पदार्थ तीव्रता से प्रकाशित होकर सम्पूर्ण आदित्य लोक को नाना प्रकार की श्री से युक्त करते हैं। इससे तात्पर्य है कि सम्पूर्ण आदित्य लोक प्राण एवं छन्द, अग्नि एवं सोम आदि युग्मों से सम्पन्न होकर आकाश में देदीप्यमान होते हुए प्रतिष्ठित होता है तथा सभी दिशाओं से नाना प्रकार के सूक्ष्म रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को निरन्तर आकर्षित करता रहता है। इसका केन्द्रीय भाग भी अन्य शेष विशाल भाग से नाना

परमाणुओं को निरन्तर आकृष्ट करके सतत समृद्ध होता रहता है।।

उपर्युक्त प्रकार की सभी क्रियाओं से आदित्य लोक का केन्द्रीय भाग नाना प्रकार की प्राण एवं छन्दादि रश्मियों में प्रतिष्ठित होता हुआ तीव्र रूप से तपने लगता है और अपने चारों ओर विद्यमान विशाल पदार्थ से भारी मात्रा में परमाणु आदि पदार्थों को निरन्तर आकृष्ट करता हुआ अति-क्षोभ को प्राप्त करता है। इतना होने पर भी वह केन्द्रीय भाग अत्युग्र होते हुए भी निरन्तर स्थायित्व की अवस्था में बना रहता है अर्थात् वह इधर-उधर विचलित नहीं होता। इसी प्रकार उन आदित्य लोकों के अन्दर विभिन्न क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थ भी निरन्तर अक्षुण्ण बलों से युक्त रहते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के अन्दर होने वाली संलयन की क्रियाओं में जिन नाभिकों का संलयन होता है, उन नाभिकों को आवश्यक ऊर्जा प्रदान करने में पूर्वोक्त अनेक छन्द व प्राण रश्मियों के अतिरिक्त अथवा उनमें से सूत्रात्मा वायु, धनंजय, प्राण, अपान एवं व्यान रश्मियां एवं मास रश्मियों की सर्वाधिक भूमिका होती है। इन सबके कारण विभिन्न नाभिक पर्याप्त ताप और दाब से युक्त होकर संलयित होने लगते हैं। **तारों के केन्द्रीय भाग लालिमा लिये हुए भूरे रंग के तथा इसमें पीले रंग के मिश्रण के तेज से युक्त होते हैं।** सभी नाभिक परस्पर संलयित होते समय तीव्ररूप से कम्पन करते हैं। सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग ब्रह्माण्ड का सबसे सक्रिय एवं तप्त क्षेत्र होता है, पुनरपि यह विभिन्न छन्दादि रश्मियों के कारण सदैव स्थायीरूप में बना रहता है। इसके साथ ही यह सम्पूर्ण तारे एवं विभिन्न ग्रह, उपग्रह आदि लोकों को भी स्थायित्व प्रदान करता रहता है। इन पांच अध्यायों में तारों का गम्भीर क्रिया विज्ञान एवं उत्पत्ति प्रक्रिया का विशद विवेचन किया गया है, जो आधुनिक सृष्टि विज्ञानियों को अनेकत्र नवीन एवं क्रान्तिकारी दिशा दे सकता है।।

इति ३५.८ समाप्तः

इति पञ्चत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः

।। इति "ऐतरेयब्राह्मणे" सप्तमपञ्चिका समाप्ता।।७।।

।। इस प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण की सातवी पञ्चिका का वैज्ञानिक व्याख्यान पूर्ण हुआ।।७।।

इति परब्रह्मणः सच्चिदानन्देश्वरस्याऽनुपमकृपाभाजेन, प्रखर वेदोद्धारकस्य
परिव्राजकाचार्यप्रवरस्य श्रीमन्महर्षिदयानन्दसरस्वतिनः प्रबलार्यानुयायिवंशप्रवर्त्तकस्य
भारतवर्षस्योत्तरप्रदेशस्थ-हाथरसमण्डलान्तर्गतस्य ऐंहनग्रामाभिजनस्य
सिसोदिया-कुल-वैजपायेणगोत्रोत्पन्नस्य तत्रभवतः श्रीमतो देवीसिंहस्य प्रपौत्रेण,
श्रीघनश्यामसिंहस्य पौत्रेण श्रीमतोः ओम्वतीदेवीन्द्रपालसिंहयोस्तनूजेन
वीरप्रसवितुर्राजस्थानप्रान्तस्य
जालोरमण्डलान्तर्गत-प्रकाण्डगणितज्ञ-ब्रह्मगुप्त-महाकविमाघजन्मभूर्भीनमाल-
निकटस्थभागलभीमग्रामस्थ श्रीवैदिकस्वस्तिपन्थान्यास-संस्थापकेन
(वेद-विज्ञान-मन्दिर-वास्तव्येन) आचार्याऽग्निव्रतनैष्ठिकेन
विरचित-वैज्ञानिकभाष्यसारसमेतैतरेयब्राह्मणस्य वैज्ञानिक-व्याख्यानस्य (वेदविज्ञान-आलोकस्य)
सप्तमपञ्चिका समाप्यते।

।। ओ३म् ।।

अथ अष्टमपञ्चिका

ओ३म्। भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।
ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव।।

३६. **षट्त्रिंशोऽध्यायः** 2165

इसमें सोम अहन् के स्तोत्र व शस्त्रों के रूप में तारों के केन्द्रीय भाग के निर्माण का वर्णन है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र संज्ञक पदार्थों के वैज्ञानिक स्वरूप की विवेचना है।

३७. **सप्तत्रिंशोऽध्यायः** 2187

इसमें राजा के अभिषेक की प्रक्रिया के रूप में तारों के केन्द्रीय भाग के विज्ञान तथा तारों से विभिन्न कणों तथा विकिरणों के उत्सर्जन का विज्ञान वर्णित है।

३८. **अष्टात्रिंशोऽध्यायः** 2225

इसमें इन्द्र के महाभिषेक के रूप में विद्युदावेशित कणों व तारों की संरचना की समानता व उसके विज्ञान का वर्णन है।

३९. **एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः** 2239

इसमें राजा के महाभिषेक एवं विभिन्न राजाओं के महाभिषेक के रूप में निरावेशित कणों के बलों का स्वरूप व विज्ञान, उन कणों की संरचना, क्वाण्टा की उत्पत्ति, संरचना व कार्य, तारों के केन्द्रीय भाग एवं आकाश तत्त्व का विज्ञान वर्णित है।

४०. **चत्वारिंशोऽध्यायः** 2267

इसमें पुरोहित के कार्य तथा ब्रह्म परिमर के रूप में कणों व क्वाण्टाज् के संयोग की प्रक्रिया, सृष्टि में विभिन्न धारित व धारक पदार्थ, विभिन्न

संयोगों में डार्क एनर्जी के नियन्त्रण आदि का अद्भुत व गम्भीर विज्ञान वर्णित है।

षट्त्रिंशोऽध्यायः

"

तारों के केन्द्रीय भागों में कुछ ऐसे नाभिक भी आ जाते हैं, जिनका संलयन केन्द्रीय ताप और दाब पर सम्भव नहीं होता। ऐसे नाभिकों का विखण्डन भी उन केन्द्रीय भागों में होता रहता है। आधुनिक विज्ञान के लिए यह विखण्डन वाली बात गम्भीर अन्वेषण करने योग्य है।

"

।। ओ३म् ।।
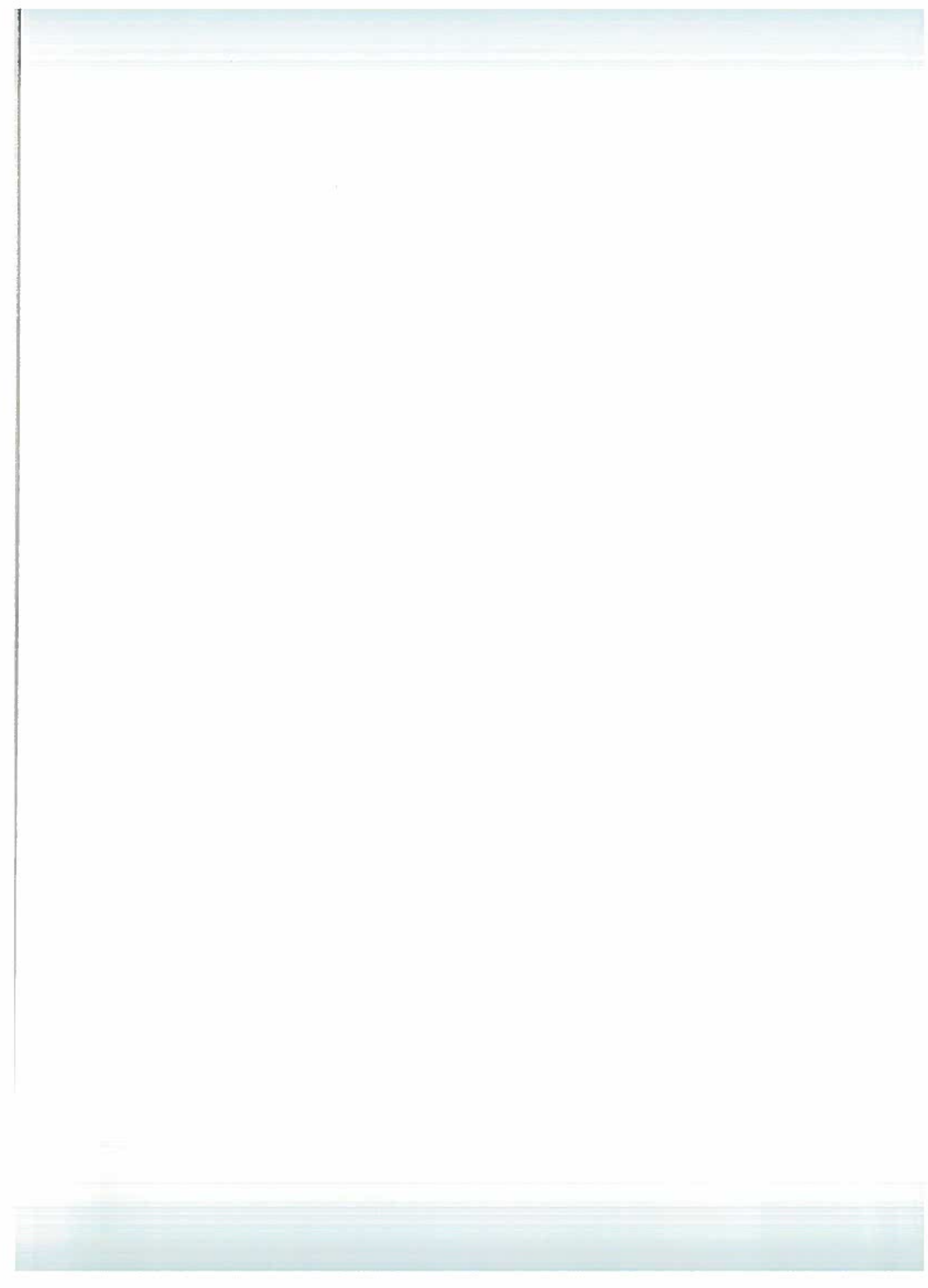
ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव।।

अनुक्रमणिका

३६.१	तारों के केन्द्रीय भाग के निर्माण का विज्ञान, तारों के केन्द्र में नाभिकीय विखण्डन। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र संज्ञक पदार्थ। त्रिवृत्, पञ्चदश, सप्तदश, एवं एकविंश स्तोम। मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी, एवं अच्छावाक शस्त्र। अग्निष्टोम एवं ज्योतिष्टोम।	2168
३६.२	पूर्वोक्त विषय।	2173
३६.३	पूर्वोक्त विषय।	2178
३६.४	पूर्वोक्त विषय।	2183

ॐ अथ ३६.१ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. अथातः स्तुतशस्त्रयोरेव।।
ऐकाहिकं प्रातःसवनमैकाहिकं तृतीयसवनमेते वै शान्ते क्लृप्ते प्रतिष्ठिते सवने यदैकाहिके, शान्त्यै क्लृप्त्यै प्रतिष्ठित्या अप्रच्युत्यै।।
उक्तो माध्यंदिनः पवमानो य उभयसाम्नो बृहत्पृष्ठस्योभे हि सामनी क्रियते।।
आ त्वा रथं यथोतय, इदं वसो सुतमन्ध इति राथंतरी प्रतिपद् रथंतरोऽनुचरः, पवमानोक्थं वा एतद् यन् मरुत्वतीयं; पवमाने वा अत्र रथंतरं कुर्वन्ति; बृहत्पृष्ठं, सवीवधतायै; तदिदं रथंतरं स्तुतमाभ्यां प्रतिपदनुचराभ्यामनुशंसति।।
अथो ब्रह्म वै रथन्तरं, क्षत्रं बृहद्, ब्रह्म खलु वै क्षत्रात् पूर्वं, ब्रह्म पुरस्तान्म उग्रं राष्ट्रमव्यथ्यमसदित्यथान्नं वै रथन्तरमन्नमेवास्मै तत्पुरस्तात्कल्पयत्यथेयं वै पृथिवी रथंतरमियं खलु वै प्रतिष्ठा, प्रतिष्ठामेवास्मै तत्पुरस्तात् कल्पयति।।
समान इन्द्रनिहवोऽविभक्तः; सोऽह्नामुद्वान्, ब्राह्मणस्पत्य उभयसाम्नो रूपमुभे हि सामनी क्रियेते।।
समान्यो धाय्या अविभक्तास्ता अह्नाम्।।
ऐकाहिको मरुत्वतीयः प्रगाथः।।१।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त राजसूय यज्ञ अर्थात् आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग के निर्माण की प्रक्रिया में स्तोत्र एवं शस्त्ररूप विभिन्न छन्दादि रश्मियों के विषय का प्रतिपादन प्रारम्भ किया जा रहा है। शस्त्र एवं स्तोत्र संज्ञक रश्मियों के विषय में पाठक २.३७.२ अवश्य पढ़ें। वस्तुतः शस्त्र एवं स्तोत्र संज्ञक रश्मियां सापेक्ष होती हैं। इस कारण विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार की छन्द रश्मियां स्तोत्र एवं शस्त्ररूप में मानी जाती हैं। यहाँ इस प्रकरण में इन दोनों प्रकार की रश्मियों की चर्चा प्रारम्भ की जा रही है।।

स्तोत्र एवं शस्त्र छन्द रश्मियों की चर्चा से पूर्व अन्य विषय को प्रस्तुत करते हुए महर्षि लिखते हैं कि आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग की पूर्वोक्त प्रक्रियाओं के प्रातःसवन और तृतीय सवन दोनों ही चरणों में ऐकाहिक परिधानीय छन्द रश्मियां खण्ड ६.८ में वर्णित प्रातःसवन और तृतीय सवन की ऐकाहिक छन्द रश्मियों के समान ही होती हैं। परिधानीय एवं ऐकाहिक आदि परिधानीय छन्द रश्मियों के विषय में खण्ड ६.८ ही द्रष्टव्य है। ध्यातव्य है कि सर्ग प्रक्रिया के विभिन्न चरणों में ये छन्द रश्मियां भिन्न-२ प्रकार की होती हैं। इसी कारण यहाँ स्पष्टता के लिये दोनों ही स्थितियों में ऐकाहिक परिधानीय छन्द रश्मियों की समानता दर्शायी गयी है। ये ऐकाहिक छन्द रश्मियां केन्द्रीय भागस्थ पदार्थों को ज्योति में प्रतिष्ठित करती हुई भी नियंत्रित रखती हैं। ये परिधानीय छन्द रश्मियां विशेष सामर्थ्यवती और अन्य सभी छन्दादि रश्मियों को अनुकूलतापूर्वक प्रेरित करती हुई प्रतिष्ठित करती हैं। इस कारण इन केन्द्रीय भागों की विभिन्न प्रक्रियाओं को नियंत्रित, समर्थ और निरन्तर प्रतिष्ठित करने के लिए इन ऐकाहिक छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। ध्यातव्य है कि शान्त अर्थात् नियम्य छन्दादि रश्मियां ही विभिन्न प्रकार की सामर्थ्यों से युक्त होकर नाना सृजन प्रक्रियाओं में प्रतिष्ठित हो सकती हैं। इसी बात का संकेत करते हुए ग्रन्थकार ने अन्यत्र कहा है-

"शान्तिर्वै प्रतिष्ठैकाहः" (ऐ.आ.१.१.३)।

उपर्युक्त दोनों सवनों की चर्चा के पश्चात् राजसूय यज्ञ अर्थात् आदित्य के केन्द्रीय भाग के माध्यंदिन सवन की चर्चा करते हुए कहते हैं कि खण्ड ३.१४ तथा उससे अगले खण्डों में जिस माध्यन्दिनसवन अर्थात् त्रिष्टुप् प्रधान अवस्था का वर्णन किया गया है, उस अवस्था में दो प्रकार की साम रश्मियों की चर्चा की गयी है। उन रथन्तर और बृहत् साम रश्मियों के विषय में हम खण्ड ४.१३ में विस्तार से लिख चुके हैं। सम्पूर्ण सृष्टि प्रक्रिया में ये दोनों ही प्रकार की साम रश्मियां अपनी अनिवार्य भूमिका निभाती हैं। ये रश्मियां अन्य विभिन्न छन्द रश्मियों को परस्पर जोड़ने में सहायक होती हैं, यह बात हम अनेकत्र अवगत करवा चुके हैं। ये दोनों साम रश्मियां स्वयं भी परस्पर मिथुनरूप में ही कार्य करती हैं। इस विषय में ऋषियों का कथन है-

"पुंसो वा एतद् रूपं यद् बृहत्, स्त्रियै रथन्तरम्" (जै.ब्रा.२.४०७)

"वृषा वै बृहद् योषा रथन्तरम्" (ऐ.आ.१.४.२)।

ये दोनों ही प्रकार की साम रश्मियां जैसे माध्यन्दिनसवन की क्रियाओं में कार्य करती हैं, वैसे ही आदित्य के केन्द्रीय भाग के निर्माण के समय भी ये दोनों ही साम रश्मियां अपनी भूमिका निभाती हैं। यहाँ बृहत् पृष्ठ से तात्पर्य न केवल इन दोनों ही प्रकार की साम रश्मियों से है, अपितु वैराज, वैरूप आदि उन सभी साम रश्मियों से भी है, जो खण्ड ४.१३ में दर्शायी गयी हैं। ये सभी प्रकार की साम रश्मियां रथंतर एवं बृहत् के रूप में भी वर्गीकृत की जा सकती हैं। इस कारण ही यहाँ "उभेसामनी" पदों का प्रयोग किया है। इनके इस वर्गीकरण के लिए भी खण्ड ४.१३ द्रष्टव्य है। यहाँ ग्रन्थकार का मुख्य कथन यह है कि सम्पूर्ण सृष्टि प्रक्रिया में इन साम रश्मियों का युग्म समानरूप से सर्वत्र कार्य करता है।।+।।

मध्यन्दिनसवन की विभिन्न प्रक्रियाएं पवमान स्तोम संज्ञक सामवेद उत्तरार्चिक (६७२-६७६) तक आठ छन्द रश्मियों की विद्यमानता में सम्पन्न होती हैं, इस बात को हम खण्ड ३.१४ में दर्शा चुके हैं। इसी समय मरुत्वतीय शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मियों की उत्पत्ति भी होती है, जिसे हम खण्ड ३.१५-२० में दर्शा चुके हैं। यहाँ ग्रन्थकार का कथन है कि इस प्रकरण में भी इस मरुत्वतीय शस्त्ररूप रश्मिसमूह तथा पवमान स्तोत्ररूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति होती है।

इस मरुत्वतीय संज्ञक छन्द रश्मियों में से

आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि। तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्र शविष्ठ सत्पते।।१।।

तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते। आ पप्राथ महित्वना।।२।।

यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः। हस्ता वज्रं हिरण्ययम्।।३।। (ऋ.८.६८.१-३)

तृचरूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति होती है। आचार्य सायण ने यहाँ तृच का ग्रहण तथा ३.१५.२ में केवल एक ऋचा का ही ग्रहण किया है। हम भी इस मत को स्वीकार कर रहे हैं। इस तृचरूप छन्द रश्मिसमूह के विषय में ४.२६.५ द्रष्टव्य है। यह तृचरूप रश्मिसमूह लोक निर्माण की प्रक्रिया के प्रारंभिक चरण अर्थात् प्रथम अहन अर्थात् नाग प्राण के उत्कर्ष काल में भी उत्पन्न होता है एवं यही इस राजसूय यज्ञरूप केन्द्रीय भाग में होने वाली प्रक्रियाओं में भी उत्पन्न होता है। इस समय इसको राथन्तरी प्रतिपत् रूप कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि यह रश्मिसमूह रथन्तर रश्मियों के रूप में पहले उत्पन्न होता है, जो विभिन्न प्रकार की छन्द रश्मियों का नाना प्रकार की क्रियाओं को सम्पादित करने में विशेष सहयोग करता है। इस समूह के साथ-२

इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम्। अनाभयिन्ररिमा ते।।१।।

नृभिर्धूतः सुतो अश्नैरव्यो वारैः परिपूतः। अश्वो न निक्तो नदीषु।।२।।

तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः। इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे।।३।। (ऋ.८.२.१-३)

तृचरूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति होती है। इस समूह के विषय में भी ४.२८.५ द्रष्टव्य है। इस समूह को अनुचर कहा गया है अर्थात् ये प्रतिपद्रूप रश्मियों के तुरन्त पश्चात् उनका अनुगमन करते हुए उत्पन्न होती हैं। ये प्रतिपत् और अनुचर दोनों ही प्रकार की छन्द रश्मियां इन्द्रदेवताक हैं। इस कारण दोनों ही परस्पर लगभग समान प्रभाव दर्शाती हैं। इनके छन्द भी लगभग समान हैं। इनमें से प्रतिपद्रूप राथन्तरी छन्द रश्मियां, जहाँ विभिन्न छन्द रश्मियों को पवमान-स्तोत्र संज्ञक उपर्युक्त छन्द रश्मियों के अन्दर उन्हें वहन करती हुई निरन्तर अग्रगामी होकर चलती हैं, वहीं अनुचररूप बृहत् साम संज्ञक द्वितीय छन्द रश्मिसमूह उनका अनुकरण करता हुआ विभिन्न छन्द रश्मियों को व्यापक आधार प्रदान करता है। यहाँ विभिन्न छन्द रश्मियों से तात्पर्य उन छन्द रश्मियों से है, जो मरुत्वतीय शस्त्ररूप छन्द रश्मियों में विद्यमान होती हैं। {वीवधः = बोझा ढोने के लिए जुआ, मार्ग - आप्टेकोश} इस प्रकार प्रतिपत्-अनुचर एवं रथंतर-बृहत् दोनों ही प्रकार की छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर माध्यन्दिनसवन में उत्पन्न मरुत्वतीय शस्त्र संज्ञक विभिन्न छन्द रश्मियों को वहन करने के लिए जहाँ वाहन का कार्य करती हैं, वहीं उन्हें उचित मार्ग भी प्रदान करती हैं। इसके साथ ही ये उन सबको परस्पर संगत करने में भी विशेष भूमिका निभाती हैं। यहाँ माध्यन्दिनसवन का होना इस बात का संकेत है कि इस समय आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग के अन्दर विभिन्न रश्मियां वा परमाणु आदि पदार्थ तीव्र रूप से विक्षुब्ध होते हैं और इन्द्र तत्त्व की भी अतितीक्ष्णता विद्यमान होती है। ध्यातव्य है कि यहाँ ग्रन्थकार ने बृहत् सामरूप छन्द रश्मियों को नहीं दर्शाया है, केवल राथन्तरी ऋचाओं को ही दर्शाया है।।

पूर्वोक्त रथंतररूपी छन्द रश्मियां ब्रह्मरूप भी होती हैं और बृहत्सामरूपी छन्द रश्मियां क्षत्ररूप होती हैं। ब्रह्म एवं क्षत्र के विषय में हम पूर्व दो अध्यायों में विस्तार से लिख चुके हैं। यहाँ ग्रंथकार का तात्पर्य हमारे मत में यह भी प्रतीत होता है कि पूर्वोक्त सभी ब्रह्मरूप पदार्थ रथंतर रूप में भी कार्य करते हैं तथा क्षत्ररूप पदार्थ बृहत्साम के रूप में भी कार्य करते हैं। ब्रह्म एवं क्षत्र संज्ञक पदार्थों के विषय में ऋषियों का कथन है-

"ब्रह्म हि पूर्वं क्षत्रात्" (तां.११.१.२)।

इससे यह सिद्ध हुआ कि रथंतर रश्मियां बृहद् रूपी साम रश्मियों की अपेक्षा पूर्व में उत्पन्न होती हैं, जबकि दूसरी ओर कहा गया है-

"बृहद्धि पूर्वं रथन्तरात्" (तां.११.१.४)।

अर्थात् बृहत् साम रथन्तर साम की अपेक्षा पूर्व में उत्पन्न होता है। प्रायः सर्वत्र ही यही नियम कार्य करता है। हम इसके लिए एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं-

"मनो वै बृहद् वाक् रथन्तरम्" (जै.ब्रा.३.१२; तां.७.६.१७)।
"मनो वै पूर्वमथ वाक्" (जै.ब्रा.१.१२८, ३२६; ३.१२)।

यहाँ यह भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि जब सर्वत्र बृहत् साम रश्मियां एवं ब्रह्म संज्ञक पदार्थ रथंतर साम रश्मियों एवं क्षत्र संज्ञक पदार्थों से पूर्व में उत्पन्न होते हैं, तब इस प्रकरण में क्यों रथन्तर को बृहत् साम की अपेक्षा पूर्व में उत्पन्न कहा गया है? यहाँ भी ब्रह्म को क्षत्र रश्मियों की अपेक्षा पूर्व में उत्पन्न होना बताया गया है। इस विषय में हमारा मत यह है कि इस राजसूय यज्ञ प्रकरण में पूर्ववर्णित अनेक प्रकरणों से विपरीत यहाँ रथन्तर साम का प्रभाव दर्शाने वाली छन्द रश्मियां बृहत्साम का प्रभाव दर्शाने वाली रश्मियों की अपेक्षा पूर्व में ही उत्पन्न होती हैं। इसकी पुष्टि कुछ अन्य प्रमाणों से भी होती है-

"गायत्री वै रथन्तरस्य योनिः" (तां.१५.१०.५)।
"त्रैष्टुभं वै बृहत्" (तां.५.१.१४)।

यह सर्वविदित है कि गायत्री छन्द रश्मियां त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों से पहले उत्पन्न होती हैं। इस कारण इन प्रमाणों से भी रथन्तर रश्मियां बृहद् रश्मियों की अपेक्षा पूर्व में उत्पन्न होती हुई सिद्ध होती हैं। इस कारण यहाँ पूर्व और अपर का भ्रम नहीं होना चाहिए, बल्कि इन्हें प्रकरण के अनुसार ही समझना चाहिए। यहाँ ग्रंथकार का कथन है कि रथंतर रूपी ब्रह्म रश्मियों के पूर्व में उत्पन्न होने पर यह केन्द्रीय भाग उग्र होते हुए भी व्यथारहित होता है अर्थात् यह अविचल भाव से अपनी विविध क्रियाओं

को निरापदरूप से सम्पन्न करता रहता है। ये रथन्तररूप रश्मियां अन्नरूप होती हैं। इस विषय में महर्षि जैमिनी का भी कथन है-

"अन्नं वै रथन्तरम्" (जै.ब्रा.२.१४६)।

अर्थात् ये रथन्तर रश्मियां संयोजक बलों से विशेषतः युक्त होती हैं, जिसके कारण केन्द्रीय भाग में विद्यमान परमाणु आदि पदार्थों को संयोजक बलों से विशेष समृद्ध करती हैं। इसके साथ ही ये रथन्तर रश्मियां पृथिवीरूप भी होती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार भूमि में बीजों का वपन किया जाता है, उसी प्रकार रथन्तर रश्मियों में विभिन्न छन्दादि रश्मियां बीजवपन करके नाना पदार्थों को उत्पन्न करती हैं। इस विषय में अन्य ऋषियों का भी कथन है-

"इयं वै पृथिवी रथन्तरम् " (काठ.३३.२)
"रथन्तरः हीयम् (पृथिवी) (श.१.७.२.१७)
"अयं वै लोको रथन्तरम् (श.८.५.२.५)
"इयं वाव रथन्तरम्" (तै.सं.३.१.७.२)
"प्रजननं वै रथन्तरम्" (जै.ब्रा.२.६३)

इन वचनों से यह सिद्ध होता है कि रथन्तर साम रश्मियां आदित्य के केन्द्रीय भाग में विभिन्न क्रियाओं को आधार प्रदान करती हुई सबमें व्याप्त होती हैं। इस प्रकार रथन्तररूप पूर्वोक्त प्रतिपत् एवं अनुचर संज्ञक रश्मि समूहों के द्वारा आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग में नाना प्रकार की क्रियाएं प्रतिष्ठापित और सम्पादित होती हैं।।

इस प्रकरण में भी ३.१५.२ की भाँति अविभक्त अर्थात् अविकृतरूप से इन्द्र तत्त्व को विशेष रूप से आकृष्ट करने वाले

इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः।
आ शन्तम शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः।।५।।

आजितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वाभगम्।
प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः क्रतुं पुनत आनुषक्।।६।।

इत्यादि ऋ.८.५३.५-६ प्रगाथरूप रश्मिद्वय की उत्पत्ति होती है। इन छन्द रश्मियों के विषय में ५.१२.४ द्रष्टव्य है। इनके साथ-२ ब्रह्मणस्पति-देवताक एवं निचृदुपरिष्टाद्बृहतीछन्दस्क ऋ.१.४०.१-२ प्रगाथरूप रश्मिद्वय की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे। उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा।।१।।

इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सूत्रात्मा वायु सम्पीडक और बन्धक बलों को तीक्ष्ण रूप से समृद्ध करता है। अन्य प्रभाव से महान् इन्द्र तत्त्व {सचा = (षच समवाये, षच सेचने सेवने च अथवा सचति गतिकर्मा - निघं.२.१४, धातोः क्विप्। ततस्तृतीयैकवचने रूपम् - वै.को. आ.राजवीर शास्त्री)} विभिन्न कमनीय मरुद् रश्मियों के साथ संगत होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को अच्छी प्रकार व्याप्त करता हुआ उन्हें गति और संगमन आदि गुणों से युक्त करता है।

(२) त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपब्रूते धने हिते। सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो व आचके।।२।।

दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से विभिन्न बलों का पालक इन्द्र तत्त्व नाना प्रकार की विनाशी मरुद् रश्मियों के द्वारा प्रकाशित और सब ओर से तृप्त होकर आशुगति एवं तेज और बल को विशेष रूप से प्राप्त करता है।

ये दोनों छन्द रश्मियां घोरपुत्र कण्व ऋषि, जिसके विषय में हम पूर्व में अनेकत्र चर्चा कर चुके

हैं, से उत्पन्न होती हैं। उपर्युक्त दोनों प्रगाथरूप रश्मिसमूह क्रमशः रथन्तर और बृहद्रूप में कार्य करते हैं। इस कारण ये क्रमशः ब्रह्म एवं क्षत्ररूप में ही व्यवहार करते हैं। इस राजसूय यज्ञ में भी धाय्या संज्ञक ऋचाएं, वे ही होती हैं, जो अध्याय १२ में दर्शायी हुई विभिन्न छन्द रश्मियों की धाय्या संज्ञक ऋचाएं होती हैं। इन ऋचाओं के विषय में खण्ड ३.१८ की प्रथम कण्डिका द्रष्टव्य है। ये ऋग्रूप छन्द रश्मियां मरुत्वतीय शस्त्र संज्ञक विभिन्न छन्द रश्मियों को धारण करती हैं। ये रश्मियां अहनूरूप केन्द्रीय भाग में उपर्युक्त दोनों अविभक्त प्रगाथरूप छन्द रश्मियों के साथ अविभक्त रूप से ही निरन्तर संगत रहती हैं। यहाँ भी ३.१९.१ में वर्णित मरुत्वतीय प्रगाथ छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है। यह छन्द रश्मि ऐकाहिक प्रभाव दर्शाती है, जिसे विज्ञ पाठक वहीं पढ़ सकते हैं।।+।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्रीय भाग में नाभिकीय संलयन के समय अनेक छन्द रश्मियां वे ही उत्पन्न होती हैं, जो तारों के निर्माण की प्रक्रिया अथवा कॉस्मिक मेघों के अन्दर सम्पीडन क्रिया प्रारम्भ होते समय उत्पन्न होती हैं। उन छन्द रश्मियों के पारस्परिक संगम, धारण वा आच्छादन आदि क्रियाएं भी समानरूप से सम्पूर्ण सृष्टि में होती हैं। रश्मियों का परस्पर मेल होकर नाना प्रकार के विकिरण और कणों का निर्माण भी सदैव एक समान रीति से होता है। तारों के केन्द्रीय भाग में विद्युत् बलों को समृद्ध करने वाली छन्द रश्मियों की उत्पत्ति विशेषरूप से होती है। इसके अतिरिक्त सूत्रात्मा वायु रश्मियां भी यहाँ अतिसक्रिय होती हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

इति ३६.१ समाप्तः

ॐ अथ ३६.२ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. जनिष्ठा उग्रः सहसे तुरायेति सूक्तमुग्रवत्सहस्वत्तत्क्षत्रस्य रूपं, मन्द्र ओजिष्ठ इत्योजस्वत्तत्क्षत्रस्य रूपं, बहुलाभिमान इत्यभिवदभिभूत्यै रूपं, तदेकादशर्चं भवत्येकादशाक्षरा वै त्रिष्टुप्, त्रैष्टुभो वै राजन्य, ओजो वा इन्द्रियं वीर्यं त्रिष्टुबोजः क्षत्रं वीर्यं राजन्यस्तदेनमोजसा क्षत्रेण वीर्येण समर्धयति; तद्गौरिवीतं भवत्येतद्वै मरुत्वतीयं समृद्धं यद्गौरिवीतं; तस्योक्तं ब्राह्मणम्।।
त्वामिद्धि हवामह इति बृहत्पृष्ठं भवति; क्षत्रं वै बृहत् क्षत्रेणैव तत्क्षत्रं समर्धयत्यथो क्षत्रं वै बृहदात्मा यजमानस्य निष्केवल्यं, तद्यद्बृहत्पृष्ठं भवति, क्षत्रं वै बृहत् क्षत्रेणैवैनं तत्समर्धयत्यथो ज्यैष्ठ्यं वै बृहज्ज्यैष्ठ्येनैवैनं तत्समर्धयत्यथो श्रैष्ठ्यं वै बृहच्छ्रैष्ठ्येनैवैनं तत्समर्धयति।।
अभि त्वा शूर नोनुम इति रथंतरमनुरूपं कुर्वन्त्ययं वै लोको रथंतरमसौ लोको बृहदस्य वै लोकस्यासौ लोकोऽनुरूपोऽमुष्य लोकस्यायं लोकोऽनुरूपस्तद्यद्रथंतरमनुरूपं कुर्वन्त्युभावेव तल्लोकौ यजमानाय संभोगिनौ कुर्वन्त्यथो ब्रह्म वै रथंतरं, क्षत्रं बृहद्, ब्रह्मणि खलु वै क्षत्रं प्रतिष्ठितं, क्षत्रे ब्रह्माथो साम्न एव स सयोनितायै।।
यद्वावानेति धाय्या; तस्या उक्तं ब्राह्मणम्।।
उभयं शृणवच्च न इति सामप्रगाथ उभयसाम्नोरूपमुभे हि सामनी क्रियेते।।२।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रकरण में विभिन्न निविद् रश्मियों को धारण करने वाले मरुत्वतीय शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मिसमूह की चर्चा करते हुए कहते हैं कि यह छन्द रश्मिसमूह

जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः।
अवर्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा।।१।।

द्रुहो निषत्ता पृशनी चिदेवैः पुरू शंसेन वावृधुष्ट इन्द्रम्।
अभीवृतेव ता महापदेन ध्वान्तात्प्रपित्वादुदरन्त गर्भाः।।२।।

ऋष्वा ते पादा प्र यज्जिगास्यवर्धन्वाजा उत ये चिदत्र।
त्वमिन्द्र सालावृकान्त्सहस्रमासन्दधिषे अश्विना ववृत्याः।।३।।

समना तूर्णिरुप यासि यज्ञमा नासत्या सख्याय वक्षि।
वसाव्यामिन्द्र धारयः सहस्राऽश्विना शूर ददतुर्मघानि।।४।।

मन्दमान ऋतादधि प्रजायै सखिभिरिन्द्र इषिरेभिरर्थम्।
आभिर्हि माया उप दस्युमागान्मिहः प्र तम्रा अवपत्तमांसि।।५।।

सनामाना चिद् ध्वसयो न्यस्मा अवाहन्निन्द्र उषसो यथानः।
ऋष्वैरगच्छः सखिभिर्निकामैः साकं प्रतिष्ठा हृद्या जघन्थ।।६।।

त्वं जघन्थ नमुचिं मखस्युं दासं कृण्वान ऋषये विमायम्।
त्वं चकर्थ मनवे स्योनान्पथो देवत्राञ्जसेव यानान्।।७।।

त्वमेतानि पप्रिषे वि नामेशान इन्द्र दधिषे गभस्तौ।
अनु त्वा देवाः शवसा मदन्त्युपरिबुध्नान्वनिनश्चकर्थ।।८।।

चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात्।
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु।।९।।

अश्वादियायेति यद्वदन्त्योजसो जातमुत मन्य एनम्।
मन्योरियाय हर्म्येषु तस्थौ यतः प्रजज्ञ इन्द्रो अस्य वेद।।१०।।

वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः।
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्य१स्मान्निधयेव बद्धान्।।११।।

ऋ.१०.७३ सूक्त के रूप में उत्पन्न होता है। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का भी कथन है-

"(मरुत्वतीयः) जनिष्ठा उग्र इति" (आश्व.श्रौ.५.१४.१६)

इस सूक्त के विषय में विस्तार से जानने के लिए ३.१७.५ एवं ३.१६.२ द्रष्टव्य हैं। इस सूक्त की प्रथम ऋचा में 'उग्रः' एवं 'सहसे' पद विद्यमान होने से यह सम्पूर्ण सूक्त 'उग्रवत्' एवं 'सहस्वत्' कहलाता है। इस कारण इन रश्मियों के द्वारा उग्र वलों की उत्पत्ति होती है। इन उग्र वलों के कारण इस सूक्त का प्रभाव क्षत्ररूप रश्मियों के समान होता है। इस प्रथम ऋचा में "मन्द्र ओजिष्ठः" पद भी विद्यमान है, इस कारण इस सम्पूर्ण सूक्त को "ओजवत्" भी कहा गया है अर्थात् यह "ओजिष्ठ" पद सम्पूर्ण सूक्त को प्रभावित करके तीव्र सम्पीडक वलों को उत्पन्न करता है और इस कारण भी यह रश्मिसमूह क्षत्ररूप प्रभाव दर्शाता है। इसी ऋचा में "बहुलाभिमानः" पद विद्यमान होने से सम्पूर्ण सूक्त 'अभिवत्' कहलाता है। इसके प्रभाव से सम्पूर्ण सूक्तरूप रश्मिसमूह अपने तीव्र वलों के द्वारा विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को अभिभूत अर्थात् नियंत्रित करने में सक्षम होता है। इस सूक्त में ११ ऋचाएं विद्यमान हैं, जो सभी विविध त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के रूप में होती हैं। उधर आर्षी त्रिष्टुप् ऋचा के एक पाद में ११ अक्षर तथा याजुषी त्रिष्टुप् ऋचा में भी ११ अक्षर होते हैं। इस कारण यह सम्पूर्ण सूक्त अपनी त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों को और भी अधिक तीक्ष्ण तेज और वल से युक्त करता है, इस कारण यह रश्मिसमूह राजन्यरूप, जिसके विषय में हम अनेकत्र लिख चुके हैं, होता है। इस प्रकार क्षत्र परमाणु आदि पदार्थों में ओजस्विता अर्थात् सम्पीडक वल, तेज, उत्पादन सामर्थ्य आदि गुणों की प्रचुरता से वृद्धि होने लगती है। गौरवीति ऋषि प्राण रश्मियों द्वारा उत्पन्न यह सूक्त आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों में विभिन्न मरुद् रश्मियों को भी समृद्ध करता है। यह बात पूर्व में १२ वें अध्याय में भी कही जा चुकी है। यहाँ 'तस्योक्तं ब्राह्मणम्' से ऐसा भी प्रतीत होता है कि ग्रन्थकार इस ग्रन्थ से पूर्व किसी और प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थ अथवा वेद की ओर संकेत करते हुए कह रहे हैं कि इस सूक्त के उपर्युक्त प्रभाव की चर्चा वहाँ भी की गयी है और वहीं से ग्रन्थकार ने इसे ग्रहण किया है।।

मरुत्वतीय शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मिसमूह की चर्चा के पश्चात् निष्केवल्य संज्ञक सूक्तरूप रश्मिसमूह की चर्चा करते हैं। इस समय भी पूर्ववत्

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः।

त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ।।१।।

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः स्तवानो अद्रिवः।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे।।२।। ऋ.६.४६.१-२

प्रगाथरूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति होती है। निष्केवल्य शस्त्र के विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है- "यद्यु वै बृहत्त्वामिद्धि हवामहे त्वं ह्येहि चेरव इति।" (आश्व.श्रौ.५.१५.३) इससे यह स्पष्ट है कि इस प्रगाथ के साथ-२

त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये।
उद्वावृषस्व मघवन्गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये।।७।।

त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे।
आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽ वसे।।८।।

(ऋ.८.६१.७-८) इत्यादि प्रगाथ की भी उत्पत्ति होती है, किन्तु ग्रन्थकार ने इस कण्डिका में इसका संकेत नहीं किया है। जबकि ५.१६.६ में सप्तम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष काल में इन दोनों ही प्रगाथ रश्मियों का उत्पन्न होना एवं निष्केवल्य शस्त्र के रूप में बृहत्पृष्ठ अर्थात् विभिन्न पदार्थों में व्यापक रूप से प्रवाहित होती हुई आधार प्रदान करने वाली बताया है। यहाँ केवल प्रथम प्रगाथ के उत्पन्न होने की चर्चा है। इससे यह संकेत मिलता है कि इस राजसूय यज्ञ प्रकरण में प्रथम प्रगाथ की ही उत्पत्ति होती है इसके विषय में ४.३१.६ द्रष्टव्य है। ये रश्मियां क्षत्ररूप होकर विभिन्न क्षत्र रूप परमाणु आदि पदार्थों को व्यापक आधार प्रदान करती हुई उन्हें निरन्तर समृद्ध करती रहती हैं। ये दोनों छन्द रश्मियां यजमान रूप केन्द्रीय भाग में आत्मा रूप होकर निरन्तर विचरती रहती हैं। ये रश्मियां केन्द्रीय भाग में व्यापक रूप से प्रवाहित होती हुई अन्य रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को व्यापक आधार प्रदान करने के कारण ही बृहत्पृष्ठ सामरूप कहलाती हैं। हम पूर्वखण्ड में यह लिख चुके हैं कि बृहत्सामरूप रश्मियां क्षत्र संज्ञक रश्मियों के समान गुणधर्म वाली होती हैं। इस कारण ही इन्हें क्षत्ररूप कहा गया है। इस क्षत्ररूप द्वारा ही ये आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग को नाना रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों से समृद्ध करती हैं। यहाँ बृहत्साम रश्मियों को ज्यैष्ठ्य भी कहा गया है। {ज्येष्ठः = प्रजापतिर्वाव ज्येष्ठः (तै.सं.७.१.१.४), यद्वै ज्येष्ठं तन्महत् (ऐ.आ.१.३.७), ज्यैष्ठ्यं वा अग्निष्टोमः (जै.ब्रा.२.३७८)} इसका तात्पर्य यह है कि ये रश्मियां व्यापक संगमनीय बलों से युक्त होकर आदित्य के केन्द्रीय भाग में अग्नि तत्त्व को विशेष देदीप्यमान करके श्रेष्ठ रूप प्रदान करती हैं। इसके साथ ही ये रश्मियां स्वयं दीर्घायु होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को दीर्घायु प्रदान करती हैं। इस प्रकार इनके द्वारा वह केन्द्रीय भाग नाना प्रकार की संयोगादि क्रियाओं और उनके पोषक बलों के द्वारा ज्येष्ठता और श्रेष्ठता की दृष्टि से समृद्ध होता जाता है। आचार्य सायण ने इस प्रगाथ को निष्केवल्य शस्त्र का प्रतिपद् रूप कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि ये रश्मियां इस समूह की प्रारम्भिक रश्मियां हैं।।

प्रतिपद् रूप प्रगाथ रश्मियों की चर्चा के पश्चात् अनुरूप संज्ञक

अभि त्वा शूर नोनुमोऽ दुग्धाइव धेनवः।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः।।२२।।

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे।।२३।।(ऋ.७.३२.२२-२३)

इस प्रगाथ की उत्पत्ति होती है। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

अभि त्वा शूर नोनुमोऽभि त्वा पूर्वपीतय इति प्रगाथौ स्तोत्रियानुरूपौ यदि रथन्तरं पृष्ठम्। (आश्व.श्रौ.५.१५.२)

इससे संकेत मिलता है कि महर्षि आश्वलायन के मत में

अभि त्वा शूर नोनुमोऽ दुग्धाइव धेनवः।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः।।२२।।

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे।।२३।।(ऋ.७.३२.२२-२३)

एवं

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन्नुद्रा गृणन्त पूर्व्यम्।।७।।

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽ नु ष्टुवन्ति पूर्वथा।।८।।(ऋ.८.३.७-८)

इत्यादि इन दोनों ही प्रगाथ रश्मिसमूहों की उत्पत्ति निष्केवल्य शस्त्र के भाग के रूप में होती है। उधर, ५.१.७ में केवल प्रथम प्रगाथ की उत्पत्ति को ही स्वीकार किया है। इसके विषय में ४.१०.३ भी द्रष्टव्य है। ये प्रगाथ रश्मियां रथन्तर एवं अनुरूप संज्ञक होती हैं। इससे यह स्वाभाविक सिद्ध होता है कि पूर्व कण्डिका में वर्णित प्रगाथ, बृहत्पृष्ठ होने के साथ-२ स्तोत्रियरूप भी होता है। अनुरूप होने के कारण ये प्रगाथ रश्मियां पूर्वोक्त प्रगाथ रश्मियों का अनुसरण करती हुई रथन्तररूप होने के कारण उनके साथ मिथुन बनाती रहती हैं। विभिन्न अप्रकाशित कण वा रश्मियां भी रथन्तररूप होती हैं तथा विभिन्न प्रकाशित परमाणु वा रश्मियां बृहद् रूप होती हैं अर्थात् विभिन्न अप्रकाशित परमाणु वा रश्मियां प्रकाशित परमाणु वा रश्मियों के साथ जब मिथुन बनाती हैं, उस समय प्रकाशित रश्मि वा परमाणु अप्रकाशित रश्मि वा परमाणुओं को व्यापक आधार प्रदान करते हैं। उधर, अप्रकाशित परमाणु वा रश्मियां प्रकाशित परमाणु वा रश्मियों को वहन करती हुई चलती हैं। ये प्रकाशित और अप्रकाशित कण वा रश्मि आदि पदार्थ परस्पर एक-दूसरे के अनुरूप होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि सभी प्रकार के अप्रकाशित पदार्थ सभी प्रकार के प्रकाशित पदार्थों के साथ संगत होने में समर्थ नहीं होते हैं, बल्कि कुछ विशेष बल आदि गुणों की साम्यता के आधार पर ही इन दोनों प्रकार के पदार्थों के युग्म उत्पन्न हुआ करते हैं। इनके युग्म बनकर परस्पर एक-दूसरे का उपयोग करते हुए ये दोनों आदित्य लोक में नाना प्रकार की संयोगादि क्रियाओं को सम्पादित एवं धारण करते हैं। ये रथन्तररूप प्रगाथ रश्मियां ब्रह्मरूप व्यवहार करती हैं एवं पूर्वोक्त बृहत् संज्ञक प्रगाथ रश्मियां क्षत्ररूप में व्यवहार करती हैं। इस प्रकार इन दोनों प्रकार की प्रगाथ रश्मियों की उत्पत्ति होने के पश्चात् क्षत्ररूप रश्मियां ब्रह्मरूप रश्मियों के अन्दर प्रतिष्ठित हो जाती हैं और ब्रह्मरूप रश्मियां क्षत्ररूप रश्मियों में प्रतिष्ठित हो जाती हैं अर्थात् दोनों परस्पर अन्योऽन्याश्रित हो जाती हैं। इस प्रकार दोनों ही प्रकार की छन्द रश्मियां समानरूप से एक साथ विचरण करती हुई सम्पूर्ण आदित्य लोक में नाना प्रकार की क्रियाओं को सम्पादित और समृद्ध करती रहती हैं। ये दोनों ही प्रकार की प्रगाथ रश्मियां सदैव साथ-२ ही रहती हैं।।

तदुपरान्त "यद्वावान पुरुतमं पुराषाळ.................।" (ऋ.१०.७४.६) की उत्पत्ति होती हैं, जिसके विषय में खण्ड ३.२२ द्रष्टव्य है। इस ऋचा को सर्वत्र धाय्या संज्ञक ही कहा गया है अर्थात् यह छन्द रश्मि अन्य रश्मियों को धारण करती हुई निरन्तर पुष्ट करती है। यहाँ ब्राह्मण से तात्पर्य किसी पूर्ववर्ती ब्राह्मण ग्रन्थ अथवा वेद से हो सकता है।।

तदनन्तर

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत्॥१॥

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः॥२॥

(ऋ.८.६१.१-२) इत्यादि प्रगाथ की उत्पत्ति होती है। इसके विषय में ४.३१.६ द्रष्टव्य है। इस प्रगाथ को सामप्रगाथ कहा गया है। इसका स्पष्टीकरण भी वहीं किया गया है। ये प्रगाथरूप रश्मियां रथंतर एवं बृहत् दोनों प्रकार की पूर्वोक्त प्रगाथ रश्मियों को धारण करती हैं, जिससे पूर्वोक्त प्रगाथ रश्मियां अर्थात् बृहत् एवं रथन्तर रश्मियां परस्पर अच्छी प्रकार से एक-दूसरे को धारण करती हुई अपनी क्रियाओं को समृद्ध करके आदित्य लोक को समृद्ध करती हैं॥

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्रीय भाग में नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया को तीव्र बनाने हेतु आवश्यक विद्युत् चुम्बकीय बलों को उत्पन्न करने के लिए ११ विभिन्न त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जिनके कारण विद्युत् चुम्बकीय बल अत्यन्त प्रबल संयोजक एवं सम्पीडक गुणों से युक्त हो जाते हैं। इस समय वे बल इतने तीव्र हो जाते हैं कि केन्द्रीय भाग में डार्क एनर्जी आदि कोई भी प्रक्षेपक या प्रतिकर्षक पदार्थ वहाँ विद्यमान नहीं रह पाते। इस समय तारों के केन्द्र में अति तीव्र ऊर्जा वाली विद्युदावेशित तरंगें निरंतर उत्पन्न होकर सभी बाधक पदार्थों को नष्ट करती रहती हैं। इस समय नाना प्रकार की छेदन-भेदन क्रियाएं भी होती हैं तथा ऊष्मा की मात्रा भी निरन्तर बढ़ती रहती है। उसके पश्चात् एक अनुष्टुप् एवं एक बृहती छन्द रश्मि साथ-२ उत्पन्न होती है। ये भी प्रबल विद्युत् चुम्बकीय बलों की बन्धन क्षमता को बढ़ाती हैं। ये रश्मियां विभिन्न कणों वा नाभिकों को सब ओर से आच्छादित करके उन्हें सम्पीडित करती हैं। ये दोनों ही प्रकार की रश्मियां तारे के केन्द्रीय भाग में सब ओर विचरती हुई विभिन्न कणों और विकिरणों को परस्पर संयुक्त वा संलयित होने के लिए निरन्तर प्रेरित करती हैं। इसके पश्चात् एक बृहती और एक पंक्ति छन्द रश्मि उत्पन्न होती है। इनके प्रभाव से भी विद्युत् बल और भी अधिक तीव्र और विस्तृत होते हैं तथा विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की उत्पत्ति की प्रक्रिया को ये छन्द रश्मियां तीव्र करती हैं। इसी समय एक बृहती, एक पंक्ति एवं एक त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जिसके कारण विद्युत् बलों की बंधन क्षमता और अधिक विस्तृत होती चली जाती है। इस कारण नाभिकीय संलयन की क्रियाओं का और अधिक विस्तार होता चला जाता है॥

इति ३६.२ समाप्तः

ॐ अथ ३६.३ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा इति सूक्तमभिवदभिभूत्यै रूपम्।।
अषाळहमुग्रं सहमानमाभिरित्युग्रवत् सहमानवत् तत्क्षत्त्रस्य रूपम्।।
तत्पञ्चदशर्चं भवत्योजो वा इन्द्रियं वीर्यं पञ्चदश, ओजः क्षत्त्रं वीर्यं राजन्यस्तदेनमोजसा क्षत्रेण वीर्येण समर्धयति।।
तद्भारद्वाजं भवति, भारद्वाजं वै बृहदार्षेयेण सलोमा।।
एष ह वाव क्षत्रिययज्ञः समृद्धो यो बृहत्पृष्ठस्तस्माद्यत्र क्व च क्षत्रियो यजेत, बृहदेव तत्र पृष्ठं स्यात्, तत्समृद्धम्।।३।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त निष्केवल्य शस्त्ररूप रश्मिसमूह की चर्चा को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि इसी रश्मिसमूह के रूप में पूर्वोक्त भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि प्राण रश्मियों से इन्द्रदेवताक ऋ.६.१८ सूक्तरूप रश्मिसमूह की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः।
अषाळहमुग्रं सहमानमाभिर्गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम्।।१।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न तीक्ष्ण बाधक रश्मि आदि पदार्थों को दबाने वाला इन्द्र तत्त्व स्वयं किसी से हिंसित न होता हुआ विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के द्वारा छेदन-भेदन करने में समर्थ होता है। वह विभिन्न प्रकाश रश्मियों के अन्दर विद्यमान बलवर्षक सूक्ष्म वाग् रश्मियों को तीव्रता से प्रकाशित करता है।

(२) स युध्मः सत्वा खजकृत्समद्वा तुविम्रक्षो नदनुमाँ ऋजीषी।
बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणामेकः कृष्टीनामभवत्सहावा।।२।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {खजः = संग्रामनाम (निघं.२.१७), समद्वा = यः सम्यगत्ति स्वादु भुङ्क्ते सः (म.द.भा.), यो मदेन सह वर्त्तमानान् वनति सम्भजति सः (म.द.ऋ.भा.७.२०.३)} वह इन्द्र तत्त्व नाना प्रकार से संघात-संघर्ष करने वाला, महाबली एवं अति क्रियावान् होकर नाना प्रकार के मिथुनों का निर्माण करता है। वह प्रबल आकर्षण बलों से युक्त, अनेक घोर ध्वनि तरंगों को उत्पन्न करता हुआ {ऋजीषी वज्री (ऋ.५.४०.४)} ऋजुगामिनी वज्र रश्मियों के द्वारा व्यापकरूप से नाना प्रकार से परमाणुओं का धारक व संवाहक होता है। वह शुद्ध रूप से आकर्षण बलयुक्त होकर नाना पदार्थों का संघात करता है।

(३) त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूँरेकः कृष्टीरवनोरार्याय।
अस्ति स्विन्नु वीर्यं१ तत्त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः।।३।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व तेज व बल से विशेष सम्पन्न होकर विभिन्न ऋतु रश्मियों के साथ नाना प्रकार से प्रकाशित होकर बाधक

तीक्ष्ण रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को दूर करके नाना संयोज्य परमाणुओं को गति व व्यापकता प्रदान करता है।

(४) सदिद्धि ते तुविजातस्य मन्ये सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य।
उग्रमुग्रस्य तवसस्तवीयोऽरध्रस्य रध्रतुरो बभूव॥४॥

इसका छन्द निचृद् त्रिष्टुप् है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत समझें। अन्य प्रभाव से {रध्रम् = रध हिंसासंराध्योः (दिवा.) धातोर्बाहु.औणा. रक् (वै.को. आ.राजवीर शास्त्री)। तुरः = तुर इति यमनाम तरतेर्वा त्वरतेर्वा, त्वरया तूर्णगतिर्यमः (नि.१२.१४)} अतिशय सम्पीडक वलों से युक्त इन्द्र तत्त्व, जो विभिन्न उत्पन्न पदार्थों में व्याप्त रहता है, को अविनाशी प्राणापान आदि रश्मियां शीघ्रतापूर्वक प्रकाशित करती हैं। वह इन्द्र नाना हिंसक रश्मियों वा परमाणु आदि पदार्थों को नियंत्रित वा नष्ट करता हुआ स्वयं सदैव अहिंसित और उग्र बना रहता है।

(५) तन्नः प्रत्नं सख्यमस्तु युष्मे इत्था वदद्भिर्वलमङ्गिरोभिः।
हन्नच्युतच्युद्दस्मेषयन्तमृणोः पुरो वि दुरो अस्य विश्वाः॥५॥

छन्द स्वराट् पंक्ति। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र सनातन प्राणापान आदि रश्मियों एवं वाग् रश्मियों से निरन्तर संगत रहता हुआ विभिन्न परमाणुओं की स्थिरता को नष्ट करके उन्हें वल एवं गति प्रदान करता है। वह उन परमाणुओं को आकर्षित करके बाधक पदार्थों को दूर करके आदित्य लोक में नाना प्रकार के मार्गों को उत्पन्न और पूर्ण करता है।

(६) स हि धीभिर्हव्यो अस्त्युग्र ईशानकृन्महति वृत्रतूर्ये।
स तोकसाता तनये स वज्री वितन्तसाय्यो अभवत्समत्सु॥६॥

छन्द ब्राह्मी उष्णिक्, दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र नाना प्रकार के तेज और क्रियाओं के द्वारा नाना प्रकार की असुर रश्मियों को नष्ट करके विभिन्न देव परमाणुओं को नियंत्रित करता है। वह अपनी वज्र रश्मियों के द्वारा आदित्य लोकों के केन्द्र में उत्पन्न नाना प्रकार के परमाणुओं को विदीर्ण और व्याप्त करता हुआ उग्रता प्रदान करता है।

(७) स मज्मना जनिम मानुषाणाममर्त्येन नाम्नाति प्र सर्स्रे।
स द्युम्नेन स शवसोत राया स वीर्येण नृतमः समोकाः॥७॥

छन्द विराट् त्रिष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {मज्मना = शुद्धि-धारण-क्षेपणाऽऽख्येन बलेन (म.द.ऋ.भा.१.६४.३), मज्मना बलनाम (निघं.२.६)} वह इन्द्र अपने शोधक-धारक-क्षेपक वलों, दीप्ति, गति उत्पन्न करने वाले वल, विभिन्न छन्द व मरुद् रश्मियों एवं अविनाशी तेजस्विनी प्राण रश्मियों के द्वारा नाना प्रकार के शुद्ध परमाणुओं को उत्पन्न करने में अतिशय क्रियाशील होता है।

(८) स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्सुमन्तुनामा चुमुरिं धुनिं च।
वृणक्पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्रः पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चित्॥८॥

छन्द त्रिष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से {चुमुरिम् = अत्तारम् (म.द.भा)} वह इन्द्र देव पदार्थों को कंपाने वाले असुरादि तत्त्वों के समूहों में व्याप्त होकर उन्हें विदीर्ण करता है। वह विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को आवश्यकतानुसार गति वा शिथिलता प्रदान करता हुआ निरन्तर क्रियाशील रहता है। इसके कारण विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ परस्पर भ्रमित नहीं होते हैं।

(९) उदावंता त्वक्षंसा पन्यंसा च वृत्रहत्याय रथमिन्द्र तिष्ठ।
धिष्व वज्रं हस्त आ दक्षिणत्राभि प्र मंन्द पुरुदत्र मायाः॥९॥

छन्द निचृत्त्रिष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र व्यापक दानादि क्रियाओं, ऊर्ध्वगमन शक्ति और असुर रश्मियों को नष्ट करने की सूक्ष्म क्रियाओं के द्वारा विभिन्न रमणीय रश्मियों में स्थित होकर नाना प्रकार की वज्र रश्मियों को धारण करता है। वह अपनी तेजस्विनी विद्युत् के द्वारा नाना परमाणुओं को सब ओर से क्रियाशील करता है।

(१०) अग्निर्न शुष्कं वनमिन्द्र हेती रक्षो नि धक्ष्यशनिर्न भीमा।
गम्भीरयं ऋष्वया यो रुरोजाध्वांनयद्दुरिता दम्भयंच्च॥१०॥

छन्द विराट् त्रिष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र अग्नि तत्त्व के साथ मिलकर विभिन्न शोषक रश्मियों को नष्ट करता हुआ विभिन्न असुरादि पदार्थों को भी कंपाता हुआ नष्ट करता है।

(११) आ सहस्रं पथिभिरिन्द्र राया तुविद्युम्न तुविवाजेभिरर्वाक्।
याहि सूंनो सहसो यस्य नू चिददेव ईशे पुरुहूत योतोः॥११॥

छन्द त्रिष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से बलवान् प्राण रश्मियों से उत्पन्न व्यापक तेज और आकर्षण बलों से युक्त इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुद् व छन्द रश्मियों के मार्गों और बलों के द्वारा अपने पीछे असंख्य परमाणु आदि पदार्थों को ले जाता है। वह विभिन्न तेजहीन परन्तु संयोजक और वियोजक गुणों से युक्त परमाणुओं को नियंत्रित व प्रकाशित करता है।

(१२) प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेर्दिवो ररप्शे महिमा पृथिव्याः।
नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः॥१२॥

छन्द भुरिक् त्रिष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से व्यापक तेज एवं दृढ़ता और घर्षण बलों से युक्त सम्पीडक इन्द्र तत्त्व आदित्य लोक में विभिन्न परमाणुओं को पृथक्-२ करता हुआ अहिंस्यरूप में प्रतिष्ठित रहता है।

(१३) प्र तत्ते अद्या करणं कृतं भूत्कुत्सं यदायुमतिथिग्वमस्मै।
पुरू सहस्रा नि शिशा अभि क्षामुत्तूर्वयाणं धृषता निनेथ॥१३॥

छन्द त्रिष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से सतत गमन करने वाली प्राण रश्मियों से युक्त संयोजक गुणों से सम्पन्न वज्र रश्मियों के द्वारा इन्द्र तत्त्व विभिन्न पार्थिव परमाणुओं को आशुगति प्रदान करता हुआ अनेक प्रकार से संयोगादि गुणों से युक्त करता है।

(१४) अनु त्वाहिघ्ने अध देव देवा मदन्विश्वे कवितमं कवीनाम्।
करो यत्र वरिवो बाधिताय दिवे जनाय तन्वे गृणानः॥१४॥

छन्द निचृत्त्रिष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र केन्द्रीय भागों में होने वाली विविध क्रियाओं के विस्तार के लिए नाना प्रकार के कमनीय परमाणुओं को देदीप्यमान करता हुआ क्रान्तदर्शी बनाता है। वे ऐसे परमाणु इन्द्र तत्त्व के कारण आदित्य लोक में सर्वत्र विचरते हुए नाना प्रकार

के कार्यों को सम्पादित करते हैं।

(१५) अनु द्यावापृथिवी तत्त ओजोऽमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः।
कृष्वा कृत्नो अकृतं यत्ते अस्त्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः॥१५॥

छन्द भुरिक्पंक्ति। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र अविनाशी प्राण रश्मियों से विहीन नवीन उत्पन्न छन्द रश्मियों में व्याप्त होकर उन्हें प्राण रश्मियों से युक्त करके बलवान्, प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणुओं को विविध प्रकार से उत्पन्न करता है।

यह सूक्त 'अभि' शब्द से युक्त होने के कारण 'अभिवत्' कहलाता है और इसी कारण यह छन्द रश्मि समूह इन्द्र तत्त्व को नाना प्रकार के नियंत्रक बलों से परिपूर्ण करता है। आचार्य सायण ने इसको निष्केवल्य शस्त्र का निविद्धानीय सूक्त कहा है। इससे संकेत मिलता है कि इस रश्मिसमूह के साथ निविद् संज्ञक तेजस्विनी रश्मियां भी संगत हुआ करती हैं किंवा यह उन रश्मियों को धारण किये रहता है॥

इस उपर्युक्त सूक्त की प्रथम ऋचा के तृतीय पाद "अषाह्ळमुग्रं सहमानमाभिः" में 'उग्र', एवं 'सहमान' शब्द विद्यमान होने से वह सम्पूर्ण सूक्त ही उग्रवत् एवं सहमानवत् प्रभाव दर्शाता है। इन दोनों ही शब्दों का प्रभाव तीव्र सम्पीडक बलों को उत्पन्न करता है। इन बलों की तीव्रता के कारण यह सम्पूर्ण सूक्त क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों के रूप में व्यवहार करता हुआ क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों को समर्थ और समृद्ध करता है॥

इस उपर्युक्त सूक्त में १५ छन्द रश्मियां विद्यमान हैं, जो पञ्चदश स्तोमरूप पन्द्रह गायत्री छन्द रश्मिसमूह के रूप में भी व्यवहार करती हैं। हम पञ्चदश स्तोम रश्मियों के समूह के विषय में अनेकत्र विस्तार से लिख चुके हैं। यह रश्मिसमूह उत्पादक और सम्पीडक आदि अनेक प्रकार के बल और तेज से युक्त होता है। पूर्वोक्त राजन्य संज्ञक क्षत्रियरूप पदार्थ भी इन्हीं गुणों से युक्त होते हैं। इस कारण ये छन्द रश्मियां तेजस्वी क्षत्र अर्थात् राजन्य संज्ञक पदार्थों को बल और तेज से समृद्ध करती हैं। इन पञ्चदश छन्द रश्मियों के विषय में ऋषियों का कथन है-

"पञ्चदशो हि वज्रः" (श.४.३.३.४)
"यजमानो वै पञ्चदशः" (मै.४.७.६)
"यज्ञः पञ्चदशो वज्रमेवोपरिष्टाद् दधाति रक्षसामपहत्यै" (काठ.२०.१३)

अर्थात् ये छन्द रश्मियां ऐसी वज्र रश्मियों के रूप में कार्य करती हैं, जो असुरादि बाधक रश्मियों को नष्ट करके संयोग प्रक्रिया को तीव्र बनाती हैं॥

यह उपर्युक्त सूक्तरूप रश्मिसमूह भरद्वाज ऋषि अर्थात् मनस्तत्त्व से विशेष समृद्ध प्राण नामक प्राण रश्मियों से उत्पन्न होता है। इस कारण यह भी भारद्वाज कहलाता है, जो विभिन्न बलों का धारण और पोषण करता हुआ प्राण रश्मियों के समान बहुत व्यापक क्षेत्र में सक्रिय होता है। यह प्राणरूपी ऋषि रश्मियों के प्रभाव से सलोमारूप को भी प्राप्त करता है अर्थात् यह विभिन्न लोम अर्थात् छन्द और मरुदादि रश्मियों को अपने साथ संयुक्त करता हुआ {लोम = छन्दांसि वै लोमानि (श.६.४.१.६), लोमैव हिङ्कारः (जै.उ.१.१२.२.६), (हिङ्कारः = रश्मय एव हिङ्कारः - जै.उ.१.११.१.६; अहोरात्राणि हिङ्कारः - ष.३.१; वृषा हिङ्कारः - गो.पू.३.२३)} 'हिम्' रश्मियों अर्थात् विभिन्न बलों को उत्पन्न करने वाली प्राणापान रश्मियों से युक्त होकर आदित्य लोक की क्रियाओं को अनेकशः समृद्ध करता है॥

यह सूक्तरूप रश्मिसमूह विभिन्न क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों को संगत करता है। इससे उन परमाणुओं की संयोगादि प्रक्रिया समृद्ध होकर सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग को व्यापक आधार प्रदान करती है। जहाँ कहीं भी क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थों का यजन कार्य होता है, वहाँ-२ यह छन्द रश्मिसमूह उन क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों को व्यापक आधार प्रदान करके उनकी यजन क्रियाओं को निरन्तर समृद्ध करता

है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्रीय भाग में पूर्वोक्त विभिन्न क्रियाओं के पश्चात् ११ विभिन्न त्रिष्टुप्, ३ पंक्ति और १ उष्णिक् छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जिनके कारण विद्युत् चुम्बकीय बलों की प्रबलता तथा केन्द्रीय ताप में और अधिक वृद्धि होकर नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया तीव्र होती है। उस समय केन्द्रीय भाग में नाना प्रकार की ध्वनियां भी उत्पन्न होती रहती हैं। विभिन्न नाभिकों को परस्पर संलयन हेतु आवश्यक ऊर्जा प्राप्त होती है, जिससे वे डार्क एनर्जी आदि के दुष्प्रभावों को भी दूर करने में समर्थ होते हैं। **तारों के केन्द्रीय भागों में कुछ ऐसे नाभिक भी आ जाते हैं, जिनका संलयन केन्द्रीय ताप और दाब पर सम्भव नहीं होता। ऐसे नाभिकों का विखण्डन भी उन केन्द्रीय भागों में होता रहता है।** हमारे मत में यह प्रक्रिया बहुत कम अंशों में ही हुआ करती है। उस समय विद्युत् चुम्बकीय बलों के कारण विभिन्न कणों का भेदन, धारण वा संयोजन और क्षेपण क्रियाएं होने के साथ-२ उस क्षेत्र की दीप्ति में भी निरन्तर वृद्धि होती है। **आधुनिक विज्ञान के लिए यह विखण्डन वाली बात गम्भीर अन्वेषण करने योग्य है।** तारों के केन्द्रीय भाग में भी उसके अन्य भागों की तरह नाना प्रकार की विद्युत् चुम्बकीय धाराएं प्रवाहित होती रहती हैं। तारों के **केन्द्रीय भाग में न केवल नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया होती है अपितु विभिन्न छन्द रश्मियों के सम्पीडन से नाना प्रकार के मूल कणों की उत्पत्ति भी होती है।** इन उपर्युक्त छन्द रश्मियों का प्रभाव अत्यन्त तीव्र होता है। ये छन्द रश्मियां अन्य अनेकों प्रकार की छन्द रश्मियों के साथ-२ प्राण एवं अपान रश्मियों के साथ संगत होकर व्यापक बलों से युक्त होती हुई नाना प्रकार की क्रियाओं को सम्पादित और संघनित करती हैं।।

ॐ इति ३६.3 समाप्तः ॐ

ॐ अथ ३६.४ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. ऐकाहिका होत्रा, एता वै शान्ताः क्लृप्ताः प्रतिष्ठिता होत्रा, यदैकाहिकाः शान्त्यै क्लृप्त्यै प्रतिष्ठित्या अप्रच्युत्यै, ताः सर्वरूपा भवन्ति सर्वसमृद्धाः, सर्वरूपतायै सर्वसमृद्ध्यै, सर्वरूपाभिर्होत्राभि सर्वसमृद्धाभिः, सर्वान् कामानवाप्नवामेति, तस्माद्यत्र क्व चैकाहा असर्वस्तोमा असर्वपृष्ठा, ऐकाहिका एव तत्र होत्राः स्युस्तत्समृद्धम्।।
उक्थ्य एवायं पञ्चदशः स्यादित्याहुरोजो वा इन्द्रीयं वीर्यं पञ्चदश, ओजः क्षत्रं वीर्यं राजन्यस्तदेनमोजसा क्षत्रेण वीर्येण समर्धयति।।
तस्य त्रिंशत्स्तुतशस्त्राणि भवन्ति; त्रिंशदक्षरा वै विराड्, विराळन्नाद्यं विराज्येवैनं तदन्नाद्ये प्रतिष्ठापयति, तस्मात्तदुक्थ्यः पञ्चदशः स्यादित्याहुः।।
ज्योतिष्टोम एवाग्निष्टोमः स्यात्।।
ब्रह्म वै स्तोमानां त्रिवृत्, क्षत्रं पञ्चदशो, ब्रह्म खलु वै क्षत्रात् पूर्वं, ब्रह्म पुरस्तान्म उग्रं राष्ट्रमव्यथ्यमसदिति, विशः सप्तदशः, शौद्रो वर्ण एकविंशो विशं चैवास्मै तच्छौद्रं च वर्णमनुवर्त्मानौ कुर्वन्त्यथो तेजो वै स्तोमानां त्रिवृद्, वीर्यं पञ्चदशः, प्रजातिः सप्तदशः, प्रतिष्ठैकविंशस्तदेनं तेजसा वीर्येण प्रजात्या प्रतिष्ठयाऽन्ततः समर्धयति, तस्माज्ज्योतिष्टोमः स्यात्।।
तस्य चतुर्विंशतिः स्तुतशस्त्राणि भवन्ति, चतुर्विंशत्यर्धमासो वै संवत्सरः, संवत्सरे कृत्स्नमन्नाद्यं, कृत्स्न एवैनं तदन्नाद्ये प्रतिष्ठापयति, तस्माज्ज्योतिष्टोम एवाग्निष्टोमः स्यादग्निष्टोमः स्यात्।।४।।

व्याख्यानम्- {होत्राः = मैत्रावरुणब्राह्मणाच्छंस्यच्छावाकानां याः क्रियास्ताः 'होत्राः' (सायणभाष्यम्)} पूर्वोक्त राजसूय यज्ञ के होत्रकों अर्थात् पूर्वोक्त अनेकत्र वर्णित मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी और अच्छावाक की क्रियाएं भी उसी प्रकार होती हैं, जिस प्रकार पूर्वोक्त एकाह संज्ञक परिधानीय छन्द रश्मियों के अन्दर स्थित नाना प्रकार की छन्द रश्मियों की क्रियाएं होती हैं। इस अध्याय के प्रथम खण्ड में ऐकाहिक क्रियाओं के समान ही आदित्य लोकों के केन्द्र में मैत्रावरुणादि छन्द रश्मियों की क्रियाएं शान्त अर्थात् नियंत्रित, समर्थ परन्तु क्रमवद्ध प्रतिष्ठित अर्थात् अपने कार्यों में दृढ़तापूर्वक स्थित एवं अविचल भाव से होती हुई नाना प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करती हैं। वे ऐकाहिक और होत्रक रश्मियां आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग में सभी प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को नाना प्रकार के रूपों अर्थात् दीप्तियों को उत्पन्न करने के लिए सम्पूर्णरूप से समृद्ध करती हैं। विभिन्न रूपों में विद्यमान नाना प्रकार की रश्मियां एवं परमाणु आदि पदार्थ इन मैत्रावरुणादि रश्मियों के द्वारा सभी प्रकार के वलों और क्रियाओं की दृष्टि से सम्पूर्णरूप से समृद्ध होकर नाना प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं। ये होत्रक रूप तीनों प्रकार की रश्मियां ऐकाहिक परिधानीय रश्मियों की क्रियाओं को तीव्र बनाती हैं। इन केन्द्रीय भागों में जहाँ कहीं भी ऐकाहिक छन्द रश्मियों का प्रभाव न्यूनता वा अभाव की स्थिति में होता है, उनका तेज और विस्तार कम हो रहा होता है, वहाँ मैत्रावरुण आदि होत्रक छन्द रश्मियां उन ऐकाहिक छन्द रश्मियों के प्रभाव को सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग में फैला देती हैं किंवा उनके प्रभावों को पूर्णरूप से समृद्ध कर देती हैं, जिससे वे

ऐकाहिक रश्मियों से युक्त क्षत्र संज्ञक रश्मियां वा परमाणु आदि पदार्थ सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग में व्याप्त होकर उसे हर प्रकार से क्रियाशील और समृद्ध बनाये रखते हैं।।

{उक्थ्यः = आत्मा यज्ञस्योक्थ्यः (काठ.२७.१०), उक्थ्या वाजिनः (गो.उ.१.२२), एतावान् यज्ञो यावानुक्थ्योऽन्तः श्लेषणाय त्वा इतरे ग्रहा गृह्यन्ते (काठ.२७.१०), यज्ञियं वै कर्मोक्थ्यं वचः (ऐ.१.२६)} पूर्वखण्ड में वर्णित क्षत्रियरूप पन्द्रह (१५) छन्द रश्मियां उक्थ्यरूप में ही कार्य करती हैं किंवा उनमें ही स्थित रहती हैं, ऐसा मत कुछ आचार्यों का है, जिसे यहाँ ग्रन्थकार ने उद्धृत किया है। यहाँ उक्थ्यरूप होने का तात्पर्य यह है कि वे पञ्चदश रश्मियां विभिन्न अन्न एवं प्राण संज्ञक रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त होकर उन्हें नानाविध संगत करने में समर्थ होती हैं। वे विभिन्न छन्द वा प्राणादि रश्मियों से युक्त होकर देदीप्यमान होती हुई संयोजक बलों से नानाविध युक्त होती हैं। इस कण्डिका का सम्पूर्ण व्याख्यान पूर्वखण्ड में वर्णित "तत्पञ्चदशर्चं भवत्योजो वा इन्द्रियं......" कण्डिका के समान विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं।।

{स्तोत्रम् = क्षत्रं वै स्तोत्रम् (ष.१.४)। शस्त्रम् = विट् शस्त्रम् (ष.१.४)} उपर्युक्त १५ क्षत्ररूप रश्मियां स्तोत्र संज्ञक भी होती हैं, जो १५ शस्त्र संज्ञक अन्य छन्द रश्मियों के साथ संगत होकर युग्म बनाती हैं। ये शस्त्र संज्ञक रश्मियां विट् संज्ञक भी होती हैं। इस प्रकार दोनों मिलाकर ३० छन्द रश्मियां हो जाती हैं, जिनमें १५ क्षत्र संज्ञक और १५ विट् संज्ञक होती हैं। उधर विराट् छन्द में भी ३० अक्षर होते हैं और वह छन्द विशेष संयोजक बलों से युक्त होता है। इस कारण ये स्तोत्र और शस्त्र संज्ञक रश्मियां दोनों मिलकर विभिन्न प्रकार की छन्दादि रश्मियों को नाना प्रकार की संयोगादि क्रियाओं में प्रतिष्ठित करके केन्द्रीय भाग को समृद्ध करती हैं। इस कारण इन आचार्यों का मन्तव्य है कि पूर्व खण्ड में वर्णित १५ छन्द रश्मियां उक्थ्यरूप ही होती हैं अर्थात् वे नाना प्रकार की छन्दादि रश्मियों में प्रतिष्ठित होकर उन्हें विभिन्न संयोगादि क्रियाओं में प्रतिष्ठित करती हैं।।

इस मत का खण्डन करते हुए किंवा इस मत को अपर्याप्त वा अपूर्ण बतलाते हुए ग्रन्थकार अपना मत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि ऐसा कहना पर्याप्त नहीं है। केवल सामान्य संयोगादि प्रक्रियाओं से कोई भी आदित्य लोक उत्पन्न वा समृद्ध नहीं हो सकता है। इस कारण ये १५ छन्द रश्मियां ज्योतिष्टोम और अग्निष्टोमरूप होती हैं। अग्निष्टोम और ज्योतिष्टोम के विषय में खण्ड ३.४३ द्रष्टव्य है। जहाँ यह संकेत मिलता है कि जब ये क्षत्र संज्ञक रश्मियां ऊष्मा एवं विद्युत् को अत्यन्त समृद्ध करती हैं, तभी आदित्य लोक का स्वरूप प्रकट एवं समृद्ध हो पाता है। इस कारण इन्हें केवल उक्थ्यरूप ही कहना पर्याप्त नहीं है। ध्यातव्य है कि यहाँ उक्थ्यरूप का खण्डन नहीं किया गया है, बल्कि उस स्थिति को अपर्याप्त एवं अपूर्ण बतलाना ही ग्रन्थकार को अभीष्ट है तथा अग्निष्टोम और ज्योतिष्टोम स्थितियों की पूर्णता दर्शाना भी लक्ष्य है। वस्तुतः उक्थ्यरूप के बिना ज्योतिष्टोम और अग्निष्टोम की स्थितियां उत्पन्न ही नहीं हो सकती।।

पूर्वोक्त त्रिवृत्त् आदि विभिन्न स्तोमरूप रश्मिसमूहों में से त्रिवृत् स्तोमरूप तीन गायत्री छन्द रश्मिसमूह ब्रह्मरूप में व्यवहार करते हैं। हम इन त्रिवृत् आदि साम रश्मियों के विषय में इस ग्रन्थ में अनेकत्र लिख चुके हैं। पञ्चदश स्तोमरूप रश्मिसमूह अर्थात् पन्द्रह गायत्री छन्द रश्मियों का समूह किंवा पूर्व खण्ड में वर्णित पञ्चदश छन्द रश्मियों का समूह क्षत्ररूप में व्यवहार करता है। इस बात को हम पूर्व में भी लिख चुके हैं। {त्रिवृत्त् = तेजो वै त्रिवृद् ब्रह्मवर्चसम् (तां.१७.६.३), त्रिवृद् वै स्तोमानां क्षेपिष्ठः (ष.३.८; तां.१७.१२.३), वज्रो वै त्रिवृत् त्रिवृद् बर्हिर्भवति (तै.ब्रा.१.६.३.१ - वै.को. से उद्धृत)} ये त्रिवृत् रश्मियां सूक्ष्म तेजस्वी वज्ररूप होकर तीक्ष्ण क्षेपक बलों से युक्त होती हैं, जबकि पञ्चदश स्तोम रश्मियों के विषय में हम पूर्व कण्डिकाओं में ही लिख चुके हैं। जैसा कि अवगत है कि ब्रह्मरूप रश्मियां क्षत्ररूप रश्मियों से पहले उत्पन्न होती हैं। ये ब्रह्म रश्मियां पहले उत्पन्न होकर क्षत्र संज्ञक परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों के बाहर-भीतर पूर्णतः व्याप्त हो जाती हैं, जिस कारण क्षत्र संज्ञक परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ अति उग्र होकर सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग को उग्र तेजस्वी बना देते हैं। इतना होने पर भी वह

तेजस्वी केन्द्रीय भाग अविचल भाव से सम्पूर्ण लोक को बांधे और प्रकाशित किये रहता है अर्थात् वह कभी अस्थिर नहीं हो पाता। उधर, सप्तदश स्तोमरूप रश्मिसमूह वैश्य संज्ञक पदार्थ का रूप होता है तथा एकविंश स्तोमरूप रश्मिसमूह शूद्र संज्ञक पदार्थरूप होता है। वैश्य और शूद्र संज्ञक पदार्थों के विषय में हम पूर्व में अनेकत्र लिख चुके हैं। ब्रह्म एवं क्षत्र संज्ञक पदार्थ वैश्य एवं शूद्र संज्ञक पदार्थों को अपना अनुगामी बनाये रखते हैं। जैसा कि हम लिख चुके हैं कि त्रिवृत् स्तोम अर्थात् ब्रह्म संज्ञक रश्मियां अन्य स्तोमरूप रश्मिसमूहों को तेज प्रदान करने में अग्रणी होती हैं और स्वयं भी प्राथमिक तेज के रूप में ही उत्पन्न होती हैं। पञ्चदश स्तोम अर्थात् क्षत्र संज्ञक रश्मिसमूह बल-वीर्य का रूप होता है अर्थात् यह समूह नाना प्रकार के अन्य रश्मि वा परमाणुओं का उत्पन्न करने में बीजरूप कार्य करता है, जबकि सप्तदश स्तोम अर्थात् वैश्य संज्ञक परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ सन्तानरूप होते हैं अर्थात् ये क्षत्र संज्ञक पदार्थों से उत्पन्न होकर सम्पूर्ण आदित्य लोक में व्याप्त हो जाते हैं। एकविंश स्तोम अर्थात् शूद्र संज्ञक पदार्थ प्रतिष्ठारूप होते हैं। जब आदित्य लोक में पूर्वोक्त तीनों पदार्थ समृद्ध हो चुके होते हैं, उस समय आदित्य लोक अत्यन्त ज्वलनशील और देदीप्यमानरूप में प्रतिष्ठित होते हैं। इसी रूप को शूद्र अवस्था कहा गया है। पदार्थ के इस उत्पत्ति क्रम से सम्पूर्ण आदित्य लोक तेज बल के साथ-२ नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों की उत्पत्ति एवं समृद्धि के द्वारा अग्निमयी ज्वालाओं के रूप में अन्ततः प्रतिष्ठित और समृद्ध हो जाता है। यही अवस्था ज्योतिष्टोम भी कहलाती है। इस कारण ग्रन्थकार अपना मत स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि पूर्वोक्त पञ्चदश छन्द रश्मियां उक्थ्यरूप में ही नहीं, बल्कि अग्निष्टोम और ज्योतिष्टोम अवस्था को प्राप्त होकर उन्हीं में प्रतिष्ठित होती हैं।।

अग्निष्टोम अवस्था में १२ शस्त्र एवं १२ स्तोत्र रश्मियां मिलाकर कुल २४ रश्मियां विशिष्ट रूप में विद्यमान होती हैं। इस विषय में खण्ड ३.३६ की कण्डिका "सा वा एषा गायत्र्येव यदग्निष्टोमः....।" द्रष्टव्य है, जहाँ गायत्री छन्द को उसके २४ अक्षरों के कारण अग्निष्टोम कहा गया है। सम्पूर्ण आदित्य लोक भी अग्निष्टोमरूप ही होता है। इस आदित्य लोक में २४ अर्धमास रश्मियां विद्यमान होती हैं और अग्निष्टोम अवस्था भी किंवा अग्निष्टोम में अवस्थित ज्योतिष्टोम अवस्था में भी २४ स्तोत्र और शस्त्र संज्ञक उपर्युक्त रश्मियां विद्यमान होती हैं। इस विषय में भी पाठक खण्ड ३.३६ अवश्य पढ़ें। इन्हीं अर्धमास रश्मियों के कारण सम्पूर्ण आदित्य लोक संयोजक बलों से युक्त नाना प्रकार के परमाणु एवं रश्मि आदि पदार्थों से युक्त होता है। इस प्रकार इस अग्निष्टोम एवं ज्योतिष्टोम अवस्थाओं के उपर्युक्त प्रकार और अनुक्रम से उत्पन्न होने पर आदित्य लोकस्थ सभी पदार्थ, विशेषकर केन्द्रीय भागस्थ पदार्थ नाना प्रकार की संयोग व सम्पीडन क्रियाओं में सम्पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित होते हैं। इस कारण पूर्वखण्ड में वर्णित १५ क्षत्र संज्ञक छन्द रश्मियों की पूर्ण प्रतिष्ठा उक्थ्यरूप में नहीं, बल्कि अग्निष्टोम और ज्योतिष्टोम अवस्था में ही होती है। इस बात को यहाँ पुनः दृढ़ता से कहा गया है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों की उत्पत्ति के क्रम में, साथ ही उनके केन्द्रीय भागों की उत्पत्ति प्रक्रिया में सर्वप्रथम सूक्ष्म विद्युत् बल एवं सूक्ष्म दीप्ति उत्पन्न होती है। ऊष्मा और बलों की धीरे-२ फिर वृद्धि होने लगती है। इस चरण में विभिन्न कण और विकिरण अति तीव्र ऊर्जा से युक्त हो जाते हैं। इसके पश्चात् उन कणों अर्थात् नाभिकों का संलयन प्रारम्भ होता है। संलयन प्रारम्भ होने के पश्चात् सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग तेज से देदीप्यमान होता हुआ विद्युत् चुम्बकीय तरंगों को प्रभूत मात्रा में उत्पन्न करने लगता है। इस व्याख्यान का वैज्ञानिक भाष्यसार सम्पूर्ण रूप से लिखना सम्भव नहीं है। इस कार्य में कौन-कौनसी छन्द रश्मियां किस क्रम से क्या-२ भूमिका निभाती हैं? इसको जानने के लिए व्याख्यान भाग का पढ़ना अनिवार्य है।।

॥ इति ३६.४ समाप्तः ॥

॥ इति षट्त्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

37

लगभग ४ लाख ७५ हजार किलोमीटर
लगभग १ लाख वर्ष
Photon
सूर्य
केन्द्रीय भाग
Electron

।। ओ३म् ।।
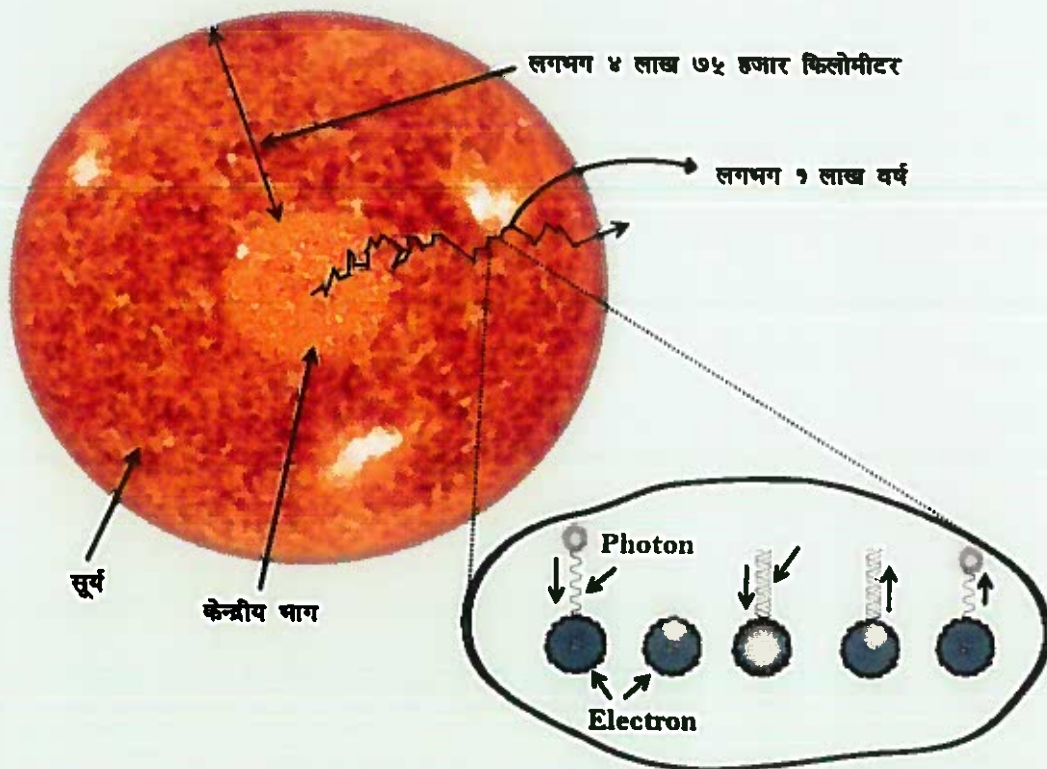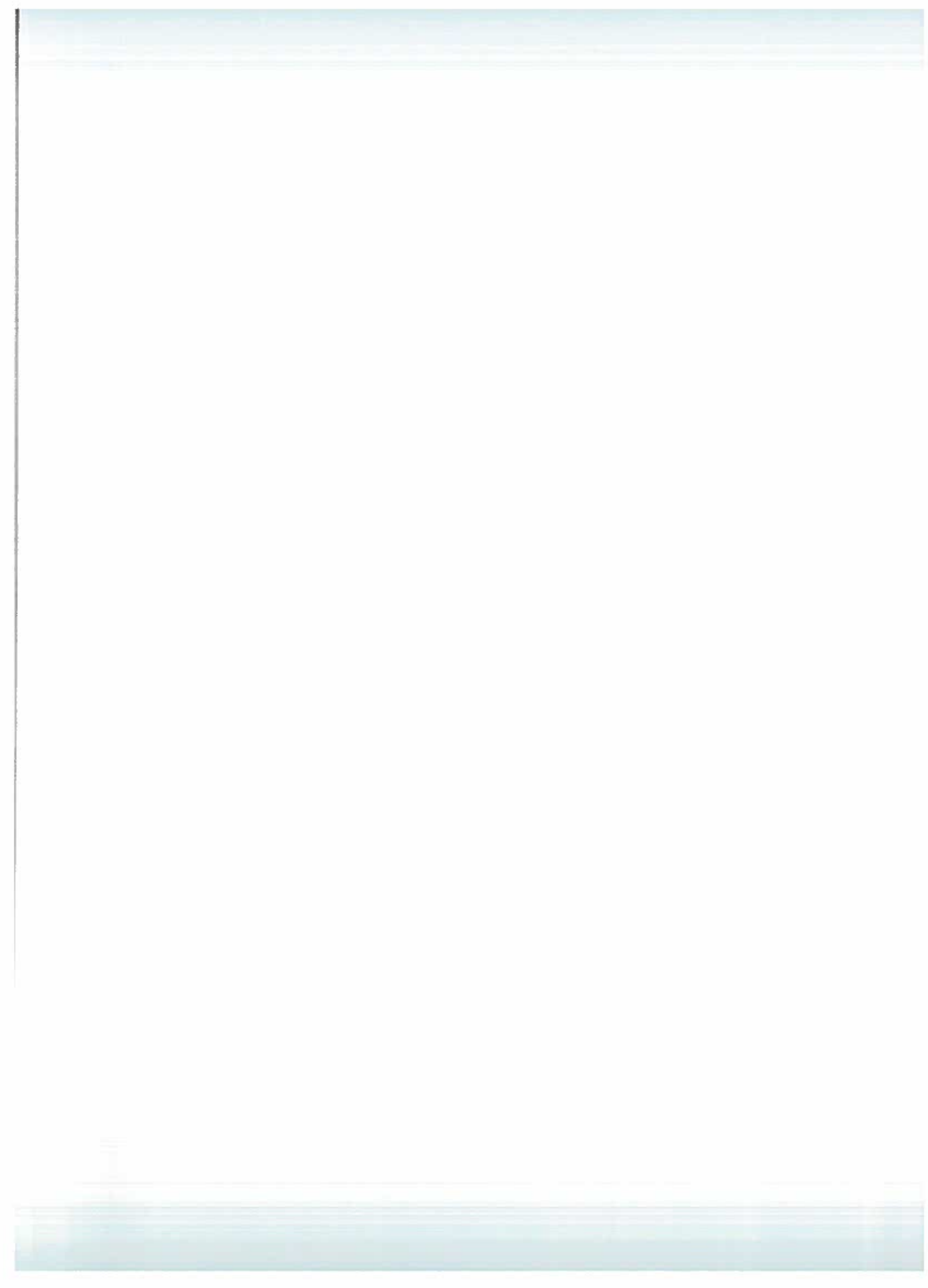
ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व।।

अनुक्रमणिका

३७.१ क्षत्रिय का अभिषेक और उसके साधन। तारों के केन्द्रीय भाग का विज्ञान। त्रिष्टुप् रश्मियों की रचना, व्याहृतियों की कार्य प्रणाली, नाभिकीय संलयन और ऊर्जा के उत्सर्जन का गम्भीर विज्ञान। तारों से Electron, Neutrino और Proton आदि धनावेशित कणों के उत्सर्जन का गम्भीर विज्ञान। 2190

३७.२ पूर्वोक्त विषय। 2195

३७.३ पूर्वोक्त विषय। 2199

३७.४ पूर्वोक्त विषय। 2204

३७.५ पूर्वोक्त विषय। 2209

३७.६ पूर्वोक्त विषय। 2213

३७.७ पूर्वोक्त विषय। 2221

ॐ अथ ३७.१ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. अथातः पुनरभिषेकस्यैव।।

सूयते ह वा अस्य क्षत्रं यो दीक्षते क्षत्रियः सन् स यदाऽवभृथादुदेत्यानूबन्ध्यये-ष्ट्वोदवस्यत्यथैनमुदवसानीयायां संस्थितायां पुनरभिषिञ्चन्ति।।

तस्यैते पुरस्तादेव संभारा उपक्लृप्ता भवन्त्यौदुम्बर्यासन्दी; तस्यै प्रादेशमात्राः पादाः स्युररत्निमात्राणि शीर्षण्यानूच्यानि; मौञ्जं विवयनं, व्याघ्रचर्माऽऽस्तरणमौदुम्बरश्चमस, उदुम्बरशाखा; तस्मिन्नेतस्मिंश्चमसेऽष्टातयानि निषुतानि भवन्ति;-दधि मधु सर्पिरातपवर्ष्या आपः शष्पाणि च तोक्मानि च सुरा दूर्वा।।

तद्यैषा दक्षिणा स्फ्यवर्तनिर्वेदेर्भवति, तत्रैतां प्राचीमासन्दीं प्रतिष्ठापयति, तस्या अन्तर्वेदि द्वौ पादौ भवतो बहिर्वेदि द्वावियं वै श्रीस्तस्या एतत्परिमितं रूपं यदन्तर्वेद्यथैष भूमाऽपरिमितो यो बहिर्वेदि; तद्यदस्या अन्तर्वेदि द्वौ पादौ भवतो, बहिर्वेदि द्वा, उभयोः कामयोरुपाप्त्यै यश्चान्तर्वेदि यश्च बहिर्वेदि।।१।।

व्याख्यानम्- पूर्व में ब्राह्मण क्षत्रिय आदि पदार्थों के विभिन्न कर्मों की चर्चा करने के पश्चात् आदित्य के केन्द्रीय भाग में ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों के द्वारा क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों को अभिसिंचित करके उन्हें तेज और वल से समृद्ध करने की प्रक्रिया का क्रमवद्ध वर्णन आरम्भ करते हैं। इस अभिसेचन के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है-

"तं वै माध्यन्दिने सवनेऽभिषिञ्चति। एष वै प्रजापतिर्य एष यज्ञस्तायते यस्मादिमाः प्रजाः प्रजाता एतम्वेवाप्येतर्ह्यनु प्रजायन्ते तदेनं मध्यतऽएवैतस्य प्रजापतेर्दधाति मध्यतः सुवति।" (श.५.३.५.१)

"तं वै प्राञ्चं तिष्ठन्तमभिषिञ्चति। पुरस्ताद्ब्राह्मणोऽभिषिञ्चत्यध्वर्युर्वा योवाऽस्य पुरोहितो भवति पश्चादितरे।" (श.५.४.२.१)

इसका तात्पर्य यह है कि माध्यन्दिन सवन की अवस्था में विभिन्न क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थों वा रश्मियों को ब्राह्मण संज्ञक रश्मि आदि पदार्थ सब ओर से अभिसिंचित करते हैं। इस अभिषेक के पश्चात् ही क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ नाना प्रकार की संयोगादि क्रियाओं को संपादित करके विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को किंवा वैश्य एवं शूद्र संज्ञक पदार्थों को उत्पन्न करने में सक्षम होते हैं। ये क्रियाएं केन्द्रीय भाग में विशेषरूप से होती हैं। जव यह अभिसिंचन की क्रिया होती है, तव ब्राह्मण संज्ञक रश्मियां क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों के अभिमुख गमन करती हुई उनके साथ संयुक्त होती हैं। यहाँ 'पुनः' शब्द इस कारण आया है क्योंकि ब्रह्म एवं क्षत्र अथवा ब्राह्मण एवं क्षत्रिय पदार्थों के संगमन की क्रिया को पूर्व में भी संकेत रूप में लिखा ही जा चुका है। अव यहाँ उसी प्रक्रिया को विस्तार से कहने के साथ-२ अध्वर्यु आदि पदार्थों द्वारा भी अभिसेचन की प्रक्रिया का वर्णन है।।

{अवभृथः = तद्यदपोऽभ्यवहरन्ति तस्मादवभृथः (श.४.४.५.१), वरुण्यो वाऽअवभृथः (श.४.४.५.१०), यो ह वाऽअयमपामावर्त्तः स हावभृथः स हैष वरुणस्य पुत्रो वा भ्राता वा (श.१२.६.२.४), शोधनम् (म.द.य.भा.१६.२८), यो निषेकेण गर्भं बिभर्त्ति सः (म.द.य.भा.८.२७)} इस प्रक्रिया को क्रमवद्ध वतलाते हुए लिखते हैं कि सर्वप्रथम क्षत्र संज्ञक पदार्थ ब्रह्म संज्ञक वाक् एवं प्राणापान रश्मियों से दीक्षित होता अर्थात् अपनी वल और क्रियाओं को प्रारम्भ करने योग्य होकर पूर्वोक्त क्षत्रिय स्वरूप को प्राप्त करता

है। उसके पश्चात् वह अन्य प्राण रश्मियों से आच्छादित होकर एवं उनको अवशोषित करके शुद्ध बीजरूप तेज और बल को उत्पन्न वा सेचन करने में समर्थ होता है। इस समय वह प्राणापान एवं व्यान संज्ञक प्राण रश्मियों में स्थित होता है। यह इसका अवभृथ रूप कहलाता है। उसके पश्चात् यह बन्धक बलों से विशेष युक्त होकर अनुबन्ध्य रूप को प्राप्त करता है। इसके पश्चात् वह उदवसानीय {उदवस्यति = उद्+अव+सो = (अव+सो = नष्ट करना, समाप्त करना अर्थात् पूरा करना, विफल होना, किनारे पर होना)} रूप को प्राप्त करता है। इसका तात्पर्य यह है कि वे क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थ नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को उत्पन्न करते हुए विभिन्न बाधक रश्मियों को नष्ट करके ब्रह्म अर्थात् प्राणापान रश्मियों से उन उत्पन्न परमाणुओं को अभिसिंचित करके आदित्य के केन्द्रीय भाग से ऊपर की ओर अर्थात् बाहरी ओर शनैः-२ उठाते हुए किनारे तक लाते हैं। उसके पश्चात् वे अग्नि आदि के परमाणु आदित्य लोकों से बाहर की ओर जाने के लिए उद्यत हो जाते हैं। जब इन अग्नि के परमाणुओं को बाहर की ओर लाने की प्रक्रिया होती है, उस समय भी क्षत्रिय परमाणुओं के ऊपर प्राणापानादि ब्रह्म रश्मियों का अभिसिंचन होता है और इस कारण ही वे क्षत्रिय परमाणु अग्नि आदि के परमाणुओं को उत्पन्न करने की क्षमता प्राप्त करते हैं।।

इस उपर्युक्त प्रक्रिया के लिए अनेक प्रकार के पदार्थों का सम्पादन पूर्व में ही होना अनिवार्य होता है। इनके बिना उपर्युक्त क्रियाएं सम्भव नहीं हो पाती। ये पदार्थ निम्न प्रकार हैं-

(१) औदुम्बर्यासन्दी - {आसन्दी = इयं (पृथिवी) वाऽआसन्द्यस्याः हीदः सर्वमासन्नम् (श.६.७.१.१२), श्रीरासन्दी (ऐ.आ.१.२.४), समन्ताद्रसप्रापिका (म.द.य.भा.१६.८६)} उदुम्बर संज्ञक ऊर्जा, जो मास रश्मियों से उत्पन्न होती है, के विषय में खण्ड ७.१५ द्रष्टव्य है। उस ऊर्जा की सूक्ष्म रश्मियां आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग में विद्यमान आकाश में व्याप्त हो जाती हैं। इन रश्मियों से व्याप्त वह क्षेत्र ही "औदुम्बर्यासन्दी" कहलाता है। यह क्षेत्र विभिन्न क्षत्र संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों को अपना सूक्ष्म रस निरन्तर प्रदान करता रहता है। इसके विषय में खण्ड ७.३२ की प्रथम कण्डिका भी द्रष्टव्य है। आसन्दी पद की व्युत्पत्ति के विषय में आचार्य राजवीर शास्त्री ने वैदिक कोश में लिखा है-

"आङ्+षण संभक्तौ (भ्वा.) धातोरौणादिके दप्रत्यये ङीषि च रूपम् अथवा आङ्-पूर्वात् षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु (भ्वा) धातोर्वा साधनीयम्।" इससे संकेत मिलता है कि औदुम्बरी रश्मियां विभिन्न क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थों को व्याप्त करके उनका सब ओर से सम्यग् विभाजन भी करती हैं, जिससे वे शुद्ध रूप को प्राप्त करने लगते हैं, साथ ही वे सेवनीय वा संयोजक गुणों से भी युक्त होते हैं। इस आसन्दी रूपी क्षेत्र के पाद प्रादेशमात्र के परिमाण में होते हैं। इसका अर्थ यह है कि इन औदुम्बरी रश्मियों का आधार वा मार्ग उस केन्द्रीय भाग तक ही सीमित होता है, उसके बाहर नहीं। {अरत्निः = बाहुर्वा ऽअरत्निः (श.६.३.१.३३)} इस क्षेत्र के ऊपरी उत्तम भाग में अनुकूलता से प्रकाशित होने योग्य आकर्षण और विकर्षण बलों से युक्त पदार्थ विद्यमान होते हैं। {मुञ्जः = मुञ्जो विमुच्यत इषीकया। इषीका इषतेर्गतिकर्मणः (नि.६.८), यज्ञिया हि मुञ्जाः (श.१२.८.३.६), योनिर्मुञ्जाः (श.६.६.२.१५), योनिरेषाग्नेर्यन्मुञ्जः (श.६.६.१.२३), ऊर्वै मुञ्जाः (तै.सं.५.१.६.४; काठ.१६.१०; क.३०.८)} उन पदार्थों के अन्दर ऊर्जा को त्यागने अथवा उत्सर्जित करने योग्य अन्य ऊर्जा के उद्गम रूप बलों की रश्मियां बुनी हुई होती हैं। {व्याघ्रः = व्याघ्रो व्याघ्राणात्। व्यादाय हन्तीति वा (नि.३.१८), (घ्रा गन्धोपादाने = सूंघना, क्वचित् - चूमना (सं.धा.को. - पं. युधिष्ठिर मीमांसक)। चर्म = जिह्वा चर्म (तै.सं.६.२.११.४), चर्म चरतेर्वोच्चृतं भवतीति वा (नि.२.५)} इस क्षेत्र में विशेषरूप से स्पर्श करने वाली तथा विभिन्न पदार्थों को संयुक्त और वियुक्त करने वाली विभिन्न रश्मियुक्त ज्वालाएं उठती रहती हैं। इसके साथ ही पूर्वोक्त उदुम्बर रूपी ऊर्जा रश्मियों के चमस रूपी पदार्थ, जिनका वर्णन खण्ड ७.३२ में किया गया है, विद्यमान होते हैं। इन उदुम्बर रश्मियों के पुंज केन्द्रीय भाग के बाहर संधि भाग की ओर प्रवाहित होते रहते हैं।

इस प्रकार यह सम्पूर्ण विवरण औदुम्बरी आसन्दी का स्वरूप स्पष्ट करता है। इस समय इस क्षेत्र में अर्थात् उदुम्बरी रश्मियों में निम्नलिखित ८ प्रकार के पदार्थ और विद्यमान होते हैं-

(१) दधि- इस पदार्थ के विषय में खण्ड ७.२६ की प्रथम कण्डिका द्रष्टव्य है।

(२) मधु- {मधु = प्राणो वै मधु (तै.आ.५.४.११), अन्नं वै मधु (तां.११.१०.३), मिथुनं वै मधु, प्रजा

मधु (ऐ.आ.१.३.४)} विभिन्न संयोज्य प्राण रश्मियां एवं उनसे संयुक्त होने वाली विभिन्न छन्दादि रश्मियों के मिथुन मधु कहलाते हैं, जो विभिन्न दीप्तियों को उत्पन्न करते एवं स्वयं भी दीप्त होते हुए अनेक तत्त्वों का निर्माण करते हैं।

(३) सर्पि- ऐसी तेजस्विनी रश्मियां, जो उपर्युक्त उदुम्बर चमसरूप पदार्थों में से निरन्तर प्रवाहित होती रहती हैं।

(४) आतपवर्ष्या आप- केन्द्रीय भाग के चारों ओर अच्छी प्रकार संतप्त उदुम्बर चमस नामक पदार्थों में बाहरी विशाल भाग से निरन्तर वरसती हुई विभिन्न तन्मात्राएं।

(५) शष्पाणि- {शष्पम् = शस्यते हन्यते यत् तत् शष्पम् (उ.को.३.२८), दीर्घलोमानि (तु.म.द.य.भा.१६.८१)} ऐसी दीर्घ छन्द रश्मियां, जो विशेष भेदन शक्तिसम्पन्न होती हैं तथा वे स्वयं भी किन्हीं तीव्र भेदक रश्मियों के आक्रमण से विच्छेदित होती रहती हैं।

(६) तोक्मानि- {तोकं तुद्यतेः इति नि.१०.७} ऐसे उत्पन्न परमाणु, जो निरन्तर कम्पन करते हुए सम्पीडित होते रहते हैं तथा उस क्षेत्र में व्याप्त होकर अन्य तत्त्वों को उत्पन्न करते रहते हैं।

(७) सुरा- {सुरा = सुरा सुनोतेः (नि.१.११), अनृतं पाप्मा तमः सुराः (श.५.१.२.१०), अपां च वाऽएष ओषधीनां च रसो यत्सुरा (श.१२.८.१.४), अन्नं सुरा (तै.ब्रा.१.३.३.५)} विभिन्न अनियंत्रित गति एवं तमोयुक्त ऐसे परमाणु आदि पदार्थ, जो पुनः-२ संयुक्त और पतित होते रहते हैं, साथ ही वे ऊष्मा को उत्पन्न करने में वीज रूप कार्य करते हैं।

(८) दूर्वा- {दूर्वा = धूर्वा ह वै तां दूर्वेत्याचक्षते परोऽक्षम् (श.७.४.२.१२), क्षत्रं वा एतदोषधीनां यद् दूर्वा (ऐ.८.८), तदेतत् क्षत्रं प्राणो ह्येष रसो (यद् दूर्वा) (श.७.४.२.१२), लोमभ्यो दूर्वाः (प्रजापतेरजायन्त) (जै.ब्रा.२.२६७)} मनस्तत्त्व से उत्पन्न विभिन्न छन्द रश्मियों के द्वारा निर्मित ऐसी तीक्ष्ण और कंपाने वाली रश्मियां, जो विभिन्न पदार्थों को विक्षुब्ध व विदीर्ण करने में सक्षम होती हैं।

ये कुल ८ प्रकार के पदार्थ आदित्य केन्द्रों में क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों के अभिषेक की क्रिया प्रारम्भ होने से पूर्व ही उत्पन्न हो चुके होते हैं। ये उस अभिसेचन क्रिया में साधनरूप होते हैं।।

आदित्य के केन्द्रीय भाग में स्फ्य रूप वज्र रश्मियां भी विद्यमान होती हैं। ये रश्मियां ब्रह्म संज्ञक पदार्थों की साधन रूप होती हैं, जिनके विषय में खण्ड ७.१६ की द्वितीय कण्डिका द्रष्टव्य है। ये वज्र रश्मियां केन्द्रीय भाग की दक्षिण दिशा एवं इसके दोनों ओर पूर्व और पश्चिम दिशा को आच्छादित किये रहती हैं। यहाँ आचार्य सायण ने 'दक्षिणा' शब्द से प्रतीची और उदीची दिशा का भी ग्रहण किया है, इन वज्र रश्मियों के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है-

"खादिरः स्फ्यः" (श.३.६.२.१२)

{खदिरः = खादिरं बलकामस्य (ष.४.४), खादिरं स्वर्गकामः (कौ.ब्रा.१०.१)} इससे स्पष्ट होता है कि ये वज्र रश्मियां विभिन्न कमनीय वलों से युक्त होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को आकर्षित करके केन्द्रीय भाग में प्रेषित करने में सहायक होती हैं। यहाँ केन्द्रीय भाग को ही वेदि कहा गया है। इस केन्द्रीय भाग की पूर्व दिशा में उन्मुख होती हुई पूर्वोक्त औदुम्बरी आसन्दी नामक रश्मियां प्रतिष्ठित होती हैं। यद्यपि हम पूर्व में यह लिख चुके हैं कि औदुम्बरी आसन्दी क्षेत्र सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग के परिमाण में होता है। तदपि यहाँ प्राची की ओर उन्मुख होना इस वात का संकेत करता है कि इस क्षेत्र में उदुम्बरी ऊर्जा रश्मियों का सम्मुख भाग विशेष तेज और वल से युक्त होता है, इसी कारण ऋषियों का कथन है-

"एषा हि (प्राची दिक्) दिशां वीर्यवत्तमा" (जै.ब्रा.१.७२)

"तेजो वै ब्रह्मवर्चसं प्राची दिक्" (ऐ.१.८)

"प्राच्येव मर्गः" (गो.पू.५.१५)

"राज्यसि प्राची दिक्" (तै.सं.४.३.६.२)

इस आसन्दी क्षेत्र के दो पाद वेदि रूपी केन्द्रीय भाग के अन्दर स्थित होते हैं और दो उस वेदि के वाहर। यह वाहर की दिशा भी दक्षिणी दिशा में विशेष रूप से होती है, इसलिए आदित्य लोकों का दक्षिणी ध्रुव अग्नि से अपेक्षाकृत अधिक युक्त होता है। यह वात खण्ड १.७ में भी स्पष्ट की गयी है। केन्द्रीय भाग के अन्दर का क्षेत्र परिमित होता है, जो 'श्री' रूप होता है। इसका अर्थ यह है {श्रीः =

अथ यत् प्राणा अश्रयन्त तस्माद् प्राणाः श्रियः (श.६.१.१.४), श्रीर्वै पशवः श्री शक्वर्यः (तां.१३.२.२), श्रीः पृष्ठ्यानि (कौ.ब्रा.२१.५), श्रियै पाप्मा (निवर्त्तते) (श.१०.२.६.१६), षड् वा ऋतवस्संवत्सरश्रीः (जै.ब्रा.२.१४२)} कि इस क्षेत्र में विभिन्न प्राण रश्मियां, शक्वरी पर्यन्त सभी छन्द व मरुद् रश्मियां व सभी ऋतु रश्मियां, असुर रश्मियों से मुक्त अवस्था में विद्यमान होती हैं। इस क्षेत्र में विभिन्न पार्थिव परमाणु भी विद्यमान होते हैं। इस क्षेत्र के बाहर विद्यमान आदित्य लोक का भाग, जिसको यहाँ बहिर्वेदि कहा है, केन्द्रीय भाग की अपेक्षा अपरिमित अर्थात् अति विस्तार वाला होता है। तारों के केन्द्र में उत्पन्न अग्नि आदि के परमाणु उस अन्तर्वेदि से निकलकर बहिर्वेदि में प्रविष्ट होते हैं, फिर वे ही शनैः-२ सुदूर असीम अन्तरिक्ष में उत्सर्जित होते रहते हैं। इस कारण भी बहिर्वेदि में आदित्य लोक के विशाल भाग के अतिरिक्त सुदूर अन्तरिक्ष के असीम क्षेत्र को बहिर्वेदि का भाग मानकर अपरिमित कहा गया है। यद्यपि औदुम्बरी आसन्दी क्षेत्र केन्द्रीय भाग तक ही सीमित माना गया है, जिसे अन्तर्वेदि भी कहा गया है, पुनरपि इस भाग में उत्पन्न अग्नि आदि के परमाणु अपरिमित क्षेत्र में यात्रा करने के लिए इसी भाग में प्रस्थान करते हैं। इसी कारण इस आसन्दी के दो भागों का बहिर्वेदि में स्थित होना कहा गया है। इसका दूसरा आशय यह भी है कि जिस प्रकार ऊर्जा के उत्सर्जन और अवशोषण रूपी दो पाद अर्थात् चरण अन्तर्वेदि में हुआ करते हैं, उसी प्रकार ये दोनों ही चरण वा गुण आदित्य लोक के बाहरी विशाल भाग एवं असीम अन्तरिक्ष में भी हुआ करते हैं। इन दोनों ही भागों अर्थात् अन्तर्वेदि और बहिर्वेदि में ऊर्जा के उत्सर्जन और अवशोषण के लिए आवश्यक बल विद्यमान होते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्रीय भाग में विभिन्न प्राण व छन्द, मास, ऋतु, अति तीक्ष्ण एवं मृदु रश्मियां विद्यमान होती हैं। जब इस भाग में बाहरी भाग से विभिन्न संलयनीय नाभिक प्रविष्ट होने लगते हैं, तब ये सभी रश्मियां उन्हें अभिषिक्त करने लगती हैं, जिसके कारण उस क्षेत्र में ताप की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ने लगती है और उस बढ़े हुए ताप व दाब के कारण उन नाभिकों का बन्धक बल तेजी से बढ़ने लगता है। इसके साथ ही डार्क एनर्जी धीरे-२ समाप्त वा बहिर्गत होने लगती है। जब नाभिक परस्पर संलयन क्रिया को प्रारम्भ करने वाले होते हैं, उस समय सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग बाहरी भाग की
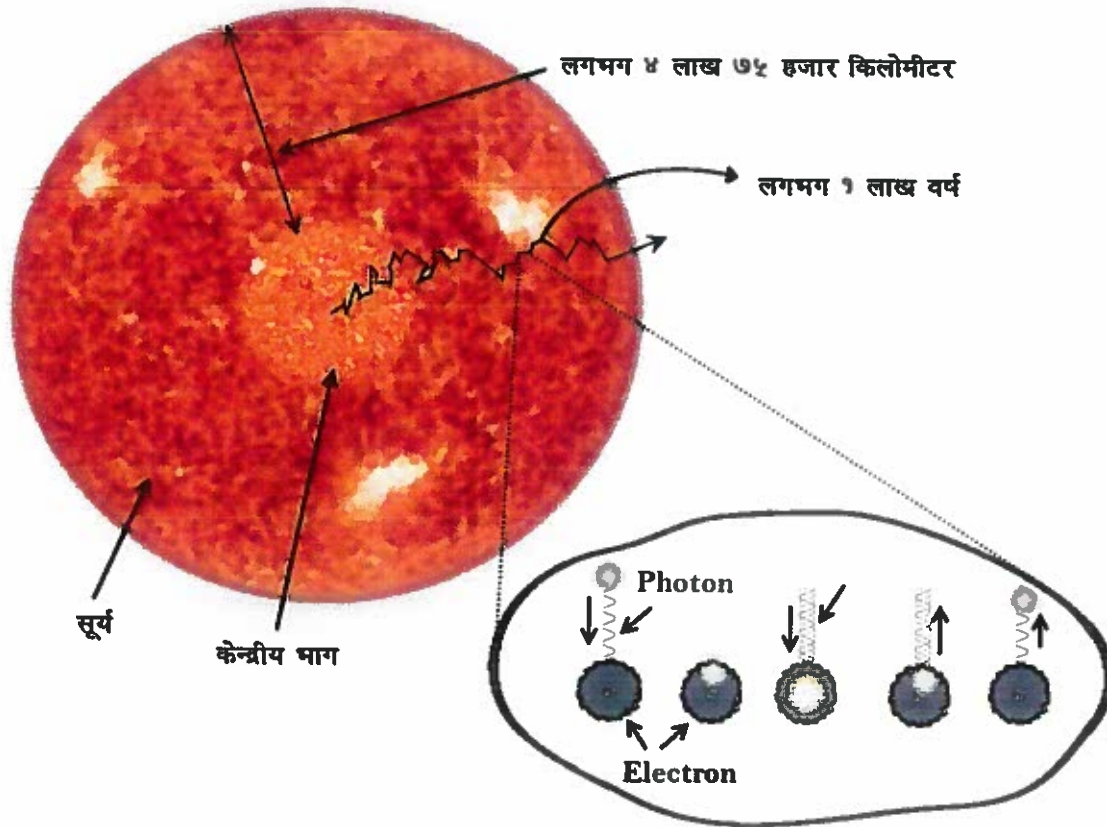
चित्र ३७.१ सूर्य से उत्पन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगों का बहिर्गमन

अपेक्षा पृथक् रूप से अधिक दीप्त होने लगता है। संलयन की क्रिया से उत्पन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगें विभिन्न कणों वा आयनों के द्वारा उत्सर्जित एवं अवशोषित होती हुई धीरे-२ संधि भाग की ओर बढ़ने लगती हैं। इसके पश्चात् इसी प्रक्रिया के द्वारा विद्युत् चुम्बकीय तरंगें सम्पूर्ण तारे को पार करके विशाल अन्तरिक्ष में उत्सर्जित होने लगती हैं। तारों के अन्दर उत्सर्जन और अवशोषण की प्रक्रिया के कारण विद्युत् चुम्बकीय तरंगों का मार्ग अत्यन्त टेढ़ा-मेढ़ा और गति अति मन्द होती है। वर्तमान वैज्ञानिकों के अनुसार सूर्य के केन्द्र से बाहरी तल तक आगे में प्रकाश को लगभग १ लाख वर्ष लगते हैं, जबकि सूर्य के नाभिक के बाहरी भाग से उसके बाहरी तल की दूरी हमारे मतानुसार लगभग ४ लाख ७५ हजार किलोमीटर है, जिसे पार करने में इतना लम्बा समय लगता है। ऊर्जा के उत्सर्जन व अवशोषण की क्रिया में विभिन्न जगती छन्द रश्मियों के अतिरिक्त अन्य भी अनेक रश्मियों की आवश्यकता होती है। इस क्रिया तथा नाभिकीय संलयन की क्रिया में अनेक ऐसे कण भी अपनी भूमिका निभाते हैं, जिनकी आयु अल्प होती है। तारे के केन्द्र के दक्षिणी भाग में ताप की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है।।

ॐ इति ३७.१ समाप्तः ॐ

ॐ अथ ३७.२ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. व्याघ्रचर्मणाऽऽस्तृणात्युत्तरलोमा प्राचीनग्रीवेण, क्षत्रं वा एतदारण्यानां पशूनां यद्व्याघ्रः, क्षत्रं राजन्यः, क्षत्रेणैव तत्क्षत्रं समर्धयति।।
तां पश्चात्प्राङुपविश्याऽऽच्य जानु दक्षिणमभिमन्त्रयत उभाभ्यां पाणिभ्यामालभ्य।।
अग्निष्ट्वा गायत्र्या सयुक्छन्दसाऽऽरोहतु, सवितोष्णिहा, सोमोऽनुष्टुभा बृहस्पतिर्बृहत्या, मित्रावरुणौ पङ्क्त्येन्द्रस्त्रिष्टुभा, विश्वे देवा जगत्या, तानहमनु राज्याय साम्राज्याय भौज्याय स्वाराज्याय पारमेष्ठ्याय राज्याय माहाराज्यायाऽऽधिपत्याय स्वावश्यायाऽऽतिष्ठायाऽऽरोहामि।।
इत्येतामासन्दीमारोहेद्दक्षिणेनाग्रे जानुनाऽथ सव्येन।।
तत्तदितीइँ।।
चतुरुत्तरैर्वै देवाश्छन्दोभिः सयुग्भूत्वैतां श्रियमारोहन् यस्यामेत एतर्हि प्रतिष्ठिता; अग्निर्गायत्र्या, सवितोष्णिहा, सोमोऽनुष्टुभा, बृहस्पतिर्बृहत्या, मित्रावरुणौ पङ्क्त्येन्द्रस्त्रिष्टुभा विश्वे देवा जगत्या।।
ते एते अभ्यनूच्येते अग्नेर्गायत्र्यभवत्सयुग्वेति।।
कल्पते ह वा अस्मै योगक्षेम उत्तरोत्तरिणीं ह श्रियमश्नुतेऽश्नुते ह प्रजानामैश्वर्यमाधिपत्यं, य एवमेता अनु देवता एतामासन्दीमारोहति क्षत्रियः सन्।।
अथैनमभिषेक्ष्यन्नपां शान्तिं वाचयति।।
शिवेन मा चक्षुषा पश्यताऽऽपः शिवया तन्वोपस्पृशत त्वचं मे।
सर्वाँ अग्नीँरप्सुषदो हुवे वो मयि वर्चो बलमोजो निधत्तेति।।
नैतस्याभिषिषिचानस्याशान्ता आपो वीर्यं निर्हणन्निति।।२।।

व्याख्यानम्- पूर्वखण्ड में वर्णित औदुम्बरी आसन्दी संज्ञक क्षेत्र पूर्वखण्ड में वर्णित व्याघ्रचर्म संज्ञक तीव्र ज्वालामय रश्मियों से आच्छादित होने लगता है, जिसमें ऊपरी दिशा में विभिन्न छन्दादि रश्मियां प्रवाहित व सक्रिय होती रहती हैं, जबकि पूर्व दिशा में {ग्रीवा = ग्रीवा गिरतेर्वा गृणातेर्वा गृह्णातेर्वा (नि.२.२८), ग्रीवा पञ्चदशः, चतुर्दश वाऽएतासां करूकराणि। वीर्यं पञ्चदशम्। तस्मादेताभिरण्वीभिः सतीभिर्गुरुं भारं हरति (श.१२.२.४.१०; तु.गो.पू.५.३), इमा एव ग्रीवाः पञ्चदशमहः ओजो वै वीर्यं ग्रीवा ओजो वीर्यं पञ्चदशः, तस्मात् पशवो ग्रीवाभिर्भारं वहन्ति (जै.ब्रा.२.५७)} अति ओज और तेजयुक्त पञ्चदश स्तोम रश्मियां विद्यमान होती हैं, जिनमें से १४ विशेष क्रियाशील और पन्द्रहवीं विशेष तेजस्विनी होती है। यही पन्द्रहवीं रश्मि वीर्यवती भी कहलाती है। इससे यह संकेत मिलता है कि यह रश्मि नाना प्रकार की अन्य बाहरी रश्मियों में अपने बल का बीजारोपण करके उनको तथा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को ग्रहण करके १४ रश्मियों के द्वारा उदुम्बरी आसन्दी संज्ञक क्षेत्र में प्रेषित करती रहती है। इन उपर्युक्त व्याघ्रचर्म संज्ञक ज्वालामयी रश्मियों के विषय में लिखते हुए कहते हैं कि ये रश्मियां 'आरण्य' अर्थात् संघर्ष वा संघात आदि कर्मों को करने में अक्षम परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों के मध्य क्षत्ररूप व्यवहार करती हैं। इनका क्षत्ररूप भी राजन्यरूप अर्थात् अति तेजस्वी होता है। इस कारण ये रश्मियां तेजस्वी क्षत्ररूप

धारण करके हीनवल और निष्क्रिय किंवा न्यून क्रियाशीलता से युक्त विभिन्न क्षत्ररूप परमाणु आदि पदार्थों को समृद्ध करती हैं, जिसमें औदुम्बरी आसन्दी क्षेत्र की सीमा के निकट विद्यमान सभी पदार्थ अधिक तेज और क्रियाओं से युक्त हो उठते हैं।।

उसके पश्चात् औदुम्बरी आसन्दी क्षेत्र के पश्चिम दिशा में विद्यमान {आच्य = अधोनिपात्य (म.द.य.भा.१९.६२)। जानु = जायन्तेऽस्मात् तत् जानु (उ.को.१.३)} विभिन्न क्षत्र संज्ञक पदार्थ प्रकृष्ट गति से आगे वढ़ते हुए उस आसन्दी क्षेत्र में गिरने लगते हैं अर्थात् प्रविष्ट होने लगते हैं। उस समय आकर्षण एवं प्रतिकर्षण दोनों ही प्रकार के वलों को उत्पन्न करने वाली रश्मियां आसन्दी अर्थात् केन्द्रीय भाग की वाहरी परिधि को स्पर्श करके सव ओर से अग्रिम कण्डिका में वर्णित छन्द रश्मि को उत्पन्न करके वलों की दक्षता को और अधिक समृद्ध करती हैं, जिससे वाहरी भाग से क्षत्ररूप पदार्थ का आसन्दीरूप केन्द्रीय भाग में प्रविष्ट होने की प्रक्रिया तीव्रतर होती चली जाती है।।

यह सम्पूर्ण कण्डिका ही एक ऋचा के रूप में दर्शायी गयी है। यह अतिच्छन्द रश्मि है, इसके देवता अग्नि, सविता, सोम, वृहस्पति, मित्रावरुण एवं विश्वेदेवा हैं। इस कारण इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से अग्नि, विद्युत्, सोम, सूत्रात्मा वायु, प्राणापान रश्मियां एवं सभी देवपदार्थ अर्थात् सभी छन्दादि रश्मियां एवं परमाणु आदि पदार्थ अति तीक्ष्ण वल एवं क्रियाओं को प्राप्त करते हैं। ध्यातव्य है कि यह ऋचा किसी वेद संहिता अथवा शाखा आदि ग्रन्थों में विद्यमान नहीं है। इसके अन्य प्रभाव से उस आसन्दी क्षेत्र में अग्नि के परमाणु गायत्री छन्द रश्मियों के साथ अथवा उनके द्वारा, सविता अर्थात् विभिन्न विद्युत् वल उष्णिक् छन्द रश्मियों के साथ अथवा उनके द्वारा, सोम तत्त्व अनुष्टुप् छन्द रश्मियों के साथ अथवा उनके द्वारा, सूत्रात्मा वायु रश्मियां वृहती छन्द रश्मियों के द्वारा वा उनके साथ, {वृहस्पतिः = यजमानदेवत्यो वै वृहस्पतिः (तै.ब्रा.१.८.३.१)} विभिन्न पदार्थों को सक्रिय करके उनकी संयोग व संघनन प्रक्रिया, पंक्ति छन्द रश्मियों द्वारा अथवा उनके साथ, प्राणापान एवं प्राणोदान को सक्रिय करके {मित्रावरुणः = यज्ञो वै मित्रावरुणः (कौ.ब्रा.१३.२), द्यावापृथिवी वै मित्रावरुणयोः प्रियं धाम (तां.१४.२.४)} उनकी संयोग प्रक्रिया, त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के द्वारा इन्द्र तत्त्व एवं जगती छन्द रश्मियों द्वारा सभी प्रकार के देव पदार्थों की सव ओर से उत्पत्ति और समृद्धि होती है। इसका आशय यह है कि इन उपर्युक्त सभी पदार्थों और छन्द रश्मियों की जो-२ भी क्रियाएं उस क्षेत्र में हो रही होती हैं, वे सभी अपने-२ स्तर पर और अधिक समृद्ध होने लगती हैं। {परमेष्ठी = आपो वै प्रजापतिः परमेष्ठी ता हि परमे स्थाने तिष्ठन्ति (श.८.२.३.१३), परमेष्ठी स्वाराज्यम् (तां.१६.१३.३), तपसा परमेष्ठी (काठ.३५.१५)} इससे क्षत्र संज्ञक पदार्थ अच्छी प्रकार देदीप्यमान होते हुए नाना नियंत्रक वलों से युक्त होकर परस्पर एक-दूसरे के साथ संयुक्त होकर अपने उस केन्द्रीय क्षेत्र को विशेष ताप से युक्त करने में समर्थ होते हैं। इससे उस क्षेत्र में विद्यमान विभिन्न पदार्थ व्यापक रूप से प्रकाशित होकर महान् नियंत्रक और संपीडक वलों से युक्त होने लगते हैं। उस क्षेत्र में स्वः अर्थात् "स्वः" रश्मियां एवं व्यान रश्मियां भी विशेषरूप से प्रविष्ट होकर सभी परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों में प्रकट होकर उन सवको निरन्तर समृद्ध और सशक्त वनाती हैं।।

उपर्युक्त छन्द रश्मि के प्रभाव से विभिन्न क्षत्र संज्ञक पदार्थ, जो उस आसन्दी क्षेत्र में विद्यमान होते हैं एवं प्रविष्ट हो रहे होते हैं, अपने तीव्र वलरूप सामर्थ्य एवं विभिन्न पदार्थों को उत्पन्न करने की क्षमता के साथ केन्द्रीय भाग में प्रविष्ट होते हैं अथवा सव ओर से उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं। दक्षिण दिशा में विद्यमान क्षत्र संज्ञक पदार्थ पहले तथा उत्तर दिशा में विद्यमान पदार्थ उनके पश्चात् प्रविष्ट होते हैं। यहाँ 'जानु' शब्द का अर्थ संधि क्षेत्र का वह भाग समझना चाहिए, जिसमें क्षत्र संज्ञक परमाणु ब्रह्म संज्ञक पदार्थों के द्वारा विशेष तेज और वल को प्राप्त करते हैं। वे क्षेत्र केन्द्रीय भाग के दोनों ओर स्थित होते है। उन दोनों ही ओर से ये केन्द्रीय भाग में प्रविष्ट होते हैं। यह क्रिया ही आरोहण कहलाती है। यहाँ 'प्लुत' का प्रयोग प्रशंसा अर्थ में किया गया है।।+।।

यहाँ उपर्युक्त छन्द रश्मि के विषय में कुछ और वेदितव्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उपर्युक्त गायत्री, उष्णिक् आदि छन्दों में उत्तरोत्तर चार-२ अक्षरों की वृद्धि है। इन ऐसी क्रमशः वृद्धि वाली छन्द रश्मियों के द्वारा ही क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ उत्तरोत्तर केन्द्रीय भाग की ओर आरोहण करते हैं। अद्यपर्यन्त

उसी भाग में प्रतिष्ठित हैं। शेष भाग का अर्थ पूर्ववत् समझें। इस भाग को सुदृढ़ पुष्टि के लिए पुनरावृत्त किया गया है।।

पूर्वोक्त अतिच्छन्द रश्मि में "अग्निष्ट्वा गायत्र्या" इन दो पदों के अनुगामी होकर ही अन्य सभी पद एवं देवतावाची पदार्थ अग्नि के सहचर होकर गमन करते हैं। इस कारण अग्नि, विद्युत् आदि सभी देव पदार्थ परस्पर एक-दूसरे से गूंथे हुए रहते हैं, जिससे आसन्दी संज्ञक सभी पदार्थों को निरन्तर सक्रिय और संदीप्त बनाये रखते हैं।।

जो परमाणु क्षत्ररूप होकर उपर्युक्त देव संज्ञक पदार्थों के अनुगामी होकर उत्तरोत्तर केन्द्रीय भाग की ओर बढ़ते हैं, वे परस्पर संगत होते हुए योग और क्षेम को प्राप्त करके अर्थात् नाना प्रकार की सूक्ष्म रश्मियों से समृद्ध होकर बाधक असुरादि रश्मियों से सुरक्षित रहते हैं, वे सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग में विभिन्न प्राण रश्मियों से सुरक्षित रहते हैं। वे सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग में विभिन्न प्राण रश्मियों के साथ व्याप्त होकर नाना प्रकार के वैश्य संज्ञक परमाणुओं को उत्पन्न, सक्रिय और नियंत्रित करते हैं। उस समय पूर्वोक्त अग्नि, सविता आदि विभिन्न पदार्थ भी क्षत्ररूप प्राप्त करके निरंतर अग्रगामी होते रहते हैं अर्थात् ये निरन्तर तीक्ष्णता को प्राप्त करते हुए सब बाधाओं को पार करने में सक्षम होते हैं। इससे आसन्दी क्षेत्र में नाना प्रकार की संयोगादि क्रियाएं और तीव्रतर होने लगती हैं।।

इसके पश्चात् ब्रह्म संज्ञक पदार्थों के द्वारा आसन्दी क्षेत्र में वर्तमान विभिन्न क्षत्र संज्ञक पदार्थों को अभिसिंचित करने के लिए उसकी क्रियाओं के सम्यग् नियंत्रण हेतु निम्न छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है-

शिवेन मा चक्षुषा पश्यताऽऽपः शिवया तन्वोपस्पृशत त्वचं मे।
सर्वाँ अग्नीँरप्सुषदो हुवे वो मयि वर्चो बलमोजो निधत्त।।

यह ऋचा तैत्तिरीय संहिता (५.६.१.२) में यथावत् उपलब्ध है तथा अथर्ववेद १.३३.४ तथा १६.१.१२ में पूर्वार्ध भाग विद्यमान है। इस ऋचा (केवल पूर्वार्ध) का देवता अथर्ववेद - भाष्यकार पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदी एवं प्रो.विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड ने आपः एवं प्रजापति माना है। इसका छन्द विराड्जगती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियां सम्पूर्ण क्षेत्र में व्याप्त होकर संयोगादि क्रियाओं को निरापद और समृद्ध बनाती हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे प्राण रश्मियां क्षत्रिय संज्ञक परमाणुओं को {शिवः = शिवः शिव इति शमयत्येवैनम् (अग्निम्) एतद् हिंसाये तथो ह्येष (अग्निः) इमांल्लोकाञ्छान्तो न हिनस्ति (शिवः = रुद्रः = शान्तोऽग्निः) (श.६.७.३.१५), श्यति पापमिति विग्रहे शो तनूकरणे (दिवा.) धातोर्बाहु.औणा. वन्। पृषोदरादिना रूपसिद्धिः (वै.को. - आ. राजवीर शास्त्री)। चक्षुः = चक्षुर्मैत्रावरुणः (कौ.ब्रा.१३.५)} अपनी प्राणापान वा प्राणोदान रश्मियों की संरक्षिका शक्तियों के द्वारा अनुकूलता से प्रकाशित करती हैं। वे अनुकूलतापूर्वक क्षत्रिय परमाणुओं के बाहरी भाग के साथ संगत होती हुई किंवा उसे स्पर्श करती हुई अनुकूलता से सर्वत्र व्याप्त होने लगती हैं। इससे अग्नि के परमाणु उत्पन्न होकर उन क्षत्र संज्ञक परमाणुओं को नाना प्रकार के बल और तेज प्रदान करते हैं। वे सभी बल और तेज उचित और आवश्यक तीव्रता की मर्यादा से युक्त होते हैं।।+।।

इस उपर्युक्त छन्द रश्मि की प्रशंसा करते हुए ग्रन्थकार लिखते हैं कि उपर्युक्त छन्द रश्मि के द्वारा क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ अग्नि के परमाणुओं को उत्पन्न करने लगते हैं और यह प्रक्रिया नियंत्रित रूप में होती है। यदि इस छन्द रश्मि की उत्पत्ति न हो, तो विभिन्न प्राण रश्मियां क्षत्र संज्ञक पदार्थों को विक्षुब्ध करके उनसे अग्नि की उत्पत्ति प्रक्रिया को नष्ट कर सकती हैं। इसके विपरीत यह भी संभव है कि वे क्षत्र संज्ञक परमाणुओं के बल का हरण भी कर सकती हैं। इस कारण दोनों ही स्थितियों में आदित्य लोक के अन्दर होने वाली विभिन्न क्रियाएं अस्त-व्यस्त हो सकती हैं। इस कारण उपर्युक्त छन्द रश्मि का उत्पन्न होना एक अनिवार्य प्रक्रिया है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्रीय भाग की बाहरी परिधि में भी अति तीव्र तापयुक्त विभिन्न तरंगें

बाहर की ओर प्रवाहित होती रहती हैं। उनमें विभिन्न प्रकार की छन्द रश्मियां विद्यमान होती हैं। ये रश्मियां गायत्रीरूप होकर बाहर से आने वाले नाभिकों को अपनी ओर आकृष्ट करके केन्द्रीय भाग की ओर प्रेषित करती रहती हैं। जो नाभिक अपेक्षित ऊर्जा से युक्त नहीं होते हैं, उनकी ऊर्जा में भारी वृद्धि करके ये गायत्री रश्मियां उन्हें केन्द्रीय भाग में प्रक्षेपित करती रहती हैं। इनके कारण ही तारे के विशाल भाग से नाभिकों का केन्द्रीय भाग की ओर आना तीव्र गति से होता है। इसी समय एक अति तीक्ष्ण बलयुक्त छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है, जिसके कारण केन्द्रीय भाग में विद्यमान विभिन्न गायत्री आदि छन्द रश्मियां, प्राणापान एवं सूत्रात्मा रश्मियां तीव्र रूप से सक्रिय होकर विद्युत् चुम्बकीय बल, विद्युत् चुम्बकीय तरंगों एवं सभी प्रकार के कणों को भारी मात्रा में ऊर्जा प्रदान करती हैं। इससे केन्द्रीय भाग में ताप और दाब की मात्रा निरन्तर बढ़ने लगती है। **तारों के विशाल भाग से जो कण केन्द्रीय भाग में प्रविष्ट होते हैं, वे उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव की दिशा से अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में प्रविष्ट होते हैं।** इस समय केन्द्रीय भाग में डार्क एनर्जी का दुष्प्रभाव लगभग समाप्त हो चुका होता है। इस समय एक जगती छन्द रश्मि उत्पन्न होकर नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया को समुचित और संतुलित रूप प्रदान किये रहती है। इसके कारण नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया तीक्ष्ण और व्यापक होते हुए भी नियंत्रण में रहती है।।

☙ इति ३७.२ समाप्तः ❧

꧁ अथ ३७.३ प्रारभ्यते ꧂

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. अथैनमुदुम्बरशाखामन्तर्धायाभिषिञ्चति ।।
इमा आपः शिवतमा इमाः सर्वस्य भेषजीः।
इमा राष्ट्रस्य वर्धनीरिमा राष्ट्रभृतोऽमृताः ।।
याभिरिन्द्रमभ्यषिञ्चत् प्रजापतिः सोमं राजानं वरुणं यमं मनुम्।
ताभिरद्भिरभिषिञ्चामि त्वामहं राज्ञां त्वमधिराजो भवेह ।।
महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम्।
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ।।
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्नेस्तेजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेणाभिषिञ्चामि बलाय श्रियै यशसेऽन्नाद्याय ।।
भूरिति य इच्छेदिममेव प्रत्यन्नमद्यादित्यथ य इच्छेद् द्विपुरुषं भूर्भुव इत्यथ य इच्छेत् त्रिपुरुषं वाऽप्रतिमं वा भूर्भुवः स्वरिति ।।

व्याख्यानम्- क्षत्र संज्ञक पदार्थों की पूर्वोक्त अभिसेचन क्रिया के विषय में पुनः लिखते हैं कि इस क्रिया के समय क्षत्र संज्ञक पदार्थ पूर्ववर्णित उदुम्बर ऊर्जा तरंगों की रश्मियों से आच्छादित होकर ही ब्रह्मरूप पदार्थों से अभिसिंचित होते हैं। क्षत्र संज्ञक पदार्थों के संलयन से अग्नि तत्त्व के उत्पन्न होते समय भी उदुम्बर रश्मियों का इसी प्रकार आच्छादन हुआ करता है। इस समय तीन छन्द रश्मियां और उत्पन्न होती हैं, जिनको आगामी कण्डिकाओं में क्रमशः उद्धृत किया गया है। आगामी तीन कण्डिकाएं ऋचाओं के रूप में ही हैं।।

इस कण्डिका के रूप में वर्णित ऋचा आपोदेवताक एवं अनुष्टुप् छन्दस्क है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव को यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न आपः अर्थात् प्राण रश्मियां अनुकूल एवं समुचित संयोजक बलों को उत्पन्न करने वाली होती हैं। {भेषजम् = सुख-नाम (निघं.३.६), भेषजं तदमृतम् (गो.पू.३.४), शान्तिर्वै भेषजमापः (कौ.ब्रा.३.६)} ये प्राण रश्मियां उन क्षत्रसंज्ञक पदार्थों को संतुलित बल प्रदान करती हुई उनकी सभी क्रियाओं की बाधाओं को दूर करने में सहायक होती हैं। ये आदित्य लोक के देदीप्यमान केन्द्र को समृद्ध और धारण करती हुई उन्हें अविनाशी परमाणु आदि पदार्थों से निरन्तर पुष्ट करती हैं। इनके कारण क्षत्र संज्ञक पदार्थ अच्युत बलों को निरन्तर प्राप्त करते रहते हैं।।

इसका छन्द विराड् जगती एवं देवता आपः है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। {यमः = अयैष एव गार्हपत्यो यमो राजा (श.२.३.२.२), पितृलोको यमः (कौ.ब्रा.१६.८)। मनु = मनुर्यज्ञनीः (तै.सं.३.३.२.१), मनोर्यज्ञऽइत्यु वाऽआहुः (श.१.५.१.७)} इसके अन्य प्रभाव से आदित्य केन्द्रों की इन क्रियाओं से पूर्व प्रजापति अर्थात् मनस्तत्त्व प्राथमिक प्राण रश्मियों से ही इन्द्रतत्त्व, देदीप्यमान सोम तत्त्व, वरुण अर्थात् सूत्रात्मा वायु रश्मियों, यम अर्थात् ऋतु रश्मियों एवं मनु अर्थात् यजनकर्मों में विशेष क्रियाशील मास रश्मियों को अभिसिंचित करता है। इन्हीं प्राण रश्मियों से वह क्षत्र संज्ञक पदार्थों को अभिसिंचित करके अतिशय क्रियाशील एवं देदीप्यमान करने के साथ-२ विशेष नियंत्रक बलों से युक्त

करता है। इस प्रकार प्राथमिक प्राण रश्मियां सृष्टि की प्रत्येक क्रिया को प्राणवती करती हैं।।

इसका छन्द विराडनुष्टुप् एवं देवता क्षत्र है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {मही = वाङ्नाम (निघं.१.११)} विभिन्न छन्द रश्मियों, जो महान् प्रकाश से प्रकाशित होती हैं, उनके मध्य क्षत्र संज्ञक त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां सबसे अधिक व्यापक तेजयुक्त होती हैं। {देवी = प्राणो वा अपानो व्यानस्तिस्रो देव्यः (ऐ.२.४)} इसके साथ ही इन त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के द्वारा विभिन्न परमाणु भी अत्यधिक तेज और बल से युक्त होते हैं। {भद्रम् = अन्नं वै भद्रम् (तै.ब्रा.१.३.३.६), भद्रं भगेन व्याख्यातं भजनीयम् भूतानामभिद्रवणीयम् भवद्रमयतीति वा भाजनवद्वा (नि.४.९)} ये क्षत्ररूप त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां संयोज्य, रमणीय एवं तीव्र गमनशील प्राण, अपान एवं व्यान रश्मियों से उत्पन्न होती हैं। विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों में से प्राण, अपान एवं व्यान रश्मियां सर्वाधिक सक्रिय होती हैं। इस कारण इनके मेल से उत्पन्न त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां भी सबसे अधिक तीक्ष्ण होती हैं। **इन तीन प्राण रश्मियों से त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों का उत्पन्न होना विशेष महत्वपूर्ण विज्ञान की ओर संकेत करता है।** इससे अन्य छन्द रश्मियों की संरचना पर भी गम्भीर अनुसंधान अपेक्षित है, किन्तु यहाँ इसका प्रकरण न होने से इस पर विचार करना आवश्यक नहीं है। यहाँ हमारे मत में एक विचार यह भी व्यक्त किया हुआ प्रतीत होता है कि वे महती त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां एवं उनसे सम्पन्न क्षत्र संज्ञक परमाणु आदित्य के केन्द्ररूप वेदि के निर्माण में विशिष्ट भूमिका निभाते हैं। यहाँ "देवी" पद वेदी का रूप है, जो वर्ण विपर्यय से सिद्ध होता है। यह 'वेदी' पूर्व में व्याख्यात की जा चुकी है। इसमें सर्वाधिक संयोज्यता का गुण विद्यमान होता है।।

उपर्युक्त तीन ऋचाओं की उत्पत्ति के पश्चात् एक स्वराड् जगती छन्द रश्मि, जिसका देवता भी 'क्षत्र' है, की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव को यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे क्षत्र संज्ञक परमाणु वायु की प्रेरणा, अश्विनौ अर्थात् प्राणापान किंवा प्राणोदान रश्मियों के बाहुरूप बलों अर्थात् धारक एवं वारक बलों, पूषा {पूषा = पशवो वै पूषा (श.१३.१.८.६), प्रजननं वै पूषा (श.५.२.५.८), अन्नं वै पूषा (कौ.ब्रा.१२.८)} अर्थात् विभिन्न संयोजक एवं उत्पादक छन्द रश्मियों के आकर्षण और विकर्षण बलों, अग्नि के तेज और सूर्य की विशेष दीप्ति एवं विद्युत् के विभिन्न बलों से अभिसिंचित होते हैं। इस कारण वे विभिन्न बल, तेज, प्रतिष्ठा और संयोज्यता आदि गुणों से समृद्ध होते हैं। यह छन्द रश्मि 'यजुः' संज्ञक होने से यजन क्रियाओं को विशेष समृद्ध करने में सहायक होकर सविता आदि सभी देव पदार्थों और उनसे सम्बद्ध विभिन्न छन्द रश्मियों को सक्रिय करके क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों को अधिक समर्थ बनाती है। इससे यह भी संकेत मिलता है कि यह छन्द रश्मि सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग को प्रभावित करती है।।

जब क्षत्र संज्ञक पदार्थ को ब्रह्म संज्ञक पदार्थ अभिसिंचित करने वाले होते हैं अर्थात् जब क्षत्र संज्ञक पदार्थ अपने प्रेरक ब्रह्मरूप सूक्ष्म पदार्थों को अवशोषित करने की ओर प्रवृत्त होते हैं, उस समय ब्रह्म संज्ञक पदार्थ 'भूः' रश्मियों को क्षत्र संज्ञक पदार्थों के ऊपर उत्सर्जित वा प्रक्षिप्त करने लगते हैं। इसके कारण प्राण नामक प्राण रश्मियां सक्रिय होकर उस अवशोषण क्रिया को सम्पन्न कराने में सहायक होती हैं। {पुरुषः = गायत्री वै पुरुषः (ऐ.४.३), औष्णिहो वै पुरुषः (ऐ.४.३), पाङ्क्तोऽयं पुरुषः (ऐ.२.१४)} जब इन क्षत्र संज्ञक पदार्थों को द्विपुरुष के रूप में प्रतिष्ठित करना होता है अर्थात् उन्हें गायत्री और उष्णिक् छन्द रश्मियों से संगत और समृद्ध करना होता है, तब 'भूः' एवं 'भुवः' रश्मियों को वे ब्रह्म संज्ञक पदार्थ उत्सर्जित करते हैं, जिसके कारण प्राण और अपान दोनों ही प्रकार की रश्मियां उत्पन्न होकर क्षत्र संज्ञक पदार्थों को गायत्री एवं उष्णिक् छन्द रश्मियों से विशेषरूप से संयुक्त करने लगती हैं। जब इन क्षत्र संज्ञक पदार्थों को त्रिपुरुष रूप प्रदान करके अत्यन्त शक्तिशाली बनाना होता है, उस समय ब्रह्म संज्ञक पदार्थ 'भूः', भुवः' एवं 'स्वः' इन तीनों रश्मियों को क्षत्र संज्ञक पदार्थों के ऊपर उत्सर्जित करने लगते हैं। यहाँ त्रिपुरुष का तात्पर्य गायत्री, उष्णिक् एवं पंक्ति छन्द रश्मियों से विशेष युक्त करना है। इनसे युक्त होकर क्षत्र संज्ञक पदार्थ अति तीक्ष्ण तेज और बलों से युक्त होने लगते हैं। इस समय प्राण, अपान एवं व्यान रश्मियां भी उत्पन्न होकर त्रैष्टुभ प्रभाव दर्शाती हुई इस तीक्ष्ण बनाने की क्रिया को बल प्रदान करती हैं। यहाँ आचार्य सायण ने अपने याज्ञिकभाष्य में 'पुरुष' शब्द से एक पीढ़ी ग्रहण किया है। हम अपने आधिदैविक भाष्य में भी इससे सहमत हैं। ऐसी स्थिति में यहाँ ग्रन्थकार का यह

मत भी प्रकट होता है कि 'भूः' एवं 'भुवः' के प्रभाव से क्षत्र संज्ञक पदार्थ की दो पीढ़ी प्रभावित होती हैं। यहाँ दो पीढ़ी का तात्पर्य है- उसके अन्य पदार्थ में परिवर्तन के दो चरण तथा त्रिपुरुष का आशय है, इस परिवर्तन के तीन चरण। इन तीन चरणों को प्रभावित करने के लिए 'भूः', 'भुवः' एवं 'स्वः' तीनों रश्मियों का उत्पन्न होना आवश्यक है। इस अवस्था में वे पदार्थ अप्रतिम शक्तिसम्पन्न होने लगते हैं। ध्यातव्य है कि ये भूरादि व्याहृति रश्मियां उपर्युक्त प्रक्रिया में उत्सर्जित होकर पूर्व कण्डिका के रूप में वर्णित 'यजुः' संज्ञक छन्द रश्मि के साथ संयुक्त होकर अपना उपर्युक्त प्रभाव दर्शाती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्र में नाभिकीय संलयन एवं ऊर्जा के उत्सर्जन और अवशोषण की प्रक्रिया में ऐसी अनेक सूक्ष्म ऊर्जा तरंगें विभिन्न कणों को आच्छादित करती हैं, जिनको वर्तमान विज्ञान अभी तक परिकल्पित भी नहीं कर पाया है। इस समय **'भूः', 'भुवः'** एवं **'स्वः'** के साथ-२ दो जगती और दो अनुष्टुप् छन्द रश्मियां भी उत्पन्न होती हैं, जो अन्य अनेक प्रकार की छन्द रश्मियों की क्रियाशीलता को और अधिक बढ़ाती हैं। **सबसे तीक्ष्ण बलयुक्त छन्द रश्मि त्रिष्टुप्, प्राण, अपान एवं व्यान रश्मियों से उत्पन्न होती है।** तारों के केन्द्रीय भाग के निर्माण में इनकी भूमिका विशेष होती है। इस समय उत्पन्न होने वाली जगती छन्द रश्मियां सभी प्रकार की सूक्ष्म रश्मियों के साथ-२ सभी प्रकार की विद्युत् चुम्बकीय तरंगों एवं विभिन्न कणों में व्याप्त होकर ऊर्जा की उत्पादन एवं अवशोषण-उत्सर्जन क्रियाओं को तीव्र बनाती हैं। जब कोई कण वा तरंग **'भूः', 'भुवः',** एवं **'स्वः'** तीनों रश्मियों से युक्त होती है, तब वह अत्यन्त तीव्र ऊर्जा से युक्त होती है, उस समय यह प्राण, अपान एवं व्यान के साथ-२ गायत्री, उष्णिक् एवं पंक्ति छन्द रश्मियों से भी युक्त होती है। तारों के केन्द्रीय भाग में इस प्रकार के कण प्रचुरता से विद्यमान होते हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

२. तद्धैक आहुः-सर्वाप्तिर्वा एषा यदेता व्याहृतयोऽति सर्वेण हास्य परस्मै कृतं भवतीति; तमेतेनाभिषिञ्चेद्देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्नेस्तेजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेणाभिषिञ्चामि बलाय श्रियै यशसेऽन्नाद्यायेति।।

तदु पुनः परिचक्षते; यदसर्वेण वाचोऽभिषिक्तो भवतीश्वरो ह तु पुराऽऽयुषः प्रैतोरिति ह स्माऽऽह सत्यकामो जाबालोऽयमेताभिर्व्याहृतिभिर्नाभिषिञ्चन्तीति।।

ईश्वरो ह सर्वमायुरैतोः सर्वमाप्नोद्विजयेनेत्यु ह स्माऽऽहोद्दालक आरुणिर्यमेताभि-र्व्याहृतिभिरभिषिञ्चन्तीति; तमेतेनैवाभिषिञ्चेद्देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्नेस्तेजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेणाभिषिञ्चामि बलाय श्रियै यशसेऽन्नाद्याय भूर्भुवः स्वरिति।।

अथैतानि ह वै क्षत्रियादीजानाद् व्युत्क्रान्तानि भवन्ति; ब्रह्मक्षत्रे ऊर्गन्नाद्यमपामोषधीनां रसो ब्रह्मवर्चसमिरापुष्टिः प्रजातिः क्षत्ररूपं; तदथो अन्नस्य रस ओषधीनां क्षत्रं प्रतिष्ठा; तद्यदेवामू पुरस्तादाहुती जुहोति; तदस्मिन् ब्रह्मक्षत्रे दधाति।।३।।

व्याख्यानम्- यहाँ ग्रन्थकार कुछ विद्वानों का मत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि 'भूः', 'भुवः' एवं 'स्वः' ये छन्द रश्मियां सभी प्रकार की क्रियाओं एवं पदार्थों को व्याप्त करती हैं। इस कारण इन रश्मियों की अधिकता से उत्पत्ति क्षत्र संज्ञक पदार्थों की पूर्वोक्त क्रियाओं के लिए आवश्यक नहीं है, बल्कि इनकी अधिकता से उत्पत्ति सृष्टि के अन्य अनेक कार्यों के लिए आवश्यक होती है। {परः = शत्रुः (तु.म.द.य.भा.१.२५), प्रकृष्टः (म.द.ऋ.भा.२.३५.६), अन्यः (म.द.य.भा.२०.८२)} यहाँ इन विद्वानों का यह भी संकेत है कि इन तीनों रश्मियों की अधिकता से क्षत्र संज्ञक पदार्थ ऐसे प्रकृष्ट बलों से युक्त हो सकते हैं, जिससे उनका परस्पर बंधन कठिन हो सकता है किंवा तीक्ष्ण बाधक रश्मियां बलवती होकर प्रकट हो

सकती हैं, जिसके कारण भी बंधक वल दुर्वल हो सकते हैं। इस हेतु से इन विद्वानों का कथन है कि क्षत्र संज्ञक पदार्थों के अभिषेक के लिए विना इन व्याहृति रश्मियों के ही "देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे..... ।" इस पूर्वोक्त स्वराड् जगती छन्द रश्मि की ही उत्पत्ति पर्याप्त होती है। इस छन्द रश्मि के विषय में हम पूर्व में लिख चुके हैं।।

इस मत का खण्डन करते हुए जाबाल ऋषि के पुत्र ऋषि सत्यकाम का कथन है कि यह मत उचित नहीं है, क्योंकि इन व्याहृति रश्मियों के विना उपर्युक्त स्वराड् जगती छन्द रश्मि पूर्णतः क्रियाशील नहीं होती किंवा वह छन्द रश्मि अन्य सभी छन्द रश्मियों को प्रभावित करने में असमर्थ होती है। इस असमर्थता के कारण यह छन्द रश्मि अल्पकाल में ही क्षीण हो सकती है और इसके क्षीण होने से अन्य छन्द रश्मियां भी दुर्वल प्रभाव वाली हो सकती हैं, इस कारण इस छन्द रश्मि के साथ भूरादि व्याहृति रश्मियों का क्षत्रिय पदार्थों पर अभिसेचन अनिवार्य होता है।।

अव ग्रन्थकार महर्षि अरुण के पुत्र महर्षि उद्दालक के मत को व्यक्त करते हुए और उसका समर्थन करते हुए कहते हैं कि भूरादि व्याहृतियों की उत्पत्ति पूर्वोक्त स्वराड् जगती छन्द रश्मि के साथ-२ अनिवार्य होती है। इनके अभिसिंचन से क्षत्र संज्ञक पदार्थ सम्पूर्ण आयु के साथ संयोजक वलों की पूर्णता को प्राप्त करते हैं और ऐसा करते हुए वे सभी बाधक रश्मि आदि पदार्थों को नियंत्रित करके सभी कमनीय एवं वांछनीय वलों के द्वारा आदित्य-केन्द्र में सभी पदार्थों को व्याप्त करते हैं। इसलिए व्याहृति रश्मियों की उत्पत्ति अनिवार्य होती है। ये व्याहृति रश्मियां इस स्वराड् जगती छन्द रश्मि के साथ किस प्रकार संयुक्त होती है? यह स्पष्ट करते हुए ग्रन्थकार अपना सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं कि **व्याहृति छन्द रश्मियां स्वराड् जगती छन्द रश्मि के पूर्व में नहीं, बल्कि अन्त में संयुक्त होती हैं। यह बात विशेष ध्यान देने की है। हम प्रायः भूरादि व्याहृति रश्मियों को किसी ऋचा के प्रारम्भ में संयुक्त होना पढ़ते रहे हैं किन्तु इस प्रकरण में इनका ऋचा के अन्त में संयुक्त होना अपना विशिष्ट महत्व रखता है।** इस विषय में हमें ऐसा प्रतीत होता है कि अन्त में इन रश्मियों के संयुक्त होने से वल, श्री, यश, एवं अन्नाद्य शब्दों पर इन भूरादि के निकट प्रभाव से वल, प्रतिष्ठा, तेजस्विता एवं संयोज्यता आदि गुण प्रकृष्टरूप से समृद्ध होते हैं, जिससे क्षत्र संज्ञक पदार्थ दीर्घायु के साथ-२ विशेष क्रियाशील एवं प्रवल संयोजनीय स्वरूप को प्राप्त करते हैं।।

{ईजानः = यजमानः (म.द.ऋ.भा.७.५६.२)} जव क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थ परस्पर संगत होते हैं, तव कभी-२ उनमें से कुछ सूक्ष्म पदार्थ वाहर भी निकल जाते है। वे सूक्ष्म पदार्थ इस प्रकार हैं-

(१) ब्रह्म संज्ञक सूक्ष्म पदार्थ।
(२) क्षत्र संज्ञक सूक्ष्म पदार्थ।
(३) ऊर्क् अर्थात् कुछ सूक्ष्म संयोजक वल।
(४) अन्नाद्य अर्थात् अवशोषक वल।
(५) औषधियों का रस {औषधिः = ओषधयो वर्हिः (ऐ.५.२८), औषधो वै सोमो राजा (ऐ.३.४०)} अर्थात् विभिन्न छन्द और सोम रश्मियों से स्रवित होने वाली कुछ मरुद् रश्मियां ।
(६) ब्रह्मवर्चस अर्थात् कुछ सूक्ष्म विद्युद् रश्मियां।
(७) इरा पुष्टि अर्थात् विभिन्न संयोज्य परमाणुओं के पोषण की क्षमता एवं गमन सामर्थ्य की पुष्टि।
(८) प्रजाति अर्थात् नये पदार्थों की उत्पत्ति का सामर्थ्य।

इस प्रकार ये आठ गुण वा पदार्थ संगत होने वाले क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों में कभी-२ क्षीण हो जाते हैं, जवकि इनके मूल क्षत्ररूप पदार्थों में इनका विद्यमान रहना आवश्यक होता है। ये क्षत्ररूप पदार्थ ही इन पदार्थों वा गुणों की प्रतिष्ठा का रूप होते हैं। इस कारण इनको वनाये रखने के लिए दो आहुतिरूप छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। वे छन्द रश्मियां क्रमशः निम्नानुसार हैं-

(१) "ब्रह्म प्रपद्ये, ब्रह्म मा क्षत्राद् गोपायतु, ब्रह्मणे स्वाहा।"
(२) क्षत्रं प्रपद्ये, क्षत्रं मा ब्रह्मणो गोपायतु, क्षत्राय स्वाहा।"

इन दोनों ही छन्द रश्मियों के विषय में ७.२२.१ द्रष्टव्य है। इनके कारण उपर्युक्त क्षत्रिय संज्ञक

पदार्थ **ब्रह्म** एवं **क्षत्र** संज्ञक विभिन्न गुणों से पुनः समृद्ध होने लगते हैं। इस प्रकार उनकी सभी संगमन आदि क्रियाएं, जो क्षीण हो रही थीं, पुनः यथावत् रूप में होने लगती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- जब दो कणों का परस्पर संयोग वा संलयन होता है अथवा किन्हीं कणों से ऊर्जा का उत्सर्जन वा अवशोषण होता है, तब इन क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिए आवश्यक ऊर्जा में कभी-२ क्षीणता आ जाती है। वैसी स्थिति में दो गायत्री छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होकर उस क्षीणता को दूर किया जाता है। इन कण्डिकाओं का स्पष्ट वैज्ञानिक भाष्यसार लिखना दुष्कर है। इस कारण विज्ञ पाठक इसके व्याख्यान भाग को गम्भीरता से पढ़कर सार जान सकते हैं।।

❀ इति ३७.३ समाप्तः ❀

ௐ अथ ३७.४ प्रारभ्यते ௐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. अथ यदौदुम्बर्यासन्दी भवत्यौदुम्बरश्चमस उदुम्बरशाखोर्ग्वा अन्नाद्यमुदुम्बर ऊर्जमेवास्मिंस्तदन्नाद्यं दधाति।।
अथ यद्दधि मधु घृतं भवत्यपां स ओषधीनां रसोऽपामेवास्मिंस्तदोषधीनां रसं दधाति।।
अथ यदातपवर्ष्या आपो भवन्ति, तेजश्च ह वै ब्रह्मवर्चसं चाऽऽतपवर्ष्या आपस्तेज एवास्मिंस्तद् ब्रह्मवर्चसं च दधाति।।
अथ यच्छ्ष्पाणि च तोक्मानि च भवन्तीरायै तत्पुष्ट्यै रूपमथो प्रजात्या इरामेवास्मिंस्तत्पुष्टिं दधात्यथो प्रजातिम्।।
अथ यत्सुरा भवति, क्षत्ररूपं तदथो अन्नस्य रसः, क्षत्ररूपमेवास्मिंस्तद् दधात्यथो अन्नस्य रसम्।।
अथ यद्दूर्वा भवति, क्षत्रं वा एतदोषधीनां यद्दूर्वा, क्षत्रं राजन्यो, नितत इव हीह क्षत्रियो राष्ट्रे वसन् भवति, प्रतिष्ठित इव; निततेव दूर्वाऽवरोधैर्भूम्यां, प्रतिष्ठितेव, तद्यद्दूर्वा भवत्योषधीनामेवास्मिंस्तत्क्षत्रं दधात्यथो प्रतिष्ठाम्।।
एतानि ह वै यान्यस्मादीजानाद् व्युत्क्रान्तानि भवन्ति, तान्येवास्मिंस्तद्दधाति; तैरेवैनं तत्समर्धयति।।
अथास्मै सुराकंसं हस्त आदधाति।।
स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुतः।।
इत्याधाय शान्तिं वाचयति।।
नाना हि वां देवहितं सदस्कृतं, मा संसृक्षाथां परमे व्योमनि।
सुरा त्वमसि शुष्मिणी, सोम एष राजा मैनं हिंसिष्टं स्वां योनिमाविशन्ताविति।।
सोमपीथस्य चैषा सुरापीथस्य च व्यावृत्तिः।।
पीत्वा यं रातिं मन्येत, तस्मा एनां प्रयच्छेत्, तद्धि मित्रस्य रूपं, मित्र एवैनां तदन्ततः प्रतिष्ठापयति; तथा हि मित्रे प्रतितिष्ठति।।
प्रतितिष्ठति य एवं वेद।।४।।

व्याख्यानम्- अव क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों के अभिषेक के साधनों, जिनके विषय में इस अध्याय के प्रथम खण्ड में विस्तार से लिखा गया है, की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि औदुम्बरी आसन्दीरूप क्षेत्र का वर्णन किया है और उसी क्षेत्र के चमस और शाखारूप भागों का भी वर्णन किया जा चुका है। उस आसन्दीरूप क्षेत्र और उसमें विद्यमान पदार्थों की कारणभूत उदुम्बर संज्ञक ऊर्जा विभिन्न संयोज्य वलों और रूपों में विद्यमान होती है। इस कारण इस उदुम्बर संज्ञक ऊर्जा के द्वारा ही संगमनीय क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों में संगमन और संयोजन आदि गुणों को धारण किया जाता है। उदुम्बर संज्ञक ऊर्जा के विषय में हम ७.१५.१ में विस्तार में लिख चुके हैं, उसी के गुणों को यहाँ पुनः कहा गया है।।

इसी प्रक्रिया में दधि, मधु एवं घृत भी साधनों के रूप में वर्णित किये गये हैं। घृत को इस अध्याय के प्रथम खण्ड में 'सर्पिः' नाम दिया गया है। यहाँ 'घृतम्' पद होने से सर्पिः एवं घृतम् दोनों की समानार्थकता सिद्ध होती है। ये तीनों ही पदार्थ आपः एवं औषधि नामक पदार्थों के साररूप होते हैं। इसका तात्पर्य यह है {आपः = आपो वै सर्वे देवाः (श.१०.५.४.१४), व्रजो वाऽआपः (श.१.७.१.२०)। ओषधिः = ओषधयो बर्हिः (ऐ.५.२८; श.१.३.३.६; तै.ब्रा.२.१.५.१), औषधो वै सोमो राजा (ऐ.३.४०), जगत्यः ओषधयः (श.१.२.२.२)} कि ये तीनों ही पदार्थ विभिन्न देव परमाणुओं, छन्द एवं सोम रश्मियों, छन्दों, विशेषकर जगती छन्द रश्मियों के सूक्ष्मांश रूप होते हैं। ये स्वयं दाहक एवं व्यापक गुणों से युक्त होकर विभिन्न क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों को भी इन्हीं गुणों से युक्त करते हैं।।

इसके पश्चात् ८.५.१ में वर्णित आतपवर्ष्या आपः नामक तन्मात्राओं की चर्चा करते हुए कहते हैं कि ये तन्मात्राएं प्रकाश और वैद्युत तेज से परिपूर्ण होती हैं। इस कारण ये क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों को भी इन्हीं गुणों से युक्त करती हैं।।

अव शष्प एवं तोक्म नामक पदार्थों, जिनके विषय में भी उसी खण्ड में लिखा जा चुका है, के विषय में पुनः लिखते हैं कि ये दोनों पदार्थ विभिन्न संयोज्य परमाणुओं को उत्पन्न करने और उनको पुष्ट करने में विशेष सहायक होते हैं। इस कारण ये क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों को इन्हीं गुणों से युक्त करके नाना प्रकार के तत्त्वों को उत्पन्न और पुष्ट करते हैं।।

उसी खण्ड में वर्णित सुरा संज्ञक पदार्थ की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं कि यह पदार्थ क्षत्ररूप में भी कार्य करता है और यह अन्न संज्ञक विभिन्न संयोज्य परमाणुओं का रसरूप भी होता है, जिसके कारण यह क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों को उनके क्षत्ररूप से समृद्ध करता हुआ और अधिक संयोजक वलों से युक्त करता है।।

अव उसी खण्ड में वर्णित दूर्वा संज्ञक पदार्थों के विषय में पुनः लिखते हैं कि ये पदार्थ अनेकत्र वर्णित ओषधि संज्ञक पदार्थों में क्षत्ररूप होकर वर्तमान रहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये विभिन्न दाहक गुणों से युक्त उन ओषधि आदि पदार्थों में तीक्ष्णतर वलों से युक्त होते हैं। इस कारण वे क्षत्र संज्ञक पदार्थों में भी राजन्यरूप होकर विशेष तेजस्वी होते हैं और इसी रूप को प्राप्त करके वे राजन्य क्षत्रियरूप दूर्वा नामक पदार्थ आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग में निरन्तर वसे हुए संचरणशील होते हैं। इस प्रकार वे निरन्तर उसी क्षेत्र में प्रतिष्ठित रहते हैं। ये दूर्वा संज्ञक पदार्थ अपने अवरोधक वा ग्राहक वलों के द्वारा केन्द्रीय भाग तथा उसके परितः विद्यमान आकाश तत्त्व में दृढ़ता से प्रतिष्ठित होकर ओषधि संज्ञक पदार्थों में अपने क्षत्ररूप गुणों के द्वारा क्षत्रिय पदार्थों को भी निरन्तर प्रतिष्ठित और दृढ़ वनाये रखते हैं।।

पूर्वखण्ड में संगमनीय क्षत्र संज्ञक पदार्थों में से उदुम्बर ऊर्जा आदि के निष्क्रमण तथा उनकी पुनः प्राप्ति की जो चर्चा की गयी है, उस विषय में पुनः लिखते हैं कि उपर्युक्त अभिषेक साधन (दधि, मधु आदि) रूपी सभी पदार्थ भी संयोजनीय क्षत्र संज्ञक परमाणुओं में से जो भी पदार्थ निष्क्रमित हो जाते हैं, उनको पुनः उन क्षत्रिय संज्ञक परमाणुओं में समृद्ध और व्याप्त करते हैं। इससे उनका क्षत्रियरूप यथावत् वना रहकर अपनी सभी क्रियाओं को यथावत् सम्पादित करने में सक्षम वना रहता है।।

{कंसः = कामयते परपदार्थानिति कंसः, तैजसद्रव्यं पात्रं तस्करो वा (उ.को.३.६२)} क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों की पूर्वोक्त अभिसेचन क्रिया में सुरा संज्ञक पदार्थ तेजस्वी आकर्षक वलों से युक्त होकर अभिसेचनीय क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों के आकर्षक और प्रतिकर्षक वलों को समृद्ध करते हुए उनमें सव ओर से प्रतिष्ठित हो जाते हैं। उस समय पूर्व में अनेकत्र वर्णित मधुच्छन्दा ऋषि प्राण से पवमानः सोमदेवताक एवं गायत्री छन्दस्क-

स्वादि॑ष्ठया॒ मदि॑ष्ठया॒ पव॑स्व सोम॒ धार॑या। इन्द्रा॑य॒ पात॑वे सु॒तः।। (ऋ.९.१.१)

इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से देदीप्यमान सोमरूपी क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ सुरा संज्ञक पदार्थ एवं सोम रश्मियों एवं अति सक्रिय और संयोजनीय गुणों को धारण करके अपने इन्द्रत्व अर्थात् विशेष नियंत्रण सामर्थ्य को शुद्ध रूप में प्राप्त करने लगते हैं। इस कारण वे अनुकूलतापूर्वक अपने संपीडक वलों और आवश्यक गति को प्राप्त करते हैं।।+।।

इस उपर्युक्त छन्द रश्मि के पश्चात् उसके प्रभावों को अनुकूल और नियम्य वनाने हेतु एक अन्य छन्द रश्मि और उत्पन्न होती है, जो अगली कण्डिका के रूप में उद्धृत की गयी है। वह ऋचा इस प्रकार है-

"नाना हि वां देवहितं.....................विशन्ती।"

(यजु.१६.७) में यह ऋचा कुछ पाठभेद से निम्नानुसार विद्यमान है-

नाना हि वां देवहितः..................योनिमाविशन्ती।"

इसकी उत्पत्ति आभूति ऋषि अर्थात् विशेषरूप से नियंत्रक क्षमता सम्पन्न (हमारी दृष्टि मे प्राण, व्यान एवं सूत्रात्मा वायु रश्मियों का मिश्रण) प्राण रश्मिविशेष से होती है। इसका देवता सोम और छन्द भुरिक् त्रिष्टुप् है, जवकि इस ग्रंथ में वर्णित ऋचा का छन्द भुरिग् जगती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव को यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से पूर्वोक्त सुरा संज्ञक पदार्थ एवं सोम रश्मियां इस अन्तरिक्ष लोक में परस्पर संगत होकर विद्यमान नहीं होती हैं। उनके पृथक्-२ मार्ग होते हैं। उनके ये पृथक्-२ मार्ग विभिन्न प्राण रश्मियों द्वारा निर्धारित किये जाते हैं। सुरा संज्ञक वलवान् पदार्थ सोम संज्ञक रश्मियों से पृथक्-२ रहते हुए ही अपने आश्रयरूप क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों में प्रविष्ट होकर व्याप्त हो जाते हैं। विभिन्न रश्मियों वा कणों के एक ही स्थान में व्याप्त होते हुए भी उनके सदैव पृथक् रहने की प्रक्रिया का यह अनुपम उदाहरण है, क्योंकि इसमें सुरा और सोम संज्ञक दोनों ही पदार्थ एक ही क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ में प्रविष्ट होते हुए भी पृथक्-२ मार्ग एवं स्थान में ही गमन करते व व्याप्त होते हैं।।+।।+।।

वे क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ पूर्वोक्त सुरा संज्ञक सूक्ष्म पदार्थों को अवशोषित करके {रातिः = दानक्रिया (म.द.ऋ.भा.३.३०.७), वेगादीनां दानम् (म.द.ऋ.भा.१.३४.१)} जिन वेगादि और दानादि गुणों को प्रकाशित करते हैं अथवा उन परमाणुओं, जो उन क्षत्र संज्ञक परमाणुओं के क्षेत्र में विद्यमान होते हैं, को वे सुरा संज्ञक पदार्थ प्रदान करते हैं। इसके कारण वे परमाणु क्षत्रिय संज्ञक परमाणुओं के प्रति आकर्षण का भाव प्राप्त करते हैं और सुरा संज्ञक पदार्थ उन आकर्षणीय परमाणुओं में प्रतिष्ठित हो जाते हैं, जिससे वे क्षत्र संज्ञक परमाणु आदि पदार्थ भी उन आकर्षणीय परमाणुओं में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। इस प्रकार उन दोनों प्रकार के परमाणुओं का परस्पर संगम होता है। इस प्रकार की स्थितियां वनने पर उन केन्द्रीय भागों में विभिन्न परमाणुओं का परस्पर संगम होने लगता है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस खण्ड में जटिल वैदिक वैज्ञानिक पदों की बहुलता के कारण वर्तमान वैज्ञानिक भाषा में सार लिखना असम्भव है, क्योंकि उन पदों का वर्तमान वैज्ञानिक भाषा में कोई सामानार्थक शब्द विद्यमान प्रतीत नहीं होता। इस कारण इस खण्ड का सम्पूर्ण रहस्य जानने के लिए पाठक व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें। पुनरपि आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से कुछ गम्भीर रहस्य अवश्य प्रकट कर देना सहज है। वह इस प्रकार है- कि तारों के अन्दर नाभिकीय संलयन, चाहे वो Proton-Proton cycle के रूप में होता हो अथवा Carbon cycle के रूप में। दोनों ही रूप में नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया में Neutrino और Positrons दोनों की ही भूमिका होती है। इस अभिक्रिया में उत्पन्न Positrons नाभिक के अन्दर विद्यमान Electrons के साथ मिलकर ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। यह ऊर्जा नाभिकीय संलयन के लिए अनुकूलन उत्पन्न करती है। हमारे मत में Electrons सोम रश्मियों का संघनित रूप है और Neutrino सुरा रूप पदार्थों का रूप होता है। वर्तमान विज्ञान तारों में से इन दोनों ही प्रकार के कणों का निरन्तर उत्सर्जन स्वीकार करता है, जबकि कहीं भी किसी क्रिया में वह इन दोनों ही प्रकार के कणों का तारों के अन्दर, विशेषकर उनकी संलयन क्रियाओं में कोई भी उपयोग कदापि स्वीकार नहीं करता। हम यहाँ S.N.Ghoshal द्वारा दर्शाये हुए दोनों प्रकार के cycles, जो तारों के केन्द्र में हुआ करते हैं, नीचे उद्धृत कर रहे हैं-

Proton-Proton cycle:-

$$^1H+^1H \rightarrow ^2H+\beta^++\nu+0.42 \text{ Mev}$$
$$^1H+^2H \rightarrow ^3He+\gamma+5.5 \text{ Mev}$$
$$^3He+^3He \rightarrow ^4He+2^1H+12.8 \text{ Mev}$$
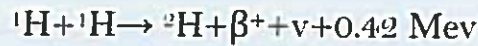
Two reactions each of (1) and (2), must occur for each reaction (3) to take place. When these are written out in detail and all the reactions are added we get

$$2^1H+2^1H+2^1H+2^2H+^3He+^3He$$
$$\rightarrow 2^2H+2\beta^++2\nu+2^3He+2\gamma+^4He+2^1H+24.64 \text{ Mev}$$
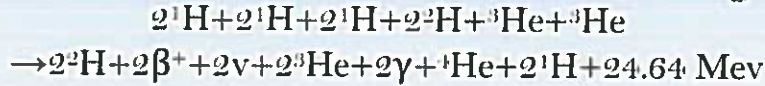
So the net result is

$$4^1H \rightarrow ^4He+2\beta^++2\nu+2\gamma+24.64\text{Mev}......$$
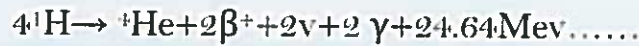
Carbon Cycles:-

This cycle was proposed by H.A.Bethe (1939) and comprises of the following reactions:

$$^{12}C+^1H \rightarrow ^{13}N+\gamma+1.95 \text{ Mev}$$
$$^{13}N \rightarrow ^{13}C+\beta^++\nu+2.22 \text{ MeV } (\tau=10 \text{ min})$$
$$^{13}C+^1H \rightarrow ^{14}N+\gamma+7.54 \text{ MeV}$$
$$^{14}N+^1H \rightarrow ^{15}O+\gamma+7.35 \text{ MeV}$$
$$^{15}O \rightarrow ^{15}N+\beta^++\nu+2.7 \text{ MeV } (\tau=2\text{min})$$
$$^{15}N+^1H \rightarrow ^{12}C+^4He+4.96 \text{ MeV}$$

The net result is

$$^{12}C+4^1H \rightarrow ^{12}C+^4He+2\beta^++2\nu+\gamma+26.72 \text{ MeV}$$
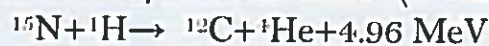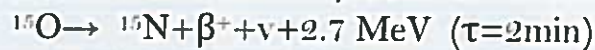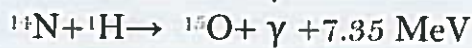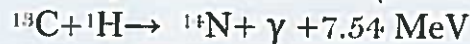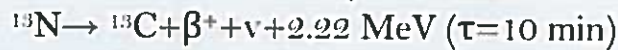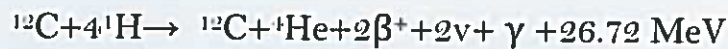
(From:- Atomic and Nuclear Physics- Vol. II. Page 698-699)

इन दोनों ही cycles में यह स्पष्ट दिखायी दे रहा है कि Positrons और Neutrino उत्सर्जन के पश्चात् पुनः ये संलयन क्रिया में भाग नहीं ले रहे परन्तु हमें यह प्रतीत होता है कि Positrons और Neutrino दोनों का ही तारों के बाहर पूर्णतया उत्सर्जन नहीं होता। Positrons का उत्सर्जन होता ही नहीं है। यदि ऐसा हो जाए तो सम्पूर्ण तारा केवल ऋणावेशित विशाल पिण्ड के रूप में परिवर्तित हो जाए, जबकि ऐसा कदापि सम्भव नहीं हैं। आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार भी नाभिकों का संलयन एक विशेष सीमा तक ही सम्भव होता है, जो प्रायः फेरी (Fe आयन) आयनों की उत्पत्ति के पश्चात् रुक जाता है। ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण तारे के पूर्णरूपेण ऋणावेशित विहीन हो जाने की कल्पना भी असम्भव है। उधर Neutrino, जो अपनी अत्यन्त तीक्ष्ण भेदन क्षमता के कारण पृथिवी जैसे ग्रहों को भी भेदकर विना किसी के साथ interact हुए पार निकल जाता है, वह भी तारों के केन्द्रीय भाग में बिना किसी interaction के सर्वथा वहिर्गत हो जाए, यह भी उचित प्रतीत नहीं होता। जो कण किसी अन्य कण से वियुक्त वा उत्सर्जित होता है, वह अवश्य ही ऐसे कणों के साथ संयुक्त वा उनके द्वारा अवशोषित होने योग्य भी होता है। इस कारण भले ही कुछ मात्रा में इनका उत्सर्जन तारों से होता है पुनरपि इनका अधिकांश भाग तारों के केन्द्र में विभिन्न Proton वा Neutrons से interact होता हुआ नाभिकीय संलयन की क्रिया को संतुलित रूप प्रदान करने में सहायक होता है, वैज्ञानिकों को इस विषय में गम्भीर अनुसांधान करना चाहिए। यह भी सम्भव है कि कुछ Neutrinos नाभिक के अन्दर उत्पन्न Positrons के साथ मिलकर Protons का निर्माण भी करते हों, जो पुनः संलयित होकर ऊर्जा को उत्पन्न करते हों। किसी Proton से Positrons और Neutrino दोनों के उत्सर्जन के विना Proton अथवा carbon cycle दोनों ही सम्पन्न नहीं हो सकते हैं। उधर Electrons व Positrons के मिलने से ऊर्जा के उत्पादन के विना संलयन क्रिया में व्यवधान आ सकता है, इस कारण ही ग्रन्थकार ने इस क्रिया

में सुरा और सोम दोनों पदार्थों की अनिवार्यता बतलायी है। किसी Proton से उपर्युक्त दोनों ही कणों के उत्सर्जन के लिए जो पदार्थ उत्तरदायी हैं, उनके विषय में कदाचित् आधुनिक विज्ञान मौन है। हमारे मत में इस क्रिया के लिए विभिन्न छन्द और प्राण रश्मियां उत्तरदायी होती हैं, जिनकी विवेचना इस ग्रन्थ में विस्तार से की गयी है। Proton से उत्सर्जित Neutrino कभी भी Electron के साथ संगत नहीं हो सकता। ऐसा संकेत इस व्याख्यान से मिलता है। यदि प्रोटोन से उत्सर्जित Neutrino का किसी प्रकार Electron से interaction हो जाए तो Electron विखण्डित हो सकता है। वैज्ञानिकों को इस पर भी गम्भीर शोध करना चाहिए।।

ॐ इति ३७.४ समाप्तः ॐ

अथ ३७.५ प्रारभ्यते

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. अथोदुम्बरशाखामभि प्रत्यवरोहत्यूर्वा अन्नाद्यमुदुम्बर ऊर्जमेव तदन्नाद्यमभि प्रत्यवरोहति।।
उपर्येवाऽऽसीनो भूमौ पादौ प्रतिष्ठाप्य प्रत्यवरोहमाह।।
प्रतितिष्ठामि द्यावापृथिव्योः, प्रतितिष्ठामि प्राणापानयोः, प्रतितिष्ठाम्यहोरात्रयोः, प्रतितिष्ठाम्यन्नपानयोः, प्रति ब्रह्मन्, प्रति क्षत्रे, प्रत्येषु त्रिषु लोकेषु तिष्ठामि।।
अन्ततः सर्वेणाऽऽत्मना प्रतितिष्ठति, सर्वस्मिन् ह वा एतस्मिन् प्रतितिष्ठत्युत्तरोत्तरिणीं ह श्रियमश्नुते,ऽश्नुते ह प्रजानामैश्वर्यमाधिपत्यं, य एवमेतेन पुनरभिषेकेणाभिषिक्तः क्षत्रियः प्रत्यवरोहति।।
एतेन प्रत्यवरोहेण प्रत्यवरूह्योपस्थं कृत्वा, प्राङासीनो नमो ब्रह्मणे नमो ब्रह्मणे नमो ब्रह्मण इति त्रिष्कृत्वो ब्रह्मणे नमस्कृत्य, वरं ददामि जित्या अभिजित्यै विजित्यै संजित्या इति वाचं विसृजते।।
स यन्नमो ब्रह्मणे नमो ब्रह्मणे नमो ब्रह्मण इति त्रिष्कृत्वो ब्रह्मणे नमस्करोति, ब्रह्मण एव तत्क्षत्रं वशमेति, तद्यत्र वै ब्रह्मणः क्षत्रं वशमेति, तद्राष्ट्रं समृद्धं, तद्वीरवदाहास्मिन् वीरो जायते।।
अथ यद्वरं ददामि, जित्या अभिजित्यै विजित्यै संजित्या इति वाचं विसृजते; एतद्वै वाचो जितं यद्वदामीत्याह; यदेव वाचो जिता३मु, तन्म इदमनु कर्म संतिष्ठाता इति।।
विसृज्य वाचमुपोत्थायाऽऽहवनीये समिधमभ्यादधाति।।
समिदसि सम्वेङ्क्ष्वेन्द्रियेण वीर्येण स्वाहेति।।
इन्द्रियेणैव तद्वीर्येणाऽऽत्मानमन्ततः समर्धयति।।
आधाय समिधं त्रीणि पदानि प्राङुदङ्ङभ्युत्क्रामति।।
क्लृप्तिरसि दिशां मयि देवेभ्यः कल्पत।
कल्पतां मे योगक्षेमोऽभयं मेऽस्तु।।
इत्यपराजितां दिशमुपतिष्ठते, जितस्यैवापुनः पराजयाय, तत्तदिती३ँ।।५।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रक्रिया को विस्तार देते हुए लिखते हैं कि पूर्वोक्त औदुम्बर आसन्दी क्षेत्र में विद्यमान क्षत्र संज्ञक पदार्थ आकाश तत्त्व में फैली हुई सूक्ष्म उदुम्बर नामक ऊर्जा रश्मियों की शक्तिशाली धाराओं के सम्मुख {प्रति = वीप्सायाम् (म.द.ऋ.भा.१.१६६.७), व्याप्तौ (म.द.य.भा.२०.३७)} बार-२ आते हुए उनसे व्याप्त होते रहते हैं। ये उदुम्बर रश्मियां संयोजक ऊर्जा का रूप होती हैं। इस कारण वे उन क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों को निरन्तर इन गुणों से युक्त करती रहती हैं। यद्यपि पूर्व में इन रश्मियों द्वारा क्षत्रिय पदार्थों को इन गुणों से युक्त करने की चर्चा की जा चुकी है, पुनरपि यहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि इन पदार्थों का उदुम्बर रश्मियों से मेल किस प्रकार होता है?।।

पुनः इसी विषय में लिखते हैं कि वे **क्षत्रिय** संज्ञक पदार्थ **औदुम्बरी आसन्दी** क्षेत्र में विद्यमान होकर उपर्युक्त क्रिया करने के लिए जब उस क्रिया के प्रारम्भ में भूमि अर्थात् आकाश में अपने मार्गों पर गमन करने वाले होते हैं, उस समय एक छन्द रश्मि को उत्पन्न करते हैं। इस छन्द रश्मि को अगली कण्डिका के रूप में उद्धृत किया है।।

इस कण्डिका में उपर्युक्तानुसार छन्द रश्मि को ही उद्धृत किया है, जो किसी भी वेद संहिता वा शाखा में उपलब्ध नहीं है। इसका छन्द ब्राह्मी विराट् पंक्ति है तथा देवता **'क्षत्रम्'** है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वे **क्षत्र** संज्ञक पदार्थ विद्युत् और आकाश, प्राण एवं अपान **{अहोरात्रे = के अहोरात्रे इति, बृहद्रथन्तरे इति (जै.ब्रा.२.४२४)}** बृहद् एवं रथन्तर संज्ञक रश्मियों, विभिन्न संयोज्य एवं अवशोष्य पदार्थों, विभिन्न **ब्रह्म** एवं अन्य **क्षत्र** संज्ञक पदार्थों के साथ-२ तीनों लोकों **{लोकाः = एता वै (भूर्भुवः स्वरिति) व्याहृतय इमे लोकाः (तै.ब्रा.२.२.४.३), छन्दांसि वै सर्वे लोकाः (जै.ब्रा.१.३३२)}** अर्थात् **'भूः', 'भुवः'** एवं **'स्वः'** रश्मियों, गायत्री, त्रिष्टुप् एवं जगती इन मुख्य छन्द रश्मियों में प्रतिष्ठित होता है।।

उपर्युक्त छन्द रश्मि की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं कि उपर्युक्त सभी पदार्थों में प्रतिष्ठित होता हुआ वह **क्षत्रिय** संज्ञक पदार्थ सम्पूर्ण रूप से केन्द्रीय भागस्थ पदार्थों में प्रतिष्ठित होने लगता है। उसकी इस क्रिया में सूत्रात्मा वायु रश्मियों का भी योगदान रहता है। वह इन सभी पदार्थों में प्रतिष्ठित होता हुआ इन सभी पदार्थों का आधार प्राप्त करता है। इसके कारण वह सभी प्रजारूप **वैश्य** पदार्थों का नियंत्रण और पालन करने में समर्थ होता है। इस प्रकार वह **क्षत्रिय** संज्ञक पदार्थ केन्द्रीय भागस्थ आकाश तत्त्व में व्याप्त होता हुआ **उदुम्बर** रश्मियों से अभिषिक्त होता रहता है।।

तदनन्तर वे क्षत्र संज्ञक परमाणु उपस्थ रूप धारण करते हैं। इस उपस्थ रूप के विषय मे महर्षि आश्वलायन का कथन है-

> **"......उपविशेत्समस्तजङ्घोरूररत्निभ्यां जानुभ्यां**
> **चोपस्थं कृत्वा यथा शकुनिरुत्पतिष्यन्।" (आश्व.श्रौ.६.५.४)**

इसका तात्पर्य यह है कि वे **क्षत्र** संज्ञक परमाणु अपने सम्मुख विद्यमान **ब्रह्मरूप** पदार्थों की ओर उड़ने वाले पक्षी की भाँति सम्पूर्ण बल से झुकते हुए **'नमो ब्रह्मणे'** इस दैवी पंक्ति छन्द रश्मि को तीन बार उत्पन्न करके **"वरं ददामि जित्या अभिजित्यै विजित्यै संजित्या"** इस साम्नी निचृद् बृहती अथवा आर्ची निचृद् गायत्री छन्द रश्मि को उन **ब्रह्मरूप** पदार्थों के ऊपर उत्सर्जित करते हैं। इन छन्द रश्मियों का प्रभाव अगली दो कण्डिकाओं में दर्शाया गया है।।

जब उपर्युक्त प्रक्रिया में **क्षत्रिय** संज्ञक पदार्थ **"नमो ब्रह्मणे"** इस छन्द रश्मि को तीन बार उत्पन्न करता है, इससे वह **ब्रह्म संज्ञक** पदार्थों की ओर उत्तरोत्तर झुकता चला जाता है और वह **ब्रह्म संज्ञक** पदार्थों के नियंत्रण में आ जाता है। जब कभी भी **क्षत्रिय** संज्ञक पदार्थ **ब्रह्म** वा **ब्राह्मण** संज्ञक पदार्थों के अधीन होता है, तब देदीप्यमान होता हुआ आदित्य लोक का केन्द्रीय भाग विभिन्न **क्षत्र** संज्ञक पदार्थों से समृद्ध होता है। उस समय वह **क्षत्र** संज्ञक पदार्थों से युक्त केन्द्रीय भाग सभी दस प्राथमिक प्राणों से भी समृद्ध होकर नाना प्रकार के बलवान् परमाणुओं, जो कंपाने वाले तीक्ष्ण बल से युक्त होते हैं, को प्रचुर मात्रा में उत्पन्न करता है।।

अब **"वरं ददामि जित्या.............।"** इस पूर्वोक्त छन्द रश्मि की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं कि इस छन्द रश्मि के द्वारा वह विभिन्न वाग् रश्मियों को नियंत्रित करता और विशेष गतिशील बनाता है। यहाँ ग्रन्थकार इस ऋचा में **"वदामि"** पद विद्यमान होने का संकेत करते हैं, जबकि इसमें **'वदामि'** पद विद्यमान नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि इस ऋचा का **'ददामि'** पद वर्णव्यत्यय से **"वदामि"** का प्रभाव भी दर्शाता है, जिसके कारण ही वह विभिन्न वाग् रश्मियों को नियंत्रित करने के साथ-२ अपने अनुकूल कर्मों में सम्यग् रूप से प्रतिष्ठित भी करता है, जिससे उन कर्मों का सम्यक् सम्पादन हो पाता है।।

इस प्रक्रिया के उपरान्त क्षत्र संज्ञक पदार्थ आहवनीय अग्नि अर्थात् आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग में उत्कृष्ट रूप से स्थापित होकर उसमें विभिन्न {समिधः = प्राणो वै समिधः (ऐ.२.४), प्राणा ह्येतः समिन्धते (श.६.२.३.४४)} समिद् रूप विभिन्न प्राण रश्मियों का विशिष्ट आधान करते हैं अर्थात् वे सभी प्राण रश्मियां एवं विभिन्न छन्द रश्मियों, जो ऊष्मा और प्रकाश को विशेषरूप से उत्पन्न करने में समर्थ होती हैं, का भी आधान करते हैं। उस समय "समिदसि सम्वेड्क्ष्वेन्द्रियेण वीर्येण स्वाहा" इस साम्नी भुरिगुष्णिक् अथवा प्राजापत्या निचृदनुष्टुप् छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है। इससे वे समिद् रूप छन्द व प्राण रश्मियां तीव्र तेज और वल से युक्त होकर क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों को अपने साथ संयुक्त करके उन्हें अपने वल और तेज से और भी अधिक समृद्ध करने लगती हैं और ऐसा करते हुए वे उन्हें अपने अन्दर ही प्रतिष्ठित कर लेती हैं।।+।।+।।

इस क्रिया के पश्चात् वे क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ सम्मुख विद्यमान परमाणु आदि पदार्थों की ओर पूर्वोत्तर अर्थात् ईशान दिशा में तीन प्रकार की गतियों से युक्त होकर गमन करते हैं। उस समय "क्लृप्तिरसि दिशां मयि.......योगक्षेमोऽभयं मेऽस्तु" इस अगली कण्डिका के रूप में उद्धृत ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसका छन्द स्वराड् गायत्री अथवा विराडुष्णिक् है, देवता 'क्षत्रम्' है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से क्षत्रिय संज्ञक परमाणुओं के अन्दर विभिन्न प्राण एवं छन्द रश्मियां आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग की विभिन्न दिशाओं को निर्धारित करने में सहयोग प्रदान करती हैं। इसके साथ ही वे क्षत्रिय संज्ञक परमाणुओं को सुरक्षित और समृद्ध भी वनाती हैं, जिसके कारण वे निष्कम्प और निर्विघ्न होकर अपनी सभी क्रियाओं को करने में सक्षम होते हैं। यहाँ 'निष्कम्प' का तात्पर्य 'अनावश्यक कम्पन से रहित होना मात्र' है।।+।।

उपरिवर्णित ईशानी दिशा को अपराजिता कहा जाता है, जिसकी ओर वे क्षत्रिय संज्ञक परमाणु उन्मुख होते हुए वताये गये हैं। यद्यपि वे क्षत्रिय संज्ञक परमाणु इस अपराजिता ईशानी दिशा में पहले से विद्यमान वा प्रवाहित हो रहे होते हैं, पुनरपि यहाँ उनका पुनः प्रवाहित वा उन्मुख होना इस वात को दर्शाता है कि इस दिशा की ओर पुनः उन्मुख होकर उपर्युक्त छन्द रश्मि के प्रभाव से वे परमाणु आदि पदार्थ स्वयं अपराजेय हो जाते हैं। इस दिशा को अपराजिता इसलिए कहते हैं, क्योंकि इस दिशा में विद्यमान विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ तीव्र वलों से युक्त होकर असुरादि वाधक रश्मियों के द्वारा नियंत्रण में नहीं आ पाते। इस दिशा के विषय में ग्रन्थकार ने पूर्व में भी लिखा है-

"त उदीच्यां प्राच्यां दिश्ययतन्त (देवासुराः) ते ततो न पराजयन्त सैषा दिगपराजिता।" (ऐ.१.१४)

इसी विषय में एक अन्य ऋषि का भी कथन है-

"अपराजिता नामासि ब्रह्मणा विष्टा...............मरुतस्ते गोप्तारो वायुरधिपतिः" (मै.२.८.१४)

इसका तात्पर्य यह है कि क्षत्र संज्ञक परमाणुओं की यह दिशा विभिन्न प्राण एवं मरुदादि रश्मियों के द्वारा अपराजिता रूप प्राप्त करती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- जब दो नाभिकों के संलयन की क्रिया होती है, उस समय एक नाभिक कुछ सूक्ष्म छन्द रश्मियों को उत्पन्न करता हुआ दूसरे नाभिक की ओर इस प्रकार वलपूर्वक उन्मुख होता है, जैसे कोई पक्षी उड़ने के लिए शरीर को सिकोड़कर पूरे बल से तत्पर होता है। उसके पश्चात् वह नाभिक दूसरे नाभिक की ईशान दिशा (उत्तर-पूर्व) में झुकता हुआ तीन प्रकार की गतियों से युक्त होकर गमन करने लगता है। यहाँ ईशान दिशा न लेकर उत्तर अथवा पूर्व इन दोनों दिशाओं का भी ग्रहण किया जा सकता है। इस दिशा में प्राणादि रश्मियों की विशेष समृद्धता होने के कारण डार्क एनर्जी आदि के प्रभाव से विशेष सुरक्षित क्षेत्र विद्यमान होता है। इस प्रक्रिया में अनेक सूक्ष्म छन्द रश्मियां भी उत्पन्न होती हैं, जिनके विषय में तथा इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को समझने के लिए पाठक व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।
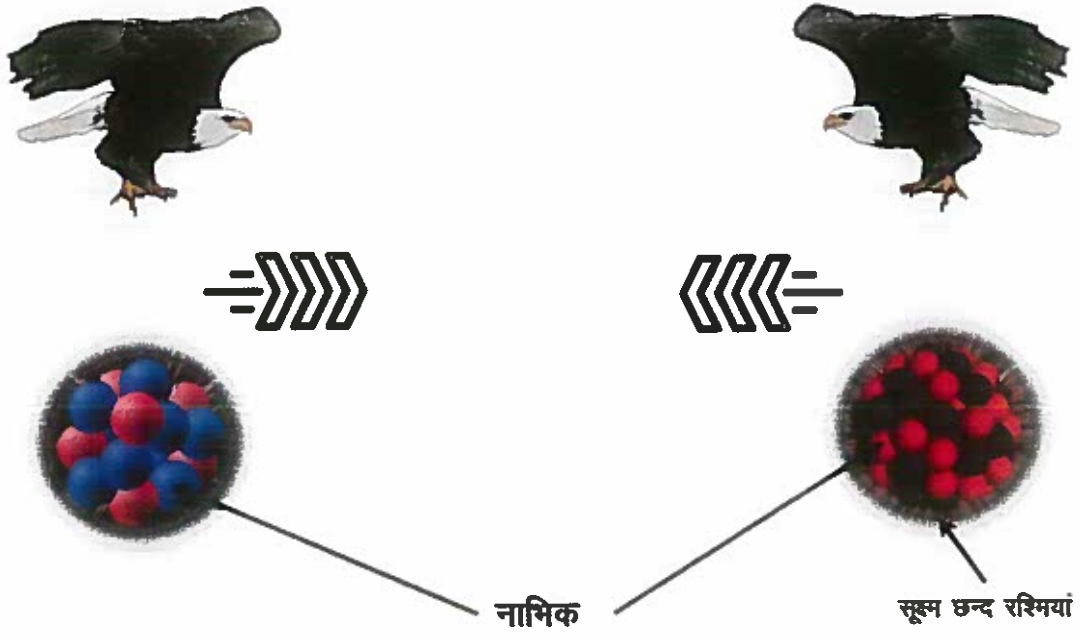
चित्र ३७.२ दो नाभिकों का संलयन की क्रिया हेतु एक दूसरे ओर पक्षी की भाँति उन्मुख होना

∞ इति ३७.५ समाप्तः ∞

ॐ अथ ३७.६ प्रारभ्यते ॐ

**** तमसो मा ज्योतिर्गमय ****

१. देवासुरा वा एषु लोकेषु संयेतिरे; त एतस्यां प्राच्यां दिशि येतिरे; तांस्ततोऽसुरा अजयंस्ते दक्षिणस्यां दिशि येतिरे; तांस्ततोऽसुरा अजयंस्ते प्रतीच्यां दिशि येतिरे; तांस्ततोऽसुरा अजयंस्त उदीच्यां दिशि येतिरे; तांस्ततोऽसुरा अजयंस्त एतस्मिन्नवान्तरदेशे येतिरे; य एष प्राङुदङ् ते ह ततो जिग्युः।।
तं यदि क्षत्रिय उपधावेत् सेनयोः समायत्योस्तथा मे कुरु, यथाऽहमिमां सेनां जयानीति; स यदि तथेति ब्रूयाद्, वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया इत्यस्य रथोपस्थमभिमृश्याथैनं ब्रूयात्।।
आतिष्ठस्वैतां ते दिशमभिमुखः सन्नद्धो रथोऽभिप्रवर्ततां, स उदङ् स प्रत्यङ् स दक्षिणा, स प्राङ् सोऽस्यमित्रमिति।।
अभीवर्तेन हविषेत्येवैनमावर्तयेदथैनमन्वीक्षेताप्रतिरथेन शासेन सौपर्णेनेति।।
जयति ह तां सेनाम्।।

व्याख्यानम्- इस कण्डिका का व्याख्यान खण्ड १.१४ की "देवासुरा वा एषु लोकेषु......।" कण्डिका के समान विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं। हम इसका यहाँ व्याख्यान करके विषय का पिष्टपेषण नहीं करना चाहते।।

जव दो प्रकार के विकिरण समूहों के मध्य संघर्ष होता है (वह संघर्ष दो क्षत्र संज्ञक पदार्थों के मध्य भी हो सकता है अथवा देव और असुर नामक पदार्थों के मध्य भी हो सकता है), उस समय दोनों संघर्षरत विकिरण समूहों में से कोई क्षत्रिय संज्ञक परमाणु पूर्ववर्णित अभिषिक्त हुए तेजस्वी क्षत्रिय संज्ञक परमाणु के पास ईशानी दिशा से निकले, तव वह अभिषिक्त क्षत्रिय संज्ञक परमाणु निकट आये परमाणु की वाहक प्राण रश्मियों को स्पर्श करते हुए वहाँ विद्यमान गर्ग ऋषिरूपी प्राण रश्मियों, जो विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों को निगलने अर्थात् अवशोषित करने के गुणों से विशेष युक्त होती हैं, को प्रेरित करके रथदेवताक एवं भुरिक् पंक्ति छन्दस्क -

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः।
गोभिः सन्नद्धो असि वीळयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि।।२६।। (ऋ.६.४७.२६)

को उत्पन्न करता है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से निकट आये क्षत्रिय संज्ञक परमाणु की वाहक रमणीय प्राण रश्मियां, दोनों परमाणुओं के मध्य व्याप्त और संगत होने लगती हैं। इसके अन्य प्रभाव से {वीड्वङ्गः = वीळू नि बलिष्ठान्यङ्गानि यस्य सः (म.द.भा.)} विभिन्न रश्मियों के पालक वे परमाणु उत्तम वलवती प्राण रश्मियों को विभिन्न छन्द रश्मियों के साथ संगत करके परस्पर दृढ़ता से निकट आते व प्रकाशित होते हुए संगत होने लगते हैं। उस समय वे सभी वाधक रश्मियों को नियन्त्रित कर चुके होते हैं। उस समय निकट आये हुए परमाणु विभिन्न वलवती रश्मियों के साथ दृढ़ता से सन्नद्ध होकर अभिषिक्त परमाणु के समान तेजस्वी एवं दृढ़ होकर नियन्त्रण क्षमता से सम्पन्न हो जाते हैं। उस समय वह अभिषिक्त परमाणु अगली कण्डिका के रूप में उद्धृत छन्द रश्मि को उत्पन्न करता है।।

इस कण्डिका के रूप में उद्धृत छन्द रश्मि स्वराड् बृहती छन्दस्क तथा रथदेवताक है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से ईशानी दिशा में स्थित निकटस्थ परमाणु उसी दिशा में बढ़ता हुआ उस कण के चारों ओर चक्कर लगाने हेतु पहले उत्तर, फिर पश्चिम तदुपरान्त दक्षिण एवं उसके पश्चात् पूर्व दिशा में बढ़ता हुआ चक्राकार घूमने लगता है और ऐसा करते हुए वह मार्ग में विद्यमान सूक्ष्म बाधक असुर रश्मियों पर प्रहार करता है। इससे संकेत मिलता है कि **कोई भी दो परमाणु सीधी रेखा में गमन करते हुए परस्पर संगत नहीं होते हैं**। इसके साथ ही उस समय अनेक छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जो अगली कण्डिका में वर्णित हैं।।

इस क्रम में सर्वप्रथम अभीवर्त ऋषि {अभीवर्तः = वृषा वा एष रेतोधा यदभीवर्त्तः (तां.४.३.८), संवत्सरो वाऽऽभीवर्त्तः सविथंशस्तस्य द्वादशमासाः सप्तर्त्तवः संवत्सर एवाभीवर्त्तः (श.८.४.१.१५)} अर्थात् विभिन्न मास रश्मियों से राज्ञः स्तुति-देवताक ऋ.१०.१७४ सूक्त की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) अभीवर्तेन हविषा येनेन्द्रो अभिवावृते। तेनास्मान्ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्तय।।१।।

इसका छन्द निचृदनुष्टुप् है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से राजन्य क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थ विशेषरूप से तेजस्वी और बलवान् होते हैं। अन्य प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियां मास रश्मियों की हवि के साथ उन क्षत्रिय परमाणुओं को आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग को समृद्ध करने के लिए इन्द्र तत्त्व के द्वारा सब ओर से समृद्ध करती हैं।

(२) अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः। अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो न इरस्यति।।२।।

छन्द विराडनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव को यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से क्षत्रिय संज्ञक परमाणु अन्य क्षत्रिय परमाणुओं की ओर जाते हुए असुर रश्मियों के बाधक समूहों पर आक्रमण करके उन्हें क्षीण व नियंत्रित करते हैं।

(३) अभि त्वा देवः सवि॒ताभि सोमो अवीवृतत्। अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि।।३।।

छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वे मास रश्मियां दोनों क्षत्रिय परमाणुओं के मध्य विद्युदग्नि रूपी सविता और सोम रश्मियों की ओर पुनः-२ आकर्षित होती हुई सभी आसुर रश्मियों को नियंत्रित करने में सहयोग करती हैं।

(४) येनेन्द्रो हविषा कृत्व्यभवद् द्युम्न्युत्तमः। इदं तदक्रि देवा असपत्नः किलाभुवम्।।४।।

छन्द पादनिचृदनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से उन मास रश्मियों के द्वारा वे क्षत्रिय परमाणु आसुरी रश्मियों को नियंत्रित करके उत्तम क्रिया और तेज से युक्त होते हैं।

(५) असपत्नः सपत्नहाभिराष्ट्रो विषासहिः। यथाहमेषां भूतानां विराजानि जनस्य च।।५।।

छन्द निचृदनुष्टुप्, दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वे क्षत्रिय परमाणु आसुरी रश्मियों को नष्ट व नियंत्रित करके विशेष बल और क्रियाओं से युक्त होकर विभिन्न वैश्य संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों को प्रकाशित और अभिभूत करते हैं।

इन पांचों छन्द रश्मियों से प्रेरित होकर क्षत्रिय परमाणु दूसरे क्षत्रिय परमाणुओं के चारों ओर पूर्वोक्त प्रकार से परिक्रमण करने लगते हैं। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"अथैनमन्वीक्षेताप्रतिरथशाससौपर्णैः" (आश्व.गृह्य.३.११.१३)।

इस पर टीका करते हुए आचार्य नारायण का कथन है-

'एनं राजानमन्वीक्षेतैतैः सूक्तैः। 'आशुः शिशानः' इति सूक्तमप्रतिरथम्'' शास इत्थेति' सूक्तं शासः।

इसी विषय में पुनः महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"प्रधारयन्तु मधुनो घृतस्येत्येतत्सौपर्णम्" (आश्व.गृह्य.३.११.१४)।

इस पर टीका करते हुए आचार्य नारायण का कथन है-

"एतत्सूक्तं सौपर्णं भवति। नान्यत्।"

इन वचनों से संकेत मिलता है कि उपर्युक्त सूक्त के साथ-२ 'अप्रतिरथः' 'शासः' एवं 'सौपर्णः' संज्ञक तीन सूक्तरूप रश्मिसमूहों की उत्पत्ति भी होती है। इनमें पहले सूक्त ऋ.१०.१०३, की ऐन्द्रः अप्रतिरथः ऋषि अर्थात् उन क्षत्रिय संज्ञक परमाणुओं को अनुकूलता से वहन करने वाली सूक्ष्म ऐन्द्री गुणों से युक्त प्राण रश्मियों से उत्पत्ति होती है। इनके देवता और छन्द निम्न प्रकार से हैं एवं दैवत, छान्दस प्रभाव यथावत् समझ लें।

देवता- १-३,५-११ (इन्द्रः), ४ (बृहस्पतिः), १२ (अप्वा), १३ इन्द्रो मरुतो वा।

छन्दः- १,३-५,६ (त्रिष्टुप्), २ (स्वराट् त्रिष्टुप्), ६ (भूरिक् त्रिष्टुप्), ७,११, (निचृत् त्रिष्टुप्), ८,१०,१२ (विराट् त्रिष्टुप्), १३ (विराडनुष्टुप्)।

इनकी उत्पत्ति क्रमशः निम्नानुसार होती है-

(१) आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः॥१॥

इसके प्रभाव से क्षत्रिय संज्ञक परमाणुओं के मध्य कार्यरत इन्द्रतत्त्व किंवा वे परमाणु इन्द्ररूप होकर आशुगामी तीक्ष्ण वलों से युक्त कम्पायमान होते हुए एक-दूसरे की क्षुब्ध रश्मियों को शीघ्रता से ग्रहण करते हुए ध्वनि उत्पन्न करके अतिसक्रिय और असुरादि रश्मियों को अनेक प्रकार से कंपाते हुए नियंत्रित करने में समर्थ होते हैं।

(२) संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा॥२॥

इसके प्रभाव से उन इन्द्ररूप उपर्युक्त प्रकार के कणों वा रश्मियों से प्रेरित होकर उनके परितः विद्यमान विभिन्न आशुगामिनी मरुद् रश्मियां असुर रश्मियों पर प्रहार करती हैं।

(३) स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन।
संसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता॥३॥

इसके प्रभाव से वे क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ खण्ड ७.१६ में वर्णित अपने आयुध वा साधनों के द्वारा असुर रश्मियों के समूहों को नष्ट वा नियंत्रित करते हैं। वे विभिन्न सोम रश्मियों को अवशोषित करके नाना प्रकार के धारक बलों को प्राप्त कर नवीन पदार्थों का सृजन करते हैं।

(४) बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम्॥४॥

इसके प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियां {दीयति गतिकर्मा (निघं.२.१४)} क्षत्रिय परमाणुओं की वाहक प्राण रश्मियों के साथ संगत होकर गमन करती हुई प्रतिकर्षक वा विध्वंसक रश्मियों को नष्ट वा नियंत्रित करके उन क्षत्रिय परमाणुओं को सुरक्षा प्रदान करती हैं।

(५) बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः।

अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित्॥५॥

इसके प्रभाव से इन्द्रतत्त्व के रूप को प्राप्त वे क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थ प्रतिरोधक बलों एवं वेग आदि गुणों में दृढ़ता से स्थिर रहकर अपने चारों ओर विद्यमान असुरादि रश्मियों को कंपाते हुए नाना छन्द रश्मियों से युक्त होकर अपनी क्रियाओं को दृढ़ता से सम्पन्न करते हैं।

(६) गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा।
इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम्॥६॥

इसके प्रभाव से {गोत्रः = मेघनाम (निघं.१.१०)। अज्म = संग्रामनाम (निघं.२.१७), गृहनाम (निघं.३.४)} समानरूप से उत्पन्न विभिन्न क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ इन्द्ररूप को प्राप्त करके अपनी बाहुरूप वज्र रश्मियों के द्वारा असुरादि रश्मि समूहों के साथ संग्राम करते हुए उनको कंपाते व नष्ट करते हैं।

(७) अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः।
दुश्च्यवनः पृतनाषाळयुध्योऽ३ऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु॥७॥

इसके प्रभाव से अनेक प्रकार की दीप्तियों से युक्त इन्द्ररूप क्षत्रिय पदार्थ अपने अच्युत बलों के द्वारा असुरादि रश्मिसमूहों को नष्ट करके विभिन्न क्षत्रिय वा वैश्य आदि पदार्थों की रक्षा करता है॥

(८) इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम्॥८॥

इसके प्रभाव से प्राणापानरूपी बृहस्पति रश्मियां सूक्ष्म असुर रश्मियों को विदीर्ण करके विभिन्न प्रेरक मरुद् रश्मियों के साथ आगे बढ़ती हुई विभिन्न पदार्थों को अपने बलों के द्वारा संगत करती हैं।

(९) इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम्।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात्॥९॥

इसके प्रभाव से वे इन्द्ररूप क्षत्रिय पदार्थ तेज और बन्धक बलों, महातेजस्वी प्राथमिक प्राण रश्मियों से युक्त होकर अनेक प्रकार की कमनीय और जयशील मरुद् रश्मियों के द्वारा उग्र बल और घोषों से युक्त होता है।

(१०) उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनांसि।
उद् वृत्रहन्वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः॥१०॥

इसके प्रभाव से वह इन्द्ररूप क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ अपने आयुधरूप साधनों को संदीप्त वा तीक्ष्ण करके विभिन्न परमाणुओं के बल और तेज को उन्नत कर उन्हें ऊर्ध्वगति प्रदान करता हुआ घोष करता है।

(११) अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु॥११॥

इसके प्रभाव से {ध्वजः = (ध्वज गतौ)} वह इन्द्र गति करते हुए विभिन्न परमाणुओं को अपनी वज्र रश्मियों से नियंत्रित करके उन्हें नाना प्रकार की रश्मियों से युक्त करके असुरादि पदार्थों से रक्षा करता हुआ निरन्तर अग्रगामी बनाता है।

(१२) अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम्।।१२।।

इसके प्रभाव से {अप्वा = अप्वा यदेनया विद्धोऽपवीयते व्याधिर्वा भयं वा (नि.६.१२)} वह इन्द्रतत्त्व विभिन्न परमाणुओं को अनावश्यक कम्पनों से मुक्त करता हुआ बाधक पदार्थों को विक्षुब्ध करके निष्क्रिय वा निराकृत करता है। इससे आदित्य लोकों के केन्द्रों में तीव्र ताप उत्पन्न होकर {अन्धः = मन्त्रपूतस्य वाचा स्तुतस्य (नि.१३.६), अहर्वा अन्धः (तां.१२.३.३), अन्नं वा अन्धः (जै.ब्रा.१.३०३)} अमित्र अर्थात् आकर्षण बलहीन पदार्थ भी संयोजक गुणों से युक्त होने लगते हैं।

(१३) प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ।।१३।।

इसके प्रभाव से पूर्वोक्त इन्द्र तत्त्व आशुगामी मरुद् रश्मियों के द्वारा निरन्तर प्रेरित होता हुआ विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को आश्रय प्रदान करके सुरक्षा और संबल प्रदान करता है।

यह सूक्तरूप रश्मिसमूह 'अप्रतिरथ' सूक्त कहलाता है। इसकी उत्पत्ति के पश्चात् भारद्वाज शास ऋषि अर्थात् विशेष नियंत्रक प्राण रश्मियां, जो हमारे मत में प्राण और अपान का संयुक्त रूप हो सकती हैं, से इन्द्रदेवताक ऋ.१०.१५२ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) शास इत्था महाँ अस्यमित्रखादो अद्भुतः। न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदा चन।।१।।

छन्द निचृदनुष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् {इत्था = सत्यनाम (निघं.३.१०)} अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व महान् और नित्य नियंत्रक होकर अद्भुत रूप से बाधक पदार्थों को नष्ट करके विभिन्न देव परमाणुओं की निरन्तर रक्षा करता है।

(२) स्वस्तिदा विशस्पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी। वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः।।२।।

छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्ररूपी क्षत्रिय पदार्थ असुर नाशक और विविध बलवर्धक सोम रश्मियों का अवशोषण करते हुए वैश्य संज्ञक पदार्थों का अग्रगामी होकर उन्हें निरापद मार्ग प्रदान करता है।

(३) वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज। वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः।।३।।

छन्द अनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र विभिन्न आच्छादक बाधक और भेदक पदार्थों को नष्ट करके संयोगादि प्रक्रियाओं को विशेषरूप से संरक्षित करता है। वह बाधक असुर रश्मियों के विध्वंसक बलों को क्षीण कर देता है।

(४) वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः। यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः।।४।।

छन्द निचृदनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र आक्रमणकारिणी असुर रश्मियों पर प्रहार करके उन्हें आदित्य लोकों के बाहर तमोयुक्त अन्तरिक्ष में धकेल देता है।

(५) अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम्। वि मन्योः शर्म यच्छ वरीयो यवया वधम्।।५।।

छन्द विराडनुष्टुप्। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र अपने प्रहार से

वाधक असुरादि रश्मियों को नष्ट वा निराकृत करके उनके स्थान पर विभिन्न देव रश्मियों को व्याप्त करता है।

यह सूक्त **'शास'** कहलाता है। इसके पश्चात् **सौपर्ण संज्ञक ऋ.८.५६** सूक्त की उत्पत्ति होती है, जिसके विषय में ५.१५.१ द्रष्टव्य है।

इस प्रकार इन चारों सूक्त रूप रश्मिसमूहों के द्वारा ईशान दिशा में विद्यमान **क्षत्रिय** परमाणु अपने निकटस्थ **क्षत्रिय** परमाणु को अपनी ओर आकृष्ट करता है। इसके कारण वह आकर्षणीय परमाणु विभिन्न वाधक रश्मिसमूहों को नियंत्रित करके संयोगादि क्रिया के लिए सक्षम होता है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- नाभिकीय संलयन के समय किसी नाभिक की ईशान दिशा की ओर स्थित अन्य नाभिक को आकर्षित करने के लिए १२ त्रिष्टुप्, ११ अनुष्टुप् एवं ७ जगती छन्द रश्मियां चार समूहों में उत्पन्न होती हैं। इनके अतिरिक्त १ पंक्ति छन्द रश्मि और उत्पन्न होती है। इनके प्रभाव से ईशान दिशा में स्थित नाभिक डार्क एनर्जी की सभी सूक्ष्म रश्मियों के दुष्प्रभाव से मुक्त होकर आकर्षित करने वाले नाभिक की ओर बढ़ता हुआ उसके चारों ओर चक्राकार Anti-clockwise घूमने लगता है। इस घूमते हुए नाभिक को आकर्षित करने वाला अन्य नाभिक प्रबल विद्युत् चुम्बकीय बल के द्वारा आकर्षित करता है। इस क्रिया में ये नाभिक सूक्ष्म ध्वनि तरंगें भी उत्पन्न करते हैं। दोनों नाभिकों से उत्पन्न संयुक्त नाभिक भी डार्क एनर्जी से पृथक् रहता हुआ तारे के केन्द्र बिन्दु की ओर अभिमुख होकर गमन करने लगता है। इस प्रकार ये नवनिर्मित नाभिक उस केन्द्रीय भाग में अन्य ऐसे ही नाभिकों के पास प्रतिष्ठापित होते चले जाते हैं और नाभिकीय संलयन की क्रिया उनके बाहरी क्षेत्र में यथावत् होती रहती है। ध्यातव्य है कि **जब कोई भी दो कण परस्पर संयुक्त होते हैं, तब वे सहसा सरल रेखा में एक-दूसरे की ओर गमन करते हुए संयुक्त नहीं होते हैं,** बल्कि एक कण, विशेषकर धनावेशित कण अनेक प्रकार की छन्द व प्राण रश्मियों को उत्सर्जित करता हुआ उदासीन कण को अपनी ओर आकर्षित करता है। तारे के अन्दर Proton Cycle में proton, neutron को आकर्षित करता है और Neutron, proton की पूर्वोत्तर दिशा में स्थित होता है। Neutron इन छन्द रश्मियों के प्रभाव से proton की ओर आकर्षित होता हुआ पहले उसके चारों ओर Anti-clockwise चक्कर लगाता है, उसके बाद ही पूर्वोत्तर दिशा से संयुक्त होता है। हम इस ग्रन्थ के खण्ड १.२ में विपरीत आवेशयुक्त कणों के आकर्षण एवं समान आवेशयुक्त कणों के प्रतिकर्षण बलों की कार्यप्रणाली को समझा चुके हैं, जो विद्युत् चुम्बकीय बलों के रूप में होती है। यहाँ **नाभिकीय संलयन के लिए धनावेशित एवं उदासीन कणों के मध्य संलयन की कार्यप्रणाली स्पष्टतः भिन्न दिखायी दे रही है। इस गम्भीर वैज्ञानिक रहस्य से वर्तमान विज्ञान प्रायः अनभिज्ञ है।** इसके विशेष परिज्ञान के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

चित्र ३७.३

चित्र ३७.४ तारे के अन्दर Proton Cycle में proton, neutron का संयोग

२. यद्यु वा एनमुपधावेत् सङ्ग्रामं संयतिष्यमाणस्तथा मे कुरु यथाऽहमिमं सङ्ग्रामं

सञ्जयानीत्येतस्यामेवैनं दिशि यातयेज्जयति ह तं सङ्ग्रामम्।।
यद्यु वा एनमुपधावेद् राष्ट्रादपरुध्यमानस्तथा मे कुरु यथाऽहमिदं राष्ट्रं पुनरवगच्छानीत्येतामेवैनं दिशमुपनिष्क्रमयेत्तथा ह राष्ट्रं पुनरवगच्छति।।
उपस्थायामित्राणां व्यपनुत्तिं ब्रुवन् गृहानभ्येत्यप प्राच इन्द्र विश्वाँ अमित्रानिति सर्वतो हास्मा अनमित्रमभयं भवत्युत्तरोत्तरिणीं ह श्रियमश्नुतेऽश्नुते ह प्रजानामैश्वर्यमाधिपत्यं, य एवमेतामामित्राणां व्यपनुत्तिं ब्रुवन् गृहानभ्येति।।
एत्य गृहान् पश्चात् गृह्यस्याग्नेरुपविष्टायान्वारब्धाय ऋत्विगन्ततः कंसेनं चतुर्गृहीतास्तिस्र आज्याहुतीरैन्द्रीः प्रपदं जुहोत्यनार्त्या अरिष्ट्या अज्यान्या अभयाय।।६।।

व्याख्यानम्- जब दो क्षत्र संज्ञक परमाणुओं में संघर्ष हो रहा होता है और उनके निकट कहीं पूर्वोक्त अभिषिक्त क्षत्र परमाणु विद्यमान हो और संघर्ष करते हुए परमाणुओं में से कोई एक परमाणु उस अभिषिक्त क्षत्र परमाणु के निकट आवे, तो वह अभिषिक्त परमाणु उस निकट आये हुए क्षत्र परमाणु को अपनी ही दिशा में ले आता है अर्थात् अपनी ही ओर आकर्षित करते हुए ईशान दिशा की ओर ले आता है। इससे वह क्षत्र परमाणु अपने साथ संघर्ष कर रहे दूसरे परमाणु पर विजय प्राप्त करने में समर्थ होता है अर्थात् उसके बलों को निष्प्रभावी बना देता है।।

यदि कोई क्षत्रिय परमाणु आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग से किसी प्रकार बहिर्गत होने लगे और वहाँ अभिषिक्त क्षत्रिय संज्ञक परमाणु विद्यमान हो, तो वे अभिषिक्त क्षत्रिय परमाणु उस जाते हुए परमाणु को अपनी ईशान दिशा की ओर निष्क्रमित करने के लिए बलपूर्वक प्रेरित करते हैं। इससे वह परमाणु उस ईशान दिशा की ओर बढ़ता हुआ पुनः केन्द्रीय भाग में लौट आता है। यहाँ लौट आने का तात्पर्य मात्र इतना ही है कि बहिर्गत होता हुआ परमाणु अपनी गति की दिशा को परिवर्तित करके उस केन्द्रीय भाग में ही बना रहता है।।

जब वह परमाणु लौट रहा होता है, तब उसे मार्ग में अनेक असुरादि रश्मियों के साथ संघर्ष करना होता है। कदाचित् इसी प्रकार की रश्मियों के कारण ही कुछ परमाणु बहिर्गत होने का प्रयास करते हैं किंवा बहिर्गत होने के लिए विवश होते हैं। ऐसे ही विवश परमाणु की उपर्युक्त कण्डिका में चर्चा की गयी है। जब ऐसा परमाणु अभिषिक्त क्षत्रिय परमाणु के द्वारा वापिस लौटाया जाता है और उसे पुनः असुर रश्मियों का सामना करना पड़ता है, तब

अप॒ प्राच॑ इन्द्र॒ विश्वाँ॑ अ॒मित्रा॒नपापा॑चो अभिभूते नुदस्व।
अपोदी॑चो॒ अप॑ शूराधरा॒च उ॒रौ यथा॒ तव॒ शर्म॒न्मदे॑म।।१।। (ऋ.१०.१३१.१)

छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है, जिसके विषय में ५.१५.२ द्रष्टव्य है। इस छन्द रश्मि के द्वारा वह परमाणु अपनी सभी दिशाओं से उन अमित्ररूपी सभी आसुरी रश्मियों को दूर करके निरापद मार्ग को प्राप्त करता है। इसके पश्चात् वह विभिन्न प्राणादि रश्मियों में प्रतिष्ठित व व्याप्त होता हुआ सभी वैश्य संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों को नियंत्रित और पुष्ट करने में समर्थ होता जाता है। जब तक वह परमाणु अपने संलयनीय बलों को प्राप्त नहीं कर पाता, तब तक इस छन्द रश्मि के द्वारा निरन्तर बल प्राप्त करते हुए बाधक असुरादि रश्मियों का निराकरण करता रहता है।।

इस प्रकार वह परमाणु अपने मूल स्थान और विभिन्न बलों को प्राप्त करता है। वह परमाणु गार्हपत्य अग्नि वाले भाग को स्पर्श करते हुए क्षेत्र में विचरण करता हुआ अनुकूलता से अपने संलयनीय

कार्यों को प्रारम्भ करने के लिए निकटस्थ आती हुई असुरादि रश्मियों को दूर करने के लिए विभिन्न ऋत्विग् रूपी छन्दों की कमनीय और तेजस्विनी रश्मियों के द्वारा अग्रिम खण्ड में वर्णित तीन ऐन्द्री छन्द रश्मियों का सानिध्य प्राप्त करता है। ये छन्द रश्मियां आज्य अर्थात् वज्ररूप में व्यवहार करती हैं तथा इनकी आवृत्ति भी चार-चार वार होती है। जव इन छन्द रश्मियों का इस परमाणु पर प्रक्षेपण होता है, तव ये छन्द रश्मियां प्रकृष्ट वेग से गति करती हुई उस परमाणु की दुर्वलता एवं आसुरी रश्मियों की प्रवलता को दूर करके {अज्यानिः = द्रव्यहानिराहित्यम् (सायणभाष्यम्)} उस परमाणु की किसी भी प्रकार की वाधा वा विचलन को दूर करती हैं, जिससे वह निरापद रूप से अपनी क्रियाओं को करने में समर्थ होता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्रीय भाग में भी कुछ मात्रा में डार्क एनर्जी विद्यमान रहती है, जिसके कारण विभिन्न नाभिकों में तीव्र हलचल होकर कोई-२ नाभिक केन्द्रीय भाग से बहिर्गमन भी करने लगते हैं। जब कोई नाभिक इस प्रकार बहिगर्मन करने लगता है, तव प्रवल विद्युत् चुम्बकीय वलों से युक्त अन्य नाभिक उन बाहर जाते हुए नाभिकों को केन्द्रीय भाग की सीमा में ही रोक लेते हैं। इसके पश्चात् वे उसे अन्दर की ओर ही आकर्षित करने लगते हैं। इस प्रक्रिया में भी उस लौटते हुए नाभिकों के ऊपर डार्क एनर्जी का कुछ प्रहार होने लगता है। वैसी स्थिति में एक त्रिष्टुप् छन्द रश्मि और तीन अन्य छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर डार्क एनर्जी के प्रभाव को निष्क्रिय करती हैं। ये तीनों छन्द रश्मियां एक साथ चार-चार बार आवृत्त होती हैं। तारे के केन्द्र में यदि दो नाभिकों के मध्य प्रतिकर्षण बल कार्य कर रहा होता है, तब कोई तीसरा नाभिक एक नाभिक को अपनी ओर आकृष्ट करके संलयित कर लेता है। इस प्रकार की क्रियाएं सम्पूर्ण केन्द्रीय भाग में लगातार चलती रहती हैं।।

चित्र ३७.५

ॐ इति ३७.६ समाप्तः ॐ

अथ ३७.७ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. पर्यूषु प्रधन्व वाजसातये परि वृत्रा, भूर्ब्रह्म प्राणममृतं प्रपद्यतेऽयमसौ शर्म वर्माभयं स्वस्तये। सह प्रजया सह पशुभिर्णि, सक्षणिर्द्विषस्तरध्या ऋणया न ईयसे स्वाहा।।
अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे सम, भुवो ब्रह्म प्राणममृतं प्रपद्यतेऽयमसौ शर्म वर्माभयं स्वस्तये। सह प्रजया सह पशुभि {भी}र्य राज्ये वाजाँ अभि पवमान प्रगाहसे स्वाहा।।
अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे श, स्वर्ब्रह्म प्राणममृतं प्रपद्यतेऽयमसौ शर्म वर्माभयं स्वस्तये। सह प्रजया सह पशुभिः, क्मना पयो गोजीरया रंहमाणः पुरं ध्या, स्वाहेति।।
अनार्तो ह वा अरिष्टोऽजीतः सर्वतो गुप्तस्त्रय्यै विद्यायै रूपेण सर्वा दिशोऽनु सञ्चरत्यैन्द्रे लोके प्रतिष्ठितो यस्मा एता ऋत्विगन्ततः कंसेन चतुर्गृहीतास्तिस्र आज्याहुतीरैन्द्रीः प्रपदं जुहोति।।

व्याख्यानम्- पूर्वखण्ड में जिन तीन छन्द रश्मियों की उत्पत्ति का संकेत किया गया है, उनमें से प्रथम छन्द रश्मि इस कण्डिका के रूप में उद्धृत की गयी है। इस ऋचा से कुछ समानता रखती हुई ऋ.९.११०.१ में पवमानः सोमदेवताक एवं निचृदनुष्टुप् ऋचा इस प्रकार विद्यमान है-

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः।
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईयसे। (ऋ.९.११०.१)

इस ऋचा में "भूर्ब्रह्म प्राणममृतं प्रपद्यतेऽयमसौ शर्म वर्माभयं स्वस्तये। सह प्रजया सह पशुभिः।" यह अन्य ऋचा, जो किसी ग्रन्थ में विद्यमान नहीं हैं, ऋग्वेद की ऋचा के 'वृत्राणि' पद के मध्य 'वृत्रा' एवं 'णि' के मध्य उत्पन्न होकर एक नई अतिच्छन्दा रश्मि को जन्म देती है। हमें इसका देवता इन्द्र प्रतीत होता है, जिसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अति तीक्ष्ण होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व उन क्षत्रिय संज्ञक परमाणुओं में विभिन्न संयोज्य छन्द रश्मियों और बलों का सम्यग् विभाजन करता हुआ विभिन्न असुर रश्मियों के मध्य प्रकृष्ट गति प्रदान करता है। वह 'भूः' छन्द रश्मि एवं प्राण नामक प्राण रश्मियों के द्वारा उन क्षत्रिय परमाणुओं को अक्षय बलों से युक्त करते हुए उन्हें अनुकूल एवं निरापद मार्ग प्रदान करके उत्पन्न नाना वैश्य संज्ञक परमाणुओं एवं छन्दादि रश्मियों से युक्त करता है। वह इन्द्र तत्त्व असुर रश्मियों की हिंसक प्रवृत्ति से उन परमाणुओं को पार लगाता हुआ संलयन क्षेत्ररूपी केन्द्रीय भाग में सम्यग् प्रकार से व्याप्त करता है। इस प्रकार आसुरी रश्मियों के दुष्प्रभावों को पूर्ण निष्प्रभावी बनाता है।।

इस ऋचा से कुछ समानता रखती हुई ऋ.९.११०.२ में

अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये। वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे। (ऋ.९.११०.२)

पवमान सोमदेवताक एवं निचृदनुष्टुप् छन्दस्क ऋचा विद्यमान है। इस ऋचा में "भुवो ब्रह्म प्राणममृतं

प्रपद्यतेऽयमसौ शर्म वर्माभयं स्वस्तये। सह प्रजया सह पशुभिः।।" यह अन्य ऋचा, जो किसी भी ग्रन्थ में विद्यमान नहीं है, ऋग्वेद की ऋचा के पद 'समर्य' के मध्य 'सम' तथा 'र्य' के मध्य उत्पन्न हो जाती है। इसके कारण एक संयुक्त अतिच्छन्दा रश्मि उत्पन्न हो जाती है। इसका देवता सोम होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से देदीप्यमान सोम रश्मियां विशेष ऊर्जायुक्त होती हैं। अन्य प्रभाव से वे अनुकूलतापूर्वक सम्पीडित व प्रेरित होती हुई क्षत्रिय परमाणुओं के व्यापक संघर्ष में 'भुवः' छन्द रश्मि एवं नित्य अपान रश्मियों से व्यापकरूप से युक्त होकर क्षत्रिय परमाणुओं को अनुकूल व सुरक्षित आश्रय प्रदान करके विभिन्न छन्द रश्मियों और वैश्य परमाणुओं के साथ संगत करके विभिन्न पदार्थों को विलोडित एवं गतिमान् कराती हैं। इससे संलयन आदि कर्म प्रकृष्टतापूर्वक सब ओर से होने लगते हैं।।

इस ऋचा से कुछ समानता रखती हुई ऋ.९.११०.३ में पवमानः सोमदेवताक एवं विराडनुष्टुप् छन्दस्क

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः। गोजीरया रंहमाणः पुरंध्या।।

ऋचा विद्यमान है। इस ऋचा के मध्य

"स्वर्ब्रह्म प्राणममृतं प्रपद्यतेऽयमसो शर्म वर्माभयं स्वस्तये। सह प्रजया सह पशुभिः।।"

यह ऋचा ऋग्वेद की ऋचा के 'शक्मना' पद के मध्य 'श' एवं 'क्मना' के बीच में प्रकट होती है। इससे एक संयुक्त अतिच्छन्दा रश्मि उत्पन्न हो जाती है, जिसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। ध्यातव्य है कि इसका देवता पवमान सोम है। इसके अन्य प्रभाव से उस केन्द्रीय भाग में विभिन्न शुद्ध सोम रश्मियां विशेष रूप से धारण की जाती हैं। वे सोम रश्मियां क्षत्रिय परमाणुओं को 'स्वः' छन्द रश्मियों एवं अविनाशी व्यान रश्मियों के द्वारा विशेषरूप से युक्त करके उन्हें सुरक्षित, निरापद, क्रियाशीलतायुक्त आश्रय प्रदान करती हैं, जिससे वे विभिन्न वैश्य परमाणु आदि पदार्थों के साथ संगत होकर {गोजिरया = गवां जीरया जीवनक्रियया, (म.द.य.भा.२२.१८)} विभिन्न छन्द रश्मियों की क्रियाशीलता के द्वारा विभिन्न कणों को धारण और गतिमान् करते हुए सम्यक् क्रियाओं से युक्त होते हैं। इससे आदित्य का वह केन्द्र सम्पूर्ण आदित्य के साथ-२ अन्य लोकों को भी धारण करने की क्षमता प्राप्त करता जाता है।।

इस प्रकार उपर्युक्त तीनों छन्द रश्मियां अतिच्छन्दारूप होने के कारण प्रकृष्ट वेग से संदीप्त तेज के साथ चार-चार बार आवृत्त होकर क्षत्रिय परमाणुओं के ऊपर प्रक्षिप्त होती हैं। उस समय ये छन्द रश्मियां संयुक्तरूप से ऐन्द्री प्रभाव दर्शाती हैं, जिससे इन्द्रतत्त्व विशेष बलशाली और तीक्ष्ण प्रकाशमान होता है। इस ऐन्द्री प्रभाव के कारण विभिन्न क्षत्रिय पदार्थ अनार्त्त अर्थात् विकृतियों से रहित असुरादि बाधक एवं हानिकारक रश्मियों को जीतने वाले भूरादि व्याहृतियों एवं प्राणापानव्यान रश्मियों के द्वारा सभी दिशाओं से सुरक्षित होकर इन्द्रतत्त्व प्रधान होकर केन्द्रीय भाग में संचरित और प्रतिष्ठित होते हैं। इस क्रिया में विभिन्न ऋत्विग् रूप छन्द रश्मियां वा ऋतु रश्मियां भी अपनी भूमिका निभाती हैं।।

नोट- इसका वैज्ञानिक भाष्यसार आगामी कण्डिकाओं के भाष्यसार के साथ देखें।।

२. अथान्ततः प्रजातिमाशास्ते, गवामश्वानां पुरुषाणामिह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः। इहो सहस्रदक्षिणो वीरस्त्राता निषीदत्विति।।
बह्वई प्रजया पशुभिर्भवति य एवमेतामन्ततः प्रजातिमाशास्ते गवामश्वानां पुरुषाणाम्।।
एष ह वाव क्षत्रियोऽविकृष्टो यमेवंविदो याजयन्ति।।
अथ ह तं व्येव कर्षन्ते, यथा ह वा इदं निषादा वा सेळगा वा पापकृतो वा वित्तवन्तं

पुरुषमरण्ये गृहीत्वा कर्तमन्वस्य वित्तमादाय द्रवन्त्येवमेव त ऋत्विजो यजमानं कर्तमन्वस्य वित्तमादाय द्रवन्ति यमनेवंविदो याजयन्ति।।
एतद्ध स्म वै तद्विद्वानाह जनमेजयः पारिक्षितः, एवंविदं हि वै मामेवंविदो याजयन्ति; तस्मादहं जयाम्यभीत्वरीं सेनां जयाम्यभीत्वर्या सेनया न मा दिव्या न मानुष्य इषव ऋच्छन्त्येष्यामि सर्वमायुः सर्वभूमिर्भविष्यामीति।।
न ह वा एनं दिव्या न मानुष्य इषव ऋच्छन्त्येति सर्वमायुः, सर्वभूमिर्भवति यमेवंविदो याजयन्ति, याजयन्ति।।७।।

व्याख्यानम्- उपर्युक्त प्रक्रिया के पश्चात् "इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः। इहो सहस्रदक्षिणो वीरस्त्राता निषीदतु।" ऋचा की उत्पति होती है, जो कुछ पाठभेद से अथर्ववेद २०.१२७.१२ में इन्द्रदेवताक एवं निचृदनुष्टुप् छन्दस्क रूप में विद्यमान है-

इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः। इहो सहस्रदक्षिणोऽपि पूषा नि षीदति।

इसका देवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न क्षत्रिय परमाणु विविध प्रकार की तीव्रगामिनी व्यापनशील संयोजक बलों से युक्त छन्द रश्मियों से युक्त होकर नाना प्रकार के वैश्य परमाणु आदि पदार्थों को उत्पन्न करने में सक्षम होते हैं। वे अनेक प्रकार के बलों से युक्त दसों प्रकार की प्राथमिक प्राण रश्मियों के द्वारा रक्षित होकर केन्द्रीय भाग में पूर्णरूप से व्याप्त होते हैं। इससे वे नाना प्रकार के शूद्र आदि पदार्थों को भी उत्पन्न करने में सक्षम होकर उस आदित्य लोक को अनेक प्रकार से समृद्ध करने में समर्थ होते हैं।।

इस प्रकार वे उस आदित्य लोक को अनेक प्रकार के परमाणुओं और छन्दादि रश्मियों से सब ओर से समृद्ध करके विभिन्न पार्थिव कणों, अग्नि के परमाणुओं एवं उनकी विभिन्न प्रकार की संगमनीय क्रियाओं को व्यापक रूप से समृद्ध करते हैं। इस प्रकार अभिषिक्त और समृद्ध हुए क्षत्रिय परमाणु पूर्वोक्त नाना प्रकार की छान्दस यजन क्रियाओं के द्वारा कभी अपकर्ष को प्राप्त नहीं होते हैं अर्थात् उनकी बल और क्रियाशीलता कभी क्षीणता को प्राप्त नहीं होती है। उन्हें असुरादि रश्मियों का कोई भी बल केन्द्रीय भाग से बाहर खींचकर प्रक्षिप्त नहीं कर सकता है।।+।।

{कर्त्तम् = कूपनाम (निघं.३.२३), (कूपम् = कौति शब्दयतीति कूपः-उ.को.३.२७)। निषादः = कस्मान्निषदनो भवति, निषण्णमस्मिन् पापकमिति नैरुक्ताः (नि.३.८), एष ह वै न ग्रामे नारण्ये यन्निषादाः (जै.ब्रा.२.१८३), (अरणि = देवरथो वा अरणि - कौ.ब्रा.२.६)} पूर्वोक्तानुसार जो क्षत्रिय परमाणु नाना रश्मियों को प्राप्त करके तदवत् क्रियाएं नहीं करते, वे आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग से बाहर फेंक दिये जाते हैं। ऐसे कौन-कौनसे परमाणु होते हैं वा हो सकते हैं? इसको स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि जो परमाणु निषादरूप होकर असुर रश्मियों से पूर्णतः ग्रस्त होते हैं, जो विभिन्न पूर्वोक्त तेजस्विनी छन्द रश्मियों में स्थित नहीं होते हैं और इस कारण वे विभिन्न देदीप्यमान प्राण रश्मियों के द्वारा वहन नहीं किये जा रहे होते हैं, जो सेडगा रूप होते हैं अर्थात् {सेडगा = इळान्नं तया सह वर्त्तन्त इति 'सेळाः' धनिकाः, तान् धनापहारार्थं गच्छन्तीति चौराः 'सेळगाः' सायणभाष्यम्} जिनमें से संयोजक वायु रश्मियां निर्गत हो चुकी होती हैं, जिसके कारण वे बार-२ असुर रश्मियों के प्रहार से पतित हो रहे हों अथवा जो आसुर रश्मियों को उत्पन्न कर रहे हों, जो परमाणु अन्य विभिन्न परमाणुओं से युक्त पुरुषरूपी छन्दादि रश्मियों, जो अरण्यरूपा होकर प्राण रश्मियों की कमी से युक्त होती हैं, को आकर्षित करके ध्वनि तरंगों में परिवर्तित कर रहे हों और उनसे उन परमाणुओं को लेकर पलायन कर रहे हों। उन सभी प्रकार के क्षत्रिय परमाणुओं, जो पूर्वोक्त प्रकार से अविभक्त नहीं हो सकते हैं, उनको ऋत्विग् रूपी विभिन्न रश्मियां ध्वनि तरंगों में परिवर्तित कर देती हैं और उनके साथ संगत विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों को ग्रहण करके उनसे पृथक् हो जाती हैं। इस प्रकार ग्रन्थकार ने यह स्पष्ट किया है कि पूर्वोक्त सभी

क्रियाओं को सम्पन्न किये विना कोई भी क्षत्रिय परमाणु आदित्य केन्द्रों में संलयन आदि क्रियाओं को सम्पादित नहीं कर सकता, वल्कि वह उस केन्द्र में अलग-थलग पड़कर या तो उस केन्द्रीय भाग में ही कहीं निष्क्रिय पड़ा रहता है अथवा केन्द्रीय भाग से असुर रश्मियों के द्वारा वहिष्कृत कर दिया जाता है किंवा ध्वनि तरंगों में परिवर्तित कर दिया जाता है।।

अव ग्रन्थकार उपर्युक्त नाना क्रियाओं के द्वारा निर्मित जनमेजय पारिक्षित {परिक्षित् = अग्निर्हीमाः प्रजा परिक्षेत्यग्निं हीमाः प्रजाः परिक्षियन्ति (ऐ.६.३२), संवत्सरो वै परिक्षित् (ऐ.६.३२)} रूपी आदित्य लोक से कहलवाते हुए कहते हैं कि जव इस प्रकार अभिषिक्त क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थ ब्रह्मरूप सूक्ष्म पदार्थों से समृद्ध होकर केन्द्रीय भागों में यजन क्रियाएं करते हैं, उस समय सभी ऐसे क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थ {अभित्वरीम् = अभितो युद्धार्थमुद्युक्तां परकीयां सेनाम् (सायणभाष्यम्)} असुरादि बाधक रश्मियों, जो आक्रमण करने के लिए उद्यत होती हैं, को अपनी तीक्ष्ण रश्मियों द्वारा नियंत्रित वा नष्ट करने में सक्षम होते हैं। ऐसे क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थों को तीव्र प्रकाशित और अति सक्रिय तथा न्यून प्रकाशित व न्यून क्रियाओं से युक्त दोनों ही प्रकार के पदार्थ हानि नहीं पहुंचा सकते। इसके साथ ही तेजस्विनी वज्र रश्मियां एवं घातक तीक्ष्ण छन्द रश्मियां भी ऐसे क्षत्र परमाणुओं को व्याप्त वा नष्ट नहीं कर पातीं। इस कारण वे सभी क्षत्रिय परमाणु सम्पूर्णरूप से संगत होकर सभी प्रकार के प्रजारूप नाना पदार्थों को उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं, मानो आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागों में व्याप्त आकाश तत्त्व पर उन्हीं का शासन होता है।।

यह कण्डिका पूर्व कण्डिका के आशय को दृढ़ता प्रदान करने के लिए ही लिखी गयी है। इस कारण इसका व्याख्यान पूर्व कण्डिका के व्याख्यान में ही समाहित समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्रीय भाग में डार्क एनर्जी के पूर्ण नियंत्रण के लिए तीन अतिच्छन्द एवं एक अनुष्टुप् छन्द रश्मि उत्पन्न होती है। ये छन्द रश्मियां उन नाभिकों, जो डार्क एनर्जी के प्रहार से केन्द्रीय भाग से बहिर्गत हो रहे थे और जिन्हें प्रबल बलयुक्त नाभिकों ने वापिस लौटाया था, को डार्क एनर्जी के प्रहार से सुरक्षित करती हैं। इस क्रिया में **'भूः'**, **'भुवः'**, एवं **'स्वः'** तथा प्राण, अपान एवं व्यान रश्मियों की भी विशेष और गंभीर भूमिका होती है। इस प्रकार ये नाभिक पारस्परिक संलयन हेतु आवश्यक प्रबल विद्युत् चुम्बकीय बलों को प्राप्त कर लेते हैं। जो नाभिक डार्क एनर्जी के प्रभाव में होते हैं और किसी प्रकार उस प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाते हैं, वे या तो उस केन्द्रीय भाग में ही व्यर्थ पड़े रहते हैं अथवा केन्द्रीय भाग से बाहर उत्सर्जित हो जाते हैं। विभिन्न तारों से धनावेशित एवं ऋणावेशित विकिरणों का उत्सर्जित होना विज्ञान के लिए एक कुतूहल का विषय है। कॉस्मिक विकिरणों के रूप में ऐसे विकिरण सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विचरण करते उपलब्ध होते हैं। पृथिवी के दोनों ध्रुवों पर इनकी विशेष विद्यमानता पायी जाती है। तारों के अन्दर इन धनावेशित कणों का संलयित न होकर डार्क एनर्जी द्वारा बाहर प्रक्षिप्त कर देना ही उत्सर्जन का कारण है। यह वैदिक विज्ञान से पुष्ट हो रहा है। electrons का संलयन नहीं होता इस कारण उनका उत्सर्जन कोई जटिल प्रश्न नहीं है, परन्तु protons आदि का उत्सर्जन एक जटिल प्रश्न है, जिसका यहाँ समाधान किया गया है। इन केन्द्रीय भागों में अनेक प्रकार के संघर्ष होने के कारण नाना प्रकार की ध्वनि तरंगें भी उत्पन्न होती रहती हैं। वर्तमान वैज्ञानिक Protons का उत्सर्जन तारों के केन्द्रीय भाग से न मानकर बाहरी भाग से मान सकते हैं और ऐसा सुगमता से सम्भव भी है परन्तु केन्द्रीय भाग से Protons का बहिर्गमन आश्चर्यप्रद तथ्य है, इस पर वैज्ञानिकों को विचार करना चाहिए। हमारी दृष्टि में ऐसा भी सम्भव है कि केन्द्रीय भाग से निर्गत Protons तारे के विशाल बहिर्भाग में ही आकर रह जाते हों। यह गम्भीर अन्वेषण का विषय है।

ॐ इति ३७.७ समाप्तः ॐ

ॐ इति सप्तत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ॐ

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

।। ओ३म् ।।
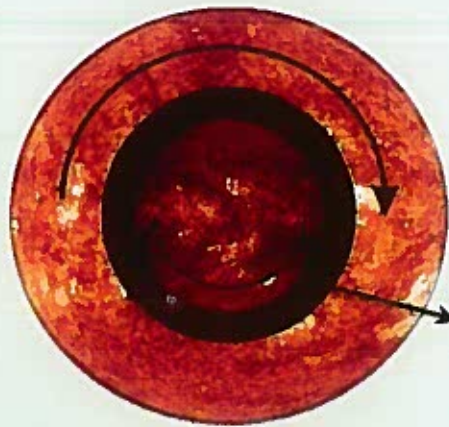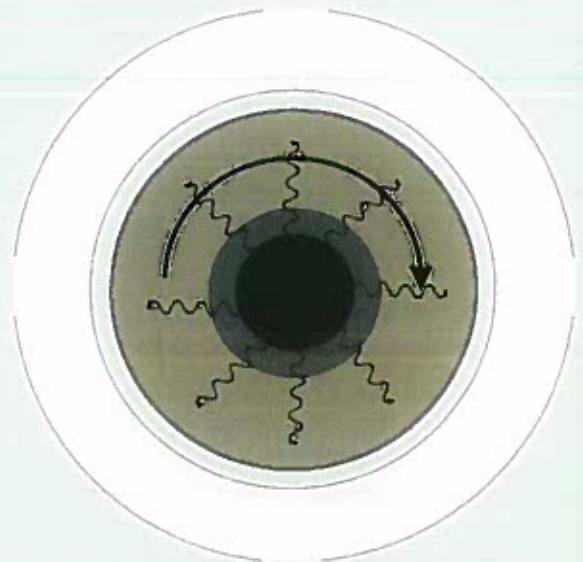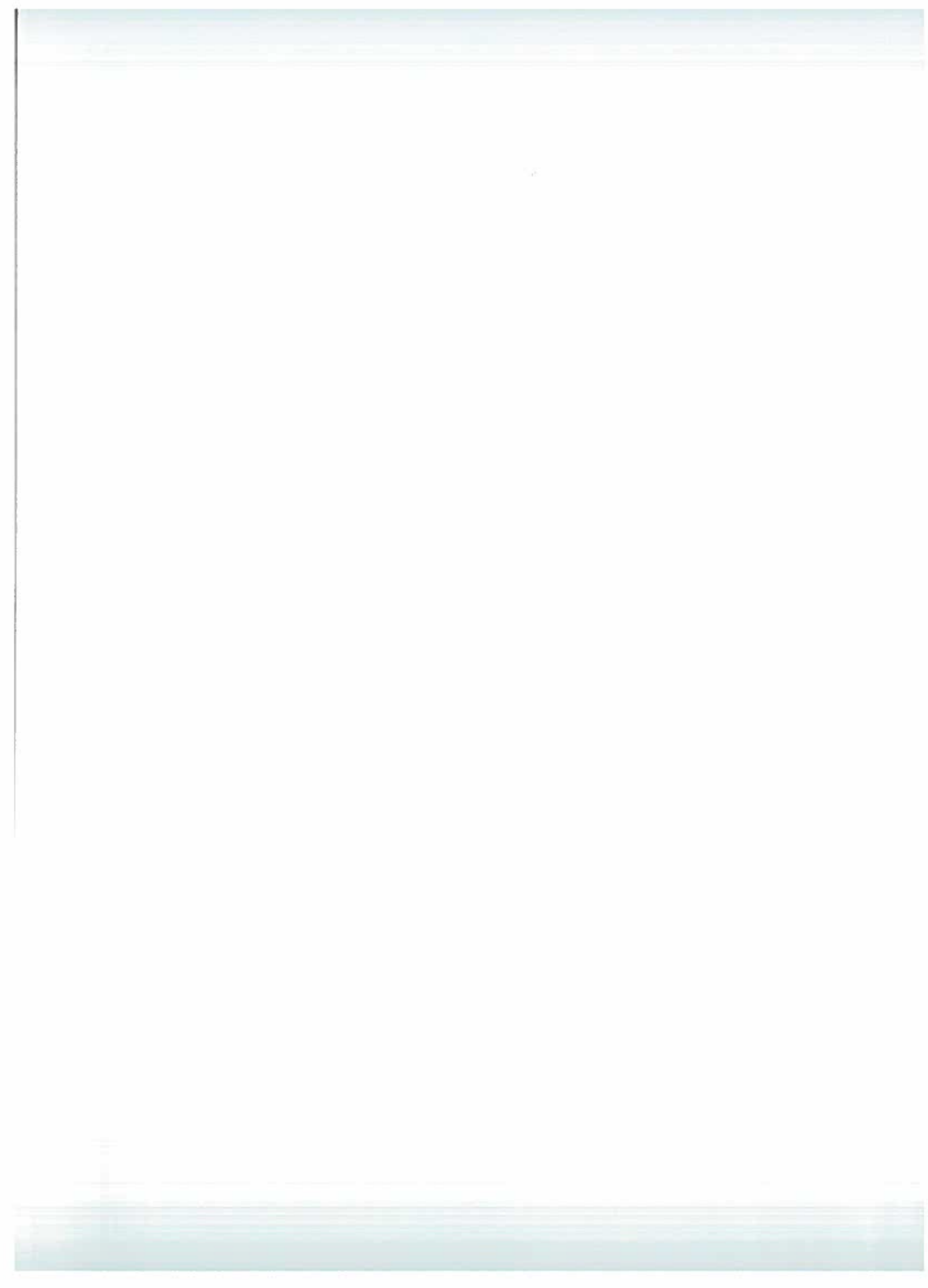
ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व।।

अनुक्रमणिका

३८.१ विद्युदावेशित कणों और तारों की संरचना की समानता और समानता का विज्ञान। इन्द्र का महाभिषेक। 2228

३८.२ पूर्वोक्त विषय। 2233

३८.३ पूर्वोक्त विषय। 2235

ॐ अथ ३८.१ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. अथात ऐन्द्रो महाभिषेकः।।
ते देवा अब्रुवन् स प्रजापतिका,-अयं वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठः सहिष्ठः सत्तमः पारयिष्णुतम इममेवाभिषिञ्चामहा इति, तथेति, तद्वै तदिन्द्रमेव।।
तस्मा एतामासन्दीं समभरन्नृचं नाम; तस्यै बृहच्च रथंतरं च पूर्वौ पादावकुर्वन् वैरूपं च वैराजं चापरौ, शाक्वररैवते शीर्षण्ये, नौधसं च कालेयं चानूच्ये, ऋचः प्राचीनातानान् सामानि तिरश्चीनवायान् यजूंष्यतीकाशान्, यश आस्तरणम्, श्रियमुपबर्हणं; तस्यै सविता च बृहस्पतिश्च पूर्वौ पादावधारयतां वायुश्च पूषा चापरौ, मित्रावरुणौ शीर्षण्ये, अश्विनावनूच्ये; स एतामासन्दीमारोहत्।।
वसवस्त्वा गायत्रेण च्छन्दसा त्रिवृता स्तोमेन रथंतरेण साम्नाऽऽरोहन्तु, तानन्वारोहामि साम्राज्याय; रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन च्छन्दसा पञ्चदशेन स्तोमेन बृहता साम्नाऽऽरोहन्तु, तानन्वारोहामि भौज्यायाऽऽदित्यास्त्वा जागतेन च्छन्दसा सप्तदशेन स्तोमेन वैरूपेण साम्नाऽऽरोहन्तु, तानन्वारोहामि स्वाराज्याय; विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेन च्छन्दसैकविंशेन स्तोमेन वैराजेन साम्नाऽऽरोहन्तु, तानन्वारोहामि वैराज्याय; साध्याश्च त्वाऽऽप्त्याश्च देवाः पाङ्क्तेन च्छन्दसा त्रिणवेन स्तोमेन शाक्वरेण साम्नाऽऽरोहन्तु, तानन्वारोहामि राज्याय; मरुतश्च त्वाऽङ्गिरसश्च देवा अतिच्छन्दसा छन्दसा त्रयस्त्रिंशेन स्तोमेन रैवतेन साम्नाऽऽरोहन्तु, तानन्वारोहामि पारमेष्ठ्याय; माहाराज्याया-ऽऽधिपत्याय स्वावश्यायातिष्ठायाऽऽरोहामीत्येतामासन्दीमारोहत्।।
तमेतस्यामासन्द्यामासीनं विश्वे देवा अब्रुवन्, न वा अनभ्युत्क्रुष्ट इन्द्रो वीर्यं कर्तुमर्हत्यभ्येनमुत्क्रोशामेति, तथेति; तं विश्वे देवा अभ्युदक्रोशन्निमं देवा अभ्युत्क्रोशत सम्राजं साम्राज्यं भोजं भोजपितरं स्वराजं स्वाराज्यं विराजं वैराज्यं राजानं राजपितरं परमेष्ठिनं पारमेष्ठ्यं, क्षत्रमजनि क्षत्रियोऽजनि विश्वस्य भूतस्याधिपतिरजनि विशामत्ताऽजनि पुरां भेत्ताऽजन्यसुराणां हन्ताऽजनि ब्रह्मणो गोप्ताऽजनि धर्मस्य गोप्ताऽजनीति।।
तमभ्युत्क्रुष्टं प्रजापतिरभिषेक्ष्यन्नेतयर्चाऽभ्यमन्त्रयत।।१।।

व्याख्यानम्- क्षत्रिय पदार्थों के अभिषेक की विस्तृत चर्चा करने के पश्चात् इन्द्र तत्त्व के महाभिषेक की चर्चा प्रारम्भ करते हैं। जैसा कि हम लिख चुके हैं कि अभिसेचन क्रिया से क्षत्रिय पदार्थ तीव्रतर बल और तेज से युक्त होते हैं, उसी प्रकार यहाँ इन्द्र तत्त्व के अति देदीप्यमान एवं बलवत्तम होने की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है। यहाँ अभिषेक के स्थान पर 'महाभिषेक' शब्द विद्यमान है। इसका तात्पर्य यह है कि यह प्रक्रिया क्षत्रिय पदार्थों के अभिषेक की प्रक्रिया की अपेक्षा अति व्यापक स्तर पर होती है।।

{प्रजापतिकाः = प्रजापतिना सह वर्तन्त इति 'सप्रजापतिकाः' (सायणभाष्यम्)} वाक् एवं मनस्तत्त्व सहित विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों से जो-२ भी देव पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उन सबमें इन्द्र तत्त्व ओजिष्ठ अर्थात् सर्वाधिक सम्पीडक बल से युक्त एवं सामान्य बल, प्रतिरोधक आदि बल, {सत् = सदमृतम् (श.१४.४.१.३१)} व क्रियाओं की निरन्तरता एवं विभिन्न परमाणुओं को वहन करने की क्षमता आदि गुणों की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ होता है। इसका कारण यह है कि वाक् एवं मनस्तत्त्व सहित विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियां अन्य तत्त्वों की अपेक्षा इन्द्र तत्त्व को ही अधिक मात्रा में अभिसिंचित करती हैं। यद्यपि कोई भी देव पदार्थ वाक् एवं मनस्तत्त्व के साथ प्राथमिक प्राण रश्मियों से ही उत्पन्न होता है, पुनरपि इन्द्र तत्त्व में ये सूक्ष्म कारण पदार्थ सर्वाधिक मात्रा में विद्यमान व सक्रिय होते हैं, यहाँ यह दर्शाना ही ग्रन्थकार का प्रयोजन है।।

हम पूर्व में क्षत्रिय पदार्थों की औदुम्बरी आसन्दी के विषय में पढ़ चुके हैं। वहाँ इन्द्र तत्त्व की आसन्दी के विषय में लिखते हुए कहते हैं कि विभिन्न एकत्रित की हुई ऋग्रूप छन्द रश्मियां ही इन्द्र तत्त्व की आसन्दी अर्थात् आधार क्षेत्र होती हैं। इस ग्रन्थ में अनेकत्र वर्णित बृहत्, और रथंतररूपी साम छन्द रश्मियां अग्रिम दो पादों के रूप में विद्यमान होती हैं तथा वैरूप एवं वैराज नामक साम रश्मियां पिछले दो पादों के रूप में विद्यमान होती हैं। शाक्वर एवं रैवत साम रश्मियां इस इन्द्र तत्त्व का शीर्षरूप होकर उसे विशेष भेदन शक्ति प्रदान करती हैं। इसके साथ ही ये ही इन्द्र तत्त्व को तीव्र बल और तेज से युक्त करती हैं। उधर, उपर्युक्त बृहत्, रथंतर, वैरूप एवं वैराज चारों प्रकार की रश्मियां इन्द्र तत्त्व को मार्ग और गति प्रदान करने में विशेष सहायक होती हैं। इन सभी साम रश्मियों के विषय में खण्ड ४.१३ द्रष्टव्य है। {नौधाः = नौधसं बृहतः (रथन्तरस्य प्रिया तनूरास) (जै.ब्रा.१.१४५), बृहद्ध्येतत्परोक्षं यन्नौधसम् (तां.७.१०.८), ब्रह्म वै नौधसम् (तां.७.१०.१०; ११.४.६), नोधा ऋषिर्भवति, नवनं दधाति (नि.४.१६)। कालेयः = कालेयमच्छावाकसाम भवति (तां.१५.१०.१४), पशवः कालेयम् (तां.११.४.१०; १५.१०.१५)} तथा इससे पूर्व अनेकत्र वर्णित

पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद्विदथेष्वाभुवः।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम्।।६।। ऋ.१.६४.६

का ऋषि गौतमो नोधाः अर्थात् धनंजय प्राण से उत्पन्न विशेष तेज और गति से युक्त प्राणविशेष बतलाया गया है। ये प्राण रश्मियां विशेष व्यापक बलों से युक्त होकर बृहत् एवं रथंतर रश्मियों का परोक्ष शरीररूप होती हैं। ये नोधा एवं कालेय अर्थात् अच्छावाक साम रश्मियां {अच्छावाक साम = ऐळमच्छावाकसाम भवति (जै.ब्रा.१.१५५), पशवोऽच्छावाकसाम (जै.ब्रा.१.३०६), (इळा = अन्ननाम - निघं.२.७)। अच्छावाकः = ईर्म इव वा एषा होत्राणां यदच्छावाकः (जै.ब्रा.२.३७८)} जो बाहुरूप होकर नाना प्रकार के संयोजक कार्यों को सम्पादित करने में समर्थ होती हैं। इस प्रकार ये नोधा और कालेय साम रश्मियां दोनों मिलकर इन्द्र तत्त्व को अनुकूलतापूर्वक प्रकाशित करते हुए विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के संयोजन कर्मों में विशेष भूमिका निभाती हैं। इन्द्र तत्त्व की उत्पत्ति से पूर्व विद्यमान ऋग्रूप छन्द रश्मियां इस इन्द्र तत्त्व की आसन्दी अर्थात् प्रभाव क्षेत्र में ताने के रूप में विद्यमान होती हैं तथा ये उपर्युक्त साम संज्ञक छन्द रश्मियां उस क्षेत्र के बाने के रूप में विद्यमान होती हैं। ध्यातव्य है कि किसी वस्त्र की लम्बाई में बुने हुए धागे 'ताना' तथा चौड़ाई में विद्यमान धागे 'बाना' कहलाते हैं। {अतिकाशान = अतिकाशान् रज्ज्वन्तरालच्छिद्रविशेषानकुर्वन् (सायणभाष्यम्)} विभिन्न 'यजुः' संज्ञक रश्मियां इस आसन्दी क्षेत्र में ताने-बाने के रूप में विद्यमान विभिन्न छन्द रश्मियों के मध्य अवकाश में व्याप्त होती हैं। {यशः = यशो वै सोमोराजा (ऐ.१.१३), यशो वै हिरण्यम् (ऐ.७.१८), यशो देवाः (श.२.१.४.६), प्राणा वै यशः (श.१४.५.२.५), सप्तदशः (स्तोम) एव यशः (गो.पू.५.१५)} यश अर्थात् विभिन्न देदीप्यमान सोम रश्मियां किंवा सप्तदश स्तोमरूप गायत्री छन्द रश्मिसमूह सम्पूर्ण क्षेत्र को आच्छादित करता है। विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियां मानो इन्द्र तत्त्व के तकिये के समान कार्य करती हैं अर्थात् वे इसकी शीर्षरूपा रैवत एवं शाक्वर साम रश्मियों के ऊपर स्थित होती हैं। {सविता = प्राणो वै सविता (ऐ.१.१६)} इस उपर्युक्त आसन्दी क्षेत्र के दो अग्रिम पादों में से बृहत्साम रश्मिरूप पाद सविता {सविता = वरुण एव सविता (जै.उ.४.१२.१.३), चन्द्रमा एव सविता (गो.पू.१.३३), (चन्द्रमा = चन्द्रमा उदानः - जै.उ.४.११.१.६)} अर्थात्

उदान रश्मियों के द्वारा धारण किया जाता है। इसी ओर संकेत करते हुए अन्य ऋषियों का कथन है-

"उदानो बृहत्" (जै.ब्रा.१.२२६)

"उदानो यजमानः" (ष.२.७)

इसके रथन्तर रूपी दूसरे पाद को वृहस्पति अर्थात् {बृहस्पतिः = एष (प्राणः) उ एव बृहस्पतिः (श.१४.४.१.२२)} प्राण नामक प्राण रश्मियां थामे रहती हैं। इसका संकेत करते हुए ग्रन्थकार ने अन्यत्र स्वयं लिखा है-

"रथन्तरमाजभारा वसिष्ठः" (ऐ.आ.३.१.६)

इस आसन्दीरूपी क्षेत्र के अन्य दोनों पाद क्रमशः वायु अर्थात् {वायु = वायुरेव हिंकारः (जै.उ.१.१२.२.६)। पूषा = पशवो वै पूषा (श.१३.१.८.६), प्रतिष्ठा पूषा (तै.सं.५.३.४.४; काठ.२१.१)} हिंकार रश्मियों एवं पोषक व धारक विभिन्न मरुद् रश्मियों के द्वारा धारण किये जाते हैं। मित्रावरुण अर्थात् प्राणापान रश्मियां शीर्षरूपी शाक्वर एवं रैवत साम रश्मियों को थामे रखती हैं। अश्विनौ अर्थात् विभिन्न प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणु इन्द्र तत्त्व के कारण अनुकूलता से प्रकाशित व क्रियाशील होते हैं। इन सब पदार्थों के द्वारा इन्द्र तत्त्व बलवत्तम और क्रियाशील होता है और उनके द्वारा ही अपना सुदृढ़ आधार प्राप्त करता है। उस समय इन्हीं सब पदार्थों की नाना प्रकार की क्रियाओं के मध्य आगामी कण्डिकाओं में वर्णित ६ छन्द रश्मियां भी उत्पन्न होती हैं।।

इनमें से प्रथम छन्द रश्मि "वसवस्त्वा गायत्रेण छन्दसा त्रिवृता स्तोमेन रथंतरेण साम्नाऽऽरोहन्तु, तानन्वारोहामि साम्राज्याय" की उत्पत्ति होती है। इसका देवता आसन्दी तथा ब्राह्मी भुरिग् गायत्री प्रतीत होता है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व के परितः विद्यमान क्षेत्र में तेज और बलों का विस्तार होता है। इसके अन्य प्रभाव से वसु अर्थात् {वसवः = प्राणा वै वसवः (तै.ब्रा.३.२.३.३), प्राणा वै वसवः प्राणा हीदं सर्वं वस्वाददते (जै.उ.४.२.१.३)} विभिन्न प्राणापानादि प्राथमिक प्राण रश्मियां, जो सम्पूर्ण पदार्थ जगत् को अपने अन्दर बसाने और स्वयं सभी पदार्थों में बसने में सक्षम होती हैं, विभिन्न गायत्री छन्द रश्मियों, पूर्वोक्त त्रिवृत् स्तोम रश्मियों एवं पूर्वोक्त रथन्तर साम रश्मियों के साथ मिलकर किंवा उन पर आरूढ़ होकर आसन्दी क्षेत्र में बढ़ती जाती हैं। इन समृद्ध होती हुई सभी रश्मियों के द्वारा उन्हीं का अनुकरण करते हुए इन्द्र तत्त्व निरन्तर समृद्ध होता है। इससे इन्द्र तत्त्व सम्यग् रूपेण प्रकाशमान होने लगता है।

द्वितीय छन्द रश्मि "रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन छन्दसा पञ्चदशेन स्तोमेन बृहता साम्नाऽऽरोहन्तु, तानन्वारोहामि भोज्याय" उत्पन्न होती है। इसका भी देवता आसन्दी है तथा छन्द ब्राह्मी निचृद् गायत्री है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न रुद्र {रुद्र = प्राणा वै रुद्राः। प्राणा हीदं सर्वं रोदयन्ति (जै.उ.४.२.१.६), घोरो वै रुद्रः (कौ.ब्रा.१६.७)} अर्थात् विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियां, जो घोर अर्थात् तीक्ष्ण रूप धारण कर चुकी होती हैं, वे विभिन्न त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों, पूर्वोक्त पञ्चदश स्तोम छन्द रश्मियों एवं बृहत्साम रश्मियों के साथ किंवा उन पर आरूढ़ होकर समृद्ध होती हैं। इन सभी रश्मियों के कारण इन्द्र तत्त्व नाना प्रकार के पदार्थों का भक्षण करने में समर्थ होता है अर्थात् इस समय विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के मध्य संयोग वियोग की प्रक्रिया समृद्ध होने लगती है।

तृतीय छन्द रश्मि "आदित्यास्त्वा जागतेन छन्दसा सप्तदशेन स्तोमेन वैरूपेण साम्नाऽऽरोहन्तु, तानन्वारोहामि स्वाराज्याय" उत्पन्न होती है। इसका देवता पूर्ववत् एवं छन्द ब्राह्मी स्वराड् गायत्री है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {आदित्यः = पशवो वा आदित्यः (मै.४.६.६; काठ.२८.६), प्रजननं जगती। सोऽसावादित्यः (जै.ब्रा.२.३६), प्रजा आदित्यः (मै.४.६.६), आदित्यो यूपः (तै.ब्रा.२.१.५.२)} विभिन्न आदित्य अर्थात् अनेक प्रकार की संयोज्य और वियोज्य छन्द रश्मियां, जो पूर्वोत्पन्न नाना छन्द रश्मियों से उत्पन्न होती हैं, विभिन्न जगती छन्द रश्मियों, सप्तदश स्तोम रूप रश्मिसमूहों एवं वैरूप साम रश्मियों के साथ किंवा इन पर आरूढ़ होकर सम्पूर्ण क्षेत्र में व्याप्त होती हैं। इन सबके प्रभाव से इन्द्रतत्त्व प्रदीप्त होता हुआ नाना प्रकार के तीव्र नियंत्रक बलों से युक्त होने लगता है।

चतुर्थ छन्द रश्मि "विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेन छन्दसैकविंशेन स्तोमेन वैराजेन साम्नाऽऽरोहन्तु तानन्वारोहामि वैराज्याय" उत्पन्न होती है। इसका देवता पूर्ववत् एवं छन्द ब्राह्मी विराडुष्णिक् है। दैवत एवं

छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से विश्वेदेवा अर्थात् {विश्वेदेवाः = अनन्ता विश्वेदेवाः (श. १४.६.१.११), एते वै विश्वेदेवा यत् सर्वे देवाः (गो.उ.१.२०), ता (दिशः) उ एव विश्वेदेवाः (जै.उ.२.१. २.४), सर्वं वै विश्वेदेवाः (श.१.७.४.२२), विशो विश्वेदेवाः (श.२.४.३.६)} समस्त आसन्दी क्षेत्र में सभी दिशाओं में विद्यमान विभिन्न देव परमाणु अनुष्टुप् छन्द रश्मियों, एकविंश स्तोमरूप रश्मिसमूह तथा वैराज साम नामक छन्द रश्मियों के साथ संगत होकर किंवा उनके ऊपर आरूढ़ होकर समृद्ध होते हैं। इन सबके कारण इन्द्र तत्त्व विशेषरूप से समृद्ध होता हुआ विविधता के साथ प्रकाशित होता है।

पंचम छन्द रश्मि "साध्याश्च त्वाऽऽप्त्याश्च देवाः पाङ्क्तेन छन्दसा त्रिणवेन स्तोमेन शाक्वरेण साम्नाऽऽरोहन्तु, तानन्वारोहामि राज्याय" उत्पन्न होती है। इसका देवता पूर्ववत् एवं छन्द निचृद् उष्णिक् है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {साध्याः = रश्मिनाम (निघं.१.५), छन्दांसि वै साध्या देवास्तेऽग्रेऽग्निनाग्निमयजन्त ते स्वर्गं लोकमायन् (ऐ.१.१६), षट्त्रिंशत् साध्या देवाः (जै.ब्रा.१. ३३)} आप्त्य साध्य अर्थात् आर्षी, दैवी, प्राजापत्या, याजुषी, साम्नी, आर्ची, ब्राह्मी – इनके गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्तिः, त्रिष्टुप्, जगती, शक्वरी एवं अतिच्छन्द रूपों अर्थात् कुल ६३ प्रकार की छन्द रश्मियां विभिन्न पंक्ति छन्द रश्मियों, त्रिणव स्तोम रश्मियों एवं शाक्वर साम रश्मियों के द्वारा किंवा उन पर आरूढ़ होकर समृद्ध होती हैं। इन सबके द्वारा इन्द्रतत्त्व और भी अधिक प्रकाशित होने लगता है।

षष्ठी छन्द रश्मि "मरुतश्च त्वाऽङ्गिरसश्च देवा अतिच्छन्दसा छन्दसा त्रयस्त्रिंशेन स्तोमेन रैवतेन साम्नाऽऽरोहन्तु, तानन्वारोहामि पारमेष्ठ्याय; माहाराज्यायाऽऽधिपत्याय स्वावश्यायातिष्ठायाऽऽरोहामि" उत्पन्न होती है। इसका देवता पूर्ववत् एवं छन्द अतिच्छन्द है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् एवं प्राण रश्मियां विभिन्न अतिच्छन्दा रश्मियों, त्रयस्त्रिंशत् स्तोम रश्मियों एवं रैवत साम रश्मियों के द्वारा किंवा उनके ऊपर आरूढ़ होकर समृद्ध होती हैं। इनके कारण इन्द्रतत्त्व परमेष्ठी {परमेष्ठी = तपसा परमेष्ठी (काठ.३५.१५)} रूप को प्राप्त होकर तीव्र ताप एवं उत्कृष्ट स्थिति को प्राप्त होता है। उसका तेज बहुत व्यापक होते हुए प्रकृष्ट नियंत्रक बलों से युक्त होकर अन्य किसी के भी द्वारा सदैव अजेय और आदित्य केन्द्रों में स्थायित्व प्राप्त करता है।

इस प्रकार इन सभी छः छन्द रश्मियों के द्वारा वह इन्द्र तत्त्व अपने क्षेत्र में उत्कृष्टता से समृद्ध होकर अन्य सभी देव पदार्थों को समृद्ध करता है। यह उत्कृष्ट क्षेत्र आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग में ही विशेषरूप से विद्यमान होता है।।

जब उपर्युक्त प्रकार से वह इन्द्र तत्त्व अन्य अनेक देव पदार्थों के साथ अपने आसन्दी क्षेत्र में व्याप्त होता है, तब मानो सभी देव परमाणु उसे पर्याप्त उत्कृष्ट न मानकर उत्कृष्ट बनाने का प्रयास करते हैं। यहाँ देवों का कथन ग्रन्थकार की अपनी शैलीमात्र है, जिसका तात्पर्य यही है कि उस समय "इमं देवा अभ्युत्क्रोशत...... धर्मस्य गोप्ताऽजनि" यह अतिच्छन्द रश्मि उस समस्त क्षेत्र में सभी देव परमाणुओं को गुंजाती हुई उत्पन्न होने लगती है। इसका देवता इन्द्र होने से वह इन्द्र तत्त्व अच्छी प्रकार देदीप्यमान होता हुआ अन्य सभी पदार्थों को देदीप्यमान करने वाला, स्वयं संगमनीय होकर अन्य संगमनीय पदार्थों की रक्षा करने वाला, स्वयं प्रकाशमान होकर अन्य परमाणु आदि पदार्थों को प्रकाशमान करने वाला, स्वयं विविध रूपों से युक्त होकर अन्य पदार्थों को विविध रूपों से युक्त करने वाला, स्वयं विविध परमाणु आदि पदार्थों का नियंत्रक होकर नियंत्रक बलों से युक्त अन्य परमाणु आदि पदार्थों के नियंत्रक बलों का पालन और रक्षण करने वाला, आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग में अपने श्रेष्ठ स्वरूप के द्वारा स्थित रहने वाला होकर अन्य पदार्थों को भी इसी प्रकार श्रेष्ठता प्रदान करने वाला होता है। वह इन्द्र तत्त्व क्षत्ररूप में उत्पन्न होकर सभी क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थों को उत्पन्न करने वाला, सभी उत्पन्न पदार्थों के अधिपति के रूप में उत्पन्न होने वाला, विभिन्न वैश्यरूप परमाणुओं का शोषक, असुर रश्मि आदि पदार्थों के विशाल समूह का भेदन करने वाला, सूक्ष्म असुर रश्मियों को व्याप्त व नष्ट वा नियंत्रित करने वाला, ब्रह्मरूप पदार्थों के द्वारा रक्षित और उनकी रक्षा भी करने वाला, इसके अतिरिक्त अन्य विविध पदार्थों की धारणा शक्तियों का रक्षक होता है।।

इसके पश्चात् मनस्तत्त्व एवं वाक् तत्त्व के द्वारा अग्रिम खण्ड की प्रथम कण्डिका में वर्णित छन्द रश्मि उत्पन्न होकर उस इन्द्र तत्त्व को और अधिक अभिसिंचित और प्रकाशित करती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस ब्रह्माण्ड की रचना और संचालन में विद्युत् चुम्बकीय बलों की अहम भूमिका होती है। तारों के अन्दर विद्यमान प्लाज्मा अवस्था विद्युदावेशित कणों का ही भण्डार होती है। तारों के केन्द्रीय भाग में इन बलों की सर्वोच्च स्थिति होती है। सभी प्रकार के बलों के पीछे विद्युत् का ही प्रत्यक्ष वा परोक्ष योगदान रहता है। **विद्युत् की सर्वाधिक सूक्ष्म अवस्था प्राण और अपान रश्मियों के मेल से उत्पन्न होती है।** विद्युत् की तीव्र अवस्था, जिसे इन्द्र तत्त्व कहा जाता है, उसके स्वरूप का यहाँ विशेष वर्णन किया गया है। इस इन्द्र का मूल आधार कुछ छन्द रश्मियां ही होती हैं और अनेक प्रकार की छन्द, मरुद् और प्राण रश्मियां मिलकर तीक्ष्ण इन्द्ररूप विद्युत् को उत्पन्न करती हैं। विद्युदावेशित कणों के चारों ओर विद्यमान विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र के अन्दर नाना प्रकार की छन्द, प्राण व मरुद् रश्मियां भिन्न-२ दिशाओं में विद्यमान होती हैं। जब-२ इस विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता बढ़ती है, तब-२ उस तीव्रता को बढ़ाने में तीन गायत्री, दो उष्णिक् एवं दो अतिच्छन्द रश्मियों की अतिरिक्त भूमिका भी होती है। उस समय सभी प्रकार की प्राण व छन्द रश्मियां उन विद्युत् चुम्बकीय बलों को प्रबल से प्रबल बनाती हैं। तारों के केन्द्रीय भाग में ये सब रश्मि आदि पदार्थ विशेष सक्रिय होकर विद्युत् चुम्बकीय बलों एवं ऊष्मा आदि को उच्चतम अवस्था प्रदान करके नाभिकीय संलयन की क्रिया को सम्पादित करते हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पठनीय है।।

इति ३८.१ समाप्तः

௲ अथ ३८.२ प्रारभ्यते ௵

**** तमसो मा ज्योतिर्गमय ****

१. निषसाद् धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय, भौज्याय स्वाराज्याय वैराज्याय पारमेष्ठ्याय राज्याय माहाराज्यायाऽधिपत्याय स्वावश्यायाऽऽतिष्ठाय, सुक्रतुरिति।। तमेतस्यामासन्द्यामासीनं प्रजापतिः पुरस्तात्तिष्ठन् प्रत्यङ्मुख औदुम्बर्याऽऽर्द्रया शाखया सपलाशया जातरूपमयेन च पवित्रेणान्तर्धायाभ्यषिञ्चद्, इमा आपः शिवतमा इत्येतेन तृचेन, देवस्य त्वेति च यजुषा, भूर्भुवः स्वरित्येताभिश्च व्याहृतिभिः।।२।।

व्याख्यानम्- वह छन्द रश्मि इस प्रकार है-

"निषसाद धृतव्रतो वरुण........स्वावश्यायाऽऽतिष्ठाय सुक्रतुः।"

इस ऋचा से कुछ मिलती-जुलती वरुणदेवताक एवं गायत्री छन्दस्क ऋचा ऋग्वेद में इस प्रकार विद्यमान है-

"नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्या३स्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः।" (ऋ.१.२५.१०)

इस ऋचा के विषय में ७.१६.२ द्रष्टव्य है। वहाँ वर्णित व्याख्यान के अतिरिक्त शेष भाग का व्याख्यान हम पूर्व खण्ड में आयी ऋचाओं के समान समझ सकते हैं। इस कण्डिका में वर्णित ऋचा का देवता वरुणरूप इन्द्र एवं छान्दस ब्राह्मी स्वराड् बृहती है, जिसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझ सकते हैं।।

इस प्रकार अपने आसन्दी क्षेत्र में वह इन्द्र तत्त्व व्याप्त हो जाता है, उस समय प्रजापति अर्थात् {प्रजापतिः = प्राणो हि प्रजापतिः प्रजापतिं ह्येवेदं सर्वमनु (प्रजायते) (श.४.५.५.१३)} प्राण नामक प्राण रश्मियां इन्द्र तत्त्व के सम्मुख प्रकट होकर उसकी ओर गति करते हुए अर्थात् उसको लक्ष्य बनाकर पूर्व में अनेकत्र वर्णित उदुम्बर ऊर्जा {आर्द्रा = (अर्दतिवधकर्मा - निघं.२.१९, अर्दति गच्छति याचते वा तद् आर्द्रमिति विग्रहे 'अर्द गतौ" धातोरौणादिको रक् प्रत्ययः - वै.को. - आ.राजवीर शास्त्री)} की ऐसी धाराओं, जो विभिन्न संयोज्य पदार्थों को संयुक्त करने, वियोज्य पदार्थों को वियुक्त करने एवं असुरादि हन्तव्य पदार्थों को नष्ट करने में समर्थ होती हैं, {पलाशः = ब्रह्म वै पलाशः (श.१.३.३.१९; ५.२.४.१८), ब्रह्म वै पलाशो ब्रह्मणैवैतन्नाष्ट्रा रक्षांसि हन्ति (श.५.२.४.१८), मांसेभ्य एवास्य (प्रजापतेः) पलाशः समभवत् तस्मात्स बहुरसो लोहितरसः (श.१३.४.४.१०)। पवित्रम् = प्राणापानौ पवित्रे (तै.ब्रा.३.३.४.४; ६.७), प्राणोदानौ पवित्रे (श.१.८.१.४४), अन्तरिक्षं वै पवित्रम् (काठ.२६.१०; क.४१.८)} ऐसी वे उदुम्बर ऊर्जा रश्मियां पलाश अर्थात् मास रश्मियों से ही उत्पन्न सूक्ष्म असुर विनाशक ब्रह्मरूप तेजस्विनी रश्मियां, जो प्राणापान एवं प्राणोदान से सम्पृक्त आकाश रश्मियों में प्रकाशमान होती हैं, के साथ मिलकर इन्द्र तत्त्व को खण्ड ८.७ में वर्णित निम्नलिखित ऋचाओं -

(१) इमा आपः शिवतमा इमाः.....।"
(२) याभिरिन्द्रमभ्यषिञ्चत् प्रजापतिः....।"
(३) महान्तं त्वा महीनां......।"
(४) देवस्य त्वा सवितुः.......।"

के द्वारा अभिसिंचित करती हैं। इन छन्द रश्मियों के साथ 'भूः' 'भुवः' एवं 'स्वः' व्याहृति रूप सूक्ष्म छन्द रश्मियों का यथावत् योग भी होता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त प्रकार से उत्पन्न विद्युत् को और अधिक प्रखर बनाने के लिए एक शक्वरी, दो जगती, दो अनुष्टुप् के अतिरिक्त **'भूः'**, **'भुवः'** एवं **'स्वः'** छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इसके साथ ही प्राण, अपान एवं व्यान रश्मियां और अधिक सक्रिय होकर विद्युदावेशित कणों के द्वारा आकाश तत्त्व को संकुचित करके प्रबल विद्युत् चुम्बकीय बलों को उत्पन्न करती हैं, साथ ही इन बलों को और भी अधिक प्रबल करते हुए सम्पूर्ण आदित्य लोक में नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया को निरन्तर तीव्र बनाती हैं।।

ॐ इति ३८.२ समाप्तः ॐ

ॐ अथ ३८.३ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. अथैनं प्राच्यां दिशि वसवो देवाः षड्भिश्चैव पञ्चविंशैरहोभिरभ्यषिञ्चन्नेतेन च तृचेनैतेन च यजुषैताभिश्च व्याहृतिभिः साम्राज्याय।।
तस्मादेतस्यां प्राच्यां दिशि ये के च प्राच्यानां राजानः साम्राज्यायैव तेऽभिषिच्यन्ते सम्राळित्येनानभिषिक्तानाचक्षत एतामेव देवानां विहितिमनु।।
अथैनं दक्षिणस्यां दिशि रुद्रा देवाः षड्भिश्चैव पञ्चविंशैरहोभिरभ्यषिञ्चन्नेतेन च तृचेनैतेन च यजुषैताभिश्च व्याहृतिभिर्भौज्याय तस्मादेतस्यां दक्षिणस्यां दिशि ये के च सत्वतां राजानो भौज्यायैव तेऽभिषिच्यन्ते भोजेत्येनानभिषिक्तानाचक्षत एतामेव देवानां विहितिमन्वथैनं प्रतीच्यां दिश्यादित्या देवाः षड्भिश्चैव पञ्चविंशैरहोभिरभ्यषिञ्चन्नेतेन च तृचेनैतेन च यजुषैताभिश्च व्याहृतिभिः स्वाराज्याय तस्मादेतस्यां प्रतीच्यां दिशि ये के च नीच्यानां राजानो येऽपाच्यानां स्वराज्यायैव तेऽभिषिच्यन्ते स्वराळित्येनानभिषिक्तानाचक्षत एतामेव देवानां विहितिमन्वथैनमुदीच्यां दिशि विश्वे देवाः षड्भिश्चैव पञ्चविंशैरहोभिरभ्यषिञ्चन्नेतेन च तृचेनैतेन च यजुषैताभिश्च व्याहृतिभिर्वैराज्याय तस्मादेतस्यामुदीच्यां दिशि ये के च परेण हिमवन्तं जनपदा उत्तरकुरव उत्तरमद्रा इति वैराज्यायैव तेऽभिषिच्यन्ते विराळित्येनानभिषिक्तानाचक्षत एतामेव देवानां विहितिमन्वथैनमस्यां ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि साध्याश्चाऽऽप्त्याश्च देवाः षड्भिश्चैव पञ्चविंशैरहोभिरभ्यषिञ्चन्नेतेन च तृचेनैतेन च यजुषैताभिश्च व्याहृतिभी राज्याय तस्मादस्यां ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि ये के च कुरुपञ्चालानां राजानः सवशोशीनराणां राज्यायैव तेऽभिषिच्यन्ते राजेत्येनानभिषिक्तानाचक्षत एतामेव देवानां विहितिमन्वथैनमूर्ध्वायां दिशि मरुतश्चाङ्गिरसश्च देवाः षड्भिश्चैव पञ्चविंशैरहोभिरभ्यषिञ्चन्नेतेन च तृचेनैतेन च यजुषैताभिश्च व्याहृतिभिः पारमेष्ठ्याय माहाराज्यायाऽऽधिपत्याय स्वावश्यायाऽऽतिष्ठायेति स परमेष्ठी प्राजापत्योऽभवत्।।
स एतेन महाभिषेकेणाभिषिक्त इन्द्रः सर्वा जितीरजयत् सर्वाँल्लोकानविन्दत् सर्वेषां देवानां श्रैष्ठ्यमतिष्ठां परमतामगच्छत् साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं माहाराज्यमाधिपत्यं जित्वाऽस्मिँल्लोके स्वयंभूः स्वराळमृतोऽमुष्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत्, समभवत्।।३।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त इन्द्र तत्त्व के महाभिषेक की प्रक्रिया को विस्तार देते हुए लिखते हैं कि पूर्वोक्त प्रक्रियाओं के सम्पन्न होने के पश्चात् इन्द्र तत्त्व की पूर्व दिशा में वसु नामक प्राथमिक प्राण रश्मियां, जिनके विषय में खण्ड ८.१२ में लिखा जा चुका है, छः ऋतु रश्मियों एवं पञ्चविंश स्तोमरूप गायत्री छन्द

रश्मिसमूहों को प्राण नामक प्राण रश्मियों से विशेष समृद्ध करके उस इन्द्र तत्त्व को पूर्वखण्ड की अन्तिम कण्डिका में वर्णित चार छन्द रश्मियों एवं तीन व्याहृति रूप सूक्ष्म रश्मियों के द्वारा पुनः अभिसिंचित करती हैं। ध्यातव्य है कि इन्हीं छन्द रश्मियों के द्वारा पूर्वखण्ड में प्रजापति के द्वारा इन्द्र का अभिसिंचन किया जाना वर्णित है। उन्हीं रश्मियों के द्वारा यहाँ वसु संज्ञक प्राण रश्मियों के द्वारा इन्द्र का अभिसिंचन कहा गया है। इससे इन रश्मियों की महत्ता व दिशा दोनों ही रेखांकित होती हैं। पञ्चविंश स्तोम रश्मियों के विषय में ऋषियों का कथन है-

"अन्नं वै पञ्चविंशम्।" (जै.ब्रा.२.२६४, ३०७)

"गर्भा स्पृताः पञ्चविंशः स्तोमः।" (तै.सं.४.३.६.२; मै.२.८.५)

"पञ्चविंशेन वै स्तोमेन मनुः प्रजा असृजत।" (मै.३.१०.३)

"पञ्चविंशोऽग्निष्टोमो भवति प्रजापतेराप्त्यैः।" (तै.सं.७.१.१०.४)

इन वचनों से प्रमाणित होता है कि इन पञ्चविंश स्तोम रश्मियों के द्वारा इन्द्र तत्त्व विशेष संयोजक बलों से युक्त होकर तीव्र तप्त होता हुआ नाना प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करने में अधिक समर्थ होता है। इस प्रकार वह इन्द्र तत्त्व और अधिक बलशाली और प्रकाशमान होता है।।

क्योंकि उपर्युक्तानुसार वसु नामक प्राण रश्मियां इन्द्र तत्त्व का पूर्व दिशा में अभिषेक करती हैं। इस कारण आदित्य लोकों के पूर्वी भागों में विद्यमान तेजस्वी क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थों को और अधिक तेजयुक्त करने के लिए वसु संज्ञक प्राण रश्मियां इन्द्र तत्त्व के अभिषेक की भाँति ही उनका भी अभिषेक करती हैं, जिसके कारण वे पदार्थ भी और अधिक देदीप्यमान होने लगते हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि आदित्य लोकों के पूर्वी भागों में प्राथमिक प्राण रश्मियों का वसु रूप ही विद्यमान होता है।।

इस कण्डिका में अन्य सभी दिशाओं में होने वाली अभिसिंचन क्रियाओं को दर्शाया है, जो निम्नानुसार है-

दक्षिण दिशा की चर्चा करते हुए लिखते हैं कि इन्द्र तत्त्व की दक्षिण दिशा में रुद्रदेव अर्थात् प्राथमिक प्राण रश्मियों का तीव्र स्वरूप विद्यमान होता है। ये तीव्र प्राण रश्मियां वसु रश्मियों के समान इन्द्र तत्त्व का अभिसेचन करके उसको अधिक संयोजक बलों से युक्त करती हैं। अन्य व्याख्यान उपर्युक्त कण्डिका के अनुसार विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं।

इन्द्र तत्त्व की पश्चिम दिशा में खण्ड ८.१२ में वर्णित आदित्य देव रूपी रश्मियां पूर्वोक्त स्वाराज्य के लिए और अधिक सशक्त बनाती हैं। यहाँ अपाच्य {अपाच्य = पश्चिमी और दक्षिणी दिशा - आप्टेकोश} भी पश्चिम दिशा का ही प्रतीक है तथा नीच्य दिशा बाहरी भाग की सूचक है। इस प्रकार इस दिशा में भी अभिसेचन की क्रिया को पाठक स्वयं पूर्ववत् समझ सकते हैं।

उत्तर दिशा में विश्वेदेवा नामक पदार्थ {विश्वेदेवाः = श्रोत्रं विश्वेदेवा (श.३.२.२.१३), विशो विश्वेदेवा (श.२.४.३.६)} अर्थात् आकाश तत्त्व मिश्रित विट् संज्ञक छन्द रश्मियां पूर्ववत् ही इन्द्र तत्त्व का अभिसेचन करके उसे विविध प्रकार से प्रकाशित करती हैं। {हिमम् = हिमं पुनर् हन्तेर्वा, हिनोतेर्वा (नि.४.२७), हिमा रात्रिनाम (निघं.१.७), हिनोति = हि गतौ वृद्धौ च (स्वा.) हिनु धेहि (नि.११.३०), हिन्वन्ति आप्नुवन्ति (नि.१.२०)। मद्रः = माद्यतीति मद्रः (उ.को.२.१३)} यहाँ हिमवन्त जनपद का तात्पर्य उन परमाणु आदि पदार्थों से है, जो विशेष धारण, व्यापन, गति और समृद्धि आदि गुणों से युक्त होते हैं। यहाँ 'कुरु' उन परमाणुओं का नाम है, जो विशेष क्रियाशील होते हैं और 'मद्र' उन परमाणुओं का नाम है, जो अपने निकटवर्ती परमाणु आदि पदार्थों को अतिशय क्रियाशील करने में सक्षम होते हैं। ये सभी प्रकार के परमाणु आदित्य लोकों की उत्तरी दिशा में अधिक मात्रा में विद्यमान होते हैं। इनके अभिसेचन की क्रिया भी विज्ञ पाठक पूर्ववत् समझ सकते हैं।

अब ध्रुवा मध्यमा दिशा में अभिसेचन की चर्चा करते हैं। इन्द्र तत्त्व के मूल केन्द्रीय भाग एवं अन्य भाग के मध्य स्थित सूक्ष्म सन्धिरूप क्षेत्र ही ध्रुव मध्यम कहलाता है। जो अत्यन्त सुदृढ़ बलों से युक्त होकर दोनों भागों को अपने साथ प्रतिष्ठित वा बांधे रखता है। ध्रुव दिशा के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है-

"यद्वै स्थिरं यत्प्रतिष्ठितं तद् ध्रुवम्" (श.८.२.१.४)

यह कथन हमारे मत की पुष्टि करता है। इस दिशा में पूर्वोक्त आप्त्यसाध्य संज्ञक पदार्थ इन्द्र तत्त्व को अभिसिंचित करके उसे और भी प्रकाशमान करते हैं। {उशीनरः = उश्यते काम्यतेऽसौ उशी, वाञ्छा (वा)। तत्कुशला नरा अस्मिन् सन्तीति उशीनरो देशः (उ.को.४.१)। वशः = कामयमानः (म.द.ऋ.भा.१.१२६.१), देदीप्यमानः (तु.म.द.य.भा.२४.१४)। पञ्चालः = पञ्चति व्यक्तं करोतीति पञ्चालः (उ.को.१.११८)} उधर, आदित्य लोक में इस दिशा में विशेष नियंत्रक बलों तथा अव्यक्त से व्यक्त रूप में आये हुए परमाणु आदि पदार्थों की प्रधानता होती है। इनका भी अभिसेचन इन्द्र तत्त्व की भाँति पाठक पूर्वोक्तानुसार स्वयं समझ सकते हैं।

ऊर्ध्व दिशा केन्द्रीय भाग को कहते हैं। इस दिशा में पूर्वोक्त मरुद् एवं आङ्गिरस रश्मियां इन्द्र तत्त्व का पूर्वोक्तानुसार अभिषेक करती हैं। इसका भी व्याख्यान विज्ञ पाठक पूर्वोक्तानुसार स्वयं समझ सकते हैं। इस प्रकार इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्व दोनों खण्डों के परिप्रेक्ष्य में पाठक स्वयं समझ सकते हैं। इसके साथ ही इस कण्डिका से पूर्व दोनों कण्डिकाओं के व्याख्यान को भी समझना अनिवार्य है।।

इस पूर्वोक्त व्यापक एवं अतिसमृद्ध अभिसिंचन प्रक्रिया के द्वारा इन्द्र तत्त्व अत्यन्त समृद्ध, शक्तिसम्पन्न हो जाता है, जिससे वह सभी जीतने योग्य बाधक असुरादि तत्त्वों को जीतने अर्थात् नियंत्रित वा नष्ट करने में समर्थ होकर सभी प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों एवं लोकों को प्राप्त करता है। इस प्रकार वह इन्द्र तत्त्व अन्य सभी देव पदार्थों में श्रेष्ठता प्राप्त करके सबको अतिक्रमित करता हुआ स्थित होकर सर्वोच्चता प्राप्त करता है। वह सम्यग् रूप से प्रकाशमान् होता व सबको प्रकाशमान् करता हुआ स्वयं संयोजक बलों से युक्त होकर सबको इन बलों से युक्त करता हुआ स्वयं पूर्वोक्त स्वाराज्य, वैराज्य, पारमेष्ठ्य, राज्य एवं माहाराज्य अवस्था को प्राप्त करके पूर्वोक्त प्रकार से सबका अधिपति बनकर आदित्य लोक में स्वप्रकाशित अजेय और अमृतरूप होकर आदित्य लोक की सभी क्रियाओं को सब ओर से प्राप्त करके आदित्य लोक को प्रतिष्ठित करता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- यहाँ एक अद्भुत वैज्ञानिक रहस्य का उदघाट्न किया गया है। वह रहस्य यह है कि **कोई भी विद्युदावेशित कण आन्तरिक संरचना की दृष्टि से एक तारे के समान होता है,** यद्यपि यह समानता सर्वांश में नहीं, बल्कि अल्पांश में ही होती है। दोनों में ही उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव चुम्बकीय ध्रुवों की भाँति व्यवहार करते हैं। तारे तथा कण के पूर्वी भाग में प्राणापान आदि प्राथमिक प्राण रश्मियां मृदुरूप में विद्यमान होती हैं, जबकि दक्षिण दिशा अर्थात् दक्षिणी ध्रुव की ओर ये प्राण रश्मियां अत्यन्त तीव्र अवस्था में विद्यमान होती हैं। पश्चिम दिशा में संयोजक बलों से युक्त विभिन्न छन्द रश्मियां विद्यमान
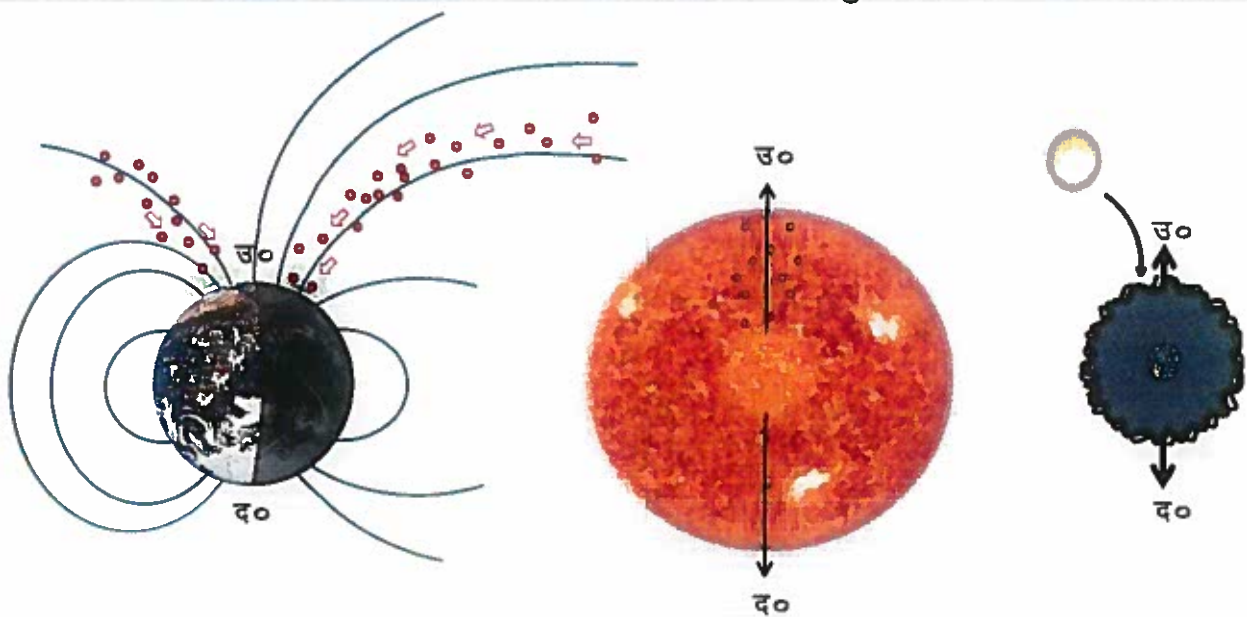
चित्र ३८.१ लोक, विद्युदावेशित कण एवं तारे में समानता

होती है। उत्तर दिशा में कुछ ऐसी छन्द रश्मियां विद्यमान होती हैं, जिनके कारण वह कण इस दिशा में विशेष क्रियाशीलता और धारण शक्ति को व्यक्त करता है। तारों की उत्तर दिशा में इन गुणों से युक्त कणों और तरंगों की अधिकता होती है।

तारों के अन्दर नाभिकीय संलयन क्रियाओं से युक्त केन्द्रीय भाग तथा शेष विशाल भाग के मध्य जो सन्धि भाग विद्यमान होता है, उसी पर दोनों भाग फिसलते हुए गति करते रहते हैं, ऐसी ही संरचना प्रत्येक विद्युदावेशित कण की भी होती है। वह कण इलेक्ट्रॉन अथवा क्वार्क कुछ भी हो सकता है। वर्तमान विज्ञान इलेक्ट्रॉन को अत्यन्त सूक्ष्म विद्युदावेशित कणों के मेघरूप में अब मानने लगे हैं, लेकिन वे क्वार्क की संरचना के विषय में कदाचित् नितान्त अनभिज्ञ हैं। वैदिक विज्ञान की दृष्टि में इन दोनों ही कणों की संरचना तारे जैसी ही होती है। इनमें भी केन्द्रीय भाग और शेष विशाल भाग के बीच में एक सन्धि भाग विद्यमान होता है, जिस पर दोनों भाग फिसलते हुए घूमते रहते हैं। यह सन्धि भाग स्थिर अथवा अति न्यून गति से युक्त होता है। इस भाग में भी विभिन्न प्रकार की छन्द रश्मियां इन कणों अथवा तारों, दोनों में ही विद्यमान होती हैं। इन रश्मियों का सुदृढ़ बल दोनों भागों को एक साथ थामे रखता है। दोनों का केन्द्रीय भाग विभिन्न प्राथमिक प्राण और मरुद् रश्मियों से विशेष समृद्ध होता है। इसके अतिरिक्त इन कणों और तारे आदि लोकों में कौन-२ सी रश्मियां विद्यमान होती हैं और वे क्या-२ प्रभाव उत्पन्न करती हैं? इसे जानने के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पठनीय है।।

चित्र ३८.२ तारे तथा कण की संरचना में समानता

꧁ इति ३८.३ समाप्तः ꧂

꧁ इति अष्टात्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ꧂

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

।। ओ३म् ।।

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व।।

अनुक्रमणिका

३९.१	क्षत्रिय राजा का महाभिषेक, निरावेशित कणों के बल का विज्ञान, एवं उनका स्वरूप। निरावेशित कणों की रचना और कार्य। Quantas की रचना और कार्य। असंख्य प्रकार की प्राण रश्मियों से असंख्य प्रकार की वि.चु.तरंगों की उत्पत्ति। तारों के केन्द्रीय भाग का विज्ञान। आकाश तत्त्व का विज्ञान।	2242
३९.२	पूर्वोक्त विषय।	2244
३९.३	पूर्वोक्त विषय।	2247
३९.४	पूर्वोक्त विषय।	2249
३९.५	पूर्वोक्त विषय।	2250
३९.६	पूर्वोक्त विषय।	2251
३९.७	पूर्वोक्त विषय।	2255
३९.८	पूर्वोक्त विषय।	2259
३९.९	पूर्वोक्त विषय।	2263

ॐ अथ ३९.१ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. स य इच्छेदेवंवित् क्षत्रियमयं सर्वा जितीर्जयेतायं सर्वांल्लोकान् विन्देतायं सर्वेषां राज्ञां श्रैष्ठ्यमतिष्ठां परमतां गच्छेत साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं माहाराज्यमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायी स्यात् सार्वभौमः सार्वायुष आऽन्तादा परार्धात् पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराळिति तमेतेनैन्द्रेण महाभिषेकेण क्षत्रियं शापयित्वाऽभिषिञ्चेत्।।

यां च रात्रीमजायेथा यां च प्रेतासि तदुभयमन्तरेणेष्टापूर्तं ते लोकं सुकृतमायुः प्रजां वृञ्जीयं यदि मे द्रुह्येरिति।।

स य इच्छेदेवंवित् क्षत्रियोऽहं सर्वा जितीर्जयेयमहं सर्वांल्लोकान् विन्देयमहं सर्वेषां राज्ञां श्रैष्ठ्यमतिष्ठां परमतां गच्छेयं साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं माहाराज्यमाधिपत्यमहं समन्तपर्यायी स्यां सार्वभौमः सार्वायुष आऽन्तादा परार्धात् पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराळिति, स न विचिकित्सेत्, स ब्रूयात् सह श्रद्धया, यां च रात्रीमजायेऽहं, यां च प्रेतास्मि, तदुभयमन्तरेणेष्टापूर्तं मे लोकं सुकृतमायुः प्रजां वृञ्जीथा यदि ते द्रुह्येयमिति।।१।।

व्याख्यानम्- इन्द्र तत्त्व के पूर्वोक्त महाभिषेक की चर्चा के पश्चात् क्षत्र संज्ञक पूर्वोक्त परमाणुओं, जिनके अभिषेक की चर्चा ३७ वें अध्याय में की गयी है, के महाभिषेक की चर्चा करते हैं। जब कोई क्षत्रिय संज्ञक परमाणु, जो पूर्वोक्तानुसार अभिषिक्त हो चुका होता है, ब्रह्म संज्ञक पदार्थों के द्वारा पुनः अभिषिक्त किया जाता है, उस समय वह क्षत्रिय परमाणु महाभिषिक्त माना जाता है। इस समय वह परमाणु अति व्यापक बल आदि गुणों से युक्त हो जाता है, जिसके कारण वह सभी असुरादि बाधक पदार्थों को नियंत्रित करके सभी लोकों को प्राप्त करने में सक्षम होता है। यहाँ लोकों का तात्पर्य सभी प्रकाशित, अप्रकाशित एवं अन्तरिक्ष, इन तीनों लोकों के साथ-२ {लोकाः = एता वै (भूर्भुवः स्वरिति) व्याहृतय इमे (पृथिव्यादयः) लोकाः (तै.ब्रा.२.२.४.३), छन्दांसि वै सर्वे लोकाः (जै.ब्रा.१.३३२)} भूरादि व्याहृति संज्ञक रश्मियां एवं विभिन्न छन्द रश्मियां भी हैं। वस्तुतः कोई भी क्षत्रिय परमाणु इन रश्मियों को प्राप्त करके ही अति सामर्थ्यवान् होकर सभी लोकों को व्याप्त करने में समर्थ होता है। इनके कारण ही वह इन्द्र तत्त्व की सभी विशेषताओं को भी प्राप्त कर लेता है। यहाँ "अयं सर्वेषां राज्ञां................आधिपत्यं" का व्याख्यान पूर्व खण्ड की अन्तिम कण्डिका के समान समझा जा सकता है। यहाँ इन्द्र तत्त्व के गुणों को ही वर्णित किया गया है। ये ही गुण इस प्रकरण में क्षत्रिय परमाणुओं में प्रकट होते हैं। इसके अतिरिक्त ग्रन्थकार लिखते हैं कि इन गुणों को प्राप्त करके वे क्षत्रिय परमाणु सब ओर निर्बाध गमन करने में समर्थ होकर सार्वभौम रूप को प्राप्त करके सम्पूर्ण आयु एवं संगत्यादि गुणों से पूर्णरूप से युक्त होकर {समुद्रः = समुद्रः आदित्यः (नि.१३.१६ - वै.को. से उद्धृत), रुक्मो वै समुद्रः (श.७.४.२.५), तेजोऽसि तपसि श्रितम्। समुद्रस्य प्रतिष्ठा (तै.ब्रा.३.११.१.३), समुद्रोऽसि तेजसि श्रितः। अपां प्रतिष्ठा (तै.ब्रा.३.११.१.४)। आ अन्तात् = समुद्रतीरपर्यन्तं सार्वभौमत्वं देशव्याप्तिः (सायणभाष्यम्)। आपरार्धात् = परार्धशब्दाभिधेयकालसंख्यापर्यन्तं सार्वायुषत्वं कालव्याप्तिः (सायणभाष्यम्)} सभी प्रकाशित और तेजस्वी लोकों में एक सिरे से दूसरे सिरे तक तथा सम्पूर्ण काल तक अर्थात् निरंतर गमन वा व्याप्ति करने में

समर्थ होते हैं। ऐसे परमाणु एकाकी स्वयं प्रकाशमान होते हुए सबको प्रकाशित करने वाले होते हैं। इस प्रकार के गुणों की उत्पत्ति तभी होती है, जब क्षत्रिय संज्ञक परमाणुओं को ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ इन्द्र तत्त्व की भाँति महाभिषिक्त करते हैं। इस महाभिषेक की प्रक्रिया में एक अनिवार्य नियम भी होता है, जिसे अगली कण्डिका में वर्णित किया गया है। यहाँ उसी नियम को **'शपथ'** कहा गया है।।

{रात्रिः = वारुणी रात्रिः (तै.ब्रा.१.७.१०.१), सोमो रात्रिः (श.३.४.४.१५), आग्नेयी वै रात्रिः (तै.ब्रा.१.१.४.२), पञ्चच्छन्दांसि रात्रौ शंसन्त्यनुष्टुभं गायत्रीमुष्णिहं त्रिष्टुभं जगतीमित्येतानि वै रात्रिच्छन्दांसि (कौ.ब्रा.३०.११)। इष्टम् = इष्टानि कान्तानि वा, क्रान्तानि वा, गतानि वा, मतानि वा, नतानि वा (नि.१०.२६)} पूर्वोक्त क्षत्रिय संज्ञक परमाणु सोम पदार्थ एवं गायत्री, अनुष्टुप्, उष्णिक्, त्रिष्टुप् एवं जगती छन्द रश्मियों से प्रकट होता है और वह इन्हीं रश्मियों में प्राण, अपान एवं व्यान संज्ञक वरणीय वरुण रश्मियों से युक्त होकर आग्नेय रूप को प्राप्त करता है। इस रूप में वह परमाणु प्रकृष्टता से सर्वत्र गमन करता हुआ सबका आकर्षक व प्रकाशक होने लगता है। इसके साथ ही वह परमाणु अन्य परमाणुओं को अतिक्रान्त करता हुआ सबकी ओर झुकता हुआ उन्हें भी अपनी ओर झुकाने में समर्थ होता है। इस प्रकार ऐसे सभी क्षत्रिय परमाणु विशेष संयोजक और व्यापन बलों से युक्त होकर नाना प्रकार के बल और क्रियाओं से युक्त होते हैं, साथ ही वे अपने सम्पर्क में आये विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को भी इन गुणों से परिपूर्ण करने में सक्षम होते हैं। यहाँ ग्रन्थकार लिखते हैं कि इन गुणों को प्राप्त करने की शर्त यह होती है कि ऐसे क्षत्रिय परमाणु कभी भी अपने अभिषेक्ता ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों से पृथक् नहीं होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये सभी गुण ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों के द्वारा ही उत्पन्न किये जाते हैं। इनके अभाव में क्षत्रिय संज्ञक परमाणुओं की सभी अच्छी क्रियाएं उनके उत्पादन और संगमन आदि गुण क्षीण वा नष्ट होकर उनका क्षत्रिय गुण भी नष्ट हो जाता है। इसी शर्त का संकेत पूर्व कण्डिका में किया गया है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान विज्ञ पाठक पूर्व दो कण्डिकाओं के सदर्भ में स्वयं ही समझ सकते हैं। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह कण्डिका पूर्व कण्डिकाओं में वर्णित तथ्यों का पिष्टपेषण करती है। इस कण्डिका का महत्व आधियाज्ञिक पक्ष में तो स्पष्टतः आवश्यक है परन्तु आधिदैविक पक्ष में इसे ऊपरी कण्डिकाओं के विज्ञान को परिपुष्ट करने वाला ही माना जा सकता है। इस कारण हम इस पर व्याख्यान लिखकर विषय की पुनरुक्ति करना आवश्यक नहीं समझते।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में जिस प्रक्रिया से गुजरते हुए सूक्ष्म विद्युदावेशित कण उत्पन्न होकर नाना प्रकार के बलों से सम्पन्न होते हैं, उसी प्रकार विभिन्न निरावेशित कण भी उत्पन्न होकर नाना प्रकार के बलों से युक्त होते हैं। इससे संकेत मिलता है कि Electrons एवं Photons वा Neutrinos की उत्पत्ति-प्रक्रिया एवं गुणों में बहुत कुछ समानता भी होती है। इसी प्रकार Proton एवं Neutron तथा अन्य कणों के विषय में भी समझना चाहिए। इन सभी की उत्पत्ति प्रक्रिया एवं बलों में विभिन्न प्राण एवं छन्दादि रश्मियों की अनिवार्य भूमिका होती है। इनके बिना इन सभी कणों की उत्पत्ति ही नहीं हो सकती है, तब इनमें बल आदि के उत्पन्न होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। सभी प्रकार के कण न केवल इन रश्मियों से उत्पन्न होते हैं, अपितु इन्हीं में प्रतिष्ठित होते हुए सतत बल भी प्राप्त करते हैं।।

॥ इति ३९.१ समाप्तः ॥

अथ ३९.२ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. अथ ततो ब्रूयाच्चतुष्टयानि वानस्पत्यानि संभरत-नैयग्रोधान्यौदुम्बराण्याश्वत्थानि प्लाक्षाणीति।।
क्षत्रं वा एतद्वनस्पतीनां यन्न्यग्रोधो; यन्नैयग्रोधानि सम्भरन्ति, क्षत्रमेवास्मिंस्तद्दधाति; भौज्यं वा एतद्वनस्पतीनां यदुदुम्बरो; यदौदुम्बराणिसम्भरन्ति, भौज्यमेवास्मिंस्तद्दधाति; साम्राज्यं वा एतद्वनस्पतीनां यदश्वत्थो; यदाश्वत्थानि सम्भरन्ति, साम्राज्यमेवास्मिंस्तद्दधाति; स्वाराज्यं च ह वा एतद्वैराज्यं च वनस्पतीनां यत्प्लक्षो; यत्प्लाक्षाणि सम्भरन्ति, स्वाराज्यवैराज्ये एवास्मिंस्तद्दधाति।।
अथ ततो ब्रूयाच्चतुष्टयान्यौषधानि सम्भरत तोक्मकृतानि,-व्रीहीणां, महाव्रीहीणां, प्रियंगूनां, यवानामिति।।
क्षत्रं वा एतदोषधीनां यद्व्रीहयो; यद्व्रीहीणां तोक्म सम्भरन्ति; क्षत्रमेवास्मिंस्तद्दधाति; साम्राज्यं वा एतदोषधीनां यन्महाव्रीहयो; यन्महाव्रीहीणां तोक्म सम्भरन्ति, साम्राज्यमेवास्मिंस्तद्दधाति; भौज्यं वा एतदोषधीनां यत्प्रियंगवो यत्प्रियंगूनां तोक्म सम्भरन्ति; भौज्यमेवास्मिंस्तद्दधाति, सैनान्यं वा एतदोषधीनां यद्यवा; यद्यवानां तोक्म सम्भरन्ति; सैनान्यमेवास्मिंस्तद्दधाति।।२।।

व्याख्यानम्- ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों के द्वारा क्षत्रिय संज्ञक परमाणुओं के महाभिषेक के लिए विभिन्न प्रकार की रश्मियों से युक्त चार प्रकार के पदार्थों का संग्रह किया जाता है, वे चार प्रकार के पदार्थ हैं- (१) न्यग्रोध, (२) उदुम्बर, (३) अश्वत्थ, (४) प्लक्ष। इन चारों ही पदार्थों के विषय में खण्ड ७.३०-३१ द्रष्टव्य हैं।।

अव क्रमशः इन उपर्युक्त चारों प्रकार के पदार्थों की महत्ता बतलाते हुए कहते हैं कि न्यग्रोध संज्ञक पदार्थ विभिन्न रश्मियुक्त पदार्थों में क्षत्ररूप होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये पदार्थ तीव्र भेदक शक्ति-सम्पन्न होने से नाना प्रकार की बाधक असुरादि रश्मियों को नष्ट करने में सक्षम होते हैं। जब इन पदार्थों को क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों में संगृहीत किया जाता है, उस समय ये क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ अपने पूर्व वा कारणरूप क्षत्र संज्ञक सूक्ष्म पदार्थों को भी अपने अन्दर धारण करने लगते हैं। इसका आशय यह है कि न्यग्रोध संज्ञक पदार्थों के द्वारा क्षत्रिय संज्ञक परमाणु आदि पदार्थों में भेदन शक्ति विशेषरूप से उत्पन्न वा समृद्ध होती है। उदुम्बर संज्ञक पदार्थ अर्थात् ऊर्जा, संयोजक एवं अवशोषक बलों से विशेषतः युक्त होती है। इसी कारण इसको यहाँ भौज्य कहा है। जब इस पदार्थ को क्षत्रिय संज्ञक परमाणुओं में संगृहीत किया जाता है, तब क्षत्रिय संज्ञक परमाणुओं में संयोजक वा अवशोषक बलों की विशेष समृद्धि होती है। अश्वत्थ नामक रश्मि आदि पदार्थ सभी वनस्पति संज्ञक पदार्थों में विशेष और सम्यग् रूप से प्रकाशमान होते हैं। जब इन पदार्थों को क्षत्रिय परमाणुओं के अन्दर संगृहीत किया जाता है, तव वे क्षत्रिय परमाणु सम्यग् रूप से प्रकाश आदि गुणों को धारण करने वाले होते हैं। प्लक्ष संज्ञक रश्मि आदि पदार्थ विविध प्रकाशशीलता एवं स्व प्रकाशशीलता गुणों को उत्पन्न करने वाले होते हैं। जव इन पदार्थों का क्षत्रिय परमाणुओं में संग्रह होता है, तव वे क्षत्रिय परमाणु स्वयं प्रकाशशील होकर विविध रूपों में प्रकाशित होने लगते हैं।

इस प्रकार इन चारों ही प्रकार के पदार्थों को क्षत्रिय संज्ञक परमाणु ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों की प्रेरणा से प्राप्त व धारण करके उपर्युक्त गुणों से परिपूर्ण हो जाते हैं।।

उपर्युक्त पदार्थों के संग्रहण के अनन्तर चार प्रकार के अन्य पदार्थों का भी संग्रहण क्षत्रिय परमाणुओं में किया जाता है। वे चारों प्रकार के पदार्थ {ओषधिः = ओषधयो बर्हिः (ऐ.५.२८), ओषधयः खलु वै वाजः (तै.ब्रा.१.३.७.१)। तोकम् = तुज हिंसाबलादाननिकेतनेषु (चुरा.) धातोः संज्ञायां घः प्रत्ययः (वै.को. - आ.राजवीर शास्त्री), तोकं तुद्यतेः (नि.१०.७), अपत्यनाम (निघं.२.२)} नाना प्रकार की ऐसी छन्द रश्मियों के रूप में विद्यमान होते हैं, जो तीक्ष्ण उष्णता को धारण करते हुए नाना प्रकार के बलों की सद्यः उत्पादिका होती हैं। ये चार प्रकार के पदार्थ निम्नानुसार हैं-

(१) व्रीहिः = {व्रीहिः = व्रीहयः शक्वर्यः (जै.ब्रा.१.३२३), रोहिता इव वै व्रीहयो रोहित इवायं लोको, रोहित इवासौ (काठ.१२.४)} ७.१४.१ में वर्णित रोहित नामक पारुच्छेपी छन्द रश्मियों में से महती शक्तिशालिनी शक्वरी छन्दस्क रश्मियां व्रीहि कहलाती हैं। इन छन्द रश्मियों के विषय में खण्ड ५.१० भी द्रष्टव्य है। ये रश्मियां प्रबल आकर्षण बलयुक्त होती हैं। इसके साथ ही ये आच्छादन गुणों से भी युक्त होती हैं।

(२) महाव्रीहि = उपर्युक्त व्रीहि छन्द रश्मियों की अपेक्षा अधिक व्यापक छन्द रश्मियां महाव्रीहि कहलाती हैं। हमारे विचार में रोहित पारुच्छेपी छन्द रश्मियों में विद्यमान अष्टि एवं अत्यष्टि छन्द रश्मियां ही महाव्रीहि कहलाती हैं, क्योंकि ये शक्वरी छन्द रश्मियों की अपेक्षा अधिक व्यापक होती हैं।

(३) प्रियंगु = {प्रियंगु = एतन्मरुताः स्वं पयो यत् प्रियङ्गवः (काठ.१०.११), (पयः = पयः अन्ननाम - निघं.२.७, पयः ज्वलतोनाम - निघं.१.१७ - वै.को. से उद्धृत, यत्पयस्तद्रेतः - गो.उ.२.६)} संयोजक बलों से युक्त ऐसी मरुद् रश्मियां, जो दाहक गुणों से युक्त होती हैं, प्रियंगु कहलाती हैं। आप्टेकोश के अनुसार 'प्रियंगुः' शब्द प्रिय+गम्+कु से व्युत्पन्न होता है। इससे संकेत मिलता है कि ये मरुद् रश्मियां कमनीय परमाणु आदि पदार्थों को प्राप्त वा व्याप्त करने में विशेषरूप से समर्थ होती हैं।

(४) यवः = {यवः = यवा रेवतयः (जै.ब्रा.१.३३३; २.३४), वरुण्यो यवः (श.४.२.१.११), विड् वै यवः (श.१३.२.६.८), (रेवती = गायत्री वै रेवती - तां.१६.५.१६)} पूर्वोक्त रोहित पारुच्छेपी छन्द रश्मियों में विद्यमान गायत्री छन्दस्क रश्मियां ही यव कहलाती हैं। ये छन्द रश्मियां विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त वा आच्छादित होकर संयोजक और वियोजक बलों को सक्रिय करती हैं।

इस प्रकार ये चार प्रकार की रश्मियां भी न्यग्रोध आदि रश्मियों के साथ-२ क्षत्रिय परमाणुओं में व्याप्त हो जाती हैं।।

उपर्युक्त चारों औषधि संज्ञक छन्द रश्मिरूप पदार्थों में से व्रीहि संज्ञक रश्मियां क्षत्ररूप होती हैं। जब ये छन्द रश्मियां अपने सद्यः उत्पन्न तीव्र बलों के साथ क्षत्रिय परमाणुओं में संगृहीत होती हैं, तब वे क्षत्रिय परमाणु क्षत्ररूप सूक्ष्म पदार्थों के गुणों को धारण करके तीव्र भेदक बलों से युक्त होते हैं। उपर्युक्त महाव्रीहि संज्ञक छन्द रश्मियां सम्यग् रूप से प्रकाशित होती हुई क्षत्रिय संज्ञक परमाणुओं में संगृहीत होकर उन्हें भी सम्यग् रूपेण प्रकाशित करती हैं। उपर्युक्त प्रियंगु संज्ञक मरुद् रश्मियां भौज्यरूप होती हैं अर्थात् वे अवशोषक बलों से युक्त होकर अन्य पदार्थों को अवशोषित करने किंवा उनके द्वारा अवशोषित होने की विशेष प्रवृत्ति रखती हैं। जब ये रश्मियां क्षत्रिय संज्ञक परमाणुओं में संगृहीत होती हैं, तब उनके अन्दर भी अवशोषक बलों को उत्पन्न व समृद्ध करती हैं। उपर्युक्त यव संज्ञक गायत्री रश्मियां अन्य तीनों रश्मियों में सेनानीरूप होकर उनके समूहों में अग्रणी होती हैं। जब ये गायत्री रश्मियां क्षत्रिय परमाणुओं में संगृहीत होती हैं, तब उन परमाणुओं में अन्य छन्द रश्मियां भी संगृहीत होकर क्षत्रिय परमाणुओं को अन्य परमाणुओं का अग्रगामी बनाती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न निरावेशित कण नाना प्रकार की छन्द व मरुदादि रश्मियों को धारण करके तीव्र बलों से युक्त होकर इस ब्रह्माण्ड में व्यापकरूप से गमनागमन करते हैं। इन्हीं के कारण वे नाना प्रकार की छेदन-भेदन क्रियाओं से युक्त होकर अनेक संयोग-वियोग क्रियाओं को सम्पादित करते हुए सर्वत्र भ्रमण करते हैं। इन छन्द रश्मियों में गायत्री छन्द रश्मियां अग्रगामिनी होकर अन्य छन्द रश्मियों का नेतृत्व करती हैं। इन्हीं छन्दादि रश्मियों के कारण वे कण प्रकाश और ऊष्मा आदि गुणों से युक्त होते हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

ॐ इति ३९.२ समाप्तः ॐ

꧁ अथ ३९.३ प्रारभ्यते ꧂

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. अथास्मा औदुम्बरीमासन्दीं सम्भरन्ति; तस्या उक्तं ब्राह्मणमौदुम्बरश्चमसो वा पात्री वोदुम्बरशाखा; तानेतान् सम्भारान् सम्भृत्यौदुम्बर्यां पात्र्यां वा चमसे वा समावपेयुस्तेषु समोप्तेषु दधि मधु सर्पिरातपवर्ष्या आपोऽभ्यानीय प्रतिष्ठाप्यैतामासन्दीमभिमन्त्रयेत।।
बृहच्च ते रथंतरं च पूर्वौ पादौ भवतां, वैरूपं च वैराजं चापरौ, शाक्वररैवते शीर्षण्ये, नौधसं च कालेयं चानूच्ये, ऋचः प्राचीनातानाः सामानि तिरश्चीनवाया, यजूंष्यतीकाशा, यश आस्तरणं, श्रीरुपबर्हणं, सविता च ते बृहस्पतिश्च पूर्वौ पादौ धारयतां, वायुश्च पूषा चापरौ, मित्रावरुणौ शीर्षण्ये, अश्विनावनूच्ये इति।।
अथैनमेतामासन्दीमारोहयेत्।।
वसवस्त्वा गायत्रेण छन्दसा, त्रिवृता स्तोमेन, रथंतरेण साम्नाऽऽरोहन्तु, तानन्वारोह साम्राज्याय; रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन छन्दसा, पञ्चदशेन स्तोमेन, बृहता साम्नाऽऽरोहन्तु, तानन्वारोह, भौज्यायाऽऽदित्यास्त्वा जागतेन छन्दसा, सप्तदशेन स्तोमेन वैरूपेण साम्नाऽऽरोहन्तु; तानन्वारोह स्वाराज्याय; विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेन छन्दसैकविंशेन स्तोमेन, वैराजेन साम्नाऽऽरोहन्तु, तानन्वारोह वैराज्याय, मरुतश्च त्वाऽङ्गिरसश्च देवा अतिच्छन्दसा छन्दसा, त्रयस्त्रिंशेन स्तोमेन, रैवतेन साम्नाऽऽरोहन्तु, तानन्वारोह पारमेष्ठ्याय; साध्याश्च त्वाऽऽप्त्याश्च देवाः पाङ्क्तेन छन्दसा, त्रिणवेन स्तोमेन, शाक्वरेण साम्नाऽऽरोहन्तु तानन्वारोह राज्याय माहाराज्यायाऽऽधिपत्याय स्वावश्यायाऽऽतिष्ठायाऽऽरोहेत्येतामासन्दीमारोहयेत्।।
तमेतस्यामासन्द्यामासीनं राजकर्तारो ब्रूयुर्न वा अनभ्युत्क्रुष्टः क्षत्रियो वीर्यं कर्तुमर्हत्यभ्येनमुत्क्रोशामेति; तथेति; तं राजकर्तारोऽभ्युत्क्रोशन्तीमं जना अभ्युत्क्रोशत सम्राजं साम्राज्यं भोजं भोजपितरं स्वराजं स्वाराज्यं विराजं वैराज्यं परमेष्ठिनं पारमेष्ठ्यं राजानं राजपितरं, क्षत्रमजनि, क्षत्रियोऽजनि, विश्वस्य भूतस्याधिपतिरजनि, विशामत्ताऽजन्यमित्राणां हन्ताऽजनि, ब्राह्मणानां गोप्ताऽजनि, धर्मस्य गोप्ताऽजनीति।।
तमभ्युत्क्रुष्टमेवंविदभिषेक्ष्यन्नेतयर्चाऽभिमन्त्रयेत।।३।।

व्याख्यानम्– तदनन्तर पूर्वोक्त प्रकरण को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि क्षत्रियरूप परमाणुओं के महाभिषेक के लिए ३७ वें अध्याय में वर्णित अभिषेक के विभिन्न पदार्थों के समान विविध पदार्थों की आवश्यकता होती है। इस कार्य के लिए सर्वप्रथम ८.५.१ में वर्णित औदुम्बरी आसन्दी नामक ऊर्जा क्षेत्र विकसित होता है। इसके लिए इन परमाणुओं के परितः उदुम्बर रश्मियां संगृहीत की जाती हैं। इस औदुम्बरी क्षेत्र को पूर्वोक्तवत् व्यवस्थित किया जाता है। यहाँ 'तस्या उक्तं ब्राह्मणम्' का तात्पर्य खण्ड ८.

५ की तृतीय कण्डिका का भाग **"तस्यै प्रादेशमात्राः पादाः स्युररत्निमात्राणि शीर्षण्यानूच्यानि; मौञ्जं विवयनं, व्याघ्रचर्माऽऽस्तरणम्"** ग्रहणीय है, ऐसा आचार्य सायण का भी मत है। इस भाग का व्याख्यान वहीं द्रष्टव्य है। इस प्रक्रिया में अन्य आवश्यक पदार्थ इस प्रकार है-

(१) **औदुम्बर चमस** = इनके विषय में ८.५.१ द्रष्टव्य है। इस प्रकार के पदार्थ पात्ररूप होकर विभिन्न सूक्ष्म रश्मियों का भक्षण व अवशोषण करते हैं। इसके साथ ही ये पदार्थ उन भक्षित वा अवशोषित पदार्थों की रक्षा भी करते हैं।

(२) **औदुम्बर शाखा** = इसके विषय में भी वहीं द्रष्टव्य है।

ये दोनों पदार्थ उन क्षत्रिय परमाणुओं के महाभिषेक हेतु उनके निकट एकत्र होने लगते हैं। उस समय विभिन्न रश्मि आदि पदार्थ इन दोनों पदार्थों के द्वारा अच्छी प्रकार मिश्रित किये जाते हैं। इनके मिश्रित होने पर 'दधि' 'मधु' 'सर्पिः' आतपवर्ष्या "आपः" आदि पदार्थ, जिनका वर्णन भी ८.५.१ में किया गया है। ये सभी पदार्थ उदुम्बर चमस में प्रतिष्ठित होकर आसन्दी क्षेत्र को सब ओर से देदीप्यमान बनाने में सहयोग करते हैं।।

इन कण्डिकाओं का व्याख्यान खण्ड ८.१२ की तृतीय कण्डिका के समान समझ सकते हैं। वहाँ यह प्रकरण इन्द्र तत्त्व के महाभिषेक की प्रक्रिया के रूप में दर्शाया गया है, जबकि यहाँ यह प्रकरण किसी भी क्षत्रिय परमाणु के महाभिषेक को दर्शाता है।।+।।

इस कण्डिका का व्याख्यान खण्ड ८.१२ की चौथी कण्डिका के समान विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं। ये दोनों कण्डिकाएं स्वल्प पाठभेद के अतिरिक्त सर्वथा समान हैं। केवल प्रकरण वा परिस्थितियों का ही भेद है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान खण्ड ८.१२ की पांचवीं कण्डिका के समान विज्ञ पाठक स्वयमेव समझ लेवें। इन दोनों कण्डिकाओं में किंचित् पाठभेद ही विद्यमान है। पूर्व कण्डिका में विद्यमान 'विश्वदेवाः' के स्थान पर 'राजकर्त्तारः' पद विद्यमान है। यहाँ 'राजकर्त्तारः पद का अर्थ ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ हैं, क्योंकि ये पदार्थ ही क्षत्रिय परमाणुओं को प्रकाशमान करते हैं।।

इस कण्डिका का व्याख्यान भी खण्ड ८.१२ की अन्तिम कण्डिका के समान समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न प्रकार के कणों, विशेषकर निरावेशित कणों को तीव्र तेज और बल से युक्त करके ब्रह्माण्ड के अन्दर दूर-२ तक व्याप्त होने में समर्थ बनाने के लिए अनेक प्रकार की रश्मियों एवं उनके नानाविध कर्मों की भूमिका होती है। इन रश्मियों में विभिन्न प्राण, छन्द व मरुदादि रश्मियां भी सम्मिलित हैं। ऐसे तीव्र ऊर्जायुक्त कणों को ये रश्मियां सब ओर से आच्छादित किये रहती हैं। इन रश्मियों में ३ गायत्री, २ उष्णिक् और २ अतिच्छन्द रश्मियां भी सम्मिलित हैं। इन सभी रश्मियों के विषय में विस्तार से जानने के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पठनीय है। इन रश्मियों के प्रभाव से ये कण तीव्र वेग और बल से युक्त होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विचरण करते हैं। ये कण विविध प्रकार की दीप्तियों से युक्त होकर विविध रूपों में प्रकाशित होते हैं। ये विभिन्न तारों, ग्रह, उपग्रह आदि लोकों और सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में अपनी तीव्र ऊर्जा के कारण गमनागमन करने में सक्षम होते हैं। इन पर कोई विद्युत् आवेश नहीं होता। ये तरंग और कण दोनों की ही भाँति व्यवहार करने में सक्षम होते हैं।।

॥ इति ३९.३ समाप्तः ॥

꧁ अथ ३९.४ प्रारभ्यते ꧂

**** तमसो मा ज्योतिर्गमय ****

१. निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय, भौज्याय स्वाराज्याय वैराज्याय पारमेष्ठ्याय राज्याय माहाराज्यायाऽऽधिपत्याय स्वावश्यायाऽऽतिष्ठाय, सुक्रतुरिति।। तमेतस्यामासन्द्यामासीनमेवंवित्पुरस्तात्तिष्ठन् प्रत्यङ्मुख औदुम्बर्याऽऽर्द्रया शाखया सपलाशया जातरूपमयेन च पवित्रेणान्तर्धायाभिषिञ्चतीमा आपः शिवतमा इत्येतेन तृचेन, देवस्य त्वेति च यजुषा, भूर्भुवः स्वरित्येताभिश्च व्याहृतिभिः।।४।।

व्याख्यानम्- इस सम्पूर्ण खण्ड का व्याख्यान खण्ड ८.१३ के समान समझा जा सकता है। यहाँ भेद केवल यह है कि पूर्वखण्ड में क्षत्रिय परमाणुओं के आदित्य लोकों में ही रमण करने की क्षमता की चर्चा की गयी है, जबकि यहाँ महाभिषिक्त क्षत्रिय परमाणु को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विचरण करने का सामर्थ्य प्राप्त हो जाता है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इसे भी पूर्ववत् समझें। भेद यहाँ यह अवश्य है कि खण्ड ८.१३ में विद्युत् आवेशित कण की चर्चा है, जबकि यहाँ निरावेशित कण की। वहाँ आवेशित कण के आदित्य लोक में गमनागमन की चर्चा है, जबकि यहाँ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विचरण की चर्चा है।।

꧁ इति ३९.४ समाप्तः ꧂

꧁ अथ ३९.५ प्रारभ्यते ꧂

⁂ तमसो मा ज्योतिर्गमय ⁂

१. प्राच्यां त्वा दिशि वसवो देवाः षड्भिश्चैव पञ्चविंशैरहोभिरभिषिञ्चन्त्वेतेन च तृचेनैतेन च यजुषैताभिश्च व्याहृतिभिः साम्राज्याय, दक्षिणस्यां त्वा दिशि रुद्रा देवाः षड्भिश्चैव पञ्चविंशैरहोभिरभिषिञ्चन्त्वेतेन च तृचेनैतेन च यजुषैताभिश्च व्याहृतिभिर्भौज्याय, प्रतीच्यां त्वा दिश्यादित्या देवाः षड्भिश्चैव पञ्चविंशैरहोभिरभिषिञ्चन्त्वेतेन च तृचेनैतेन च यजुषैताभिश्च व्याहृतिभिः स्वाराज्याय, उदीच्यां त्वा दिशि विश्वे देवाः षड्भिश्चैव पञ्चविंशैरहोभिरभिषिञ्चन्त्वेतेन च तृचेनैतेन च यजुषैताभिश्च व्याहृतिभिर्वैराज्याय, ऊर्ध्वायां त्वा दिशि मरुतश्चाङ्गिरसश्च देवाः षड्भिश्चैव पञ्चविंशैरहोभिरभिषिञ्चन्त्वेतेन च तृचेनैतेन च यजुषैताभिश्च व्याहृतिभिः पारमेष्ठ्याय, अस्यां त्वा ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि साध्याश्चाऽऽप्त्याश्च देवाः षड्भिश्चैव पञ्चविंशैरहोभिरभिषिञ्चन्त्वेतेन च तृचेनैतेन च यजुषैताभिश्च व्याहृतिभी राज्याय माहाराज्यायाऽऽधिपत्याय स्वावश्यायाऽऽतिष्ठायेति स परमेष्ठी प्राजापत्यो भवति।।

स एतेनैन्द्रेण महाभिषेकेणाभिषिक्तः क्षत्रियः सर्वा जितीर्जयति, सर्वांल्लोकान् विन्दति सर्वेषां राज्ञां श्रैष्ठ्यमतिष्ठां परमतां गच्छति; साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं माहाराज्यमाधिपत्यं जित्वाऽस्मिंल्लोके स्वयंभूः स्वराळमृतोऽमुष्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः सम्भवति, यमेतेनैन्द्रेण महाभिषेकेण क्षत्रियं शापयित्वाऽभिषिञ्चति।।५।।

व्याख्यानम्- विज्ञ पाठक इस खण्ड का व्याख्यान खण्ड ८.१४ की भाँति स्वयं समझ सकते हैं। वहाँ इन कण्डिकाओं का कुछ अधिक विस्तृत रूप दिया गया है, जो यहाँ नहीं है। इस कारण उस व्याख्यान में से समुचित भाग का व्याख्यान पृथक् करके इस खण्ड के व्याख्यान के रूप में ग्रहण कर लेना चाहिए। यहाँ भेद यह भी है कि वहाँ विद्युदावेशित कणों अर्थात् इन्द्र तत्त्व की चर्चा है, जबकि यहाँ अन्य क्षत्रिय परमाणुओं की चर्चा की गयी है। इनका वैज्ञानिक भाष्यसार भी तद्वत् समझा जा सकता है।।+।।

꧁ इति ३९.५ समाप्तः ꧂

ॐ अथ ३९.६ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. इन्द्रियं वा एतदस्मिँल्लोके यद्दधि, यद्दध्नाऽभिषिञ्चतीन्द्रियमेवास्मिंस्तद्दधाति; रसो वा एष ओषधिवनस्पतिषु यन् मधु; यन् मध्वाऽभिषिञ्चति रसमेवास्मिंस्तद्दधाति; तेजो वा एतत्पशूनां यद्घृतं, यद्घृतेनाभिषिञ्चति तेज एवास्मिंस्तद्दधाति; अमृतं वा एतदस्मिँल्लोके यदापो, यदद्भिरभिषिञ्चत्यमृतत्वमेवास्मिंस्तद्दधाति।।
सोऽभिषिक्तोऽभिषेक्त्रे ब्राह्मणाय हिरण्यं दद्यात्, सहस्रं दद्यात्, क्षेत्रं चतुष्पाद्दद्याद्, अथाप्याहुरसंख्यातमेवापरिमितं दद्यादपरिमितो वै क्षत्रियोऽपरिमितस्यावरुद्ध्या इति।।
अथास्मै सुराकंसं हस्त आदधाति-
स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुत इति।।
तं पिबेद्-

> यदत्र शिष्टं रसिनः सुतस्य, यदिन्द्रो अपिबच्छचीभिः,।
> इदं तदस्य मनसा शिवेन, सोमं राजानमिह भक्षयामि।
> **अभि त्वा वृषभा सुते, सुतं सृजामि पीतये।**
> **तृम्पा व्यश्नुहो मदमिति।।**

यो ह वाव सोमपीथः सुरायां प्रविष्टः, सहैवैतेनैन्द्रेण महाभिषेकेणाभिषिक्तस्य क्षत्रियस्य भक्षितो भवति; न सुरा।।
तां पीत्वाऽभिमन्त्रयेतापाम सोमं, शं नो भवेति।।
तद्यथैवादः प्रियः पुत्रः पितरं, प्रिया वा जाया पतिं, सुखं शिवमुपस्पृशत्याविस्रसः, एवं हैवैतेनैन्द्रेण महाभिषेकेणाभिषिक्तस्य क्षत्रियस्य सुरा वा सोमो वाऽन्यद्वाऽन्नाद्यं सुखं शिवमुपस्पृशत्याविस्रसः।।६।।

व्याख्यानम्- विभिन्न कणों के अभिसेचन की क्रियाओं के कुछ साधनभूत द्रव्यों की महत्ता वतलाते हुए पुनः लिखते हैं कि 'दधि' अर्थात् विभिन्न संयोज्य छन्दादि रश्मियां, (देखें ७.२६.१) इस सृष्टि में विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों की वल-वीर्यरूपा होती हैं। जव इन रश्मियों का अभिसेचन किसी परमाणु पर किया जाता है, उस समय ये रश्मियां अभिषिक्त परमाणु में नाना प्रकार से वल, वीर्य का धारण कराती हैं। इस प्रकार किसी भी परमाणु में जो भी वल विद्यमान होता है, वह दधिरूपा छन्दादि रश्मियों के भी कारण होता है। यहाँ 'दधि' शब्द से यह भी स्पष्ट होता है कि ये रश्मियां धारण गुणों से विशेष समृद्ध होकर विभिन्न परमाणुओं के अन्दर भी इन गुणों को उत्पन्न वा समृद्ध करती हैं। 'मधु'-रूपा प्राण नामक प्राण रश्मियां विभिन्न रश्मिसमूहों एवं दाहक गुणों से युक्त विभिन्न छन्दादि रश्मियों एवं आकाश रश्मियों की रसरूप होती है। इसके साथ ही ये रश्मियां {ओषधि = ओषधयो बर्हिः (ऐ.५.२८), ओषधयः खलु वै वाजः (तै.ब्रा.१.३.७.१), औषधो वै सोमो राजा (ऐ.३.४०)} देदीप्यमान सोम रश्मियों की भी रस वा वीज रूप होती हैं। जव ये प्राण रश्मियां किसी परमाणु को अभिसिंचित करती हैं, तव उस परमाणु के अन्दर ऐसे ही गुणों को उत्पन्न वा समृद्ध करके नाना प्रकार की छन्दादि रश्मियों को उत्पन्न करने में सहायक होती हैं। 'घृम्' रश्मियों को ही घृतरूप कहा जाता है। ये 'घृम्' रश्मियां विभिन्न छन्दादि रश्मियों

का तेजोरूप होती हैं। जब ये रश्मियां किसी परमाणु को अभिसिंचित करती हैं, तब उस परमाणु के अन्दर तेज को उत्पन्न वा समृद्ध करती हैं। आपः संज्ञक विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियां अमृत रूप होती हैं। जब ये रश्मियां किसी परमाणु को अभिषिक्त करती हैं, तब उस परमाणु के विभिन्न गुणों अर्थात् बल, क्रिया आदि को अमरत्व अर्थात् निरन्तरता प्रदान करती हैं, जिससे वह परमाणु सृष्टिकाल तक नानाविध सृजन कर्मों को सम्पादित करते हुए विचरता रहता है।।

ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों के द्वारा क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थों को अभिषिक्त करने की चर्चा के पश्चात् अन्य विषय प्रारम्भ करते हुए कहते हैं कि अभिषिक्त क्षत्रिय परमाणुओं का उनके अभिषेक्ता ब्राह्मण पदार्थों पर भी प्रभाव होता है, उस प्रभाव को यहाँ दर्शाते हुए कहते हैं कि अभिषिक्त क्षत्रिय परमाणु ब्राह्मणरूप पदार्थों को निम्न पदार्थ प्रदान करते हैं-

(१) हिरण्यम् = इस पदार्थ के प्रदान करने से ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ भी तेजयुक्त हो जाते हैं। यद्यपि क्षत्रिय संज्ञक परमाणुओं में तेज की उत्पत्ति ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों के द्वारा ही होती है, पुनरपि ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों का तेज अतिमन्द होता है। जब ये पदार्थ क्षत्रिय संज्ञक परमाणुओं को अभिषिक्त करते हैं, तब न केवल वे क्षत्रिय परमाणुओं को अपेक्षाकृत अधिक तेजयुक्त करते हैं, अपितु स्वयं भी अपेक्षाकृत अधिक तेजयुक्त स्वरूप को प्राप्त करते हैं, मानो वे अव्यक्त तेज से व्यक्त तेज को प्राप्त करते हैं।

(२) सहस्रम् = जब ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ क्षत्रिय संज्ञक परमाणुओं को अभिषिक्त करते हैं, तब वे न केवल उन्हें बहुविध बलसम्पन्न करते हैं, अपितु स्वयं भी व्यक्त बलों से युक्त हो जाते हैं। वे ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ क्षत्रिय परमाणुओं में असंख्य बल रश्मियों के रूप में प्रकट होते हैं।

(३) क्षेत्रम् = अभिषिक्त क्षत्रिय परमाणु अभिषेक्ता ब्राह्मण पदार्थों का क्षेत्ररूप होते हैं। इसका आशय यह है कि वे ब्राह्मण पदार्थ क्षत्रिय परमाणुओं में प्रविष्ट होकर उन्हीं में बस जाते हैं अर्थात् वे क्षत्रिय परमाणु ब्राह्मण पदार्थों का प्रतिष्ठा वा आधार रूप हो जाते हैं।

(४) चतुष्पात् = अभिषिक्त क्षत्रिय परमाणु अपने अभिषेक्ता ब्राह्मण पदार्थों को विभिन्न चतुष्पाद् छन्द रश्मियां प्रदान करके उन्हें नाना प्रकार की क्रियाओं से युक्त करते हैं किंवा वे ब्राह्मण रश्मियां चतुष्पाद् छन्द रश्मियों के साथ संयुक्त होकर चतुष्पाद् छन्द रश्मियों के रूप में ही प्रकट होने लगती हैं।

इन चार पदार्थों के साथ-२ क्षत्रिय परमाणु ब्राह्मण पदार्थों को असंख्य सूक्ष्म पदार्थों से युक्त करते हैं। वे क्षत्रिय परमाणु स्वयं भी असंख्य सूक्ष्म रश्मियों से युक्त होते हैं। वे उन सभी अर्थात् असंख्य रश्मि आदि पदार्थों को ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों से युक्त करने के कारण स्वयं भी ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों के साथ मिश्रित होकर असंख्य प्रकार के व्यवहारों से युक्त होने लगते हैं।।

इस कण्डिका का व्याख्यान खण्ड ८.८ में द्रष्टव्य है।।

उस समय दो छन्द रश्मियां निम्न क्रमानुसार उत्पन्न होती हैं-

(१) "यदत्र शिष्टं रसिनः..................भक्षयामि।" यह मंत्र यजु.१९.३५ में कुछ पाठभेद से निम्न प्रकार विद्यमान है-

यदत्रं रिप्तꣳरसिनंः सुतस्य यदिन्द्रोऽअपिंबच्छचींभिः।
अहं तदंस्य मनंसा शिवेन सोमꣳराजांनमिह भंक्षयामि।

इसकी उत्पत्ति हैमवर्चिः ऋषि {हिमम् = हिम पुनर् हन्तेर्वा हिनोतेर्वा (नि.४.२७)} अर्थात् बार-२ प्राप्त और प्रेरित करने वाली तेजस्विनी सूक्ष्म प्राण रश्मियों से होती है। हमारे मत में प्राण, व्यान एवं सूत्रात्मा वायु का मिश्रित रूप ही हैमवर्चि ऋषि हो सकता है। इसका देवता सोम एवं छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से क्षत्रिय परमाणु मनस्तत्त्व की सूक्ष्म तेजस्विनी रश्मियों के द्वारा सम्पीडित एवं देदीप्यमान सोम रश्मियों को अवशोषित करके इन्द्ररूप प्राप्त करता है अर्थात् वह तीव्र बल और तेज से युक्त होकर विशेष क्रियाशील हो उठता है।

(२) अभि त्वां वृषभा सुते सुतं सृंजामि पीतये। तृम्पा व्यंश्नुही मदंम्। (ऋ.८.४५.२२)

इसकी उत्पत्ति त्रिशोकः काण्व ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु रश्मियों से उत्पन्न तीन प्रकार की सूक्ष्म दीप्तियों से युक्त ऋषि प्राण विशेष से होती है। इसका देवता इन्द्र तत्त्व तथा छन्द निचृद् गायत्री है। दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे इन्द्ररूप क्षत्रिय परमाणु विभिन्न सोम रश्मियों को अवशोषित करके नाना वर्षक बलों एवं क्रियाओं से युक्त होकर सब ओर अपनी सक्रियता से व्याप्त होते हैं।।

{सुरा = विट् सुरा (श.१२.७.३.८), पुमान् वै सोमः स्त्री सुरा (तै.ब्रा.१.३.३.४), अन्नं सुरा (तै.ब्रा.१.३.३.५)} उपर्युक्त प्रकार से क्षत्रिय परमाणुओं द्वारा सोम रश्मियों के पान के पश्चात् वे क्षत्रिय परमाणु वृषा रूप धारण करके योषारूप संयोज्य विट् संज्ञक (देखें अध्याय १०) सूक्तरूप छन्द रश्मियों के साथ संगत होने लगते हैं। पूर्वोक्त इन्द्र तत्त्व के महाभिषेक की प्रक्रिया के समान महाभिषिक्त क्षत्रिय परमाणु विट् संज्ञक सुरा रूप पदार्थों का भक्षण नहीं करते हैं, बल्कि वे उनके साथ संगत वा उनमें प्रविष्ट होते हुए अध्याय ३७ में वर्णित अपने भक्षरूप पदार्थों का ही भक्षण करते हैं।।

तदनन्तर पूर्वोक्त प्रगाथः काण्व ऋषिरूपी रश्मियों से सोमदेवताक एवं विराट् त्रिष्टुप् तथा त्रिष्टुप् छन्दस्क रश्मिद्वय ऋ.८.४८.३-४, जिसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझ सकते हैं, की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) अपा॑म॒ सोम॑म॒मृता॑ अभू॒माग॑न्म॒ ज्योति॒रवि॑दाम दे॒वान्।
किं नू॒नम॒स्मान्कृ॑णव॒दरा॑तिः॒ किमु॑ धू॒र्तिर॑मृत॒ मर्त्य॑स्य।।३।।

इसके प्रभाव से क्षत्रिय परमाणु सोम रश्मियों को अवशोषित करके आदित्य लोकों की ज्योतिर्मयी अवस्था को प्राप्त करते हैं। वे विभिन्न प्राण रश्मियों को प्राप्त करके असुरादि बाधक रश्मियों एवं अन्य विध्वंसक पदार्थों से युक्त रहकर नाना क्रियाओं को अपने बल से सम्पादित करते रहते हैं।

(२) शं नो॑ भव हृ॒द आ पी॒त इ॑न्दो पि॒तेव॑ सोम सू॒नवे॑ सु॒शेवः॑।
सखे॑व॒ सख्य॑ उरुशंस॒ धीरः॒ प्र ण॒ आयु॑र्जी॒वसे॑ सोम तारीः।।४।।

इसके प्रभाव से {इन्दुः = यज्ञनाम (निघं.३.१७), इन्दुरिन्धेरुनत्तेर्वा (नि.१०.४१)} संयोज्य एवं प्रकाशित सोम रश्मियों को अवशोषित करके क्षत्रिय परमाणु हृदयरूपी आदित्य लोकों में अच्छी प्रकार समर्थ वा प्रतिष्ठित होते हैं। वे परमाणु एक-दूसरे के पालक और प्रकाशक बनकर नाना प्रकार की प्राण रश्मियों को धारण करके आदित्य लोकों में निरन्तर संयोगादि प्रक्रियाओं को विस्तीर्ण करते रहते हैं।

इन दोनों ही छन्द रश्मियों के द्वारा क्षत्रिय परमाणु सब ओर से और अधिक प्रकाशित होने लगते हैं।।

इस विषय में अपनी बात को पुष्ट करते हुए ग्रन्थकार उदाहरण से समझाते हैं कि जिस प्रकार प्रिय पुत्र अर्थात् कमनीय प्राण रश्मियां अपने पितृरूप मनस्तत्त्व वा वाक् तत्त्व एवं प्रिया जायारूप गार्हपत्य अग्नि अर्थात् ऋतु प्राण रश्मियां अपने पालक पतिरूप सूत्रात्मा वायु रश्मियों किंवा आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग में विभिन्न रश्मियों के साथ तब तक संयुक्त रहती हैं, जब तक कि वे सब ओर से बिखर नहीं जातीं अथवा नष्ट नहीं हो जातीं। इसी प्रकार इन्द्र तत्त्व के महाभिषेक की विधि से अभिषिक्त क्षत्रिय परमाणु पूर्वोक्त सुरा वा सोम वा अन्य संयोज्य पदार्थों के साथ तब तक सहजतापूर्वक संयुक्त रहते हैं, जब तक वे अपने स्वरूप को बनाये रखने में सक्षम होते हैं अर्थात् इन पदार्थों का संयोग महाभिषिक्त क्षत्रिय परमाणुओं का सहज स्वभाव होता है। यहाँ 'शिव' शब्द यह संकेत भी करता है कि इन परमाणुओं की क्रियाएं असुरादि रश्मियों को निष्प्रभावी बनाकर सम्यग् नियंत्रित अवस्था को भी प्राप्त किये रहती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सृष्टि के किसी भी कण में जो भी बल विद्यमान होता है, वह छन्द रश्मियों के कारण होता है। प्राण नामक प्राण रश्मियां छन्द रश्मियों एवं आकाश तत्त्व को उत्पन्न करने में सहायक होती हैं, साथ ही वे ऊष्मा की उत्पत्ति में भी विशेष योगदान करती हैं। 'घृम्'-रूप सूक्ष्म रश्मियां प्रकाश को उत्पन्न करने में तथा विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियां किसी भी कण के बल, गति आदि गुणों को निरन्तरता प्रदान करने में सहयोग करती हैं। इन्हीं रश्मियों के व्यवस्थापन के आधार पर ही विभिन्न कणों की आयु निर्धारित होती है। सूक्ष्म प्राण रश्मियां किसी भी भौतिकी तकनीक के द्वारा कभी भी व्यक्तरूप को प्राप्त नहीं कर सकतीं किन्तु जब वे laptons, quarks आदि के रूप में प्रकट होती हैं, तभी वे भौतिक तकनीक के द्वारा अभिव्यक्त हो पाती हैं। ये laptons, quarks आदि पदार्थ विभिन्न प्राण एवं छन्दादि रश्मियों के भण्डार होते हैं। यद्यपि प्राण वा छन्दादि रश्मियों की सभी क्रियाएं वा बल भौतिक तकनीक द्वारा अव्यक्त ही होते हैं, पुनरपि वे व्यक्त बलों वा क्रियाओं में अपनी अव्यक्त एवं अनिवार्य भूमिका के साथ विद्यमान होते हैं। इनके अभाव में कोई भी व्यक्त बल वा क्रिया का न तो अस्तित्त्व सम्भव है और न ही इस सृष्टि में किसी भी अभिव्यक्ति की क्रिया का होना ही सम्भव है। **इस सृष्टि में विभिन्न निरावेशित कण सूक्ष्म एवं सम्पीडित मरुद् रश्मियों से संयोग करके विद्युदावेशित कणों में परिवर्तित होते रहते हैं।** आधुनिक विज्ञान द्वारा जाने गयें ऐसे मूलकण, जो परस्पर एक-दूसरे में परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तित होते रहते हैं, के परिवर्तन की इस प्रक्रिया के पीछे ये सम्पीडित मरुद् रश्मियां ही उत्तरदायिनी होती हैं। इन सम्पीडित मरुद् रश्मियों को वर्तमान वैज्ञानिक electrons-meson आदि कणों से सम्बोधित करते हैं। विभिन्न कण छन्द एवं प्राणादि रश्मियों से ही उत्पन्न होते, उन्हीं के द्वारा सभी प्रकार की क्रियाओं को सम्पादित करते और नष्ट होने पर उन्हीं में विलीन हो जाते हैं। इसी प्रकार विभिन्न प्राण व छन्द रश्मियां मनस्तत्त्व एवं **'ओम्'** छन्द रश्मियों के द्वारा उत्पन्न होतीं, इन्हीं के द्वारा संचालित व क्रियाशील रहतीं तथा नष्ट होने पर इन्हीं में विलीन भी हो जाती हैं। इसी प्रकार ये मनस्तत्त्व और **'ओम्'** छन्द रश्मियां **मूल प्रकृति** से उत्पन्न होकर **ईश्वर तत्त्व** द्वारा संचालित होते एवं अन्त में नष्ट होकर प्रकृति में लय होते हुए **ईश्वर तत्त्व** में प्रतिष्ठित हो जाते हैं, यही सबसे सूक्ष्म और अन्तिम अवस्था है।।

❧ इति ३९.६ समाप्तः ☙

꧁ अथ ३९.७ प्रारभ्यते ꧂

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण तुरः कावषेयो जनमेजयं पारिक्षितमभिषिषेच; तस्मादु जनमेजयः पारिक्षितः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे।।
तदेषाऽभि यज्ञगाथा गीयते।।

आसन्दीवति धान्यादं रुक्मिणं हरितस्रजम्।
अश्वं बबन्ध सारङ्गं देवेभ्यो जनमेजय इति।।

एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण च्यवनो भार्गवः शार्यातं मानवमभिषिषेच; तस्मादु शार्यातो मानवः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे देवानां हापि सत्रे गृहपतिरास।।
एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण सोमशुष्मा वाजरत्नायनः शतानीकं सात्राजितमभिषिषेच; तस्मादु शतानीकः सात्राजितः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे।।
एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण पर्वतनारदावाम्बाष्ठ्यमभिषिषिचतुस्तस्माद्वाम्बाष्ठ्यः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे।।
एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण पर्वतनारदौ युधांश्रौष्टिमौग्रसैन्यमभिषिषिचतुस्तस्मादु युधांश्रौष्टिरौग्रसैन्यः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे।।
एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण कश्यपो विश्वकर्माणं भौवनमभिषिषेच; तस्मादु विश्वकर्मा भौवनः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन मेध्येनेजे।।
भूमिर्ह जगावित्युदाहरन्ति।।

न मा मर्त्यः कश्चन दातुमर्हति, विश्वकर्मन्भौवन मां दिदासिथ।
निमङ्क्ष्येऽहं सलिलस्य मध्ये, मोघस्त एष कश्यपायाऽऽस संगर इति।।

एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण वसिष्ठः सुदास पैजवनमभिषिषेच; तस्मादु सुदाः पैजवनः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे।।
एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण संवर्त आङ्गिरसो मरुत्तमाविक्षितमभिषिषेच; तस्मादु मरुत्त आविक्षितः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे।।
तदप्येष श्लोकोऽभिगीतः।।

मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे।
आविक्षितस्य कामप्रेर्विश्वे देवाः सभासद इति।।७।।

ज्ञातव्य – इस खण्ड से ग्रन्थकार विभिन्न **क्षत्रिय** परमाणुओं की अभिसिंचन क्रिया के द्वारा तेजस्वी रूप

प्राप्त करने के विभिन्न उदाहरणों को दर्शाना प्रारम्भ करते हैं। ये विभिन्न **क्षत्रिय** परमाणु इस ग्रन्थ में अनेकत्र वर्णित हुए हैं। वे किन-२ **ब्राह्मण** रूप पदार्थों के द्वारा अभिषिक्त होकर तीव्र तेज और बल को प्राप्त करते हैं? यह चर्चा यहाँ से प्रारम्भ की जा रही है। स्थूल दृष्टि से देखने पर यह सम्पूर्ण प्रकरण विभिन्न ऐतिहासिक राजाओं के राज्याभिषेक का प्रतीत होता है, परन्तु इस सम्पूर्ण ग्रन्थ के सन्दर्भ में विचारने पर यह धारणा निर्मूल हो जाती है। इस सम्पूर्ण प्रकरण में जो भी पद व्यक्तिवाची एवं ऐतिहासिक प्रतीत होते हैं। वे वस्तुतः विभिन्न पदार्थों के नाम हैं, जो इस ग्रंथ में वर्णित और व्याख्यात किये जा चुके हैं। इसका संकेत हम यथास्थान करते रहेंगे।

व्याख्यानम्- खण्ड ४.२७ एवं ७.३४ में वर्णित जनमेजय पारिक्षित नामक क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थ शीघ्रगामी और शीघ्रकारी तुरः कावषेय नामक ब्राह्मण रूप रश्मियों के द्वारा अभिषिक्त होते हैं। उनकी यह क्रिया इन्द्र तत्त्व के महाभिषेक की प्रक्रिया के साथ-२ ही होती है। पारिक्षित जनमेजय नामक पदार्थ की चर्चा इस ग्रन्थ में अनेकत्र की गयी है। इस सृष्टि में ये पदार्थ क्षत्रियरूप में ही कार्य करते हैं, उनको तेजस्वी रूप प्रदान करने में तुरः कावषेय नामक रश्मियों की ही सर्वत्र विशेष भूमिका होती है। इन रश्मियों के द्वारा महाभिषिक्त होकर जनमेजय नामक क्षत्रिय पदार्थ विभिन्न आदित्य लोकों में विद्यमान आकाश तत्त्व को सब ओर से जीतते अर्थात् नियंत्रित करते और व्याप्त करते हुए सर्वत्र विचरण करने में समर्थ होते हैं। वे जनमेजय नामक पदार्थ विभिन्न आशुगामी एवं संयोजक वलों से युक्त छन्दादि रश्मियों के साथ मिलकर किंवा उनके द्वारा समृद्ध होकर नाना प्रकार की यजन क्रियाओं को सम्पादित करते हैं।।

जनमेजय नामक पदार्थ के सम्वन्ध में तत्त्वदर्शी ऋषियों ने कहा है {सारंगः = सरति सर्वत्र गच्छतीति सारंगः (उ.को.१.१२२)। स्रजम् = मालामिव सेनाम् (म.द.ऋ.भा.४.३८.६)} कि अभिषेक प्रकरण में पूर्वोक्त **आसन्दी** रूप क्षेत्र में विद्यमान किंवा **आसन्दी** रूप क्षेत्र को प्राप्त वा निर्मित कर चुके **जनमेजय** नामक **क्षत्रिय** पदार्थ दिव्य गुण प्राप्त करने के लिए विभिन्न आशुगामी वल रश्मियों को अपने साथ बांधते वा आकृष्ट करते हैं। ये बल रश्मियां धान्यादरूप होकर धारण और पोषण गुणों से युक्त होती हैं, क्योंकि ये धारक और पोषक प्राणादि रश्मियों को विशेष रूप से अवशोषित करने में समर्थ होती हैं। ये रश्मियां रुक्मिणरूप होकर सुन्दर दीप्तियों से युक्त होती हैं। ये रश्मियां हरित वर्ण की किंवा विशेष आकर्षण गुणों से युक्त सूक्ष्म रश्मियों के समूहों के रूप में विद्यमान होती हैं किंवा ऐसी रश्मियों को उत्पन्न करती हैं। सारंग रूप होने के कारण ये रश्मियां विभिन्न यजन कर्मों में निरन्तर व्याप्त और सक्रिय रहती हैं। इस प्रकार इनके कारण जनमेजय नामक पदार्थ विभिन्न प्रकाशित लोकों को उत्पन्न करने में सक्षम होते हैं।।+।।

{च्यवनम् = च्यवन ऋषिर्भवति, च्यावयिता स्तोमानाम् (नि.४.१९)। भृगुः = अर्चिषि भृगुः सम्बभूव, भृगुर्भृज्यमानो न देहे (नि.३.१७), भृगुर्वारुणिः (ऐ.३.३४)} पूर्वोक्त **जनमेजय** पदार्थ के **महाभिषेक** की चर्चा के उपरान्त अन्य **क्षत्रिय** पदार्थ के अभिषेक की चर्चा करते हुए कहते हैं कि इन्द्र के अभिषेक के साथ-२ ही **शार्यात मानव** अर्थात् मनस्तत्त्व से उत्पन्न शक्तिशालिनी ऋषि रश्मियों (इनके विषय में ४.३२.४ द्रष्टव्य है) को **भृगु** से उत्पन्न **च्यवन** नामक ऋषि रश्मियां अभिषिक्त करती हैं। (भृगु रश्मियों के विषय में ३.३४.१ द्रष्टव्य है।) इन व्यान प्राण से उत्पन्न **भृगु** रश्मियों से उत्पन्न **च्यवन** ऐसी ऋषि रश्मियां होती हैं, जो विभिन्न तेजस्विनी छन्द रश्मियों को गति प्रदान करती हैं। यद्यपि ये दोनों अर्थात् **च्यवन** एवं **शार्यात** पदार्थ ऋषि रश्मियों के रूप में विद्यमान होते हैं परन्तु एक-दूसरे की अपेक्षा से **शार्यात क्षत्रिय** तथा **च्यवन ब्राह्मण** रूप में व्यवहार करते हैं। ये **च्यवन** संज्ञक रश्मियां **शार्यात** संज्ञक रश्मियों को अभिषिक्त करती हैं। इससे अभिषिक्त **शार्यात** रश्मियां **जनमेजय** पदार्थों की भाँति विभिन्न क्रियाओं को संपादित करती हैं। इसकी स्पष्टता के लिए इस खण्ड की प्रथम कण्डिका द्रष्टव्य है। ये रश्मियां विभिन्न देव पदार्थों के यजन कार्य के द्वारा आदित्य लोकों के **गार्हपत्य** अग्नि रूपी विशाल भाग के निर्माण में भी सहायक होती हैं।।

{सोमः = एष वै यजमानो यत्सोमः (तै.ब्रा.१.३.३.५), सोमो वै ब्राह्मणः (तां.२३.१६.५)} इन्द्र के

अभिषेक की पूर्वोक्त प्रक्रिया के साथ-२ ही सत्राजित् अर्थात् सभी संयोगादि प्रक्रियाओं को नियंत्रित करने वाले सूत्रात्मा वायु एवं व्यानादि रश्मियों से उत्पन्न अनेक प्रकार के तेजस्वी रश्मिसमूहों से समृद्ध शतानीक संज्ञक विभिन्न क्षत्रिय परमाणु भी अभिषिक्त होते हैं। इनका अभिषेक वाजरत्न अर्थात् विभिन्न रमणीय छन्द व मरुद् रश्मियों से उत्पन्न शोषक व संयोजक बलों से युक्त सोम रश्मियां करती हैं। ये दोनों प्रकार के पदार्थ सम्पूर्ण सृष्टि में देखे जाते हैं। शेष भाग का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

{अम्बष्ठः = अम्ब+स्था+क (आप्टेकोश) हमारे मत में अम्बष्ठः = अम्बि+स्था+क, यहाँ इकार लोप निपातित है; अम्बि = आपो वा अम्बयः (कौ.ब्रा.१२.२), रक्षणहेतवः आपः (म.द.ऋ.भा.१.२३.१६)} इन्द्र के महाभिषेक के साथ-२ ही आम्बाष्ठ्य क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ अर्थात् वे पदार्थ, जो विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों में स्थित होकर नाना प्राकर की रक्षणादि क्रियाओं से युक्त होते हैं, पर्वत और नारद ऋषि प्राण रश्मियों (इनके विषय में ७.१३.१ द्रष्टव्य है) के द्वारा अभिषिक्त होते हैं। आम्बाष्ठ्य, वे क्षत्रिय परमाणु हैं, जो आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग में विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों से विशेष समृद्ध होकर दीर्घायु होते हैं। शेष भाग का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

इसी प्रकार पर्वत नारद ऋषि प्राण रश्मियां उग्रसेन से उत्पन्न युधांश्रौष्टि क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों को अभिषिक्त करती हैं। यहाँ उग्रसेन उन पदार्थों का नाम है, जो अतितीव्र बंधक बलयुक्त रश्मियों से उत्पन्न होते हैं। इनमें सूत्रात्मा वायु, व्यान एवं मास रश्मियों की प्रधानता होती है। {श्रुष्टिः = क्षिप्रनाम (नि.६.१२)} इनसे उत्पन्न युधांश्रौष्टि उन पदार्थों का नाम है, जो क्षत्रियरूप होकर आशु प्रहार करने में समर्थ होते हैं। ऐसे परमाणु भी पर्वत और नारद ऋषि प्राण रश्मियों द्वारा अभिषिक्त होते हैं। शेष व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

उपर्युक्त प्रकार से ही कश्यप अर्थात् कूर्म प्राण रश्मियां विभिन्न लोकों में विश्वकर्मा संज्ञक {विश्वकर्मा = असौ (द्यौः) विश्वकर्मा (तै.ब्रा.३.२.३.७), विश्वकर्माऽयमग्निः (श.६.२.२.२), अयं वै वायुर्विश्वकर्मा योऽयं पवतऽएष हीदं सर्वं करोति (श.८.१.१.७)} अग्नि तत्त्व और वायु तत्त्व को अभिसिंचित करके आदित्य लोकों के निर्माण की प्रक्रिया को समृद्ध करती हैं। यहाँ पाठकों को आदित्य लोकों के निर्माण में कूर्म प्राण रश्मियों की भूमिका को जानने के लिए खण्ड ५.१८-१९ का अध्ययन करना चाहिए। शेष भाग का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

यहाँ महर्षि एक गाथा को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि भूमि अर्थात् अन्तरिक्ष किंवा मूर्त पदार्थ अपने अन्दर स्थित वायु वा अग्नि तत्त्व से कहता है कि कोई भी विनाशी एवं उत्पन्न पदार्थ मेरा त्याग नहीं कर सकता। इसका आशय यह है कि आकाश तत्त्व कभी वायु एवं अग्नि तत्त्व के द्वारा त्यागा नहीं जा सकता और न ही किसी परमाणु के द्वारा ही इन दोनों पदार्थों का त्याग किया जा सकता है। यहाँ इन दोनों पदार्थों से तात्पर्य आकाश तत्त्व एवं परमाणु के मूर्तत्व से है। जब किसी भी लोक में विद्यमान वायु एवं अग्नि तत्त्व अपनी मूर्त क्रियाओं एवं अपने द्वारा निर्मित विभिन्न मूर्त परमाणुओं में से आकाश तत्त्व वा मूर्तपन का त्याग करते हैं अर्थात् प्रलयकाल में परमाणुओं का मूर्तपन समाप्त होने लगता है, तब वे परमाणु आदि पदार्थ, आकाश तत्त्व एवं परमाणुओं के उपादान पदार्थ अर्थात् सबको लीन करने वाले सलिल रूप सूक्ष्म मनस्तत्त्व किंवा मूल कारणरूप प्रकृति में लीन हो जाते हैं। इस प्रकार कूर्म प्राण रश्मियों का अग्नि और वायु तत्त्व के साथ संगर {संगरः = संग्राम (आप्टेकोश)} संघात व्यर्थ हो जाता है। इसी कारण कहा गया है कि सृष्टि काल में कोई भी पदार्थ आकाश तत्त्व से पृथक् नहीं हो सकता और कोई भी मूर्त परमाणु अपने मूर्तत्व को भी त्याग नहीं सकता। यदि वह ऐसा करता है, तो उसके उस रूप का भी अस्तित्त्व समाप्त हो जाता है।।+।।

पूर्वोक्त पद्धति से ही वसिष्ठ अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण रश्मियां पैजवन सुदास नामक क्षत्रिय पदार्थों का अभिषेक करती हैं। पैजवन सुदास के विषय में ७.३४.२ द्रष्टव्य है। शेष भाग का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

{संवर्त = संग्रह, समुच्चय - आप्टेकोश} पूर्वोक्त पद्धति से ही सूत्रात्मा वायु रश्मियों की समूहरूप रश्मियां ब्राह्मण रूप होकर आविक्षित अर्थात् सब ओर से विशेषरूप से व्याप्त {मरुत्तः = मरुदस्त्यस्येति (शब्दकल्पद्रुमः)} किंवा प्रायः क्षीण न होने वाली मरुद् रश्मियों से सम्पन्न मरुत्त नामक तेजस्वी विशेष प्रकार के क्षत्रिय परमाणुओं को अभिषिक्त करती हैं। शेष भाग का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

इस विषय में तत्त्वदर्शी ऋषियों का कथन है-

मरुतः परिवेष्टारो.......समासद इति। इसका तात्पर्य यह है कि {परिवेष्टारः = परितो व्याप्ताः (म.द.य.भा.६.१३)} उपर्युक्त मरुत्त क्षत्रिय संज्ञक परमाणुओं के चारों ओर विभिन्न मरुद् रश्मियां व्याप्त रहती हैं। इन्हीं के कारण उन अविक्षित मरुत्त परमाणुओं के सभी प्रकार के बलों को परिपूर्ण करने के लिए विभिन्न प्रकार के देव अर्थात् प्राण वा छन्दादि रश्मियां साथ-२ प्रकाशित व संगत होती हुई विद्यमान रहती हैं, जिसके कारण वे परमाणु विशिष्ट बलों से युक्त होते हैं। इन परमाणुओं के चतुर्दिक व्याप्त मरुद् रश्मियां नाना प्रकार की अन्य रश्मियों का विनिमय वा विभाजन करने में समर्थ होती हैं। ये मरुद् रश्मियां प्राण रश्मियों के साथ मिलकर नाना प्रकार के संयोग और वियोगादि कर्मों को सिद्ध करती हैं।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में विभिन्न कण अथवा Quantas सूक्ष्म प्राणादि रश्मियों के द्वारा ही प्रेरित और गतियुक्त होते हैं, उनमें विद्यमान विभिन्न प्रकार के बल विभिन्न प्राण वा छन्दादि रश्मियों के द्वारा ही उत्पन्न व संचालित होते हैं। इस सृष्टि में अनेक प्रकार के सूक्ष्म मूलकण और विकिरण विद्यमान हैं, जिनको प्रेरित करने के लिए भिन्न-२ प्रकार की सूक्ष्म प्राणादि रश्मियां उत्तरदायिनी होती हैं। इस खण्ड में नाना प्रकार की रश्मियों वा कणों की प्रेरक रश्मियों का वर्णन किया गया है, जिनके विषय में जानने के लिए व्याख्यान भाग का पढ़ना अनिवार्य है। कोई भी कण अथवा Quanta कभी भी आकाश तत्त्व से पृथक् नहीं हो सकता। ऐसा तभी हो सकता है, जब वह कण अथवा Quanta नष्ट होकर सूक्ष्म प्राण, मनस्तत्त्व अथवा मूल उपादान प्रकृति में परिवर्तित हो जाए। इसी प्रकार इस सृष्टि के सभी पदार्थ अपने स्वरूप को तब तक बनाये रखते हैं, जब तक कि वे सूक्ष्म कारण पदार्थों में विलीन नहीं हो जाते।।

ॐ इति ३९.७ समाप्तः ॐ

अथ ३९.८ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेणोदमय आत्रेयोऽङ्गमभिषिषेच; तस्मादङ्गः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे।।
स होवाचालोपाङ्गो-दश नागसहस्राणि दश दासीसहस्राणि ददामि ते, ब्राह्मणोप माऽस्मिन् यज्ञे ह्यस्वेति।।
तदप्येते श्लोका अभिगीताः।।
याभिर्गोभिरुदमयं प्रैयमेधा अयाजयन्।
द्वे द्वे सहस्रे बद्धानामात्रेयो मध्यतोऽऽददात्।।
अष्टाशीतिः सहस्राणि श्वेतान् वैरोचनो हयान्।
प्रष्टीन्निश्चृत्य प्रायच्छद् यजमाने पुरोहिते।।
देशाद्देशात्समोह्ळानां सर्वासामाढ्यदुहितॄणाम्।
दशाददात् सहस्राण्यात्रेयो निष्ककण्ठ्यः।।
दश नागसहस्राणि दत्त्वाऽऽत्रेयोऽवचत्नुके।
श्रान्तः पारिकुटान् प्रैप्सद्दानेनाङ्गस्य ब्राह्मणः।।
शतं तुभ्यं शतं तुभ्यमिति स्मैव प्रताम्यति।
सहस्रं तुभ्यमित्युक्त्वा प्राणान् स्म प्रतिपद्यत इति।।८।।

व्याख्यानम्- {उदमयः = उदन्+मयट् इति मे मतम् (उदन् = उदके - नि.१०.१२)। अङ्गम् = अङ्गानि होत्रकाः (ऐ.६.८), छन्दास्यङ्गानि (मै.२.७.८), अङ्गानि वाव होत्राः (गो.उ.६.६)। अत्रिः = स यदिदं सर्वं पाप्मनोऽत्रायत यदिदं किञ्च तस्मादत्रयस्तस्मादत्रय इत्याचक्षत एतमेव (प्राणम्) सन्तम् (ऐ.आ.२.२.१), वागेवात्रिर्वाचा ह्यन्नमद्यतेऽत्तिर्ह वै नामैतद्यदत्रिरिति (श.१४.५.२.६)} पूर्वोक्त पद्धति के अनुसार सतत गमनशीला प्राण एवं सूक्ष्म वाग् रश्मियों से उत्पन्न वा उत्सर्जित होने वाली सेचन स्वभावयुक्त सूक्ष्म रश्मियां इस ग्रन्थ में अनेकत्र वर्णित मैत्रावरुण एवं ब्राह्मणाच्छंसी आदि होत्रकरूप छन्द रश्मिसमूहों को निरन्तर अभिषिक्त करती हैं। शेष भाग का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

{दासीः = दानशीलाः (म.द.ऋ.भा.४.२८.४), (दासति दानकर्मा - निघं.३.२०)। सहस्रम् = सहस्वत् (नि.३.१०)} जैसा कि हम खण्ड ८.२१ में लिख चुके हैं कि जब ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों को अभिषिक्त करते हैं, उस समय क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ भी ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों को नाना प्रकार की रश्मियों से सम्पृक्त करते हैं। उसी तथ्य को बुद्धिगत करके यहाँ कहा गया है कि अलोप अङ्ग संज्ञक पदार्थ अर्थात् सम्यग् गति और दिशा आदि को प्राप्त सभी मैत्रावरुणादि अंग संज्ञक पदार्थ उदमय संज्ञक ब्राह्मण रूप पदार्थों को प्रकाशित वा प्रेरित करते हैं। एतदर्थ वे बलवान् नाग संज्ञक प्राण रश्मियों, जो विभिन्न छन्दादि रश्मियों को परस्पर संयुक्त करने में विशेष और प्रारम्भिक भूमिका निभाती हैं, को ब्राह्मण संज्ञक रश्मियों के ऊपर प्रक्षिप्त करते हैं। यहाँ 'दश सहस्राणि' संख्यावाची पद यह संकेत करता है कि नाग रश्मियों के प्रक्षेपण की दस हजार आवृत्तियां होकर अंग क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ की संयोगादि प्रक्रिया की क्षमता में दस गुना वृद्धि हो जाती है और उदमय नामक ब्राह्मण रश्मियां इस संयोगादि प्रक्रिया

में क्षत्रिय पदार्थों को आकर्षण-संयोजन आदि वल प्रदान करती हैं। नाग प्राण रश्मियों के विषय में खण्ड ४.२५ द्रष्टव्य है। इस कण्डिका में 'सहस्राणि' पद दो वार विद्यमान है, जिसमें द्वितीय पद का अर्थ सहस्वत् है तथा प्रथम पद का अर्थ हजार संख्यावाची है, यह समझना चाहिये।।

इस प्रसंग में तत्त्ववेत्ता ऋषि कुछ गाथाओं को प्रस्तुत करते हैं।।

प्रियमेधा = कमनीय सूत्रात्मा वायु रश्मियों में स्थित पूर्वोक्त आत्रेय प्राण रश्मियों पर पूर्वोक्त अंग संज्ञक मैत्रावरुण आदि छन्द रश्मियां अनेक प्रकार की सूक्ष्म वागू रश्मियों को उत्सर्जित करते हुए यजन कार्यों को सम्पन्न करती हैं। मैत्रावरुण आदि होत्रकरूप छन्द रश्मियां इस ग्रन्थ में अनेकत्र वर्णित नाना प्रकार की यजन क्रियाओं को सम्पादित करती हैं, उस समय वे अरवों की संख्या में {बद्वम् = बद्वम् इति शतकोटिसंख्याया नामधेयम् (सायणभाष्यम्)} इस विषय में सायणभाष्य में पाद टिप्पणी के रूप में अन्य ब्राह्मण को उद्धृत करते हुए लिखा है-

"दश, {शतं}, सहस्रम्, अयुतम्, प्रयुतम्, नियुतम्, अर्बुदम्, न्यर्बुदम्, निखर्वम्, बद्वम्, अक्षितम्। एताश्च संख्या क्रमाद् दशगुणोत्तरा वैदिक्यः" (द्र.तां.ब्रा.१७.१४.२)} सूक्ष्म वागू रश्मियों को दो-दो सहस्र रश्मियों के समूहों के रूप में वार-२ उत्सर्जित करती हैं। इस प्रकार के उत्सर्जन की क्रिया आदित्य लोकों के निर्माण प्रक्रिया के माध्यंदिन सवन में होती है। इसका तात्पर्य यह है कि जव अंग संज्ञक क्षत्रिय पदार्थ और उदमय आत्रेय संज्ञक ब्राह्मण पदार्थ दोनों का संयोग होकर अंग संज्ञक पदार्थ तीव्र तेज को प्राप्त करते हैं, उस समय इस प्रकार की वागू रश्मियों का उत्सर्जन होता है। यहाँ गौ संज्ञक वागू रश्मियों के विषय में ऋषियों का कथन है-

"अन्तरिक्षं गौः" (तै.सं.७.२.४.२; काठ.३३.३; ऐ.४.१५)
"अन्नमु गौः" (श.७.५.२.१९)
"अयं (अन्तरिक्षलोकः) गौः" (जै.ब्रा.२.३१७)

इन वचनों से संकेत मिलता है कि यहाँ जो अरवों की संख्या में वागू रश्मियों के उत्सर्जन की चर्चा की गयी है, वे वागू रश्मियां, आकाश रश्मियों के रूप में ही होती हैं। इस कारण इस क्रिया में आकाश तत्त्व की विशेष सक्रियता हो जाती है।।

उपर्युक्त प्रक्रिया के अन्तर्गत ही {पृष्टी = प्रष्टीन् पृष्ठवाहनयोग्यवयस्कान् (सायणभाष्यम्)} वैरोचन अर्थात् विशेषरूप से प्रकाशमान पूर्वोक्त अंगरूप होत्रक मैत्रावरुणादि छन्द रश्मियां श्वेतहय अर्थात् सूक्ष्म श्वेत रंग की दीप्ति से युक्त विशेष गति और विस्तार से सम्पन्न आशुगामी मरुद् रश्मियों को उत्सर्जित करती हैं। ये मरुद् रश्मियां मैत्रावरुणादि छन्द रश्मियों को प्रायः आच्छादित किये रहती हैं। उस आच्छादन से ही उत्सर्जित होकर संयोज्य ब्राह्मण रूप उदमय नामक पूर्वोक्त पदार्थ के साथ संगत होने लगती हैं। ये रश्मियां अन्य सूक्ष्म रश्मियों को वहन करने की सामर्थ्य से युक्त होती हैं।।

{निष्कम् = निषीदतीति निष्कः (उ.को.३.४५)। कण्ठः = कणति येन शब्दं करोतीति कण्ठः (उ.को.१.१०३)} उपर्युक्त प्रक्रिया के अन्तर्गत ही पूर्वोक्त अंग एवं उदमय नामक पदार्थों के परितः किंचित् दूर विद्यमान अनेकों प्रकार की समृद्ध एवं कमनीय सभी प्रकार की किरणें, जो विभिन्न वागू रश्मियों में नितराम् विद्यमान होती हैं, निकट आने लगती हैं। इन किरणों की संख्या दस सहस्र होती है। इन्हें अंग संज्ञक मैत्रावरुण आदि छन्द रश्मियां उदमय संज्ञक रश्मियों के साथ मिश्रित करती हैं, जिसके कारण उदमय और अंग संज्ञक रश्मियों की सम्वद्धता भी दृढ़ होती है।।

अंग संज्ञक क्षत्रिय पदार्थ द्वारा आत्रेय उदमय संज्ञक ब्राह्मण पदार्थ को दस सहस्र नाग रश्मियां प्रदान करने की चर्चा पूर्व में इसी खण्ड में की जा चुकी है। इसी प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं {अवचत्नुकम् = (चत्नुः = चते याचने धातु चततीति - उ.को.३.३० से क्त्नु प्रत्यय)} कि ये नाग रश्मियां विभिन्न गायत्री आदि रश्मियों को अपनी ओर आकर्षित करती एवं झुकाती हुई अन्य छन्दादि रश्मियों के साथ संगत करने का प्रयत्न करती हैं। इसके कारण उदमय नामक ब्राह्मण रश्मियां {श्रान्तः = तपसा हतकिल्विषः (तु.म.द.ऋ.भा.४.३३.११)} विभिन्न बाधक रश्मि आदि पदार्थों से मुक्त होकर {पारिकुटान्

= परिचारकान् (सायणभाष्यम्)} अपने चारों ओर परिक्रमण करती हुई किंवा क्षत्रिय परमाणुओं को अपना अनुकरण कराती हुई सूक्ष्म मरुदादि रश्मियों को यजनादि कर्मों में प्रेरित करती हैं।।

उस समय उपर्युक्त परिचारिका रूप रश्मियां सौ-सौ एवं हजार-हजार के समूह में पूर्वोक्त हजारों की संख्या में विभिन्न रश्मियों को उत्सर्जित करती हैं। इस उत्सर्जन के कारण वे क्षत्रिय एवं ब्राह्मण रूप पदार्थ प्रबल आकर्षण बलों से युक्त होकर विभिन्न संयोगादि प्रक्रियाओं को प्राणयुक्त बनाते हैं अर्थात् विशेष सक्रिय और समृद्ध करते हैं। इस प्रकार ग्रन्थकार ने इस खण्ड की प्रथम कण्डिका में वर्णित अंग संज्ञक पदार्थ के महाभिषेक के फलस्वरूप होने वाली नाना क्रियाओं और उनके प्रभावों का वर्णन किया है। ज्ञातव्य है कि पूर्वखण्ड में वर्णित महाभिषेक क्रियाओं के प्रभाव की कोई चर्चा ग्रन्थकार ने नहीं की है। ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रन्थकार ने इन क्रियाओं और प्रभावों को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करके यह संकेत दिया है कि विभिन्न ब्राह्मण एवं क्षत्रिय पदार्थों के मध्य अभिषेक आदि क्रियाओं के समय लाखों करोड़ों सूक्ष्म रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार यह सम्पूर्ण प्रक्रिया बहुत ही जटिल और रहस्यमय होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में जब भी किन्हीं दो कणों का पारस्परिक संयोग वा वियोग अथवा उनका Quantas के साथ संयोग-वियोग होता है, तब उन कणों अथवा Quantas से करोड़ों की संख्या में सूक्ष्म प्राणादि रश्मियां उत्सर्जित वा अवशोषित होती हैं, जिनके प्रभाव के कारण ही उन कणों वा Quantas का पारस्परिक संयोग-वियोग हो पाता है। इन सूक्ष्म रश्मियों को किसी भौतिक तकनीक से जाना वा अनुभव नहीं किया जा सकता। इन प्राणादि रश्मियों की संख्या विभिन्न कणों की श्रेणी एवं उनके ऊर्जा स्तर, साथ ही Quantas की आवृत्ति पर निर्भर होती है। वर्तमान विज्ञान इस ब्रह्माण्ड में विद्युत् चुम्बकीय तरंगों को Radio, infra-red, visible light, ultra-violate, x-Rays एवं γ-Rays आदि के रूप में ही विभक्त करता है। इनमे भी visible light को सात भागों Violate, Indigo,
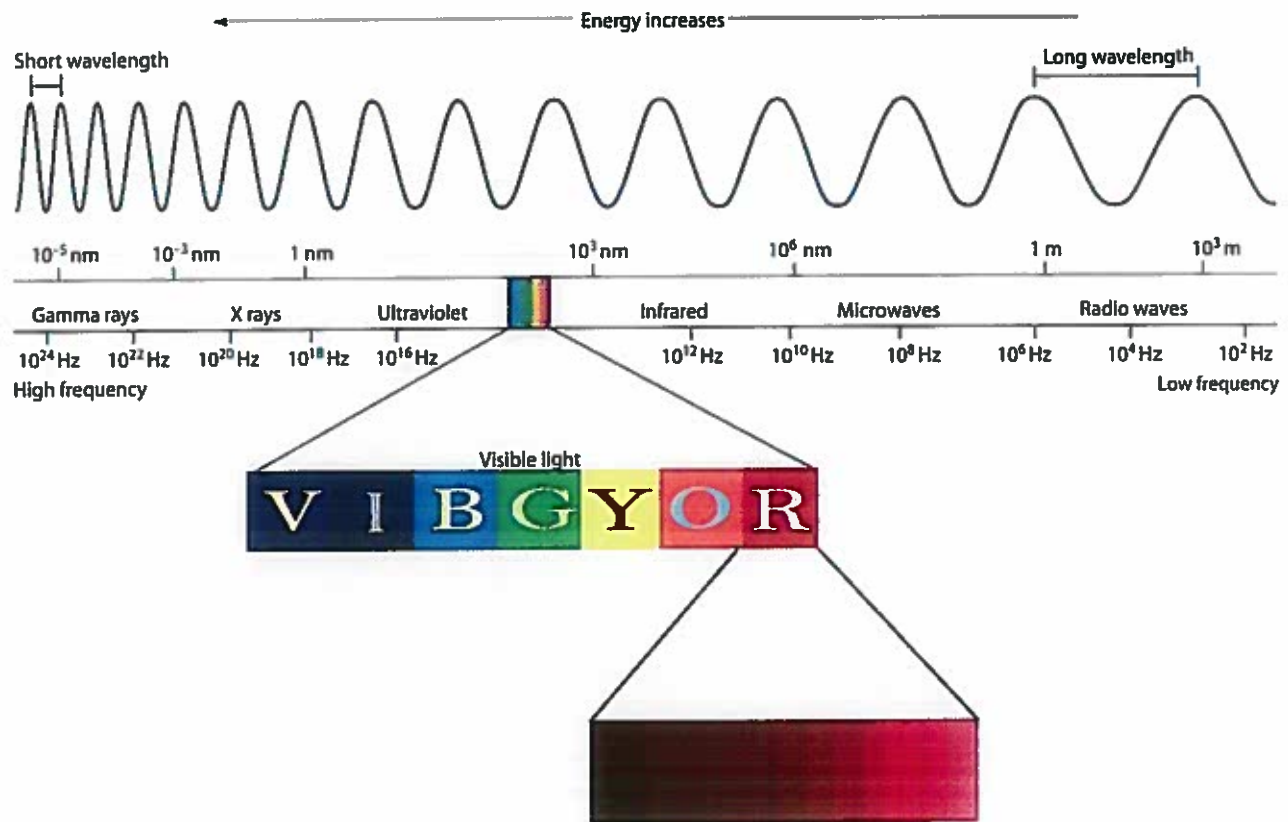
चित्र ३६.१

Blue, Green, Yellow, Orange, Red (VIBGYOR) में विभक्त करता है। यद्यपि यह विभाग उचित ही है, परन्तु यह केवल स्थूल दृष्टि है। इन सभी विभागों में आवृत्ति के भेद से असंख्य स्तर होते हैं। इसी प्रकार जिन कणों को वर्तमान विज्ञान मूलकण के रूप में स्वीकार करता है, उनकी एक निश्चित संख्या होने के उपरान्त भी पृथक्-२ ऊर्जा स्तरों पर विद्यमान होने के कारण व्यावहारिक दृष्टि से ये भी असंख्य प्रकार के माने जा सकते हैं। इसी कारण इन सबके पारस्परिक संयोग-वियोग में असंख्य प्राणादि रश्मियों का उत्सर्जन वा विसर्जन होता है। व्यावहारिक दृष्टि से उन प्राणादि रश्मियों के विभाग भी असंख्य होते हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

इति ३९.८ समाप्तः

ॐ अथ ३९.९ प्रारभ्यते ॐ

**** तमसो मा ज्योतिर्गमय ****

९. एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण दीर्घतमा मामतेयो भरतं दौष्षन्तिमभिषिषेच, तस्मादु भरतो दौष्षन्तिः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वैरु च मेध्यैरीजे।। तदप्येते श्लोका अभिगीताः।।

हिरण्येन परीवृतान् कृष्णाञ्शुक्लदतो मृगान्।
मष्णारे भरतोऽददाच्छतं बद्वानि सप्त च।।
भरतस्यैष दौष्षन्तेरग्निः साचीगुणे चितः।
यस्मिन् सहस्रं ब्राह्मणा बद्वशो गा विभेजिरे।।
अष्टासप्ततिं भरतो दौष्षन्तिर्यमुनामनु।
गङ्गायां वृत्रघ्नेऽबध्नात् पञ्चपञ्चाशतं हयान्।।
त्रयस्त्रिंशच्छतं राजाऽश्वान् बद्ध्वाऽयं मेध्यान्।
दौष्षन्तिरत्यगाद्राज्ञो मायां मायवत्तरः।।
महाकर्म भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः।
दिवं मर्त्य इव हस्ताभ्यां नोदापुः पञ्च मानवा इति।।

एतं ह वा ऐन्द्रं महाभिषेकं बृहदुक्थ ऋषिर्दुर्मुखाय पाञ्चालाय प्रोवाच; तस्मादु दुर्मुखः पाञ्चालो राजा सन् विद्यया समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयाय।।

एतं ह वा ऐन्द्रं महाभिषेकं वासिष्ठः सात्यहव्योऽत्यरातये जानंतपये प्रोवाच; तस्माद्वत्यरातिर्जानंतपिरराजा सन् विद्यया समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयाय।।

स होवाच वासिष्ठः सात्यहव्योऽजैषीर्वै समन्तं सर्वतः पृथिवीं महन् मा गमयेति; स होवाचात्यरातिर्जानंतपिर्यदा ब्राह्मणोत्तरकुरूञ्जयेयमथ त्वमु हैव पृथिव्यै राजा स्याः, सेनापतिरेव तेऽहं स्यामिति; स होवाच वासिष्ठः सात्यहव्यो देवक्षेत्रं वै तन्न वैतन् मर्त्यो जेतुमर्हत्यद्रुक्षो वै म आऽत इदं दद इति ततो हात्यरातिं जानंतपिमात्तवीर्यं निःशुक्रममित्रतपनः शुष्मिणः शैब्यो राजा जघान।।

तस्मादेवंविदुषे ब्राह्मणायैवं चक्रुषे न क्षत्रियो द्रुह्येन्नेद्राष्ट्रादवपद्येयं नेद्वा मा प्राणो जहदिति, जहदिति।।६।।

व्याख्यानम्- {ममता = मम+तल्+टाप्। दीर्घतमा = (तमः तनोतेः - नि.२.१६)। दुष्षन्तः = दुष्+सन्+क्त (सन् = प्राप्त करना, प्रदान करना, वितरण करना - आप्टेकोश)} वस्तुमात्र के प्रति आकर्षण का प्रभाव दर्शाने वाले मनस्तत्त्व से उत्पन्न व्यापक विस्तारयुक्त दीर्घतमारूपी सूत्रात्मा वायु किंवा विस्तृत क्षेत्र में लम्बायमान होती हुई ऋषि प्राण रश्मिविशेष के द्वारा कठिनाई से प्राप्त वा विभक्त

होने योग्य दुष्यन्तरूप रश्मिविशेष से उत्पन्न नाना बलों के धारक और पोषक विभिन्न परमाणु अभिषिक्त होते हैं। अभिषेक की यह क्रिया भी इन्द्र तत्त्व के महाभिषेक के साथ-२ ही होती है। यहाँ दौष्यन्ति भरत का अर्थ प्राण, अपान एवं व्यान रश्मियों का संयुक्त रूप भी हो सकता है, जो सदैव सूत्रात्मा वायु रश्मियों द्वारा अभिसिंचित होता रहता है। शेष भाग का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

इस उपर्युक्त प्रक्रिया के विषय में भी तत्त्वदर्शियों का कहना है।।

उपर्युक्त भरत संज्ञक पदार्थ के अभिषेक के समय एक ऐसे 'मष्णार' संज्ञक क्षेत्र का निर्माण होता है, {मष्णारः = मष् हिंसार्थः+क्विप्+नारः} जिसमें तीव्र भेदक मरुद् रश्मियों के समूह विद्यमान होते हैं, उस क्षेत्र में भरत संज्ञक पदार्थ के साथ एक सौ सात (१०७) करोड़ सूक्ष्म रश्मियां उत्पन्न होती हैं। ये रश्मियां सब ओर से तेजयुक्त शुद्ध आकर्षण और भेदक बलों से युक्त होने के साथ-२ आशुगामिनी होकर अन्य रश्मियों का भी शोधन करती हैं। ये १०७ करोड़ रश्मियां भिन्न-२ प्रकार की नहीं होती हैं, बल्कि कुछ प्रकार की ही रश्मियां बार-२ त्वरित गति से आवृत्त होती रहती हैं। इस आवृत्ति के कारण भरत संज्ञक पदार्थ के बल आदि गुणों मे विशेष अभिवृद्धि होती है।।

वे भरत संज्ञक पदार्थ साचीगुण नामक स्थान में अग्नि तत्त्व को उत्पन्न व संगृहीत करते हैं। यहाँ साचीगुण उस स्थान का नाम है, {साचि = वक्रगति से - आप्टेकोश} जिसमें विभिन्न सूक्ष्म रश्मि आदि पदार्थ नाना प्रकार की वक्रगतियां करते हुए परस्पर अनगिनत आवृत्तियों में प्रकट व संयुक्त होते रहते हैं अर्थात् जहाँ परस्पर संयुक्त होना स्वभाव बन जाता है। हमारी दृष्टि में ऐसे स्थान इस ब्रह्माण्ड में अनेकत्र हो सकते हैं परन्तु आदित्य लोकों के केन्द्र निश्चितरूप से ऐसे ही स्थानों के रूप हैं। इस स्थानों में भरत संज्ञक क्षत्रिय पदार्थ को अभिषिक्त करने वाली ब्राह्मण संज्ञक सूत्रात्मा वायु रश्मियां सौ-सौ करोड़ के समूहों में अनेक बार आवृत्त होकर उस स्थान में विद्यमान पदार्थों में नानाविध पदार्थों में बलों का विभाजन करती हैं।।

{यमुना = नियन्तारः (म.द.ऋ.भा.७.१८.१९)। गंगा = गच्छतीति गंगा (उ.को.१.१२३)} उपर्युक्त प्रक्रिया एवं स्थानों में भरत संज्ञक पदार्थ नियंत्रक बलों से विशेषतया युक्त अठहत्तर (७८) तथा विशेषगति युक्त ५५ बल रश्मियों को अच्छी प्रकार प्रकट करते हैं। इसके कारण आदित्य केन्द्रों में इन्द्र तत्त्व विशेष समृद्ध होता है। ये ५५ विशेष गतिशील रश्मियां व्यापन आदि गुणों से भी विशेष युक्त होती हैं, जिसके कारण वे सम्पूर्ण क्षेत्र में व्याप्त होकर नियंत्रक बलों से विशेष युक्त ७८ रश्मियों का अनुगमन भी करती हैं। इन दोनों की पारस्परिक सम्बद्धता से ही भरत संज्ञक पदार्थों का यज्ञ विस्तृत होता है।।

उपर्युक्त प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि भरत संज्ञक तेजस्वी पदार्थ संयोजक बलों से विशेष युक्त तीन हजार तीन सौ (३३००) मरुद् रश्मियों को प्रकट करके मायावी असुर पदार्थ की बाधक विद्युत् तरंगों को अतिक्रान्त वा नियंत्रित करने में समर्थ होता है। वस्तुतः इन रश्मियों के कारण इन्द्र और अग्नि तत्त्व दोनों ही समृद्ध होकर असुर पदार्थ के विनाश करने में समर्थ होते हैं। इस कारण उस क्षेत्र में नाना प्रकार की संयोगादि क्रियाएं तीव्रता से होने लगती हैं।।

इस प्रकार भरत संज्ञक पदार्थों का यह महान् पराक्रम वाला कर्म प्रकट होता है। आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग में विद्यमान भरत संज्ञक पदार्थ पूर्व में उत्पन्न अथवा पश्चात् उत्पन्न सभी पदार्थों में सर्वाधिक बलवान् और क्रियाशील होते हैं। इनसे अधिक तो क्या, इनके समकक्ष भी क्रिया और बल किसी भी उत्पन्न पदार्थ में नहीं होता। विभिन्न प्राण रश्मियों में प्राणापानव्यान का संयुक्त रूप सर्वाधिक बलवान् और सक्रिय होता है। {पञ्चजनाः = पञ्चजनाः मनुष्यनाम (निघं.२.३), गन्धर्वाः पितरो देवा असुरा रक्षांसीत्येके, चत्वारो वर्णा निषादः पञ्चम इत्यौपमन्यवः (नि.३.८)} इसके साथ ही अन्य पूर्वोक्त भरत संज्ञक पदार्थों के बल को गंधर्व, पितर, देव, असुर, राक्षस अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं निषाद संज्ञक कोई भी पदार्थ प्राप्त नहीं कर सकता। इन सभी पदार्थों के विषय में इस ग्रन्थ में अनेकत्र

हम चर्चा कर चुके हैं, इस कारण यहाँ इनको व्याख्यात करना आवश्यक नहीं समझते। यहाँ ग्रन्थकार एक उपमा देते हुए कहते हैं कि ये सभी पदार्थ भरत संज्ञक पदार्थ के समकक्ष वल को इसी प्रकार प्राप्त नहीं हो सकते, {मर्त्यः = अनात्मा हि मर्त्यः (श.२.२.२.८)} जिस प्रकार कोई भी पदार्थ सूत्रात्मा वायु रश्मियों के अभाव में अपनी आकर्षण और प्रतिकर्षण वल रश्मियों के द्वारा विभिन्न कमनीय रश्मि आदि पदार्थों को प्राप्त करने में असमर्थ होता है।।

{मुखम् = खनत्यन्नादिकमनेनेति मुखम् (उ.को.५.२०)} बृहदुक्थ ऋषि अर्थात् अनेक छन्द रश्मियों को उत्पन्न करने में समर्थ ऋषि प्राण रश्मियां दुर्मुख पांचाल अर्थात् अव्यक्त पदार्थ को व्यक्त रूप प्रदान करने वाले {पञ्चाल के विषय में ८.१४.१ द्रष्टव्य है।} क्षत्रियरूप पदार्थों में इन्द्र तत्त्व के अभिसेचन की क्रिया को प्रकृष्ट रूप से प्रकाशित करती हैं। इससे संकेत मिलता है कि पाञ्चाल संज्ञक परमाणुओं में अभिषिक्त इन्द्र तत्त्व को ये बृहदुक्थ रश्मियां प्रकट करती हैं। इस प्रक्रिया से इन्द्र तत्त्व के प्रकट होने पर दुर्मुख पाञ्चाल परमाणु, जो विभिन्न संयोज्य परमाणु वा रश्मियों का तीव्रता वा तीक्ष्णता से भक्षण करने में समर्थ होते हैं, देदीप्यमान होकर सम्पूर्ण आकाश व अन्तरिक्ष को नियन्त्रित करके सर्वत्र विचरण करते हैं। यह आकाश तत्त्व आदित्य लोकों के अन्दर विद्यमान भी हो सकता है और वाहर भी, पुनरपि आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग के संदर्भ में यह वात अधिक प्रासंगिक और महत्वपूर्ण है।।

{सात्यहव्यः = (सत्यहविः = सत्यहविरध्वर्युः - मै.१.६.१; काठ.६.६; तै.आ.३.५.१)} मनस्तत्त्व वा प्राण नामक प्राण रश्मियों से उत्पन्न प्राणापानरूपी अध्वर्यु की युग्मरूपा रश्मियां जनंतप अर्थात् तप्त हुई रश्मियों से उत्पन्न दानादि क्रियाओं से सम्पन्न परमाणुओं को महाभिषिक्त इन्द्रतत्त्व से सम्पन्न करके प्रकृष्टरूप से प्रकाशित करती हैं अर्थात् उन परमाणुओं में तीक्ष्ण इन्द्रतत्त्व की उत्पत्ति होती है। शेष भाग का व्याख्यान पूर्व कण्डिका के समान समझें।।

जैसा कि खण्ड ८.१४ में दर्शाया गया है कि अभिषेक्ता ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ और अभिषिक्त क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ के मध्य विरोध का भाव नहीं होता। यदि कोई क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ कभी इस प्रकार के भाव से आक्रान्त हो जाए अर्थात् उसकी ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों के साथ उचित संगति वा सामंजस्य न हो पावे, किंवा किसी प्रकार नष्ट वा अव्यवस्थित हो जावे, तो क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ अपना तेज और वल खो वैठते हैं। इसी वात को पुनः ग्रन्थकार ने ब्राह्मणरूप वासिष्ठः सात्यहव्यः नामक पदार्थ एवं जानंतपि अत्यराति नामक क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ के मध्य संवाद के रूप में दर्शाया है। ग्रन्थकार लिखते हैं कि जानंतपि अत्यराति नामक क्षत्रिय पदार्थ वासिष्ठः सात्यहव्य नामक ब्राह्मण रूप पदार्थ के द्वारा तेजस्वी और वलवान् होकर पूर्वोक्तानुसार आकाश रश्मियों को नियंत्रित करने में समर्थ हो जाते हैं, उस समय वे ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ क्षत्रिय पदार्थ के साथ-२ महत्ता को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। ग्रन्थकार की शैली में मानो वे ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ को उपर्युक्त महत्ता प्राप्त कराने का आग्रह करते हैं किंवा वे उनसे ऐसा करने की शर्त को स्मरण कराते हैं। उस समय इसी शैली में क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ ब्राह्मण रूप पदार्थ को यह आश्वासन देते हैं कि जव वे क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ उत्तर कुरु नामक क्षेत्र, जिनके विषय में ८.१४.१ द्रष्टव्य है, में व्याप्त होकर तत्रस्थ विभिन्न पदार्थों को नियंत्रित करने में समर्थ हो जाएं, तव वे ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ को अपना राजा मानकर स्वयं उनका सेनापतित्त्व ग्रहण कर लेंगे। उस समय ब्राह्मण संज्ञक सात्यहव्य अत्यराति संज्ञक क्षत्रिय पदार्थ से कहते हैं कि उत्तर कुरुक्षेत्र देवक्षेत्र होने के कारण अत्यरातिरूपी मर्त्य पदार्थ उसे नियंत्रित नहीं कर सकता है, इस कारण वे ब्राह्मण पदार्थ क्षत्रिय पदार्थ को अपना द्वेषी मानकर उनके वल और तेज का हरण कर लेते हैं। तदुपरान्त हतवल अत्यराति नामक पदार्थ को शिवरूप वलवान् अग्नि तत्त्व अर्थात् नियंत्रित परन्तु तीक्ष्ण अग्नि, जो असुरादि पदार्थों को नष्ट करता है, नष्ट कर देता है।

इस संवाद का आशय यह है कि यदि अत्यराति जानंतपि संज्ञक पूर्वोक्त क्षत्रिय पदार्थ वासिष्ठ सात्यहव्य नामक ब्राह्मण रूप पदार्थ के विरुद्ध हो जाता है, तव ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ उस क्षत्रिय पदार्थ को त्याग देता है, जिससे वह क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ हीनवल होकर शैव्य अग्नि तत्त्व द्वारा विदीर्ण होकर विखर जाता है। इससे दूसरा तात्पर्य यह है कि ये क्षत्रिय पदार्थ पूर्वोक्त उत्तर कुरु क्षेत्र में प्रविष्ट नहीं हो सकते।।

इस कारण ग्रन्थकार पुनः दृढ़ता से कहते हैं कि कोई भी क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ के प्रति विपरीत भाव कभी नहीं रख सकता। यदि किसी घटनावश ऐसा हो भी जाए, तो वे क्षत्रिय परमाणु आदित्य लोक केन्द्रीय भाग से च्युत होकर अपने बल और गति की क्षीणता को प्राप्त कर लेते हैं। यद्यपि यह चर्चा पूर्व में की जा चुकी है पुनरपि इस सिद्धान्त को पुष्ट करने के लिए ग्रन्थकार ने इस अन्तिम कण्डिका में पुनः यह बात कही है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्रीय भाग में जो बल विद्यमान होते हैं, वैसे बल अन्यत्र कहीं भी नहीं होते। वे तारे सामान्य तारे, कथित Black-Holes; MECOs, Neutron-Stars आदि किसी भी प्रकार के हो सकते हैं। इनके केन्द्रीय भाग में विद्यमान मूल कण अथवा विद्युत् चुम्बकीय तरंगें इस ब्रह्माण्ड में अन्य सभी स्थानों की अपेक्षा सर्वाधिक ऊर्जायुक्त होती हैं। इस कारण इन क्षेत्रों में सूक्ष्म प्राण रश्मियों का उत्सर्जन और विसर्जन सर्वाधिक मात्रा में होता है। विद्युत् चुम्बकीय बलों, गुरुत्वाकर्षण बल आदि की भी यहाँ सर्वाधिक प्रबलता होती है। पदार्थ के घनत्व की दृष्टि से भी यही स्थान सर्वश्रेष्ठ होता है। प्राण रश्मियों के मध्य प्राण, अपान एवं व्यान का संयुक्त रूप सर्वाधिक बलवान् और सक्रिय होता है। इस सृष्टि में जो भी बल विद्यमान है, वह इसी संयुक्त प्राण रूप के कारण है। **वर्तमान विज्ञान जिसको Space कहता है, वह भी सूक्ष्म प्राण एवं वाक् रश्मियों का रूप है।** प्राण रश्मियों का उत्सर्जन और विसर्जन चरणबद्ध रूप से विभिन्न स्तरों पर होता है। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग पढ़ें।।

ॐ इति ३९.९ समाप्तः ॐ

ॐ इति एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः ॐ

चत्वारिंशोऽध्यायः

40

।। ओ३म् ।।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव।।

अनुक्रमणिका

४०.१ पुरोहित कर्म का विज्ञान विभिन्न कणों एवं Quantas के संयोग का विज्ञान। सृष्टि में विभिन्न धारक और धारित पदार्थों का विज्ञान। दो कणों अथवा Quantas के संयोग का गम्भीर क्रियाविज्ञान। संयोग प्रक्रिया में डार्क एनर्जी के विनाश का सूक्ष्म क्रियाविज्ञान। 2270

४०.२ पूर्वोक्त विषय। 2274

४०.३ पूर्वोक्त विषय। 2276

४०.४ पूर्वोक्त विषय। 2279

४०.५ पूर्वोक्त विषय। 2283

ॐ अथ ४०.१ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. अथातः पुरोधाया एव।।
न ह वा अपुरोहितस्य राज्ञो देवा अन्नमदन्ति, तस्माद् राजा यक्ष्यमाणो ब्राह्मणं पुरो दधीत,- देवा मेऽन्नमदन्निति।।
अग्नीन् वा एष स्वर्ग्यान् राजोद्धरते, यत्पुरोहितम्।।
तस्य पुरोहित एवाऽऽहवनीयो भवति जाया गार्हपत्यः, पुत्रोऽन्वाहार्यपचनः, स यत्पुरोहिताय करोत्याहवनीय एव तज्जुहोत्यथ यज्जायायै करोति गार्हपत्य एव तज्जुहोत्यथ यत्पुत्राय करोत्यन्वाहार्यपचन एव तज्जुहोति; त एनं शान्ततनवोऽभिहुता अभिप्रीताः स्वर्गं लोकमभिवहन्ति,-क्षत्रं च बलं च राष्ट्रं च विशं च।।
त एवैनमशान्ततनवोऽनभिहुता अनभिप्रीताः स्वर्गाँल्लोकान्नुदन्ते, क्षत्राच्च बलाच्च राष्ट्राच्च विशश्च।।
अग्निर्वा एष वैश्वानरः पञ्चमेनिर्यत्पुरोहितस्तस्य वाच्येवैका मेनिर्भवति, पादयोरेका, त्वच्येका, हृदय एकोपस्थ एका, ताभिर्ज्वलन्तीभिर्दीप्यमानाभिरुपोदेति राजानं, स यदाह क्व भगवोऽवात्सीस्तृणान्यस्मा आहरतेति तेनास्य तां शमयति याऽस्य वाचि मेनिर्भवत्यथ यदस्मा उदकमानयन्ति पाद्यं, तेनास्य तां शमयति याऽस्य पादयोर्मेनिर्भवत्यथ यदेनमलं कुर्वन्ति, तेनास्य तां शमयति याऽस्य त्वचि मेनिर्भवत्यथ यदेनं तर्पन्ति, तेनास्य तां शमयति याऽस्य हृदये मेनिर्भवत्यथ यदस्यानारुद्धो वेश्मसु वसति, तेनास्य तां शमयति याऽस्योपस्थे मेनिर्भवति।।
स एनं शान्ततनुरभिहुतोऽभिप्रीतः स्वर्गं लोकमभिवहति, क्षत्रं च बलं च च राष्ट्रं च विशं च; स एवैनमशान्ततनुरनभिहुतोऽनभिप्रीतः स्वर्गाँल्लोकान्नुदते क्षत्राच्च बलाच्च राष्ट्राच्च विशश्च।।१।।

व्याख्यानम्- विभिन्न क्षत्रिय पदार्थों के पूर्वोक्त महाभिषेक के क्रिया विज्ञान के कथन के उपरान्त पुरोधा अर्थात् पुरोहित = ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ के विषय में विशेष व्याख्यान प्रारम्भ करते हैं। यहाँ ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों को पुरोधा वा पुरोहित कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि ये पदार्थ अपने सहभागी बनने वाले क्षत्रियरूप पदार्थ को सदैव अपने सम्मुख वा साथ में धारण करते हैं।।

जब तक पुरोहित वा ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ किसी देदीप्यमान क्षत्रिय परमाणु के साथ विद्यमान नहीं होते, तब तक विभिन्न प्राणादि पदार्थ उस क्षत्रिय पदार्थ से उत्सर्जित विभिन्न संयोज्य रश्मियों का भक्षण नहीं करते अर्थात् उनके साथ संगत नहीं होते, जिसके कारण उन संयोज्य रश्मियों की संयोज्यता समाप्त हो जाती है। इसके फलस्वरूप वे क्षत्रिय परमाणु भी संयोजक गुणों से विहीन हो जाते हैं। इस कारण विभिन्न संयोगादि क्रियाओं में प्रवृत्त क्षत्रिय परमाणु पुरोहित ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों को अपने निकट अवश्य

ही धारण करते हैं, जिससे उनसे उत्सर्जित संयोज्य सूक्ष्म रश्मियों के साथ विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियां मिश्रित वा संगत हो सकें।।

जो क्षत्रिय परमाणु इन पुरोहित ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों को अपने साथ धारण करते हैं, वे ही इस प्रकार के अग्नि, जो स्वर्गलोक को प्राप्त कराने वाला हो, को उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं। इसका आशय यह है कि जो अग्नि तत्त्व विभिन्न चरणों में सम्पादित होता हुआ आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग का निर्माण करने में समर्थ हो, ऐसे अग्नि को उत्पन्न करने के लिए क्षत्रिय संज्ञक परमाणुओं के साथ पुरोहित ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों का सायुज्य अनिवार्य है।।

{आहवनीयः = यज्ञो वा आहवनीयः स्वर्गो लोकः (ऐ.५.२४,२६), स्वर्गो वै लोक आहवनीयः (ष.१.५; तै.ब्रा.१.६.३.६), सामवेदादाहवनीयः (अजायत) (ष.४.१)। अन्वाहार्यपचनः = अन्तरिक्षलोकोऽन्वाहार्यपचनः (दक्षिणाग्निः) (जै.ब्रा.१.५१; ष.१.५), यजुर्वेदाद्दक्षिणाग्निः (अजायत) (ष.४.१), अन्तरिक्षं दक्षिणाग्निः (काठ.संक.६ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत)। गार्हपत्यः = ऋग्वेदाद् गार्हपत्यः (अजायत) (ष.४.१), जाया गार्हपत्यः (ऐ.८.२४), प्रतिष्ठा (जाया) गार्हपत्यः (तै.सं.५.२.३.६)} अब विभिन्न प्रकार के अग्नियों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ के पुरोहित ब्राह्मण रूप पदार्थ आहवनीय अग्नि संज्ञक क्षेत्र में विशेषकर विद्यमान होते हैं। आदित्य लोक का केन्द्रीय भाग ही आहवनीय क्षेत्र कहलाता है, यह चर्चा हम इस ग्रन्थ में अनेकत्र कर चुके हैं। इस क्षेत्र में साम संज्ञक छन्द रश्मियों की विशेष भूमिका होती है। इसी क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के हवनीय पदार्थ सब ओर से आकर तथा संगत होकर नाना पदार्थों को उत्पन्न करते हैं। इस कार्य में पुरोहित ब्राह्मण पदार्थों की महती भूमिका होती है। इस कारण इस पदार्थ को भी आहवनीय कहा जाता है। क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ का जायारूप पदार्थ गार्हपत्य कहलाता है, क्योंकि ये क्षत्रियरूप पदार्थ इसी भाग में विशेषकर उत्पन्न वा प्रकट होते हैं। हम इस ग्रन्थ में अनेकत्र लिख चुके हैं कि आदित्य लोकों के उस विशाल भाग, जो केन्द्रीय भाग के बाहर स्थित सन्धि क्षेत्र के ऊपर तारे की बाहरी सीमा तक फैला हुआ होता है, को गार्हपत्य कहते हैं। इस क्षेत्र में ऋतु रश्मियों के साथ-२ ऋक् संज्ञक छन्द रश्मियों की प्रधानता होती है। इन दो क्षेत्रों के अतिरिक्त आदित्य लोक का तीसरा क्षेत्र अन्वाहार्यपचन कहलाता है, इसे ही दाक्षिणाग्नि क्षेत्र भी कहते हैं। आदित्य लोक के अन्दर विद्यमान अन्तरिक्ष को ही अन्वाहार्यपचन कहा जाता है। हमारे मत में सन्धि क्षेत्र ही अन्वाहार्यपचन अर्थात् दाक्षिणाग्नि कहलाता है। इस क्षेत्र में यजुः संज्ञक छन्द रश्मियों की प्रधानता होती है। इसके साथ ही यह भी संकेत मिलता है कि इस क्षेत्र में आकाश तत्त्व की भी अपेक्षाकृत अधिकता होती है। इस क्षेत्र को क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों का पुत्र कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि यह क्षेत्र गार्हपत्य क्षेत्र से आने वाले क्षत्रिय परमाणुओं को आहवनीय क्षेत्र में प्रवेश होने योग्य बनाता है, जिससे वे संगमन आदि क्रियाओं के द्वारा नाना तत्त्वों को उत्पन्न कर सकें।

क्योंकि इस क्षेत्र में विद्यमान क्षत्रिय परमाणु जाया संज्ञक गार्हपत्य क्षेत्र से आते हैं और यहाँ नवीन रूप प्राप्त करते हैं, इस कारण इन्हें पुत्ररूप कहा गया है।

क्षत्रिय पदार्थ जब पुरोहित ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों को धारण करते हैं, तब वे आदित्य लोक के केन्द्रीय भागरूपी आहवनीय क्षेत्र में ही अपना होम करते हैं और ऐसा करके ही वे उस क्षेत्र को समृद्ध करते हैं। जब वे क्षत्रिय परमाणु जाया संज्ञक गार्हपत्य क्षेत्र में विद्यमान होते हैं, तब वे उस क्षेत्र को समृद्ध करते हैं और ऐसा करके वे नाना पदार्थों को जन्म देते हैं। जब वे क्षत्रिय पदार्थ पुत्ररूप सन्धि क्षेत्र में विद्यमान होते हैं, तब वे अन्वाहार्यपचनरूपी सन्धिक्षेत्र में अपना हवन करते हैं। इस प्रकार वे पुरोहित ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ के द्वारा नियंत्रित होकर विस्तार व गति को प्राप्त होते हुए पारस्परिक संगमन आदि क्रियाओं के द्वारा सम्पूर्ण आदित्य लोक को सब ओर से तृप्त करके स्वर्गलोकरूपी केन्द्रीय भाग को चरणबद्ध रूप से प्राप्त करते हैं। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में ऋग्, यजुः और साम संज्ञक छन्द रश्मियां अपनी-२ भूमिका का समुचित निर्वहन करती हैं। इस प्रकार सभी क्रियाएं सहज भाव से होती हुई तीव्र तेज एवं बल को उत्पन्न करके आदित्य के केन्द्रीय भाग को विशेष दीप्तिमान करती हैं, जिससे उस क्षेत्र में नाना प्रकार के प्रजारूप नवीन परमाणुओं की उत्पत्ति होती है।।

ये उपर्युक्त क्रियाएं तभी समुचित और व्यवस्थित ढंग से हो पाती हैं, जब क्षत्रिय पदार्थ ब्राह्मण

संज्ञक पदार्थों के साथ संयुक्त होते हैं, उसी समय आदित्य लोक के उपर्युक्त तीनों भाग, जिन्हें यहाँ अग्नि कहा है, परस्पर संयुक्त और सम्बद्ध बने रहते हैं। यदि क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ पुरोहित ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों से पृथक् हो जाएं, तो क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ परस्पर आकर्षणविहीन और असंगत होकर तारों के केन्द्रीय भाग तीव्र तेज और बल, देदीप्यमानता एवं नानाविध तत्त्वों की उत्पत्ति प्रक्रिया आदि से च्युत हो जाते हैं। इसके साथ ही आदित्य लोक के तीनों भाग भी परस्पर अव्यवस्थित और असंतुलित हो उठते हैं। आदित्य लोक के तीनों भाग अग्नि तत्त्व से परिपूर्ण होते हैं, इस कारण उन क्षेत्रों को तीनों प्रकार के अग्नि भी कहा गया है।।

{मेनिः = ता वा एता अङ्गिरसां यामयो यन्मेनयः (गो.पू.१.६), मेनिर्ह्रदक्षिणः (मै.२.४.५)} ये उपर्युक्त पुरोहित ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ ऐसे वैश्वानर अग्नि के रूप में विद्यमान होते हैं, जो पांच शक्तियों से युक्त प्राण रश्मियों को धारण किये हुए होते हैं। इन पदार्थों को वैश्वानर इसलिए कहते हैं, क्योंकि ये सभी पदार्थों का वहन करने वाले होते हैं। इनकी ये पांच प्रकार की शक्तियां इस प्रकार हैं-

(१) वाक् = यह शक्ति क्षत्रिय परमाणुओं को प्रेरित व प्रकाशित करती है।
(२) पाद = यह शक्ति उनको आधार प्रदान करके उन्हें गति और मार्ग प्रदान करती है।
(३) त्वचा = यह शक्ति उन क्षत्रिय परमाणुओं को आच्छादित करके उनकी सीमा को निर्धारित करती है। इसके साथ ही यह शक्ति उन परमाणुओं की रक्षा करने के साथ-२ उनके अन्य परमाणुओं के साथ संयोग-वियोग की क्रियाओं को भी संपादित करने में सहयोग करती है।
(४) हृदय = इस शक्ति के कारण क्षत्रिय परमाणु विभिन्न प्रकार की सूक्ष्म रश्मियों का आदान-प्रदान करके आकर्षण और प्रतिकर्षण बलों को प्राप्त करते हैं।
(५) उपस्थ = इस शक्ति के कारण क्षत्रिय परमाणुओं के निकट स्थित विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियां सक्रिय होकर उसे नाना प्रकार के सृजन कर्मों और बलों से युक्त करती हैं।

ये पांचों शक्तियां ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों में विद्यमान होती हैं। जब ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ इन पांचों शक्तियों के प्रज्वलित रूप अर्थात् अति उत्तेजित रूप के साथ क्षत्रिय परमाणुओं के निकट आते हैं, तब वे क्षत्रिय परमाणु 'भग' युक्त अर्थात् तीव्र ऐश्वर्य युक्त ब्रह्म पदार्थों को {तृणम् = तृह्यते हन्यते तत् तृणम् (उ.को.५.८), हिंसितव्यं घासम् (म.द.ऋ.भा.१.१६१.११)} तृण अर्थात् छेद्य वा अवशोष्य सूक्ष्म रश्मियों को प्रस्तुत करते हैं अर्थात् ये सूक्ष्म रश्मियां क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों से उत्पन्न होकर ब्राह्मण रूप पदार्थों में प्रविष्ट होती हैं। इन रश्मियों के कारण ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों की उपर्युक्त वाक् शक्ति की अति तीव्रता शान्त होकर ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ क्षत्रिय पदार्थों के साथ मिलकर व्यवस्थित, अनुकूल एवं संतुलित हो जाते हैं। जब क्षत्रिय परमाणु {उदक = उत्+अक्+कु (उ.को.४.२१७) - इति मे मतम्} ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों की पादरूप शक्तियों को उदक अर्थात् उन्हें ऊपर की ओर जाते हुए वक्र गतियां प्रदान करते हैं। जिससे वे ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ क्षत्रिय परमाणुओं के साथ सीधे सरल-रेखीय मार्ग पर आते हुए नहीं, बल्कि ऊपर की ओर उठकर वक्र एवं चक्रीय गति करते हुए संगत होते हैं, तब उन ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों की पादरूप शक्तियां अति तीक्ष्णता को त्याग कर व्यवस्थित व समुचित रूप प्राप्त करती हैं। इसके पश्चात् {अलम् = (अल भूषणपर्याप्तिवारणेषु)} क्षत्रिय पदार्थ ब्राह्मण पदार्थ की त्वग् रूप आच्छादक शक्ति को अपने सामर्थ्य से अति तीक्ष्णतारहित कर उसे अपने साथ मिश्रित करके उचित शक्ति से युक्त कर देते हैं। इससे दोनों पदार्थों की आच्छादक शक्तियां अर्थात् रश्मियां परस्पर समन्वित हो जाती हैं। इसके पश्चात् वे क्षत्रिय परमाणु विभिन्न सूक्ष्म रश्मियां उत्सर्जित करके ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ पर प्रक्षिप्त करके उसे संतृप्त करते हैं। इससे ब्राह्मण पदार्थों की हृदयरूपा शक्ति क्षत्रिय पदार्थ के साथ एकरस होकर निरापद रूप प्राप्त करती है। अन्त में क्षत्रिय पदार्थ ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों की सभी रश्मियों को अपने अन्दर निर्बाधरूप से प्रविष्ट कराके उपस्थरूप प्राथमिक प्राण रश्मियों की अति तीक्ष्ण शक्ति को शान्त एवं निरापद बनाते हैं। इस प्रकार इन दोनों ही पदार्थों को पूर्ण ताल-मेल और संयोग हो जाता है।।

इस उपर्युक्त प्रकार के क्षत्रिय परमाणु ब्राह्मण पदार्थों के साथ मिलकर शान्त अर्थात् सम्यक् तेज और बल से युक्त होकर परस्पर संगत होकर एक-दूसरे को तृप्त करते हुए केन्द्रीय भाग में प्रविष्ट और व्याप्त होते हैं। वे सभी प्रकार के बलों व दीप्तियों को प्राप्त करके नाना प्रकार के नवीन बलों को उत्पन्न

करने में समर्थ होते हैं, जबकि ब्राह्मण पदार्थों से विहीन क्षत्रिय परमाणु इनमें से किसी भी गुण को प्राप्त नहीं हो पाते और न ही वे केन्द्रीय भाग में पहुंच पाते हैं। **हमारे मत में क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ कभी भी ब्राह्मण पदार्थों के बिना नहीं रहते। यहाँ जिस अभाव की चर्चा की गयी है, उसे ब्राह्मण पदार्थों द्वारा क्षत्रिय पदार्थों के विधिपूर्वक महाभिषेक का अभाव मानना चाहिए, न कि नितान्तभाव।।**

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में सभी प्रकार के कथित मूल कणों के साथ-२ Atoms, Molecules एवं Ions आदि पदार्थ सदैव ही विभिन्न प्राण व छन्द रश्मियों से सिंचित होते रहते हैं। विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार की एवं भिन्न-२ संख्या में प्राण रश्मियां सभी कणों को सिंचित करती हैं। खुले अन्तरिक्ष में विभिन्न तारों के भिन्न-२ भागों में विद्यमान इन सभी कणों के साथ प्राण रश्मियों की मात्रा एवं शक्ति भिन्न-२ स्तर की होती है, जब यह मात्रा और शक्ति भिन्न-२ स्थानों के अनुकूल समुचित रूप में विद्यमान होती है, तभी वे कण अपने-२ कार्यों को सम्पादित कर पाते हैं। तारों के भिन्न-२ भागों में छन्द रश्मियां भी भिन्न-२ प्रकार की ही होती हैं। यदि वे अन्यथा प्रकार से प्रकट हो जाएं, तो तारे आदि लोकों का अस्तित्त्व संकटग्रस्त हो सकता है। इस खण्ड में **सूक्ष्म प्राणादि रश्मियों का विज्ञान इतना गम्भीर और सूक्ष्म है कि उसकी वर्तमान विज्ञान के किसी पदार्थ से तुलना करके समझाना सम्भव नहीं है।** जैसा कि हम अनेकत्र लिख चुके हैं कि प्राण व छन्द रश्मियों का विज्ञान आधुनिक विज्ञान के क्षेत्र में नहीं आता। इस कारण इसे आधुनिक विज्ञान की भाषा में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। विभिन्न सूक्ष्म कण एवं Quantas अथवा आयनों के पारस्परिक संयोग और वियोग का सूक्ष्म और गम्भीर विज्ञान इस खण्ड में दर्शाया गया है। इसे समझने के लिए व्याख्यान भाग पढ़ना अनिवार्य है।।

ॐ इति ४०.१ समाप्तः ॐ

ॐ अथ ४०.२ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. अग्निर्वा एष वैश्वानरः पञ्चमेनिर्यत्पुरोहितस्ताभी राजानं परिगृह्य तिष्ठति, समुद्र इव भूमिम्।।
अयुवमार्यस्य राष्ट्रं भवति, नैनं पुराऽऽयुषः प्राणो जहात्याजरसं जीवति, सर्वमायुरेति, न पुनर्म्रियते, यस्यैवं विद्वान् ब्राह्मणो राष्ट्रगोपः पुरोहितः।।
क्षत्त्रेण क्षत्त्रं जयति, बलेन बलमश्नुते, यस्यैवं विद्वान् ब्राह्मणो राष्ट्रगोपः पुरोहितः।।
तस्मै विशः संजानते, सम्मुखा एकमनसो यस्यैवं विद्वान् ब्राह्मणो राष्ट्रगोपः पुरोहितः।।२।।

व्याख्यानम्- {समुद्रः = अन्तरिक्षम् (तु.म.द.ऋ.भा.१.१६.८), मनो वै समुद्रः (श.७.५.२.५२), आपो वै समुद्रः (श.३.८.४.११), वाग्वै समुद्रः (तां.७.७.६)} ब्राह्मण पदार्थ जब पूर्वोक्त पांच उग्र शक्तियों से युक्त होते हैं, तब वे वैश्वानर अग्नि कहलाते हैं। इन उपर्युक्त उग्र शक्तियों के द्वारा ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ देदीप्यमान क्षत्रिय पदार्थों को सब ओर से घेरकर उसी प्रकार स्थित रहते हैं, जिस प्रकार भूमि समुद्र से घिरी हुई है अथवा जिस प्रकार विभिन्न लोक अन्तरिक्ष से तथा विभिन्न सूक्ष्म वा स्थूल पदार्थ मन, वाक् एवं प्राण रश्मियों से घिरे रहते हैं।।

{अयुवमारि = युवमरणरहितं भवतीत्यर्थः (सायणभाष्यम्)} जिस क्षत्रिय परमाणु को पूर्वोक्त ब्राह्मण पुरोहित संज्ञक पदार्थ चारों ओर से घेरकर सुरक्षित करते हैं, वे क्षत्रिय पदार्थ सदैव देदीप्यमान होकर आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागरूपी राष्ट्र से पृथक् नहीं होते और न ही अस्थिर होते हैं। इसी प्रकार वे सुरक्षित क्षत्रिय पदार्थ अन्य पदार्थों के संयोग से पूर्व अपने तीव्र प्राण तत्त्व को नहीं त्यागते। इससे स्पष्ट है कि जब दो परमाणु उत्तेजित होकर परस्पर संयुक्त होने वाले होते हैं, तब वे तीव्र प्राण बलों से युक्त होते हैं और जब वे परस्पर संयुक्त हो जाते हैं, तब उनकी प्राण रश्मियों की उत्तेजना शान्त होकर एक नये कण को जन्म देती है। ब्राह्मण पदार्थों से रक्षित क्षत्रिय पदार्थ अपनी पूर्ण आयु तक प्राणादि बलों से युक्त बने रहते हैं अर्थात् उनकी निर्धारित आयु के पूर्ण होने पर ही वे क्षीण बल होकर अपने कारणरूप पदार्थों में लीन हो जाते हैं। वे अपने जीवनकाल में बार-२ प्राणविहीन नहीं होते हैं। यह सब प्रभाव देदीप्यमान और सक्रिय आदित्य लोकों के केन्द्रीय भागरूपी राष्ट्र के रक्षक ब्राह्मण पुरोहित के ही प्रभाव का परिणाम है।।

इन्हीं गुणों से युक्त ब्राह्मण पदार्थ के कारण ही क्षत्रिय परमाणु अन्य क्षत्रिय परमाणुओं को नियंत्रित व प्राप्त करते हैं और इन्हीं के कारण ही वे अपने बल के द्वारा अन्य बलवान् रश्मियों को प्राप्त वा अभिभूत करते हैं।।

इसी उपर्युक्त प्रकार के ब्राह्मण पदार्थ के द्वारा ही कोई भी क्षत्रिय परमाणु अपने उत्पादरूप क्षत्रिय, वैश्य वा शूद्र आदि पदार्थों को संगत रख पाने में समर्थ होता है। वे वैश्य आदि पदार्थ ब्राह्मण पदार्थ से सुरक्षित क्षत्रिय परमाणु के सम्मुख समान व संगत होकर प्रकाशित और सक्रिय होते हैं। उनके अन्दर विद्यमान मनस्तत्त्व उस क्षत्रिय पदार्थ के अन्दर विद्यमान मनस्तत्त्व के साथ एकरस होकर उन्हें परस्पर संगत बनाये रखता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- किसी भी कण और Quantas के विभिन्न प्रकार के बल, क्रियाएं और आयु उनके चारों ओर विद्यमान प्राण व छन्द रश्मियों की मात्रा और स्वरूप पर निर्भर होते हैं और उस कण वा Quantas के जीवनकाल तक वे प्राण रश्मियां उन्हें सदैव आच्छादित किये रहती हैं अर्थात् उनसे कभी वियुक्त नहीं होती हैं।।

∞ इति ४०.२ समाप्तः ∞

अथ ४०.३ प्रारभ्यते

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. तदप्येतदृषिणोक्तम्।।
स इद्राजा प्रतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थावभि वीर्येणेति।।
सपत्ना वै द्विषन्तो भ्रातृव्या जन्यानि तानेव तच्छुष्मेण वीर्येणाधितिष्ठति।।
बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्तीति, बृहस्पतिर्ह वै देवानां पुरोहितस्तमन्वन्ये मनुष्यराज्ञां पुरोहिताः; बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्तीति यदाह, पुरोहितं यः सुभृतं बिभर्तीत्येव तदाह।।
वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजमित्यपचितिमेवास्मा एतदाह।।
स इत् क्षेति सुधित ओकसि स्व इति, गृहा वा ओकः स्वेष्वेव तद्गृहेषु सुहितो वसति।।
तस्मा इळा पिन्वते विश्वदानीमित्यन्नं वा इळाऽन्नमेवास्मा एतदूर्जस्वच्छश्वद्भवति।।
तस्मै विशः स्वयमेवाऽऽनमन्त इति राष्ट्राणि वै विशो राष्ट्राण्येवैनं तत्स्वयमुपनमन्ति।।
यस्मिन् ब्रह्मा राजनि पूर्व एतीति, पुरोहितमेवैतदाह।।
अप्रतीतो जयति सं धनानीति, राष्ट्राणि वै धनानि तान्यप्रतीतो जयति।।
प्रतिजन्यान्युत या सजन्येति, सपत्ना वै द्विषन्तो भ्रातृव्या जन्यानि तानप्रतीतो जयति।।
अवस्यवे यो वरिवः कृणोतीति यदाहावसीयसे योऽवसीयः करोतीत्येव तदाह।।
ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवा इति; पुरोहितमेवैतदभिवदति।।३।।

व्याख्यानम्- क्षत्रिय परमाणुओं एवं पूर्वोक्त ब्राह्मण पुरोहित संज्ञक पदार्थ के संगमन के समय वामदेव ऋषि अर्थात् मनस्तत्त्व प्रधान प्राण नामक प्राण रश्मियां उन क्षत्रिय परमाणुओं को तीन छन्द रश्मियों के द्वारा और भी अधिक प्रकाशित और सक्रिय करती हैं। वे तीन छन्द रश्मियां

स इद्राजा प्रतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थावभि वीर्येण।
बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजम्।।७।।

स इत्क्षेति सुधित ओकसि स्वे तस्मा इळा पिन्वते विश्वदानीम्।
तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते यस्मिन्ब्रह्मा राजनि पूर्व एति।।८।।

अप्रतीतो जयति सं धनानि प्रतिजन्यान्युत या सजन्या।
अवस्यवे यो वरिवः कृणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः।।९।। (ऋ.४.५०.७-९)

हैं। इनका देवता बृहस्पति एवं छन्द क्रमशः निचृत् त्रिष्टुप्, त्रिष्टुप् एवं निचृत् त्रिष्टुप् हैं। इनके दैवत और छान्दस प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियां अति तीव्र तेज और बल से युक्त होकर क्षत्रिय परमाणुओं में प्रवल आकर्षण वल उत्पन्न करती हैं। यहाँ सूत्रात्मा वायु रश्मियां ही ब्राह्मण पुरोहित का कार्य करती हैं।

इन रश्मियों का विस्तृत प्रभाव अगली कण्डिकाओं में विस्तार से बतलाया गया है।।

यह कण्डिका प्रथम छन्द रश्मि का पूर्वार्ध है, जिसके प्रभाव से वह सूत्रात्मा वायुरूपी ब्राह्मण पदार्थ अपने सम्मुख प्रकट वा स्थित क्षत्रिय परमाणुओं को अपने शोषक बल और तेज के द्वारा पराभूत, नियंत्रित वा आकर्षित करता है। इसके साथ ही 'जन्यम्' अर्थात् संयोगादि क्रिया में बाधक बनी सूक्ष्म असुर रश्मियों को अपने तेजस्वी बल के द्वारा अभिभूत, नियंत्रित वा नष्ट कर देता है। हम सर्वत्र लिखते चले आये हैं कि जब भी कोई संयोग प्रक्रिया होती है, तब असुर रश्मियां अवश्य बाधक बनने का प्रयास करती हैं। उसी प्रयास को यहाँ सूत्रात्मा वायु रश्मियों रूपी ब्राह्मण पुरोहित पदार्थ विफल वा नष्ट कर देते हैं।।+।।

प्रथम छन्द रश्मि का तृतीय पाद "बृहस्पतीः य सुभृतं बिभर्ति" है। ये सूत्रात्मा वायु संज्ञक बृहस्पति छन्द रश्मियां देव अर्थात् प्राणापान आदि प्राथमिक प्राण रश्मियां एवं छन्दादि रश्मियों के लिए भी ब्राह्मण पुरोहित रूप में कार्य करती हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि **पदार्थों का ब्राह्मणत्व एवं क्षत्रियत्व सापेक्ष होता है, जो परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तित भी होता रहता है।** विभिन्न क्षत्रिय परमाणुओं के लिए प्राणादि रश्मियां ब्राह्मण पुरोहित का कार्य करती हैं, जबकि ये ही प्राणादि रश्मियां सूत्रात्मा वायु रश्मियों के लिए क्षत्रिय का कार्य करती हैं। इन सूत्रात्मा वायु रश्मियों का अनुकरण करती हुई ही विभिन्न प्राण वा छन्दादि रश्मियां क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थों के लिए पुरोहित ब्राह्मण का कार्य करती हैं। इस ऋचा के इस तृतीय पाद की जब उत्पत्ति होती है, उस समय ये सूत्रात्मा वायु आदि रश्मियां क्षत्रिय रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को अच्छी प्रकार धारण करती हैं। ध्यातव्य है कि सूत्रात्मा वायु रश्मियां निरपेक्षरूप से ब्राह्मण पुरोहित का कार्य नहीं करती, बल्कि मनस्तत्त्व एवं 'ओम्' छन्द रश्मियों के लिए ये रश्मियां क्षत्रिय का कार्य करती हैं और मन एवं 'ओम्' छन्द रश्मियां इनके लिए ब्राह्मण पुरोहित का कार्य करती हैं। मन एवं 'ओम्' छन्द रश्मियां ईश्वर तत्त्व के लिए क्षत्रिय का कार्य करती हैं और ईश्वर तत्त्व निरपेक्ष रूप से ब्राह्मण पुरोहित का कार्य करते हुए संपूर्ण सृष्टि को संचालित और प्रेरित करता है। इसका संकेत करते हुए ऋषियों ने लिखा है-

"मन एव वत्सः" (श.११.३.१.१)

"त ओङ्कारं ब्रह्मणः पुत्रं ज्येष्ठं ददृशुः (देवाः)" (गो.पू.१.२३)

इन वचनों से मनस्तत्त्व एवं 'ओम्' छन्द रश्मियों का ब्रह्म अर्थात् ईश्वर तत्त्व का पुत्र होना सिद्ध होता है। हम यह पूर्व में लिख चुके हैं कि क्षत्रिय पदार्थों की उत्पत्ति ब्राह्मण रूप पदार्थों से ही होती है। इसी कारण इन दोनों सूक्ष्म तत्त्वों के लिए ईश्वर तत्त्व ब्राह्मणरूप है।।

इस उपर्युक्त ऋचा का चौथा पाद है- "वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजम्"। {वल्गुः = वाङ्नाम (निघं. १.११), वलते संवृणोतीति वल्गुः (उ.को.१.१९), अर्चतिकर्मा (निघं.३.१४)। वन्दते = अर्चतिकर्मा (निघं. ३.१४), कामयते (म.द.ऋ.भा.४.५०.७)} इस पाद के प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियां 'अपचितम्' अर्थात् क्षीण होते हुए क्षत्रिय परमाणुओं को सब ओर से आच्छादित करके प्रकाशित और बलयुक्त करती हैं।।

उपर्युक्त तृच में से द्वितीय ऋचा का प्रथम पाद "स इत् क्षेति सुधित ओकसि स्वे" है। इसके प्रभाव से वे क्षत्रिय परमाणु अपने-२ गृह अर्थात् बल आदि की दृष्टि से मर्यादित क्षेत्र में अच्छी प्रकार से निवास करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि इस पाद के प्रभाव से क्षत्रिय परमाणुओं की परिधि वा प्रभाव क्षेत्र सुनिश्चित होता है।।

उपर्युक्त ऋचा का द्वितीय पाद "तस्मा इळा पिन्वते विश्वदानीम्" है। इसके प्रभाव से वह क्षत्रिय परमाणु इळा अर्थात् संयोजक बल रश्मियों का पान करके आकर्षण बलों से विशेष युक्त होता है और निरन्तर वह इन्हीं बलों के साथ वर्तमान रहता हुआ अन्य संयोज्य क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थों को अपने साथ संगत करके नवीन तत्त्वों को उत्पन्न करता रहता है।।

इसी ऋचा का तृतीय पाद "तस्मै विशः स्वयमेवाऽऽनमन्ते" है। इसके प्रभाव से देदीप्यमान हुए वैश्य संज्ञक परमाणु क्षत्रिय संज्ञक परमाणुओं की ओर स्वयं ही आकर्षित होते चले आते हैं अर्थात् उनके

साथ संगत होने लगते हैं।।

इस ऋचा का चतुर्थ पाद **"यस्मिन् ब्रह्मा राजनि पूर्व एति"** है। इसके प्रभाव से **ब्राह्मणरूप** सूत्रात्मा वायु रश्मियां आदि पदार्थ अपने सापेक्ष **क्षत्रिय** पदार्थों के सम्मुख प्राथमिकता से प्रकट और व्याप्त होने लगते हैं।।

अब तृतीय ऋचा के विषय में लिखते हैं। इस ऋचा का प्रथम पाद **"अप्रतीतो जयति सं धनानि"** है। {अप्रतीतः = यः शत्रुभिरप्रीयमानः (म.द.ऋ.भा.६.७३.३), अप्रत्यक्षः (म.द.ऋ.भा.५.३२.६)} इसके प्रभाव से असुरादि रश्मियों से मुक्त **क्षत्रिय** परमाणु अन्य विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को नियंत्रित वा संगत करने में समर्थ होते हैं। उन **क्षत्रिय** परमाणुओं का यह नियंत्रण कर्म और उनसे उत्पन्न नियंत्रक रश्मियों का कभी भी किसी भी भौतिक तकनीक से प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। **क्षत्रिय** परमाणुओं के साथ संयुक्त होने वाले विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ ही राष्ट्ररूप आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग का निर्माण करते हैं।।

इसका द्वितीय पाद **"प्रतिजन्यान्युत या सजन्या"** है। इसके प्रभाव से **क्षत्रिय** परमाणु स्वयं असुर रश्मियों से मुक्त होकर निकटस्थ असुर रश्मियों को नियंत्रित करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि आसुर प्रभावमुक्त **क्षत्रिय** परमाणु अपने साथ संयोज्य परमाणु को भी आसुर प्रभाव से मुक्त करते हैं।।

इस ऋचा का तृतीय पाद **"अवस्येव यो वरिवः कृणोति"** है। {वरिवः = धननाम (निघं.२.१०), भृशं रक्षणम् (म.द.य.भा.५.३७)} इसके प्रभाव से वे **क्षत्रिय** परमाणु {अवस्यवे = रक्षामिच्छवे (म.द.य.भा.५.३७)} इसके प्रभाव से वे क्षत्रिय परमाणु {अवस्यवे = रक्षामिच्छवे (म.द.भा.)} जो असुरादि रश्मियों से सुरक्षित रहने की इच्छा वाले होते हैं, वे उनसे सुरक्षित रहकर नाना प्रकार के द्रव्यों को धारण करने में समर्थ होते हैं। इस प्रकार संयोगादि क्रियाओं से विहीन **क्षत्रिय** परमाणु सुरक्षित रूप से नाना प्रकार की संयोगादि क्रियाओं को करने में समर्थ होते हैं।।

इस ऋचा का अन्तिम पाद **"ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवा"** है। इसके प्रभाव से देदीप्यमान **क्षत्रिय** परमाणु, जो **पुरोहित ब्राह्मणरूप** पदार्थों के साथ समन्वित हो जाते हैं, उनकी सभी प्राणादि रश्मियां रक्षा करती हैं। इसके साथ ही वे उनमें बल, गति, प्रकाश आदि गुणों को भी सब ओर से प्रकाशित वा सक्रिय करती हैं। सूक्ष्म स्तर पर यहाँ देव का अर्थ मन, वाक् आदि भी समझना चाहिए।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- जब दो कण वा क्वाण्टाज् (quantas) का पारस्परिक संयोग होता है, तब उसमें तीन त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों, जो सूत्रात्मा वायु रश्मियों से विशेष प्रेरित होती हैं, की भी विशेष भूमिका होती है। ये तीनों छन्द रश्मियां डार्क एनर्जी की बाधा को भी निर्मूल करने में सहायक होती हैं। सभी प्रकार की क्रियाओं में मन एवं **'ओम्'** छन्द रश्मियों के माध्यम से **ईश्वर तत्त्व ही पूर्ण नियंत्रक और संचालक का कार्य करता है।** इन रश्मियों का सम्पूर्ण कार्य आधुनिक भौतिक तकनीक से कभी भी नहीं जाना जा सकता। डार्क एनर्जी के प्रभाव के रहते किसी भी प्रकार की संयोग क्रिया सम्पन्न नहीं हो सकती। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

इति ४0.3 समाप्तः

अथ ४०.४ प्रारभ्यते

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. यो ह वै त्रीन् पुरोहितांस्त्रीन् पुरोधातॄन् वेद, स ब्राह्मणः पुरोहितः, स वदेत पुरोधायाः; अग्निर्वाव पुरोहितः, पृथिवी पुरोधाता, वायुर्वाव पुरोहितोऽन्तरिक्षं पुरोधाताऽऽदित्यो वाव पुरोहितो, द्यौः पुरोधातैष ह वै पुरोहितो य एवं वेदाथ स तिरोहितो य एवं न वेद।।
तस्य राजा मित्रं भवति द्विषन्तमपबाधते, यस्यैवं विद्वान् ब्राह्मणो राष्ट्रगोपः पुरोहितः।।
क्षत्रेण क्षत्रं जयति, बलेन बलमश्नुते; यस्यैवं विद्वान् ब्राह्मणो राष्ट्रगोपः पुरोहितस्तस्मै विशः संजानते, संमुखा एकमनसो, यस्येवं विद्वान् ब्राह्मणो राष्ट्रगोपः पुरोहितः।।
भूर्भुवः स्वरोममोऽहमस्मि, स त्वं; स त्वमस्यमोऽहं; द्यौरहं पृथिवी त्वं; सामाहमृक्त्वं; तावेह संवहावहै। पुराण्यस्मान् महाभयात्। तनूरसि तन्वं मे पाहि।।

या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वी शतविचक्षणाः।
ता मह्यमस्मिन्नासनेऽच्छिद्रं शर्म यच्छत।।
या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु।
ता मह्यमस्मिन्नासनेऽच्छिद्रं शर्म यच्छत।।

अस्मिन् राष्ट्रे श्रियमावेशयाम्यतो देवीः प्रतिपश्याम्यापः,।।
दक्षिणं पादमवनेनिजेऽस्मिन् राष्ट्र इन्द्रियं दधामि। सव्यं पादमवनेनिजेऽस्मिन् राष्ट्र इन्द्रियं वर्धयामि। पूर्वमन्यमपरमन्यं पादाववनेनिजे। देवा राष्ट्रस्य गुप्त्या अभयस्यावरुद्ध्यै।।
आप पादावनेजनीर्द्विषन्तं निर्दहन्तु मे।।४।।

व्याख्यानम्- जो पदार्थ तीन पुरोहित रूप पदार्थों और उनके धारण करने वाले तीन पुरोधाता पदार्थों के अन्दर सदैव विद्यमान रहता है, वही ब्राह्मण पुरोहित बृहस्पति संज्ञक सूत्रात्मा वायु कहलाता है। पूर्वखण्ड में ब्राह्मण पुरोहित रूप जिन सूत्रात्मा वायु रश्मियों की चर्चा की गयी थी, उन्हीं सूत्रात्मा वायु रश्मियों के गुणों को स्पष्ट करने के लिए यह कण्डिका लिखी गयी है। वे तीन पुरोहित रूप पदार्थ और उनके पुरोधाता अर्थात् उनको धारण करने वाले क्षत्रिय पदार्थ निम्न प्रकार माने गये हैं-
(१) अग्नि अर्थात् ऊष्मा अथवा विद्युदग्नि पुरोहितरूप में कार्य करता है, तो पृथिवी अर्थात् विभिन्न अप्रकाशित परमाणु उसको धारण करने वाले क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ हैं। ये पदार्थ विद्युत् अथवा ऊष्मा आदि के द्वारा ही सशक्त एवं तेजस्वी होते हैं। इन परमाणुओं को विद्युत् अथवा ऊष्मा ही गति आदि गुणों से युक्त करके नाना प्रकार के कार्यों में प्रवृत्त करती है।।
(२) वायु अर्थात् विभिन्न प्राणादि रश्मियां ही पुरोहित का कार्य करती हैं और अन्तरिक्ष आकाश तत्त्व ही इनको धारण करने वाला होकर क्षत्रियरूप कहलाता है। हम पूर्व में यह भी लिख चुके हैं कि आकाश तत्त्व की उत्पत्ति प्राण एवं कुछ छन्द रश्मियों से ही होती है। इस कारण भी इसे प्राण आदि रश्मियों का धारक कहा गया है। आकाश रश्मियों के विभिन्न कार्य प्राण रश्मियों के द्वारा ही होते हैं।
(३) आदित्य अर्थात् विभिन्न प्रकाश रश्मियां पुरोहित रूप होती हैं और द्युलोक इनको धारण करने वाला क्षत्रिय संज्ञक पदार्थ है। द्युलोक अर्थात् आदित्य लोक ही विभिन्न प्रकाश आदि रश्मियों को धारण करने

वाला होता है। वस्तुतः यह उनके द्वारा ही अपने दिव्य स्वरूप को प्राप्त कर पाता है। यदि आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग में इन प्रकाश आदि रश्मियों की न्यूनता हो जाए, तो आदित्य लोक अपने दिव्य स्वरूप को खो देते हैं। यहाँ आदित्य का अर्थ बारह मासरूप रश्मियां किंवा ऋतु रश्मियां भी हैं, जिनके कारण ही आदित्य लोक अपने स्वरूप को बनाये रख पाते हैं। अन्य प्रसंग में आदित्य से हम प्राणापानादि दस प्राथमिक प्राण रश्मियों का ग्रहण कर सकते हैं। ये प्राथमिक प्राण रश्मियां आदित्य रश्मियों को निर्माण करतीं और उन्हीं में प्रतिष्ठित भी रहती हैं। इस कारण आदित्य रश्मियां क्षत्रियरूप और प्राथमिक प्राण रश्मियां पुरोहितरूप होती हैं। इसी प्रकार मास एवं ऋतु रश्मियां भी ब्राह्मण पुरोहितरूप एवं आदित्य लोक क्षत्रियरूप होता है।

इन सबके भीतर भी जो पुरोहितरूप बनकर विद्यमान रहता है, वही सूत्रात्मा वायु सबका ब्राह्मण पुरोहित कहलाता है। यदि इन तीनों पुरोहित रूप पदार्थों में सूत्रात्मा वायु रश्मियों रूपी ब्राह्मण पुरोहितरूप पदार्थ विद्यमान न हो, तो सभी पदार्थों का पुरोहित रूप नष्ट हो जाता है। इसके नष्ट होने पर क्षत्रिय परमाणु आदि पदार्थों का भी स्वरूप नष्ट हो जाता है। इससे सूक्ष्मतर चरण में मन एवं 'ओम्' छन्द रश्मियों तथा सूक्ष्मतम चरण में **ईश्वर तत्त्व का पौरोहित्य एवं ब्राह्मणत्व समझना चाहिए,** जिनके अभाव में सृष्टि की कोई क्रिया सम्भव नहीं है।।

जिस देदीप्यमान क्षत्रिय परमाणु का ऐसे राष्ट्ररक्षक अर्थात् आदित्य लोकों के केन्द्रीय भाग के रक्षक और पालक ब्राह्मण पुरोहित रूप पदार्थों के साथ संगम होता है, वह क्षत्रिय पदार्थ सभी असुरादि पदार्थों को अभिभूत वा नष्ट करके अन्य परमाणुओं के साथ संगमनीय बन जाता है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान खण्ड ८.२५ की अन्तिम दो कण्डिकाओं के व्याख्यान के समान समझें।।

{अमः = यह (आप्टेकोश), गृहनाम (निघं.३.४)} जब कोई क्षत्रिय परमाणु ब्राह्मण संज्ञक किसी पदार्थ के साथ संयुक्त होता है, उस समय क्षत्रिय परमाणुओं में से एक अतिच्छन्द रश्मि प्रकट होती है, वह छन्द रश्मि ही इस कण्डिका के रूप में ग्रन्थकार ने उद्धृत की है। इसके प्रभाव से सर्वप्रथम 'भूः' 'भुवः' 'स्वः' एवं 'ओम्' छन्द रश्मियां सक्रिय होती हैं। इनके प्रभाव से यह क्षत्रिय परमाणु उन ब्राह्मण रश्मि आदि पदार्थों का एवं 'भूः' 'भुवः' 'स्वः' एवं 'ओम्' रश्मियों का गृह अर्थात् आवास बन जाता है, उधर ब्राह्मण संज्ञक रश्मि आदि पदार्थ भी 'भूः' 'भुवः' 'स्वः' एवं 'ओम्' रश्मियों के आवास बन जाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि 'ओम्' आदि चारों सूक्ष्म रश्मियां दोनों ही प्रकार के पदार्थों में विचरण वा आवागमन करती रहती हैं। वे क्षत्रिय परमाणु अपनी देदीप्यमानता के कारण द्युरूप में व्यवहार करते हैं। इसी कारण क्षत्रिय के विषय में ऋषियों का कथन है-

"क्षत्रस्येव प्रकाशो भवति" (जै.ब्रा.१.२४३)

"क्षत्रस्यैतद्रूपं यद्धिरण्यम्" (श.१३.२.२.१७)

उधर ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ अति विस्तार वाले होकर पृथिवीरूप कहलाते हैं। इसी कारण कहा गया है-

"एतस्यैवान्तो नास्ति यद् ब्रह्मेति" (तै.सं.७.३.१.४)

क्षत्रिय पदार्थ सामरूप कहलाते हैं, क्योंकि वे विशेष तेजस्वी और भेदक बलों से युक्त हो जाते हैं। इसी बात को अन्यत्र भी कहा गया है-

"क्षत्रं वै साम" (गो.उ.५.७; श.१२.८.३.२३)

उधर ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ ऋग् रूप माने गये हैं, इसका कारण यह है कि सामरूप क्षत्रिय पदार्थ ऋग् रूप ब्राह्मण पदार्थों के अन्दर ही सदैव प्रकाशित होते हैं। इसी कारण महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है-

"ऋचि साम गीयते" (श.८.१.३.३)

अन्यत्र भी कहा गया है-

"ऋचो वै ब्रह्मण प्राणः" (काठ.संक.४.१)

इस प्रकार ये दोनों पदार्थ परस्पर साथ रहते हुए एक-दूसरे का वहन करते हैं। इनमें से ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों के पुरों अर्थात् समूहों की रक्षा करते हैं, जिससे वे विभिन्न तीक्ष्ण,

वाधक असुरादि पदार्थों को सुरक्षित रखकर अपने कार्यों का विस्तार करने में समर्थ होते हैं। वस्तुतः ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ क्षत्रिय संज्ञक पदार्थों के शरीररूप होकर सदैव उनको आश्रय प्रदान करते रहते हैं।।

इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ इस कण्डिका के रूप में वर्णित निचृदनुष्टुप् छन्द रश्मि को उत्पन्न करते हैं। इस छन्द रश्मि का पूर्वार्ध ऋ.१०.९७.१८ में भी विद्यमान है। इसके प्रभाव से ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ {औषधिः = ओषधयो बर्हिः (ऐ.५.२८), ओषधयः खलु वै वाजः (तै.ब्रा.१.३.७.१)} क्षत्रिय पदार्थों को एवं उनके साथ संयोग प्रक्रिया में कार्यरत विभिन्न छन्द रश्मियों को अनुकूलतापूर्वक धारण और प्रकाशित करते हैं। उस समय सूक्ष्म सोम रश्मियों से प्रकाशित वलवती छन्द रश्मियां अनेक प्रकार के विचक्षण रूपों में प्रकट होकर ब्राह्मण रश्मियों को निर्दोष रूप से धारण करती हुई अनुकूल आश्रय प्रदान करती हैं। इसके कारण ब्राह्मण रश्मियां भी अपने आश्रयरूप क्षत्रिय परमाणुओं को निरापद रूप से अपना आश्रय अर्थात् आच्छादन प्रदान करती हैं।।

इसके साथ ही इस कण्डिका के रूप में उद्धृत एक अन्य निचृदनुष्टुप् छन्द रश्मि ब्राह्मणरूप पदार्थों से उत्पन्न होती है। इसका छान्दस प्रभाव पूर्वोक्तवत् होता है। इसके अन्य प्रभाव से तेजस्विनी सोम रश्मियों से तेजयुक्त हुई विभिन्न छन्दादि रश्मियां पूर्वोक्तानुसार पृथिवीरूप व्यापक ब्राह्मणरूप पदार्थों में अनुकूलता से व्याप्त हो जाती हैं, इस ऋचा के उत्तरार्ध का प्रभाव पूर्वोक्त ऋचा के समान समझें।।

इसके पश्चात् आदित्य लोक के केन्द्रीय भाग की ओर जाते हुए क्षत्रिय परमाणुओं में सव ओर से प्रविष्ट होती हुई ब्राह्मण रश्मियां अपनी आश्रयभूता कमनीय आप संज्ञक प्राथमिक प्राण रश्मियों की ओर देखती हैं अर्थात् उनको अपनी ओर आकृष्ट करती हैं, जो कि उन ब्राह्मण रश्मियों के लिए भी ब्राह्मण पुरोहित का कार्य करती हैं। यहाँ 'आपः' शब्द से सूत्रात्मा वायु रश्मियों का भी ग्रहण करना चाहिए।।

पूर्वोक्त "या ओषधीः सोमराज्ञीः......। इत्यादि दोनों छन्द रश्मियों के द्वारा ब्राह्मण रश्मियां पहले अपने दक्षिणी भाग को शुद्ध करके क्षत्रिय परमाणुओं के प्रभाव क्षेत्र में वल को उत्पन्न वा धारण कराती हैं। इसके कारण वे क्षत्रिय परमाणु ब्राह्मण रश्मियों के साथ संयुक्त होकर तेजयुक्त होने लगते हैं। इसके पश्चात् उन्हीं छन्द रश्मियों के द्वारा ब्राह्मण रश्मियां अपने वांये भाग को शुद्ध करती हैं, जिसके फलस्वरूप वे उस क्षत्रिय परमाणु के प्रभाव क्षेत्र में उत्पन्न हुए वलों को समृद्ध करने में सक्षम होती हैं अर्थात् उन क्षत्रिय परमाणुओं का वल और तेज तीव्रतर होने लगता है। यह प्रक्रिया उपर्युक्तानुसार दो भागों में ही क्रमशः सम्पन्न होती है। इन दो चरणों के द्वारा ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ परिशुद्ध और समर्थ होकर प्राथमिक प्राण रश्मियों को आदित्य केन्द्रों में क्षत्रिय परमाणुओं की रक्षा और अविचलता के लिए प्रेरित करते हैं किंवा उन प्राण रश्मियों के द्वारा क्षत्रिय परमाणुओं की रक्षा करने के लिए उनके अनुचित विचलन को रोकते हैं।।

ब्राह्मण रश्मियों के उपर्युक्त परिशोधन के पश्चात् विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियां क्षत्रिय परमाणुओं के निकटस्थ आयी हुई असुरादि रश्मियों को नष्ट कर देती हैं, जिससे क्षत्रिय परमाणु ब्राह्मण रश्मियों से युक्त होकर अपने कर्मों को निरापदरूप से करने में समर्थ होते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में धारक एवं धृत पदार्थों के असंख्य युग्म विद्यमान होते हैं। यहाँ तीन युग्मों की चर्चा की गयी है। वे युग्म इस प्रकार हैं-
(१) विद्युदावेश सदैव ही किसी सूक्ष्म कण के अन्दर ही विद्यमान रहता है। इस विद्युत् आवेश की स्वतंत्र सत्ता नहीं हो सकती। इस प्रकार विद्युत् आवेश धृत पदार्थ और कण उसका धारक है किन्तु धृत पदार्थ विद्युत् आवेश के बिना किसी भी कण का अस्तित्त्व भी नहीं रह सकता अर्थात् विद्युत् के बिना किसी भी कण की उत्पत्ति व स्थिति नहीं हो सकती। वर्तमान विज्ञान जिन मूल कणों को विद्युत् आवेश रहित अर्थात् उदासीन मानता है, वे कण वस्तुतः धनावेश और ऋणावेश का संयुक्त रूप ही होते हैं, न कि सर्वथा विद्युत् रहित। इस विद्युत् के कारण ही उस कण में गति, बल प्रकाश आदि गुण विद्यमान होते हैं।।

(२) विभिन्न प्राण एवं सूक्ष्म छन्द रश्मियां धृत पदार्थ एवं आकाश तत्त्व (space) उनका धारक होता है। आकाश तत्त्व प्राथमिक प्राण रश्मियों एवं सूक्ष्म छन्द रश्मियों से निर्मित होता है। इस विषय में इस ग्रन्थ में अनेकत्र चर्चा की गयी है। किसी भी प्रकार के आकर्षण-प्रतिकर्षण बल के समय space का सिकुड़ना वा प्रसारित होना इसी कारण सम्भव होता है, क्योंकि space इन रश्मियों से बना हुआ होता है। यदि space "Nothing" अर्थात् vacuum मात्र होता, तो उसका सिकुड़ना और प्रसारित होना जैसा व्यवहार कदापि देखने में नहीं आता, जबकि आधुनिक विज्ञान इस व्यवहार को स्वीकार करता है।।

(३) विभिन्न क्वाण्टाज़् (Quantas) धारक एवं प्राथमिक प्राण रश्मियां धृत पदार्थ कहलाती हैं। ये Quantas न केवल प्राण रश्मियों को धारण करते हैं, अपितु उनसे निर्मित होकर गति, बल आदि गुणों से युक्त भी होते हैं। इनमें सूक्ष्म छन्द रश्मियां भी विद्यमान होती हैं, उधर तारों के केन्द्रीय भाग भी प्राण व छन्द रश्मियों के सघन रूप होते हैं। इसी प्रकार उन भागों में विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की भी अति सघनता होती है। इनके अभाव में तारों के केन्द्रीय भाग न तो बन ही सकते हैं और न संचालित ही हो सकते हैं। यहाँ मास एवं ऋतु रश्मियों की भी अनिवार्य भूमिका होती है।

सूत्रात्मा वायु, मन, **'ओम्'** छन्द रश्मि, इन सबकी अपेक्षा अति सूक्ष्म पदार्थ हैं, जो सबके अन्दर विद्यमान रहते हैं। **मूल प्रकृति एवं ईश्वर तत्त्व क्रमशः सबसे अधिक सूक्ष्म एवं अन्तिम पदार्थ हैं।** विद्युत् वा प्राणादि पदार्थ ही डार्क एनर्जी के दुष्प्रभावों को नष्ट करते हैं। सभी प्रकार की संयोग और वियोगादि क्रियाओं में इन प्राण व छन्दादि रश्मियों के साथ-२ **'भूः', 'भुवः' 'स्वः'** आदि सूक्ष्म रश्मियों की भी अनिवार्य भूमिका होती है। किसी भी कण के चारों ओर विद्यमान प्राणादि रश्मियों का घेरा उस कण के आकार की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। यद्यपि कोई भी कण उन प्राणादि रश्मियों के कारण ही प्रकाशित होता है, पुनरपि उस कण की तेजस्विता प्राणादि रश्मियों के विशाल घेरे की तेजस्विता की अपेक्षा अधिक होती है। तारों के केन्द्रीय भाग में इन सब पदार्थों की क्रिया एवं बलशीलता सर्वाधिक होती है। जब दो कणों अथवा कण और Quanta आदि का पारस्परिक संयोग होता है, तब उन कणों अथवा क्वाण्टाज़् (Quantas) के बाहर विद्यमान विशाल रश्मि क्षेत्र दो चरणों में सक्रिय होता है। प्रथम चरण में उस क्षेत्र के दांये भाग में प्राथमिक प्राण रश्मियां अधिक सक्रिय होकर बल को शुद्ध रूप प्रदान करती हैं। इसके तत्काल पश्चात् ही बांये भाग में प्राण रश्मियों की सक्रियता तीव्र हो जाती है। इस प्रकार सम्पूर्ण रश्मि क्षेत्र उत्तेजित होकर उन कण अथवा क्वाण्टाज़् (Quantas) को तीव्र एवं शुद्ध बल प्रदान करके संयुक्त होने योग्य बनाता है। यहाँ शुद्ध बल से तात्पर्य यह समझना चाहिए कि संयोग के समय उस क्षेत्र में विद्यमान डार्क एनर्जी का सूक्ष्म रूप भी नियंत्रित वा निराकृत हो जाता है, जिससे कोई भी प्रतिकर्षण बल बाधक नहीं बन पाता।।

इति ४०.४ समाप्तः

अथ ४०.५ प्रारभ्यते

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. अथातो ब्रह्मणः परिमरो, यो ह वै ब्रह्मणः परिमरं वेद, पर्येनं द्विषन्तो भ्रातृव्याः परि सपत्ना म्रियन्ते।।
अयं वै ब्रह्म, योऽयं पवते, तमेताः पञ्च देवताः परिम्रियन्ते,-विद्युद्वृष्टिश्चन्द्रमा आदित्योऽग्निः।।
विद्युद्वै विद्युत्य वृष्टिमनुप्रविशति, साऽन्तर्धीयते, तां न निर्जानन्ति।।
यदा वै म्रियतेऽथान्तर्धीयतेऽथैनं न निर्जानन्ति।।
स ब्रूयाद् विद्युतो मरणे द्विषन् मे म्रियतां, सोऽन्तर्धीयतां, तं मा निर्ज्ञासिषुरिति।।
क्षिप्रं हैवैनं न निर्जानन्ति।।
वृष्टिर्वै वृष्ट्वा चन्द्रमसमनुप्रविशति, साऽन्तर्धीयते, तां न निर्जानन्ति, यदा वै म्रियतेऽथान्तर्धीयतेऽथैनं न निर्जानन्ति, स ब्रूयाद् वृष्टेर्मरणे द्विषन् मे म्रियतां, सोऽन्तर्धीयतां, तं मा निर्ज्ञासिषुरिति, क्षिप्रं हैवैनं न निर्जानन्ति।।
चन्द्रमा वा अमावास्यायामादित्यमनुप्रविशति, सोऽन्तर्धीयते, तं न निर्जानन्ति, यदा वै म्रियतेऽथान्तर्धीयतेऽथैनं न निर्जानन्ति, स ब्रूयाच्चन्द्रमसो मरणे द्विषन् मे म्रियतां, सोऽन्तर्धीयतां, तं मा निर्ज्ञासिषुरिति; क्षिप्रं हैवैनं न निर्जानन्ति।।
आदित्यो वा अस्तं यन्नग्निमनुप्रविशति, सोऽन्तर्धीयते, तं न निर्जानन्ति; यदा वै म्रियतेऽथान्तर्धीयतेऽथैनं न निर्जानन्ति; स ब्रूयादादित्यस्य मरणे द्विषन् मे म्रियतां, सोऽन्तर्धीयतां, तं मा निर्ज्ञासिषुरिति; क्षिप्रं हैवैनं न निर्जानन्ति।।
अग्निर्वा उद्वान् वायुमनुप्रविशति, सोऽन्तर्धीयते, तं न निर्जानन्ति; यदा वै म्रियतेऽथान्तर्धीयतेऽथैनं न निर्जानन्ति, स ब्रूयादग्नेर्मरणे द्विषन्मे म्रियतां, सोऽन्तर्धीयतां, तं मा निर्ज्ञासिषुरिति; क्षिप्रं हैवैनं न निर्जानन्ति।।
ता वा एता देवता अत एव पुनर्जायन्ते।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त ब्राह्मण पदार्थों के पौरोहित्य विज्ञान के वर्णन के उपरान्त उन ब्राह्मण पदार्थों वा ब्रह्मरूप पदार्थों (ब्राह्मण पदार्थ के कारणरूप) के 'परिमर' की चर्चा प्रारम्भ करते हैं। यहाँ 'परिमर' शब्द का अर्थ है- सब ओर विनाश। यहाँ ग्रन्थकार यह बताना चाहते हैं कि जब क्षत्रिय संज्ञक परमाणुओं के चारों ओर जो ब्राह्मण संज्ञक पदार्थ विद्यमान रहते हैं, उनका किस प्रकार और किस अनुक्रम से प्रतिकर्षक और बाधक बलों से युक्त संघर्ष होता है और कैसे यह संघर्ष संपूर्ण क्षेत्र में फैलता हुआ सब ओर उन बाधक तत्त्वों अर्थात् असुर पदार्थों का विनाश करता है? इस संपूर्ण क्रिया को ही ब्रह्मरूप पदार्थ की परिमर क्रिया कहते हैं। इस विषय में महर्षि तित्तिर का भी कथन है-
"तद् ब्रह्मणः परिमर इत्युपासीत। पर्येणं म्रियन्ते द्विषन्तः। परि येऽप्रिया भ्रातृव्याः" (तै.आ.९.१०.४; तै. उ.३.१०.४)

हम इस बात से अवगत ही हैं कि ये असुरादि पदार्थ ही विभिन्न क्षत्रिय परमाणुओं के संयोगादि कर्मों को बाधित करके सर्ग प्रक्रिया को अवरुद्ध कर देते हैं। इस प्रक्रिया को सुचारुरूप से संचालित

करना ही ब्राह्मण संज्ञक पदार्थों का कार्य है। इसी सन्दर्भ में 'परिमर' कर्म भी आवश्यक और महत्वपूर्ण कर्म है।।

अब ब्रह्मरूप पदार्थ का विवेचन करते हुए कहते हैं कि सतत बहने वाला यह सबका शोधक वायु ही ब्रह्मरूप कहलाता है। इस विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य का भी कथन है-

"अथामूर्त्तं (ब्रह्मणो रूपम्) वायुश्चान्तरिक्षं च" (श.१४.५.३.४)

"अथामूर्त्तं (ब्रह्मणो रूपम्) प्राणश्च यश्चायमन्तराकाशः" (श.१४.५.३.८)

हमें यह भी अवगत है कि यहाँ वायु से विभिन्न प्राण रश्मियों का ग्रहण करना चाहिए। उस ऐसे वायु के चारों ओर के पांच देव पदार्थों का भी क्रमशः विनाश अर्थात् उनके उपादान कारण में लय होता है। ये पांच देव पदार्थ हैं- विद्युत्, वृष्टि, चन्द्रमा, आदित्य एवं अग्नि। इन पांचों पदार्थों के विषय में आगे यथास्थान व्याख्यान किया जाएगा।।

{विद्युत् = विद्युद् यज्ञायज्ञीयस्य (ज्योतिः) (जै.ब्रा.१.२६२; २.४३३), बलमिति विद्युति (तै.आ.६.१०.२; तै.उ.३.१०.३)} यहाँ विद्युत् उस बल का नाम है, जो किसी संयोज्य परमाणु के अन्य संयोज्य परमाणु के साथ संयोग के समय अथवा किसी संयोज्य परमाणु के किसी असंयोज्य वा न्यूनतर संयोज्य परमाणु के साथ संयोग के समय ज्योति के साथ प्रकट होता है। यह विद्युत् बल ही नाना प्रकार के कर्मों को संपादित करके नाना तत्त्वों को उत्पन्न करता है। इसके साथ ही यह विद्युत् बल उन परमाणुओं को नाना क्रियाओं के लिए प्रेरित करता है, इसी कारण कहा गया है-

"विद्युदेव सविता" (गो.पू.१.३३)

इस विद्युत् के विषय में महर्षि जैमिनी का कथन है-

"वीव वा इदमद्युतदिति। सैषा विद्युदभवत्" (जै.ब्रा.३.३८०)

{वीव = पक्षीव (म.द.ऋ.भा.७.५५.२) (वि-इवपदयोः समासः), विरिति शकुनिनाम वेतेर्गतिकर्मणः (नि.२.६)} इसका आशय यह है कि विद्युत् की ज्योति पक्षी के उड़ने के समान अकस्मात् उत्पन्न वा विलीन होती है। दो परमाणुओं के मध्य संयोग के समय विद्युत् के व्यवहार के विषय में ऋषियों का मानना है-

"यथाऽसावन्तरिक्षे विद्युदेवमिदमात्मनि हृदयम्" (ऐ.आ.३.१.२; शां.आ.७.४) इसका आशय यह है कि दो परमाणुओं के संयोग के प्रभावक्षेत्र रूपी आकाश में विद्युत् का वही स्थान होता है, जो किसी प्राणी के शरीर में हृदय का होता है। जैसे हृदय सम्पूर्ण शरीर को रक्त प्रदान करके संचालित व सक्रिय करता है, वैसे ही विद्युत् आकाश तत्त्व में नाना प्रकार की प्राण व छन्दादि रश्मियों के सम्प्रेषण के द्वारा आकाश तत्त्व को संकुचित वा प्रसारित करती है, जिसके कारण दोनों ही परमाणुओं के संयोग और वियोग की प्रक्रिया हो पाती है। यह विद्युत् अपने कारणरूप वृष्टि तत्त्व में प्रविष्ट हो जाती है, इसी को इसका मरण कहा गया है। वृष्टि तत्त्व के विषय में ऋषियों का कथन है-

"आनुष्टुभी वै वृष्टिः" (तां.१२.८.८)

"वृष्टिः सम्मार्जनानि" (तै.ब्रा.३.३.१.२)

हमारे मत में पूर्वखण्ड में ब्राह्मण रश्मियों को शुद्ध करने वाली "या ओषधीः सोमराज्ञी.....इत्यादि दोनों निचृदनुष्टुप् छन्द रश्मियां ही यहाँ वृष्टिरूपा कहाती हैं, यही उपर्युक्त दोनों आर्षवचनों का संकेत है। इनके मार्जन कर्म को हम पूर्व में समझ ही चुके हैं। असुर तत्त्व को नष्ट वा नियंत्रित करने वाली विद्युत् दो परमाणुओं के संयुक्त होते ही इन्हीं अनुष्टुप् छन्द रश्मियों में विलीन हो जाती है। जब तक उन परमाणुओं का संयोग नहीं होता है, तब तक विद्युत् इन दोनों छन्द रश्मियों से आच्छादित रहती हुई भी इनमें लय को प्राप्त नहीं होती है। विद्युत् के इन छन्द रश्मियों में लय होने पर यह उन छन्द रश्मियों में मानो छिप जाती है, जिससे उसका प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता है अर्थात् उसके स्वरूप वा अस्तित्त्व के लक्षण अदृश्य वा शान्त हो जाते हैं।।

जब विद्युत् इस प्रकार अदृश्य हो जाती है, उस समय तक विद्युत् के प्रभाव से वह असुर तत्त्व भी नष्ट होकर दूर आकाश तत्त्व में विलीन हो जाता है, जिसके कारण उसका अवरोधक अथवा प्रतिकर्षक स्वरूप भी समाप्त हो जाता है अर्थात् उसके भी सभी लक्षण नष्ट हो जाते हैं। इस कारण परमाणुओं के

संयोग की प्रक्रिया निर्बाधरूप से सम्पन्न हो जाती है। स्मरण रहे कि विद्युत् के अन्तर्धान के पश्चात् असुर तत्त्व का अन्तर्धान नहीं होता है, वल्कि ये दोनों प्रक्रिया साथ-२ ही सम्पन्न होती हैं अर्थात् इन दोनों ही पदार्थों का मरण साथ-२ होता है, जिससे आकर्षण और प्रतिकर्षण दोनों ही वल संतुलित वा समाप्त हो जाते है। यह क्रिया अतिशीघ्रता से होती है।।+।।+।।

पूर्वोक्त वृष्टि संज्ञक शोधक अनुष्टुप् छन्द रश्मियां ब्राह्मण पदार्थ को अभिसिंचित कर उन्हें शुद्ध करने के पश्चात् चन्द्रमा में प्रविष्ट हो जाती हैं। {चन्द्रमा = अन्नमु चन्द्रमा (श.८.३.३.११), एष (चन्द्रमा) वै पवमान एष सोमो राजा (जै.ब्रा.२.१४५), चन्द्रमा उ वै सोमः (श.६.५.१.१), चन्द्रमा एव हिङ्कारः (जै.उ.१.१.३.४; ११.१.५)} इसका तात्पर्य यह है कि वे अनुष्टुप् छन्द रश्मियां 'हिम्' रश्यिमों से युक्त संयोज्य सोम रश्मियों में प्रविष्ट होकर लीन हो जाती हैं। ये सोम रश्मियां कहाँ विद्यमान रहती हैं, इसका संकेत महर्षि याज्ञवल्क्य के निम्नलिखित वचनों से होता है-

"अथैष एव वृत्रो यश्चन्द्रमाः" (श.१.६.४.१३,१८)
"चन्द्रमा एव (संवत्सरस्य) द्वारपिधानः" (श.११.१.१.१)

{संवत्सरः = संवत्सरो वै सोमो राजा (कौ.ब्रा.७.१०), संवत्सरो वै सोमः (पितृमान्) (तै.ब्रा.१.६.८.२)} इससे यह सिद्ध होता है कि वे सोम रश्मियां देदीप्यमान क्षत्रिय परमाणु के वाहर आवरक के रूप में विद्यमान रहती हैं। जव अनुष्टुप् छन्द रश्मियां इन सोम रश्मियों में प्रविष्ट होकर छिप जाती हैं, उस समय उनके लक्षण भी अदृश्य हो जाते हैं। शेष भाग का व्याख्यान उपर्युक्त अन्तिम तीन कण्डिकाओं के समान विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं।।

तदुपरान्त वे चन्द्रमा संज्ञक सोम रश्मियां अमावस्या में स्थित आदित्य नामक पदार्थ में प्रविष्ट हो जाती हैं। {अमावस्या = क्षत्रं अमावास्या (कौ.ब्रा.४.८), कामो वा अमावास्या (तै.ब्रा.३.१.५.१५), अमावस्या सिनीवाली (तै.सं.३.४.६.६), सिनीवाली = योषा वै सिनीवाली (श.६.५.१.१०)} यहाँ कमनीय किंवा मिश्रण और अमिश्रण की प्रवृत्ति से युक्त क्षत्रिय परमाणु ही अमावस्या कहलाते हैं। {आदित्यः = आदित्यानां जगती (पत्नी) (तै.आ.३.६.१), त्रैष्टुब्जागतो वा आदित्यः (तां.४.६.२३), बार्हतो वासावादित्यः (जै.ब्रा.२.३६), सुवरित्यादित्यः (तै.आ.७.५.२; तै.उ.१.५.२)} इन क्षत्रिय परमाणुओं में 'स्वः' संज्ञक व्याहृति रश्मियों से विशेष सम्पृक्त बृहती, त्रिष्टुप् एवं जगती छन्द रश्मियां विद्यमान होती हैं। इस छन्द रश्मियों में ही चन्द्रमा संज्ञक उपर्युक्त सोम रश्मियां प्रविष्ट हो जाती हैं। इसके साथ ही वे सोम रश्मियां इन छन्द रश्मियों में विलीन होकर अदृश्य हो जाती हैं, जिसके कारण उनके लक्षण भी लुप्त हो जाते हैं। शेष भाग का व्याख्यान उपर्युक्तवत् समझें।।

उपर्युक्त आदित्य संज्ञक त्रिष्टुबादि छन्द रश्मियां प्रक्षिप्त होकर अग्नि में प्रविष्ट हो जाती हैं। {अग्निः = अग्निर्वै गायत्री (श.३.६.४.१०), अग्निर्वा अन्नपतिः (तै.सं.५.२.२.१), अग्निर्वै त्रिवृत् (जै.ब्रा.१.२४०; तै.ब्रा.१.५.१०.४), अग्निर्वै पाप्मनोऽपहन्ता (श.२.३.३.१३), भूरिति वा अग्निः (तै.आ.७.५.२; तै.उ.१.५.२), या वाक् सोऽग्निः (गो.उ.४.११), वाग् अग्निः (ऐ.आ.२.१.५), (वाग्वा अनुष्टुप् - ऐ.१.२८)} इसका तात्पर्य यह है कि वे आदित्य संज्ञक छन्द रश्मियां 'भूः' व्याहृति रश्मियों से सम्पृक्त त्रिवृत् स्तोमरूपी गायत्री छन्द रश्मियों में प्रविष्ट हो जाती हैं। ये त्रिवृत् गायत्री छन्द रश्मियां ही सूक्ष्म असुर रश्मियों को नष्ट करके अन्नपतिरूप होकर संयोज्य क्षत्रिय परमाणुओं की वास्तविक रक्षिका होती हैं। इन गायत्री रश्मियों में प्रविष्ट हुई आदित्य संज्ञक छन्द रश्मियां गायत्री रश्मियों में विलीन भी हो जाती हैं, जिससे उनके लक्षण भी विलुप्त हो जाते हैं। शेष भाग का व्याख्यान् पूर्ववत् समझ सकते हैं।।

तदुपरान्त उपर्युक्त अग्नि संज्ञक गायत्री (त्रिवृत्) रश्मियां {उद्वान् = उपशमनं प्राप्नुवन् (सायणभाष्यम्)} वायु में प्रविष्ट हो जाती है। {वायुः = अयं वायुरन्तरिक्षस्य पृष्ठम् (जै.ब्रा.३.२५२), भुव इत्येव यजुर्वेदस्य (प्रजापतिः) रसमादत्त। तदिदमन्तरिक्षमभवत्। तस्य यो रसः प्राणोदत् स वायुरभवद्रसस्य रसः (जै.उ.१.१.१.४), वायुरेव हिङ्कारः (जै.उ.१.१२.२.६; १८.३.६), प्राणा उ वै वायुः (श.८.४.१.८), वायुर्वै प्राणः (कौ.ब्रा.८.४), वायुर्हि प्राणः (ऐ.२.२६), प्राणो हि वायुः (तां.४.६.८), प्राणो वै वायुः (कौ.ब्रा.५.८; श.४.४.१.१५; गो.उ.१.२६)} इसका तात्पर्य यह है कि वे अग्नि संज्ञक गायत्री छन्द

रश्मियों, जिनमें **'भूः'** रश्मियां सम्पृक्त होती हैं, **'भुवः'** व्याहृति रश्मियों से सम्पृक्त विभिन्न प्राण रश्मियों में प्रविष्ट होकर विलीन हो जाती हैं, जिससे उनके लक्षण भी लुप्त हो जाते हैं। यह **वायु** वही ब्रह्मरूप वायु है, जिसकी चर्चा इस खण्ड की द्वितीय कण्डिका में की गयी है। इसी वायु के परितः विद्युत्, वृष्टि, चन्द्रमा, आदित्य एवं अग्नि संज्ञक पांच पदार्थ विद्यमान होते हैं। इन्हीं पदार्थों का पूर्वोक्त **'परिमर'** कर्म उपर्युक्त क्रम एवं प्रक्रिया अनुसार होता है। शेष भाग का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

ये सभी विद्युदादि पांचों पदार्थ, जो वायु में विलीन होते हैं, वे पुनः-२ वायु से ही उत्पन्न भी होते हैं। इसकी चर्चा अग्रिम कण्डिकाओं में चरणवद्धरूप से की गयी है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में प्रत्येक मूलकण, Atom अथवा Ion (आयन) विभिन्न प्रकार की सूक्ष्म रश्मियों से छः स्तरों पर आच्छादित रहते हैं। इनमें से कुछ पदार्थ इन कणों के भीतर और बाहर दोनों ही स्थानों पर विद्यमान होते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से ये सभी पदार्थ कणों के भीतर और बाहर दोनों ही स्थानों पर प्रभावी रहते हैं। जब ये कण किसी अन्य कण के साथ संयोग करते हैं, तब उन दोनों के बीच डार्क एनर्जी का सूक्ष्म रूप प्रकट होकर प्रतिकर्षण बल उत्पन्न करने का प्रयास करता है। उस समय दोनों कणों के मध्य छः स्तर वाला पदार्थ अति विक्षुब्ध हो उठता है। इस क्रम में सर्वप्रथम विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र विक्षुब्ध होकर दो अनुष्टुप् छन्द रश्मियों में प्रविष्ट हो जाता है और उस समय विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र के लक्षण अदृश्य हो जाते हैं। यही कारण है कि जब धनावेशित और ऋणावेशित दो कण परस्पर संयुक्त होते हैं, तब उनको दोनों प्रकार का आवेश अदृश्य (लुप्त) होकर विद्युत् आवेश विहीन नवीन कण को जन्म देते हैं। उसके अगले चरण में विद्युत् को अपने अन्दर सोख लेने वाली अनुष्टुप् छन्द रश्मियां सूक्ष्म मरुद् रश्मियों में लीन हो जाती हैं। इन मरुद् रश्मियों में **'हिम्'** रश्मियां भी विद्यमान होती हैं। इस समय अनुष्टुप् छन्द रश्मियों के लक्षण भी समाप्त हो जाते हैं। उसके पश्चात् **'हिम्'** रश्मियों से युक्त सोम रश्मियां कणों में विद्यमान बृहती, त्रिष्टुप् एवं जगती, जो स्वः रश्मियों से युक्त होती हैं, में विलीन होकर अपने लक्षणों को त्याग देती हैं। इसके पश्चात् वे बृहती आदि रश्मियां **'भूः'** रश्मियों से सम्पन्न गायत्री छन्द रश्मियों में विलीन होकर निष्क्रिय हो जाती हैं। ये गायत्री छन्द रश्मियां ही डार्क एनर्जी के सूक्ष्म प्रभावों को नष्ट करती हैं। इस प्रकार डार्क एनर्जी का प्रतिकर्षक प्रभाव नष्ट हो जाता है। अन्त में ये गायत्री रश्मियां भी **'भुवः'** रश्मियों से युक्त विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों में विलीन हो जाती हैं, जहाँ डार्क एनर्जी का कोई भी प्रभाव नहीं रहता। इस प्रकार दो कण अथवा क्वाण्टाज् (Quantas) के मध्य अथवा इनका स्वयं का पारस्परिक (जैसे कण का कण के साथ एवं क्वाण्टा का क्वाण्टा के साथ) संयोग निर्विघ्न संपन्न हो जाता है। इस संयोग प्रक्रिया के ऐसे गम्भीर और सूक्ष्म रहस्य को वर्तमान विज्ञान किंचिदपि नहीं जानता।।
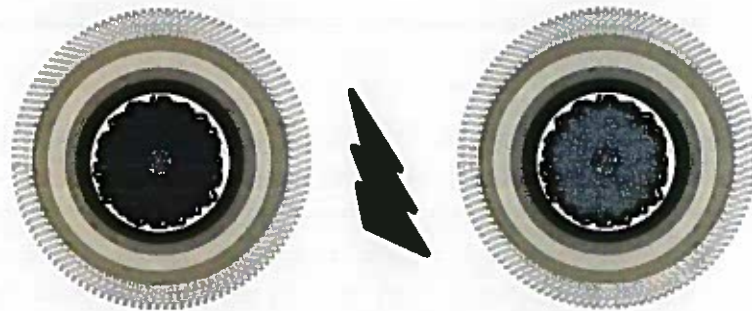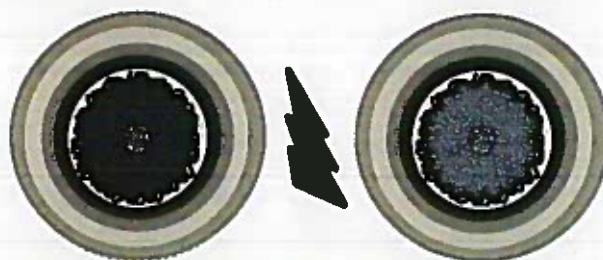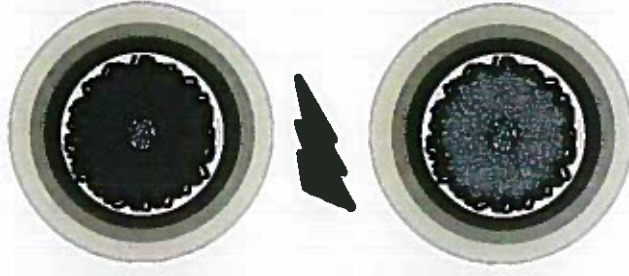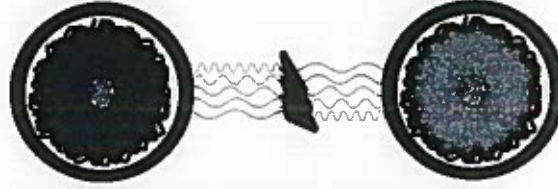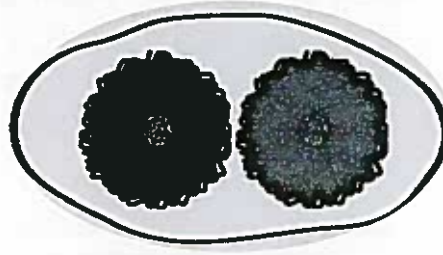
चित्र ४०.१ दो कण अथवा क्वाण्टाज् (Quantas) के संयोग की प्रक्रिया के विभिन्न चरण

२. वायोरग्निर्जायते; प्राणाद्धि बलान्मथ्यमानोऽधिजायते; तं दृष्ट्वा ब्रूयादग्निर्जायतां मा मे द्विषज्जन्यत एव पराङ्प्रजिघ्यत्वित्यतो हैव पराङ्प्रजिघ्यति।।
अग्नेर्वा आदित्यो जायते; तं दृष्ट्वा ब्रूयादादित्यो जायतां मा मे द्विषज्जन्यत एव पराङ्प्रजिघ्यत्वित्यतो हैव पराङ्प्रजिघ्यति।।
आदित्याद्वै चन्द्रमा जायते; तं दृष्ट्वा ब्रूयाच्चन्द्रमा जायतां मा मे द्विषज्जन्यत एव पराङ्प्रजिघ्यत्वित्यतो हैव पराङ्प्रजिघ्यति।।
चन्द्रमसो वै वृष्टिर्जायते, तां दृष्ट्वा ब्रूयाद् वृष्टिर्जायतां, मा मे द्विषज्जन्यत एव पराङ्प्रजिघ्यत्वित्यतो हैव पराङ्प्रजिघ्यति।।
वृष्टेर्वै विद्युज्जायते, तां दृष्ट्वा ब्रूयाद् विद्युज्जायतां मा मे द्विषज्जन्यत एव पराङ्प्रजिघ्यत्वित्यतो हैव पराङ्प्रजिघ्यति।।
स एष ब्रह्मणः परिमरः।।

तमेतं ब्रह्मणः परिमरं मैत्रेयः कौषारवः सुत्वमे कैरिशये मार्गायणाय राज्ञे प्रोवाच; तं ह पञ्च राजानः परिमम्रुस्ततः सुत्वा महज्जगाम।।
तस्य व्रतं,-न द्विषतः पूर्व उपविशेद् यदि तिष्ठन्तं मन्येत तिष्ठेतैव, न द्विषतः पूर्वः संविशेद्, यद्यासीनं मन्येताऽऽसीतैव; न द्विषतः पूर्वः प्रस्वप्याद्, यदि जाग्रतं मन्येत जाग्रियादेव।।
अपि ह यद्यस्याश्ममूर्धा द्विषन् भवति क्षिप्रं हैवैनं स्तृणुते, स्तृणुते।।५।।

व्याख्यानम्- अब उपर्युक्त पांचों पदार्थों की उत्पत्ति का क्रम और कारण पदार्थ का वर्णन करते हुए कहते हैं कि पूर्वोक्त **वायुरूप पदार्थ से अग्नि की उत्पत्ति होती है।** वायु अर्थात् विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों के मध्य जब बलपूर्वक मंथन क्रिया चलती है, उससे ही अग्नि का प्राकट्य होता है। इसलिए कहा गया है-

"प्राणापानौ वा इन्द्राग्नी" (मै.१.५.६; काठ.७.५; ३४.१; ३६.२; गो.उ.२.१) यहाँ अग्नि का तात्पर्य पूर्वोक्त त्रिवृत् गायत्री छन्द रश्मियां ही मानना चाहिये। जब विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियां संपीडित होती हैं, तब गायत्री छन्द रश्मियों के समूह उत्पन्न होते हैं। यह संपीडन **ईश्वर तत्त्व द्वारा प्रेरित 'ओम्' छन्द रश्मि-मय मनस्तत्त्व के द्वारा होता है।** इसी कारण महर्षि जैमिनी का कथन है-

"प्राणो वै गायत्रं" (जै.ब्रा.१.१११, जै.उ.१.१२.३.७)
"प्राणो वा एष प्रविशति यद् गायत्रम्" (छन्दः) (जै.ब्रा.२.१८)
"मनो वै गायत्रम्" (जै.ब्रा.३.३०५)

जब प्राथमिक प्राण रश्मियों से गायत्री छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है, उस समय किसी बाधक असुर तत्त्व की उत्पत्ति नहीं होती। जैसा कि हम अवगत हैं कि गायत्री आदि छन्द रश्मियां आसुर भी होती हैं परन्तु उनकी उत्पत्ति इस प्रक्रिया में नहीं होती है। यहाँ ग्रन्थकार का यही प्रयोजन है। यदि कहीं असुर रश्मियां विद्यमान हों, तो भी वे इन वायु और अग्नि तत्त्वों से पराङ्मुख होकर दूर चली जाती हैं।।

उपर्युक्त गायत्री छन्द रूपी अग्नि के सम्पीडन से पूर्वोक्त बृहती, त्रिष्टुप्, जगती छन्द रूपी आदित्य की उत्पत्ति होती है। इसी कारण कहा गया है-

"गायत्री वाव सर्वाणि छन्दांसि।" (तां.८.४.४)
"गायत्री वै छन्दसामग्रं ज्यैष्ठ्यम्।" (जै.ब्रा.२.२२७)
"गायत्री वै छन्दसामयातयाम्नी।" (जै.ब्रा.३.३०५)
"गायत्री वै प्रातःसवनं वहति, गायत्री माध्यन्दिनं सवनं, गायत्री तृतीयसवनम्" (जै.ब्रा.१.२८६)

इन वचनों का तात्पर्य यही है कि गायत्री छन्द रश्मियां अन्य सभी छन्द रश्मियों से पूर्व उत्पन्न होती हैं और वे छन्द रश्मियां गायत्री से ही उत्पन्न होकर गायत्री में ही प्रतिष्ठित रहती हैं। शेष भाग का व्याख्यान उपर्युक्तवत् समझें।।

इन उपर्युक्त बृहती, त्रिष्टुप् एवं जगत्यादि छन्द रश्मिरूप आदित्य से पूर्वोक्त चन्द्रमा अर्थात् कमनीय एवं सम्पीडक बलों से युक्त सोम रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जिनमें 'हिम्' रश्मियां भी विद्यमान होती हैं। इस बात का संकेत महर्षि तित्तिर के इस कथन में भी मिलता है।

"छन्दांसि खलु वै सौमस्य राज्ञः साम्राज्यो लोकः" (तै.सं.३.१.२.१)

इन वचनों से यह भी सिद्ध होता है कि न केवल आदित्य संज्ञक बृहती, त्रिष्टुप् एवं जगती छन्द रश्मियां गायत्री छन्द रश्मियों से उत्पन्न होती हैं, अपितु अन्य छन्द रश्मियां भी गायत्री से ही उत्पन्न होती हैं। शेष भाग का व्याख्यान पूर्ववत्।।

उपर्युक्त चन्द्रमा संज्ञक सोम रश्मियों से वृष्टि संज्ञक पूर्वोक्त दो निचृदनुष्टुप् छन्द रश्मियों की

उत्पत्ति होती है। इसका संकेत "अनुष्टुप् सोमस्य च्छन्दः" (कौ.ब्रा.१५.२; १६.३) से भी मिलता है। शेष भाग का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

पूर्वोक्त वृष्टि संज्ञक अनुष्टुप् छन्द रश्मियों से विद्युत् की उत्पत्ति होती है। इस विद्युत् को स्थूल विद्युत् मानना चाहिए क्योंकि विद्युत् का सूक्ष्मतम रूप प्राथमिक प्राण रश्मियों से ही उत्पन्न हो जाता है। इसी बात को महर्षि याज्ञवल्क्य ने इस प्रकार कहा है-

"विद्युद्वाऽअपां ज्योतिः" (श.७.५.२.४६)

यहाँ आपः शब्द का अर्थ महर्षि तित्तिर के कथन "आपो वै वृष्टिः" (तै.आ.१.२६.८) से स्पष्ट हो जाता है। शेष भाग का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

इस प्रकार इस खण्ड में वायुरूप ब्रह्म के 'परिमर' कर्म का व्याख्यान किया गया है, जिसमें विद्युदादि पांचों पदार्थों के मरण अर्थात् कारण में लय होने तथा इस लय होने के साथ-२ असुर पदार्थ के नष्ट होने की गंभीर प्रक्रिया के विज्ञान को चरणवद्ध रूप से व्याख्यात किया गया है। इस कण्डिका से पूर्व की पांच कण्डिकाओं में हमने अग्नि, आदित्य आदि पांचों पदार्थों की व्याख्या कुछ संक्षिप्त की है क्योंकि इनसे पूर्व इन पांचों ही पदार्थों को विस्तार से व्याख्यात किया जा चुका है।।

इसी परिमर प्रक्रिया को और भी अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि {मैत्रेयः = मैत्रे मित्रतायां साधुः, मैत्र+ढञ् (आप्टेकोश), (कुषारुः = कु+सृ+ञुण् - उ.को.१.३) इति मे मतम्। किरिः = किरतीति किरिः (उ.को.४.१४४)। शः = शो+ड = काटने वाला, विनाशकर्त्ता (आप्टेकोश)। सुत्वन् = सु+क्वनिप्, तुक् (आप्टेकोश)। भृगुः = भृगुर्वारुणिः (ऐ.३.३४)} टेढ़ी-मेढ़ी गतियों से युक्त परन्तु सदैव सूक्ष्म आकर्षण वलों से सम्पन्न "कौषारव मैत्रेय" नामक ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु रश्मियों का एक रूप पुरोहित ब्राह्मण के रूप में वरुण रश्मियों से उत्पन्न सोम रश्मियों को अवशोषित करने वाले किरिश क्षत्रिय परमाणु, जो विखरी हुई सोम रश्मियों को अपनी ओर आकर्षित करने की प्रवृत्ति से युक्त होते हैं, को प्रकृष्ट रूप से सक्रिय और सतेज करके पूर्वोक्त प्रक्रियानुसार महाभिषिक्त करते हैं। यहाँ 'भृगु' शव्द का अर्थ अग्नि की ज्वालाओं में विद्यमान वरुण रश्मियों (व्यान) से उत्पन्न सोम रश्मियां मानना चाहिए। इन क्षत्रिय परमाणुओं के अभिषिक्त होने के समय तथा ऐसे परमाणुओं के पारस्परिक संयोग के समय पूर्वोक्त विद्युदादि पांचों प्रकार के तेजस्वी पदार्थों का मरण अर्थात् अपने-२ कारणभूत पदार्थों में विलय होता है, तभी वे क्षत्रिय परमाणु वाधक असुर रश्मियों से मुक्त होकर महान् वल को प्राप्त करके अपना विस्तार करते हैं। इसका आशय यह है कि वे नाना प्रकार की संयोगादि क्रियाओं को सम्पन्न करके नाना तत्त्वों का निर्माण करते हैं।।

उपर्युक्त परिमर कर्म और संयोगादि प्रक्रिया के विज्ञान, जिसके द्वारा इस समस्त सृष्टि का निर्माण होता है, को उपसंहार की ओर ले जाते हुए कहते हैं कि {व्रतम् = कर्मनाम (निघं.२.१), वीर्यं वै व्रतम् (श.१३.४.१.१५), अन्नं हि व्रतम् (श.६.६.४.५)} इस सृष्टि में जहाँ-२ भी संयोगकर्म और उनको संपन्न करने वाले तेज और वल विद्यमान होते हैं, चाहे वे वल पूर्वोक्त विद्युत्, वृष्टि, चन्द्रमा आदि किसी भी पदार्थ के हों, जव तक द्वेषी अर्थात् बाधक असुर तत्त्व संघर्षरत रहता है, तव तक वे उस असुर तत्त्व से सतत संघर्ष करते हैं अर्थात् वे उस संघर्ष करते हुए असुर तत्त्व से पूर्व दुर्वल नहीं होते और न ही वे पदार्थ तव तक क्षत्रिय परमाणुओं के निकट जाते हैं। वे विद्युदादि पदार्थ असुर तत्त्व से पूर्व कभी भी एक ही स्थान पर स्थिर नहीं होते हैं। {आसीनः = (आ+सद् = आक्रमण करना, घात में रहना, निकट बैठना - आप्टेकोश)} यदि असुर पदार्थ आक्रमण हेतु क्षत्रिय परमाणुओं के निकट आता है, तो विद्युदादि पदार्थ भी आक्रमण करने के लिए तुरन्त असुर पदार्थ के निकट पहुंच जाते हैं। यदि असुर पदार्थ पूर्ण निष्क्रिय नहीं हुआ है, तो विद्युदादि पदार्थ भी पूर्ण निष्क्रिय नहीं होते अर्थात् उनका परिमर कर्म भी असुर पदार्थों के नष्ट होने के पश्चात् अथवा साथ-२ ही होता है। यदि ऐसा न होवे तो असुर पदार्थों को निष्क्रिय वा नष्ट किया ही नहीं जा सकता और ऐसा किये विना कोई भी संयोगादि कर्म हो ही नहीं सकते।।

{अश्मा = मेघनाम (निघं.१.१०), स्थिरो वो ऽअश्मा (श.६.१.२.५)} अन्त में महर्षि लिखते हैं

कि संयोगादि प्रक्रिया में बाधक बनी असुर रश्मियां दृढ़ मेघरूप में अति उत्कृष्ट अर्थात् तीक्ष्णरूप में क्यों न विद्यमान हों? उपर्युक्त परिमर कर्म के द्वारा शीघ्र ही नष्ट हो जाती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों के सम्पीडन से गायत्री छन्द रश्मियां और गायत्री छन्द रश्मियों के सम्पीडन से अन्य छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। विभिन्न छन्द रश्मियों के सम्पीडन से धीरे-२ विभिन्न मूलकण, विद्युदावेश और Quantas की उत्पत्ति होती है। इस प्रक्रिया में डार्क एनर्जी की बाधा को तीव्र विद्युत् तरंगों के द्वारा दूर किया जाता है किंवा यहाँ तक डार्क एनर्जी की कोई बाधा सृष्टि प्रक्रिया को अवरुद्ध नहीं कर पाती। प्राण व सूक्ष्म छन्द रश्मियों पर डार्क एनर्जी का कोई प्रभाव नहीं होता है। दो कणों के संयोग के समय डार्क एनर्जी को नष्ट करने वाली प्राणादि रश्मियां वा तीव्र विद्युत् तरंगें डार्क एनर्जी के नष्ट होने तक सक्रिय बनी रहती हैं, चाहे वह डार्क एनर्जी कितनी भी तीक्ष्ण क्यों न हो।।

௵ इति ओम् शम् ௸

௵ इति ४०.५ समाप्तः ௸

௵ इति चत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः ௸

इति "ऐतरेयब्राह्मणे" अष्टमपञ्चिका समाप्ता।।८।।

।। इस प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण की आठवी पञ्चिका का वैज्ञानिक व्याख्यान पूर्ण हुआ।।८।।

इस ग्रन्थ में मूल प्रकृति अर्थात् मूल उपादान कारण से लेकर तारों के निर्माण, उनके घूर्णन और परिक्रमण तक का गंभीर विज्ञान वर्णित है। विभिन्न प्राण व छन्द रश्मियों की उत्पत्ति, मूल कणों और Quantas की उत्पत्ति, बलों की उत्पत्ति और उनका क्रिया-विज्ञान जैसा इस महान् ग्रन्थ में वर्णित है, वैसा आधुनिक विज्ञान सुदीर्घ काल में भी कदाचित् ही जान सके। तारों, मूलकणों एवं Quantas की संरचना का अद्भुत विज्ञान वर्तमान भौतिक वैज्ञानिकों को आश्चर्यचकित करने में सक्षम होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। छन्द और प्राण रश्मियों के अद्भुत विज्ञान को समझकर संसार भर के वैज्ञानिक, वेद के अपौरुषेयत्व (ईश्वरीयत्व) को समझने के साथ-२ महान् क्रान्तिकारी विज्ञान को भी समझ सकेंगे, ऐसा मैं विश्वास करता हूँ।

इस ग्रन्थ में प्रथम देवता अग्नि अर्थात् विद्युत् चुम्बकीय तरंगें, विद्युत् आवेश किंवा विभिन्न प्राण रश्मियों की उत्पत्ति से लेकर विष्णुरूपी आदित्य लोकों की उत्पत्ति तक की प्रक्रिया का व्यापक विवेचन किया गया है। इस लम्बी प्रक्रिया में अनेक प्रकार की घटनाओं, दुर्घटनाओं, बाधाओं और उनके निराकरण का भी विशद विवेचन किया गया है। सम्पूर्ण सृष्टि प्रक्रिया में विभिन्न परमाणुओं के संयोग और वियोग की प्रक्रिया एक अनिवार्य और महत्वपूर्ण अंग है, जिसका विवेचन विस्तार से किया गया है। विभिन्न लोकों के निर्माण, मूलकणों का निर्माण, लोकों का परिक्रमण, घूर्णन आदि महत्वपूर्ण कर्मों का भी विशद

विवेचन किया गया है। **विभिन्न कणों वा तरंगों, रश्मियों के संयोग-वियोग की प्रक्रिया ही इस सृष्टि का सोमयाग है, जो इस ग्रन्थ का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है।** इस सृष्टि में विभिन्न प्रकार के परमाणु कैसे तेज और बल से युक्त होते हैं? उनका निर्माण कैसे होता है? उनकी आंतरिक और बाहरी संरचना, विभिन्न लोकों की आन्तरिक और बाह्य संरचना कैसी होती है? इन सब प्रश्नों का उत्तर विस्तार से इस ग्रन्थ में दिया गया है। विभिन्न प्रकार के बलों की उत्पत्ति और उनकी क्रियाविधि जैसे महत्वूपर्ण विषयों का भी विस्तृत विवेचन किया गया है। **सारांशतः इस सृष्टि को समझने के लिए भगवत्पाद ऐतरेय महीदास महर्षि का यह महान् ग्रन्थ अद्भुत विज्ञान का उद्घाटक है।** इसके साथ-२ ईश्वर द्वारा सृष्टि उत्पत्ति, धारण, संचालन व प्रलय की सम्पूर्ण प्रक्रिया का क्रियाविज्ञान (mechanism) इस ग्रन्थ से स्पष्ट विदित होकर सच्चे अध्यात्मवादियों को गहरे अध्यात्म की अनुभूति में अभूतपूर्व एवं विस्मयकारी ढंग से सहायक होगा। मैं ऐसे महान् वैज्ञानिक **योगेश्वर महर्षि ऐतरेय महीदास** के साथ-२ आद्य **महर्षि ब्रह्मा** जी से लेकर **ऋषि स्वामी दयानन्द सरस्वती** तक सभी भगवन्तों को नमन करते हुए परमपिता परमात्मा की कृपा से इस ग्रन्थ का समापन करता हूँ।।

इति परब्रह्मणः सच्चिदानन्देश्वरस्याऽनुपमकृपाभाजेन, प्रखर वेदोद्धारकस्य
परिव्राजकाचार्यप्रवरस्य श्रीमन्महर्षिदयानन्दसरस्वतिनः प्रबलार्यानुयायिवंशप्रवर्त्तकस्य
भारतवर्षस्योत्तरप्रदेशस्थ-हाथरसमण्डलान्तर्गतस्य ऐंहनग्रामाभिजनस्य
सिसोदिया-कुल-वैजपायेणगोत्रोत्पन्नस्य तत्रभवतः श्रीमतो देवीसिंहस्य प्रपौत्रेण,
श्रीघनश्यामसिंहस्य पौत्रेण श्रीमतोः ओम्वतीदेवीन्द्रपालसिंहयोस्तनूजेन
वीरप्रसवितुर्राजस्थानप्रान्तस्य
जालोरमण्डलान्तर्गत-प्रकाण्डगणितज्ञ-ब्रह्मगुप्त-महाकविमाघजन्मभूर्भीनमाल-
निकटस्थभागलभीमग्रामस्थ श्रीवैदिकस्वस्तिपन्थान्यास-संस्थापकेन
(वेद-विज्ञान-मन्दिर-वास्तव्येन) आचार्याऽग्निव्रतनैष्ठिकेन
विरचित-वैज्ञानिकभाष्यसारसमेतैतरेयब्राह्मणस्य वैज्ञानिक-व्याख्यानस्य (वेदविज्ञान-आलोकस्य)
ग्रन्थमिदं समाप्यते।
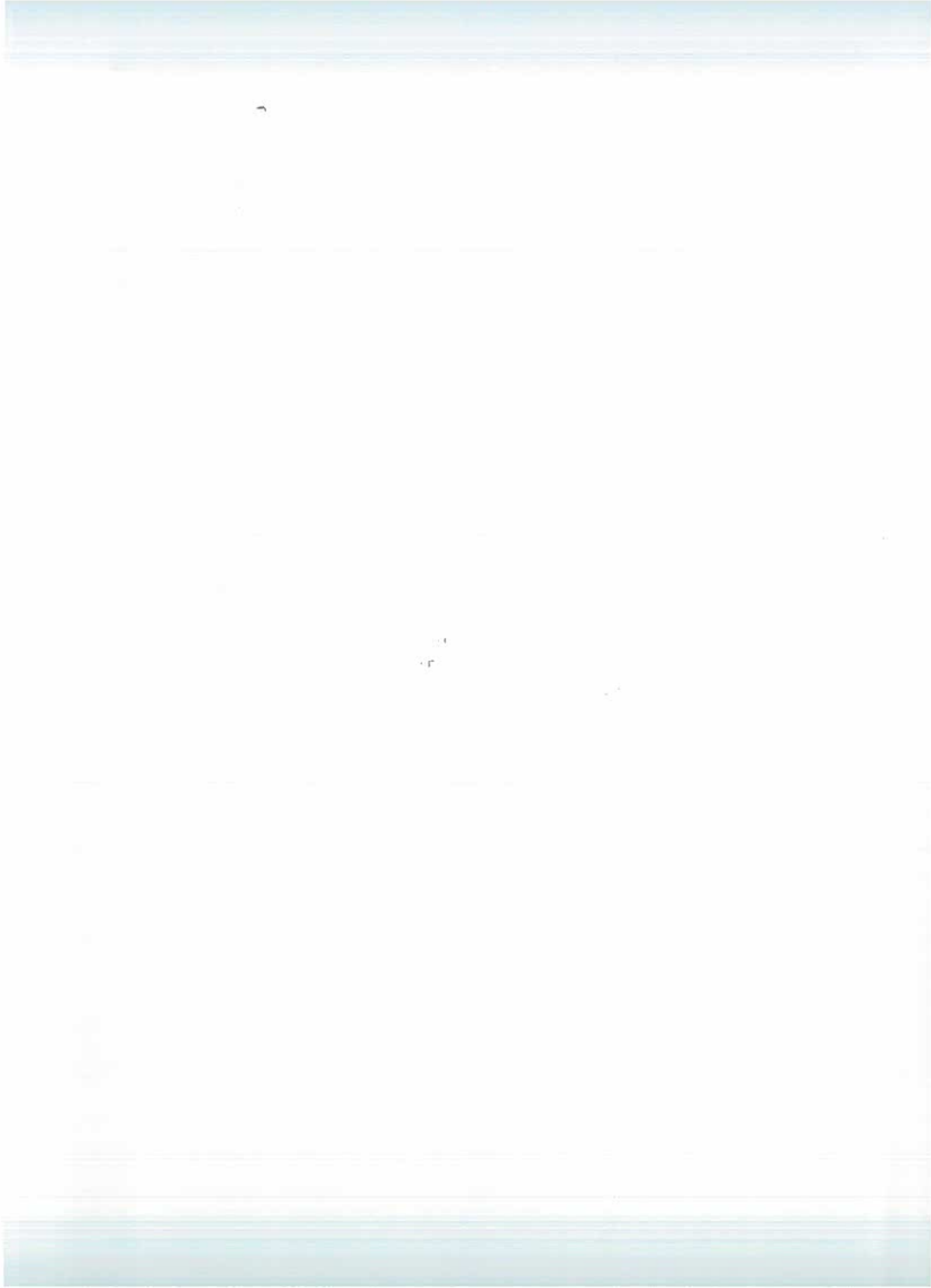
परिशिष्ट १

वैदिक सृष्टि उत्पत्ति का क्रम
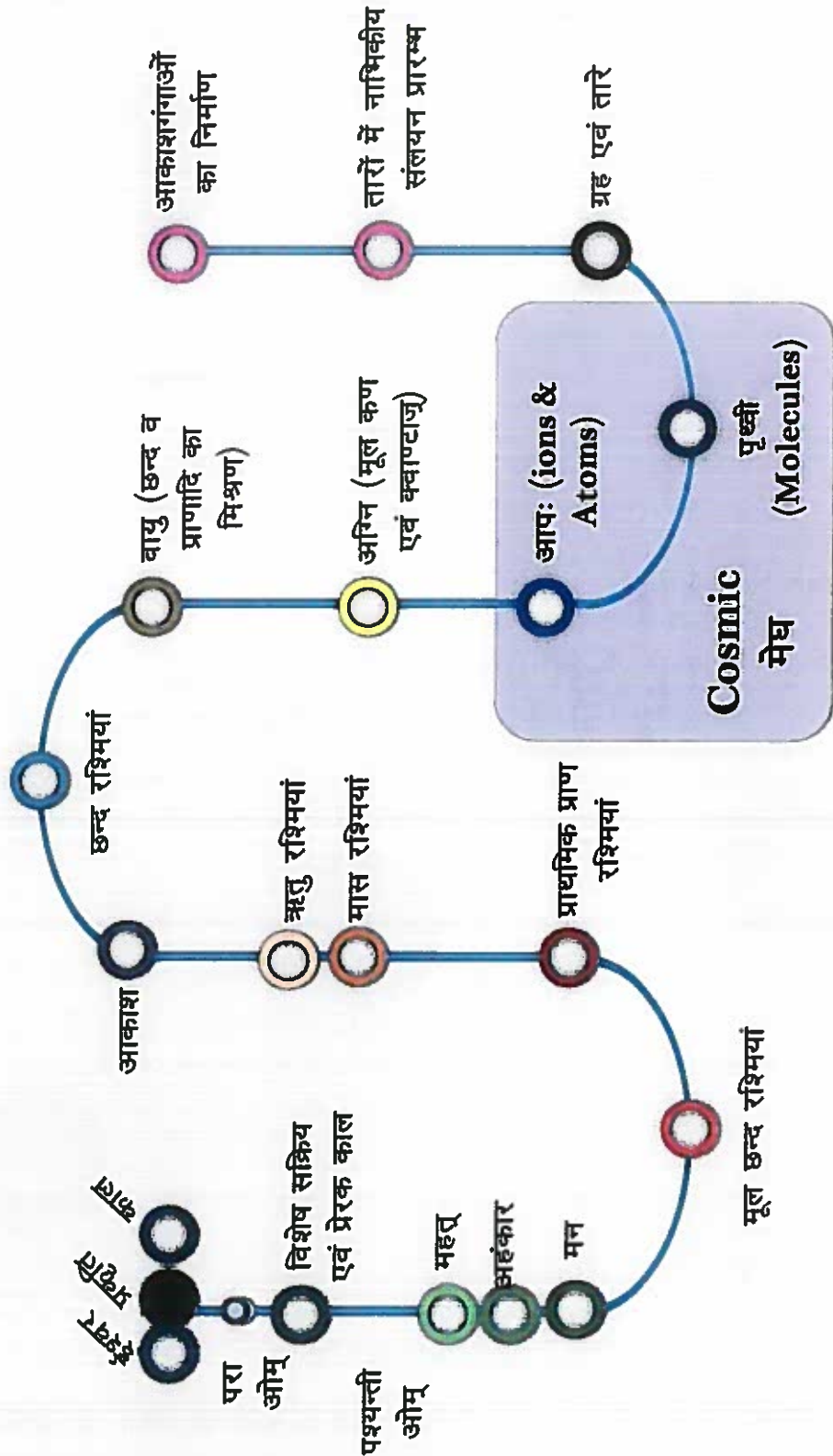
२. पूर्वपीठिका पृष्ठ संख्या-२१८
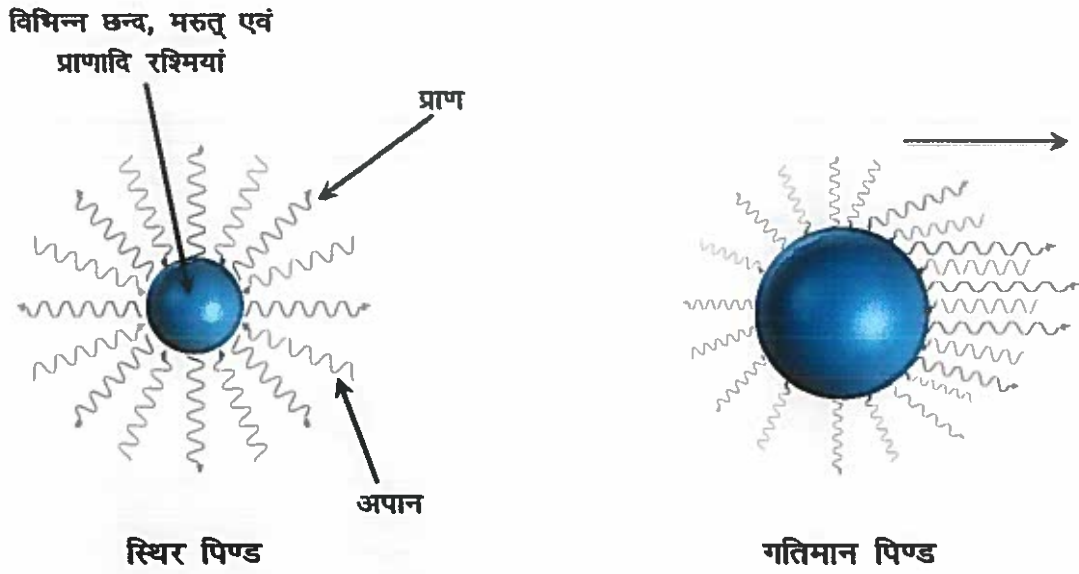
चित्र- गतिज ऊर्जा का क्रियाविज्ञान

३. पूर्वपीठिका पृष्ठ संख्या-२१६
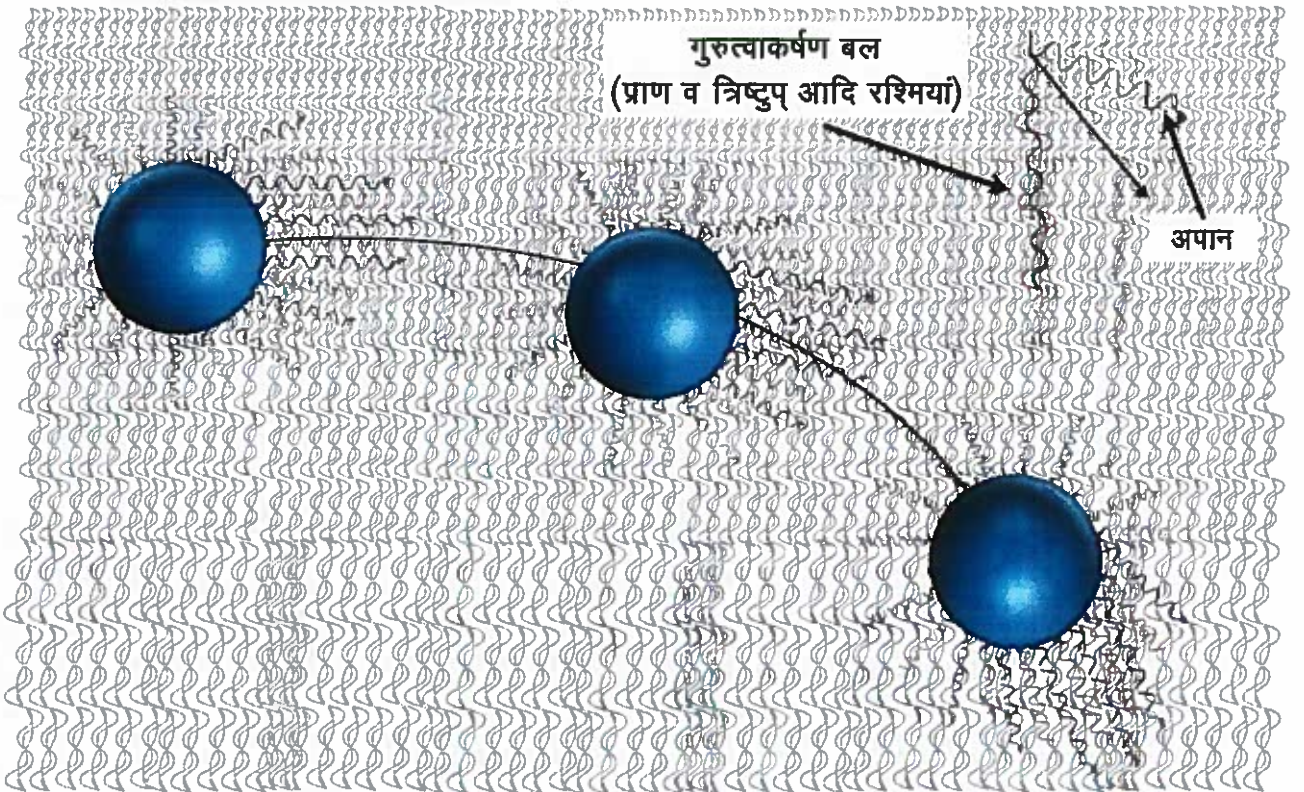
चित्र- गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में गतिशील पिण्ड के मार्ग की वक्रता का क्रियाविज्ञान

कणों व रश्मियों के संयोग का एक महत्वपूर्ण क्रियाविज्ञान
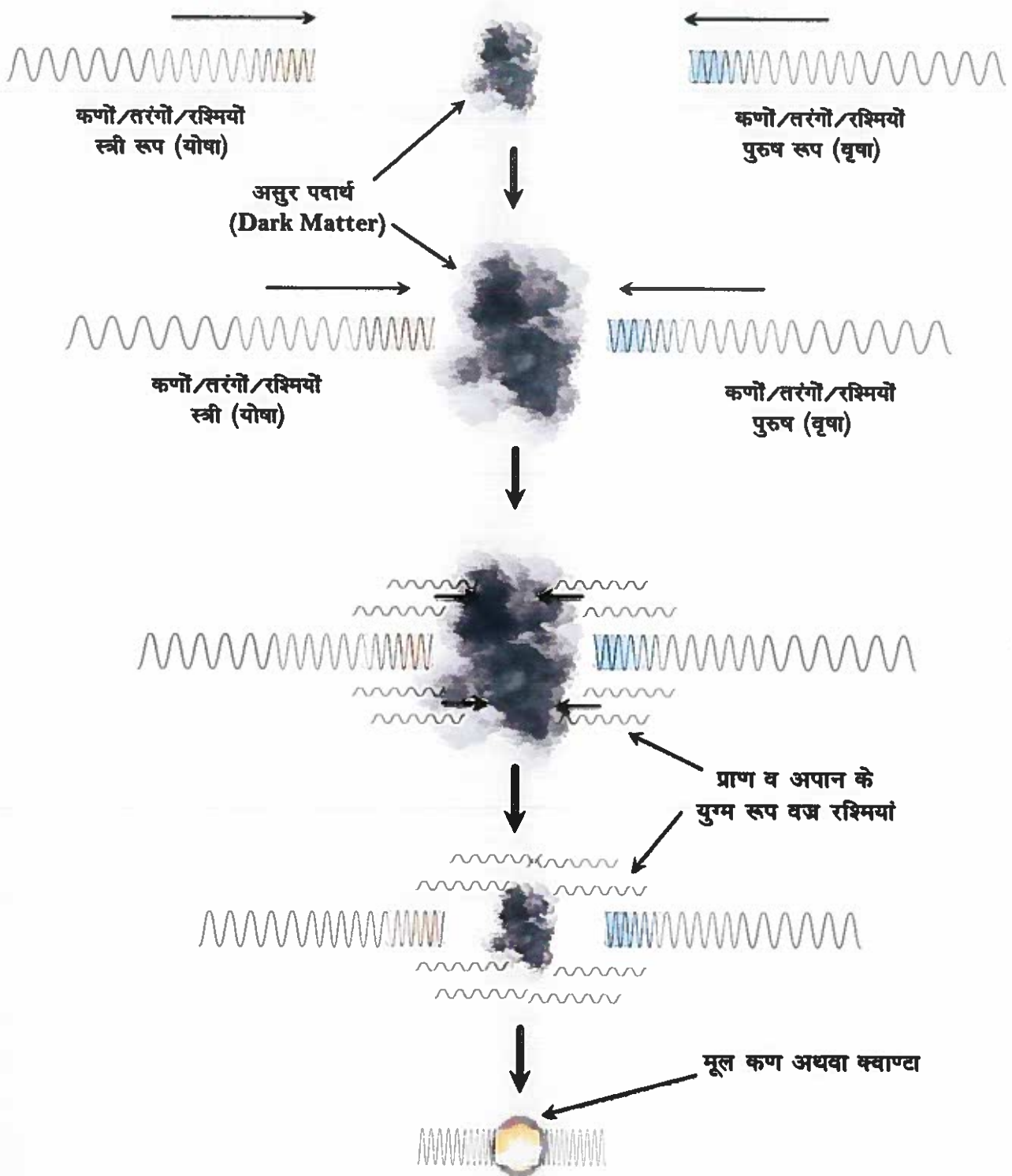
इस सृष्टि में जब भी दो कणों, तरंगों वा रश्मियों का संयोग होता है, तब उनमें से एक स्त्री व दूसरा पुरुष के समान व्यवहार करता है। जब वे संयोगार्थ परस्पर निकट आते हैं, उस समय उनके मध्य असुर ऊर्जा (Dark Energy) बाधक बन कर प्रकट हो जाती हैं। इससे उनके संयोग में बाधा आ

जाती है। इस वाधा से वे दोनों कण वा तरंग तनाव ग्रस्त हो उठते हैं। उनमें तनाव का प्रारम्भ उनके शीर्षरूप एक भाग विशेष से होता हुआ संयोग के केन्द्र विशेषों पुनः सम्पूर्ण भाग किंवा पादरूप तथा अन्य भागों में होता है। इस कारण उनसे प्राण व अपान के युग्मरूप वज्र रश्मियां उत्पन्न होकर असुर ऊर्जा (Dark Energy) पर आक्रमण करके नष्ट कर देती हैं। इसके पश्चात् उन दोनों कणों वा रश्मियों का संयोग इस ग्रन्थ में दी गयी नाना प्रक्रियाओं द्वारा सम्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार विपरीत स्वभाव वाले पदार्थों का संयोग होता है। जव सजातीय कण वा तरंगें एक दूसरे के निकट आती हैं, उस समय उनमें असुर पदार्थ की वाधा से उनमें तनाव उत्पन्न नहीं होता और इस कारण उनके मध्य वज्र रश्मियां भी उत्पन्न नहीं होतीं। इससे वाधक असुर पदार्थ उन दोनों के मध्य विद्यमान रहने से वे दोनों कणों वा रश्मियों से उत्पन्न सूक्ष्म रश्मियां परस्पर प्रतिकर्षित होकर वापिस मुड़ जाती हैं। यह सिद्धान्त प्रतिकर्षण वल का मूल कारण है।

परिशिष्ट 2

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क्र.सं.	ग्रन्थ नाम	लेखक/भाष्यकार/ संपादक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष/संस्करण
1.	अथर्ववेद संहिता	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, नई दिल्ली	2012
2.	अथर्ववेद भाष्य	प्रो. विश्वनाथ विद्यालंकार	रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत, हरियाणा	2004
3.	अथर्ववेद भाष्य	पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदी	सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली	वि.सं.2045
4.	अथर्ववेद भाष्य	डॉ. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर	विश्व मानव उत्थान परिषद् (पंजी.), नई दिल्ली	2005
5.	अनुभ्रमोच्छेदन	भीमसेन शर्मा	वैदिक पुस्तकालय, अजमेर	1995
6.	अमरकोष	स्व. श्री रामतेज पाण्डेय	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी	1990
7.	अष्टाध्यायी भाष्य	डॉ. सुदर्शनदेव आचार्य	स्वामी विरजानन्द आर्ष धर्मार्थ न्यास, गुरुकुल झज्जर, हरियाणा	1997
8.	आपस्तम्ब श्रौतसूत्र	-	-	-
9.	आप्टेकोश	वामन शिवराम आप्टे	नाग प्रकाशक, दिल्ली	1988
10.	आर्याभिविनय	महर्षि दयानन्द सरस्वती	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, नई दिल्ली	1986
11.	आर्योद्देश्यरत्नमाला	महर्षि दयानन्द सरस्वती	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, नई दिल्ली	1994

40.	जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण	पं. भगवद्दत्त रिसर्च स्कॉलर	विद्याप्रकाश प्रेस, चङ्गड़महल्ला, लाहौर	1921
41.	ताण्ड्य महाब्राह्मण	सायणाचार्य	चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली	2003
42.	तैत्तिरीय आरण्यक	सायणाचार्य	-	-
43.	तैत्तिरीय उपनिषद् (एकादशोपनिषद)	डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	विजयकृष्ण लखनपाल, नई दिल्ली	2000
44.	तैत्तिरीय ब्राह्मण	सायणाचार्य	आनन्द आश्रम मुद्रणालय	1979
45.	तैत्तिरीय संहिता	-	चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली	2005
46.	दैवत ब्राह्मण	सायणाचार्य	मुक्त संस्कृत महाविद्यालय, कलकत्ता	1881
47.	ध्यान-योग-प्रकाश	योगिराज स्वामी लक्ष्मणानन्द	रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत, हरियाणा	2006
48.	नारदीय शिक्षा	शिवराज आचार्य कौडिन्यायन	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी	2002
49.	निघण्टु	महर्षि यास्क	मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली	1985
50.	निघण्टु निर्वचनम्	श्री देवराजयज्व	रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत, हरियाणा	1998
51.	निरुक्तम्	पं. भगवद्दत्त रिसर्च स्कॉलर	रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत, हरियाणा	2004
52.	न्याय दर्शन (वात्स्यायन भाष्यसहित)	महर्षि गोतम	चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली	1988
53.	पाणिनीय अष्टाध्यायी	महर्षि पाणिनि	अनीता आर्ष प्रकाशन, पानीपत	1990

54.	पिंगल-छन्द-शास्त्र	पिंगलाचार्य	चौखम्वा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी	2002
55.	ब्रह्मसूत्र (विद्योदयभाष्यम्)	आचार्य उदयवीर शास्त्री	विरजानन्द वैदिक शोध संस्थान, गाजियाबाद (उ.प्र.)	1983
56.	ब्राह्मणोद्धार कोश	विश्ववन्धु	विश्वेश्वरानन्द भारत भारती ग्रन्थमाला-३८	1966
57.	मनुस्मृति	डॉ. सुरेन्द्र कुमार	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, नई दिल्ली	2005
58.	महाभारत	महर्षि वेदव्यास	गीताप्रेस, गोरखपुर	2001
59.	माण्डूक्य उपनिषद् (एकादशोपनिषद)	डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	विजयकृष्ण लखनपाल, नई दिल्ली	2000
60.	मीमांसा दर्शन (शाबर-भाष्य)	महर्षि जैमिनी	युधिष्ठिर मीमांसक बहालगढ़, सोनीपत, हरियाणा	1986
61.	मुण्डकोपनिषद् (एकादशोपनिषद)	डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	विजयकृष्ण लखनपाल, नई दिल्ली	2000
62.	मैत्रायणी संहिता	-	चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली	2005
63.	यजुर्वेद भाष्य	महर्षि दयानन्द सरस्वती	वैदिक पुस्तकालय, अजमेर	-
64.	यजुर्वेद संहिता	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, नई दिल्ली	-
65.	योगदर्शन (व्यास भाष्य सहित)	महर्षि पतंजलि	आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय, आबूपर्वत, राजस्थान	2003
66.	वर्णोच्चारण शिक्षा	महर्षि दयानन्द सरस्वती	विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, नई दिल्ली	2011
67.	वाक्यपदीयम्	डॉ. शिवशंकर अवस्थी	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी	2001

68.	वाचस्पत्यम् कोश	श्रीतारानाथतर्क वाचस्पतिभट्टाचार्य	राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली	2002
69.	वाजसनेय संहिता	'ऐतरेय ब्राह्मण' के आचार्य सायण भाष्य से उद्धृत		
70.	वैदिक इतिहासार्थ निर्णय	पं. शिवशंकर काव्यतीर्थ	सत्यार्थ प्रकाशन न्यास, कुरुक्षेत्र, हरियाणा	2009
71.	वैदिक कोश	आचार्य राजवीर शास्त्री	श्रीमद्दयानन्द वेदार्ष महाविद्यालय न्यास, नई दिल्ली	2009
72.	वैदिक वाङ्मय का इतिहास	पं. भगवद्दत्त रिसर्च स्कॉलर	विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, नई दिल्ली	2008
73.	वैदिक सम्पत्ति	पं. रघुनन्दन शर्मा	श्री घूड़मल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ ट्रस्ट, हिण्डौनसिटी, राजस्थान	2003
74.	वैशेषिक दर्शन	आचार्य उदयवीर शास्त्री	विरजानन्द वैदिक शोध संस्थान, गाजियाबाद (उ.प्र.)	1984
75.	व्यवहारभानु	महर्षि दयानन्द सरस्वती	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, नई दिल्ली	2006
76.	व्याकरण महाभाष्य	महर्षि पतंजलि	चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली	2004
77.	शतपथ ब्राह्मण	सायणाचार्य	राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली	2002
78.	श्रीमद् भगवद्गीता	महर्षि वेदव्यास	गीताप्रेस, गोरखपुर	1987
79.	श्रौत-यज्ञ-मीमांसा	पं. युधिष्ठिर मीमांसक	श्रीमती सावित्रीदेवी बागड़िया धर्मार्थ ट्रस्ट, कलकत्ता	2004
80.	शांखायन आरण्यक	विनायक गणेश आप्टे	आनन्दश्रम मुद्रणालय, पूना	1922
81.	शांखायन श्रौतसूत्र	'ऐतरेय ब्राह्मण' के आचार्य सायण भाष्य से उद्धृत		

82.	श्वेताश्वतर उपनिषद् (एकादशोपनिषद)	डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	विजयकृष्ण लखनपाल, नई दिल्ली	2000
83.	सत्यार्थ प्रकाश	महर्षि दयानन्द सरस्वती	श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास, उदयपुर, (राज.)	2015
84.	सन्मार्ग दर्शन	स्वामी सर्वदानन्द महाराज	श्री घूड़मल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ ट्रस्ट, हिण्डौनसिटी, राजस्थान	2004
85.	संस्कार विधि	महर्षि दयानन्द सरस्वती	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, नई दिल्ली	1989
86.	संस्कृत-धातु-कोश	पं. युधिष्ठिर मीमांसक	रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत, हरियाणा	2009
87.	सामविधान ब्राह्मण	सायणाचार्य	केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति	1980
88.	सामवेद भाष्य	स्व. श्री पं. तुलसीराम स्वामी	सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली	वि.सं.2046
89.	सामवेद संहिता	स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक 'विद्यामार्तण्ड'	मानव उत्थान संकल्प संस्थान (पंजी.), नई दिल्ली	2005
90.	साम्बपञ्चाशिका	'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' ग्रन्थ से उद्धृत		
91.	सांख्य दर्शन	महर्षि कपिल	विरजानन्द वैदिक शोध संस्थान, गाजियाबाद (उ.प्र.)	1987
92.	सुश्रुत संहिता	आचार्य सुश्रुत	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी	2014
93.	स्वमन्तव्या-मन्तव्यप्रकाश	महर्षि दयानन्द सरस्वती	वैदिक पुस्तकालय, अजमेर	1992
94.	षड्विंश ब्राह्मण	सायणाचार्य	मुक्त संस्कृत महाविद्यालय, कलकत्ता	1881
95.	दयानन्द विचार कोश भाग-१	डॉ. रामनाथ वेदालंकार	प्रकाशन ब्यूरो, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़	1982

S.R.	Book Title	Author/ Editor	Publisher	Year/ Edition
1.	A Brief History of Time	Stephen Hawking	Bantam Books	1988
2.	A New Case for an Eternally Odd Infinite Universe	Dr. A. K. Mitra	Article	Aug, 2004
3.	Acoustics	Joseph L. Hunter	Prentice Hall, the University of Michigan	2007
4.	An Astrophysical Peek into Einstein's Static Universe: No Dark Energy	Dr. A. K. Mitra	Article	Aug, 2008
5.	Asianic Elements in Greek Civilization, Ramsay.	'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' ग्रन्थ के प्रथम भाग से उद्धृत		
6.	Astrophysics Stars and Galaxies	K D Abhyankar	Universities Press (India) Ltd.	2001
7.	Basic Material Cause of the Creation	Acharya Agnivrat Naishthik	Shri Vaidic Swasti Pantha Nyas, Bhinmal, Rajasthan	2005
8.	Chambers Dictionary	Robert Allen	Allied Chambers (India) Ltd. New Delhi	2000
9.	Concepts of Mass in Classical and Modern Physics	Max Jammer	Dover Publications, Inc. Mineola, New York	2014
10.	Concepts of Modern Physics	Arthur Beiser	Tata McGraw- Hill Publishing Co. Ltd., New Delhi	2003
11.	Cosmology- The Science of the Universe	Edward Harrison	Cambridge University Press	2000
12.	Discovery of Cosmic Fractals	Yurij Baryshev & Pekka Teerikorpi	World Scientific, New Jersey	2002

13.	Lectures on Physics	Richard P. Feynman	Narosa Publishing House, New Delhi	1965
14.	Meeting the Standards in Primary Science	Lynn D. Newton	Routledge, Chapman&Hall	2016
15.	Oxford Advanced Learner's Dictionary	A P Cowie	Oxford University Press	1994
16.	Oxford Dictionary of Physics	Alan Issacs	Oxford University Press	2000
17.	Physics	Halliday, Reshick, Krane	John Wiley & Sons, Inc.	2002
18.	Q is for Quantum Particle Physics from A to Z	John Gribbin	Universities Press (India) Ltd.	1999
19.	Quantumchromodynamic s	Walter Greiner & Andreas Schafer	Springer	1995
20.	The Birth of Time	John Gribbin	Universities Press (India) Ltd.	2000
21.	The Briefer History of Time	Stephen Hawking & Leonard Mlodinow	Bantam Press	2008
22.	The First Three Minutes- A Modern View of the Origin of the Universe	Steven Weinberg	Flamingo	1976
23.	The Grand Design	Stephen Hawking	Bantam Press	2010
24.	The Origins of the Future- Ten Questions for the Next Ten Years	John Gribbin	Yale University Press, New Haven and London	2006
25.	The Physics of Reality	Richard L. Amoroso, Louis H. Kauffman, Peter Rowlands	World Scientific	2012
26.	The Religion of Ancient Egypt, Mercer.	'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' ग्रन्थ के प्रथम भाग से उद्धृत		

27.	The Road to Reality	Roger Penrose	Jonathan Cape London	2004
28.	The Trouble with Physics	Lee Smolin	The Penguin Group, USA	2006
29.	The World of Physics	Jefferson Hone Weaver	Simon and Schuster, New York	1987
30.	Wikipedia			

परिशिष्ट 3

ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित विभिन्न पदों का यथार्थ स्वरूप जानने हेतु पठनीय स्थल

क्र.सं.	पद	वेद विज्ञान आलोक में द्रष्टव्य	क्र.सं.	पद	वेद विज्ञान आलोक में द्रष्टव्य
1.	दीक्षणीय इष्टि	१.१.२	2.	कपाल	१.१.६
3.	पुरोडाश	१.१.६	4.	घृत	१.१.७
5.	चरु	१.१.७	6.	तण्डुल	१.१.८
7.	दर्शपूर्णमास	१.१.६	8.	आमावस्या	१.१.६
9.	पौर्णमास	१.१.६	10.	सामिधेनी	१.१.१०
11.	आहूति	१.२.३	12.	ऊति	१.२.४
13.	नवनीत	१.३.३	14.	आज्य	१.३.४
15.	दर्भ	१.३.६	16.	कृष्णाजिन	१.३.१२
17.	संसव	१.३.१५	18.	वृत्र	१.४.५
19.	रूप समृद्धि	१.४.७	20.	प्रायणीय इष्टि	१.७.१
21.	पथ्या	१.७.५	22.	प्रयाज	१.११.१
23.	अनुयाज	१.११.१	24.	पत्नी संयाज	१.११.३
25.	सोमक्रय	१.१२.१	26.	अनड्वान	१.१४.१
27.	आतिथ्येष्टि	१.१५.१	28.	प्रवर्ग्येष्टि	१.१८.१
29.	वषट्कार	१.२२.३	30.	उपसद	१.२३.२
31.	तानूनप्त्र	१.२४.२	32.	निह्नव	१.२६.२
33.	हविर्धान	१.२६.१	34.	पशुयाग	२.१.१
35.	यूप	२.१.२	36.	खादिर यूप	२.१.३
37.	बैल्व	२.१.३	38.	पालाश	२.१.४
39.	पश्वालम्भन	२.३.३; २.८.१	40.	मनोता	२.१०.१
41.	कवष ऐलूष ऋषि	२.१६.१	42.	वसतीवरी आपः	२.२०.३

43.	एकधना आपः	२.२०.३	44.	उपांशु	२.२१.१
45.	अन्तर्याम	२.२१.१	46.	अवत्सार ऋषि	२.२४.५
47.	मैत्रावरुण ग्रह	२.२७.३;३.५०.१	48.	आश्विन	२.२७.४
49.	ऋतुयाज	२.२६.१	50.	तूष्णींशंस	२.३१.३;२.३६.१
51.	आहाव	२.३३.१	52.	निविद	२.३३.१
53.	विट् सूक्त	२.३३.१	54.	आग्नीध्र	२.३६.१
55.	अच्छावाक शस्त्र	२.३६.३;३.५०.२	56.	आज्य शस्त्र	२.३७.१
57.	होतृजप	२.३८.१	58.	प्रउग शस्त्र	३.१.१
59.	वज्र	३.७.१	60.	प्रतिगर	३.१२.१
61.	मरुत्वतीय शस्त्र	३.१२.१	62.	धाय्या	३.१८.१
63.	गौरिवीति ऋषि	३.१६.३	64.	निष्केवल्य शस्त्र	३.२१.२
65.	ऋक्	३.२३.१	66.	साम	३.२३.१
67.	स्तोत्रिय	३.२४.१	68.	अनुरूप	३.२४.१
69.	अग्निष्टोम	३.३६.३	70.	ज्योतिष्टोम	३.४३.१;४.१५.१
71.	दीक्षणीयेष्टि	३.४५.२	72.	आतिथ्येष्टि	३.४५.२
73.	उपवसथ	३.४५.३	74.	उक्थ्य	३.४६.१
75.	ब्राह्मणाच्छंसी	३.५०.१	76.	विहरण	४.३.१
77.	चतुर्विंश	४.१२.१	78.	महाव्रत	४.१४.१
79.	गोष्टोम	४.१५.१	80.	आयुष्टोम	४.१५.१
81.	गवामयन	४.१७.१	82.	अभिप्लव	४.१७.२
83.	षडह	४.१७.२	84.	एकविंश	४.१८.१
85.	दिवाकीर्त्य	४.१८.२	86.	अभिजित्	४.१६.१
87.	विश्वजित्	४.१६.१	88.	दूरोहण	४.२०.१
89.	स्वर्गलोक	४.२०.१	90.	द्वादशाह	४.२३.१
91.	न्यूङ्ख	५.३.२	92.	परुच्छेप ऋषि	५.१०.१
93.	नाभानेदिष्ठ ऋषि	५.१४.१	94.	मनु ऋषि	५.१४.१
95.	वालखिल्य	५.१५.१	96.	एवयामरुत्	५.१५.१
97.	वृषाकपि	५.१५.१	98.	समानोदर्क	५.२०.१

99.	उदित होम	५.२८.१	100.	वृषशुष्म ऋषि	५.२८.१
101.	वातावत ऋषि	५.२८.१	102.	जातूकर्ण्य ऋषि	५.२८.१
103.	ग्रावस्तुत	६.१.१	104.	अर्बुद ऋषि	६.१.२
105.	पात्नीवत ग्रह	६.३.३	106.	परिधानीय	६.७.१
107.	ऐकाहिक	६.८.१	108.	अहीन	६.८.१
109.	प्रातःसवन	६.६.१	110.	माध्यन्दिन सवन	६.६.२
111.	सायं सवन(तृतीय सवन)	६.६.२	112.	प्रस्थित याज्या	६.१०.१
113.	विश्वामित्र ऋषि	६.१८.१;७.१६.१	114.	वामदेव ऋषि	६.१८.१
115.	नोधा ऋषि	६.१८.३	116.	भरद्वाज ऋषि	६.१८.३
117.	अतिरात्र	६.२३.२	118.	वाचःकूट	६.२४.१
119.	नभाक ऋषि	६.२४.१	120.	सौवल ऋषि	६.२४.४
121.	सर्पि ऋषि	६.२४.४	122.	बरु ऋषि	६.२५.१
123.	देवशिल्प	६.२७.१	124.	मानुष शिल्प	६.२७.१
125.	आत्म संस्कृति	६.२७.१	126.	बुलिल ऋषि	६.३०.२
127.	आश्वतर ऋषि	६.३०.२	128.	गौश्ल ऋषि	६.३०.३
129.	कुन्ताप ऋषि	६.३२.१	130.	ऐतश ऋषि	६.३३.१
131.	अभ्यग्नि ऋषि	६.३३.२	132.	पशुविभाग	७.१.१
133.	प्रायश्चित्ति	७.५.२-३	134.	गार्हपत्य अग्नि	७.५.३
135.	आहवनीय अग्नि	७.६.१	136.	संवर्ग अग्नि	७.७.१
137.	दिव्य अग्नि	७.७.१	138.	शवाग्नि	७.७.१
139.	दावाग्नि	७.७.१	140.	पैङ्गी ऋषि	७.११.१
141.	कौषीतकि ऋषि	७.११.१	142.	हरिश्चन्द्र ऋषि	७.१३.१
143.	इक्ष्वाकु ऋषि	७.१३.१	144.	वेधा ऋषि	७.१३.१
145.	पर्वत ऋषि	७.१३.१	146.	नारद ऋषि	७.१३.१
147.	वरुण ऋषि	७.१४.१	148.	रोहित ऋषि	७.१४.१
149.	शुनःशेप ऋषि	७.१५.३	150.	शुनःपुच्छ ऋषि	७.१५.३
151.	शुनःलाङ्गूल ऋषि	७.१५.३	152.	वसिष्ठ ऋषि	७.१६.१
153.	जमदग्नि ऋषि	७.१६.१	154.	अजीगर्त ऋषि	७.१६.१
155.	सुयवस ऋषि	७.१६.१	156.	अयास्य ऋषि	७.१६.१

157.	मधुच्छन्दा ऋषि	७.१७.२	158.	रेणु ऋषि	७.१७.२
159.	ऋषभ ऋषि	७.१७.२	160.	अष्टक ऋषि	७.१७.२
161.	अन्ध्र	७.१८.१	162.	पुण्ड्र	७.१८.१
163.	शबर	७.१८.१	164.	पुलिन्द	७.१८.१
165.	मूतिब	७.१८.१	166.	देवरात ऋषि	७.१८.२
167.	कुशिक ऋषि	७.१८.२	168.	गाथि ऋषि	७.१८.२
169.	जह्नु ऋषि	७.१८.२	170.	ब्राह्मण	७.१९.१
171.	राजसूय क्रतु	७.१९.१	172.	सुषद्भ ऋषि	७.२७.१
173.	विश्वंतर ऋषि	७.२७.१	174.	श्यापर्ण ऋषि	७.२७.१
175.	परीक्षित ऋषि	७.२७.१	176.	जनमेजय ऋषि	७.२७.१
177.	कश्यप ऋषि	७.२७.१	178.	असितमृग ऋषि	७.२७.१
179.	भूतवीर ऋषि	७.२७.१	180.	मृगुव ऋषि	७.२७.१
181.	राम ऋषि	७.२७.१	182.	त्वष्टा ऋषि	७.२८.१
183.	विश्वरूप ऋषि	७.२८.१	184.	बृहस्पति ऋषि	७.२८.१
185.	न्यग्रोध	७.३०.१	186.	उदुम्बर	७.३०.१
187.	अश्वत्थ	७.३०.१	188.	प्लक्ष	७.३०.१
189.	कुरुक्षेत्र	७.३०.१	190.	प्रियव्रत ऋषि	७.३४.१
191.	कवष ऋषि	७.३४.२	192.	तुर ऋषि	७.३४.२
193.	सहदेव ऋषि	७.३४.२	194.	सोमक ऋषि	७.३४.२
195.	सार्ञ्जय ऋषि	७.३४.२	196.	बभ्रु ऋषि	७.३४.२
197.	दैवावृध ऋषि	७.३४.२	198.	भीम ऋषि	७.३४.२
199.	वैदर्भ ऋषि	७.३४.२	200.	नग्नजित् ऋषि	७.३४.२
201.	गन्धार ऋषि	७.३४.२	202.	अग्नि ऋषि	७.३४.२
203.	सनश्रुत ऋषि	७.३४.२	204.	अरिन्दम ऋषि	७.३४.२
205.	क्रतुविद ऋषि	७.३४.२	206.	जानक ऋषि	७.३४.२
207.	सुदास ऋषि	७.३४.२	208.	पैजवन ऋषि	७.३४.२
209.	अभिषेक	८.५.१	210.	सुरा	८.८.१
211.	राष्ट्र	८.१०.२	212.	निषाद	८.११.२
213.	ऐन्द्रो महाभिषेक	८.१२.१	214.	व्रीहि	८.१६.१

साहित्य प्रकाशनार्थ 49,999/- से अधिक दान देने वाले दान दाताओं की सूची
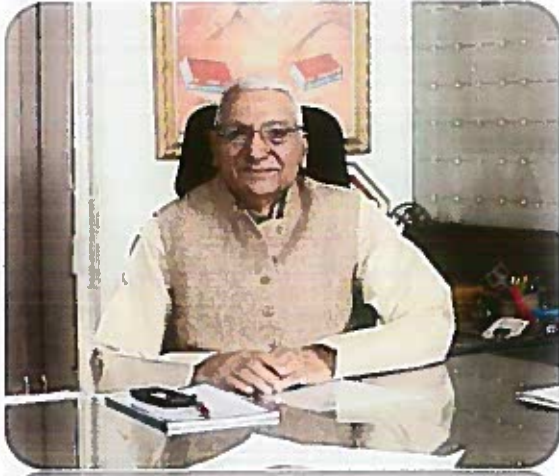
माननीय सेठ
श्री दीनदयाल गुप्ता
चेयरमैन, डॉलर फाउण्डेशन
कोलकाता

5 लाख अथवा अधिक दान देने वाले भामाशाह

माननीय
श्री सुरेशचन्द्र आर्य
प्रधान, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली

क्र.	नाम दानदाता	प्रेरक	राशि
1.	**श्रीमान् दीनदयाल गुप्ता** चेयरमैन, डॉलर फाउण्डेशन कोलकाता	स्वयं	6,00,000/-
2.	**श्रीमान् सुरेशचन्द्र आर्य** प्रधान, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली	स्वयं	5,00,000/-
3.	**श्रीमान् भूराराम दर्जी** निम्बावास, भीनमाल (धर्मपत्नी स्व. श्रीमती प्यारीदेवी की स्मृति में)	श्रीमान् डूंगराराम दर्जी (अभिषेक आर्य) पुत्र श्रीमान् भूराराम दर्जी	3,00,000/-
4.	**श्रीमान् जगदम्बाप्रसाद बंसल** आगरा	श्रीमान् दीनदयाल गुप्ता	2,00,000/-
5.	**श्रीमान् सुमित अग्रवाल** कोलकाता	श्रीमान् दीनदयाल गुप्ता	2,00,000/-
6.	**श्रीमान् विश्वनाथ सैक्सरिया** कोलकाता	श्रीमान् दीनदयाल गुप्ता	2,00,000/-
7.	**श्रीमान् सुधीर सतनाली वाला** कोलकाता	श्रीमान् दीनदयाल गुप्ता	2,00,000/-
8.	**श्रीमान् सत्यनारायण अग्रवाल देवरालिया** कोलकाता	श्रीमान् दीनदयाल गुप्ता	2,00,000/-

23.	**आर्य समाज, सैक्टर-7** फरीदाबाद	माता श्रीमती प्रकाश देवी	78,000/-
24.	**श्रीमान् चौधरी तोरनसिंह आर्य** (मथुरा वाले), नोएडा	स्वयं	51,000/-
25.	**सुश्री दीप्ति विद्यार्थी (अकोला)** पुणे	स्वयं	51,000/-
26.	**श्रीमान् रघुराजसिंह आर्य** बुलंदशहर	स्वयं	50,000/-
27.	**श्रीमान् राणाराम चौधरी** जूनीबाली, जालोर	स्वयं	50,000/-
28.	**श्रीमती दर्शना मलिक** धर्मपत्नी श्रीमान् बलवीर सिंह मलिक फरीदाबाद	श्रीमान् बलवीरसिंह मलिक	50,000/-
29.	**श्रीमान् चांदरत्न दम्मानी** कोलकाता	स्वयं	50,000/-
30.	**माता श्रीमती प्रकाश देवी** फरीदाबाद, द्वारा संगृहीत राशि	स्वयं	1,12,412/-

वेदविज्ञान-आलोकः™

(महर्षि ऐतरेय महीदास प्रणीत - ऐतरेय ब्राह्मण की वैज्ञानिक व्याख्या)

इस ग्रन्थ को क्यों पढ़ें

- आधुनिक सैद्धान्तिक भौतिकी (Theoretical physics) की विभिन्न गम्भीर समस्याओं विशेषकर Cosmology, Astrophysics, Quantum field theory, Plasma physics, Particle physics एवं String theory से सम्बन्धित अनेक वास्तविक समस्याओं का आश्चर्यजनक समाधान इस ग्रन्थ के गहन अध्ययन से सम्भव है। इसके साथ ही इन क्षेत्रों में नये-२ अनुसंधान करने के लिए आगामी लगभग 100 वर्ष के लिए पर्याप्त सामग्री इस ग्रन्थ में विद्यमान है।
- इस ग्रन्थ से विकसित वैदिक सैद्धान्तिक भौतिकी (Vaidic theoretical physics) भविष्य में आश्चर्यजनक एवं निरापद टैक्नोलॉजी के अनुसंधान को जन्म दे सकेगी तथा विज्ञान की अन्य शाखाओं में भी कुछ विशेष परिवर्तन भविष्य में हो सकते हैं।
- विश्वभर के धर्माचार्यों व अध्यात्मवादियों को ईश्वर के अस्तित्व व स्वरूप की वैज्ञानिकता के विस्तृत ज्ञान तथा इसके द्वारा संसार में एक धर्म, एक भाषा, एक भावना को स्थापित करने में यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण साधन है।
- वर्तमान भौतिक वैज्ञानिकों को यह जानने कि ईश्वर तत्त्व के ज्ञान के बिना भौतिक विज्ञान समस्याग्रस्त ही रहेगा तथा धर्माचार्यों को यह जानने हेतु कि ईश्वर के कार्य करने की प्रणाली (Mechanism) क्या है, यह ग्रन्थ एक महत्वपूर्ण मार्गदर्शक का कार्य करेगा। इसके साथ ही उन्हें इस वात का भी वोध होगा कि धर्म, ईश्वर आदि आस्था व विश्वासों का विषय नहीं है वल्कि सत्य विज्ञान पर आधारित वास्तविकता है, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के लिए एक समान ही है।
- भारत के प्रवुद्ध वर्ग में नये राष्ट्रिय स्वाभिमान, ऐतिहासिक व सांस्कृतिक गौरव एवं बौद्धिक स्वतंत्रता का भाव भरने में यह ग्रन्थ एक क्रान्तिकारी दिशा देगा।
- यह ग्रन्थ वेदों तथा संस्कृत भाषा का ऐसा यथार्थ स्वरूप संसार के समक्ष प्रस्तुत करेगा, जिसकी कल्पना विश्व के सम्भवतः इस समय किसी भी वेदज्ञ एवं संस्कृतज्ञ को नहीं होगी।
- यह ग्रन्थ विश्वभर के मनुष्यों को अहिंसा, सत्य, ईमानदारी, प्रेम, करुणा, न्याय आदि मानवीय सद्गुणों की ओर ले जाने में समर्थ होगा तथा भय, हिंसा, आतंक, ईर्ष्या, द्वेष, वैर, मिथ्या छलकपट व वेईमानी से मुक्त करने में सहयोग करेगा।

-आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

श्री वैदिक स्वस्ति पन्था न्यास

(वेद विज्ञान मन्दिर)

वैदिक एवं आधुनिक भौतिक शोध संस्थान